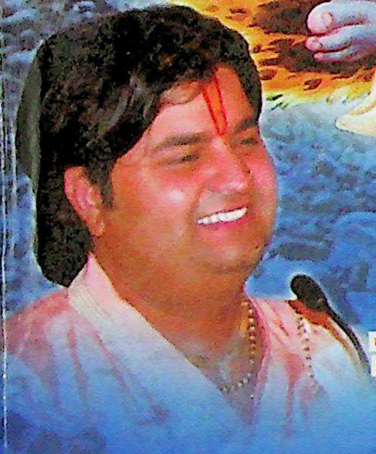
॥ ॐ नमः शिवाय ॥

श्री शिव कथा सार



संजीव कृष्ण (ठाकुर जी)

सम्पूर्ण ग्यारह खण्डों की कथा





श्री शिव कथा-सार

संकलन कर्ता

श्री बाबूलाल अग्रवाल जी
(प्रिय दास)

प्रेरणा स्त्रोत

श्री संजीव कृष्ण ठाकुर जी
(वृन्दावन वाले)



नवीन संस्करण

प्रकाशक

पंकज प्रकाशन

715, सतघड़ा, मथुरा (उ.प्र.)
फोन: 0565-2401130
मो. 09837048889

न्यौछावर 500/- सजिल्द

प्रकाशक :

पंकज प्रकाशन

715, सतघड़ा, मथुरा

फोन: 0565-2401130

9837048889

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री राधा खण्डेलवाल ग्रन्थालय

अठखम्बा बाजार

वृन्दावन (मथुरा)

फोन : 0565-2443101

मित्तल एण्ड कम्पनी

सतघड़ा, मथुरा

9837073565

भक्ति ज्ञान मन्दिर

नरसिंह घाट

पुष्कर (अजमेर)

(प्रेरणा स्त्रोत)

परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव
पं० मूचन्द शास्त्री जी

नवीन संस्करण:

मुद्रकः

ओटोमेटिक प्रेस

डीग गेट, मथुरा





वृन्दावन के मूर्धन्य विद्वान श्री राजवंशी जी ने जहां संजीव को कृष्ण के नाम से सुशोभित किया वहीं पदम श्री से सुशोभित शुकताल धाम के 129 वर्षीय वयोवृद्ध बीतरागी संत स्वामी श्री कल्यान देव जी ने श्रीमद्भागवत प्रवचन के मध्य व्यास पीठ पर शुकदेव जी की उपाधि से सुशोभित किया।

संजीव कृष्ण केवल वक्ता ही नहीं, अपितु राष्ट्र के लिये समर्पित एक अनोखा व्यक्तित्व है आज पूर्वांचल ही नहीं सम्पूर्ण भारत में धर्मान्तरण एक चिन्तनीय मुद्दा है जब भी संजीव कृष्ण जी को मौका मिलता है वे वनवासी बालक-बालिकाओं को कृष्ण कथा के लिए प्रशिक्षित करते हैं जिससे ये अपने क्षेत्र में जाकर कृष्ण कथा, गुरु, गंगा, गीता व गाय आदि को जनमानस में पुनः प्रतिष्ठित करायें। कभी-कभी जेलों में जाकर कैदियों को अपराध मुक्त जीवन जीने को प्रेरित करते हैं। जब भूकम्प, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं से राष्ट्र परेशान था।

तक आपने भूकम्प पीड़ितों की सहायतार्थ समय समय पर भागवत कथा कर, प्राप्त दृव्य व सामग्री प्रभावित क्षेत्रों में पहुँचायी। विकलांगो की सहायतार्थ विभिन्न स्थानों पर श्रीमद्भागवत की तथा प्राप्त सहयोग राशि विकलांगो को समर्पित भारत की सबसे बड़ी संस्था नारायण सेवा संस्थान, उदयपुर को समर्पित की।

एक बार ब्रजभूमि गोवर्धन में परिक्रमा करते समय ठाकुर जी ने गौ माताओं को लोगों की जूठन खाते देखा तो उनका हृदय रो पड़ा। उसी दिन आपने गौ सेवा का संकल्प ले लिया। वर्ष 2009 में गोवर्धन के निकट नीमगाँव में नवनिर्मित ''समर्पण गौशाला'' का भव्य उद्घाटन हुआ। 5 एकड़ में बनी इस गौशाला में दूध न देने वाली वृद्ध, बीमार एवं असहाय गायों की सेवा की जाती है।

आपके द्वारा भारत के सभी प्रमुख तीर्थों में एवं सम्पूर्ण भारत में अप्रैल 2015 तक श्रीमद्भागवत जी के 313 आयोजन सम्पन्न हो चुके हैं। इसके अलावा आपने स्विटजरलैण्ड, इटली, फ्रांस, स्पेन, लन्दन, दुबई व अफ्रीका में भी श्रीकृष्ण कथा रस वर्षा की। यूरोप के प्रसिद्ध M.S.C. क्रूज पर भी आपने मई 2013 में कथा की।

वर्ष 2010 में सिंगापुर, थाइलैण्ड, मलेशिया में सागर के मध्य स्टार क्रूज वर्गों पर आपके द्वारा श्रीकृष्ण कथा का भव्य आयोजन किया गया।

वृन्दावन धाम में परिक्रमा मार्ग स्थित श्री राधा माधव धाम पर आप समय-समय पर साधु सेवा व सत्संग आयोजित करते रहते हैं।



शिव स्तुति

कैलाशी काशी के वासी, अविनाशी मेरी सुधी लीजो,
सेवक जान सदा चरणन को, अपनो जान कृपा कीजो।
अभयदान दीजो प्रभु मोहे, सकल सृष्टि के हितकारी,
भोले नाथ तुम भक्त निरंजन, भव भय भंजन शुभकारी।
श्री भोलेनाथ ॥ 1 ॥

दीनदयाल कृपाल कालरिपु अलख निरंजन शिवयोगी,
मंगल रूप अनूप छबीले अखिल भुवनके तुम भोगी।
बांबो अंग रंग रस भीनों उमा वदन की छवि न्यारी॥
श्री भोलेनाथ ॥ 2 ॥

असुर निकंदन सब दुखभंजन वेद बखाने जग जाने,
रुण्डमाल गलव्याल भालशशि नीलकण्ठ लख मनमाने।
गंगाधर त्रिशूलधर विषधर बाघांबरधर महिधारी॥
श्री भोलेनाथ ॥ 3 ॥

यह भवसागर अति अगाध है, पार उतर कैसे सूझे,
या में ग्राह मगर बहु कच्छप यह मारग कैसे बूझे।
नाम तुम्हारा नौका निर्मल, तुम केवट शिव अधिकारी॥
श्री भोलेनाथ ॥ 4 ॥

मैं जानूं तुम निपट सयाने अवगुण मेरे सब ढकियो,
सब अपराध क्षमाकर शंकर किंकर की विनती सुनियो।
तुम तो जग के कल्पतरू हो हम हैं प्राणी संसारी॥
श्री भोलेनाथ ॥ 5 ॥



शिव स्तुति



धन्य धन्य भोलेनाथ बांट दिये, तीनों लोक इक पल भर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भू, भरो खजाना पल भर में॥टेर॥
प्रथम वेद ब्रह्मा को दे दिया, बने वेद के अधिकारी।
विष्णु को दे दिया चक्र सुदर्शन, लक्ष्मी सी सुन्दर नारी॥
इन्द्र को दे दिया इन्द्रासन, और ऐरावत सा बलकारी।
कुवेर को दे दिया आपने, सारी सम्पत्ति का अधिकारी॥
अपने पास में कुछ नहीं रखा, मग्न रहे बाघाम्बर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भू, भरो खजाना पल भर में॥1॥
अमृत तो देवताओं को दे दिया, आप हलाहल पान किया।
ब्रह्मज्ञान दे दिया उसी को, जिसने तुम्हारा ध्यान किया॥
भगीरथ को दे दी गंगा, सब जन ने स्नान किया।
बड़े-बड़े महापापियों को तारा, पल भर में कल्याण किया॥
आप नशे में मस्त रहो, पिवो भंग नित खप्पर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भू, भरो खजाना पल भर में॥2॥
रावन को लंका दे देनी, बीस भुजा दस शीश दिए।
रामचन्द्र को धनुष बाण, और हनुमत को जगदीश दिए॥
मन मोहन को दे दी मोहनी, और पीताम्बर चीर दिए।
मुक्त हुए काशी के वासी, भक्ति में जगदीश दिए॥
आप नशे में मस्त रहो, पिवो भंग नित खप्पर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भू, भरो खजाना पल भर में॥3॥
नारद को वीणा दे दीना, और गन्धर्वों को राग दिया।
ब्राह्मण को कर्मकाण्ड, और सन्यासी को त्याग दिया॥
जिस पर तुमरी कृपा भई, उसी को अनगन राग दिया।
जिसने ध्याया उसी ने पाया, महादेव तेरे वर में॥
आप नशे में मस्त रहो, पिवो भंग नित खप्पर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भू, भरो खजाना पल भर में॥4॥

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

श्रीशिव कथा सार

सम्पूर्ण ग्यारह खंड की कथा

संकलनकर्ता

बाबूलाल अग्रवाल प्रियदास

मो. 9719092921



प्रेरणा स्तोत्र

परम श्रद्धेय पं० संजीव कृष्ण ठाकुरजी

वृन्दावन वाले

:: प्रकाशक ::

पंकज प्रकाशन

सतघड़ा मथुरा (उ.प्र.)–281001

मो. 9837048889, 0565&2401130

मूल्यः 500/-

विषय-सूची

॥ॐ नमः शिवाय॥

श्री शिव कथा सार

'श्री गुरुचरणकमलेभ्यो नमः'

चौ०—मंगल भवन अमंगल हारी। बन्दउँ शिवा सहित त्रिपुरारी।
जो कोई इनके चरनन ध्यावे। राम भक्ति निश्चय वो पावे॥
जय गणेश रिधि सिधि के दाता। विघ्न विनाशक बुद्धि प्रदाता॥

॥ॐ नमः शिवाय॥

चौ०—ऐहि महँ-शिवहि नाम शुभ पावन। नाम अखिल अघ पुंग नशावन॥1॥
जय-जय शंकर जय त्रिपुरारी। जय अध पुरुष जयति अध नारी॥2॥
आध धवल तन आधा गोरा। आध सहज कुच आध कटोरा॥3॥
आध हड़माल आध गज मोती। आध चानन सोहे आध विभूती॥4॥
आध चेतन मति आधा भोरा। आध पटोर आध मुँज डोरा॥5॥
आध जोग अध योग विलासा। आध पिधान आध नग बासा॥6॥
आध चानन अघ सिंदूर शोभा। आध विरूप आध जग लोभा॥7॥
भये कवि रतन विधाता जाने। दुइ कए बाँटल एक पराने॥8॥
जय-जय-जय शिव अवढर दानी। आषुतोश भक्तन रति मानी॥9॥

कुछ भी स्थिर नहीं है, इसलिए—

मोह छाँड़ मन-मीत! प्रीत सों चन्द्र चूड़ भज।
सुरसरिता के तीर धीर धर दृढ़ आसन सज॥
शम, दम, भोग, विराग त्याग, तप को तू अनुसरि।
वृथा विषय बक़वाद स्वाद सब ही तू परिहरि॥
थिर नहीं तरंग बुदबुद तड़ित, अगिन शिखा पन्नग सरित।
यों ही तन जोवन घन अथिर, चल दलदल कैसे चरित॥



❀ स्तुति ❀

(तर्ज-पवन करै सोर)

हे अवढ़रदानी शंकर, आसुतोष मन मोर।
शरण पड़ा मैं तेरी, विनय करूँ करजोर ॥टेक ॥
शुद्ध सच्चिदानंद सदाशिव, विश्वमूर्ति मंगलमय अज।
उमापतिजन आश्रय, कलुषित उरबसि रहे चोर ॥1 ॥ हे अवढ़रदानी..
कंठ नील माथे चन्द्र जो सोहै, कर त्रिशूल अरु डमरू मोहै॥
छवि कर्पूरगौर शरीरा, सर्प लपेटें चारों ओर ॥2 ॥ हे अवढ़रदानी...
हे परमात्मा गल मुंडनमाला। गंग सोह रही जटा विशाल॥
तन पर भस्म रमाये, वृषभ सवारी तोर ॥3 ॥ हे अवढ़रदानी...
बाघम्बर धारैं अविनाशी। भक्तन तारैं काशीवासी॥
प्रभु त्रिलोचन स्वामी, 'प्रिय' हेरि कृपा की कोर ॥4 ॥ हे अवढ़रदानी...



एहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य शिवहि भगवाना ॥1 ॥

❀ छोड़ि गये सब अपना ❀

तन धन भवन नेह नातों में, भ्रमित संजोये सपना॥
अपना-अपना कहते-कहते छोड़ि गये सब अपना॥
जाने वाले कितने आते, जाने वाले जाते।
आने-जाने का रहस्य क्या कोई कभी बताते॥
आये तपे तीन पन सुख हर्षाये दुःख में रोये।
खोये अपना लक्ष्य, रात-दिन, भवनिधि खोते सोये॥
गाते गीत, मीत माया के, भव रोगों में तपना ॥1 ॥छोड़ि गये सब अपना॥
जो अनित्य आनंद प्रदाता दाता उसे भुलाया।
तन मन भवन नेह नातों में, हँस-हँस गला फँसाया।
जग जागरण हेतु आये थे, विमुख रात दिन सोये।
भक्ति विरक्ति भोग अनुरक्ति चाहिये क्या-क्या संजोये॥
पुनरपिजननं पुनरपि मरणं स्वयं रचाई रचना ॥2 ॥छोड़ि गये सब अपना॥
कौन यहाँ क्या लाया था, देखा क्या कुछ ले जाते।
भूल शूल बन चौरासी का चक्कर रहे लगाते॥
नर तन पाया अब न चूक, भव बन्धन कट जावेंगे।

'शिव' पद वन्दन पद रज चंदन, सतत उर अपनावेंगे॥
छोड़ मोह 'प्रिय' शिव बोले, राम-श्याम जो रसना॥4॥हे अवढ़रदानी॥

'महानुभावो' इस शिव चरितामृत मानस सार में 40 मानस मणियोंसे, शिवांक, शिव पुराणांक, शिव उपासना अंक, शिव पुराण एवं अन्य शिव सम्बन्धित सद्ग्रन्थों से संग्रहीत किया हुआ ये 'मानस सार' है, भूल एवं गलतियाँ होना स्वाभाविक है, अतः पाठक जन सुधार लें। -संग्रहकर्त्ता



'श्रीशिव कथा सार'

प्रथम सोपान

ॐ नमः शिवाय

❃ मंगलाचरण ❃

विनय

सो०— जेहि सुमिरत सिधि होय, श्री गणेश चरनन परहुँ।
विघ्न परै नहिं कोय, चरित कछु शिवके करहुँ॥1॥
सुमिरत भक्ति ऊपजहिं, मन बुद्धि होइ पवित्र।
भोले शंकर के लिखहुँ, कछु संग्रह करे चरित्र॥2॥

❃ शंकर की शंकर-स्तुति ❃

(शिवानद लहरी से)

(प्रातः स्मरणीय श्री मदाद्य शंकराचार्य रचित)

श्लोक—गलन्ती शम्भो! स्वच्चरित सरितः किल्विषरजो
दलन्ती धी कुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम्।
दिशन्ती संसार भ्रमण परितापोप शमनं,
बसन्ती मच्चे तोहृद भुवि शिवानन्द लहरी॥1॥

हे शम्भो! यहाँ शिवानंद लहरी = शिव स्तुतिरूप आनन्द की लहर, आपके अगाध चरितरूपी सरितासे निकलकर (अपने भाव रूप निर्मल जल से अवगाहन करने वालों के) पाप पंक का प्रक्षालन करती हुई तथा भवाटवी भ्रमण जनित

क्लान्तिको शान्त करती हुई मेरी बुद्धि रूपी कुल्या नहर में से होती हुई मेरे हृदयरूपी हृदमें प्रवेशकर सदाके लिये उसीमें स्थिर हो जाय।

प्रमुस्त्वं दीनानां खलु परम बन्धुः पशुपते!
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुस्वमनयोः॥
त्वमैव क्षन्तव्याः शिव! मदपराधाश्च सकलाः
प्रयत्नात् कर्त्तव्यं मदवनप्रियं बन्धु सरणिः॥2॥

हे पशुपति! आप दीनानाथ एवं दीनबन्धु हैं और मैं दीनों का सरदार हूँ क्या ही अच्छा जोड़ बैठा है। बन्धुका कर्त्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धी को सर्वनाश से बचावे। फिर क्या आप मेरे सारे अपराधोंको क्षमाकर मुझे इस घोर भवसागरसे नहीं उवारेंगे? अवश्य उतारेंगे, अन्यथा आप अपने कर्त्तव्यसे च्युत होंगे और आपके 'दीनबन्धु' नाम पर बट्टा लगेगा।

उपेक्षा नो चेत् किं न हरसि भवद्ध्यान विमुखां
दुराशा भूयिष्ठां विधिलिपि मशक्तो यदि भवान्।
शिरस्त द्वैधावं न नु खलु सुवृत्तं पशुपते!
कथं वा निर्बलं करनख मुखे नैव लुलितम्॥3॥

आप मेरा शीघ्र उद्धार नहीं करते, इससे तो यही जाहिर होता है कि आप मेरी उपेक्षा करते हैं, मेरी फरियाद को सुनकर आपके कान पर जूँ नहीं रेंगती; नहीं तो भला अब तक मेरी यह हालत रहती? यदि आप कहें कि भाई हम क्या करें, विधाता ने तुम्हारे कर्म में यही लिखा है कि तुम हमारे ध्यान से विमुख रहकर दुराशाओं से पूर्ण जीवन व्यतीत करो, तो मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप विधाता के लेखको नहीं मेंट सकते, उसके लिखे हुए पर कलम नहीं चला सकते? आपतो कर्तुमकर्तुम न्यथा कर्त्तुं समर्थ हैं, ब्रह्मा विष्णु सब कठपुतली की भाँति आपके इशारे पर नाचते हैं। फिर क्या आप मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकते? यदि आप कहें कि ब्रह्माजी के सामने मेरी पेश नहीं आती, तो मैं आपसे पूछता हूँ, क्या आप उन दिन को भूल गये जब आपने उनका गोल-गोल पाँचवा मुख जो बहुत बढ़चढ़कर बातें कर रहा था, बात की बात में अपने नख के अग्रभागसे ही कलम कर दिया था, और इस प्रकार बेचारे ब्रह्माजी जो आपकी बराबरी करने चले थे, चतुरानन ही रह गये? बस, यह सब बहानेबाजी रहने दीजिये, मैं इस प्रकार भुलावेमें नहीं आनेका। अब तो जिस तरह से भी हो, आपको मेरा उद्धार करना ही होगा। इस बार तो मैं आपसे बाजी लेकर ही मानूँगा, यों सहज में ही नहीं छोड़ने का।

करोमि स्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो!
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति।

पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षि
मृगतासदृष्ट्वा तत्वेदं कथमिह सहे शंकर विभो ॥4 ॥

हे प्रभो ! मैं अपनी पूजा का फल आपसे यही चाहता हूँ कि आप मुझे अपने चरणों से कभी अलग न करें। आपके चरणों से दूर रहकर मैं और तो क्या, ब्रह्मा और विष्णु पद भी नहीं चाहता, क्योंकि ब्रह्मा और विष्णु को भी आपको ढूँढ़ने के लिये क्रमशः हंस और वराह का रूप धारण करना पड़ा; किंतु फिर भी वे आपका पता न पा सके। वह ब्रह्मा और विष्णुपद किस काम का, जिसमें रहकर आपसे बिछोह हो। बाज आया ऐसे बड़प्पन से, मुझे वह नहीं चाहिये, मैं तो छोटे से छोटा होकर आपके चरणों में पड़ा रहना चाहता हूँ। कृपया मुझे वही स्थान दीजिये।

करस्थे हे माद्रौ गिरिश! निकटस्थे धनपतौ
गृहस्थे स्वर्भूजामरस्युरमि चिन्तामणि गणे।
शिरःस्थे शीतांसौ चरणयुगल स्येऽखिल
शुभे कमर्थं दास्येऽहंभवतु भवदर्थं मममनः ॥5 ॥

हे गिरीश ! स्वर्णगिरि (सुमेरु) आपके समीप ही है, करतलगत ही है। मन में आई कि सोना ही सोना, ऐसी दशा में आपको सोने की दरकार तो हो ही नहीं सकती और फिर यदि कोई सोना, आपकी नजर करना ही चाहे तो बेचारा कहाँ तक देगा ? जगतभर का सोना यदि इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह सुमेरु गिरिके एक पासंग में भी नहीं आ सकता। इधर देवताओंके खचाँची कुबेरजी; जो साक्षात् धनपति हैं, आपके बगलमें ही अलकापुरी में रहते हैं। जब चाहा उनसे माँग लिया। जब धनपति आपके पड़ोसी हैं तब आपको धन की भी क्या कमी रह सकती है ? कल्पवृक्षकाम धेनु और चिंतामणियों का ढेर आपके घर में ही मौजूद है क्योंकि रिद्धि-सिद्धि आपकी पुत्र-वधू हैं। वे जब चाहें एक क्षण में दुनियाभरका सामान लाकर जुटा सकती हैं, आपके इशारे भर की देरी है। ऐसी दशा में आपको किसी भी वस्तुका अभाव नहीं हो सकता, जिसकी मैं पूर्ति कर सकूँ। चन्द्रमा तो सुधाकर (अमृतका खजाना है) सदा आपके मस्तक पर ही रहता है और आपके चरण युगल समस्त कल्याणोंके धाम हैं। फिर ऐसी कौन सी वस्तु हो सकती है जो मैं आपकी भेंट करूँ ? और फिर मेरे पास तो मन के सिवाय और कुछ वस्तु है भी नहीं। अतः आप कृपाकर इसीको स्वीकार कीजिये। मैं अपने को इसीसे कृतार्थ समझूँगा।

"सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने,
सामीप्यं शिव भक्तिधुर्यजनता सांगत्य सम्भाषणे।
सालोक्यज्ज चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते!
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन कृतार्थोऽस्यहम् ॥"

हे भवानीपते ! हे स्वामिन् !! मुझे सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य इन

चार प्रकार की मुक्तियों में से एक भी नहीं चाहिये, क्योंकि मुझे ये चारों ही आपकी कृपासे प्राप्त हैं, जब प्रेमपूर्वक मैं आपकी षोडसोपचार से पूजा करता हूँ उस समय मेरी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही तदाकार हो जाती हैं और मुझे अनायास ही सारूप्य सुख का अनुभव होने लग जाता है। शास्त्रोंमें कहा है–**'देवोभूत्वायजेद्वेवन'**। इसी प्रकार जब मैं मस्त होकर आपका नाम संकीर्तन करने लगता हूँ उस समय मुझे सहज में ही आपके सामीप्यका सुख मिल जाता है क्योंकि नाम भी तो आपका ही स्वरूप है। शास्त्रोंने आपमें और आपके नाम में कोई भेद नहीं माना है, भगवान् विष्णु ने तो यहाँ तक कह दिया–

"नाहं वसामि वैकुण्ठं योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ती तत्र तिष्ठामिनारद।"

शिव भक्तोंकी मण्डली में बैठकर आपकी चर्चा और गुणानुवाद करने में मुझे सालोक्य मुक्ति का आनंद मिलता है क्योंकि उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं शिवलोक में ही बैठा हूँ। और जिस समय मैं आपके विराट् रूपका ध्यान करता हूँ, उस समय मैं अपने आपको आपसे अलग नहीं पाता, आपके ही शरीर में समाया हुआ देखता हूँ, उस समय मैं साक्षात् सायुज्य सुख का अनुभव करने लगता हूँ। इस तरह मैं चारों प्रकार की मुक्तियोंका सुख एक ही शरीर से लूट रहा हूँ तब मैं उनमें से किसी एक प्रकारकी मुक्ति को लेकर क्या करूँ? तात्पर्य यह है कि आपकी पूजा, अर्चा, जप, ध्यान, कीर्तन एवं गुणानुवाद में मुझे जो अलौकिक सुख मिलता है, उसकी तुलना मुक्ति-सुख से भी नहीं हो सकती, सांसारिक सुख की तो बात ही क्या है? आपके सच्चे भक्त आपकी भक्ति को छोड़कर मुक्ति भी नहीं चाहते– **"मुक्तिनिरादर भक्ति लुभाने॥"** भक्ति की ऐसी महिमा है। बस, ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे आपकी भक्ति को छोड़कर मुक्ति का कभी ध्यान ही न हो।

नालंवा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते!
पश्यन कुक्षिगतां चराचर गुणांन वाह्यस्थितान।
सर्वामर्त्यपलायनौषध मतिज्वालांकरं भीकरं
निक्षिप्तं गरलं गले न गिलितं नोदगीर्णमेव त्वया॥6॥

हे पशुपते! आपकी दयालुता का क्या कहना! समुद्र से निकले हुए कालकूट महाविषकी प्रलयंकारी ज्वालाओं से भयभीत हो देवता लोग जब आपकी शरण आये तो आप दया परवश हो उस उग्र विषको अपनी हथेली पर रख कर आचमन कर गये। इस प्रकार उसे आचमन तो कर गये, किन्तु उसे मुँह में लेते ही आपको अपने उदरस्थ चराचर विश्व का ध्यान आया और आप सोचने लगे कि "जिस विष की भयंकर ज्वालाओं को देवता लोग भी नहीं सह सके, उसे मेरे उदरस्थ जीव कैसे सह सकेंगे" यह ध्यान आते ही आपने उस विष को अपने गले में ही रोक लिया, नीचे

नहीं उतरने दिया। इस प्रकार आपने उस भयंकर बिष से देवताओं की ही नहीं, अपितु समस्त चराचर जगत की रक्षा की। धन्य है आपकी परदु:ख कातरता को। इसीसे तो आपको '**भूतभावन**' कहते हैं, उसी स्वाभाविक दया से प्रेरित हो आप इस विषय-विषसे जर्जरित संतप्त हृदय की भी सुधि लीजिये, और इसे अपने अभय चरणों की सुखद सुशीतल छाया में रखकर शास्वत सुख एवं शान्ति का अधिकारी बनाइये।

जड़ता पशुता कलंकिता कुटिल चरत्वं चनास्ति मयि देव।
अस्ति यदि राज मौले, भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम्॥7॥

हे राजशिरोमणि (राजाओंके शिर मौर तथा चन्द्रशेखर) मैं न तो जड़-मूर्ख हूँ, न पशु हूँ, न कलंकी हूँ और न वक्रगति हूँ। इन सारे दुर्गुणोंसे मुक्त होने पर भी आप मुझ पर कृपा नहीं करते, इसमें क्या कारण है? यदि आप कहें कि नहीं तुम्हारे अंदर ये सभी दुर्गुण मौजूद हैं, तो मैं कहूँगा कि तब तो मैं आपके अंग का भूषण बनने का विशेष अधिकारी हूँ, फिर आप मुझे इस प्रकार क्यों दुत्कारते हैं? आपने श्री गंगाजी को सिर चढ़ा रखा है, क्या वे जड़-शीतल नहीं हैं, मृग को हाथ में ले रखा है वह भी तो आखिर पशु ही है, चन्द्रमा भी तो कलंकी है, उसे तो आपने अपने मस्तक का मुकुट बना रखा है, और साँप को गले का हार बना रखा है, वह भी तो वक्रगति है। फिर मैंने ही कौन-सा अपराध किया है जिसके कारण आप मुझे अंगीकार नहीं करते? इस प्रकार की विषमता आपको कदापि शोभा नहीं देती। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप इस दीन को अपनाकर इसे सदा के लिये कृतार्थ कर दीजिये। इसे अपने उत्तम अंगोंमें नहीं, तो चरणों में ही लिपटाये रहिये। इसी में यह अपना अहोभाग्य समझेगा।

अरहसि रहसि स्वतंत्र बुद्धया वरि वसितुं सुलभः प्रसन्न मूर्तिः।
अगणित फलदायकः प्रभुर्मेजगदधिको हृदि राजशेखरोऽस्ति॥8॥

हमारे स्वामी राजशेखर (राज राजेश्वर चन्द्रमौलि) की अन्य लौकिक नरेशों के साथ तुलना नहीं हो सकती। उनकी हम अकेले दुकेले अथवा हम सब लोगों के सामने, चाहे जहाँ बिना किसी रुकावट के पूजा कर सकते हैं। उन्होंने अपने को हमारे लिये सर्वदा सुलभ बना दिया है। सुबह, शाम, दिन में, रात में, दोपहर को, आधी रात-जब हमें फुर्सत हो तभी हम उनकी पूजा बिना किसी संकोच के कर सकते हैं, उनकी पूजा के लिये हमें अवसर लेने की आवश्यकता नहीं होती। उनकी पूजा के लिये देशकाल का कोई नियम नहीं है, चाहे जहाँ और चाहे जिस समय हम उनकी (मौसर) पूजा कर सकते हैं।

अन्य राजाओं के साथ हम इस प्रकार का व्यवहार नहीं कर सते। उनकी सेवा सुश्रुषा पहले तो हरेक व्यक्ति कर ही नहीं सकता, विशेष योग्यता एवं विशेष कुल

के लोगों को यह अवसर प्राप्त होता है, फिर उनके सेवक को उनको नियमों में बँधना पड़ता है और निर्दिष्ट स्थान एवं निर्दिष्ट समय में ही निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार उनकी सेवा हो सकती है। निर्दिष्ट प्रणाली एवं निर्दिष्ट समय में जरा भी चूक पड़ने पर उनके कुपित होने का डर रहता है। फिर उसे उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता तथा उनके मिजाज का, जो समय-समय पर बदल सकता है, बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। राजाओं की अव्यवस्थित चित्तता तो प्रसिद्ध है ही। भगवान शंकर के लिये यह बात नहीं है, वे कभी प्रतिकूल तो होते ही नहीं, भक्त पर सदा अनुकूल, सर्वथा प्रसन्न होते हैं। अन्य राजाओं की भाँति उनका रुख देखने की आवश्यकता नहीं होती, वे तो उल्टी हमारी रुचि रखते हैं **"रामसदा सेवक रुचि राखी"** राम उनके स्वामी, सेवक, सखा हैं अत: वे भी रुचि रखते हैं फिर एक बात और है किसी राजा को प्रसन्न कर हम परमित फल ही पा सकते हैं क्योंकि उसके पास जो कुछ है वह परिमित ही तो है उससे अधिक वह कहाँ से देगा ? इसके विपरीत भगवान् शंकर अमित फल के देने वाले हैं और वे और तो और भक्त को अपना स्वरूप तक दे डालते हैं, ऐसे भक्त भावन भगवान को छोड़कर जो दूसरों के मुँह ताकते हैं वे निश्चय ही मंदमति हैं, अतिशय दया के पात्र हैं। अत: सब कुछ छोड़कर आशुतोष भगवान् शंकर की शरण ग्रहण करनी चाहिये। इसीमें जीव का सब प्रकारसे मंगल है।

दोहा— रे मन क्यों भटकत फिरत, करि वा भव को ध्यान।
जानै भव-भय हरनहित, कियो हलाहल पान॥

छप्पय— हर-हर जपिये मंत्रवर पढ़िये शिव सदग्रन्थ।
कीजै शंकर चिंतवन यह ही सच्चा पंथ॥
यह ही सच्चा पंथ सर्व में शम्भु निहारै।
अधिष्ठान शिव सत्य, विश्व अध्यस्त विचारै॥
भोला भूला शम्भु, तभी से फिरता दर-दर।
दर-दर अब मत घूम प्रेम से भजरे हर-हर॥

श्लोक—नित्यं योगिमनः सरोजदल संचार रक्षभरुस्वत्क्रमः,
शम्भो तेन कथं कठोर यमराङ्क वक्षः कवाटक्षतिः॥
अत्यन्तं मृदुलं त्वदङ्घ्रि युगलं हा! मे मनश्चिन्तयत्येतलोचन
गोचरं कुरु विभो! हस्तेन संवाहये॥9॥

हे भगवन! कहाँ तो आपके सुकोमल चरण युगल, जो सदा योगियोंके हृत्पंकजोंमें रमण करते हैं और कहाँ यमराज का कठोर वज्रोपम वक्ष:स्थल, जिसे आपने अपने उन चरणों को प्रहारसे भेदन किया। उस कर्कश आघात से आपके चरणोंको जरूर गहरी चोट आयी होगी। लाइये, उन्हें मुझे सौंपिये, मैं उन्हें सुहलाकर ठीक कर दूँ। (इसी बहाने आपके पैर पलोटने को तो मिलें)

एष्यत्येब जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीतिमद्रक्षायै
गिरिधीम्नि कोमलपद न्यासः पुराऽभ्यासितः॥
नोचेदिव्यगृहान्तेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु प्रायः सत्सु
शिलातलेषु नटनं शम्भो किमर्थं तव॥10॥

नहीं, नहीं मैं भूलता हूँ, मालूम होता है आपको कठोर भूमि पर पाद प्रहार करने आ अभ्यास हो गया है यमराज के वक्षःस्थल को विदीर्ण करके ही आपने संतोष कर लिया हो सो बात नहीं है,अपने तो जानबूझकर कैलाश श्रृंग की कर्कश भूमिपर कोमल पदन्यास का अभ्यास किया है। वह इसलिये कि आपने अपनी सर्वज्ञता के बलसे इस बात का पता लगा लिया था कि आपका एक भक्त अमुक समय में जन्म लेगा और उसकी वज्रतुल्य कठोर हृदय भूमि में आपको विहार एवं पद संचार करना होगा। कहीं उसके कठोर हृदय से आपके कोमल चरणों को चोट न पहुँचे, इस भय से आपने पथरीली भूमि पर हल्के-हल्के कदम रखकर नृत्य करने का युगों पहले अभ्यास कर लिया था, नहीं तो भला, दिव्य मणि भवन के सुकोमल फर्श, मखमली गद्दों तथा फूलों की सेज को छोड़कर पथरीली जमीन पर घूमने का किसको शौक होगा? धन्य है आपकी भक्त वत्सलता एवं दूरदर्शिता, ऐसे दयालु स्वामी को छोड़कर रे पापी मन! तू कहाँ भटकता फिरता है?

असनं गरलं फणी कलापो, वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
ममदास्यसि किंकिमस्ति शम्भो तव पदाम्बुज भक्ति मेव देहि॥।1॥

परंतु हे शम्भो! मैं आपसे क्या माँगू? आपके पास देने लायक है ही क्या, जिसे आप मुझे दोगे? खाते तो हैं आप जहर, अधिक हुआ तो मुट्ठी भर भाँग भकोस ली अथवा आक धतूरा चबा लिया जिसके खाने से मनुष्य अब्बल तो बचै ही नहीं और किसी तरह बच जाय तो पागल हुए बिना कदापि न रहे, फिर भला आपसे कोई खाने की चीज तो क्या माँगे? मनुष्य को ही क्या प्रत्येक प्राणी को प्रथम आवश्यकता होती है भोजन की, पेट भर जाने पर ही और बातों की सूझती है तो वह आवश्यकता तो आपसे किसी को पूरी होने की नहीं।

भोजन के बाद दूसरा नम्बर आता है वस्त्र का। उसके लिये तो आप दिगम्बर प्रसिद्ध ही हैं, कभी कोई भूला भटका, आफत का मारा आपसे मिलने आ गया तो भले ही शर्म के मारे चमड़े का टुकड़ा लंगोटी की जगह लपेट लिया नहीं तो वहीं नंगधड़ंग घूमते रहते हैं इस तरह कपड़े की मुराद भी पूरी नहीं। बदन ढ़का हुआ होने पर गहने आदि से उसे सजाने की फिक्र होती है सो गहने आपने साँपों के धारण कर रखे हैं जिन्हें धारण करने की बात ही कौन करे, दर्शन होते ही होश-हवाश कूच कर जाते हैं और किसी तरह उनसे प्राण बचाने की चिंता होती है ऐसी दशा में कोई अभागा ही होगा जो आपसे गहनों का सवाल करेगा। घर में खाने-पहनने को भरपूर, पास

में पैसों की इज्जत हो जाती है तब मनुष्य को पाँव पियादे चलने में शर्म आने लगाती है कि चार आदमी हमें पैदल चलते क्या कहेंगे? उस समय मनुष्य को सवारी की जरूरत होती है सो सवारी आपकी साँड है जिसके पास जाने में ही भय मालूम होता है कि कहीं वह सींगन भोंक दे। सारांश यह कि आपके पास सांसारिक कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो आप किसी को दे सकें। इसलिये मैं आपसे केवल एक वस्तु माँगता हूँ जिसे देने में आपको कभी आनाकानी हो ही नहीं सकती और जिसका आपके पास अटूट भंडार है वह है आपके चरणार बिन्द की अनन्य एवं अनपायिनी भक्ति। आशा है मेरे इस छोटे से सवाल को आप अवश्य पूरा करेंगे और अपनी दैन से मुझे वंचित नहीं करेंगे। (ग्यारह श्लोकों में ग्यारह रुद्रों से विनती की गयी है, अर्थात् शंकर जी से)

❋ ब्रह्मा-विष्णुकृत शिव स्तुति ❋

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्त तेजसे। नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः॥
नमस्ते हृस्म्भदादीनां भूतानां प्रभवाय च। वेदकर्मा वदाता नां द्रव्याणां प्रभवे नमः॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः। नमो व्रतानां पतये मंत्राणां पतये नमः॥
अप्रमेयस्य तत्वस्य यथा विदमः स्वशक्तितः। कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुते॥

ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बोले-भगवन् आप सुव्रत और अनंत तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्व के बीज स्वरूप और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम सभी भूतों के उत्पत्तिस्थान और वेदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोंको सम्पन्न कराने वाले, समस्त द्रव्यों के स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप विद्या के आदि कारण और स्वामी हैं आपको नमस्कार है। आप व्रतों एवं मंत्रों के स्वामी हैं आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्व हैं। अपनी शक्ति से जैसा हमने आपको समझा, वैसा ही आपके अपार माहात्म्य का यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हो। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अजेय और अगम्य हैं, आपको नमस्कार है (वायु पुराण, पूर्वा०)

❋ स्मरण-स्तवन ❋

भगवान शिव को नमस्कार

(ॐ) नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च भयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥1॥ *(यजुर्वेद) 16/41*

कल्याण और सुख के मूल स्रोत भगवान शिव को नमस्कार है, कल्याण के विस्तार करने वाले तथा सुख के विस्तार करने वाले भगवान् शिव को नमस्कार है, मंगल स्वरूप और मंगलमयता की सीमा भगवान् शिव को नमस्कार है।

(ॐ) ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्व भूतानां ब्रह्माधिपति ब्रह्मणोऽधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥2॥

जो सम्पूर्ण विद्याओं के ईश्वर, समस्त भूतों के अधीश्वर, ब्रह्मदेव के अधिपति, ब्रह्मबलवीर्य के प्रति पालक तथा साक्षात् ब्रह्मा एवं परमात्मा हैं, वे सच्चिदानन्दमय नित्य कल्याण स्वरूप शिव मेरे बने रहें।

(ॐ) ततुरुषाय विदमहे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रवोदयात्॥3॥

तत्पदार्थ-परमेश्वररूप अन्तर्यामी पुरुष को हम जानें, उन महादेव का चिंतन करें, वे भगवान् रुद्र हमें सद्धर्म के लिये प्रेरित करते रहें।

(ॐ) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥4॥

जो अघोर है, घोर है, घोर से भी घोरतर है और जो सर्वसंहारी रुद्ररूप है आपके उन सभी स्वरूपों को मेरा नमस्कार हो।

(ॐ) वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥5॥

प्रभो! आप ही वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र काल, कलविकरण, बलविकरण, बल, बलप्रमथन, सर्वभूतदमन तथा मनोन्मन आदि नामोंसे प्रतिपादित होते हैं, इन सभी नाम रूपों में आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है।

(ॐ) सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥6॥

मैं सद्योजात शिव की शरण लेता हूँ। सद्योजात को मेरा नमस्कार है, किसी जन्म या जगत में मेरा अतिभव-पराभव न करें। आप भवोद्भव को मेरा नमस्कार है।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा। भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥7॥

हे रुद्र! आपको सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि और दिन में भी नमस्कार है। मैं भवदेव तथा रुद्रदेव दोनों को नमस्कार करता हूँ।

यस्य निःश्वासितं वेदा योवेदेभ्योऽखिलं जगत।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥8॥

वेद जिनके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदों से सारी सृष्टि की रचना की और जो विद्याओंके तीर्थ हैं ऐसे शिवकी मैं वन्दना करता हूँ।

(ॐ) त्रम्बकं यजामहे सुगधिं पुष्टि वर्धनम्।
उर्वारुकमिव-बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥9॥

तीन नेत्रों वाले, सुगन्धयुक्त एवं पुष्टि के बर्द्धक शंकर का हम पूजन करते हैं, वे शंकर हमको दु:खों से ऐसे छुड़ावें जैसे खरबूजा पककर बेलसे अपने आप टूट जाता है, किंतु वे शंकर हमें मोक्ष से न छुड़ावें।

सर्वोवै रुद्रस्तस्मै रुद्रायनमो अस्तु। पुरुषो वैरुद्धः सन्महोनमोनमः।
विश्वं भूतं भुवनं चित्रंबहुधा जातं जायमानं च यत्।
सर्वे ह्येषरूद्रस्तस्मै रुद्धाय नमो अस्तु॥10॥

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरों में जीवरूपसे प्रविष्ट हैं, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्मलोक में ब्रह्मरूपसे, प्रजापतिलोक में प्रजापतिरूपसे, सूर्यमण्डल में वैराट रूपसे तथा देह में जीवरूपसे स्थित हुआ है, उस महान् सच्चिदानन्द स्वरूप रुद्रको बार-बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत जो विद्यमान है तथा होगा, वह सब प्रपंच्च रूप की सत्तासे भिन्न नहीं हो सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्रके प्रति प्रणाम हो।

नमस्त्रैलोक्यनाथाय भक्तिगम्यायवेधसे।
पूर्णयानन्त मुदाय क्षोविष्ठाय नमो नमः॥11॥

तीनों लोकोंके नाथ को नमस्कार है। भक्ति द्वारा प्राप्त, वेधस (सृष्टिकर्ता), पूर्ण अनंत मुद्रा वाले तथा अत्यन्त सूक्ष्म को नमस्कार है, नमस्कार है। (यहाँ भी ग्यारह श्लोक लिखकर ग्यारह रुद्रों को नमस्कार किया गया है)

❃ प्रार्थना ❃

1. **नमस्ते सते ते जगत्कारणाय, नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।**
नमोऽद्वैत तत्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शास्वताय॥1॥
2. **त्वमेकं शरण्यं, त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।**
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृप्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥2॥
3. **भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।**
महोच्यैः पदानां नियन्तृत्वमेकं परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥3॥
4. **वयं त्वां स्मरामो वयं त्वांभजामो, वयं त्वां जगत्साक्षि रूपम् नमामः।**
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं, भवाम्भोधिपोतं शरण्यं ब्रजामः॥4॥
5. **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।**
तहं देवमात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥5॥
6. **ॐ नमः परमार्थैक रूपाय परमात्मने,**
स्वेच्छा भासिता सत्यभेदमित्राय शम्भवे॥6॥
7. **शिवस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।**
एकएव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः॥

नमश्चर्म निवासाय, नमस्ते पीतवाससे,
नमस्तु लक्ष्मीपतये उमायापतये नमः ॥7॥

8. तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात विदाम देवं भुवनेश मीडयम् ॥8॥

9. सर्वगं सर्व कर्तारं सर्व सर्वाव भास्कम्।
सर्वावलम्बनं शान्तं शिवंपूर्ण भजाम्यहम् ॥
विना यस्य कृपा नैव जीवानां मोक्ष सम्भवः
कथंतं शंकरं त्यक्त्वादेहं मोहमयं भजे ॥9॥

10. नमः प्रणव वाचाय, नमः प्रणव लिंगिने,
नमः सृष्टि पादि कर्तेचनमः पंचमुखायते ॥10॥

11. वन्दे देव उमापतिं सुरगुरुं बन्दे जगत कारणं,
वन्दे पत्रगभूषणधरं बन्दे पशुनाम् पतिम् ॥
बन्दे सूर्य शशांक बन्हि नयनं बन्दे मुकन्दं,
प्रियम् बन्देभक्तजनाश्रयस्यवरदं वन्दे शिवं शंकरम् ॥

(ॐ नमः शिवाय)

❋ श्री गुरु वन्दना ❋

1. गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥1॥

2. अखण्ड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितम् येनः तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥2॥

3. अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानांज्ञनशलाकया।
चक्षुर्नमीलितम् येनः तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥3॥

4. वेदान्त वाक्य पुष्पेभ्यो, ज्ञानामृत मधूतमम्।
उज्जाहारा लिवद्योनः तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥4॥

5. मदैक प्राणनाथाय, मदैकत्राण कारिणे।
मत्यर्वश्व पदाम्बजाय तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥5॥

6. यस्य वाक्य सकलं हन्ति विषं संसार संज्ञकम्।
स्वेष्ट देव स्वरूपिणे तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥6॥

7. नित्यं शुद्धं निराकारं निर्विकार निरंजनम्।
नित्यं बोधं चिदानंदं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥7॥

8. ब्रह्मानंद परम सुखदं तत्वमस्यादि लक्ष्यम्।
द्वन्दातीतं गगन सदृशं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥8॥

9. सद्गुरुं नित्यं विमलचलम्, सर्वदा साक्षि भूतां।
भावातीतं त्रिगुणरहित तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥9॥

10. गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवितम्।
गुरोः परंतरंनास्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

11. ध्यानं मूलं गुरोमूर्ति, पूजामूलं गुरो पदम्।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥11॥

❋ श्री शिवाष्टक ❋

जय महेश जग बन्धु नित्य त्रिभुवन अभयंकर।
जय राम प्रिय सर्व सर्वदा जय शिव शंकर।
व्योमकेश सर्वेश त्रिपुर दनुजेश विनाशन।
जय मंगलमय मूर्ति शम्भु जय भव भय नाशन॥1॥

जय जय चंद्र ललाम कुण्डली कुण्डल धारी।
जय प्रामथादिक भूत-प्रेत गुह्यक सुखकारी॥
प्रलियाचल नन्दिनीश मुद मंगल दाता।
जय गणेश शिखिवाहन पितु जय निज जन त्राता॥2॥

परम रम्य कैलाश बिहारी वृषध्वज जय।
कृतिवास जय नीलकंठ जय-जय मृत्युंजय॥
शुद्ध सच्चिदानन्द सदाशिव शक्तिनाथ जय।
जय भैरव दास कंठवरद जय जय तेजोमय॥3॥

सर्वदेव अधिदेव निरंजन जय मदनान्तक।
निराधार निष्पाप निरंकुश जय शमनान्तक॥
निर्गुण निर्मद निष्कलंक निष्काम त्रिलोचन।
काल-काल कर्पूर गौर वपु भव-भय मोचन॥4॥

पंचानन फणिराज विभूषन जय गंगाधर।
जय कमलासन श्रीपति पूजित जय गुण सागर॥
डमरूनाद प्रिय, भृंगी प्रिय आनन्दराशि हर।
भक्तप्रिय शवभस्मप्रिय रजनीश कलाधर॥5॥

महाकाल श्री सोमनाथ नागेश जटाधर।
वैद्यनाथ केदार सनातन ईश दया कर॥
विश्वेश्वर रामेश्वर सर्वेश्वर काशीश्वर।
वाणेश्वर श्री वामदेव पशुपति नंदीश्वर॥6॥

अंधक रिपु शिति कंठ पिनाकी जय गिरीश जय।
शूलपाणि मुंडमहादेव जय-जय करुणामय॥
निष्प्रपंच्च निर्द्वन्द कपाली, निर्मल निर्मम।
ज्ञान रूप वेदान्त सार केंवल्यद अनुपम॥7॥

पारिजात वरमाल विभूषित धनद मित्रवर।
अष्टसिद्धि नव निद्धि परिसेवित भर्ग महेश्वर॥
खण्ड परशु ईशान चन्द्रशेखर निर्धनधन (प्रसन्नमन)।
उग्र रुद्र श्री कंठनील लोहित शुभ दर्शन॥8॥

सवैया— शंकर नाम सुधासम है, भव भूति भरै भव भावन शंकर।
शंकर हेतु तजै यति धामहुँ, शंकर परवत मार अशंकर॥
शंकर ही जन शंकर हैं, पुनिकाल भयंकर लोकव शंकर।
शंकर को सब देवभजैं, सरयू कवि किंकर के शिवशंकर॥
(जय भोलेनाथ की)

❃ श्री शिव प्रातः स्मरण स्त्रोत्रम् ❃

श्लोक—प्रातःस्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गंगाधरं वृषभ वाहन मम्बिकेश्।
खट्वांङ्गशूल वरदाभयहस्त मीशं संसार रोग हरमौषधमद्वितीयम्॥1॥

जो सांसारिक भय को हरने वाले और देवताओं के स्वामी हैं जो गंगाजी को धारण करते हैं जिनका वृषभ वाहन है। जो अम्बिका के ईश हैं तथा जिनके हाथ में खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभयमुद्रा है, उन संसार रोग को हरने के निमित्त अद्वितीय औषध रूप 'ईश'—महादेव जी का मैं प्रातः समय में स्मरण करता हूँ।

2. प्रातर्नमामि गिरिशं गिरजार्धदेहं सर्गस्थिति प्रलयकारणमादि देवम्।
विश्वेश्वरं विजित विश्वमनोऽभिरामं संसार रोग हरमौषधम द्वितीयम्॥2॥

भगवती पार्वती जिनका आधा अंग है, जो संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण हैं, आदि देव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्व विजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोग को नष्ट करने के लिये अद्वितीय औषध रूप उन गिरीश—शिव को मैं प्रातः काल नमस्कार करता हूँ।

3. प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्त वेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं संसार रोग हरमौषधम द्वितीयम्॥3॥

जो अंत से रहित आदि देव हैं, वेदान्त से जानने योग्य पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित छः अभावों से शून्य, संसार गेग को हरनेके निमित्त अद्वितीय औषध हैं उन एक शिवजी को मैं प्रातःकाल भजता हूँ।

4. प्रात:समुत्थाय शिवं विचिन्त्यश्लोकत्रयं येऽनुदितं पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं हित्वा पदंयान्ति तदेव शम्भोः ॥4॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यानकर प्रतिदिन इन तीनों श्लोकोंका पाठ करते हैं वे लोग अनेक जन्मों के संचित दुःख से मुक्त होकर शिवजी के उसी कल्याणमय पद को पाते हैं।

कवित्त—1. तीन मुख अग्नि, नैन तीसरे में भ्राजमान,
पाँचमुख आपु, चारि मुख के कुमार हैं।
सुत षटमुख गजमुख महामान्य दोऊ,
दसमुख दास और सहसमुख हार हैं॥
शशि सुललाट शशिमुखी शिवा गोद लसै
हिमवती हिममुखी गंगाजटाद्वार है।
कपि मुख वरदाजु एक बरदाई सबै,
क्यों ना सदा सुखी बन्दौ शंकर उदार है॥1॥

2. काशी के वसैया पर काशी के दिवैया नाथ,
भंग के छनैया अरु गंग के धरैया तुम।
वेष के अमंगल हो, जंगल के वासी प्रभु,
तोहू महामंगल हो मंगल करैया तुम॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागर तें,
केतिक सहारे ऐसे विपद हरैया तुम।
ऐहो त्रिपुरारी, अघहारी, सुखकारी शिव,
'प्रिय' परयो द्वारे आज लाज के रखैया तुम॥2॥

3. प्रार्थना यही है शिव, आके उर अंतर में,
शक्ति मेरे हृदयासन पै आसन जमाइये।
बैठे छल छद्म द्वेष वेष बहुभाँति किये,
तान कर त्रिशूल उन सबको भगाइये ॥
श्रद्धा की धरती पै बोकर विश्वास बीज,
सेवा सलिल सों सींच सुमन खिलाइये।
करता उत्पात मन मानतन नेंक बात,
नाथ ताहि मारि 'प्रिय' सिंधु में डुबाइये॥

"ॐकारं बिन्दु सयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः कामदं मोक्ष दश्चैव ॐकाराय नमो नमः॥"

॥ जै श्री शंकर॥



❋ तं शकरं शरणदं व्रजामि ❋

श्लोक—कृतनस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता
कृतस्य च तथा सुख दुःख हेतुः।
संहार हेतु यः पुनरन्त काले तं शकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥

जो चराचर प्राणियों सहित इस सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करने वाले हैं, उत्पन्न हुए जगत के सुख-दुःख में एकमात्र कारण हैं, तथा अनंत काल में जो पुन: इस विश्व के संहार में भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

यं योगिनो विगत मोह तमोरजस्का भक्त्वैकतान मनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमित दिव्य भावं, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥2॥

जिनके हृदय से मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, भक्ति के प्रभावसे जिनका चित्त भगवान् के ध्यान में लीन हो रहा है, जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं और जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, ऐसे योगी पुरुष अपरिमेय दिव्यभाव से सम्पन्न जिन भगवान् शिव का निरंतर ध्यान करते रहते हैं, उन शरण दाता भगवान श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्यमुखं बद्धवा सदाप्रियतमां शिरसा बिभर्ति।
यश्चार्ध देह मददात् गिरिराजपुत्र्यै, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥3॥

जो सुन्दर किरणों से युक्त निर्मल चन्द्रमा की कला को जटाजूट में बाँधकर अपनी प्रियतमा गंगाजीको मस्तक पर धारण करते हैं जिन्होंने गिरिराज कुमारी उमा को अपना आधा शरीर दे दिया है, उन शरणदाता भगवान श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

योऽयं सकृद्विमलचारु विलोल तोयां गगां महोर्मि विषमां गगनात्पतन्तीम्।
मूर्ध्नाऽऽददे स्वजमिव प्रतिलोलपुष्पां, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥4॥

आकाशसे गिरती हुई गंगा को, जो स्वच्छ सुंदर एवं चंचल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची-ऊँची लहरों से उल्लासित होने के कारण भयंकर जान पड़ती थीं जिन्होंने हिलते हुए फूलों से सुशोभित माला की भाँति सहसा अपने मस्तक पर धारण कर लिया, अशरणदाता भगवान श्रीशंकर की मैं शरण लेता हूँ।

कैलाश शैल शिखरं प्रतिकम्प्यमानं कैलास शृङ्गसदृशेन दशाननेन।
यः पादपद्मपरिवादन माद्धानस्तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥5॥

कैलाश पर्वत के शिखर के समान ऊँचे शरीर वाले दश मुख रावण के द्वारा हिलायी जाती हुई कैलाश गिरि की चोटी को जिन्होंने अपने चरण कमलों से ताल देकर स्थिर कर दिया, उन शरणदाता भगवान् शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

येनासकृद् दितिसुताः समरे निरस्ता विद्याधरोरगणाश्च वरैः समग्राः।
संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षास्तं, शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥6॥

जिन्होंने अनेकों बार दैत्यों को युद्ध में परास्त किया है और विद्याधर नागगण तथा फल-मूल का आहार करने वाले सम्पूर्ण मुनिवरों को उत्तम वर दिये हैं, उन शरणदाता भगवान श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

दग्ध्वाध्वरं च नयने च तथा भगस्यपूष्णस्तथा दशनपंक्तिम पात यच्चत्वम्।
तस्तम्भ यः कुलिश युक्त महेन्द्रहस्तं, तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि॥7॥

जिन्होंने दक्ष का यज्ञ भस्म करके भग देवता की आँखें फोड़ डालीं और पूषा के सारे दाँत गिरा दिये तथा बज्र सहित देव राज इन्द्र के हाथ को भी स्तम्भित कर दिया—जड़वत निश्चेष्ट बना दिया, उन शरणदाता भगवान श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

एनस्कृतोऽपि विषयेष्वपि सक्तभावा ज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः।
यं संश्रिताः सुखभुजः पुरुषा भवन्ति, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥8॥

जो पाप कर्म में निरत और विषयासक्त हैं, जिन्होंने उत्तम ज्ञान, उत्तम कुल, उत्तम शास्त्रज्ञान और उत्तम गुणों का भी अभाव है-ऐसे पुरुष भी जिनकी शरण में जाने से सुखी हो जाते हैं, उन शरणदाता भगवान श्रीशंकर की मैं शरण लेता हूँ।

अत्रि प्रसूति रविकोटि समान तेज्यः संत्रासनं विबुधदान बसन्तमानाम्।
यः कालकूटमपिबत् समुदीर्णवेगं, तं शंकरं शरणदं शरण बजामि॥9॥

जो तेज में करोड़ों चन्द्रमाओं और सूर्यों के समान हैं जिन्होंने बड़े-बड़े देवताओं तथा दानवों का भी दिल दहला देने वाले काल कूट, नामक भयंकर विष का पान कर लिया था उन प्रचंड वेगशाली शरणदाता भगवान् शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुतां च सषणमुखानां योऽदाद्वरांश्च बहुशो भगवान् महेशः।
नन्दिं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार, तं शंकरं शरणांद शरणं ब्रजामि॥10॥

जिन भगवान् महेश्वर ने कार्तिकेय के सहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गणों को अनेकों बार वर दिये हैं तथा नंदी का मृत्युके मुखसे उद्धार किया, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

आराधितः सुतपसा हिमवत्रि कुंजो धूम्रव्रतेन मनसापि परैरगम्यः।
संजीवनी समददाद् भृगवे महात्मा, तं शांकरं शरणदं शरणं ब्रजामि॥11॥

जो दूसरे के लिये मन से भी अगम्य हैं, महर्षि भृगुने हिमालय पर्वत के निकुंज में होम का धुँआ पीकर कठोर तपस्या के द्वारा जिनकी आराधना की थी तथा जिन महात्मा ने भृगु को (उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर) संजीवनी विद्या प्रदान की, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

क्रीड़ार्थमेव भगवान् भुवनानि सप्त नानानदी विहग पादपमण्डितानि।
स ब्रह्मकानि व्यसृजत् सुकृताहितानि तं शरणं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥13॥

जिन भगवान् ने अपनी क्रीड़ा के लिये ही, अनेकों नदियों, पक्षियों और वृक्षों से सुशोभित एवं ब्रह्माजी से अधिष्ठित सातों भुवनों की रचना की है तथा जिन्होंने सम्पूर्ण लोकों को अपने पुण्य पर ही प्रतिष्ठित किया है, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

यस्याखिलं जगदिंदवशवर्ति नित्यंयोऽष्टाभिरेव तनुमिर्भुवनानि भुङ्क्ते।
यः कारणं सुमहतामपि कारणानां, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥14॥

यह सम्पूर्ण विश्व सदा ही जिनकी आज्ञा के अधीन है, जो (जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु और प्रकृति-इन) आठ विग्रहों से समस्त लोकों का उपभोग करते हैं तथा बड़े से बड़े कारण तत्वों के भी महाकारण हैं, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

शंखेन्दु कुन्दधवलं वृषभ प्रवीरमारुहय यः क्षितिधरेन्द्र सुतानुयातः।
यात्यम्बरे हिम विभूति विभूषितांगस्तं, शंकरं शरणंद शरणं ब्रजामि ॥15॥

जो अपने श्री विग्रह को हिम और भस्म से विभूषित करके शंख, चन्द्रमा और कुंद के समान श्वेत वर्ण वाले, वृषभ श्रेष्ठ नंदी पर सवार होकर गिगिराज किशोरी उमा के साथ आकाश में विचरते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

शान्तं मुनि यमनियोग परायणं तैर्भीमैर्यमस्य पुरुषैः प्रतिनीयमानम्।
भक्त्या नतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥16॥

यमराज की आज्ञा के पालन में लगे रहने पर भी जिन्होंने भयंकर यमदूत पकड़कर लिये जा रहे थे तथा जो भक्ति से नम्र होकर स्तुति कर रहे थे, उन शान्त मुनि की जिन्होंने बलपूर्वक यमदूतों से रक्षा की, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

यः सव्यपाणिकमलाप्तनास्खेन देवस्तत् पच्चमं प्रसभमेव पुरः सुराणाम्।
ब्राह्मं ब्राह्मं शिरस्तरूण पद्मनिभंचर्कत, तं शंकरं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥17॥

जिन्होंने समस्त देवताओं के सामने ही ब्रह्मा जी के उस पाँचवें मस्तक को, जो नवीन कमल के समान शोभा पा रहा था, अपने बायें हाथ के नख से बल पूर्वक काट डाला था। उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या स्तुत्वा चवानिभरमलाभिरतान्द्रिताभिः।
दीप्तैस्तमांसि नुदते स्वकरैर्विवस्वांस्तं, शंकरं शरणदं ब्रजामि ॥18॥

जिन वरदायक भगवान् के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम करके तथा आलस्य रहित निर्मल वाणी के द्वारा जिनकी स्तुति करके सूर्यदेव अपनी उदीप्त किरणों से जगत का अंधकार दूर करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्री शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

कवित्त—1. दरसन करत हरत तीन ताप आप,
परसद पद पाय होत पाप परसन।
परसन काज को, न लेश रहिजात शेष,
शोभित महेश लोक चारि दस हरस न॥
हर सन मानिवे को नैसुक न श्रम 'मान',
प्रेम मान करू मन वाकी ओर करसन।
करसन जलपाय, बेलपात सों अघाय,
सूलनसि मूलसों अमोघ देत दरसन॥1॥

2. दरस किये ते दुःख दारिद् दलित पाँय,
परस किये ते पाप पुंज्ज हरि लेत हैं।
जल के चढ़ाये जम जातना न पाये कहूँ,
चंदन चढ़ाये चित चौगुनों सचेत है॥
कहत कुमर कुंदु कुसुम कनीर कंज्ज,
कनक चढ़ाए देत कनक निकेत है।
त्रिदल चढ़ाये ते त्रिलोचन त्रितापन को,
त्रिगुनी त्रिवैनी की तरंग कर देत है॥2॥

3. शिव के कहेते आराम मिलैं सबही को,
शिव के कहे से होता उद्धार है।
शिव के कहे से दुःख और दारिद्र बहैं,
शिव के भजेते होय भवसिंधु पार है॥
शिव के कहेते सुख अरु सम्पदा मिलत,
शिव के कहे से ही होगा बेड़ा पार है।
सब ही कहैं शिवा-शिव शिव ही है जग सार,
महिमा विचित्र लीला शिव की अपार है॥3॥

4. ईश्वर अनेक पर महेश्वर हो तुम ही नाथ,
देव हैं अनेक एक तुमही महादेव हो।
होकर के एक कभी धरते अनेक रूप,
सृष्टि-कार्य-साधन हित बनते त्रिदेव हो।
नेति-नेति कहकर गुण गावैं नित निगमागम,
विष्णु अरूबिधि भी न पाये तब भेद हो।
मुझ से अधीर-दीन-हीन सठ सेवक के
'प्रिय' तातमात स्वामी सर्वश्व देव देव हो॥4॥

॥ श्री महादेवं शरणं मम॥

परम उपास्य भगवान सदाशिव की महिमा एवं स्तुति

श्लोक 1. एकोहि रुद्रोन द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥1॥

ज़ो अपनी स्वरूपभूत विधि शासन-शक्तियों द्वारा इन सब लोकों पर शासन करता है वह रुद्र एक ही है, (इसलिये विद्वान पुरुषों ने जगत के कारणका निश्चित करते समय) दूसरे का आश्रय नहीं लिया, वह परमात्मा समस्त जीवों के भीतर स्थित हो रहा है। सम्पूर्ण लोकों की रचना करके उनकी रक्षा करने वाला परमेश्वर प्रलयकाल में सबको समेट लेता है।

2. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्धवाभूमि जनयन्देव एकः ॥2॥

सब जगह आँख वाला तथा सब जगह मुख वाला, सब जगह हाथ वाला और सब जगह पैर वाला, आकाश और पृथ्वी की सृष्टि करने वाला (वह) एकमात्र देव (परमात्मा) मनुष्य आदि जीवों को दो-दो बाहों से युक्त करता है तथा (पक्षी-पतंग आदि को) पाँखों से युक्त करता है।

3. सर्वान न शिरो ग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी सभगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥3॥

वह भगवान् सब ओर मुख, सिर और ग्रीव वाला है, समस्त प्राणियों के हृदयरूप गुफा में निवास करता है (और) सर्वव्यापी है, इसलिये वह कल्याण स्वरूप परमेश्वर सब जगह पहुँचा हुआ है।

4. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥4॥

माया तो प्रकृति को समझना चाहिए और मायापति महेश्वर को समझना चाहिए, उसी के अंगभूत-कारण कार्य समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो रहा है।

5. तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिंपतीनां परमंपरस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीडयम् ॥5॥

उस ईश्वरों के भी परम महेश्वर, सम्पूर्ण देवताओं के भी परमदेवता, पतियों के भी परमपति (तथा) समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी (एवं) स्तुति करने योग्य उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (हम लोग) सबसे परे जानते हैं।

6. यो देवानां प्रभश्चोद्धवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्वं सनो बुद्धया शुभयासंयुक्तुम्॥6॥

जो रंग रूप आदि से रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजनवाला होने के कारण, विविध शक्तियों के सम्बन्ध से सृष्टि के आदि में अनेक रंग-रूप धारण कर लेता है तथा अन्त में यह सम्पूर्ण विश्व (जिसमें) विलीन हो जाता है वह परमदेव (परमात्मा) एक (अद्वितीय) है, वह हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

7. याते रुद्र शिवातनूरघोरा पापकाशिनी।
तयानस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥7॥

हे रुद्रदेव! तेरी जो भयानकता से शून्य (सौम्य) पुण्य से प्रकाशित होने वाली (तथा) कल्याणमयी मूर्ति है, हे पर्वत पर रहकर सुख का विस्तार करने वाले शिव! उस परम शान्त मूर्ति से (तू कृपा करके) हम लोगों को देख।

8. यो योनिंयोनमधितिष्ठत्ये कोयस्मिन्निदं सचविचैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीडयं निचायेमांशान्तिमत्यन्त भेति॥8॥

जो अकेला ही प्रत्येक योनि का अधिष्ठाता हो रहा है, जिसमें यह समस्त जगत प्रलयकाल में विलीन हो जाता है और सृष्टिकाल में विविध रूपों में प्रकट भी हो जाता है उस सर्वनियंता, वरदायक, स्तुति करने योग्य परम देव परमेश्वर को तत्व से जानकर (मनुष्य) निरंतर बनी रहने वाली इस (मुक्तिरूप) पर शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

9. सूक्ष्मातिसूक्ष्मंकलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम।
विश्व स्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वाशिवं शान्ति मत्यन्तमेति॥9॥

जो सूक्ष्म से भी अत्यंत सूक्ष्म, हृदय गुहा रूप गुह्य स्थान को भीतर स्थित अखिल विश्व की रचना करने वाला, अनेक रूप धारण करने वाला (समस्त जगत को सब ओर से घेरने वाला है) उस एक अद्वितीय कल्याणस्वरूप महेश्वर को जानकर मनुष्य सदा रहने वाली शक्ति को प्राप्त होता है।

10. स एवकाले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्व भूतेषु गूढः।
यस्मिन युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवंज्ञात्वा मृत्युपाशां ....॥

वही समय पर समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करने वाला, समस्त जगत का अधिपति और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है जिसमें वेदज्ञ महर्षिगण और देवता लोग भी ध्यान द्वारा संलग्न हैं, उस परमदेव परमेश्वर को इस प्रकार मनुष्य मृत्यु के बंधनों को काट डालता है।

11. घृतात्परंमण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितांस्तात्वादेवं मुच्यते सर्व पाशैः॥11॥

कल्याण स्वरूप एक अद्वितीय परमदेव को मक्खन के ऊपर रहने वाले सारभाग की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म और समस्त प्राणियों में छिपा हुआ जानकर तथा

समस्त जगत को सब ओर से घेर कर स्थित हुआ जानकर मनुष्य समस्त बंधनों से छूट जाता है।

12. अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्येविश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै॥12॥

कलिल = दुर्गम संसार के भीतर व्याप्त आदि अंत से रहित समस्त जगत की रचना करने वाले अनेक रूपधारी तथा समस्त जगत को सब ओर से घेरे हुए सक अद्वितीय परमदेव परमेश्वर को जानकर मनुष्य समस्त बंधनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

13. एष देवो विश्वकर्मा महात्मासदाजनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषा मनसामिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥13॥

यह जगत्कर्ता महात्मा परमदेव परमेश्वर सर्वदा सब मनुष्यों के हृदय में सम्यक प्रकार से स्थित है तथा हृदय से, बुद्धि और मन से ध्यान में लाया हुआ (प्रत्यक्ष होता है) जो साधक इस रहस्य को जान लेते हैं वे अमृत स्वरूप हो जाते हैं।

14. भावग्राह्यमनीडारच्यंभावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥14॥

श्रद्धा और भक्ति के भाव से प्राप्त होने योग्य, आश्रयरहित कहे जाने वाले तथा जगत की उत्पत्ति और संहार करने वाले, कल्याणस्वरूप तथा सोलह कलाओं की रचना करने वाले परम देव परमेश्वर को जो साधक जान लेते हैं वे सदा के लिये शरीर को त्याग देते हैं, आवागमन से छूट जाते हैं।

15. सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं्।
सर्वस्य प्रपुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहत्॥15॥

(जो परम पुरुष परमात्मा) समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है तथा सबका स्वामी, सबका शासक और सबसे बड़ा आश्रय है, उसकी शरण में जाना चाहिये।

16. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादि सवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय॥16॥

अविद्या रूप अंधकार से अतीत तथा सूर्य की भाँति स्वयं प्रकाश स्वरूप इस महान् पुरुष परमेश्वर को मैं जानता हूँ, उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु को उल्लंघन कर जाता है, परम पद की प्राप्ति के लिये दूसरा उपाय नहीं है।

(स्वेताश्वतारउपनिषद्)

❋ दीनबन्धु आशुतोष ❋

कवित्त—1. दीनबन्धु आशुतोष प्रणतपाल चन्द्रमौलि,
तुम्ही अवलम्ब सदा मुझसे अनाथ को।

8. न नाक पृष्ठं न च देवराज्यं ब्रह्मलोकं न च निष्कलत्वम्।
न सर्वकामाना खिलान् वृणोमि हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ॥8॥

न तो मैं स्वर्गलोक चाहता हूँ, न देवताओं का राज्य पाने की अभिलाषा रखता हूँ, न ब्रह्मलोक की इच्छा करता हूँ और न निर्गुण ब्रह्म का सायुज्य ही प्राप्त करना चाहता हूँ। भूमण्डल की समस्त कामनाओं को भी पाने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भगवान् शिव की दासता का ही वरण करता हूँ।

9. यावच्छ शाङ्गधवला मलबद्ध मौलिर्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् ममेशः।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातैर्दुःखानि देहविहीतानि समुद्वहामि ॥9॥

जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्रमय उज्ज्वल एवं निर्मल मुकुट बँधा हुआ है, वे मेरे स्वामी भगवान् पशुपति जब तक प्रसन्न नहीं होते हैं, तब तक मैं जरा-मृत्यु और जन्म के सैकड़ों आघातों से प्राप्त होने वाले दैहिक दुःखों का भार ढ़ोता रहूँगा ।

10. दिवसकर शशांक वन्हि दीप्तं त्रिभुवन सारमसार माद्यमेकम्।
अजर ममरमप्रसाद्य रुद्रं जगतिपुमानिह को लभते शान्तिम् ॥10॥

जो अपने नेत्र भूत सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि की प्रभा से उद्भासित होते हैं, त्रिभुवन के सार रूप हैं जिनसे बढ़कर सार-तत्व दूसरा नहीं है, जो जगत के आदि कारण, अद्वितीय तथा अजर-अमर हैं, उन भगवान् रुद्रको भक्तिभाव से प्रसन्न किये बिना कौन पुरुष इस संसार में शांति पा सकता है?

11. यदि नाम जन्म भूयो भवति मदीयैः पुनर्दोषैः।
तस्मिंस्तस्मिज्जन्मनि भवे भवेन्येऽक्षया भक्तिः ॥11॥

यदि मेरे दोषों से मुझे बारम्बार इस जगत में जन्म लेना पड़े तो मेरी यही इच्छा है कि उस-उस प्रत्येक जन्म में भगवान् शिव में मेरी अक्षयभक्ति हो।

(महाभारत-अनुसासन पर्व 14।180-191)

❃ भगवती सती का शिव-प्रेम ❃

एक समय लीलाधारी परमेश्वर शिव एकान्त में बैठे हुए थे, वहीं सतीजी भी विराजमान थीं। आपस में वार्तालाप हो रहा था, उसी वार्तालाप के प्रसंग में भगवान् शिव के मुख से सती के श्यामवर्ण को देखकर 'काली' ऐसा शब्द निकल गया। 'काली' यह शब्द सुनकर सती को महान दुःख हुआ और वे शिव से बोलीं-महाराज! आपने मेरे कृष्ण-वर्ण को देखकर मार्मिक वचन कहा है। इसलिये मैं वहाँ जाऊँगी जहाँ मेरा नाम 'गौरी' पड़े। ऐसा कहकर परमेश्वर्यवती सती अपनी सखियों के साथ प्रभास तीर्थ में तपस्या करने चली गयीं।

वहाँ 'गौरीश्वर' नामक 'लिंग' को संस्थापित कर विधिवत सांगोपांग पूजा और दिन-रात एक पैर पर खड़ी होकर कठिन तपस्या करने लगीं, ज्यों-ज्यों तप

बढ़ता जाता, त्यों-त्यों उनका वर्ण गौर होता जाता। इस प्रकार धीरे-धीरे उनके अंग पूर्ण रूपसे गौर हो गये।

तदनन्तर भगवान श्री चन्द्रमौलि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने सती को बड़े आदर से 'गौरी' इस नाम से सम्बोधित करके कहा-प्रिये! अब तुम उठो और अपने मन्दिर को चलो। हे कल्याणि! अभीष्ट वर माँगो तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, तुम्हारी तपस्या से मैं परम प्रसन्न हूँ।

तब सती ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना पूर्वक कहा-हे महाराज! आपकी चरणों की दया से मुझे किसी बात की कमी नहीं है, मुझे अपने लिये कुछ नहीं चाहिए परंतु यह प्रार्थना अवश्य करूँगी कि जो नर या नारी इन 'गौरीश्वर' शिव का दर्शन करें, वे सात जन्म तक सौभाग्य समृद्धि से पूर्ण हो जायँ और उनके वंश में किसी को भी दारिद्रय तथा दौर्भाग्य का भोग न करना पड़े। मेरे संस्थापित इस लिंग की पूजा करने से परम पद की प्राप्ति हो। गौरी की इस प्रार्थना को श्री महादेव जी ने परम हर्ष के साथ स्वीकार कर लिया, और उन्हें लेकर वे कैलाश को पधारे।

(स्कन्द पुराण प्रभास खण्ड अ0 68)

❃ लिंग-तत्व: ❃

"मूल तो ब्रह्म रूपाय, मध्य तो विष्णु रूपिणे।
अग्रत: शिव रूपाय अश्वस्थाय नमो नम: ॥"

कवित्त—सूर्य एक ही है किन्तु पात्र-पात्र में विभिन्न,
जिस भाँति प्रतिबिम्ब दीखते अनेक हैं।
विश्व वृक्ष अग्र-मध्य-मूल विधि विष्णु शिव,
नाम रूप भिन्न भक्तत्राण स्वच्छ टेक है॥
पुल्लिंग सर्वमीशानं स्त्रीलिंग भगवत्युया,
वेद वाक्य सप्त हैं, सतत सविवेक हैं॥
हर-हर-हर-हर, हरि हरि हरि भज,
दो नहीं हैं एक ही हैं, एक ही हैं, एक हैं॥

दोहा— तारक देव महेश हैं, सबका तारन हार।
तम, सत, रज के रूप में व्यापित है संसार॥1॥
नस-नस रक्त प्रवाह महँ, होइ नाम धुनि नित्य।
शिवा-शिव अंकित रहै अस्थि-अस्थि में सत्य॥2॥

चौपाई—'प्रियदास' बिनु असि मति पाये। मिलहिं न शिव कपट लौ लाये॥



❋ जगन्माता लक्ष्मी की शिव-निष्ठा ❋

दोहा—एक बार लीलामय विष्णु, लक्ष्मीहि दीन्हा शाप।
अश्वयोनि में भूमि पर, जा जन्म लेहु अब आप॥

एक बार लीलामय भगवान विष्णु ने लक्ष्मी जी को भूलोक में जन्म लेने का शाप दे दिया अश्वयोनि में।

चौ०—जो लीला करहहिं भगवाना। जाने वही कोउ नहीं जाना॥
शाप पाइ लक्ष्मी दुःख माना। शाप अनुग्रह करहु भगवाना॥
विष्णु कहा देवि सुन लेई। वचन मेरा मिथ्या नहिं होई॥
अश्वयोनि कुछ काल बिताये। मम समान सुत जन्महि जाये॥

भगवान की प्रत्येक लीला रहस्यमयी होती है उसको तो वही जानते हैं, और कोई नहीं जानता श्री लक्ष्मीजी को इस शाप से बहुत क्लेश हुआ, उन्होंने भगवान् से शाप अनुग्रह करने की प्रार्थना की-प्रार्थना पर विष्णु भगवान् ने कहा, देवि! यद्यपि मेरा वचन तो अन्यथा हो नहीं सकता, तथपि कुछ काल तक तुम अश्व योनि में रहोगी, पश्चात् मेरे समान ही तुमसे एक पुत्र उत्पन्न होगा।

शापमुक्त उस कालहिं पाओ। फिर मेरे पास तुम आओ॥
शाप ग्रसित श्री भूपर आई। जन्म अश्व योनि तहँ पाई॥
तमसा कालिन्दी संगम पर। करने लगी वंदन शिव तत्पर॥
अनन्य भाव त्रिलोचन ध्याहीं। सहस्त्र वर्ष रहीं मन ताहीं॥

उस समय इस शाप से तुम्हारी मुक्ति होगी और फिर तुम मेरे पास आ जाओगी। भगवान् के शाप से लक्ष्मी जी ने भूलोक में आकर अश्वयोनि में जन्म लिया और वे तमसा एवं कालिंदी संगम के तट पर भगवान् शंकर की आराधना करने लगीं, वो भगवान् सदाशिव त्रिलोचन का अनन्य मन से दिव्य एक हजार वर्ष तक ध्यान करती रहीं।

तेहि तपते प्रसन्न हर भयेऊ। उमा सहित दर्शन तब दयेऊ॥
कह देवि तुम जग की माता। विष्णु प्रिया जगत विख्याता॥

उनकी तपस्या से महादेव जी बहुत प्रसन्न हुए और लक्ष्मी के सामने वृषभ पर आरूढ़ हो उमा-पार्वती सहित दर्शन देकर कहने लगे-देवि! आप तो जगत की माता हैं, और भगवान् विष्णु की परम प्रिया जगत विख्यात हैं।

सो०—मुक्ति-भुक्ति दाता हरि, स्वामी सचराचर जगत।
आराधे तेहि छाँड़कर, तुम मोंकू रहीं क्यों भजत॥

आप भुक्ति मुक्ति देने वाले, सम्पूर्ण सचराचर जगत के स्वामी विष्णु भगवान् की आराधना छोड़कर मेरा भजन क्यों कर रही हैं।

चौ०—नारी धर्मपति पद पूजा। वेद कथन अन्य नहीं दूजा॥
कैसा भी पति पावै नारी। वही देव मन मति चित धारी॥
पुरुषोत्तम भगवान नारायण। क्यों तुम अन्यहिं भई परायण॥

वेदों का कथन है कि स्त्रियों को सर्वदा अपने पति की ही उपासना करनी चाहिये, पति पदों की पूजा ही उसका मुख्य धर्म है पति कैसा भी हो, उसके लिये पति के अतिरिक्त और कोई देवता ही नहीं है, वही स्त्री का आराध्य देव होता है, भगवान् नारायण तो पुरुषोत्तम है ऐसे देवेश्वर पति की उपासना छोड़कर आप मेरी उपासना क्यों करती हैं।

श्लोक—वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः।
नान्यस्मिन् सर्वथा भावः कर्त्तव्यः कर्हिचित क्वचित।
पति शुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः।
यादृशस्ता दृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया॥

(देवी भागवत 6 ।18 ।22-23)

लक्ष्मी ने कहा—हे आशुतोष मेरे पतिदेव ने मुझे अश्व योनि में जन्म लेने का शाप दिया है, इस शाप का अंत पुत्र होने पर बताया है। इस समय पति के सानिध्य से वंचित हूँ वे वैकुण्ठ में हैं, उन्होंने ही मुझे बताया कि आप मैं और हरि में किंचितमात्र भी भेद भावना नहीं है, आप और वे एक ही हैं केवल रूप का भेद है, एकात्व जानकर ही आपकी आराधना की। आप प्रसन्न हैं तो मेरा दुःख दूर करिये। शिव वचनों की सुन प्रसन्न होकर कैलाश जाकर चित्र रूप को दूत बना वैकुण्ठ भेजा, चित्ररूप से भगवान शिव का संदेश पाकर तथा लक्ष्मी की स्थिति जानकर विष्णु अश्वरूप धारण कर लक्ष्मी के पास गये और कालान्तर में देवी लक्ष्मी को 'एकवीर' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी से 'हैहयवंश' की उत्पत्ति हुई। अनन्तर लक्ष्मी के शाप की निवृत्ति हो गयी और वे दिव्य शरीर धारण कर भगवान के साथ वैकुण्ठ पधार गयीं। उनकी शिव-साधना सफल हो गयी।

❃ भगवान नृसिंह की शिव-साधना ❃

हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद बड़ा तपस्वी, सत्यवादी, धर्मज्ञ और महात्मा था तथा बाल्यावस्था से ही पुराणपुरुष भगवान श्री विष्णु भगवान की पूजा में तत्पर रहता था। प्रह्लाद की यह चेष्टा देखकर क्रुद्ध हो देवद्रोही हिरण्यकशिपु कहने लगा—रे कुपुत्र प्रह्लाद! मेरे प्रताप के आगे कौन नारायण है? **'इन्द्र वरुण कुबेरहू, वायु सोम ईशान। यम, ब्रह्मा अरु अग्नि हूँ, भागेउ डर बच प्रान॥'** ये सारे देवगण मेरे सम्मुख से प्राण बचाकर भाग जाते हैं डरकर। तू जीने की इच्छा रखता हो तो मेरी आज्ञा का पालन कर। पिता के इस कठोर वचन को सुनकर भी प्रह्लाद

ने विष्णुभक्ति का त्याग नहीं किया। '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मंत्र जपता रहा। और सब दैत्यों के बालकों को भी ब्रह्म-विद्या का उपदेश देता रहा। तब तो हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद की रक्षा तथा हिरण्यकशिपु का संहार करने के लिये भगवान विष्णु नृसिंह रूप धारण कर प्रकट हुए और हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण कर भयंकर गर्जना करने लगे। उनके घोर गर्जन से ब्रह्मलोक पर्यन्त काँप उठे, यम कुबेर इन्द्र और ब्रह्मादि सभी देवता भयभीत हो नृसिंहदेव की स्तुति करने लगे—

अनेक स्तुति करने पर भी जब भगवान नृसिंह शांत नहीं हुए, तब अन्य कोई शरण न जानकर देवता अपनी रक्षा के लिये मन्दराचल में भगवान शंकर की शरण गये, वहाँ उन्होंने पार्वती के साथ विराजमान शिवगणों, गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों तथा ऋषि मुनियों आदि से सेवित भगवान् शंकर से नृसिंहदेव के उग्र, विनाशकारी भयंकर गर्जनकर और उनकी चेष्टाओं का वर्णन किया तथा दण्डवत प्रणाम करके सब देवताओं के साथ ब्रह्माजी हाथ जोड़कर गदगद वाणी से उनकी स्तुति करने लगे। देवताओं के अति दीन वचन तथा प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर ने उन्हें अभय दिया और हँसकर कहा कि **"आप सब प्रसन्न रहें मैं आप लोगों का कार्य करूँगा।"** तदनन्तर—

चौ०—पक्षी रूप धारण शिव कीन्हा। तेजोमय सहस्त्र भुज लीन्हा॥
मस्तक पर चन्द्रमा विराजै। शोभित अति सुंदरता साजै॥
मृग का अर्ध शरीर दिखाया। आधा पक्षी का मन भाया॥
तीखी चोंच पंख अति बाढ़ा। बज्र सम नख अरु तीक्ष्ण दाढ़ा॥

भगवान शिव ने तेजोमय पक्षी का रूप धारण किया, जिनके सहस्त्र भुजाएँ थीं, मस्तक पर चन्द्रमा शोभित था जो अत्यंत सुन्दर लग रहा था, आधा शरीर मृग का और आधा शरीर पक्षी का था, बड़े-बड़े पंख, तीखी चोंच, बज्र के तुल्य नख, अति तीक्ष्ण दाढ़, प्रबल अग्नि के समान देदीप्यमान देहकान्ति और तीन नेत्र थे।

घोर गरजनाशंकर कीन्हीं। प्रलयकालीन मेघ सम चीन्हीं॥
गंभीर शब्दश्रवनन जब भयेऊ। उग्र घोर तन देखत भयेऊ॥

भगवान शंकर के प्रलयकालीन मेघ के समान गम्भीर शब्द को सुनकर तथा उनके वैसे उग्र और घोर रूप को देखकर नृसिंह शांत हो गये और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने—

दोहा— बार-बार प्रणाम कर, शिव अर्पण चर्महिं कीन्ह।
शिवमहिमा स्मरण कर, अन्तर्धान शरीरहि लीन्ह॥

उन्होंने बार-बार शंकर भगवान को प्रणाम किया और अपना चर्म = बाघम्बर भगवान् शिव के निमित्त अर्पण कर नृसिंह भगवान् शंकर की महिमा को स्मरण करते हुए अन्तर्धान हो गये तथा देवता भी अपने-अपने स्थान को चले गये।

(लिंग पुराण, अ० 95-96)

कवित्त—सोहत उतंग, जाको उत्तभंग, शशि संग,
गंग गौरि अरधंग, काम प्रतिकूल है ।
देवन को मूल 'सेनापति' अनुकूल करि,
चाम सारदूल को सदा कर त्रिशूल है॥
कहाँ भटकत अटकत क्यों न तामैं मन,
जाते अष्ट सिद्धि नवसिद्धिरिाधितूल है।
लेतही चढ़ाइवे को जाकूँ एक वेलपत्र,
चढ़ाहि आयेहु हाथ चार फल फूल हैं॥
"देव बड़े दाता बड़े, शंकर बड़े भोरे।
किये दुःख दूर सबन के, जिन-जिन कर जोरे॥"

❑ ❖ ❑

❃ परम शैव-भगवान विष्णु की शिवोपासना ❃

चौ०—कबहु देव बलवत ह्वै जाहीं। कबहू दैत्य बलदेव सताहीं॥
दानव शक्ति अधिक लेइ जावै। अधिक कष्ट देवन्ह पहुँचावै॥
दुःखी देव गये विष्णु पासा। स्तुति कीन्ह निवारह आसा॥
हरिह निज दुःख कष्ट सुनायेहु। अति कष्ट दानव पहुँचायेहु॥

समय के परिवर्तन से कभी तो देवता बलवान हो जाते हैं और कभी दानव। एक बार दानवों की शक्ति बहुत अधिक हो गयी और देवों को बहुत अधिक कष्ट पहुँचाने लगे। देवता बहुत संत्रस्त होकर अपने दुःखों की निवृत्ति की आशा से भगवान् विष्णु के पास गये और उनकी स्तुति करके अपना अपरणित कष्ट दैत्य पहुँचा रहे हैं उनसे कहा—

स्थिर रहना कठिन प्रतीता। भगवन् उनसे हम भय भीता॥
ताते तुम्हहिं शरण हम आयेऊ। इसका कछू उपाय बतायेऊ॥
अन्यन कोई शरण देने वाला। कृपा करो प्रभु दीनदयाला॥
हमरी विपति शीघ्र प्रभु हरेऊ। हम सब देव चरण अनुसरेहु॥

देवगण बोले—हम लोगों का एक स्थान पर स्थिर रहना भी कठिन प्रतीत हो रहा है, हम सब उनसे अधिक भयभीत हैं इसलिये हम आपकी शरण आये हैं आप इसका कुछ उपाय बतलाइये, आपके अतिरिक्त अन्य कोई हमें शरण देने वाला नहीं है। हे प्रभु! दीनदयाल! हम पर कृपा करके हमारी विपत्ति को हरण करिये, हम सब आपके चरणों में शरण ले रहे हैं।

दोहा—क्रन्दन-करुण देव हरि सुन्यो कहा अस जानि।
आराधन महादेव का कार्य करूँ जियमानि॥

देवों का ऐसा हृदयविदारक करुण-क्रन्दन सुनकर विष्णु भगवान ने उनसे कहा कि "मैं परम कारुणिक महादेव की मन में दृढ़ निष्ठासे आराधना कर इस कार्य को करूँगा।"

चौ०—सुन कर देव गये निज धामा। शयन त्यागि क्षीर सायी भगवाना॥
कैलाश समीप तुरंतहिं धाये। लिंग थापि अग्नि कुण्ड बनाये॥
नाम हरीश्वर रख भगवाना। ज्योती लिंगहिं तेज प्रधाना॥
कमलन्ह मानसरोवर लाहीं। सहस्त्रनाम शिवजपते जाहीं॥

भगवान विष्णु के ऐसे वचनों को सुनकर देवता अपने धामों को चले गये, इधर श्री विष्णुदेव क्षीरसागर का सुखद शयन छोड़ कैलाश पर्वत के समीप पहुँचे और वहाँ अभिकुंड बनाकर तथा हरीश्वर नामक ज्योतिलिंग की स्थापना कर देव भगवान महादेव की आराधना मानसरोवर से समुत्पन्न कमलों से विधिपूर्वक शिव सहस्त्रनाम का पाठ करते हुए करने लगे—

प्रतिनामहिं इक कमल चढ़ावैं। प्रतिदिन सहस्त्र कमल चढ़ि जावैं।
बहुत समय पूजा अस कीन्हीं। भक्त परीक्षा हर तब लीन्हीं॥
एक पुष्प लीला कम करेऊ। अंत सहस्त्र नाम जब भयेऊ॥
कमती देखि भई हरि चिंता। ढूँढ़त डोले भूमिलान अंता॥

श्री हरि भगवान का नियम था कि शिव सहस्त्र नाम का पाठ करते जाते और प्रत्येक नाम पर एक-एक कमल शिवजी पर चढ़ाते जाते। इस प्रकार प्रतिदिन सहस्त्र कमलों से महादेव की पूजा करते। ऐसी आराधना करते-करते जब बहुत समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन महादेवजी ने उनकी भक्ति की परीक्षा करने के लिये उन हजार पुष्पों में से एक पुष्प अपनी लीला से कम कर दिया। सहस्त्र नाम समाप्त करते जब अंतिम नाम आया तो एक कमल कम देख विष्णु बहुत चिन्तित हुए और कमल पुष्प प्राप्ति के लिये सारी पृथ्वी भ्रमण कर आये, लेकिन शिव लीला से कहीं भी कमल पुष्प नहीं मिला।

दोहा—कमल नयन भगवान् ने, पूरण संख्या कीन्ह।
निज इक नेत्र निकाल कर, अर्पित लिंगहिं दीन्ह॥

तब उन्होंने एक सहस्त्र संख्या की पूर्ति के लिये अपना कमल रूपी नेत्र शिवलिंग पर उनके चरणों में भक्तिपूर्वक समर्पित कर दिया।

श्री पुष्पादन्ताचार्य ने शिव-महिमा स्त्रोत में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

"हरिस्ते साहस्त्रं कमल बलिमा धाय
पदयोर्यदेको ने तस्मिन् निजमुदहरनेत्र कमलम्।

गतो भक्त्युद्रेकः परिणति मसौ चक्रवपुष्या
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्॥"

(शिव महिमा स्त्रोत 19)

अर्थ—हे त्रिपुरहर! भगवान विष्णु प्रतिदिन एक हजार कमल आपके चरणों में भेंट चढ़ाते समय एक कमल के कम हो जाने पर (जिसको आपने परीक्षा के लिये छिपा रखा था) नियम भंग के डर से अपने नेत्र रूपी कमल को ही उखाड़ कर भेंट कर दिया। अर्थात् एक नेत्र अर्पित कर दिया, हे प्रभो वही अर्पित कमल, इसी उक्त भक्ति का फल सुदर्शन चक्र के रूप में परिवर्तित हो गया, जो कि सारे संसार की रक्षा के लिये सदा सावधान गरजते हुए निरंतर जाग्रतावस्था में रहते हैं।

चौ०—आशुतोष भक्ति हरि देखी। भये प्रसन्न मनमाहिं विशेषी॥
प्रकट भये शिव तब अस कहेऊ। प्रेम भक्ति संतुष्टहिं भयऊ॥
मन वंगछित माँगहु वरदाना। अदेय नहीं कछू जो मनमाना॥
विष्णु कहा जोर कर पाना। दैत्य प्रबल है गये बलवाना॥

इस अटल भक्ति को देखकर आशुतोष भगवान् शंकर परम प्रसन्न हुए और उसी समय प्रकट होकर प्रसन्न बदन से बोले-विष्णो! मैं आपकी भक्ती और प्रेम से परम संतुष्ट हूँ। आप मनोवाछिंत वर माँगिये, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। भगवान का ऐसा वचन सुनकर भगवान विष्णु ने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की—प्रभो! इस समय दैत्य बहुत प्रबल हो गये हैं।

करहिं उपद्रव दिन प्रति आहीं। रहना कठिन देवतन्ह पाँही॥
त्रैलोक्य सभी पीड़ित करि डारे। तेहि रक्ष कोउ उपाव विचारे॥
अस्त्र शस्त्र मम निष्फल स्वामी। इसी हेतु शरणहिं अनुगामी॥
सुना बचन हरि हर अस कहेऊ। चक्र सुदर्शन तेहि तब दयेऊ॥

दैत्य इतना उपद्रव कर रहे हैं कि देवताओं का रहना कठिन हो रहा है। सम्पूर्ण त्रैलोक्य इस समय उनसे पीड़ित है आप देवताओं तथा समस्त जगत की रक्षा का कोई उपाय कीजिये। स्वामिन! इस समय मेरे अस्त्र-शस्त्र भी निष्फल से हो गये हैं इसलिये मैं आपकी शरण में आया हूँ। विष्णुजी के ऐसे करुणाजनक वचन सुनकर भगवान शिवजी ने तेजोमय सुदर्शन चक्र उन्हें प्रदान किया और कहा—

दोहा—लै जावहु धारण करो, चक्र सुदर्शन हस्त।
अन्तर्धान होइ कह गये, करौ दानवन पस्त॥

आप इस चक्र को अपने हाथ में धारण करके इससे सभी दैत्यों को पस्त-पछाड़ दो, विनाश कर दो, कहकर शिव अन्तर्धान हो गये।

भगवान विष्णु ने उसी चक्र की सहायता से असुरों का विनाश बिना श्रम के बहुत शीघ्र ही कर डाला और तीनों लोकों में आनन्द की भेरी बजने लगी। उस चक्र

को विष्णु भगवान बहुत आदर-पूर्वक धारण किये रहते हैं और जब-जब दुष्ट असुरों, शत्रुओं का संहार करना होता है, तब-तब उसे काम में लाते हैं।

श्लोक—तत् प्राप्य भगवान् विष्णु दैंत्यांस्तान् बलवन्तरान्।
जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान बिना श्रमम्॥
जगत् स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुः सुखिनः सुराः।
सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरि रासीन्महासुखी॥

(शिव पुराण, को0 रुद्र सं0 अध्याय 34)

❋ भक्त रक्षक शिव ❋

सवैया— "सोच विमोच अनेक लये, जस गान सुन्यो शिव तैं सुजसी है।
देवन में गुरुदेव तु ही प्रभु, तेरे ही चित्त में गाँस गँसी है॥
ओ! सिरताज चराचर के तव 'प्रिय' में प्रेम की फाँस फँसी है।
लाजु बचा कितौ देखु इतै, अब मेरी हँसी किधौं तेरी हँसी है॥"

❋ श्री रुद्र भगवान ❋

कवित्त—रुद्र, रुद्र, रुद्र नाम जपने से नित्य-नित्य,
पातक समूह आशु होते छार-छार हैं।
वेधा, विष्णु-वाणी-रमारुद्र उमारूप ही हैं,
परम शरण्य पूज्य दयाके आगार हैं॥
सर्वगत, अव्यय, अव्यक्त, सूक्ष्मतम ईश,
भक्त वात्सल्य बस लेते अवतार है॥
'पंचानन' तू भी शिव, शिव शिव शिव रट,
तेरे तुल्य अधम केते ही तौ आधार है॥

दोहा— "जापर जाकर होते हैं, साँचो सरस सनेह।
सोतेहि हठि मिलत हैं, यामें नहीं संदेह॥"

❑ ❖ ❑

❋ लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवान् की शिव-भक्ति ❋

वेदादि अनादि शास्त्रों में परमेश्वर के ध्यान, पूजन, आराधन, स्तवन आदि का विधान जो उपलब्ध होता है वह सब जगत के अन्तर्यामी शिव, विष्णु आदि अनेक नामों से निर्दिष्ट एक ही ईश्वर-तत्व का स्पष्ट उल्लेख कर रहा है।

"ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्" यह वैदिक मंत्र समस्त विद्याओं के ईशान-स्वामी और सर्व भूत अर्थात् प्राणीमात्र के नियन्ता, ईश्वर शब्दवाच्य महादेव का निरूपण करता है। इसी मंत्रका प्रतीक लेकर श्रीमद्भागवत गीता में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को परम हित का उपदेश देते हुए कहते हैं–

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूताानि यन्मारूढ़ानि मायया तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत॥"

इस श्लोक में "ईश्वर" शब्द– **"ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः।"** इत्यादि अमरकोष वाक्यके अनुसार साक्षात महादेव वाचक है। उन्हीं की शरण जाने का स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश करते हैं। यही भगवान श्रीकृष्णकी शिवभक्ति का प्रकृष्ट प्रमाण है क्योंकि शरण प्रपन्न अपने प्रिय सखा अर्जुन को परम श्रेयकर उपाय पूछने पर वे शिव शरणागति का उपदेश देते हैं। इसी से अर्जुन की संकट की निवृत्ति हुई है–

अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी–"जयद्रथ को यदि सूर्यास्त से पहले कल न मार सकूँ तो मैं चिता में प्रवेश करूँगा।" तब सारी रात भगवान कृष्ण ने अर्जुन को शिव पूजन में लगाकर उसे पाशुपतास्त्र पुनः प्राप्त कराया और **'मेरे रथ के आगे यह त्रिशूलधर कौन हैं'** इस प्रकार अर्जुन के प्रश्न करने पर 'जिसका तू आराधन करता है वही तेरी रक्षा के लिये यहाँ उपस्थित है और उसी के अनुग्रह से सर्वत्र तेरी विजय होती है' ऐसा उत्तर श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन को देते हैं।

महाभारत द्रोणपर्व अध्याय 201 में लिखा है कि द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद अश्वत्थामा ने क्रोधाक्रान्त होकर नारायणास्त्र का प्रयोग किया, जब सारी पाण्डव सेना जलने लगी, चारों ओर से अग्नि की ज्वालाएँ भभकने लगीं तब कृष्ण ने अर्जुन आदि पाण्डवों को तथा सात्यकि प्रभृति अपने इष्टजनों को बचाने के लिये अपने-अपने वाहनों से उतरकर उनसे शस्त्रास्त्र छुड़ा दिया, क्योंकि नारायणास्त्र से बचने का एकमात्र उपाय अशस्त्र होकर भूमि पर खड़ा ही जाना ही है इस रहस्य को श्रीकृष्ण ही जानते थे, इस उपाय का अनुष्ठान कराकर पाण्डवादि इष्टजनों को भगवान ने बचा लिया।

जब नारायणास्त्र बहुत सी सेना को दग्ध करके अदृश्य हो गया, तब अश्वत्थामा पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण आदि को अक्षत देखकर हृदय में सोचने लगा कि ये लोग कैसे वेदाग निकल गये, इतने में उसने व्यास भगवान को रणभूमि में होकर गंगाजी की ओर जाते देखा, देखते ही रथ से कूदकर व्यासजी के पास पहुँचा और प्रणाम करके बोला– भगवन! कृपया मेरे इस संशय का आप निवारण कीजिये, मेरे द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग किये जाने पर कृष्ण पाण्डव आदि कैसे बचे?

तब व्यास भगवान मुस्कराते हुए अश्वत्थामा से बोले–"तेरे पिता ने तुझे विद्या

देने में किसी प्रकार भेद नहीं रखा किंतु बात यह है कि श्रीकृष्ण और अर्जुन के स्वरूप का तुझे ज्ञान नहीं है, इसीसे तेरे मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ हो रही हैं और व्यासजी श्रीकृष्ण और अर्जुनका परिचय देते हुए कहने लगे-

"योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत्।
स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरि माश्रितः।
षष्टिं वर्ष सहस्त्राणि वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम्।
रुद्रमीशान भृषमं हरं शम्भु कपर्दिनम्।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान्॥
तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृक।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः॥

ये पूर्वजों के भी पूर्वज, कमल लोचन नारायण भगवान विश्व का कार्य करने के लिये धर्मपुत्र के रूप में प्रकट हुए थे। इन्होंने हिमालय पर्वत पर केवल वायु भक्षण कर साठ हजार वर्ष पर्यन्त तीव्र तप करते हुए भक्तिपूर्वक विरूपाक्ष (त्रिलोचन) कर्णि (जटाधर, रुद्र ईशान, ऋषभ एवं हर इत्यादि संज्ञाओं वाले विश्वेश्वर एवं विश्व के कारण, जगपति भगवान शम्भु की स्तुति की। उन देवताओं में मुख्य ऋषीप्रवर नारायण की स्तुति से प्रसन्न होकर पिनाकधारी अचिन्त्य स्वरूप भगवान नीलकंठ ने उन्हें कई वर दिये—' भगवान शिव उवाच—

'मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगंधर्वयोनिषु।
अप्रमेय बलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि॥
स एष देवश्चरति मायया मोहयन् जगत्॥
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम्।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीहयर्जुनं सदा॥
जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः।
ताभ्यां लिंगेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां दिजोतम्॥

श्री शिव ने कहा—हे नारायण! मेरे प्रसाद से देव, गन्धर्व एवं मनुष्यादिकों में तुम अप्रमेय बलवती होंगे।' ये वही नारायण देव अपनी माया से जगत को मोहित करते हुए विचरते हैं। इन्हीं के तप प्रभाव से इनकी समानता को प्राप्त हुए महामुनि नर को तू अर्जुन रूप में जान। जन्म, कर्म और तपोयोग इन दोनों का और तेरा भी पुष्कल है तथापि तुम शिव-मूर्ति का पूजन करते हो और ये दोनों शिवलिंग में (जिसमें त्रिदेवों का वास है) हरार्चन करते हैं, इतनी बात इनके अंदर विशेष हैं।

इस प्रकार यद्यपि अश्वत्थामा भी शिव-भक्त हैं, तथापि लिंग में शिवार्चन

करने वाले श्रीकृष्ण और अर्जुन उसके द्वारा अजेय हैं यह दिखलाकर भगवान व्यास मुनि ने श्रीकृष्णजी का परम शिव भक्त स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। लिंग पुराण (पूर्वार्ध) के अध्याय 108 में लिखा है—

पुत्रार्थं भगवांस्तत्रतपस्तप्तुं जगामह।
आश्रमं चोपमन्योर्वे दृष्टवांस्तत्रतं मुनिम्॥
नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः।
बहुमानेन वै कृष्णास्त्रिकृत्वैव प्रदक्षिणम्॥
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः।
नष्टमेवं मलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा॥
भस्मवोद्धूलनं दत्वा उपमन्युर्महामुनिः।
तमाग्रिरितं विप्रेन्द्रावायुरित्यादिभिःक्रमात्॥
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः॥
तपसा त्वेकवर्षेण दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
साम्वं सगणमव्यग्रं लब्धवान पुत्रमात्मनः॥
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसित व्रताः।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वतः॥

❋ नर-नारायण की शिवोपासना ❋

प्राचीन काल में भगवान के अंश नर और नारायण ने तपस्या करने की अभिलाषा से वदरिकाश्रम में आश्रम बनाया। उन्होंने भगवान शंकर से प्रार्थना की कि' आप इस पार्थिव लिंग में विराजमान हों।' यह प्रार्थना भगवान शिव ने स्वीकार कर ली और नर-नारायण द्वारा निर्मित लिंग में प्रवष्टि होकर उसमें निवास करने लगे। नर-नारायण परम श्रद्धा के साथ उस लिंग की षोडशोपचार से आराधना करते हुए कठिन तपस्या करने लगे।

दोहा— निराहार दोउ जितेन्द्रिय लैं निशिदिन शिव का नाम।
उनके चिंतन के सिवा, उन और न कोई काम॥

वे दोनों नर-नारायण निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर रात-दिन भगवच्चारण शिव चिंतन करते थे इसके अतिरिक्त, और उनका कोई व्यापार-काम ही नहीं था।

चौ०— बहुत दिवस बीतेउ यहिं भाँती। सुमिरण नाम लगे रहे शाँती॥
आषुतोष प्रसन्नहिं भयेऊ। प्रकट होइ कें दर्शन दयेऊ॥
दोनों से पूछन तब लागे। क्यों मम नाम भये अनुरागे॥
घोर तपस्या तुमने कीन्हीं। माँग लेउ जो इच्छा चीन्हीं॥

इस प्रकार तप करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया, शान्ति से भगवान शिव का चिंतन, नाम, जपते रहे, तब आशुतोष भगवान प्रसन्न हुए और प्रकट होकर बोले कि तुम दोनों ने मेरे नाम में इतना अनुराग क्यों किया? क्या चाहते हो? तुमने यहाँ घोर तप किया है, आप लोगों की तपस्या से मैं परम प्रसन्न हूँ अब आपकी जो इच्छा हो वर माँग लो।

शंकर के दोनों सुनि बचना। कर जोड़े कहकरौ ये रचना।
हे देवेश जगन्निवासा। पूर्ण कर दो हमारी आसा॥
होइ प्रसन्न तो यह वर दीजै। सदा निवास तीर्थ यहिं कीजै॥
निज स्वरूप इस क्षेत्रहिं रहेऊ। भगत पूजा स्वीकार करेहू॥

नर-नारायण दोनों ने शंकरजी के बचनों को सुनकर हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि हे देवेश! हे जगन्निवास आप यहाँ ऐसी रचना करो जिससे हमारी आशा की पूर्ति हो, यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये कि आपका इस तीर्थ में सदैव निवास हो और आप अपने रूप से इस क्षेत्र में रहते हुए भक्तों की पूजा स्वीकार करें।

दोहा— जन्म, मरण संसार के, बन्धन से हौं मुक्त।
लिंग निवासहिं रूप से, रहौ यहाँ संयुक्त॥1॥

उन भक्तों के इस संसार में जन्म-मरण इस संसार बंधन से उनको मुक्त किया करें और लिंग स्वरूप में संयुक्त रहकर सदा यही रहें।

दोहा—सदाशिवहि भगवान ने, विनय करो स्वीकार।
ज्योति-स्वरूपहिं तीर्थ तहँ, करने लगे विहार॥2॥

भगवान सदाशिव ने उन दोनों की प्रार्थना स्वीकार कर ली और ज्योति स्वरूप हो स्वयं उस तीर्थ में निवास करने लगे।

चौ०—ज्योतिर्लिंग नाम उस भयेऊ। प्रख्यात केदारेश्वर सब कहेऊ॥
सुर मनि तहँ पूजा अति भावै। अभिलाषित मन कहँ फल पावै॥
एक बार पाण्डव वहाँ गयेऊ। महिष रूप शिव देखत भयेऊ॥
इसी रूप से चलने लागे। पहचान ईश पाण्डव अनुरागे॥

यह ज्योर्तिलिंग केदारेश्वर के नाम से विख्यात हुआ, इस स्थान पर सुर मुनियों ने भगवान शिव की आराधना की और मनोवांछित फल पाया। एक बार पाण्डव लोग इस पवित्र बदरिका आश्रम में गये, भगवान शिव ने उन्हें वहाँ देखा तो माया से महिष का रूप धारण कर लिया और वहाँ से चलने लगे। परन्तु पांण्डवों ने भगवान को पहचान लिया, उनका भक्तिपूर्वक अनुराग जाग गया।

चौ०—उनको पकरि वंदना कीन्हीं। शिव निज रूप तबहि धरि लीन्हीं॥
मैं प्रसन्न तुम से अति भयेऊ। चाहो जो वर माँगि लयेऊ॥
पाण्डव शिव अनेक वर पाये। वर पाकर निज भवनहिं आये॥
विविध प्रकार भोग सुख लीन्हा। अंत परम पद प्राप्तहिं कीन्हा॥

पाण्डवों ने भगवान शंकर को महिष रूप में भी पहचान लिया और उन्हें पकड़कर अनुराग पूर्वक स्तुति की, उनकी भावनामयी स्तुति सुन कर भक्तवत्सल भगवान शिव प्रसन्न हो गये और अपना रूप धारण कर प्रकट हुए, भगवान ने कहा कि मैं तुम लोगों से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वर माँगना हो सो माँगो। पाण्डवों ने भगवान की स्तुति करके उनसे अनेक वर प्राप्त किये, और अपने घर आ गये, तथा संसार में अनेक प्रकार के सुख भोग कर अंत में परम पद को प्राप्त किया।

इस केदारेश्वर के दर्शनों के लिये अब भी असंख्य स्त्री-पुरुष जाते हैं योगियों की सिद्धि का तो यह प्रधान स्थान है, यहाँ पर पिण्डदान करने से पितरों का उद्धार होता है। स्कन्द पुराण में पूजन का महात्म्य लिखा है–**'यः पूजयति केदारं नगच्छोच्दि वमंदिरं। तस्मिस्तीर्थे नरः स्त्रत्व ....** (रेवा खण्ड)



❋ भगवती सावित्री की शिव पूजा ❋

पितामह ब्रह्मा की पत्नी सावित्री देवी ने लोकोपकार के लिये प्रभास क्षेत्र में भगवान शंकर के लिंग की स्थापना कर उनकी विधिवत पूजा की। इसके बाद इन्द्रियों को वश में करके अन्न-जल तक त्याग कर केवल वायु का आश्रय ले वे भगवान आशुतोष के ध्यान में तल्लीन हो गयीं। सावित्री की तपस्या से प्रसन्न होकर हाथ में त्रिशूल लिये शिव प्रकट हुए, अपने अभीष्ट देवता का दर्शन कर सावित्री ने पुलकित होकर उन्हें प्रणाम किया और स्तुति करने लगीं। वे बोलीं-हे देव! यह जगत आपसे उत्पन्न होता है और अंत में आपके ही द्वारा नष्ट हो जाता है। आप सनातन रूप हैं। सत्य कामना वाले सज्जन पुरुषों के लिये आप ही उत्तम लोक हैं। आप ही मुक्त पुरुषों के लिये अपवर्ग रूप और आप ही आप्त ज्ञानियों के लिये कैवल्य रूप हैं। जो प्राणी श्रद्धा से भक्ति पूर्वक आपकी शरण में आता है उसे आप अपना दर्शन देते हैं। आपका दर्शन करने के अनंतर प्राणी को पुनर्जन्म एवं मरण का भय नहीं रहता और फिर उसको कुछ जानना भी शेष नहीं रहता।

इस प्रकार सावित्री की स्तुति सुनकर और उनके अन्तःकरण का अभिप्राय जानकर ब्रह्मेश्वर भगवान शिव बोले-जो मनुष्य पूर्णिमा तिथि को चंदन-पुष्प आदि उपकरणों से तुम्हारे द्वारा स्थापित इस शिवलिंग का विधिवत् पूजन करेगा, उसको मैं उसके मनचाहे वरदान दूँगा। अब से मैं अपने अंश से इस लिंग में निवास करूँगा। इसका पूजन करने वाला महापातकी होता हुआ भी सब पातकों से छूट जायेगा और अपनी सारी कामनाएँ पूर्ण कर साक्षात् शिव हो जायेगा" यह वरदान देकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये और सावित्रीजी ब्रह्मलोक चली गयीं।

(स्कंद पुराण प्रभास खंड अ0 151)

❋ देवगुरु वृहस्पति की शिवाराधना ❋

संसार की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदि मानस-पुत्र उत्पन्न किये। उनमें अंगिरा के एक अंगिरस नामक पुत्र हुए। वे शैशवावस्था में ही बड़े बुद्धिमान और विद्वान थे। वे सब शास्त्रतत्व जानने वाले, वेदों के पारंगत, बड़े रूपवान, गुणवान एवं शीलसम्पन्न थे। उन्होंने भगवान शंकर की आराधना आरम्भ की। परमपावनी काशी नगरी में शिवलिंग की स्थापना कर वे घोर तपस्या करने लगे।

तपस्या करते हुए उनके जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब जगदीश्वर महादेव उस लिंग से प्रकट होकर कहने लगे कि **"मैं तुम्हारी तपस्या से परम प्रसन्न हूँ अपना अभीष्ट वर माँगो।"** आपने सामने उत्कृष्ट तेजोमय जटाजूटधारी, परम कल्याणकारी भगवान शंकर की मूर्ति देखकर वे प्रसन्न बदन से स्तुति करने लगे-

हे देव देव जगन्नाथ! आपकी त्रिगुणातीत, जरामरण से रहित, त्रिजगन्मय, भक्तों के उद्धार करने वाले और शरणागत वत्सल हैं आपके दर्शनों से ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। अंगिरस की ऐसी स्तुति सुनकर आशुतोष ने और भी प्रसन्न होकर उन्हें अनेक वरदान दिये, उन्होंने कहा-हे अंगिरस तुमने बड़ा तप किया इसलिये तुम इन्द्रादि देवों के पति तथा ग्रहों में पूज्य होओगे और तुम्हारा नाम **'बृहस्पति'** होगा। तुम बड़े वक्ता और विद्वान हो, इसलिए तुम्हारा नाम **'वाचस्पति'** भी होगा। जो प्राणी तुम्हारे द्वारा स्थापित इस लिंग की आराधना करेगा, और तुम्हारे द्वारा की गई स्तुति का पाठ करेगा उसे मनोवांछित फल मिलेगा तथा ग्रहजन्य कोई बाधा भी उसे पीड़ित नहीं करेगी। इस प्रकार अनेक वर देकर भगवान शंकर ने ब्रह्मा, इन्द्रादि सभी देवताओं को बुलाया और ब्रह्माजी से कहा कि "वृहस्पतिजी को सभी देवों का आचार्य बना दो" ब्रह्माजी ने उसी समय वृहस्पति जी का देवाचार्य पद पर अभिषेक कर दिया, उस समय देवताओं की दुंदुभियाँ बजने लगीं इस प्रकार भगवान शंकर के अनुग्रह से आंगिरस ने वह पद पाया **ते ये शतं देवानामानंदा। स एक इन्द्रस्यानंद। श्रोत्रियस्यचा काम हतस्याते ये शतमिन्द्रास्यानंदा॥ स एको वृहस्पतेरानंदः॥** *(तैंतिरीयोपनिषद ब्रह्मानंद बली 8)*। जिससे बढ़कर स्वर्गलोक में कोई दूसरा पद हो ही नहीं सकता। उनके द्वारा स्थापित वृहस्पतीश्वर के **(पावन पुरी काशी में वृहस्पतीश्वर संकटाघाट पर विराजमान हैं)** पूजन से प्राणी प्रतिभा सम्पन्न हो जाता है तथा उसे अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। गुरुलोक में प्रतिष्ठित होता है। *(स्कंद पुराण काशी खण्ड)* **गुरुपुण्य समायोगेलिंगमेतत समर्थ्य च। यत् करिष्यतिमनुजस्तत् सिद्धिमाधि यास्यति ....** *(काशी खंड अध्याय-1, 60-62)*

❀ देवराज इन्द्र की शिव भक्ति ❀

चौ०—विश्वरूप त्वष्टा सुत होई। देवराज बधकीन्हेउ सोई॥
दुखित होइ त्वष्टा कीन्हेउ कोपा। दारुण तप ब्रह्मा प्रतिरोपा॥
भये प्रसन्न विधि दर्शन दयेऊ। का चाहो तुम मोसन कहहू॥
बोले ऋषी पुत्र अस होई। सुरभयभीत होंहि सब कोई॥

इन्द्र के द्वारा अपने पुत्र विश्वरूप का वध सुनकर महर्षि त्वष्टा अत्यन्त दु:खित और कुपित हुए। उन्होंने परमदास तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया और देवों को भयभीत करने वाला पुत्र माँगा।

वृत्रनाम सुत वर विधि पायो। परम प्रतापी ऋषि घर जायो॥
सुत बड़ होत पिता अस कहेउ। तेरो भ्रात इन्द्रहनि दयेऊ॥
इसी हेतु मैं बड़ तप कीन्हा। सुत पायेउ तुम वर विधि दीन्हा॥
बदला लेहु इन्द्र सन जाहीं। तबहिं शांत मन मम होइ पाहीं॥

ब्रह्मा के वरदान से वृत्र नाम का प्रतापी पुत्र ऋषी त्रष्टा के घर उत्पन्न हुआ। जब वह बड़ा हुआ तो ऋषी ने उससे कहा—कि तेरे भाई का वध इन्द्र ने किया था, इसी कारण मैंने घोर तपस्या कर उनके वरदान से तुम्हें पाया, अत: इन्द्र से बदला उस भाई का तुम लो, तभी मेरे मन में शान्ति होगी।

दोहा— इसी हेतु सुत वृत्र ने, घोर तपस्या कीन्ह।
तेहि भय कारन इन्द्र ने, वह मारि बज्रते दीन्ह॥

बदले हेतु वृत्र ने जाकर घोर तपस्या की। उसकी घोर तपस्या देखकर इन्द्र को बहुत भय हुआ और उन्होंने दधीचि ऋषी की अस्थियों से बने वज्र से उसे मार डाला।

चौ०—ब्रह्मन वृत्र मारि इन्द्र जाहीं। ब्रह्महत्या त्योंही पीछा कराहीं॥
जहँ जहँ इन्द्र भागते जाहीं। तहँ तहँ हत्या पीछे ही धाहीं॥
ब्रह्महत्या, सुरापान, जो करहीं। गुरु स्त्री गमन चोरि अनुसरहीं॥
विश्वास घात अन्यनसन करहीं। बचना कठिन महापातक हीं॥

वृत्र ब्राह्मण को मारकर ज्यों ही इन्द्र चलने लगे त्यों ही ब्रह्महत्या ने उनका पीछा किया, जहाँ-जहाँ इन्द्र जाते वहाँ-वहाँ उनके पीछे वह हत्या भी जाती। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी गमन एवं विश्वासघात दूसरों के साथ करना ये महापातक हैं, इनसे बचना बड़ा कठिन है।

इन्द्रासन, इन्द्रानी त्यागेउ। इन्द्र तपस्या करने भागेउ॥
शिव आराधन मन में चीन्हा। रेवा क्षेत्र पहुँच तप कीन्हा॥
ग्रीष्म पंचाग्नि तपतें ही। वर्षा भीग खुले रह लेंही॥
भीजे वस्त्र पान शित रहेऊ। एहीं भाँति आराधन करेहू॥

देवराज परम दु:खित होकर इन्द्रासन और इन्द्राणी का परित्याग कर तप करने के लिये चले, मन में शिवाराधना के विचार से रेवा-क्षेत्र में पहुँचकर तप करने लगे, ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तपते, वर्षा में खुले मैदान में बैठकर भीजते रहते और शीतकाल में भीजे कपड़े पहन कर भगवान शिव की आराधना किया करते ।

दोहा— उग्र तपस्या करतहू, दस बीते वर्ष हजार।
शिव प्रसन्न होइ प्रकटेऊ, वर माँगो चित जो धार॥

इस प्रकार उग्र तप करते-करते जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब भगवान शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और कहने लगे कि जो तुमने हृदय में धारण कर रखी है वह वर मुझसे माँगो।

चौ०—सुर मुनि तेहि समय तहँ आये। बृहस्पति ने उन बचन सुनाये॥
आपुहेतु वृत्रा इन्द्र मारा। ब्रह्म हत्या तेहि लगी पिछारा॥
सकल जगत में घूमत भागे। कहूँ न शान्ति मन थिर लागे॥
हे देव देव उमापति वारा। वर दें पातकते छुटकारा॥

उसी समय समस्त देवता और ऋषी-मुनि भी वहाँ आ पहुँचे, तत्पश्चात् वृहस्पति ने देवताओं और ऋषियों से कहा—आप लोगों की रक्षा हेतु आज्ञा से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था उसी के कारण ब्रह्महत्या इनका पीछा नहीं छोड़ती, ये सम्पूर्ण जगत में घूम चुके पर कहीं भी शांति नहीं मिल सकी। हे देव देव! उमापते! इनको ऐसा वर दीजिये जिससे ये इस महापातक से छुटकारा पा जायँ ।

तब शिव ब्रह्माहि आज्ञा दीन्ही। चार भाग ब्रह्म हत्या कीन्हीं॥
एक भाग सरिता में डारा। दूसर भाग धरनि ने धारा॥
तीसर भाग रजस्वला नारी। चौथा विप्र सूद्र सेव कारी॥
इस प्रकार इन्द्र मुक्तहि भयऊ। ब्रह्महत्या चहुँ ओर हिं गयऊ॥

तब भगवान शंकर की आज्ञा से ब्रह्मा ने उस ब्रह्म-हत्या को चार भागों में बाँट दिया, एक भाग नदी में डाला, दूसरा पृथ्वी में, तीसरा रजस्वला स्त्री में और चौथा शूद्र सेवक ब्राह्मण में। इस प्रकार ब्रह्महत्या को चारों ओर भेजकर शिव ने इन्द्र को उस महान पातक से मुक्त किया।

दोहा— अति प्रसन्न हो इन्द्र से, बोले शिव भगवान।
और अन्य वर माँगहू, जो जियमें अनुमान॥

इस प्रकार हत्या से मुक्त करके भगवान शिव इन्द्र से बोले, मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, और अन्य वर माँगो। जो अपने हृदय में अनुमान किया हुआ है।

चौ०—हाथ जोरि विनय सुर कीन्हीं। मन मम एक कामना चीन्हीं॥
स्थापित शिवलिंग यहाँ करेऊ। उसमें सदा वास तुम रहेऊ॥

आराधन यहाँ जो जन करहहिं। महापातकन्ह उनके हरहहिं॥
इन्द्र प्रार्थना शिव ने मानी। अन्तार्हित भये अवढ़रदानी॥

इन्द्र ने हाथ जोड़ कर विनती की कि हे परमेश्वर! मेरे मन में एक कामना है कि मैं इस तीर्थ में शिवलिंग स्थापित करना चाहता हूँ, आप उसमें सदा विराजमान रहें और जो जन यहाँ आकर आपकी आराधना करें, उन भक्तों की महापातकों से मुक्त किया करें। इस प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान अवढ़रदानी शिव अन्तर्ध्यान हो गये।

विधि विहित रीति अपनाई। संस्थापना शिवलिंग कराई॥
नर्वदा दक्षिण तट करेऊ। इन्द्रेश्वर नामतेहि धरेऊ॥
जो जन जाकर पूजा करेऊ। महापातकन्ह शिवजी हरेऊ॥
अश्वमेध यज्ञहि फल पावैं। तेहि समान सद्ग्रन्थ बतावै॥

देवराज इन्द्र ने विधि विहित रीति से नर्वदा के दक्षिणी तट पर शिवलिंग का स्थापन किया। इस इन्द्र तीर्थ में स्नान करने तथा इन्द्र के द्वारा संस्थापित इन्द्रेश्वर नामक शिवलिंग की पूजा करने से महापातकी भी समस्त पापों से शिव पापों को हरण करके मुक्त कर देते हैं और महान अश्वमेध यज्ञ के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है, ऐसा सद्ग्रन्थ बताते हैं। इसका माहात्म्य स्कन्द पुराण रेवाखण्ड अ० 118/3940 में इस प्रकार दिया गया है–

इन्द्रतीर्थेतु यः स्नात्वा तर्पयेत पितृदेवताः।
महापातक युक्तोऽपि मुच्यते सर्व पातकैः॥
इन्द्रतीर्थेतु यः स्नात्वा पूजयेत परमेश्वरम्।
सोऽष्यूमेधस्य यज्ञस्य पुष्कलं फलमश्नुते॥

❋ देवताओं की शिवभक्ति ❋

प्राचीनकाल में नर्मदा के तट पर देव और दानव दोनों ही आनंद से निवास करते थे, समय परिवर्तन से दानवों की शक्ति अधिक हो गयी जिससे दोनों में घोर संग्राम हुआ, अंत में देवगण हारकर दानवों से भयभीत हो शरणागत वत्सल भगवान शिव की शरण में गये, उनको यह दृढ़ निश्चय था शिव शरणागत को कभी नहीं त्यागते उन्हीं को संतुष्ट करें। इसी बीच वृहस्पति बोल उठे–देवगणों तुम्हें दानवों को परास्त करने का यज्ञ करना चाहिये, यज्ञ से ही प्रभु संतुष्ट होते हैं, बृहस्पति जी की बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा, दानवों के भय से हम सबको तो मंत्र ही याद नहीं आते। देवता आपस में विचार कर ही रहे थे इतने में भक्तों के उद्धारक आशुतोष शंकर पाताल का भेदन कर 'ॐकार' पूर्वक 'भूर्भुवः स्वः' इन तीनों व्याहतियों का उच्चारण करते हुए महाप्रलय की अग्नि के समान पर्वत से लिंग रूप में निकल पड़े।

आदि अंत रहित लिंग रूप भगवान शिव ब्रह्मा से बोले—हे ब्रह्मदेव! तुम लोकों में शांति फैलाने वाले सौम्य यज्ञ को सानन्द करो। मैं तुम्हें वेदों को देता हूँ, तब ब्रह्मा ने आज्ञा पाकर सौमयज्ञ किया, ऐसा करने से देवताओं का बल बढ़ा देखकर दैत्यगण उनके भय से दसों दिशाओं की ओर भाग निकले। 'ॐकार' के प्रभाव से सभी देवता निर्भय हो गये, फिर महादेवजी का पूजन कर वे आनंद पूर्वक स्वर्ग को चले गये। कल्पांततक रहने वाले देवताओं और दैत्यों से नमस्कृत यह 'ॐकारेश्वर' महालिंग शिव सबको मोक्ष देने वाला है समस्त देवता कल्प के अंत में इसी लिंग में लीन हो जाते हैं। इसीसे इस लिंग को लोग अमर, ब्रह्मा, हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं। नर्मदा तट पर विद्यमान—

(1) मार्कण्डेय लिंग, (2) अविमुक्तलिंग, (3) केदार लिंग, (4) अमरेश्वर ॐकार लिंग और (5) महाकाल लिंग। इन पवित्र पाँचों लिंगों का जो प्राणी प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, वह सभी तीर्थों का फल पाकर शिवलोक में पूजित होता है।

यथा—**"सर्व तीर्थफलं प्राप्य शिवलोके महीयते॥"** *(रेवा खण्ड 47 ।46)*

❃ महर्षि वशिष्ठ की शिवोपासना ❃

दोहा— ब्रह्मवर्चस अरु अलौकिक, शिव शक्ति दीन्ह भगवान।
ते भक्ति से वशिष्ठ जी, महर्षि भये महान॥1॥
शिव आराधन में रहहिं, यमनियमदिन धारि।
कठोर तपहिं कीयो करें, यथाविधि मनहिं विचारि॥2॥
प्रातः अरु सायंकाल में, अगिनी होत्रहि कीन्ह।
गऊ नन्दिनी आश्रमहिं, विधि पूर्ण हेतु रख लीन्ह॥3॥

महर्षि वशिष्ठ एक महान ऋषी भगवान शंकर के अनुग्रह से हुए, उन्होंने ब्रह्मवर्चस और अलौकिक शक्ति उन्हें प्रदान की। शिव भक्ति से ही महान महर्षि हुए। वे महेश्वर की आराधना में कठोर तप किया करते थे। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों यमों तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इन पाँचों नियमों का वे यथाविधि पालन करते थे। प्रातःकाल और सायंकाल के समय अग्निहोत्र करने का उनका नियम था, इसी अग्निहोत्र विधि पूरी करने के लिये वे नंदिनी नामक गऊ को अपने आश्रम में रखते थे।

चौ०—प्राण से अधिक गौ प्रिय भारी। कष्ट उठाय करहिं रखवारी॥
विश्वामित्र गौ लैन विचारी। नहीं मिली तो शत्रुता धारी॥
युद्ध छिड़्यो चिरकालहिं भारी। वारहिंवार ऋषी से हारी॥
सुरधेनु कबहु न बांधी जाती। भ्रमण करन तेहि इच्छा साँधी॥

उन्हें यह गऊ प्राणों से भी अधिक प्रिय थी और इसकी रक्षा और सेवा के लिये वे सब कुछ कष्ट उठा सकते थे। इसी गौ के लिये उनको विश्वामित्र ने शत्रुता की, परिणामस्वरूप विश्वामित्र से चिरकाल तक युद्ध हो रहा, बार-बार विश्वामित्र हार जाते थे। सुरधेनु नन्दिनी कभी बाँधी नहीं जाती थी, उसे जब भ्रमण करने की इच्छा होती तो वन में जाकर घूमघाम आती।

एक दिन घूमत दूरि चलि गयेऊ। गढ़ढा बड़ा वहाँ एक भयेऊ॥
चरती वहीं जलाशय तट पर। गहराई का पता नहीं कर॥
फिसला पैर गिरी गढ़्ढ माँही। लौटि शाम तक आई नाँही॥
महर्षि अति चिंतित मन माँही। ढूढ़न हेतु वनहि तब जाहीं॥

एक दिन वह गौ आश्रम से भ्रमण करने के लिये कुछ दूर निकल गई, वहाँ एक बड़ा गढ्ढा था, उस गढ्ढे की गहराई का पता नहीं लगता था। नन्दिनी उस जलाशय के तट पर चर रही थी, उसी समय पैर फिसलने से वह उस गढ्ढे में गिर गई। सायंकाल समय था, प्रतिदिन नन्दिनी सूर्यास्त होने से पहले ही आ जाती थी, उस दिन वह रात होने पर भी नहीं आई तो महर्षि वशिष्ठ बड़े चिंतित हो गये और उसे ढूँढ़ने हेतु ऊबड़-खाबड़ वन में निकल पड़े।

दोहा— पहुँचे गढ्ढे पास में, सुनि सुरभी आवाज।
नन्दिनी के गिरजान का, मुनिहि भयो आगाज॥1॥

महर्षि ढूढ़ते हुए उसी गढ्ढे के पास पहुँचे, उसमें से करुण आवाज सुनकर मुनि को नन्दिनी के गिर जाने का पता लग गया।

तुरत महर्षि ने किया, सरस्वती आह्वान।
गढ्ढा जल से भर दिया महर्षि प्रार्थना मान॥2॥

महर्षि ने उसी समय तुरंत सरस्वती नदी का स्मरण किया, उनकी प्रार्थना मानकर सरस्वती ने अपने निर्मल जल से गढ्ढा भर दिया और गर्त को जल से पूर्ण कर दिया।

चौ०—नन्दिनी झट बाहर आ जाई। महर्षि साथ आश्रमहि धाई॥
परउपकारी महर्षि सोचेउ। अनेक जीव गिर गर्त विमोचेऊ॥
आवश्यक इसको भर देना। मर जाने का भय नहीं रहना॥
इसी हेतु पहुँचे हिम आलय। गर्त की बात सुनाई जीव घालय॥

जब गर्त जल से पूरा भर गया तो नन्दिनी झट बाहर आ गई, परोपकारी वशिष्ठ ने सोचा कि इस महागर्त का रहना जीवों के लिये बहुत हानिकर है और अनेक जीव जन्तुओं के इस विवर में गिरकर मर जाने का भय है; इसलिये इसको अटा देना परम आवश्यक है, इस विचार से पर्वतराज हिमालय के यहाँ गये और उस गर्त की बातें उन्हें बतलाईं जो जीवों को कष्ट देने का कारण बना था।

भेजो कोऊ गिरि उसे अटावै। गर्त तवहि वो मिटने पावै॥
पर्वत राज कहेउ अस बानी। मैं तैयार भेज जिय जानी॥
पहले पर्वत पक्षहिं सहिता। बज्र से काटि इन्द्र पक्ष रहिता॥
पर्वत अचल तबहि होइ जाहीं। क्या उपाय पहुँचे वहाँ मांही॥

पुनः वशिष्ठ ने हिमालय से किसी पर्वत द्वारा उस गर्त को भर देने के लिये कहा, इस पर हिमालय ने कहा—मैं तो पर्वत भेजने के लिये तैयार हूँ, पर उसे वहाँ तक पहुँचने का उपाय क्या है ? पहले पर्वतों के पक्ष थे, वह इन्द्र ने वज्र से काट दिये, तभी से पर्वत अचल हैं।

दोहा— नन्दिवर्धनपुत्रतेहि, मित्र अर्बुदहि नाम॥
शक्ति उड़ने की उसे, पूर्ण करे ये काम॥

वशिष्ठ ने कहा—"हे पर्वतोत्तम! आपका कहना तो ठीक है पर आपके नन्दिवर्धन पुत्र का अर्बुदनाम वाला एक मित्र है, उसमें उड़ने की शक्ति है, वह यदि चाहे तो नंदिवर्धन को क्षण भर में वहाँ पहुँचा देगा, तभी पूरा कार्य हो सकता है ।

चौ०— भये बड़ संकट तबहि हिमालय। मैनाक डरा पक्ष छेदन सालय॥
एक पुत्र सागर छिप जाहीं। दूसर लेन यहाँ तुम आँहीं॥
किस प्रकार सुख पुत्र वियोगा। साथ महर्षि कोपहिं जोगा॥
नहिं मानूँ कुछ शाप न देवे। अच्छा यही पुत्र भेज सेवैं॥

हिमालय बड़े संकट में पड़ गये, एक पुत्र मैंनाक पक्षच्छेद के भय से सागर में छिपकर जा बैठा, दूसरे को आप लेने आ गये। पुत्रों के वियोग में जीवन किस प्रकार सुख से बीतेगा ? मुझे इस बात की भारी चिंता है पर इसके साथ-साथ इसका भी भय था कि कहीं वशिष्ठजी प्रतिज्ञा भंग से कुपित होकर शाप न दे दें। उन्होंने पुत्र वियोग को ब्राह्मण शाप से अच्छा समझकर नन्दिवर्धन को वहाँ जाने का आदेश दे दिया वशिष्ठ जी की सेवा हेतु।

पुत्र पिता से कहने लागा। जाउँ वहाँ वन मैं ही अभागा॥
देश बुरा फल पुष्पित नाहीं। तरु पलास सेंमर तहँ माँहीं॥
कोल, भील भयंकर जाती। सरिता अच्छी कोई न कहाती॥
सेवा छोड़ पदों की जाऊ। जाकर वहाँ का कष्ट उठाऊँ॥

नन्दिवर्धन ने विनय पूर्वक अपने पितासे कहा—पिताजी-वह देश तो बहुत ही बुरा है, वहाँ पलास, खैर, धत सैमर आदि वृक्ष हैं, उनमें न सुगंधित पुष्प हैं और न मधुर फल ही होते हैं। भयंकर कोल, भील आदि दुष्ट जातियाँ ही उस प्रांत में वास करती हैं, वही कोई अच्छी नदी भी नहीं बहती जिससे रमणीयता आ सके और सबसे प्रधान बात यह है कि आपके चरणों की सेवा छोड़कर मुझे कहीं दूसरी जगह जाने में बड़ा कष्ट होगा।

दोहा— वशिष्ठ कहा नन्दिवर्धनहि, चिंता न करो वहाँ जाय।
शिखिर तुम्हारे मैं करूँ, स्वयं निवास बसाय॥1॥
विमल सलिल लहरावती, नदियाँ लऊँ बुलाय।
ताते मनोहर वृक्ष भी, पुष्पित फल लहराय॥2॥
तब शोभा उस देशकी, होय अलौकिक जान।
पक्षिन्ह की रमणीयता, कलरव करते रहे गान॥3॥
मैं निज तप बल से वहाँ, प्रतिष्ठित शिव भगवान।
जनम सफल आकर करहिं, बहु संख्या लोग जहान॥4॥

वशिष्ठजी ने कहा—नन्दिवर्धन, तुम वहाँ की कुछ भी चिन्ता मत करो, तुम्हारे शिखर पर मैं नित्य स्वयं निवास करूँगा॥1॥ विमल सलिल से लहराती हुई नदियाँ बुलाऊँगा जिससे मनोहर पत्र, पुष्प और फलों से परिपूर्ण वृक्षों से देश लहराता रहेगा॥2॥ उस देश की अलौकिक शोभा हो जायेगी, मनोहर कलरव गान करने वाले असंख्य पक्षियों से उसकी रमणीयता बढ़ जायेगी अर्थात् देखते ही बनेगी॥3॥ इसके अतिरिक्त मैं अपनी तपस्या के बल से भगवान् शंकर को प्रतिष्ठित कर उस प्रदेश का इतना महत्व बढ़ा दूँगा कि पृथ्वी के सभी प्रान्तों के लोग सहस्त्रों की संख्या में वहाँ आकर अपना जन्म सफल करेंगे॥4॥

चौ०—सबहिं देव वहाँ आकर बसहीं। सुनि मुनि बच पर्वत हर्षितहीं॥
तब नंदिवर्धन अर्बुद सहिता। स्वयं गर्त गिरि ताकूँ भरिता॥
अर्बुद स्वयं वहीं रह गयेऊ। द्वय पर्वत लखि (मुनि) हर्षित भयेऊ॥
अतिप्रसन्न मैं तुमसे भयेऊ। जो वर चाहु माँगि तुम लयेऊ॥

वहाँ सभी देवताओं का वास होगा। मुनि के वचन सुनकर नन्दिवर्धन को बड़ी प्रसन्नता हुई, हर्षित हुआ और वह अर्बुद की सहायता से वहाँ पहुँचा, अर्वुदाचल ने नन्दिवर्धन को उस गर्त में छोड़ दिया और स्वयं भी वहीं रह गया। उन दोनों पर्वतों को देख वशिष्ठजी बड़े मोद से प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगों को जो वर की चाहना हो माँग लो मैं अति प्रसन्न हूँ।

अर्वुद कहा महर्षि सुनि लेऊ। यदि प्रसन्न तुम अस वर देऊ॥
मम निर्मल वारिभरित रहै सोही। नागतीर्थ ख्याति जगमें हो ही॥
जो स्नान करन जन आवै। मुक्ति पाइ प्रभु धामहिं जावैं॥
बन्ध्या स्त्री मज्जन करई। ताकी गोद पुत्र से भरई॥

अर्वुदाचल ने कहा कि—महर्षे! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे इस निर्मल सलिल से परिपूर्ण झरने की ख्याति संसारभर में 'नागतीर्थ' के नाम से हो जाय, इसमें स्नान करने से मनुष्य को परमधाम मिले। यदि बन्ध्या स्त्री भी इसमें स्नान करले तो उसकी गोद भी पुत्र से भर जाये।

दोहा— एवमस्तु कहि वशिष्ठ ने, प्रसन्न पूर्वक ताहि।
तव नंदिवर्धन से कहा, कहौ तुम्हें क्या चाहि॥

श्री वशिष्ठ जी ने प्रसन्नता पूर्वक "ऐसा ही होगा" यह कहा। तब नन्दिवर्धन से बोले, बताओ तुम क्या चाहते हो, माँग लो।

चौ०—नन्दिवर्धन माँगि लयेऊ। मुनि सर्वदा यहाँ तुम रहेऊ॥
'अर्वुद' नाम स्थानहिं होई। इसकी प्रसिद्धि कहै सब कोई॥
वर दे आश्रम वहीं बनाया। अरुन्धती सहित सुख पाया॥
गोमती सरिता तप से बुलाई। स्नान करैं जो स्वर्गहिं जाई॥

तदानन्तर नंदिवर्धन ने वर माँगा कि आप सर्वथा यहाँ निवास करें और इस स्थान का 'अर्वुद' नाम प्रसिद्ध हो। वशिष्ठ जी ने इन दोनों वरों को देकर उसी पर्वत पर अपना स्थायी आश्रम बनाया और देवी अरुन्धती के साथ सुख पूर्वक वहाँ रहने लगे। अपनी तपस्या के प्रभाव से वे गोमती नदी को वहीं ले आये जिसमें स्नान करने से घोर पाप करने वाला भी मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त होता है।

माघमास स्नान करहिं जन। जेते तिल दान देंहिंहर्षित मन॥
उतने ही वर्ष स्वर्ग में रहेऊ। सुक्ख अलौकिक भोगत भयेऊ॥
अस सौंदर्य माहात्म्य बढ़ाया। मुनि संतोष नहीं उर आया॥
शिव भगवान बिना सब सूना। मंदिर होइ सुख मिले दिन दूना॥

माघ के महीने में मनुष्य इसमें स्नान कर जितने तिलों का दान करता है, उतने वर्ष तक स्वर्ग में अलौकिक सुख भोगता है, उस स्थान का इतना सौंदर्य और माहात्म्य बढ़ने पर भी वशिष्ठजी के हृदय में संतोष नहीं हुआ और दयासागर भगवान शिव के बिना वह प्रान्त सूना सा प्रतीत होता था, मंदिर हो तो दिन-दूना सुख मिले।

दोहा— शिव मन्दिर जहँ होइ नहिं, कितना भी सुंदर जान।
वही देश कुदेश है, समझ लेउ मनमान॥

जिस देश में शिव का मन्दिर न हो वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो, कुदेश ही है, ऐसा मन में समझ लेना चाहिये।

चौ०—तब वशिष्ठ शिवाराधन कीन्हा। शतवर्षहि केवल फल लीन्हा॥
सूखे पात द्वै सत ही खाये। शत पंच वर्ष जल पीय बिताये॥
एक हजार वर्ष वायु पासी। तब प्रसन्न भै शिव सुखरासी॥
पर्वत भेद उसी समै ताही। सुन्दर लिंग प्रकट होइ जाही॥

इसलिये वशिष्ठ जी ने महादेव जी की आराधना में दुष्कर तप करना प्रारम्भ कर दिया, सौ वर्ष तक उन्होंने केवल फलों का आहार किया, दो सौ वर्ष तक केवल सूखे पत्ते खाकर रहे, पाँच सौ वर्ष केवल जल पीकर बिताये और एक हजार वर्ष तक केवल हवा का भक्षण कर भगवान शिव की आराधना करते रहे, तब सुखरासी

भगवान शिव प्रसन्न हुए, उसी समय पर्वत को भेदकर उनके सामने एक परम सुन्दर शिवलिंग प्रकट हुआ (अर्वुद गिरि पर 'अचलेश्वर' महादेव हैं)।

लखिशिवलिंगहिं अति अनुरागे। स्तुति करन तबहिं उन लागे॥
लिंगहिं से निकली ये बानी। हे मुनि! तुम्हरे मन की जानी॥
करहुँ निवास लिंग में याँहीं। तुम्हारी अभिलाषा मन माँही॥
जो मनुष्य पूजन को आँही। मन्दाकिन सरिता में नहाँही॥

उस शिवलिंग को प्रकट होते सामने आश्चर्य सहित अनुराग का भाव जाग गया और उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर उसी लिंग में से यह वाणी निकली कि हे मुने! तुम्हारे मन की मुझे सब बातें ज्ञात हैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये मैं आज से सदा इस शिवलिंग में निवास करूँगा, इसके पूजन से मनुष्यों को सब प्रकार से सुख प्राप्त होंगे। मेरी प्रसन्नता के लिये इन्द्र द्वारा भेजी गई त्रैलोक्य पावनी मंदाकिनी में स्नान कर जो इस 'अचलेश्वर' लिंग का दर्शन करेगा वह जरा और मरण से रहित परम पद को प्राप्त होगा।

दोहा— मंदाकिन स्नान कर, अचलेश्वर दर्शन पाँय।
जरा-मरण से रहित ह्वै, परम धाम वे जाँय॥

इतना वरदान देकर भगवान शिव अन्तर्धान हो गये, और वशिष्ठजी भगवान शंकर के अनुग्रह से अत्यन्त प्रसन्न होकर अनेक तीर्थों और देवों को वहाँ ले आये।

(प्रभास खण्ड अर्वुद0 अध्याय 1-4)

श्लोक— शिवेति द्वयक्षरंनामव्याहरिष्यन्ति ये जनाः।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चान्यथा॥"

जो लोग 'शिव' इस दो अक्षर के नाम का उच्चारण करेंगे उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।



❃ कल्पान्त जीवी महामुनि मार्कण्डेयजी की शिवोपासना ❃

श्लोक— तस्मैनमोभगवते पुरुषाय भूम्रे विश्राय विश्रृगुरवेय पर देवतायै।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय॥

(श्रीमद्‌भागवत 12 ।8 ।47)

"उन ऐश्वर्याधीश, परम पुरुष, सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्व के परम गुरु एवं परमदेवता, हंस स्वरूप, वाणी को वश में रखने वाले (मुनिरूप धारी) मुनियों के भी आराध्य भगवान नारायण तथा ऋषिश्रेष्ठ नर को नमस्कार है।

भगवान ने तप का आदर्श स्थापित करने के लिये ही नर-नारायण स्वरूप धारण किया है, वे सर्वेश्वर तपस्वी ऋषियों के रक्षक एवं आराध्य हैं। मृकण्डु ऋषि के पुत्र मारकण्डेयजी नेष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत लेकर हिमालय की गोद में पुष्पभद्रा नदी के किनारे उन्हीं ऋषी रूपधारी भगवान नर-नारायण की आराधना कर रहे थे। उनका चित्त सब ओर से हट कर भगवान में ही लगा रहता था। मार्कण्डेय मुनि को जब इस प्रकार भगवान की आराधना करते बहुत वर्ष व्यतीत हो गये, तब इन्द्र को उनके तप से भय होने लगा। देवराज ने वसंत, कामदेव, तथा पुञ्जिकरस्थला अप्सरा को मुनि की साधना में विघ्न करने के लिये वहाँ भेजा। सभी ने जिनके पास जो सामर्थ्य थी उनके तप में सेंध लगाई, पर मार्कण्डेयजी का चित्त भगवान नर-नारायण में लगा हुआ था अतः भगवान की कृपा से उनके हृदय में कोई विकार नहीं उठा। मुनि की ऐसी दृढ़ अवस्था देखकर काम आदि डरकर भाग गये, मार्कण्डेय में काम को जीत लेने का गर्व भी नहीं आया और भावविमुग्न हो गये। उनका भगवान के दर्शनों को हृदय आकुल हो उठा, उनकी व्याकुलता से द्रवित हो भगवान उनके सामने प्रकट हो गये, भगवान के मंगलमय भव्य स्वरूप को देखकर मार्कण्डेयजी हाथ जोड़कर भूमि पर गिर पड़े।

भगवान ने उन्हें स्नेहपूर्वक उठाया, मार्कण्डेयजी ने किसी प्रकार कुछ देर में अपने को स्थिर किया तब भगवान की भलीभाँति पूजा की, भगवान ने उनसे वरदान माँगने को कहा—मार्कण्डेय जी ने भगवान से कहा—प्रभो! आपके श्री चरणों का दर्शन हो जाय, इतना ही प्राणी का परम पुरुषार्थ है, आपको पा लेने पर फिर तो कुछ पाना शेष रह ही नहीं जाता, किंतु आपने वरदान माँगने की आज्ञा दी है अतः मैं आपकी माया देखना चाहता हूँ।

भगवान तो 'एवमस्तु' कहकर अपने आश्रम बदरीबन को चले गये, और मार्कण्डेयजी भगवान की आराधना ध्यान तथा पूजन में लग गये। सहसा ऋषी ने

एक दिन देखा कि दिशाओं को काले-काले मेघों ने ढ़क लिया है बड़ी भयंकर गर्जना, बिजली की कड़क के साथ मूसल के समान मोटी-मोटी धाराअें से पानी बरसने लगा। इतने में ही चारों ओर से समुद्र बढ़ आये और समस्त पृथ्वी प्रलय के जल में डूब गयी, मुनि उस महासागर में विक्षिप्त की भाँति तैरने लगे, भूमि, वृक्ष, पर्वत आदि सब डूब चुके थे, सूर्य, चन्द्रमा, तारों का भी कहीं पता नहीं था। सब ओर घोर अंधकार था, भीषण प्रलय-समुद्र की गर्जना ही सुनाई पड़ती थी। उस समुद्र की बड़ी-बड़ी भयंकर तरंगें कभी मुनि को यहाँ से वहाँ फेंक देती थीं कभी कोई जल-जन्तु उन्हें काटने लगता था और कभी वे जल में डूबने लगते थे, जटाएँ खुल गयी थीं, बुद्धि विक्षिप्त हो गयी थी। शरीर शिथिल होता जाता था, व्याकुल होकर भगवान का स्मरण किया।

भगवान का स्मरण करते ही मार्कण्डेय जी ने देखा कि सामने ही एक बहुत बड़ा वट का वृक्ष उस प्रलय सागर में खड़ा है पूरे वृक्ष पर कोमल पत्ते भरे हुए हैं, आश्चर्य से मुनि और समीप आ गये, उन्होंने देखा कि वटवृक्ष की ईशान कोण की शाखा पर पत्रों के सट जाने से बड़ा सा सुन्दर दोना बन गया है उस दोने में एक अद्‌भुत बालक लेटा हुआ है वह नवजलधर सुंदर श्याम है। उसके कर एवं चरण लाल-लाल अत्यन्त सुकुमार हैं उसके त्रिभुवन सुन्दर मुख पर मंद-मंद हास्य है, बड़े-बड़े नेत्र प्रसन्नता से खिले हुए हैं, श्वाँस लेने से उसका सुन्दर त्रिवली भूषित पल्लवित समान उदर तनिक-तनिक ऊपर-नीचे हो रहा है। उस शिशु के शरीर का तेज इस घोर अंधकार को दूर कर रहा है। शिशु अपने हाथों की सुंदर उँगलियों से दाहिने चरण को पकड़कर उसके अँगूठे को मुख में लिये चूस रहा है, मुनि को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, उन्होंने प्रणाम किया—

"करारविन्देन पदारविन्दं मुखार विन्दे विनिवेशयन्तम्।
बटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि॥

उनकी सब थकावट उस बालक को देखते ही सब दूर हो गयी, वे उसे गोद में लेने के लिये लालायित हो उठे और उसके पास जा पहुँचे, पास पहुँचते ही उस शिशु के श्वाँस से खिंचे हुए मुनि विवश होकर उसकी नाशिका के छिद्र से उसी के उदर में चले गये।

मार्कण्डेयजी ने शिशु के उदर में पहुँचकर जो कुछ देखा उसका वर्णन नहीं हो सकता, वहाँ सब ब्रह्माण्डों की सब वस्तुएँ, जीव-जन्तु, समुद्र, नदी, सरोवर, वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, तारागण, प्रभृति, पर्वत आदि सहित पृथ्वी भी प्राणियों से पूर्ण दिखाई दी। पृथ्वी पर घूमते हुए वे शिशु के उदर में ही हिमालय पर्वत पर पहुँचे वहाँ पुष्प महानदी और उसके तटपर अपना आश्रम भी देखा। यह सब देखने में उन्हें अनेक युग बीत गये, वे विस्मय से चकित हो गये, तब उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। इसी समय उस

शिशु के श्वाँस छोड़ने से श्वाँस के साथ ही वे फिर बाहर उसी प्रलय-समुद्र में गिर पड़े, फिर उन्हें वही दृश्य, वही वटवृक्ष और उस पर वही अद्‌भुत सौन्दर्य का शिशु दिखाई पड़ा। अब मुनि ने उस बालक से ही इस सब दृश्य का रहस्य पूछना चाहा। जैसे ही वे कुछ पूछने को हुए सहसा सब अदृश्य हो गया। मुनि ने देखा कि वे तो अपने आश्रम के पास पुष्पभद्रा नदी के तट पर सन्ध्या करने वैसे ही बैठे हैं, वह शिशु वह वट वृक्ष, वह प्रलय, समुदअ आदि कुछ भी वहाँ नहीं है, भगवान की कृपा समझकर मुनि को बड़ा ही आनन्द हुआ।

भगवान ने कृपा करके अपनी माया का स्वरूप दिखलाया कि किस प्रकार उन सर्वेश्वर के भीतर ही समस्त ब्रह्माण्ड है, उन्हीं से सृष्टि का विस्तार होता है और फिर सृष्टि उनमें ही लय हो जाती है, इस कृपा का अनुभव करके मुनि मार्कण्डेय ध्यानस्थ हो गये उनका चित्त दयामय भगवान में निश्चल हो गया। इसी समय उधर से नन्दी पर बैठे पार्वती के साथ भगवान शंकर निकले-मार्कण्डेयजी को ध्यान में एकाग्र देख भगवती उमा ने शंकर से कहा 'नाथ'! ये मुनि कितने तपस्वी हैं, कैसे ध्यानस्थ हैं? आप इन पर कृपा कीजिये क्योंकि तपस्वियों की तपस्या का फल देने में आप समर्थ हैं।

दोहा— शंकर ने कहा—पार्वती, ये हरिभक्त महान।
अनन्य भक्त भगवान के, नहीं कामना आन॥

भगवान शंकर ने कहा—पार्वती! ये मारकण्डेयजी हरि भगवान के अनन्य भक्त हैं, ऐसे भक्त कामना रहित होते हैं।

चौ०—हरि प्रसन्न अन और न कामा। दर्शन हेतु रहहिं अविरामा॥
बड़े भाग्य अवसर मिलिजाहीं। करूँ वार्ता लाय मन मांही॥

ऐसे भक्तों को भगवान की प्रसन्नता के अतिरिक्त और मैं कोई कामना नहीं है केवल भगवान का दर्शन अविराम करते रहते हैं। उनसे वार्तालाप का अवसर बड़े भाग्य से मिलता है, अत: मेरे मन में इनसे बातचीत करने का हो रहा है। ऐसा कहकर शंकर भगवान मुनि के समीप गये, किंतु ध्यानस्थ मुनि को कुछ पता न लगा, वे तो भगवान के ध्यान में शरीर और संसार को भूल गये थे, शंकर जी ने योगबल से उनके हृदय में प्रवेश किया, हृदय में, त्रिनयन, कर्पूरगौरं शंकरजी का अकस्मात दर्शन होने से मुनिजी का ध्यान भंग हो गया।

मुनि ने नेत्र खोले तब दयेऊ। शंकर देखि प्रसन्नहि भयेऊ॥
पार्वती-शिव पूजन करेऊ। मुनि पूजन दोनों मन भरेऊ॥
मुनि से कहा शंकर भगवाना। माँगि लेउ मोतें वरदाना॥
मुनि प्रार्थना करने लागेउ। हे दयामय तुम अनुरागेऊ॥

नेत्र खोलने पर भगवान शंकर को आया देख वे बड़े प्रसन्न हुए उन्होंने पार्वती

के साथ शिव का पूजन किया, भक्तवत्सल भगवान शंकर व पार्वती दोनों के मन में पूजा से मन में उठे भाव से कहा कि आप वर माँग लें, मुनि उनसे प्रार्थना करने लगे कि हे दयामय तुम्हारा अनुराग मेरे प्रति हुआ है तो—

दोहा— अविचल भक्ति हरि प्रभु में, रहै सतत अविराम।
भक्तन प्रति अनुराग होय, थिर श्रद्धा ममतुव नाम॥1॥

वेदयामय! आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान दें कि भगवान हरि में मेरी अविचल भक्ति हो, भगवत भक्तों के प्रति मेरे मन में अनुराग रहे और आपके नाम में मेरी स्थिर श्रद्धा रहे।

दोहा— एवमस्तु शंकर कहेउ, दे पुराणाचार्य वरदान।
कल्पान्त तक जीवित रहें, जिय मांहि लेउ यह जान॥2॥

शंकर जी ने 'एवमस्तु' कहकर मुनि को कल्पान्त तक अमर रहने और पुराणाचार्य होने का वरदान दिया मार्कण्डेय पुराण के उपदेशक मार्कण्डेय मुनि ही हैं।

चौ०— इनके मातु-पिता तप ध्याया। शिव वर से मारकण्डेय पाया॥
सोलह वर्ष उमरि उन दीन्हीं। सोलहवें वर्ष चिंतापितु कीन्हीं॥
छाया शोक हृदय मुनि भारी। चिंता कारण सुत पूछि विचारी॥
कहेउ मृकण्डु सुत उमरि तिहारी। सोलह वर्ष बाद मृत्यु अगारी॥

पद्मपुराण उपखण्ड में आया है कि इनके पिता मुनि मृकण्डु ने अपनी पत्नी के साथ घोर तपस्या करके भगवान शिव को प्रसन्न करके उनके ही वरदान से मार्कण्डेय को पुत्र रूप में पाया था, परंतु शंकरजी ने उन्हें केवल सोलह वर्ष की आयु ही उस समय दी थी अतः मार्कण्डेय की आयु का सोलहवाँ वर्ष प्रारम्भ होने पर ही मृकण्डु मुनि का हृदय शोक से भर गया, पिताजी को उदास देखकर जब मार्कण्डेयजी ने उदासी का कारण पूछा तब मृकण्डु मुनि ने कहा-बेटा! भगवान शंकर ने तुम्हें सोलह वर्ष की ही आयु दी है उसके बाद मृत्यु सामने है समाप्ति का समय आ पहुँचा है। इसीसे मुझे शोक सता रहा है।

चौ०— पुत्र कहेउ पित शोक न करेऊ। मैं प्रसन्न शिवहिं कर रहेऊ॥
ऐसा यतन करउँ मैं सोई। मृत्यु मेरी कबहु नहिं होई॥
मातु-पिता से आज्ञा लयेऊ। सिंधु तटे दक्षिण चलि गयेऊ॥
तहँ शिवलिंग स्थापन किया। आराधन में चित धरि लिया॥

पिताजी की बात सुनकर मार्कण्डेय ने कहा—'पिताजी आप शोक न करें, मैं भगवान शंकर को प्रसन्न करके ऐसा यत्न करूँगा कि मेरी मृत्यु हो ही नहीं। तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा लेकर मार्कण्डेयजी दक्षिण समुद्र तट पर जाकर विधिपूर्वक शिवलिंग की स्थापना करके आराधना में अपना चित्त लगा दिया।

चौ०—समय पाइ काल आ जबही। कहा मारकण्डे उन तबही॥
मृत्युंजय पूराकरिलयऊँ। तब तक ठहर मान जिय भरिहहुँ॥

समय पर काल आ पहुँचा। मार्कण्डेय ने काल से कहा—मैं शिवजी का मृत्युंजय स्तोत्र से स्तवन कर रहा हूँ इसे पूर्ण कर मन में भर लूँ अर्थात् इसके पूरा हो जाने दो तब तक तुम ठहर जाओ।

दोहा— तबहि काल कहने लगा, कबहु न ऐसा होइ।
मारकण्ड बोले तबहि, शंकर का बल मोइ॥1॥
सोरठा-फटकाराजब काल को, ग्रसन हेतु क्रोधित भयेउ।
कालहुका महाकाल सो तुरत लिंग से प्रकट भै॥2॥

काल ने कहा—ऐसा कभी नहीं हो सकता। तब मार्कण्डेय जी ने शंकर के बल पर काल को फटकारा। काल ने क्रोध में भरकर ज्यों ही मारकण्डेय को हठपूर्वक ग्रसना चाहा त्योंही स्वयं काल के भी महाकाल महादेवजी उसी लिंग से तुरंत प्रकट हो गये।

चौ०—हुंकार भयंकर कीन्हीं भारी। वक्ष लात कालहि दै मारी॥
दूर गिरा शिवचरण प्रहारा। पीड़ित भयो कष्ट दुःख भारा॥
भयानक आकृति मारकण्ड देखी। दूर पड़ा दुःख पाया विशेखी॥
पुनः मारकण्ड स्तोत्रहि कीन्हा। निम्न प्रकार स्तोत्रहि चीन्हा॥

भगवान शिवशंकर ने भयंकर हुंकार मेघ के समान गर्जना करते हुए उन्होंने काल की छाती में लात मारी। मृत्यु देवता उनके चरण प्रहार से पीड़ित कष्ट दुःख सहते हुए दूर जा पड़े। भयानक आकृति वाले काल को दूर देख मार्कण्डेय जी ने पुनः इसी स्तोत्र से भगवान शंकरजी का स्तवन किया, जो निम्न प्रकार है—

(पद्मपुराण उत्तर० 237।75-90) द्वारा

स्तोत्र— रत्नसानुशरासनं रजताद्रिश्रृंग निकेतनम्।
शिंज्जिनीकृत पन्नगेश्वर मच्युतानल सायकम्॥
क्षिप्र दाधपुर त्रयं त्रिदशाल यैरभिबन्दितं।
चन्द्रशेखर माश्रयेममकिं करिष्यति वैयमः॥1॥

पंच पादप पुष्प गान्धौ पदाम्बुज द्वय शोभितं
भाललोचन जात पावक दग्धमनमथ विग्रहम्।
भस्म दिग्ध कलेवरं भवनाशिनं भवभव्ययं
चन्द्रशेखर माश्रये भक्तिं करिष्यति वैयमः॥2॥

मत्तवारण मुख्यचर्मकृतोन्तरीय मनोहरं
पङ्कजासन पद्मलोचन पूजिताङ्घ्रिसरोरुहम्॥

देवसिद्धतरङ्गिणी करिसिक्त शीतजटाधरं
चन्द्रशेखर माश्रये मम किंकरिष्यति वै यम ॥3॥
कुण्डलीकृत कुण्डलीश्वर कुण्डलं वृषवाहनं
नारदादि मुनीश्वरस्तुत वैभवं भुवनेश्वरम्।
अन्धकान्त माश्रितापरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखर माश्रये मम किंकरिष्यति वैयमः ॥4॥
यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्ग विभूषणं
शैलराज सुतापरिष्कृत चारुवाम कलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वध धारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये ममकिंकरिष्यति वै यमः ॥5॥
मेषजं भवरोगिणामखिला पदामपहारिणं
दक्ष यज्ञ विना शिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्त मुक्तिफल प्रदं निखिलाघसङ्गनिर्बहणं
चन्द्रशेखर माश्रये ममकिं करिष्यति वैयमः ॥6॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधि भक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेय मनूपमम्॥
भूमिवारिनभोहुताशन सोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रयेमम किं करिष्यति वैयम् ॥7॥
विश्वसृष्टि विधायिनं पुनरेवपालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपंच्चम शेषलोक निवासिनम्!
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथ यूथसमावृतं
चन्द्रशेखरमाश्रये ममकिं करिष्यति वै यम ॥8॥



रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकंठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥1॥
कालकंठ कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किंनो मृत्युकरिष्यति ॥2॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरूपद्रवम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥3॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥4॥
देवदेवं जगन्नाथ देवेशमृषमध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥5॥

अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥6॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपद कारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
स्वर्गापवर्ग दातारं सृष्टि स्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥

अर्थ—कैलाश के शिखर पर जिसका निवास गृह है जिन्होंने मेरुगिरि का धनुष, नागराज वासुकि की प्रत्यंचा और भगवान विष्णु को अग्निमय वाण बनाकर तत्काल ही दैत्यों के तीनों पुरों को दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणों की वन्दना करते हैं उन भगवान शंकर चन्द्रशोर की मैं शरण लेता हूँ, यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥1॥

मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन, इन पाँच दिव्य वृक्षों के पुष्पों से सुगन्धित युगल चरण-कमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्र से प्रकट हुई आग की ज्वाला में कामदेव के शरीर को भस्म कर डाला था जिनका श्री विग्रह सदा भस्म विभूषित रहता है, जो भव-सबकी उत्पत्ति के कारण होते हुए भी भव-संसार के नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥2॥

जो मतवाले गजराज को मुख्य चर्म की चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरण कमलों की पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धों की नदी गंगा की तरंगों से भीगी हुई शीतल जटा धारण करते हैं, उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥3॥

गेंडुकी मारे हुए सर्पराज जिनके कानों में कुण्डल का काम देते हैं जो वृषभ पर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभव की स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनों के स्वामी अंधकासुर का नाश करने वाले, आश्रित जनों के लिये कल्पवृक्ष के समान और यमराज को भी शांत करने वाले हैं, उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥4॥

जो यक्षराज कुबेर के सखा, भग देवता की आँख फोड़ने वाले और सर्पों के आभूषण धारण करने वाले हैं जिनके श्रीविग्रह के सुन्दर वाम भाग को गिरिराज किशोरी उमा ने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीने के कारण जिनका कण्ठ भाग नीले रंग का दिखाई देता है जो एक हाथ में फरसा, दूसरे में मृगमुद्रा धारण किये रहते हैं, उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥5॥

जो जन्म-मरण के रोग से ग्रस्त पुरुषों के लिये औषध रूप हैं समस्त आपत्तियों का निवारण और दक्ष-यज्ञ का विनाश करने वाले हैं सत्व आदि तीनों गुण जिनके

स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशि का संहार करते हैं उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥6 ॥

जो भक्तों पर दया करने वाले हैं, अपनी पूजा करने वाले मनुष्यों के लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं जो सब भूतों के स्वामी, परात्पर, अप्रिय और उपमा रहित है, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमा के द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है। उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥7 ॥

जो वृक्षरूप से सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करते, फिर विष्णु रूप से सबके पालन में संगल्न रहते और अंत में सारे प्रपंच का संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकों में जिनका निवास है तथा जो गणेश जी के पार्षदों से घिरकर दिन-रात भाँति-भाँति के खेल किया करते हैं, उन भगवान चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ? ॥8 ॥

जो दुःख को दूर करने के कारण रुद्र कहलाते हैं, जीवरूपी पशुओं का पालन करने से पशुपति, स्थिर होने से स्थाणु, गले में नीला चिन्ह धारण करने से नीलकण्ठ और भगवती उमा के स्वामी होने से उमापति, नाम धारण करते हैं, उन भगवान शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ? ॥1 ॥

जिनके गले में काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्नि-स्वरूप और काल के नाशक हैं, उन भगवान शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ? ॥2 ॥

जिनका कंठ नीला और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रव रहित हैं, उन भगवान शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ? ॥4 ॥

जो देवताओं के भी आराध्य देव, जगत के स्वामी और देवताओं पर भी शासन करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा पर वृषभ का चिन्ह बना हुआ है, उन भगवान शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ? ॥5 ॥

जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखों का हरण करने वाले हैं, उन भगवान शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ? ॥6 ॥

जो परमानन्द स्वरूप, नित्य एवं कैवल्य पर मोक्ष की प्राप्ति के कारण हैं, उन भगवान शिव को मैं मस्तक झुका कर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ? ॥7 ॥

जो स्वर्ग और मोक्ष के दाता तथा सृष्टि, पालन और संहार के कर्ता हैं, उन

भगवान शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी? ॥8॥

इस प्रकार श्री शंकर जी की कृपा से मार्कण्डेय जी ने मृत्यु पर विजय लाभ किया था।

'महेश्वर' सवैया-

कैसे महेश्वर हैं तन में, जब छार लपेटिकें बैल सवार है।
भक्तन के उभयंकर साथ प्रयंकर भूत-प्रेत अपार हैं॥
संकट में परिजात हैं आपुयों औढ़रदान के हेतु तैयार हैं।
भोले सदा शिव क्यों न बनैं घरभूति जिन्हें रुचै श्वेत पहार है॥

❑ ❖ ❑

❋ रुद्रावतार महर्षि श्री दुर्वासाजी की शिव-भक्ति ❋

महर्षि दुर्वासा अत्रि मुनि के पुत्र रूप में भगवान शंकर के अंश से उत्पन्न हुए थे, अत: ये रुद्रावतार नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

चौ०—परमाराध्य इन शिव भगवाना। भक्ति विशिष्ट धरें उर ध्याना॥
उग्र स्वभावहि के ये प्रानी। रुद्राक्ष अरु तन भस्म रमानी॥
जन भयभीत रहें इन शापा। फिर भी कोप छड़ायै परित्रापा॥
दिया शाप कल्याणहि करहीं। जिन-जिन जन जग में अनुभवहीं॥

अपने परमाराध्य भगवान शंकर में इनकी विशेष भक्ति थी, ये भस्म और रुद्राक्ष धारण किया करते थे। इनका स्वभाव अत्यन्त उग्र था, यद्यपि उग्र स्वभाव के कारण इनके शाप से सभी भयभीत रहते थे, तथापि इनका क्रोध भी प्राणियों के परम कल्याणकारी ही हुआ है जिन-जिन को इनके द्वारा शाप दिया गया, उन्होंने अपनी भलाई का ही अनुभव किया है।

चौ०—एक समय भूमण्डल भ्रमणा। पितृलोक पहुँचे तहँ रमणा॥
भस्म सबहि सर्वांग रमाये। तन रुद्राक्षहु धारण पाये॥
ध्यान करत गै पार्वती अम्बा। जै पार्वती हर मुख उचरम्भा॥
कर त्रिशूल कमलण्डल लीन्हा। जाइ पितृन्ह कहँ दर्शन कीन्हा॥

एक समय महर्षि दुर्वासा समस्त भूमण्डल का भ्रमण करते हुए पितृलोक में जा पहुँचे। वे सर्वांग में भस्म रमाये एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। हृदय में पराअम्बा भगवती पार्वती का ध्यान और मुझसे 'जय पार्वती हर' का उच्चारण करते हुए मंडल तथा त्रिशूल लिये दुर्वासा मुनि ने वहाँ अपने पितरों का दर्शन किया।

दोहा—कुंभी पाक, रौरव नरक, क्रन्दन सुनो अपार।
दौड़ पड़े देखत तभी, रोवत पापिन हाहाकार॥1॥

सो०—पूछा वहाँ जाय कर, कवन यातना सह रहे।
कारण क्या दुःख भार उर अपार कष्ट में दह रहे॥2॥

उसी समय उनके कानों में करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ा, वे पापियों के हाहाकारमय भीषण रुदन को सुनकर कुंभीपाक रौरव नरक आदि स्थानों को देखने के लिये दौड़ पड़े वहाँ पहुँच कर वहाँ के कर्मचारियों से पूछा, रक्षको, यह करुण-क्रन्दन किसका है ये इतनी यातना क्यों सह रहे हैं, इनके हृदय में दुःख का अपार भारी दग्ध क्यों हो रहा है?

उन्होंने उत्तर दिया—मुने! यह संयमनी पुरीका कुम्भीपाक नामक नरक है। यहाँ वे ही लोग आकर कष्ट भोगते हैं जो शिव, विष्णु, देवी, सूर्य तथा गणेश के निंदक हैं और जो वेद-पुराण की निंदा करते हैं, ब्राह्मणों के द्रोही हैं और माता-पिता गुरु तथा श्रेष्ठजनों का अनादर करते हैं जो धर्म के दूषक हैं वे पतितजन यहाँ घोर कष्ट पाते हैं उन्हीं पतितों का यह महाघोर दारुण शब्द आपको सुनाई दे रहा है।

चौ०—सुनि दुर्वासा दुःखी विशेषा। सिर नीचा करि कुण्डहि देखा॥
अचरज भयो कुण्डके मांही। भयो स्वर्ग सुंदर सम ताही॥
एकाएक हर्षित भये पापी। मिटे दुक्ख गदगद असभाषी॥
भाषण मधुर परस्पर करहीं। पापीन सकल सुखमन भरहीं॥

यह सुनकर दुर्वासा ऋषी बहुत दुःखी हुए और दुःखियों को देखने के लिये कुण्ड के समीप जाकर ज्यों ही वे सिर नीचा करके देखने लगे त्यों-त्यों ही वह कुम्भीपाक कुंड स्वर्ग के समान सुन्दर हो गया, यह आश्चर्य वहाँ हुआ, वहाँ के पापी जीव एकाएक प्रसन्न हो उठे और दुःखों से मुक्त होकर गद-गद स्वर से आपस में मधुर भाषण करने लगे और मन में बहुत सुख माना।

पुष्पवृष्टि आकाशहिं कीन्हीं। त्रिविध समीर तहाँ चलि दीन्ही॥
बसन्त ऋतु सम सुख तेहि काला। यमदूतन्ह विस्मय में डाला॥
स्वयं मुनि भी सोच मन मांही। स्थिति दूतन यमहिं बताहीं॥
महाभाग बड़ अचरज बाता। पापिन समय भयो सुख दाता॥

उस समय आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी और त्रिविध समीर चलने लगी, बसंत ऋतु के समान उस सुखदा ही समय ने यमदूतों को भी विस्मय में डाल दिया, स्वयं मुनि भी यह आश्चर्य देख बड़े सोच में पड़ गये, चकित होकर यमदूत ने धर्मराज के निकट जाकर इस आश्चर्यमय स्थिति परिवर्तन की सूचना दी और कहा—महाभाग! बड़े आश्चर्य की बात है कि सभी पापियों को इस समय अपार आनंद हो गया है।

दोहा—स्थिति लखि धर्मराज हूँ, चकित भये मन माँहि।
सकत देवगण पूछहहिं अचरज कोइ न बताहिं॥1॥

दूतों की बात सुनते ही धर्मराज स्वयं वहाँ गये वहाँका दृश्य देखकर बहुत चकित हुए, सब देवताओं से कारण पूछा पर कोई देव इस अचरज का मूल कारण नहीं बता सका।

दोहा—धर्मराज चिंतत भये, पता नहिं चलि पाय।
ब्रह्मा अरु विष्णु सहित, ढ़िंग शंकर पहुँचे जाय॥2॥

जब धर्मराज को इसका किसी प्रकार प्रात न चला तो बहुत चिंतत हुए, तब ब्रह्मा और विष्णु की सहायता से धर्मराज स्वयम्भू भगवान शंकरजी के पास गये ।

दोहा—पार्वती के साथ शिव, विराजमन तहँ चीन्ह।
दर्शन कर प्रणामउ, स्तुति प्रार्थना कीन्ह॥3॥

पार्वती के साथ विराजमा भगवान शंकर को देखते ही, दर्शन कर और प्रणाम करके वे स्तुति प्रार्थना करते हुए कहने लगे—

चौ०—हे महादेव कुण्ड कुम्भी पाका। स्वर्ग समान हाल भयो ताका॥
यह अचरज लखि हम सब आये। इसका कारण जान न पाये॥
हे सर्वज्ञ आप सब जानहुँ। जानन हेतु आप ढ़िंग आनहुं॥
करहु कृपा कारण बतलाबहु। यह संदेह हमार मिटावहु॥

हे देव-देव! कुम्भी पाक का कुण्ड एकाएक स्वर्ग के समान हो गया, इस आश्चर्य को लखकर हम आपके पास आये हैं। प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, इसका क्या कारण है। हम लोगों के संदेह को आप मिटाने की कृपा करें। यही जानने के लिये हम आपकी सेवा में आये हैं।

बोले शिव सर्वान्तरयामी। हँसे देव महागुण धामी॥
देवगणों कुछ अचरज नाँही। यह विभूति महातम पाँही॥
परम भक्त मम ऋषि दुर्वासा। गये जा सायं कुण्डहि पासा॥
कुंभीपाक नरक जब देखेउ। विह्वल भये पापि दुःख पेखेउ॥

सर्वान्तर्यामी शिव भगवान ने हँसते हुए कहा—देवगणो! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है, यह विभूति—भस्म का ही माहात्म्य है जिस समय मेरे परम भक्त दुर्वासा कुम्भी पाक नरक को देखने गये थे, तो वहाँ वे पापियों के करुण-क्रन्दन को लख बड़े विह्वल हुए।

दोहा—नीचा सिर कर लखा तबहि, वायु झपट्टा मार।
मस्तक से कण भस्म के, कुण्डहिं दीने डार॥1॥
उसी विभूति ने वहाँ, अचरज कियो आन।
याही कारण ते भये नरकहिं स्वर्ग समान॥2॥

भक्त महर्षि दुर्वासा जब उस कुण्ड की ओर नीचा सिर करके देख रहे थे, तो उसी समय वायु का तेज झपट्टा-झोंका-वेग से उनके ललाट से भस्म के कुछ कण

उस कुम्भीपाक कुण्ड में गिर पड़े थे, उसी विभूति के प्रभाव-माहात्म्य से यह आश्चर्य हुआ है ऐसा आप लोग मन में जानें, इसी कारण वह नरक स्वर्ग के समान हो गया।

और अब वह स्वर्गीय 'पितृतीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध होगा।

"कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैव सम्मतः॥
अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तदावायुवशाहरे।
भाले भस्म कणास्तत्र पतिता दैवयोगतः॥
तेन जातमिदं सर्व भस्मनो महिमा त्वयम्।
हृतः परंतु तन्तीर्थं पितृलोक निवासिनाम्॥
भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत॥

(देवी भाग० 11 /15 /64-67)

भगवान शंकर की बात सुनकर धर्मराज सहित सभी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने उस कुण्ड के समीप शिवलिंग तथा देवी पार्वती की स्थापना की और वहाँ के पापियों को मुक्त कर दिया। तभी से पितृलोक में उस मूर्ति के दर्शन पूजन करके पितृलोग शिवधाम (मोक्ष) प्राप्त करने लगे। यह चमत्कार परम शैव रुद्रावतार महर्षि दुर्वासा की शिव भक्ति तथा उनके भाल पर विराजमान शिवविभूति का ही फल था। (देवी भागवत से)

(श्री शिव शरणं मम)



❃ कल्पकल्पान्तजीवी परम शैव महर्षि लोमशजी की शिव आराधना ❃

प्राचीन काल में एक बड़ा दरिद्र शूद्र था। भूख-प्यास के मारे वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। कहीं भी उसे पेटभर अन्न नहीं मिलता था। एक समय वह घूमता हुआ एक तीर्थ जलाशय के सन्निकट पहुँचा, उसी के पास एक शिव का मंदिर था। प्यास के मारे उसके प्राण सूखे जा रहे थे, इसलिये झपटकर वह जलाशय में प्रविष्ट हो गया और जल पीकर स्नान करने लगा, स्नान से पवित्र हो, उसी में से कमल के मनोहर पुष्प लेकर तथा कमल पत्रों में शीतल सुगन्धित जल भर करके उसने मन्दिर में प्रवेश किया और महादेव जी को स्नान कराकर बड़ी भक्ति से कमल के पुष्प चढ़ाये। संसार में अनेक योनियों में करोड़ों बार जन्म ले-ले कर पापरहित होने पर प्राणी शंकर की भक्ति कर सकता है, यदि उसका प्रारब्ध अच्छा होता है तो उसको सब साधन मिल जाते हैं और पूर्वभाव से जगत के कारण भूत शंकर में उसकी

अनन्य भक्ति हो जाती है। प्रारब्ध वश उस दरिद्र की भी शिव-भक्ति जाग्रत हो उठी थी और पूजा-सम्भार की सामिग्री भी उसे अनायास प्राप्त हो गयी थी। उसी दृश्य प्रेरणावस फिर उसे भगवान श्री नीलकण्ठ को साष्टांग प्रणाम किया और शुद्ध हृदय से उनकी स्तुति करके उस दु:ख से मुक्ति पाने की प्रार्थना की।

उसी एक बार की पूजा के प्रभाव से उस शूद्र शरीर का परित्याग करके अनन्तर उसने परम कुलीन ब्राह्मण के घर में जन्म प्राप्त किया। पूर्वजन्म के शिवार्चन के पुण्य से उसको पिछले जन्म की सब बातों का यथावत् ज्ञान था। अतएव संसार को सर्वथा मिथ्या समझकर उसने प्रारम्भ से ही मौन व्रत धारण कर लिया। उनके पिता ने भगवान शंकर की बड़ी कठिन आराधना करके वृद्धावस्था में वही एक पुत्र पाया था अत: उसका नाम 'ईशान' रखा गया, परंतु जब उस वृद्ध ब्राह्मण ने अपने पुत्र को गूँगा समझा तो उन्हें दारुण दु:ख हुआ, उसके गूँगेपन को दूर करने का निश्चय कर उन्होंने अच्छे-अच्छे वैद्यों से अनेक उपचार कराये, अनेक प्रकार के मंत्र-यंत्रों का आश्रय लिया, पर किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ। अपने माता-पिता के इस प्रकार उपाय करते देखकर ईशान को मन ही मन बड़ी हँसी आती थी और दु:ख भी होता था, पर उनका वैराग्य दृढ़ था, अतएव अपने निश्चय से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

ईशान युवावस्था में रात के समय घर से निकल कर चुपचाप कमल के फूलों से शिवजी की पूजा कर आते, और घर में आकर सो जाया करते थे। वे अन्न न खाकर केवल फलाहार करते और मनसा, वाचा कर्मणा भगवान् सदाशिव की आराधना किया करते।

इस प्रकार आराधना करते-करते सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब भगवान शंकरजी ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। उनके दर्शन पाकर वे मुक्तकण्ठ से उनकी स्तुति करते हुए कहने लगे कि 'हे सदाशिव! हे करुणावरुणालय! आप भक्तों की कामना पूर्ण करने में बहुत प्रसन्न होते हैं। थोड़ी-सी भी आराधना करने से आप उसे अनन्त फल देते हैं। हे भगवान्! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो आप मुझे जरा-मरण से रहित कर दीजिये। आपके कृपाकटाक्ष मात्र से मेरी कामना पूरी हो सकती है।

यह सुनकर भगवान शम्भु ने अपनी प्रेममयी वाणी में कहा—'वत्स! नाम और रूप धारण करने वाले व्यक्ति को जरा और मरण से छुटकारा नहीं मिल सकता है जिसने जन्म लिया है, उसको निश्चय मरना होगा। इसलिये जितना चाहो उतना दीर्घ जीवन मैं तुमको दे दूँगा पर अनंत जीवन प्राप्त करना दुर्लभ है।

भगवान के ऐसे वचन सुनकर ईशान ने विनय पूर्वक प्रार्थना की कि हे प्रभो! यदि आप मुझे अजर-अमर नहीं भी करें तो कृपा कर यह वर दीजिये कि एक कल्प

व्यतीत होने पर मेरे शरीर का एक रोम गिरा करे और जब सब रोम गिर जायँ तब मेरा शरीर छूटे। शरीरपात के पश्चात् मैं आपका गण बनूँ। भगवान सदाशिव ने हर्षपूर्वक उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे कैलाश को चले गये। उसी दिन से ईशान का नाम 'लोमश' पड़ गया और वे अपना सारा समय भगवान शंकर की आराधना में बिताने लगे।

भगवान शंकर की उपासना कर लोमश महर्षि ने इतना दीर्घ जीवन प्राप्त किया जितना कि संसार में किसी को भी नहीं मिला था। उनकी आराधना करने से त्रिलोकी में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो न प्राप्त हो सके। शंकर की सेवा तथा प्रणव मंत्र के जप से बिना प्रयास के मुक्ति मिल जाती है—

'न दुर्लभं न दुष्प्राप्यं न चासाध्यं महात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतां पुंसा त्रिलोक्या मिति निश्चितम्॥'

(स्कन्द पुराण कौमा० 12 159)



❋ देवी अनसूया एवं महर्षि अत्रि की शिवोपासना ❋

दोहा— कामदवन पावन परम, चित्रकूट के पास।
अत्रि मानस पुत्र विधि, अनसूया तहँ वास॥

दक्षिण दिशा में चित्रकूट पर्वत के समीप परम पावन कामद नामका एक वन था। ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि अत्रि अपनी परम पवित्रता पत्नी अनसूया के साथ उसी वन में निवास स्थान था।

चौ०—शिव आराधन में चित दीन्हा। सदुपयोग समय का कीन्हा॥
एक बार शत वर्षहिं गयेऊ। तहँ बिलकुल वर्षा नहिं भयेऊ॥
जल अरु अन्न अभावहि कीन्हा। जीव जन्तु वनस्पति हीना॥
हाहाकार व्याप्त भयो भारी। उग्र ताप भूजल रही सारी॥

महर्षि अत्रिजी महेश्वर की आराधना में अपने समय का सदुपयोग कर रहे थे। एक बार ऐसा हुआ कि सौ वर्ष तक बिलकुल ही वर्षा नहीं हुई। पृथ्वी जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियों से विहीन हो गयी। अन्न तथा जल के अभाव में सर्वत्र महान हाहाकार व्याप्त हो गया। समस्त पृथ्वी संसार में अति उग्रताप से जलने लगी।

चौ०—अत्रि समाधि महँ चलि जाहीं। आत्मानंद शिवहि मन मांही॥
ध्यानमगन शिष्यन्ह गुरु देखा। अन्न अभावहिं क्षुधा विशेषा॥
पीड़ित शिष्य अन्यत्र चालि जाहीं। अनुसूया केवल वन माहीं॥
पतिपरिचर्या एकहि कर्मा। शिव आराध्य विपति बच धर्मा॥

महर्षि अत्रि उस समय भी समाधि में चले गये, भगवान शंकर में अपनी

आत्मा को लगाये हुए परमानन्द में मग्न थे, गुरुजी को ध्यानमग्न देखता था अन्न आदि के अभाव में क्षुधा से पीड़ित शिष्य भी वहाँ से अन्यत्र चले गये। अब केवल अनसूया ही उस निर्जन वन में रह गयीं, वे भला अपने पति को ऐसी अवस्था में छोड़कर कहाँ जा सकती थीं। ऐसे समय में पति की परिचर्या और महादेव जी की आराधना को ही उन्होंने इस भयंकर आपत्ति से बचने का एकमात्र धर्म माना।

दोहा—सुन्दर पार्थिव लिंग की, स्थापित ढिंग कीन्ह।
अवर्षण वस्तु बिना, मानस उपचारन्ह दीन्ह॥

अनुसूया ने पतिदेव के समीप ही एक सुन्दर पार्थिव लिंग की स्थापना की और अवर्षण के कारण अन्य किसी उपचार वस्तु के न मिलने से वे मानस उपचारों द्वारा भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करने लगीं।

चौ०—हाथ जोरि शिव पूजन करहीं। पति की परिक्रमा अनुसरहीं॥
साष्टांग प्रणाम उन्हें भी करतीं। त्यागि अन्न जल मन अनुभवती॥
एकमात्र दोइ देव उपासहिं। और कर्म का नहिं कछु आशहिं॥
अत्रि तप अनसूया आराधा। सुरमुनि दर्श हेतु तहँ साधा॥

इस तरह शिव का पूजन कर हाथ जोड़ भगवान शंकर और अपने पति की परिक्रमा करती थीं, अन्न-जल का उन्होंने बिल्कुल परित्याग कर दिया। इन दोनों देवों की उपासना ही साष्टांग प्रणाम करते हुए उनका एकमात्र कार्य रह गया था और किसी कर्म की आशा नहीं। अत्रि के तप और अनुसूया की आराधना से सभी देवता तथा ऋषि दर्शन करने के लिये वहाँ आये।

चौ०—पवित्र नदीन्ह अचरज भयो भारी। गंगा आदि तहँ पहुँची सारी॥
उनकी त्याग तपस्या चीन्हीं। देव प्रसंसा भूरि भूरि कीन्हीं॥
प्रशंसा कर सुर मुनि चलि जाहीं। महादेव गंगा रुक जाहीं॥
पतिव्रत लखि अनुसइया गंगा। निष्ठा अति शिव सेवहिं चंगा॥

दोनों की आराधना से गंगा आदि पवित्र नदियों को भी आश्चर्य हुआ और वे भी वहीं आ पहुँची। सभी देवतागण तथा मूर्तिमती पुण्यतोया गंगा आदि नदियाँ दोनों के त्याग, सेवा, तपस्या की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। कुछ समय के बाद अन्य सभी देवता, ऋषी महर्षि तो चले गये, किंतु गंगा माता और भगवान महादेव वहीं रुक गये। भगवती गंगा अनुसूया के पतिव्रत धर्म तथा शिव सेवा में अनन्य निष्ठा के प्रभाव से मुग्ध होकर वहाँ रह गयीं।

दोहा— गंग बिना उपकार के, नहीं हटना निश्चय कीन्ह।
शिव अत्रि ध्यानहिं बँधे, वे भी नहीं चलि दीन्ह॥

गंगा माता ने बिना कुछ उपकार किये वहाँ से न हटने का निश्चय कर लिया

तथा भगवान शंकर महर्षि अत्रि के ध्यान के बंधन में ऐसे बँध गये कि वे भी वहाँ से न हट सके।

चौ०—चौवन वर्ष समाधि रहेऊ। टूटत ही जल माँगत भयेऊ॥
जल का नाम निशान नहीं तहँ। चिंतित अनुसूया भयी जहँ॥
कमण्डल ले जल खोजन जाहीं। पाछे गंग चली उनताहीं॥
गंग कहा देवि सुनि लयेऊ। मैं प्रसन्न तुमसे बहु भयेऊ॥

चौवन वर्ष के पश्चात् महर्षि अत्रि की समाधि टूटी। उठते ही उन्होंने जल माँगा, किंतु जल का तो वहाँ कहीं नाम निशान भी नहीं था, अनुसूया बहुत चिंतित हुई और कमण्डल लेकर जल की खोज में चलीं। उनके पीछे-पीछे श्रेष्ठ गंगा भी चलीं। मार्ग में गंगाजी ने अनुसूया से कहा—देवि! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, मुझसे जो कहो, मैं करने के लिये तैयार हूँ।

चौ०—अनुसूया पूछत मन भारी। कमलनयन को कहाँ से पधारी॥
जब तक पता तुम्हारन पाऊँ। विनय कस निजउर में लाऊँ॥
मूर्तिमती गंगा अस कहेऊ। शुचि स्मिते मैं गंगा रहेऊ॥
तुम्हरि पति भक्ति शिव चीन्हीं। ऐहि ते वशीभूत मोय कीन्हीं॥

अनुसूया ने भारी मन से पूछा-हे कमलनयने! आप कौन हैं और कहाँ से पधारी हैं? आप जब मुझे अपना पूरा परिचय न देंगी, तब तक मैं किसी प्रकार की प्रार्थना कैसे कर सकती हूँ? अतः आप मुझे अपना यथार्थ परिचय दीजिये। मूर्तिमयी भगवती गंगा ने कहा-हे शुचिस्मिते! मैं गंगा हूँ और तुम्हारी पति-भक्ति तथा शिवभक्ति को देखकर तुम्हारे वशीभूत हूँ।

दोहा— माँगहु जो वर चाहिये, अस कहिं गंगा माय।
अनुसूया प्रणाम करि बोली अति हर्षाय॥

गंगा माता ने कहा—मुझसे जो वर माँग लो—गंगा के ऐसे वचन सुनकर अनुसूया ने उन्हें प्रणाम किया और हर्षित हो बोलीं—

चौ०—अभी समाधि रहित पति भयेऊ। जल की माँग करन लगि गयेऊ॥
बहुत काल जल वर्षेउ नाहीं। मैं जल लाऊ कहाँ चलि पाँहीं॥
यदि प्रसन्न तुम मोपर भयेऊ। तो मोइ शीघ्र वारि दै दअऊ॥
गढ्ढा खुदवाया तहँ मांहीं। प्रविष्ट गर्त गंगा है जाहीं॥

मेरे पतिदेव अभी समाधि से उठे हैं और जल माँग रहे हैं, इस क्षेत्र में बहुत समय से जल ही नहीं वर्षा, मैं जल लाऊँ तो कहाँ पाऊँ। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे शीघ्र जल दीजिये। देवी गंगा ने अनुसूया से एक गढ्ढा खुदवाकर तैयार कराया और क्षण भर में उस गर्त में प्रविष्ट होकर जलरूप हो गयीं। उसी समय वह गर्त जल से भर गया।

चौ०—भरा गर्त जल से अति भारी। तुरत कमण्डल भर गया वारि॥
लेकर वारि चली अनुसूइया। पति आयें तोलौं गर्त रहो मैया॥
गंगा तब अस कहने लागेउ। एकमास का तप फल मांगेउ॥
अनुसूया स्वीकारहि कीन्हा। जल लाकर निज पति को दीन्हा॥

वह गर्त जल से पूर्ण हो गया, यह देखकर अनुसूया को बड़ा आश्चर्य हुआ, वह उसमें से कमण्डल में जल भर कर लेकर अपने पतिदेव के समीप चलीं और गंगा मैया से कहने लगीं–देवि! जब तक मेरे स्वामी यहाँ न आयें तब तक आप इसी गर्त में निवास करें। गंगा बोलीं–साध्वि! यदि तुम मुझे एक महीने की अपनी तपस्या का फल दे दो तो मैं इतनी देर तक-इस गढ्ढे में निवास कर सकती हूँ। अनुसूया ने उनका कथन स्वीकार कर लिया और जल लाकर महर्षि को दिया।

दोहा— मुनि पवित्र जल आचमने, लोकोत्तर स्वादहिं पाय।
विस्मित हो पूछन लगे, तुम कहाँ से लायीं बताय॥1॥
बरषा नहिं बहुकाल से, ये वारि कहाँ तुम पाय।
स्वाद विचित्र इस जलहि का, मोपै कह्यो न जाय॥2॥
मैं जस जल पीता रहा, यह तो वैसा नाहिं।
इसीलिये बतलाव तुम, कहाँ जाकर लायीं ताहिं॥3॥

महर्षि ने उस पवित्र जल से आचमन किया, बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए, मुनि ने इधर-उधर दृष्टि फेरी तो आसपास के सभी वृक्ष सूखे पाये और दिशाएँ आग से जलती पायीं, मुनि ने अनुसूया से कहा–मालूम होता है कि यहाँ बहुत दिनों से जल नहीं बरसा और इस जल के लोकोत्तर स्वाद को पाकर यह विचित्र मालूम पड़ता है, जैसा जल मैं पीया करता था, यह तो वैसा नहीं है इसीलिये बताओ तुम यह जल कहाँ से लायी हो?

चौ०—विनीत भाव निवेदन करेऊ। अनुसूया अस कहती रहेऊ॥
पूज्यदेव! शंकर आराधहिं। मैं परिचर्या तुम्हरी साधहिं॥
भयी प्रसन्न गंग तस सेवहिं। उनसे पावन मैं जल लेवहिं॥
सुनि कर अत्रि अचरज भयेऊ। हँसी करहु या सत्य कहेऊ॥

अनुसूइया ने संकुचित होते हुए विनीत भाव से निवेदन किया कि हे पूज्यदेव! भगवान शंकर की आराधना से और आपकी मेरी सेवा परिचर्या से गंगाजी मेरे ऊपर प्रसन्न होकर यहाँ आयीं हैं और यह पावन जल उन्हीं से लायी हूँ। महर्षि को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि हे सुन्दरी! तुम हँसी करती हो या सत्य कहती हो?

चौ०—तुम कुछ भी कहो, विश्वास न होई। कठिन काम देव योगिन्ह सोई॥
अचरजमय ये बात तुम्हारी। मोहि दिखाओ गंग कहाँ धारी॥

मुनि अनुसूया तहँ लै जाई। जल पूरित वह गर्त दिखाई॥
गंग दर्श मुनि पुलकित भयेऊ। पारावार हर्ष नहिं रहेऊ॥

तुम कुछ भी कहो पर मुझे तो विश्वास नहीं होत, योगियों और देवों के लिये भी जो कार्य दुष्कर है वह तुमसे कैसे हो सकता है? मुझे तुम्हारे कहने पर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो तुम चलकर मुझे वह स्थान दिखाओ, बिना देखे मैं विश्वास नहीं कर सकता, अनुसूया ने मुनि को ले जाकर वह जलपूरित गर्त दिखा दिया। गंगाजी के दर्शन से मुनि पुलकित हो उठे और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

दोहा— हाथ जोरि विनती करी, देवि हम पर किरपा कीन्ह।
शुभा गमन आपहिं भयो बड़भाग क्षेत्र करि दीन्ह॥1॥
अब मेरी यह प्रार्थना, परित्याग न स्थल होइ।
अनुसूया विनवत भई, करहु अनुग्रह मोइ॥2॥

मुनिजी ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे कि 'हे देवि! आपने हम सब के ऊपर बड़ी कृपा की है। इस क्षेत्र का बड़ा भाग्य है कि आपका यह शुभागमन हुआ है। अब मेरी प्रार्थना यही है कि आप कभी भी इस स्थान का परित्याग न करें, अनुसूया ने भी इसी बात की प्रार्थना की, मैया मुझ पर अनुग्रह करें।

बचन सुने दोउ गंगा मैया। बोली सुनि लेऊ अनुसुइया॥
पति अरु शिव सेवा आचरहहिं। एक वरष फल मोकूँ करहहिं॥
शिव अरुपति वर्ष फल पाऊँ। तो मैं यहीं कुण्ड रह जाऊँ॥
योग यज्ञ दान स्नाना। नहिं प्रसन्न अस पतिव्रत ठाना॥

दोनों महर्षि और अनुसुइया के वचन सुनकर गंगा जी ने अनुसूया से कहा—'हे पतिव्रते! यदि तुम शिवजी की पूजा का और पतिदेवकी सेवा का एक वर्ष का फल मुझे दे दो तो मैं यहाँ निवास कर सकती हूँ। दान, स्नान, यज्ञ तथा योग आदि से किसी से भी मुझे इतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी पतिव्रता से होती है।

चौ०—पतिव्रता नारि जब देखहुँ। मेरेऊ पापिन्ह हानी लेखहुँ॥
तपफल एक वर्षहि मोइ देहू। तो स्थिर निवास करि लेहूँ॥
अनुसूया ने हामी भरहीं। दूसर उपकार क़ष्ट सहकरहीं॥
ईख कोल्हू सन पेरी जावै। मीठा रस दूसर ही पावै॥

गंगाजी कहती हैं कि पतिव्रता स्त्री को देखकर मेरे भी पापों का नाश हो जाता है। इसीलिये संसार के कल्याणार्थ यदि तुम अपने एक वर्ष के तप का फल देने को तैयार हो जाओ तो मैं यहाँ अपना स्थिर निवास कर लूँगी। गंगाजी के वचन सुनकर पतिव्रता अनुसूया ने एक वर्ष के कठिन तप का पुण्य फल उन्हें देकर हामी भर ली क्योंकि महापुरुष स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों का उपकार ही करते हैं ईख स्वयं

कोल्हू में पेरी जाती है परंतु दूसरों को मीठा रस देती है।

दोहा— दुर्लभ पुण्य फल पाइके, गंगा स्थिर तहँ स्थान।
लिंग अनुसूया से प्रकट, पंचमुख महादेव महान॥

ऐसे दुर्लभ पुण्यफल को पाकर गंगाजी उस स्थान में स्थिर रह गईं, उसी समय अनुसूया द्वारा स्था!पित उस पार्थिव शिवलिंग में से पंचमुख महादेवजी का अविर्भाव हुआ, उन्हें देखकर दोनों को महान आश्चर्य हुआ। देवदेवेश्वर महादेव बोले— 'साध्वी! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। जो वर माँगना हो सो माँगो। अनुसूया ने हाथ जोड़कर कहा कि महेश्वर यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप सदा इस वन में निवास करें और अपना सर्व दुःखहर दर्शन देकर संसार को भवबंधन से बचायें, ऐसी ही स्तुति महर्षि ने भी की। आशुतोष भगवान शंकर ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और पार्वती और गंगा के साथ वे 'अत्रीश्वर महादेव' के नाम से उस आश्रम में निवास करने लगे, उसी दिन वह दीर्घ अवर्षण समाप्त हो गया और वहाँ मेघों ने काफी जल वर्षा कर क्षण भर में संसार का चिरकालीन ताप नष्ट कर दिया। उस वन में सब प्रकार के धान्य एवं फल-मूल उत्पन्न होने लगे, दूर-दूर से ऋषी लोग आकर सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस वन में बस गये। इस प्रकार अनुसूया की तपस्या, महर्षि अत्रि के पुण्य एवं भगवान शंकर की अनुकम्पा से उस वन में फिर नवजीवन आ गया। इस परम पावन तीर्थ में निवास करने से मनुष्य को अवश्य हरि मुक्ति मिलती है। उस दिन से अविनाशी रूप से स्थित हुआ वह जल उस हाथ भर के गर्त में विस्तार होकर 'मन्दाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हो गया। ,

(शिव पुराण कोटिरुद्र अ० 2-4)

(जै श्री शंकर भगवान)

❋ भगवान व्यासदेव की शिवोपासना ❋

परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि समस्त आगम ग्रन्थों के रचयिता या वक्ता भगवान शंकर ही हैं। 'आगम' शब्द की व्युत्पत्ति में कुलार्णव आदि तन्त्रों में कहा गया है कि शिव के मुख से निकलने और भगवती पार्वती के कान में प्रविष्ट होने के कारण इनका नाम 'आगम' पड़ा। आगम शब्द की प्रसिद्धि

'आगतां शिव वक्त्रेभ्योगतं च गिरिजा श्रुतौ।
तस्मादागम इत्युक्तं मुनिभिस्त त्व दर्शिभिः॥'

से हुई। इसलिये भगवान शिव को समस्त विद्याओं का मूलस्रोत, उद्‌गम स्थान या विद्यातार्थ भी कहा जाता है—

'यस्य निःश्वसितंवेदायो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥'

जैसे भगवान शंकर समस्त विद्याओं के प्रवक्ता हैं ठीक उसी तराह भगवान व्यास भी पुराणादि शास्त्रों के निर्माता या वक्ता कहे जाते हैं। व्यास समस्त वेदों बार-बार उपनिबन्धन करने के कारण 'वेदव्यास' नाम से प्रसिद्ध हैं।

चौ० — वेद व्यास शिव के बड़े भक्ता। इतिहास पुराण निगमागम वक्ता॥
यत्र भारते तत्र भारते। व्यासो नारायणः तत्व सारते॥
स्थापना अनेक लिंगहिं कीन्हीं। अर्चा सेवा बहुविधि दीन्हीं॥
शिव परक ही सकल पुराना। तथ्य व्यास शिव-प्रेम प्रधाना॥

भगवान वेदव्यास आशुतोष भगवान शिव के अनन्य बड़े भक्त हैं। इतिहास, पुराण आदि धर्मशास्त्रों के वक्ता हैं, भाष्यों के रचयिता होने के कारण और 'यत्रभारते तत्रभारते', **'व्यासोच्छिष्टं जगत सर्वम्'** आदि के अनुसार विश्व का सारा ज्ञान विज्ञान भगवान व्यास का उच्छिष्ट ही है अतः **'व्यासेनाारायणः साक्षात्'** के अनुसार भगवान व्यास भी साक्षात सारतत्व श्री नारायण और शिव ही हैं। इन्होंने अनेकों शिवलिंगों की स्थापना कर उनकी अर्चा-सेवा की, इनके सभी पुराणों को शिवपरक ही माना है, ये तथ्य वेदव्यास के शिवप्रेम के ही निदर्शक हैं अर्थात् उनमें शिव-प्रेम ही प्रधान हैं।

काशी तथा रामनगर में कई 'व्यासेश्वर शिवलिंग' हैं रामनगर से प्रायः तीन किलोमीटर पूर्व भगवान व्यास का मंदिर है, उसमें भगवान व्यासदेव जी के साथ भगवान शंकर भी विराजमान हैं, यहाँ व्यासपूर्णिमा को बड़ा भारी मेला लगता है। काशी खंड के अनुसार भगवान व्यासदेव यहीं रहकर सदाशिव की उपासना करते थे और दूर से ही भगवान विश्वनाथ पर सदा दृष्टि लगाये रहते थे, प्रत्येक चतुर्दशी को भगवान विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णा का दर्शन करते थे।

शिवपुराण में वर्णन आया है कि एक बार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देने वाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, अमरावती, सरस्वती, सिंधु, गंगासागर आदितीर्थों में भ्रमण करते हुए श्रीव्यासजी उस अविमुक्त क्षेत्र में पहुँचे, जहाँ जगत्पिता भगवान विश्वेश्वर तथा जगन्माता भगवती अन्नपूर्णा देवी विराजमान हैं। यहाँ आकर उन्होंने समस्त देवी-देवताओं के दर्शन किये और शास्त्र विधि से समस्तवापी कूप सरोवर तथा कुण्डों में यथाविधि स्नान-दान करते हुए मणिकर्णिका घाट पर विश्राम किया। तदनन्तर विनायक आदि देवताओं को संतुष्ट करके आलस्यरहित हो पितृतीर्थों में श्राद्ध-तर्पण किया। इस प्रकार काशी की पंचकोश यात्रा करके पुण्यात्मा व्यासजी ने **'व्यासेश्वर'** नामक शिवलिंग की स्थापना की, जिनके दर्शन पूजन से मनुष्य सब विद्याओं में वृहस्पति के समान विद्वान हो जाते हैं—

स्थापयामास पुण्यात्मा लिंग व्यासेश्वराभिधम्।
यद्दर्शनाद्भवे द्विप्रानरो विद्यासु वाचस्पतिः॥

(शि०पु० उमा सं० 44-47)

एक बार व्यास मुनि अपने शिष्यों को पढ़ाकर विश्राम कर रहे थे, उसी समय एकाएक उनके मन में ग्रन्थ रचने की इच्छा उत्पन्न हो गयी, वे सोचने लगे कि किस देवी या देवता के आराधन से मुझमें ग्रन्थ रचने की शक्ति होगी सोचते-सोचते संध्याकाल का समय हो आया। संध्याकालीन सन्ध्योपासना के पश्चात् मुनिवर व्यासजी समाधिस्थ होकर अपने इष्टदेव शंकर के ध्यान में लग गये, ध्यान करते-करते कुछ समय बीता। थोड़े दिनों बाद एक जर्जरकाय जटाधारी तपस्वी उनके सामने आये, व्यासजी ने सामने आये हुए महान तेजस्वी महात्मा से पूछा—

महात्मन्-किस शिवलिंग की आराधना से हमारी मन कामना सिद्ध होगी और संसार में ग्रन्थ-रचना की शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे होगा क्योंकि ऋषियों द्वारा मैंने शिवलिंगों के अनेकों नाम सुने हैं—जिनमें (1) ओंकारनाथ (2) कृत्तिवासेश्वर (3) केदारेश्वर (4) कामेश (5) चन्द्रेश (6) कलशेश्वर (7) जाम्बुकेश (8) जैगिषेश्वर (9) दशाश्वमेधेश्वर (10) द्रुमचण्डकेश (11) गरुड़ेश (12) गोकर्णेश (13) गणेश्वर (14) धर्मेश (15) प्रसन्नवदनेश (16) तारकेश्वर (17) मरुतेश (18) नन्दिकेश (19) निवासेश (20) पत्नीश (21) पशुपति (22) हाटकेश्वर (23) तिलाभांण्डेश (24) भारभूतेश्वर (25) विश्वेश्वर (26) मुक्तिनाथ (27) अमृतेश (28) भुवनेश्वर (29) सिद्धेश्वर (30) अजेश्वर (31) पार्वतीश्वर (32) हिरण्यगर्भेश (33) रामेश्वर (34) स्थानेश्वर (35) रत्नेश (36) कोटिरुद्रेश्वर (37) कमलेश्वर (38) वीरेश्वर (39) मध्यमेश्वर इत्यादि

'किं वा हिरण्यगर्भेश किंवा श्रीमध्यमेश्वरम्।
इत्यादि कोटिलिंगानां मध्येऽहं किमुपाश्रये॥' *(शि०पु० 34 संहिता 44/73)*

उस महात्मा ने कहा यों तो सभी लिंग समान हैं और सबकी आराधना से आसुतोष भगवान शीघ्र प्रसन्न होते हैं परंतु आप 'मध्यमेश्वर' महादेव का ध्यान पूजन करें तो सर्वोत्तम होगा। काशी खण्ड में मध्यमेश्वर नामक शिवलिंग का माहात्मय अवर्णीय कहा गया है जिनका दर्शन करने के लिये समस्त देवता प्रतिपर्व में वहाँ आते हैं। जिनकी सेवा से कितने ही देवी देवता और यक्ष-गन्धर्व सिद्ध हो गये हैं। गंधर्वराज तुम्बरू और देवर्षि नारद उन्हीं महादेव की आराधना से संगीत शास्त्र में प्रवीण हुए हैं। इन्हीं की आराधना से ब्रह्मा सृष्टि, भगवान विष्णु पालन और रुद्रप्रलयकाल में इस संसार का संहार करते हैं। इन्हीं की कृपा से शेष नाग समस्त पृथ्वी को अपने ऊपर धारण किये हुए हैं। कहाँ तक कहा जाय, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वायु सभी चराचरदेव दानव एवं मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर स्थिर रहते हुए सिद्धि प्राप्त करते रहते हैं।

उन महात्मा के ऐसे वचन सुनकर व्यासजी ध्यानस्थ हो गये और फिर नेत्र खोलने पर उस महात्मा को उन्होंने नहीं देखा तब अन्तर्धान हुआ जानकर उनके हृदय में शिवलिंग की आराधना का दृढ़ निश्चय हो गया।

चौ०—नित्य नियम फलाहारहि लेवहिं। मध्यमेश्वर व्यास लिंगहिं सेवहिं॥
कछू दिवस पूजा अस जाये। शिव बालयोगि प्रकट हो आये॥
मुनि तब उन स्तुति बखानहिं। वेदहु आपकी महिमा न जानहीं॥
हे देव देव सृष्टि उत्पादक। तुम्हीं हो पालक अरु संहारक॥

फिर क्या था—दूसरे दिन से ही व्यासजी नित्य नियमपूर्वक फलाहार करते हुए 'मध्यमेश्वर' शिवलिंग की आराधना करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन व्यास जी पूजा के बाद स्तुति कर रहे थे कि जगत्पिता परमेश्वर शंकर जी बालयोगी के वेष में प्रत्यक्ष हो गये, व्यास जी पुनः स्तुति करने लगे—हे देवाधिदेव! हे महाभाग! हे शरणागत वत्सल! हे उमापते! वेद भी आपकी महिमा को नहीं जानते हैं, आपकी संसार के उत्पादक, पालक और संहारक हो।

"सब देवों में आप प्रधाना। सत चित आनंद हे भगवाना॥
सदा शिवहिं त्रिलोकीनाथा। मनोरथ पूर्ण करो जन पाथा॥"

हे सदाशिव! आप सभी देवताओं में प्रमुख हैं, सच्चिदानंद हैं, आप त्रिलोकीनाथ हैं, उनके मनोरथ के रास्ते को पूर्ण करते रहते हैं, देवता, योगिन्द्र, मुनीन्द्र भी आपके तत्व को नहीं जानते आप भक्तों के हृदय में स्थित हैं आपके चरणों में मेरा प्रणाम है।

दोहा—व्यास स्तुति से प्रसन्न, दिया इच्छित वरदान।
कंठस्थित ह्वै ग्रंथ रचन, शक्ति दे शिव अन्तर्धान॥

महामुनि श्री व्यास जी के स्तुति करने पर भगवान शंकर प्रसन्न हुए और मनोवांछित वरदान देकर तथा उनके कंठ में स्थित होकर ग्रन्थ-रचना की शक्ति देकर शिव अन्तर्धान हो गये।

चौ०—तबसे मध्यमेश्वर बड़ ख्याती। सुर नर मुनि पूजहिं बहुभाँती॥
जो नर पूजा हेतु वहाँ आंही। दर्शन नित्य करहिं तहाँ जाहीं॥
तो निश्चय कवि व्यास समाना। यशस्वी लेखक शास्त्र पुराना॥
शंकर किरपा व्यास अमर भै। सृष्टापुरानन शास्त्र सबन कै॥

तब से 'मध्यमेश्वर' महादेव की ख्याति और भी बढ़ायी, वहाँ सुर, नर, मुनि आकर विविध भाँति से पूजा करने लगे, जो मनुष्य उनकी पूजा और नित्य दर्शन करता है वह निश्चय ही यशस्वी कवि और व्यास के समान पुराण शास्त्रों का लेखक हो जाता है उन्हीं की कृपा से व्यासजी अमर हो गये और पुराणादि शास्त्रों के स्रष्टा बन गये।

❋ महाराज भगीरथ की शिवाराधना ❋

साठ हजार सुत सगर के, कपिलाश्रम पहुँच गये।
नेत्र खोल देखा कुपित, सबही भस्म भये॥

महाराज सगर के साठ हजार पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म हो गये थे। जब उन्होंने अपने नेत्र खोल कर देखा तभी बहुत दिनों बाद सगर के वंश में समुत्पन्न राजर्षि दिलीप के पुत्र भगीरथ ने 'गोकर्ण' तीर्थ में एक हजार वर्ष तक कठिन तपस्या कर ब्रह्मा को प्रसन्न किया, वे प्रसन्न होकर वर देने भगीराथ के पास आये और वर माँगने को कहा। भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! मेरे पूर्वज न जाने इस समय किस दशा में पड़े हैं उनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है, हे देव! आप ऐसा प्रयत्न करें कि गंगाजी इस भूलोक में आकर अपने पावन जल से मेरे पूर्वजों का उद्धार करें।

ब्रह्माजी ने कहा—मैं गंगाजी को तो भूलोक में भेज दूँगा, पर उसके प्रवाह को रोकने की शक्ति पृथ्वी में नहीं है इसके लिये दया सिंधु भगवान शिव जब तक कृपा नहीं करेंगे तब तक कार्य सिद्ध नहीं होगा—सुनकर ब्रह्मा के वचनों को भगीरथ ने अन्न-जल परित्याग कर पैर के एक अँगूठे पर खड़े होकर एक वर्ष तक शंकर का ध्यान करते रहे, अनन्य शरणागति से उमापति प्रकट हो बोले-मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ और तुम्हारी कामना पूर्ति करने आया हूँ, मैं गंगा देवी को अपने मस्तक पर धारण कर तुम्हारा कार्य करूँगा।

भगवती गंगा को अपने वेग का बड़ा गर्व था, इससे उन्होंने शिवजी को बहाते हुए पाताल में प्रवेश कर जाने का निश्चय किया और विशाल रूप धारण कर बड़े दुसह वेग से भगवान शिव के मस्तक पर गिरीं।

भगवान शिव को उनके अभिमान का पता लग गया, इसलिये उन्होंने गंगाजी को अपने जटाजूट में ही बाँध रखने का निश्चय कर लिया। गंगा पूरे वेग से शिवजी की जटा पर गिरीं और उसी में समा गयीं। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पृथ्वी पर उतर जाँय, पर किसी भी तरह जटा मण्डल से नहीं निकल सकीं, वहीं पर गंगाजी कई वर्षों तक चक्कर लगाती रहीं।

भागीरथजी को इस बात से बड़ा दुःख हुआ और वे पुनः शिवजी की आराधना करने लगे। शिवजी ने भागीरथी की प्रार्थना पर गंगाजी को अपनी जटा से मुक्त कर दिया। उस समय गंगाजी की सात धाराएँ हो गयीं। आल्हादिनी, पावनी और नलिनी नाम की गंगा की मंगलमयी तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर बह पड़ीं। सुचक्षु, सीता और सिंधु नाम की तीन धाराएँ पश्चिम दिशा को प्रवाहित हुईं और सातवीं धारा के रूप में पतित पावनी भगवती गंगा महाराज भगीरथ के रथ के पीछे चलीं। सुन्दर रथ पर बैठे हुए भगीरथ आगे-आगे जा रहे थे, पीछे-पीछे भागीरथी गंगा उनका अनुसरण

कर रही थीं।

अनेक देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध आदि इस अद्भुत दृश्य को देखकर मुग्ध हो गये। देवता लोग भी आकर इस गंगा अवतरण दृश्य को देखने लगे। भूतलवासी ऋषीगण उस जल को शिवजी के अंग से निकलता देखकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका स्पर्श कर परम आनन्द को प्राप्त हुए। गंगा की वह धारा भूलोक के प्राणियों का उद्धार करती हुई रसातल तक चली गई और वहाँ पहुँचकर उसने भागीरथ के भस्मीभूत पितामहों का उद्धार किया। यह सब विलक्षण कार्य महाराज भगीरथ की शिव-भक्ति का ही परिणाम था।

(वाल्मीकि रामायण बाल० 42-43)

✻ प्रथम सोपान समाप्त ✻

शिवेतिनाम दावाग्ने र्महापातक पर्वताः।
भस्मीभवन्त्य नायासात् सत्यं सत्यं न संशयः॥

'शिव' इस नाम रूपी दावानल से बड़े-बड़े पातकों के असत्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं।

(ॐ नमः शिवाय)



श्री शिव कथा सार का

द्वितीय सोपान

❃ मंगलाचरण ❃

ध्यायेनित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारूचन्द्रावतंसम्॥
रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवरा भीति हस्तं प्रसन्नम्॥
पद्मासीनं समन्ता त्सुतम मरगणैर्व्यालं यज्ञोपवीतम्।
विश्वाद्यं विश्वबन्द्यं निखिलभयहरं पच्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

(शिव उपासना से सत्यवीर शास्त्री कृत)

चाँदी के पहाड़की कान्ति के सदृश सुन्दर देह धारण करने के साथ ही जिसने अपने मस्तक पर अति रम्य चन्द्र खण्ड देह को भी धारण कर रखा है, एवं जिसका समस्त शरीर रत्नादिकों की कान्तिवत् प्रज्वलित हो रहा है तथा जिसने फरसा, मृगवर व अभय आदि सुन्दर मुद्राओं से अपने चारों हाथों को सुशोभित कर रखा है और सुन्दर सर्प का यज्ञोपवीत धारण कर पद्मासीन होकर चतुर्दिक देववृन्दों द्वारा प्रशंसित हो रहा है। ऐसा विश्व का आदिकरण तथा समस्त भयों को दूर करने वाला, तीन नेत्र और पाँच मुखवाला सदाशिव समस्त ब्रह्माण्ड द्वारा अहर्निश बन्ध्य हो रहा है, ऐसे माहेश्वरी रूप का शुद्ध हृदय से मैं ध्यान करता हूँ।

(1) शिव

"महोक्षः खटवांग परशुरजिनं भस्म फणिनः,
कपालं चेती यंन्तव वरद तंत्रोपकरणम्।
सुरास्तांतामृद्धिदधति तु भवदभ्रु प्रणहितां,
नाहं स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥"

"हे वरदाता! बूढ़ा बैल, खटिये का एक पाया, फरसा, गजचर्म, चिता भस्म और खोपड़ी यही तो आपकी कुल गृह सामिग्री है पर प्रभो! आपके भ्रूभंग मात्र से प्राप्त देवता उतने ऐश्वर्य को भोगते हैं (तो आप क्यों नहीं भोगते?) जो आत्माराम हैं, उन्हें विषयों की मृगतृष्णा भ्रम में नहीं डाल सकती। भाल में चन्द्रमा की पतली सी कला और उसके ऊपर तृतीय नेत्र हैं। सर्पों से बँधी जटा में गंगाजी हिलोरे ले रही है। उनको धारा वहाँ से निकल रही है। सबसे ऊपर एक सर्प ने फण फैलाकर एक मुकुट बना रखा है। कटि, भुजा, हृदय, कंठ आदि स्थान-स्थान पर सर्पों के फण या बिना फैले मुख शोभा दे रहे हैं, बूढ़ा बैल थोड़ी दूर पर बैठा हुआ है।

दोहा— शिव स्वरूप कल्याणमय, योगीश्वर आदर्श।
सकल विश्व समृद्धि, पदमन लौटति हर्ष॥1॥
भ्रूमंग मात्र त्रैलोक का, राज्य दशानन दीन्ह।
क्षीर सिन्धु उपमन्युहिं, नन्दी मृत्यु निर्भय कीन्ह॥2॥
विषयन्ह भोगों से पृथक, त्यागमय देहधरें।
प्रथम सुमंगल विग्रहि, हम सब ध्यान करें॥3॥

वे शिव हैं, कल्याण स्वरूप हैं, उनका विग्रह कल्याणमय है, साथ ही बतलाता है कि मुझे प्राप्त करने का यह मार्ग है कल्याण की प्राप्ति यों हुआ करती है। वे योगीश्वर हैं, अत: उनका आचरण योगियों की शिक्षा के लिये आदर्श है। समस्त विश्व की समृद्धि उनके चरणों में लोटती है। वे भ्रूभंगमात्र से रावण को त्रैलोक्य का राज्य, उपमन्यु को क्षीरसागर तथा नन्दी को मृत्यु से निर्भय कर देने वाले हैं, फिर भी वे इन विषयों से, भोगों से सर्वदा पृथक रहते हैं। उनका विग्रह त्यागमय है। सर्वप्रथम हम सब इस मंगलमय विग्रह का एक बार ध्यान करें ।

छन्द— रजत हिम श्वेत वर्ण चहुँदिसि, ऊँच-नीच टीले चमकावहीं।
सघन और विशाल बट तरु, हिम माँहि कहाँते आवहीं॥
कछु दूर तरु धरणी हरित पै, खड़े नन्दी त्रिशूलहिं धारहीं।
बैठि मूलतरु पद्मासनहिं, चर्म व्याघ्र सोभा पा रहीं॥

चारों तरफ श्वेत बर्फ के सहस्त्रों ऊँचे-नीचे रजत वर्ण टीले चमक रहे हैं, पता नहीं कहाँ से उस बर्फ में भी एक वटवृक्ष सघन और विशाल है, वृक्ष से थोड़ी दूर पर हरित भूमि पर नन्दी त्रिशूल लिये खड़ा है। वृक्ष के मूल में व्याघ्राम्बर पर पद्मासन लगाये प्रभु शंकर विराजमान शोभा पा रहे हैं।

चौ०—हिमसेउ श्वेत ढ़का तन भस्महिं। उज्ज्वल ज्योति निकल रही उन महिं॥
डमरू लटक त्रिशूल समीपा। मनुज कपाल एक ओर दीषा॥
तलवे अरुण मिलाकर पंजा। मानो सजे चरण पर कंजा॥
कटि गज चर्म सर्प एक बाँधे। कंकण सर्प कलाइन सांधे॥

उनका उस वर्ष से भी श्वेत वर्ण भस्म से ढ़की है, फिर भी उसे उज्जवल ज्योति निकल रही है, समीप त्रिशूल पड़ा है जिस पर डमरू लख रहा है, एक ओर मनुष्य कपाल पड़ा है, दोनों चरणों के तलवे अरुण और मिलाकर रखे हुए हाथ की हथेलियाँ ऐसी लगती हैं मानो किसी ने चरणों पर कमल सजा दिये हों। कमर में गजचर्म पहने हैं जो एक सर्प से बँधा है। कलाइयों में सर्प के कंकड़ भुजाओं में हैं।

चौ०—गले पड़ी रुद्राक्षहि माला। सर्पन्हयज्ञोपवीत निराला॥
हृदय पड़ा विराजै तन के। नेत्र अधमुंदे है रहेउ उनके॥

गले में रुद्राक्ष की माला, हृदय पर साँपों का यज्ञोपवीत, नेत्र अधमुंदे हो रहे

हैं, कण्ठ तनिक नीला सा है, यह तो हुआ शिव का ध्यान।

दोहा— ध्यान से चित्त पवित्र कर, करैं रूप आदर्श विचार।
वाहन वृद्ध वृषभ उन, श्मशान निवासहिं धार॥1॥

ध्यान से चित्त को पवित्र करके अब प्रभु के रूप के आदर्श पर विचार करें। शिव का वाहन है वृद्ध बैल, और निवास है श्मशान की भूमि। बैल धर्म की मूर्ति है, वृद्ध नवीन नहीं जो पुराना सनातन हो उस धर्म पर शिव कल्याण आरुढ़ होते हैं। उसी धर्म पर चलने से शिव की प्राप्ति होती है साथ ही वह शिव, श्मशान में, सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्धों, विषयों और स्मा-द्वैतमय द्वन्द्वों की जहाँ समाप्ति हो जाती है वहाँ रहते हैं। सच्चा कल्याण तो विषयों के द्वन्द्वों के अंत होने पर ही होता है, वे प्रभु कहते हैं कि शिव = कल्याण को पाना है, तो इस जगत में ऐसे रहो जैसे श्मशान में हो। समस्त मौलिक सम्बन्धों की भस्म को शरीर पर मलकर ही मेरे समीप आ सकोगे। योगियों के साधन श्मशान भूमि में शीघ्र सफल होते हैं, दूसरे तीव्र वैराग्य का यह आदर्श है।

दोहा— उनके वस्त्र मृग चर्महि, कर पाया और कपाल।
भूषन सर्पधतूर विष असन बाल विधु भाल॥2॥

उनके वस्त्र में मृगचर्म और उनके हाथ में कपाल और चारपाई का एक पाया। उनके भूषण हैं सर्प और आहार है धतूरे जैसा विष और भाल है चन्द्रमा = अर्थात् मृगचर्म योगियों के लिये सिद्धिदाता है अच्छे-अच्छे दिनों के फेर में मत पड़ो यह शिक्षा भी। कपाल देख लो! इस मनुष्य शरीर की यही अन्तिम दशा होती है। अभी से जीवन को सफल करने की चेष्टा करो। इसी हड्डी को सुन्दर और बुद्धि पूर्ण समझकर इतने गर्व में हो। सौंदर्य और बुद्धिमत्ता तथा समस्त गर्व का आधार सिर है शिवजी उसकी वास्तविकता खोले हुए प्रत्यक्ष दिख रहे हैं कि वास्तव में यह है कपाल। हाथ में चारपाई का अभिप्राय = वैराग्य की चरम सीमा। सीखो यह सोने के लिये जीवन नहीं है यह श्मशान की चारपाई का पाया है इस पर सुख से सोने वाले को बार-बार श्मशान में आना पड़ेगा।

उनके भूषण हैं सर्प और आहार है धतूरे जैसा विष का अभिप्राय = इतने क्रूर जीव से भी मेरा द्वेष नहीं अर्थात् जिसमें द्वेष नहीं, उनके इतने क्रूर जीव भी आभूषण हो जाते हैं वे उसके प्रति क्रूरता प्रकट कर ही नहीं सकते, द्वेष रहित होकर प्रेम करो। क्रूर से क्रूर जीव भी तुम्हारा आभूषण हो सकता है।

भाँग धतूरा = रसना के भोगों में और शक्ति को शक्तिदायी पदार्थों के लोभ में न पड़ो, इनका जो सेवन करता है वह साधन नहीं करता। उदर पूर्ति के लिये जो भी मिल जावे उसे ही पर्याप्त समझो।

भाल में है चन्द्रमा = कीर्तिमय, अमृतमय, ऐश्वर्यमय इन सभी वस्तुओं से प्रभु

का मस्तक भूषित है जो इस आदर्श पर चलेगा उसे चन्द्र के समान कीर्ति मिलेगी। उसे अमृत मिलेगा, वह मृत्यु से छुटकारा पा जावेगा, उसे समस्त ऐश्वर्य मिलेंगे, विश्व द्वितीया के चन्द्र के समान उसे मस्तक झुकावेगा।

दोहा— शंकर वर्णहि शुभ्र अति, नील कण्ठ आकार।
प्रलय तीसरा नेत्र अरु, सिरगंगा है धवलाधार॥3॥

शुभ्रवर्ण = वे सत्व गुण की मूर्ति है, संसार की रक्षा के लिये उन्होंने हलाहल भी पी लिया, अर्थात् सत्वगुणी बनो पर आर्तों और दुखियों की उपेक्षा मत करो। साधन के मोह में भी मत पड़ो, विष पीकर, प्राण देकर भी पीड़ित एवं आर्तकी रक्षा करो, भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे, हलाहल भी तुम्हें अमृत हो जावेगा, विश्व की कोई भी शक्ति तुम्हारी हानि नहीं कर सकती यह शिक्षा है। तीसरा नेत्र = प्रलय नेत्र। ओह! ज्ञाननेत्र है वह। ज्ञान को विचार को जाग्रत रखो, विचार की अग्नि काम को तो क्या, समस्त विश्व को, माया के समस्त बंधनों को जला देगी लेकिन कहीं इस तमस्या, वैराग्य, त्याग और ज्ञान तथा दीनोपकार का तुम्हें अभिमान न हो जावे उधर देखो इतना बड़ा त्याग तपस्वी, ज्ञानी और दीन रक्षक होने पर भी उनके मस्तक पर क्या है? "भागीरथी की धवल धार" वह अरे नदी = श्री हरि का चरणामृत। अर्थात् जिसमें भक्ति नहीं, उसका त्याग, तितिक्षा, ज्ञान तथा परोपकार सब व्यर्थ है। मानस में भी "राम भगति जहँ सुरसरि धारा" सब साधन करते हुए भी प्रभु के चरणों में मस्तक झुकाओ, उनके चरणामृत को सिर पर चढ़ाओ अर्थात् सबसे ऊपर 'भक्ति' को स्थान दो तब कहीं शिव को प्राप्त करोगे-स्वयं शिव कल्याण स्वरूप हो जाओगे।

चौ०— कर त्रिशूल अरु डमरू विराजा। सत्यं शिवं सुन्दरं काजा॥
अर्धनारीश्वर शिवहिं अभंगा। नारी गोद रह फिर भी असंगा॥

प्रभू के हाथ में त्रिशूल और डमरू भी है, इसका अभिप्राय है कि = त्रिशूल दैहिक दैविक और आध्यात्मिक तीनों शूल, तीनों प्रकार के ताप उनके हाथ में हैं, यानी उनके वश में हैं।

डमरू सम्पूर्ण विद्या और कलाओं का उद्गम स्थान भी उनके हाथ में है, सम्पूर्ण कला और विद्याओं पर उनका अधिकर है, प्रभु दिख रहे हैं कि उपरोक्त प्रकार से जो रहेगा उसे कोई ताप छू नहीं सकता। तीनों तापों का वह स्वामी हो जायेगा और बिना प्रयास के समस्त कला तथा विद्या उसके अधिकर में रहेंगी ।

सत्यं शिवं सुन्दरं = जो सत्य है वही शिव कल्याणमय है और वही सुन्दर भी है। प्रभु अपने वेश और लक्षणों द्वारा विश्व का नग्नरूप रखकर सत्य साधन का पथ दिखलाते हैं, उनका रूप सत्य का प्रतिपादक है, द्योतक है, अतः वह शिव है। शिव तो सुन्दर होगा ही, वे ही सौन्दर्य के आधार हैं।

एक बात और—शिव अर्धनारीश्वर भी हैं, स्त्री को सदा वामांग में धारण किये

रहते हैं, पर स्मरण रहे कि वे काम को भस्म करने वाले हैं, स्त्री को सदा अंक में लिये रहने पर भी वे कामारि हैं। असंगत की सीमा है। काम ही सबसे प्रबल वासना है और उसका उद्दीपन है स्त्री। पर भुवन मोहनी स्त्री को साथ रखने पर भी वे असंग है। यदि वासनाओं को उद्दीपन करने की वस्तु आही जाय तो भागकर जान बचाने की चेष्टा व्यर्थ है, इतनी शक्ति होनी चाहिए। साधक में कि वह भोगों के समीप रहने पर भी असंग रहे। पर भोगों को भोगते हुए संसार में जनक बनने का साहस मत करो। कैलाश के निर्जन प्रान्त में तथा अपनी त्यागमय भूषा से प्रभु कहते हैं—त्याग और वैराग्य को अपनाओ, भोगों से दूर रहो पर शक्ति प्राप्त करो कि प्रसंग आ ही जाय तो तुम पथभ्रष्ट न होकर असंग रह सको।

(मानसमणि फरवरी 66 आलोक 2)

❃ श्री शिवाटक ❃

आदि अनादि अनंत अखण्ड अभेद अखेद सुवेद बतावैं।
अलख अगोचर रूप महेश को जोगि जती मुनि ध्यान ना पावैं॥
आगम निगम पुराण सवै इतिहास सदा जिनके गुण गावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई जो साम्ब-सदाशिव को नित ध्यावैं॥1॥

सृजन सुपालन लयलीला हित जो विधि हरि हर रूप बनावैं।
एकहि आप विचित्र अनेक सुवेष बनाइके लीला रचावैं।
सुन्दर सृष्टि सुपालक करि जग पुनि बन कालजु खाय पचावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो साम्ब सदाशिव को नित ध्यावैं॥2॥

अगुन अनीह अनामय अज अविकार सहज नितरूप धरावैं।
परम सुरम्य बसन आभूषन सजि मुनि मोसन रूप करावैं।
ललित ललाट बाल बिधु बिलसैं रत्नहार उरपै लहरावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो साम्ब सदाशिव को नित ध्यावैं॥3॥

अंग विभूति रमाय मशान की विषमय भुजगनि को लपटावैं।
नर कपालकर, मुण्डमाल गल, भालुचर्म सब अंग उढ़ावैं।
घोर दिगम्बर, लोचन तीन भयानक देख के सब थर्रावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो साम्ब-सदाशिव को नित ध्यावैं॥4॥

सुनतहिं दीन की दीन पुकार दयानिधि आप उबारन आवैं।
पहुँच तहाँ अविलम्ब सुदारुन मृत्यु को मर्म विदारि भगावैं।
मुनि मृकण्डु सुत की गाथा सुचि अजहुँ विज्ञजन गाइ सुनावैं।
बड़भागी नर नारि सोई जो साम्ब-सदाशिव को नित ध्यावैं॥5॥

चाउर चारि जो फूल धतूरे के, बेल के पात अरु पात चढ़ावैं।
गाल बजाइके बोलें जो 'हर हर महादेव' धुनि जोर लगावैं।
तिनहिं महाफल देय सदाशिव सहजहिं भक्ति मुक्ति सों पावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो साम्ब-सदाशिव को नित ध्यावैं॥6॥

बन सिदारे दुःख दुरित दैत्य दारिद्रय नित्य सुख शांति पिलावैं।
आशुतोष हर पाप-ताप सब निर्मल बुद्धि चित्त बकसावैं।
अशरण-शरण काटि भवबंधन भव निज भवन भव्य बुलवावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई जो साम्ब सदा शिव को नित ध्यावैं॥7॥

औढ़रदानी, उदार अपार जुनैंकसी सेवाते ढुरि जावैं।
दमन अशांति समन संकट, विरद विचार जिनहिं अपनावैं॥
ऐसे कृपालु कृपामय देव के क्यों न शरन अबही चलि जावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई जो साम्ब सदाशिव को नित ध्यावैं॥8॥

सवैया—गौर शरीर में गौरि विराजत, मोर जटा सिर सोहत जाके।
नागन के उपवीत लसैं, कहे अयोध्या शशि भाल में वाके॥
दान करैं पलमें फलचारि, और टारत अंक लिखे विधिना के।
शंकर नाम निःशंक सदा ही, भरोसे रहैं निशिवासर ताके॥

(शिव उपासना से, लेखक जसवीर शास्त्री)

(जय श्री शिवशंकर)



(2) ब्रह्मा के सिर का छेदन

"प्रभो! तुम्हारी लीला तुम्हीं जानो! हम तो जैसे सुनते हैं, ठीक उसे भी नहीं समझ पाते। हम तो जो सुनते हैं, उसे भी अपनी तुच्छ बुद्धि के साँचे में ढ़ालकर ही ग्रहण कर पाते हैं। मानव की इस निरहिता पर तथा इतना विवश होने पर भी जो वह अपने को सर्वज्ञ मानता है, इस पर हँसते होंगे मेरे देव! हँसो। हम और कर भी क्या सकते हैं। हमारे पास तो जो कुछ बुद्धि विचार है, उसी से श्री चरणों में उपस्थित हैं।"

दोहा—सृष्टि के प्रारम्भ में विधि, मानस सृष्टि कछु कीन्ह।
बिना काम नहिं बढ़ सकी, तब उतपति कामहिं चीन्ह॥1॥

सृष्टि का प्रारम्भ ही था। काम के बिना सृष्टि की उत्पत्ति तो आगे चल नहीं सकती थी अतः ब्रह्माजी ने कुछ मानसी सृष्टि करने के उपरान्त काम की उत्पत्ति की।

दोहा— रेशम कीट फँसे जिमि, निज निर्मित सूतहि माँहिं।
कामहिं से अभिभूत विधि, पुत्री पीछे दौड़ लगाँहिं॥2॥

पर जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही निर्मित सूत में स्वयं फँस जाता है, जैसे मनुष्य दूसरों पर स्वयं क्रोध करके कभी-कभी अपने को ही चपत लगा लेता है, ऐसे ही ब्रह्मा स्वयं ही उस काम से अभिभूत हो गये, वे अपनी पुत्री के पीछे दौड़े।

वे समर्थ हैं साक्षात् भगवान हैं, काम उनका स्पर्श भी नहीं कर सकता, पर जहाँ उन्हें सृष्टि करनी थी, वहाँ सृष्टि के लिये आदर्श स्थापन करना था। उन्होंने दिखलाया कि मन इतना चंचल है कि उस पर कभी भी विश्वास मत करो, मन पर विश्वास करके एकान्त में परस्त्री तो क्या अपनी पुत्री के समीप भी नहीं रहना चाहिए। कामोत्तेजक भावों को कभी उत्पन्न मत होने दो। जब वे मुझे भी उत्पन्न करने पर पागल बना देते हैं, जब मैं स्वयं अपनी पुत्री तक के पीछे दौड़ सकता हूँ, तो फिर जो मेरे द्वारा बनाये हैं उनकी चर्चा ही क्या? उन्हें कभी जितेन्द्रिय होने के अभिमान के कारण प्रमाद नहीं करना चाहिए, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा, इन्द्रियों से सदा सावधान रहो।

चौ०—उन्मत्त वासना कामहिं पेखा। अपनी ओर विधि आवत देखा॥
शारदभागिमृगी तन धारयो। मृगहोइ बिधि पाछे लगि पारयो॥
कामावेश मत्त नर होवै। बल बुद्धि लज्जा सबही खोवै॥
निज कुकृत्य स्वयं फँसि जावै। असंभव है निवृत्ति न पावै॥

ब्रह्मा जी को अपनी ओर कामवासना से उन्मत्त होकर आते देख शारदा मृगी रूप धर के भागी। ब्रह्मा भी उसके पीछे मृग होकर दौड़े। कामावेश में मत्त पुरुष की लज्जा, बुद्धि, बल और विज्ञान तीनों का नाश हो जाता है। वह स्वयं अपने कुकृत्य में फँस जाता है, उससे निवृत होना उसके लिये असम्भव है।

चौ०—विचार शक्ति नष्ट होइ जावै। दूसर व्यक्ति रोकि तेहि पावै॥
प्रबल आवेश रुकै न समुझाई। समुझ न वाके उर न समाई॥
उल्टे क्रोध समुझ मन आवै। एक उपाय दण्ड अपनावै॥
आवेशहिं शान्तदण्ड से होई। और न दूसर मारग कोई॥

क्योंकि उस कामासक्त के समय उसकी विचार शक्ति नष्ट हो जाती है, ऐसे समय दूसरा पुरुष ही उसे रोक सकता है, पर दूसरा भी प्रबल आवेश में समझा कर नहीं रोक सकता, समझाने पर तो उल्टे क्रोध आता है, समझाने का उसके हृदय पर समझ नहीं समाती, उस समय रोकने का एकमात्र उपाय है दण्ड। दण्ड से ही उसके आवेश को शान्त किया जा सकता है, और कोई दूसरा मारग नहीं है।

चौ०—मर्यादा लाँघि विधि दौड़त गयऊ। देवऋषि स्तम्भित भयऊ॥
स्तुति से सनकादि सुझाया। व्यर्थ हुआ उनका वो बुझाया॥

ब्रह्माजी को इस प्रकार मर्यादा विरुद्ध दौड़ते देख समस्त मानसिक सृष्टि के देवता और ऋषि स्तम्भित रह गये। सनकादि कुमारों ने स्तुति करके और समझाकर ब्रह्मा को निवृत्त करने की चेष्टा भी की, पर सब व्यर्थ।

दोहा— दण्ड दैन की शक्ति ना, लखि सके न अनर्थ महेश।
पिनाक उठा दौड़े तभी, बना भील का वेष॥1॥

दण्ड देने की शक्ति इन लोगों में थी नहीं। भगवान शिव इस अनर्थ को नहीं देख सके, उन्होंने पिनाक उठाया और भील का रूप रखकर बाण चढ़ाकर वे हिरन बने ब्रह्माजी के पीछे दौड़े।

चौ०—उपस्थित हुआ दण्ड तहँ जबही। दूर ह्वै जाय बासना तबही॥
कामावेश हवा विधि भयेऊ। प्राणों के लाले परि गयेऊ॥
आगे ब्रह्मा मृग बन भागे। किरात बने शिव पीछे लागे॥
चौदह लोक त्रैलोक भगाहीं। अद्भुत किरात त्यागत पछ नाँहीं॥
मृगीरूप तजि शारदगयेऊ। प्राण बचाते विधि पीछा करेऊ॥
आशा त्राण ब्रह्म नहिं रहेऊ। मनते शरण शिवहिं की भहेऊ॥

आगे मृग बने ब्रह्माजी और पीछे बाण चढ़ाये किरातवेश में भगवान शंकर ब्रह्मा तीनों लोक, चतुर्दश भुवन का चक्कर लगा आये किन्तु इस अद्‌भुत किरात से पीछा न छूटा। शारदा तो प्रथम ही मृगीरूप त्यागकर अपने धाम को चली गई। ब्रह्माजी अपने प्राण बचाते या उनका पीछा करते। अंत में जब कोई आशा त्राण की न रही तब उन्होंने मन ही मन शिव की शरण ली।

चौ०—आशुतोष विधि टारि विपत्ति। बाधा कामहिं क्रोध उत्पत्ति॥
शरण प्राण भयते लै लीन्ही। उतपति क्रोध दूर नहिं कीन्हीं॥
पँचमस्तक ब्रह्मा होइ जाही। चार तो प्रथमहिं से उन पांही॥
पंचम मुख मृग का बनि भयेऊ। चारि मुखहिं ऊपर लगि गयेऊ॥

आशुतोष ने ब्रह्मा की विपत्ति को टाल दिया अर्थात् उन्हें छोड़ दिया। काम में बाधा पड़ने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है। ब्रह्माजी ने प्राणभय से शरण ले ली। पर काम में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न हुआ, वह पूरी तरह दूर नहीं हुआ, अतः ब्रह्मा के पाँच मुख हो गये, चार तो प्राथम से ही थे, पाँचवाँ वह हिरण का मुख उन चारों से ऊपर मस्तक पर बन गया।

चौ०—क्रोधहि से उत्पत्ति होई। बुरे बचन पंचम कह सोई॥
सबहिं अंग चेतन विधि होंही। स्वतः कार्य निज करते सोंहीं॥
गज घोड़े वन चीनी जोहीं। सभी अंग मीठे उन होंहीं॥
उर प्रेरित कृत नहिं आवश्यक। सात्विक चार वो वन्यो तामसिक॥

वह पाँच मुख क्रोध से उत्पन्न होने के कारण प्रायः दुर्वचन ही कहा करता था।

चेतन का सभी कुछ चेतन ही होगा। चीनी से बने हाथी घोड़े के सभी अंग मीठे होंगे। अत: चेतन स्वरूप ब्रह्माजी के सभी अंग चेतन हैं। स्वत: अपना कार्य करते हैं हृदय से चेतना लेकर हृदय की प्रेरणानुसार ही कार्य करना उनके लिये आवश्यक नहीं। इसलिये चारों मुखों के सात्विक होने पर भी पाँचवाँ मुख तामसिक हो गया।

दोहा— एक दिवस संयोग वश शिव पहुँचे ब्रह्महिं लोक।
स्वागत कर आसन दियो, सत्कार अतिथि कर जोग॥1॥

संयोगवश एक दिन भगवान विश्वनाथ ब्रह्मलोक पहुँचे। ब्रह्मा ने उठकर उनका स्वागत किया, आसन दिया और कर जोर अतिथि सत्कार किया।

दोहा— प्रशंसा कर रहे चार मुख, शिव गाली बक रहा एक।
उत्तेजित तथा क्रोध महँ, शंकर को यह देख॥2॥

ब्रह्माजी अपने चार मुखों से तो शंकर जी की प्रशंसा कर रहे थे, पर पाँचवाँ मुख गाली बक रहा था। वह अपने क्रोध के कारण शंकरजी को देखकर और उत्तेजित था, यही तो उसकी वासना पूर्ति के मार्ग में बाधक हुए थे।

चौ०—प्रभु ने सोचा तब निज मन में। यह वैषम्य न ठीक बदन में॥
सृष्टिकर्त्ता न हो दुर्भाषी। सबके प्रति आदर्शहिं राखी॥
मस्तक काट नखाग्रहिं जबहीं। हथेली पर चिपका शिव तबहीं॥
छुड़ाय न जा सक प्रयत्न अनेका। ब्रह्महत्या परिणाम लगि एका॥

प्रभु शंकर जी ने अपने मन में सोचा, ब्रह्माजी के मुखों में यह वैषम्य ठीक नहीं। सृष्टि कर्त्ता का मुख दुर्भाषी नहीं होना चाहिये, उसे तो सबके प्रति आदर्श होना चाहिए, अत: भगवान प्रलयंकर ने अपने नाखाग्र भाग से उस पाँचवें मुख को काट दिया। पर यह क्या? काटते ही वह मस्तक शंकरजी की हथेली पर आ चिपका। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह वहाँ से छुड़ाया न जा सका। यह ब्रह्महत्या का परिणाम था। वह मस्तक हत्या के पाप स्वरूप हाथ में जा लगा था, प्रभु बड़े सोच में पड़ गये कि अब इसे कैसे छुड़ाया जाय?

चौ०—समरथ केरे शोचअरु चिंता। क्या नहिं कर सक शिव भगवन्ता॥
उन्हें तो विश्व कहँ यह दिखलाना। करन विप्रबध शास्त्रन माना॥
उल्लंघन परिणाम भयंकर। यह महत्व बतलावें शंकर॥
सिर से त्राण विधि पूछ उपावा। ब्रह्म हत्या त्राण सरल न जावा॥

समर्थ के लिये चिंता और सोच कैसा? वे करना चाहें तो क्या नहीं कर सकते, पर उन्होंने तो विश्व को बतलाना था कि शास्त्र की यह आज्ञा कि ब्राह्मण का अपराध करने पर भी वध नहीं करना चाहिए, उसका उल्लंघन करने का कितना भयंकर परिणाम होता है यह बात शंकरजी ने महत्व की बतलाई। इस हाथ पर सटे सिर से

त्राण पाने का उपाय उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा, उन्होंने कहा, यह तो ब्रह्महत्या है इससे त्राण पाना सरल है नहीं।

दोहा— स्नानहिं करि सब तीर्थन, परिकम्मा पृथ्वी कीन्ह।
ठीक नहीं मैं कह सकूँ, तीर्थ प्रभाव दूर कर लीन्ह॥1॥

ब्रह्माजी बोले-आप समस्त तीर्थों में स्नान करें, सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करें। मैं ठीक तो नहीं कह सकता, पर सम्भव है कि किसी तीर्थ के प्रभाव से यह दूर हो सके।

दोहा— सटे हुए सिर हाथ ले, शिव घूमे सब संसार।
एक के बदले भूमि की, परिकम्मा करीं हजार॥2॥

शंकरजी उस हाथ पर सटे सिर को लिये सारे संसार भर में घूमे, पृथ्वी की एक के बदले हजारों परिक्रमाएँ कीं।

चौ०— जा सब तीर्थन कर स्नाना। ढूँढ़ ढूँढ़ लुप्त तीर्थन नाना॥
भयो त्रास परिणाम न कोई। भयो न टस से मस सिर सोई॥
हथेली से सिर दूर न भयऊ। विवशहिं शिव उदास ह्वै गयेऊ॥
करन लगे धरणि पर भ्रमणा। प्रलय में काशी शिवलोक गमना॥

शिव ने सभी तीर्थों में जा-जाकर स्नान किया। लुप्त तीर्थों को ढूँढ़ ढूँढ़कर वे वहाँ गये पर कोई परिणाम नहीं हुआ, वह सिर हाथ से दूर होना तो दूर, अपने स्थान से टस से मस भी नहीं हुआ। अतः विवश होकर शिवजी उदास से बनकर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे। काशी महाप्रलय में शिवलोक गमन कर गयी थी।

चौ०— काशीपुरी अब पृथ्वी आई। फिर भी अभी गुप्त रहजाई॥
विधि अवतीर्ण तस पता न होई। एक दिवस शिव घूमत ओई॥
प्रविष्ट नये स्थानहिं भयेऊ। सिर हस्त छूट भूमि गिरि गयेऊ॥
अचरज भयो शिवहिं भगवाना। छूटन तीर्थ प्रभाव स्नाना॥

जो काशी शिवलोक में प्रविष्ट थी, वह काशीपुरी पृथ्वी पर आ चुकी थी, फिर भी अभी वह गुप्त थी। उसके अवतीर्ण होने का पता ब्रह्मा को भी न था। घूमते-घूमते अकस्मात एक दिन एक नवीन स्थान में प्रविष्ट होते ही भगवान शंकर के हाथ से छूटकर वह ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर पृथ्वी पर जा गिर पड़ा। शंकरजी बड़े आश्चर्य में पड़े कि "समस्त तीर्थों में प्रवेश करने, स्नान करने पर भी जो ब्रह्म-हत्या न छूटी वह यहाँ कैसे छूट गयी? यह कौन सा अज्ञात तीर्थ है?

दोहा— काशीपुरी सीमा प्रविशि, ज्ञातभयो कर ध्यान।
वह सिर सीमा से बाह्य, ठीक गिरावह आन॥1॥

शिवजी ध्यान करने लगे तो ज्ञात हुआ कि वे काशीपुरी की सीमा में प्रविष्ट हो चुके हैं वह सिर काशीपुरी की ठीक सीमा के बाहर ही गिरा है।

दोहा— अकस्मात प्यारी पुरी पा, हर्ष से नाचन लाग।
थिर रूप से सर्वदा, तहँ रहने को मन जाग ॥2॥
करी प्रतिज्ञा शिवहि ने, जाने मेरी मुक्ति कीन्ह।
ब्रह्म-हत्या मेरी मिटा, रहूँ सबको मुक्ति दीन्ह ॥3॥

आकस्मात अपनी प्यारी पुरी को पाकर प्रभु शिवजी हर्ष से नाचने लगे। उन्होंने वहीं स्थिर रूप से सर्वदा रहने का निश्चय कर लिया, और प्रतिज्ञा की "काशी ने ब्रह्महत्या से मेरी मुक्ति की है। तो अब मैं यहीं रहकर यहाँ शरीर त्यागने वाले प्राणिमात्र की संसार चक्र से मुक्ति किया करूँगा। 'राम-नाम' उनके कानों में फूँककर संसार के आवागमन को मिटाऊँगा। *(मानसमणि फरवरी 66 आलोक)*

कवित्त—(1) "नन्दी की सवारी नाग अंगीकारधारी,
नित संत सुखकारी नीलकण्ठ त्रिपुरारी हैं।
गले मुण्ड माला भारी, सिर सोहें जटाधारी,
वाम अंग में विराजी गिरिजा सुतवारी हैं॥
वानी देख भारी शेष शारदा पुकारी,
काशीपति मदनारी त्रिशूल चक्रधारी हैं।
कला उजियारी लख देव सा निहारी,
यशगावैं वेद चारी सो हमारी रखवारी हैं॥"

(2) "अष्ट गुरुज्ञानी जाके मुख वेद वाणी,
शुभ भवन में भवानी सुख सम्पति लहा करैं।
मुण्डन की माला जाके चन्द्रमा ललाट सोहे,
दासन के दास जाके दरिद्र दहा करैं॥
चारों द्वार बन्दी जाके द्वारपार नन्दी,
कहत कवि अनन्दी नाहक नर हहा करैं।
जगत रिसाय यमराज को कहा बसाय,
शंकर सहाय तो भयंकर कहा करैं॥"

(3) सती

श्लोक— "क्रिया दक्षोदक्षः क्रतुपति रधी शस्तनुभृता,
भृषीणामार्तिज्यं शरणदसदस्याः सुखगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफल विधान व्यसनिनो,
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरम भिचारायहि मखाः॥"

"हे शरणद! जब कर्मकाण्ड में प्रवीण दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ऋषि लोग ऋषित्वक और देवता सदस्य थे, तब यज्ञ के फल का विधान (प्रदान) करने वाले

तुम्हारे द्वारा उस यज्ञ का विध्वंस किया गया। निश्चित ही श्रद्धाहीन यज्ञकर्ता को विपरीत फल ही देते हैं।"

प्रजापति दक्ष की पुत्री माता सती का विवाह भगवान शंकर के साथ हो चुका था। ब्रह्मा की सभा में एक दिन सभी देवता ऋषी आदि बैठे थे। भगवान शंकर भी वहीं थे, उसी समय वहाँ प्रजापति दक्ष का आगमन हुआ। दक्ष के तेज के कारण एकाएक समस्त ऋषी, देवता तथा और उपस्थित लोग उठ खड़े हुए अभिवादन के लिये। केवल ब्रह्माजी एवं शंकर ही बैठे रहे। दक्ष ने सबका अभिवादन किया। ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से एक आसन पर प्रजापति दक्ष बैठ गये।

जब किसी को विशेष कर अभिमानी को कोई अधिकार मिल जाता है तो फिर वह अपने को विश्व में सबसे बड़ा समझने लगता है। प्रजापति बने दक्ष को अभी थोड़े ही दिन हुए थे, अतएव उनके पैर भी पृथ्वी पर नहीं पड़ते थे। एक बात और है, यदि किसी स्थान पर कोई विशेष आदर सत्कार न हो तो उसकी ओर ध्यान भी नहीं जाता, पर जहाँ सभी लोग अपना सम्मान कर रहे हों वहाँ कोई उस स्वागत में भान न ले तो बहुत बुरा लगता है, अवश्य ध्यान उस पर जाता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यक्ति बड़ा घमण्डी है और सबके सामने अपने को मुझसे बड़ा दिखाना चाहता है। भगवान शंकर तो अपनी आत्म स्थिति में लीन थे, उन्हें पता ही न था कि कौन आया और कौन गया जैसे व्यक्ति अपने घर में बैठा हो, उसका ध्यान कहाँ जाता है कि यहाँ कौन सा मच्छर आया, कौन सा गया, इसी कारण से भगवान शिव के सामने कितने प्रजापति बने, कितने चले गये, वे किसका ध्यान देते? दक्ष के बैठ जाने पर भी उनकी ओर से कोई आदर सूचक चेटा न हुई।

बैठने के पश्चात् ही दक्ष का ध्यान शंकर जी की ओर गया। जामाता होने के कारण शंकर जी सम्बन्ध में दक्ष से छोटे थे, उन्हें पैर छूना था, दक्ष को बहुत बुरा लगा और वे क्रोधोन्मक हो गये। क्रोध मनुष्य को पागल बना देता है, उसे उचित अनुचित अवसर-कुअवसर का कुछ भी ध्यान नहीं रहता, अपनी शक्ति का भी ध्यान नहीं रहता कि वह प्रतिपक्षी के सम्मुख एक मच्छर जैसा है।

दक्ष क्रोध से लाल होकर बोले—देखो तो इस अहंकारी को, मैं सम्बन्ध में इसका पिता तुल्य हूँ, गूरू हूँ इस भिक्षुक के हाथों मैंने पितामह ब्रह्मा की आज्ञा से अपनी पुत्री दे दी, यह कापाली, कुरूप मेरी सुन्दरी पुत्री के ग्रहण योग्य था? पर इतना होने पर भी इसे मर्यादा का तनिक भी ध्यान नहीं। अपने अभिमान से इसे छोटा-बड़ा कुछ भी नहीं सूझता। सचमुच नीचों को जब उच्च मद मिल जाता है तो वे आपे से बाहर हो जाते हैं लेकिन मैं इसे आज शिक्षा दूँगा, अपने अभिमान का फल इसे भोगना होगा, इसे भी पता लगे कि दक्ष में कितनी शक्ति है। भगवान शंकर का ध्यान भंग हो चुका था, वे शांत भाव से दक्ष की बातें सुन रहे थे, भला उन परम पुरुष

पर इन बच्चों की सी बातों का क्यों प्रभाव पड़ने लगा। सब सभासभ मौन थे। जब कोई बड़ा प्रभावशाली जब बहुत उत्तेजित हो जाता है तो दूसरों का साहस बीच में बोलने का नहीं होता। दक्ष को रोकने का भी किसी को साहस नहीं हुआ।

वह अब शाप देने लगा—"यह अधर्मी जो कि श्मशान में नंगा, भूत प्रेतों से घिरा हुआ, खुले केश, हँसता और रोता हुआ पागलों की भाँति घूमता रहता है, शिव नाम होने पर भी जो अशिव है जो हड्डी की माला, चिता की भस्म तथा चमड़ा और सर्प पहने रहता है ज़ो स्वयं पागल है और पागलों की ही प्यारा है, जिसके कर्म नष्ट हो गये हैं, जो अपवित्र है, जो मर्यादाहीन अभिमानी है, ऐसा यह इन्द्रादि देवताओं के साथ यज्ञ में भग भाग न पावै।"

भक्त सब कुछ सह सकता है पर वह अपने प्राण हानि की भी कोई चिन्ता नहीं करता, पर अपने आराध्य का अपमान अपने सामने नहीं सह सकता। आराध्य का थोड़ा भी अपमान उसके हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर देता है, शास्त्रीय मर्यादा भी है जहाँ भगवान की निंदा होती हो वहाँ न रहे, निंदा सुनने से भी अपराध होता है, यदि शक्ति हो तो निंदा करने वाले को दण्ड दे और यदि शक्ति न हो तो उस स्थान से कान बंद करके उठ जावे, वहाँ रहकर निंदा सुनना घोर अपराध ही पाप है।

भगवान शंकर के गणों में अग्रणी नन्दीश्वर जी वहीं थे। अपने प्रभु की निंदा करते हुए दक्ष को देख और शाप देते सुनकर उनसे न रहा गया, उनके नेत्र भी लाल हो गये, शरीर क्रोध से काँपने लगा। बड़े तेजपूर्ण स्वर में वे बोलने लगे—"प्रभु की निंदा करने वाला दक्ष और उनका अनुमोदन करने वाले ये सभी ब्राह्मण अपने कर्मों का फल भोगें। अरे मूर्खो! जो मनुष्य समझ कर तुमने सर्वेश्वर से द्रोह किया है, इससे वस्तु तत्व से परान्मुख हो जाओ। तुम्हें अपने कर्मकाण्डों का बड़ा गर्व है, अतएव झूँठे धर्म वाले गृहों में सुख की इच्छा से वेदवाद मोहित होकर फँसे रहो। पशुओं की भाँति आत्मगति भूलकर भेदबुद्धि वाले होकर स्त्री काम हो जाओ। दक्ष का मुख शीघ्र बकरे का हो जावे और तुम सब अविद्याग्रस्त जड़ कर्मों में लीन बुद्धि से जो कि भगवान शंकर का अपमान करने वाले हो, संसार में ही भ्रमण करो। वेदों की उन वाणियों में जो कि अर्थवाद मात्र हैं, भगवान शिव के द्वेषी मोहित होकर उन्हीं का आचरण करते रहें। उन्हें वास्तविकता का पता न लगे। विद्यावान, तपस्वी तथा व्रतधारी ब्राह्मण भी सर्वभक्षी होकर धन, शरीर और इन्द्रियों में ही सुख बुद्धि वाले हों। भिखमंगे होकर वे संसार में भ्रमण करें।" मनुष्य क्रोध में क्या अनुचित नहीं कर जाता, एक दक्ष के अपराध से नन्दीश्वर ने समस्त ब्राह्मणों को शाप दे दिया।

क्रोध भी एक छूत की बीमारी है एक मनुष्य के उत्तेजित होते ही वहाँ उपस्थित सभी लोगों में कुछ न कुछ उत्तेजना आ जाती है। समस्त ब्राह्मणों को शाप देता हुआ नन्दीश्वर को देखकर महर्षियों के अग्रणी भृगुजी को भी क्रोध आ गया वे नन्दीश्वर

को सम्बोधित करके बोले—"कर्मों का यह पवित्र मार्ग ही समस्त लोकों के कल्याण का मार्ग है। यह सनातन मार्ग है। पूर्वज भी इसी पर स्थित थे। इस मार्ग के साक्षी (रक्षक) श्री हरि स्वयं हैं, उस वेदों के पवित्र मार्ग की, वेदों की, परम शुद्ध सज्जनों के सनातन मार्ग की तुम लोग निंदा करते हो, अत: तुम सब पाखण्डी हो जाओ और तुम्हारा देवता यह भूतों का राजा होवे। जो भी शंकर का व्रत धारण करने वाले या उनके अनुयायी हैं वे सतशास्त्रों के विपरीत चलने वाले पाखण्डी हो जावें। उनकी पवित्रता, बुद्धि नष्ट हो जावे। वे जटा-भस्म और हड्डी धारण करने वाले हों। वे उस शिव दीक्षा में प्रवेश करें। जिसमें मांस और मदिरा ही दिव्य पदार्थ माना जाता हो।"

घोर अनर्थ हो गया, दक्ष के शाप तक तो कुशल थी, पर नन्दीश्वर के भृगु के शाप ने कर्मकाण्डी और शिवानुयायी दोनों साधकों के मार्ग को नष्ट कर दिया। दोष किसी का और पड़ा बेचारे साधकों के सिर क्रोध पाप की जड़ जो ठहरा। भगवान शिव खिन्न हो गये। उत्तेजना को दूर करने का एक ही उपाय है कि उत्तेजित पुरुष पृथक हो जावे, समीप रहने पर क्रोध और बढ़ता ही है भगवान शंकर ने सोचा—"यदि और थोड़ी देर यहाँ बैठे रहेंगे तो पता नहीं क्या-क्या अनर्थ हो जावेगा। वाद-प्रतिवाद तो चलता ही रहेगा।

नन्दीश्वर सचमुच ही फिर बोलने जा रहे थे, पर बीच में ही शंकर जी चुपचाप सभा से उठ कर चल दिये, सभी गणों ने उनका अनुगमन किया। स्वामी को जाता देख नन्दीश्वर को भी उनके पीछे जाना ही था।

सज्जन और दुष्टों की एक पहचान है, सज्जन दूसरों के उपकार को और सुकर्म के प्रसंग को जीवन भर नहीं भूलते और दूसरों के अपकार को तथा झगड़े आदि कुप्रसंग को झटपट भूल जाते हैं लेकिन अपकार और द्वेषादि कुप्रसंग उन्हें जीवन भर स्मरण रहता है। वे सदा बदला लेने एवं नीचा दिखाने का अवसर देखा करते हैं। भगवान शंकर तथा नन्दीश्वर तो इस घटना को उसी समय भूल गये। लेकिन दक्ष नहीं भूल सके। वे बदला लेने का अवसर देखने लगे।

दक्ष के मन में सदा यही भाव रहते थे कि कब अवसर मिले और कब शंकर से बदला लिया जावे। कब उन्हें नीचा दिखाया जावे। जब और कहीं अवसर नहीं मिला तो उसने स्वयं एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। अपने यज्ञ में ही अपने शाप की सत्यको प्रत्यक्ष करने का उसने निश्चय किया। शंकरजी को छोड़कर अन्य समस्त देवताओं को उसने यज्ञ का निमंत्रण दिया, समस्त ऋषियों को भी।

कैलाश के सुरम्य शिखर पर महावट की सुशीतल छाया में विश्वनाथ सती माता के साथ विराजमान थे। गण समीप ही परस्पर क्रीड़ा में लगे थे। आकाश में विमानों पर देवपत्नियाँ गाती हुई अपने पतियों के साथ जा रही थीं—

चौ०—किंन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा। वधुन्ह समेत चले सुर सर्वा॥
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना। झंकार सुनी आभूषण नाना॥
मनोहर शब्द भै व्योम विमाना। सजे वस्त्र फूल चित्रादि नाना॥
जात चले झुंडझुंड विमाना। एक ही दिशा देखि सति नाना॥

किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व सभी अपनी पत्नियों के साथ चले। उन पत्नियों के संगीत के स्वर, बाजों की मधुर ध्वनि और आभूषणों की झंकार से आकाश मनोहर शब्दमय हो रहा था। सती ने सुना विमान मणि, वस्त्र, माला, पुष्प, चित्रादि से भली प्रकार सजाये गये थे। झुंड के झुंड विमान एक ही दिशा में जाते हुए सती ने देखा।

चौ०—सुन सती कलरव देखि विमान। पूछेउ तब शिव कहा बखाना॥
तुम्हरे पिता जग्य मन ठाना। निमंत्रित किये वहीं चलि जाना॥
पिता जग्य सुनि उत्सुक होई। हर्षित भई सती मन भोई॥
सोचति स्वामी साथ लहेंगे। चलन पितृघर बात कहैंगे॥

सती ने जब आकाश में विमानों का, संगीत का, आभूषणों की झंकार का कलरव सुना और देखा, सब सती ने शंकर भगवान से इस बारे में पूछा, पत्नी के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वाभाविक ढंग से शिवजी बोले—"प्रिये! तुम्हारे पिता दक्ष प्रजापति ने एक महान यज्ञ रचने की ठानी है अर्थात् यज्ञ का आयोजन किया है, ये लोग उसी में निमंत्रित हुए हैं अतः वहीं जा रहे हैं। पिता के घर महोत्सव सुनकर सती का मन हर्षित और उत्सुक होकर सोचने लगी—"स्वामी अब मुझे साथ लेकर पिता के यहाँ चलने की बात कहेंगे।"

दोहा—ऊपर की बात समाप्त कर, शिव भै शान्त अरू मौन।
उदासीनता ही प्रकट, बात कही ना गौन॥

पर वहाँ तो ऊपर की बात समाप्त कर भगवान शिव पुनः शान्त और मौन हो गये, उनकी ओर से इस विषय में उदासीनता ही प्रकट हुई, चलने की बात कुछ नहीं कही गई।

चौ०—रहा न गया सति बोली बानी। नाथ! पिता घर उत्सव आनी॥
निज पति बधुन्ह जा रहीं तहवाँ। मेरी बहिनें आवें जिहवाँ॥
बीते बहु दिन मिलि पितु माता। आयो सुअवसर सब मिलि जाता॥
जाने को बहु उत्सुक मन मेरा। साथ लै चलो करूँ निहोरा॥

रहा न गया, सती स्वयं बोल पड़ीं—नाथ! पिता के घर महोत्सव है, सब बधुएँ अपने पतियों के साथ वहाँ जा रही हैं। मेरी दूसरी बहिनें भी वहाँ जावेंगी। मुझे माता-पिता से मिले हुए बहुत दिन हो गये—माता-पिता के दर्शन तो फिर भी हो सकते हैं, किंतु सभी बहिनों के एकत्र मिलने का सुअवसर भला फिर कहाँ मिल सकता

है। मेरा मन इस महोत्सव में जाने को बहुत ही उत्सुक है अत: आप मुझे साथ लेकर चलें, अब देरी न करें।

चौ०—कहेउ नीक मोरे मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बुलाई। हमरे बयर तुम्हउ बिसराई॥
सच है निवत पिता नहीं दीन्हा। पितु घर जान निमंत्रण चीन्हा॥
स्वामी अस अपु ध्यान न देहीं। अवस पधार कृपाकर लेहीं॥

प्रिये! तुमने जो कहा वह मुझे भी अच्छा लगता है, पर निमंत्रण नहीं भेजा, इसलिये हमारा वहाँ जाना अनुचित है। दक्ष ने अपनी सभी लड़कियों को बुलाया है, पर हमारे बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया है। सती बोलीं-यह सच है कि पिता ने आपको या मुझे निमंत्रण नहीं दिया, पर कार्याधिक्य से उनका भूल जाना भी तो सम्भव है, क्या पिता के घर जाने में पुत्री को निमंत्रण की चाहना होनी चाहिए? अत: स्वामी! आप इस बात पर ध्यान न देकर, अवश्य पधारने की कृपा करें।

दोहा— पता नहीं अभिप्राय का, सति दक्ष हृदय की बात।
लेकिन शिव सर्वज्ञ से, रहि सकै न कछू छिपात॥

सती को दक्ष के हृदय के अभिप्राय का क्या पता था। लेकिन सर्वज्ञ शिव से कुछ छिपा थोड़े ही रह सकता है।

चौ०—हँसते हुए शंकर अस कहेऊ। ठीक तुम्हारा जात मन भयेऊ॥
ब्रह्म सभा हम सन दु:ख भयेऊ। जा कारण नेवत नहिं दयेऊ॥

भगवान शंकर ने हँसते हुए पर गम्भीर मुद्रा से कहा-"ठीक है पिता के घर उत्सव होने पर तुम्हारा जाने को उत्सुक होना उचित ही है किंतु प्रजापति के निमंत्रण न भेजने के कारण ब्रह्माजी की सभा में वे मुझसे रुष्ट हो गये थे इसलिये न्योता न भेजा।

चौ०—जदपि मातु पितु गुरु बड़ गेहा। जाइअ बिनु बोलेहु न संदेहा॥
तदपि द्वेष कर मानहिं कोई। तहाँ गये कल्यान न होई॥
नहिं दीखे घर पितु कल्याना। याही ते मन मौनहिं ठाना॥
जो बिनु बोले जाहु भवानी। अनर्थ भये बिनु नहिं रह जानी॥

यद्यपि माता-पिता, गुरु और बड़े के यहाँ बिना बुलाए भी जाना चाहिए, फिर भी वहाँ अपने से कोई द्वेष करता हो वहाँ जाने में कुशल की आशा नहीं है। प्रजापति के यहाँ जाने में मुझे कल्याण नहीं दिखाई देता, इसी से मैं इस विषय में मौन था। यदि तुम मेरी बात न मानकर बिना बुलाये जाओ भी तो कोई न कोई अनर्थ हुए बिना नहीं रह सकता। तुम्हें इस प्रकार आग्रह नहीं करना चाहिए ।

चौ०—निज पर सती दवावहिं चीन्हा। चाहहिं पराधीन रख लीन्हा॥
जागृत भयो स्वभावहिं नारी। रोषपूर्ण दृष्टि भ़ई भारी॥

सती ने इसे अपने ऊपर दबाव समझा, उन्होंने सोचा कि 'ये मुझे पराधीन रखना चाहते हैं मुझे इतना भी अवसन देना नहीं चाहते' सती का नारी जाति का स्वभाविक मान जाग्रत हो गया और दृष्टि क्रोधित रोषपूर्ण हो गयी।

दोहा—चल पड़ीं अकेली पितृगृह, क्रोधित हो मुख कर लाल।
देखा शिवजी नहिं रुकीं, बिठा नन्दी पर तत्काल॥

सतीजी क्रोध से अपना मुँह लाल किये अकेले ही पिता के घर को चल पड़ीं। शिवजी ने देखा कि ये अब नहीं रुक रही हैं तो उन्होंने नंदी को भेजकर उनपर बिठाया उसी समय।

चौ०—कोई गण छत्र की सेवा कीन्हीं। काऊ ने चमर हाथ लै लीन्हीं॥
कुछ बाजे बजाते जावें। कुछ शस्त्रहिं रक्षार्थहिं धावें॥
साज बाज पूरन लै चलेऊ। उदासीन शिव मन में भयेऊ॥
आत्मस्थिति महँभये लीना। होनी निश्चित टलै न चीना॥

किसी गण ने क्षत्र लगाया, किसी ने चमर लिया, कुछ बाजे बजाते चले और बहुत से शस्त्र लेकर रक्षार्थ चले। पूरे साजबाज से वे सती को ले चले। भगवान शिव प्रथम तो खिन्न और उदासीन हुए और फिर आत्मस्थिति में लीन हो गये। जो होना निश्चित है, उसे टाला तो नहीं जा सकता, फिर उसके लिये चिंता करके दु:खी होना व्यर्थ की मूर्खता है।

चौ०—आशा पितु स्वागत मन भारी। सेवक लेने धावें अगारी॥
विपरीतहि परिणाम दिखाई। लेना दूर कोई खड़ा न लखाई॥
पिता भवन जब गई भवानीं। दच्छत्रास काहू न सनमानी॥
सादर भलेहि मिली एक माता। भगिनी मिलीं बहत मुसुकाता॥

सती को आशा थी कि पिता के घर उनका बहुत अच्छी प्रकार स्वागत होगा, उन्हें आगे से लेने के लिये पिता सेवकों के साथ आवेंगे। पर वहाँ परिणाम विपरीत ही निकला, आगे तो लेना दूर, द्वार पर भी कोई उठकर खड़ा नहीं हुआ। जब वे पिता भवन में पहुँचीं तो उनको देख दच्छ को त्रास हुआ, किसी ने उनका सत्कार नहीं किया, माता अवश्य उत्कण्ठा से प्रेम से मिलीं, और बहिनें मुस्करातीं साधारण प्रकार से मिलीं। कुछ उपस्थित स्त्रियों में से व्यंग्य वचन सुनने को भी मिले।

दोहा— दच्छ कुशल पूछी नहीं, लख सती जरे सब गात।
पति आज्ञानहिं मानना, मन पश्चाताप समात॥1॥
बैठि न आसन जल पियो, अपमानित मृत्यु समान।
उत्तेजित अत्यन्त होइ, देखन चलीं जग्य स्थान॥2॥

पिता दक्ष ने सती से कुशल भी नहीं पूछी, इस अपने लोगों द्वारा अपमानित होना तो मृत्यु के समान होता है, अत: सती के सब अंग जलने लगे और अब उनको

पति की बात न मानने पर मन में भारी पश्चाताप हो रहा था। आसन पर बैठना और जल पीना तो अब कहाँ प्रिय होता उन्हें अब स्वागत और आदर दिये हुए माता के आसनादि में भी अपमान ही अपमान दीखता था। वे अत्यन्त उत्तेजित होकर बिना विश्राम किये यज्ञस्थान देखने चल दीं।

चौ०—रोषुन छिपा लखि मातु विशाला। गई साथ तिन के यज्ञ शाला॥
सती जाइ देखउ तब जागा। कतहुँन दीख सम्भु कर भागा॥
तब चित चढ़ेउ जो शंकर कहेऊ। प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुःख न हृदय अस व्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥

सतीजी की उत्तेजना एवं विशाल रोष माता ने देखा, वह छिपा नहीं था तो वह कुछ स्त्रियों को साथ ले सती को यज्ञशाला दिखाने आईं। सतीने घूर-घूर कर यज्ञ के प्रत्येक भाग को देखा किंतु उन्हें वहाँ कहीं भी शिवजी का भाग नहीं दिखाई पड़ा। हो तब ही दिखे ? माता तथा दूसरी स्त्रियाँ पीछे चुपचाप स्तंभित सी खड़ी थीं। सती के लिये पति का अपमान असाध्य था। तब उनके चित्त में आया कि पति ने ठीक ही कहा था। भीतर भरे हुए क्रोध ने प्रचण्ड रूप से अपना प्रभाव बाहर फेंका। पहला दुःख उनको इतना नहीं व्यापा था। जैसा कि पति अपमान से महान असहाय दुःख हुआ।

चौ०—स्त्रीन छोड़ यज्ञशाला आईं। माता-बहिन बहुत समुझाईं॥
जद्यपि दुःख जग दारुन नाना। सबते कठिन जाति अपमाना॥
ध्यान न काऊ बातहिं दयेऊ। क्रोधपूर्ण स्वर सबसे कहेऊ॥
सुनो ऋषि-देव अन्यहू कोऊ। निन्दा करी सुनी तुम सोऊ॥

सती जी वेग से स्त्रियों के स्थान से बाहर यज्ञशाला में आ गईं, निकलते समय माता ने, बहिनों ने हाथ पकड़ते हुए समझाते हुए रोकना चाहा पर—"सकल समहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध।" किसी प्रकार झटका देकर, हाथ डुढ़ाकर, किसी की बात पर ध्यान न देकर यज्ञशाला में आ क्रोध पूर्ण स्वर से सबको सम्बोधित करके वे जगदम्बिका बोलीं—"ऋषियों! देवताओं! तथा अन्य इस यज्ञ में जो लोग उपस्थित हैं वे सब सावधान होकर सुनें! द्रोह रहित, सबका कल्याण चाहने वाले, मेरे समदर्शी पति का पिता ने अपमान किया है और जिनने उनकी निंदा की है एवं सुनी है।

दोहा— त्रिलोकी नाथ प्रभाव से, अनभिज्ञ पिता मम होय।
भोगहिं दण्ड अपमानहिं, तुम जानि लेउ सब कोय॥

उन त्रिलोकी नाम के प्रभाव से पिता अनिभिज्ञ हैं, इस अपमान का दण्ड सबको भोगना पड़ेगा, यह तुम सब जान लो।

चौ०—सो फल तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताव पिताहू॥
संत शम्भु श्रीपति अपवादा। सुनिअ जहाँ तहँ अस मर जादा॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि नत चलिअ पराई॥
जगदातमा महेश पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी॥

लो उसका फल सबको तुरत अब ही मिलेगा। पिता भी भली भाँति पछिताएँगे। साथ ही और भी जिन लोगों ने उनकी निंदा की है और उस निंदा में सहायक हुए हैं, वे भी अपने दुष्कर्म का फल शीघ्र भोगेंगे। क्योंकि संत, शम्भु श्रीपति का जहाँ अपवाद होता है उसे सहना, सुनाना घोर पाप है यदि शक्ति हो तो कहने वाले की जीभ काट ले, यदि शक्ति नहीं है तो कान मूँदकर वहाँ से चला जाय। ऐसी शास्त्र की मर्यादा है। मेरे पति महेश तो जगत की आत्मा हैं, जगत के पिता हैं, सबके हित करने वाले हैं।

चौ०—पिता मंदमति निंदित तेही। दच्छ शुक्र संभव यह देही॥
मुक्तपापिष्ठानहिं अस कोई। रखूँ शरीर अपमानहिं भोई॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू॥
असकहि जोग अगिन तनु जागा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

मेरे पिता मंदमति हैं जिन्होंने उनकी निंदा की। उन्हीं के अंश से मेरी इस देह की उत्पत्ति है, मुझसे अधिक पापिन और कोई नहीं होगी, यदि पति के इस अपमान को देखते हुए भी मैं शरीर धारण की इच्छा करूँ। अब मैं उस देहका तुरत त्याग करती हूँ अपने चन्द्रमौलि वृषकेतु को हृदय में धारण करते हुए। कोई भी विकार जब अपनी सीमा तक पहुँच जाता है तो फिर उसमें अनोखी शक्ति आ जाती है। सती का बढ़ा हुआ क्रोध शान्ति में परिणत हो गया। उपद्रव करने को तत्पर गणों को उन्होंने रोक दिया, यज्ञशाला की भूमि में पूर्व दिशा में वे पद्मासन लगाकर शान्तचित्त से बैठकर ध्यानस्थ हो गयीं। यज्ञशाला के सभी लोग बड़े असमंजस में पड़ गये। होते हुए अनर्थ को रोना अभीष्ट था, पर दक्ष के भय से बोलने का साहस नहीं पड़ता था। दक्ष स्वयं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मौन थे। अकस्मात जिसकी आशा न थी, ऐसी परिस्थिति ने आकर सबको स्तम्भित कर दिया, किसी को कोई तात्कालिक उपाय न सूझ पड़ा।

जब तक कोई कुछ सोचे, उधर सती ध्यानस्थ होकर प्रार्थना कर रही थीं, आवेश में ध्यान प्रायः शीघ्र ही प्रगाढ़ होता है। आवेशित मन, शरीर और संसार को भूले हुए तो होता ही है, उस समय वह एक ही भावना पर सर्वतोभावेन आरूढ़ होता है। अतएव ऐसी दशा में जिधर लगा दिया जावे, पूर्ण रूप से लग जायेगा।

सती ने प्रथम भगवान विष्णु से जो कि शंकर जी के आराध्य हैं प्रार्थना की "सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, करुणामय, मुझे न तो स्वर्ग की इच्छा है, न मुक्ति की,

भौतिक या योगिक कोई भी ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिये, मुझे अपने स्वामी के पूज्य चरणों की सेविका होने का जन्म-जन्म में अवसर मिले, यही इस दासी की प्रार्थना है।" दूर होने पर, पृथक होने पर या वियोग के समय ही किसी वस्तु का मूल्य ज्ञात होता है, यहाँ सती को स्वामी की महत्ता ज्ञात हुई।

प्रार्थना के अनन्तर उन्होंने प्राणों को संयत किया। अपान के साथ प्राण को मिलाकर उसने नाभि चक्र से क्रमशः हृदय और कण्ठ में होते हुए वे भ्रूमध्य में ले आयीं। अब समस्त संसार, इच्छा और वासनाओं को भूलकर एकमात्र पति के चरणाम्बुजों में उन्होंने मन को लगाया। साथ ही शरीर में अग्नि की धारणा की। धारणा करते ही नाभिचक्र से प्रबल अग्नि की लपटें उठीं। जैसे रुई के ढ़ेर में अग्नि लग गई हो। सब ऋषी, देवता, उपस्थित लोग स्त्री-पुरुष हाहाकार करने लगे। पर अब वहाँ हाहाकार करने से क्या हो सकता था, वह साधारण अग्नि थोड़े ही थी, योगाग्नि बुझाने की किसमें शक्ति। कुछ क्षण में देखते ही देसखते सती के शरीर के स्थान पर थोड़ी सी भस्म शेष रह गयी।

दोहा— यह अनर्थ लख शम्भु गण, कर लिये शस्त्र उठाय।
लगे मारने जनहिं तहँ, यज्ञीय वस्तुहिं देयँ मिटाय॥1॥

अब यह अनर्थ देखकर शम्भु गणों ने रोष से अपने हाथ में शस्त्र उठा लिये और उपस्थित जनों को मारने लगे तथा यज्ञीय वस्तुओं को नष्ट करने लगे।

महर्षि भृगु ही करता यज्ञ के, सब महँ वहाँ प्रधान।
यज्ञ विघ्न लख शिव गणहिं, चरु लिया अभिचारहिं मान॥2॥
अभिमंत्रित विघ्नेशहि, आहूति दक्षिणाग्नि डार।
हवि पड़ते अग्नि कुंड से, ऋभु प्रकटे वहाँ हजार॥3॥

महर्षि भृगु ही प्रधान यज्ञ करने वाले थे, उन्होंने शिवगणों को यज्ञ में विघ्न करते देखा तो यरु को विघ्नेश मंत्र से अभिचार के ढंग से अभिमंत्रित करके आहूति को दक्षिाग्नि में डाल दिया। उस अभिचारित हवि के अग्नि में पड़ते ही अग्निकुण्ड से हाथ में जलती लकड़ी लिये हजारों ऋभु नाम के देवता प्रकट हुए।

मार-मार शिवगणहिं को, वहाँ से दिया भगायँ।
सबहि भगाकर ऋभु भी, स्वयं अन्तर्हित हो जायँ॥4॥

उन ऋभु देवताओं ने मार-मार कर सभी शिवगणों को वहाँ से भगा दिया, सबको भगाकर स्वयं अन्तर्हित हो गये।

चौ०— पराजित गण कैलाशहिं आये। समाचार तहँ शिवहिं सुनाये॥
सती स्वदेह दाह की करनी। अपनी चेष्टा बहु विधि वरनी॥
रुद्रहिं क्रोध भयो अति भारी। अट्टहास कर उठे पुरारी॥
कप्यों कोप ब्रह्माण्डहिं हाला। बाल उखाड़ पृथ्वी दै डाला॥

ऋभु देवों के द्वारा पराजित होकर शिवजी के गण कैलाश पर लौट आये, और उन्होंने शंकर को सब वहाँ के समाचार सुनाये, सती का सशरीर दाह तथा अपनी चेष्टाओं का वर्णन किया। भगवान रुद्र को क्रोध आ गया, वे क्रोधावेश में अट्टहास कर उठे, प्रलयंकार के कोप से अखिल ब्रह्माण्ड काँपने व हालने लगे। उन्होंने अपनी जटाओं में से एक बाल उखाड़ कर पृथ्वी पर दे डाला।

चौ०— घनीभूत चित् शिव भगवाना। प्रत्येक अंश चेतनमय जाना॥
भूपर गिरा केश वह जबही। उत्पन्न भये एक व्यक्ति तबही॥
महाकाय कृष्ण वर्णभयंकर। कपालमालि भूषण भुजंगधर॥
तेजपूर्ण रवि समवो होई। त्रिशूल लिये त्रिनेत्रहिं सोही॥

भगवान शिव तो घनीभूत चित् हैं, अत: उनके दिव्य विग्रह का प्रत्येक अंश चेतनमय है। उसके केश के पृथ्वी पर पड़ते ही उससे एक महाकाय, कृष्णवर्ण, अत्यन्त भयंकर, कपालमाली, भुजंगभूषण, त्रिनेत्र और सूर्य के समान तेजपूर्ण त्रिशूल लिये एक पुरुष उत्पन्न हुआ।

चौ०— हाथ जोरि विनती करी शंकर। क्या आज्ञा प्रभु कहो प्रलयंकर॥
विश्वनाथ बोले अस बानी। तुम मम अंश रुद्र हो जानी॥
आज से प्रधान गणहिं मम धामा। वीरभद्र भयो तुम्हरो नामा॥
गणन संग ले यज्ञ दक्ष जाओ। ध्वंश करो दण्डहिं अपनाओ॥

उस पुरुष ने हाथ जोड़कर भगवान शंकर से प्रार्थना की "प्रभो आप प्रलयंकर हैं, मेरे लिये क्या आज्ञा है? विश्वनाथ बोले—"तुम मेरे ही अंश हो, रुद्र हो, आज से तुम मेरे धाम में समस्त गणों के प्रधान हुए, तुम्हारा नाम वीरभद्र हुआ। इस समय तुम गणों के साथ दक्ष यज्ञ में जाकर यज्ञ को ध्वंशकर दो तथा जो जिस दण्ड के योग्य हो उसे वैसा ही दण्ड अपनाकर दो।"

दोहा— शंकर प्रभुहिं प्रणाम कर, वीरभद्र चलि दीन्ह।
दक्षपुरहि बहुगणहिं संग, सहाय भयेऊ उन कीन्ह॥1॥

प्रभु शंकर को प्रणाम करके वीरभद्र दक्षपुर को चल पड़े, अपने साथ बहुत से गण भी सहायता को चल पड़े।

वीरभद्र के चलने से पृथ्वी बार-बार काँप रही थी। उनका भयंकर गर्जन दिशाओं में गूँज रहा था, उनके त्रिशूल की ज्योति दिशाओं में विद्युत सी चमक रही थी, उनके चलने के वेग से वृक्ष पृथ्वी पर गिर जाते थे।

चौ०— अकस्मात लक्षण अस चीन्हा। यज्ञीय लोग चिंता मन कीन्हा॥
गगन स्वच्छ बादल नहिं तहवाँ। वायु भी नहीं रह बहवाँ॥
बिनु बादल गर्जन क्यों हो ही। विद्युत ज्योति चमक रह सोही॥
इतनी धूल उड़ रही गगना। अन्य पशु गौ व्याकुल खगना॥

दक्ष के यज्ञ में उपस्थित लोग अकस्मात इन लक्षणों को देखकर उनका मन भयभीत और चिंता में पड़ गये और सोचने लगे—"हवा तो चल नहीं रही है, आकाश में बादल भी नहीं, इतनी धूल आकाश में क्यों उड़ रही है, बार-बार भूकम्प हो रहा है, बिना बादल के गर्जना और विद्युत की ज्योति भी चमक रही है, गायें तथा दूसरे पशु एवं खग-पक्षी व्याकुल से वन की ओर से भागे आ रहे हैं, पक्षी आकाश में विकल होकर चक्कर लगाते हुए चिल्ला रहे हैं। इसका क्या कारण है?

चौ०—स्त्री अधिक भयीं भयभीता। सोचने लग गये देव सभीता॥
दिन में ही टूट रहे हैं तारे। प्रलय भूकम्प समय बन सारे॥
एकहि बात मनमहँ ठहरानी। सती मरण दक्ष सम्मुख ठानी॥
देह त्याग रोका नहिं काऊ। काण्ड यही अनरथ है जाऊ॥

"स्त्रियाँ अधिक भयभीत हो गयीं थीं, देवता भी सभीत सोचने लगे। दिन में ही तारे टूट रहे हैं, भूकम्प हो रहा है क्या संसार के प्रलय के सारे लक्षण बन गये?" सबके मन में एक ही बात घूम रही थी-दक्ष प्रजापति ने अपने सम्मुख ही अपनी पुत्री को जिन्होंने मरण की ठाल ली थी देह त्याग करते देखकर भी नहीं रोका, यह काण्ड अनर्थ किये बिना नहीं रहेगा।

दोहा—निज प्रिय पत्नी वियोग से, शिव क्रोधित हों भगवान।
कौन सामना कर सकै, उनकी शक्ति महान॥1॥
होहिन रक्षा दच्छ की, जानो यह जिय जान।
जगत बचे क्रोधाग्नि से, इसमें संदेह जहान॥2॥

अपनी प्रिय पत्नी के वियोग से दुःखी होने पर जब भगवान शिव—रुद्र क्रोधित होंगे तो कौन उनकी शक्ति का सामना कर सकता है, अवश्य ही वह प्रलय के देवता क्रोधित हो गये ऐसा मालूम देता है, अब दक्ष की रक्षा हो ही नहीं सकती, जगत उनकी क्रोधाग्नि से बच सकेगा, इसमें भी अब जहान में संदेह ही है।

चौ०—कहाँ का यज्ञ कहाँ आहूती। मन में घूमि रही भयतूती॥
चिंतित हो देखा उस ओरा। धूलि उड़ रही है रह्यो शोरा॥
वीरभद्र देखत आइ गयेऊ। यज्ञ मण्डपहिं भगदड़ भयेऊ॥
कहूँघी गिरा हवि विखराई। वस्त्र गिरे जल घट फूट जाई॥

कहाँ का यज्ञ और कहाँ की आहूति। सब चिंतित होकर उस दिशा की देख रहे थे, जिधर से धूलि उड़कर आ रही थी। देखते-देखते वीरभद्र आ पहुँचे। यज्ञ मण्डप में भगदड़ मच गई। कहीं घी गिरा, कहीं हवि बिखर गई, कहीं वस्त्र गिर पड़े, जल के घड़े सब फूट गये।

चौ०—मालाएँ टूट धरनि गिर गयेऊ। मण्डप चित्र नष्ट होइ भयेऊ॥
मणियन्ह रचित मण्डपहिं भारी। नष्ट भ्रष्ट ठोकर दै मारी॥

वाहन निज-निज ढूढ़ रहे देवा। मृगचर्म कमंडल मुनियन लेवा॥
भागन आतुर भये वो सबहीं। गोद चिपकाये शिशु नारी भगहीं॥

मालाएँ सब टूट गयीं, बहुत से मंडप में लगे चित्र नष्ट हो गये, मणियों से रचित मंडप तो पैर की ठोकर से नष्ट भ्रष्ट हो गया। देवता अलग अपने-अपने वाहनों को ढूँढ़ रहे थे, मुनि लोग कमण्डल और मृगचर्म उठाकर अलग भागने को आतुर हो रहे थे। स्त्रियाँ गोद में बच्चों को चिपकाये स्वयं भागना चाहती थीं।

दोहा—व्याकुल हल्ला मचि रहयो, कोई भागि कहाँ अब जायँ।
घेर लियो शिवगणहिं नें, मण्डप चारों माँहि॥1॥
शान्त भृगु हवि को श्रुवा, अभिचार विचार उठाय।
हवि उठाते समय ही, वीरभद्र वहाँ धमके जाय॥2॥

बच्चे रो रहे थे, कोलाहल और व्याकुलता से मण्डपपूर्ण हो रहा था, पर अब कोई भागकर अब कहाँ जाए। मंडप तो शिव के गणों में चारों ओर से घेर रखा था। महर्षि भृगु शान्त बैठे, उन्होंने हवि को श्रुवा में लेकर अभिचारित करने के विचार से उठाया, वे दक्षिणाग्नि में हवन करके पुनः ऋपुओं के द्वारा सहायता लेना चाहते थे, पर उनके हवि उठाते ही वीरभद्र वहाँ जा धमके।

चौ०—हवि अरुश्रुवा हाथ से छीना। शीघ्रहिं पृथक फेंकि तब दीन्हा॥
भृगुजी पटक दिये भू जब ही। दाढ़ी स्वेत उखाड़ी तबही॥
चमड़ा फटा संग मुख दाड़ी। रक्त की धारा बही अति गाढ़ी॥
मूर्च्छित महर्षि तहाँ है गयेऊ। लगे हाथ पूषा पकड़ेऊ॥

हवि और श्रुवा छीनकर पृथक फेंक दिया शीघ्र ही और भृगुजी को पृथ्वी पर पटक कर लम्बी और सन के समान श्वेत दाढ़ी उन्होंने उखाड़ ली। दाढ़ी के साथ मुख का समस्त चमड़ा फट गया और भारी रक्त की धारा बहने लगी। महर्षि मूर्च्छित हो गये। लगे हाथ समीप ही उपस्थित पूषा नाम के देवता को पकड़ लिया।

चौ०—पूषा पकरि धरनि पछारेउ। समस्त दाँत उनके तोड़ डारेऊ॥
देते शाप दच्छ शिव काहीं। पूषा दाँत दिखा हँस जाहीं॥
ताण्डव प्रलय गणन तहँ कीन्हीं। काऊ को लात घूँसा धरि दीन्हीं॥
काऊ की आँख उँगली फोरि देई। काट कान नाक नोचि लेई॥

पूषा देवता को वीरभद्र ने पृथ्वी पर पछाड़ कर उनके समस्त दाँत तोड़ डाले क्योंकि ब्रह्मा की सभा में वह दक्ष जब शिव को शाप दे रहे थे तब पूषा दाँत दिखाकर भगवान शंकर को हँसे थे। इधर यज्ञशाला में शंकरजी के गण प्रलय ताण्डव कर रहे थे। किसी को लात, किसी को घूँसे थप्पड़, किसी को आँख में उँगली डालकर आँख फोड़ दी, किसी के कान नाक काट लिये, किसी को नोंच लिया।

दोहा— कर तोड़ा काऊ पैर हिं, करैं अस्त्रास्त्र प्रहार।
अंग कटे गिर रहे तहँ गुंजी, त्राहि त्राहि भरमार॥1॥
यज्ञ भूमि शव रक्त से, भरी वहाँ तत्काल।
वर्षा सी तहँ हो रही, मूर्च्छित व्यक्ति बेहाल॥2॥

किसी का हाथ तोड़ा और किसी का पैर। अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से लोगों के अंग कट रहे थे। खट-खट, धड़-धड़ के साथ चीख और चिल्लाहट तथा त्राहि-त्राहि गूँज रही थी। यज्ञभूमि पर रक्त और शव तथा कटे हुए अंगों के साथ मूर्च्छित लोगों की वर्षा सी हो रही थी। वहाँ रक्त की कीच हो गई।

चौ०—पशु अरु पक्षी अतिथि शाला। सबही कीयो अग्नि हवाला॥
चौपट भोज भंडार गृह कीन्हा। घृत के घड़ा फोड़ सब दीन्हा॥
जल में मूत्र शौच हवि करेऊ। यज्ञ कुण्ड रुण्डमुण्डहिं भरेऊ॥
चीख पुकार मची चहुँ ओरा। मारधाड़ कर सब कुछ तोरा॥

किसी ने पत्नी शाला तोड़ फेंकी, किसी ने अतिथि शाला को अग्नि के हवाले किया, कोई पशुशाला को विध्वंस कर रहा था तो कोई भोजनालय और भंडारगृह को चौपट करने में व्यस्त था। घृत के घड़े फोड़ दिये गये, जल में मूत्र कर दिया गया तथा हवी सामिग्री में दो-चार शौच लग गई। यज्ञकुण्ड में कटे हुए लोगों के रुंडमुंड डाल दिये गये। मार-धाड़ तथा चीख पुकार के अतिरिक्त वहाँ कुछ था ही नहीं।

चौ०—लई वीरभद्र हाथ तलवारा। काटन सिर दक्ष कीन्ह प्रहारा॥
गर्दन कटी न चमड़ा कटेऊ। अति आश्चर्य वीरभद्र भयेऊ॥
तब त्रिशूल उन हृदय मारा। वह भी व्यर्थ न कछु कर पारा॥
तब तहँ बैठि ध्यान उर देखा। भृगु ने रक्षित कियो विशेषा॥

अंत में दक्ष का सिर काटने के लिये वीरभद्र ने हाथ में तलवार उठा दक्ष की गर्दन पर भरपूर प्रहार किया, पर दक्ष की गर्दन का चमड़ा भी नहीं कटा आश्चर्य के साथ वीरभद्र ने त्रिशूल का उसके हृदय पर प्रहार किया, पर वह भी व्यर्थ, उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, वे वहीं बैठ गये और ध्यानस्थ होकर दक्ष की अवध्यता के कारण का अन्वेषण करने लगे। उन्होंने ध्यान में देखा—"आपत्ति की आशंका होने पर महर्षि भृगु ने संज्ञपन मंत्र से पाशुपत कवच द्वारा यजमान को रक्षित कर दिया है।" इस समय पाशुपत योग था।

दोहा—उठकर पकड़ा दक्ष को, करपग से पशु सम कीन्हा।
विवश किया तेहि दबाकर सिर हथेली से अलग कर दीन्हा॥1॥

अतएव वीरभद्र जी उठे और दक्षको पकड़कर पृथ्वी पर दबाकर पशु की भाँति हाथ और पैरों से खड़े होने को विवश कर दिया। पशु बनाकर अपनी हथेली के प्रहार से ही उन्होंने उसका सिर काट लिया। धड़ से अलग कर दिया।

पूर्ण आहुति सिर कटे की, यज्ञ कुण्डहिं दीन्हीं जाय।
पूर्ण रीति यज्ञ ध्वंस कर, सब लौटि कैलाशहिं आय॥2॥

यज्ञ कुण्ड में दक्ष के कटे सिर की पूर्ण आहुति कर दी। यज्ञ पूर्णरीत्य ध्वंस हो गया। शिव के गण वीरभद्र के साथ हर्षनाद करते हुए कैलाश लौट आये।

चौ०—भई जग विदित दक्ष गति सोई। जसि कछु शम्भु विमुख कै होई॥
अंग भंग ऋषि देवहुनाना। रोते चिल्लाते गये ब्रह्म स्थाना॥
विधि हरि यज्ञ निमंत्रण पावा। फिर भी वे नहीं तहँ जावा॥
जावें तो जावें तहँ कैसे। अपमान शिव रूप उन्हीं का जैसे॥

संसार में दक्ष की गति ऐसी हुई जैसी शम्भु के विमुख पुरुष की होती है। अंग भंग हुए देवता तथा ऋषी ब्रह्माजी के पास रोते चिल्लाते पहुँचे। ब्रह्माजी और विष्णु निमंत्रण मिलने पर भी यज्ञ में नहीं आये थे, वे आते भी कैसे-शिव रूप से उन्हीं का अपमान हो रहा था। ऐसे श्रद्धाहीन और द्वेषपूर्ण यज्ञ का जो परिणाम होना था वह उनसे छिपा थोड़े ही था।

चौ०—कटे-फठे अंग विधिहि दिखाये। अपनी दुर्दशा हाल सुनाये॥
अंग ठीक होन विनती कीन्ही। कहेउ ब्रह्म शक्तिशाली द्रोह चीन्हीं॥
मूर्खता तेहि भल इच्छा करेऊ। किसमें शक्ति शिव गण अनुसरेऊ॥
शिव चाहें तो तबहि असहोवै। क्षणिक क्रोध आशुतोषहि जोवै॥

देवताओं, ऋषियों ने अपने कटे-फअे अंग ब्रह्माजी को दिखाये और अपनी दुर्दशा का हाल सुनाया। अपने अंगों को पुनः ठीक होने का उपाय पूछा। ब्रह्माजी बोले, "बड़े और शक्तिशाली से द्वेष करके कुशल की इच्छा करना ही मूर्खता है, भला ऐसी शक्ति किसमें है जो शंकर जी के गणों के द्वारा नष्ट किये अंगों को पुनः ठीक कर दे। यह तो वे स्वयं शिव ही चाहें तो हो सकता है। वे तो आशुतोष हैं, उनका क्रोध तो क्षणिक होता है।

चौ०—जो उन चरणन मस्तक नाँई। अपराधी पापीहु चलि जाईं॥
शीघ्र प्रसन्न होहिं हर जाना। वे ही करहिं तुम सब कल्याना॥
चले देव ऋषि ब्रह्मा साथा। पग डर धरत कैलाशहिं पाथा॥
दूरहिं लखा सघन बट छाँही। बैठे सनकादि उपदेश हर पाँहीं॥

जो भी शिव भगवान के चरणों में अपना मस्तक झुकाते हैं उन्हें देखकर वे चाहे अपराधी से भी घोर अपराधी हो, पापी हो वहाँ पहुँच जाय तो वे शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं अतः चलो उन्हीं की शरण में वही तुम्हारा कल्याण करेंगे। देवता ब्रह्मा की आज्ञा मानकर उनके साथ चले। डरते-डरते देवताओं ने कैलाश मार्ग पर पैर बढ़ाया। दूर से ही देखा कि एक बहुत बड़ा, योजनों विस्तीर्ण, सघन वट की छाया में पृथ्वी पर ही कैलाशनाथ सनकादिकों को उपदेश कर रहे हैं।

दोहा—देव दूर भू लेटकर, शिव चरणन कियो प्रणाम।
कुमार सहित हर उठेउ, अभिवादन विधि जिय जान॥1॥
आशीर्वाद दे देवन्ह, आसन ब्रह्मा दीन्ह।
तब बैठे आसन स्वयं, देव भये भूमि आसीन॥2॥

दूर से ही भूमि में लेटकर देवताओं ने प्रभु शिवजी के श्रीचरणों में प्रणाम किया। भगवान शिव ने उठकर ब्रह्माजी का कुमारों के साथ अभिवादन किया। देवताओं को आशीर्वाद दिया। ब्रह्माजी को आसन देकर तब स्वयं शंकरजी आसन पर बैठे। देवगण भूमि पर ही आसीन हो गये।

चौ०—बैठ जाने पर ब्रह्मा कहेऊ। प्रभो! आप विश्व स्वामी रहेऊ॥
उतपति पालन प्रलयकारी। माया मोहित जगजन भारी॥
प्रभाव आपका जानत नांही। करुणा सागर शरण ये आहीं॥
इन अल्पज्ञ अपराधहिं काँही। अब ये क्षमा माँगन चाहीं॥

सबके बैठ जाने पर ब्रह्माजी बोले, "प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं, आपकी इच्छामात्र से ही इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है पर आपकी माया से मोहित प्राणी आपके प्रभाव को नहीं जानते। आप करुणा सागर हैं, ये आपकी शरण में आये हैं, इन अल्पज्ञ लोगों को अपने मूर्खतावश हुए अपराधों की क्षमा मिलनी चाहिए। ये समस्त देवता दु:खी होकर आपकी शरण आये हैं।

चौ०—नष्ट हो गया मद इन काहीं। महत्ता से परिचित भये आहीं॥
कृपा करो अब इन पर स्वामी। कटे टूटे अंग ज्यों त्यों हो जामी॥
भृगु की दाढ़ी पूषा के दन्ता। पुनः ठीक कर तुम भगवन्ता॥
पुनः जीवित यजमानहिं हो हीं। कियो अपमान फल पायिउ सोहीं॥

हे प्रभो! इनका मद अब नष्ट हो गया, अब ये प्रभु की महत्ता से परिचित हो गये हैं, अत: इन पर कृपा हो। इनके कटे टूटे अंग पुनः ज्यों के त्यों हो जावें। महर्षि भृगु की दाढ़ी और पूषा के दाँत हे भगवन् ठीक हों। यजमान पुनः जीवित हो जावें। जिन्होंने अपमान किया, उन्होंने फल पा लिया।

दोहा—कृपासिंधु यजमान को, दो अवसर भूल सुधार।
पश्चातप प्रभु चरणहिं, करै पूजा का व्यवहार॥1॥

हे कृपासिंधु! अब यजमान को अपनी भूल सुधार कर उस पर पश्चाताप करने और आपके श्री चरणों की पूजा करने का सुअवसर मिलना चाहिए ताकि ऐसा व्यवहार कर सके।

चौ०—आषुतोष विधि से अस कहेऊ। बच्चों अपराध क्रोध नहिं भयेऊ॥
मद अंधे वे जब होइ जाहीं। काल स्वरूप मम मानत नाहीं॥

पथभ्रष्ट होयँ सर्वनाश करावें। दण्ड देउँ सत मारग लावें॥
सो भी शिक्षा हेतु करिहउँ। द्वेष नहिं जिय में अनुसरिहऊँ॥

मुस्कराते हुए आंशुतोष प्रभु ब्रह्मा से ऐसे कहने लगे–"ब्रह्माजी! मैं बच्चों के अपराध पर क्रोधित नहीं होता पर वे अपने मद से अन्धे होकर मुझ कालस्वरूप को नहीं देखते, पथभ्रष्ट होकर अपना ही सर्वनाश कराने लगते हैं। अत: दण्ड देकर मैं उन्हें सच्चे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता हूँ, यह दंड भी शिक्षा के लिये ही होता है, द्वेष से नहीं।

चौ०–पूषा मसूढ़े दृढ़ होइ जाहीं। पिसी वस्तु उनसे वे खाहीं॥
दाढ़ी भृगु बकरे की लगावहु। लगे ठीक वे ही जम जावहु॥
देवन्ह अंग पूर्ववत् होइ जाहीं। इसी मुहूर्त शिशु पास मिलि पांही॥
उसी शिशु का सिर ले आवहु। दक्ष के सिर पर उंसे जमावहु॥
लगते सिर जीवित होइ जाई। दया पूर्ण सब बात बताई॥

पूषा के मसूढ़े दृढ़ हो जावेंगे, वे पिसी वस्तुओं को खा सकेंगे। महर्षि भृगु को बकरे की दाढ़ी लगा दीजिये वह ठीक लग जायेगी। शेष सब देवताओं के अंग पूर्ववत् हो जावेंगे, इसी मुहूर्त में जिस किसी प्राणी के निकट से निकट शिशु उत्पन्न होता मिले, उस शिशु का सिर लाकर दक्ष के सिर के स्थान पर रख देने से वह जम कर जीवित हो जायेगा। न्यायात्मा से अन्याय नहीं हो सकता। अत: पूषा, भृगु और दक्ष जैसे अपराधियों को वैरूप्य करके न्याय ही हुआ।

भृगु, पूषा तथा सभी देवताओं के अंग भगवान शंकर के कथनानुसार ठीक हो गये। देवता ब्रह्मा के कहने से दक्ष का शव वहीं ले गये थे, सबसे प्रथम उस मुहूर्त में बकरी को बच्चा उत्पन्न होता मिला, उसी नवजात बकरे का सिर लेकर दक्ष की गर्दन पर रखा गया। सिर लगते ही प्राण भी आ गये। सम्मुख ही भगवान शंकर को देखकर दक्ष उनके चरणों पर गिर पड़ा, भगवान ने उसे उठाया।

दंड से एवं भगवान शंकर के दर्शन से उसका हृदय निर्मल हो गया, अपने दुर्वचन, पुत्री के मरण का स्मरण उसके मर्म को पीड़ित कर रहे थे। किसी प्रकार शोक को रोक कर गदगद कंठ से आँसू बहाते हुए हाथ जोड़कर दक्ष बोले–प्रभो! मैं महान पापी हूँ, मैंने स्वामी को दुर्वचन कहे, अपमान किया, मैं हत्यारा हूँ, मैंने अपनी ही पुत्री का वध किया है, करुणा सिंधु फिर भी इस पापी अपराधी को दया कर जीवन दिया, हृदय पवित्र निर्मल किया। नाथ! मुझे घोर नर्क की अग्नि में युग-युग तक जलने के लिये फेंक दीजिये। दयामय इतनी महान दया का भार यह पापी हृदय न सह सकेगा।" दक्ष विकल हो प्रभु के चरणों पर लोटने लगा, प्रभु ने उन्हें उठाकर शांत किया। और शंकर जी ब्रह्माजी के साथ दक्ष को लेकर सब देवता और ऋषी दक्षपुर में आये! फिर से नष्ट स्थान सामिग्रियों को पुन: ठीक करके महर्षि भृगु ने

दक्ष के हाथ से पूर्णाहुति कराई, भगवान शिव को यज्ञ शेष भाग मिला, तब यज्ञकुण्ड से स्वयं यज्ञेश भगवान विष्णु जी प्रकट हुए उन्होंने बताया–मैं ब्रह्मा और शिव परस्पर अभिन्न हैं, एक ही होने पर भी संसार की रक्षा के लिये हमने तीन रूप धारण कर लिये हैं जो हममे भेद देखता है, वह अपराधी हैं। दक्ष को अभीष्ट वर देकर प्रभु अंतर्ध्यान हो गये। अवभृत स्नान करके देवता ऋषिगण पूजित होकर अपने-अपने स्थान को गये। दक्ष ने ब्रह्माजी, शिवजी की पूजा करके विधिवत उन्हें विदा किया।

(मानसमणि मार्च-अप्रैल 66 से)

(4) पार्वती

श्लोक–"असिद्धार्था नैवक्वचिदपिस देवासुर
नरे निवर्तन्ते नित्यं जगत जीवनो यस्य विशिखाः॥
सपश्यन्नीशत्वामित् रसुरसाधारणमभूत् स्मरः
स्मर्तव्यात्मानह्विशिषु प्रथ्यः परिभवः॥"

"हे ईश! सम्पूर्ण जगत को जीतने वाले जिस कामदेव के वाणदेव, असुर तथा मनुष्यादि में कहीं भी अर्थ सिद्ध किये बिना नहीं लौटे, वही काम आपको दूसरे साधारण देवता सा समझकर शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया।"

मनुष्य की वह इच्छा जो कि शरीर त्याग के समय की अंतिम इच्छा होती है, उसके दूसरे जन्म के शरीर का कारण बनती है। अन्तिम इच्छा के अनुसार ही दूसरा जन्म होता है, पर अंतिम इच्छा वही होती है जो हम जीवन में सबसे अधिक सोचते हैं। माता सती सदा अपने प्राण पति का ही चिंतन करती रहती थीं, वह कहती थीं 'सती मरत हरि सन वर माँगा। जन्म जन्म शिव पद अनुराग॥' फलतः अन्त में पति का चिंतन 'उरधरि चन्द्र मौलि वृष केतू' करते हुए ही उन्होंने शरीर का त्याग किया। अपनी अन्तिम इच्छा के अनुसार 'तेहि कारन हिमगिरि गृहजाई। जनमीं पार्वती तनु पाई॥' दूसरे जन्म में भी भगवान शंकर की पत्नी होने के लिये वे हिमालय के घर उनकी पत्नी मैना से उत्पन्न हुईं।

चौ०–जबते उमा शैल गृह जाई। सकल सिद्धि संपति तह छाई॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआसन कीन्हे। उचित वास हिम भूधर दीन्हे॥
कन्या बन जगदम्बिका आईं। सौंदर्य की अधिष्ठात्री कहाईं॥
गिरि सम्राट हर्ष अति भयेऊ। मैंना हर्ष पारावार न लयेऊ॥

जब से उमा ने पर्वतराज के यहाँ जन्म लिया घर समृद्धि की वृद्धि का वर्णन कैसे हो? वहाँ जहाँ मुनियों ने अपने स्थान बना लिये, उनको हिमवान ने उचित वास दिये, जगदम्बिका ही कन्या बन कर आईं हों, सौंदर्य की अधिष्ठात्री ही रूपवान हुई हों। तो उनके सौंदर्य का क्या कहना? गिरि सम्राट को विशेष हर्ष हुआ, और मात

...) अत

मैना का हर्ष का पारावार आपे में नहीं समाता।

चौ०—सोह शैल गिरिजागृह आये। जिमि जनु राम भगति के पाये॥
नित नूतन मंगल गृहतासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥
नारद समाचार सब पाये। कौतुक ही गिरि गेह सिधाये॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि वर आसन दीना॥
नारि सहित मुनि पद सिर नावा। चरन सलिल सबु भवन सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरिवरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

पार्वती के घर आ जाने से पर्वत ऐसा शोभायमान होता है उस पर्वतराज के घर नित्य नये-नये मंगलोत्सव होते हैं जिसका ब्रह्मादिक यश गाते हैं। जब नारदजी ने यह समाचार सुना तो वे भी घूमते-घामते कौतुक ही से हिमालय के घर पधारे, पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया, फिर अपनी स्त्री सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया और उनके चरणोदे को सारे घर में छिड़कवाया, हिमालय ने अपने सौभाग्य का बहुत बखान किया और उनके चरणों में पुत्री को डाल दिया। देवर्षि चौंके, मन में आया "जगन्माता का चरण स्पर्श" पर यहाँ तो मर्यादा थी चतुर की चतुरता चल गयी, झट बालिका को अपनी गोद में उठा लिया, लगे उनके कोमल चरण हाथों से देखने। पिता नारद जी से कहने लगे—

दोहा—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय विचारि॥

हे मुनिवर! आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है अत: आप हृदय में विचारकर इसके प्रारब्ध के शुभाशुभ फलों का वर्णन करने की कृपा करें। तथा इसका नामकरण भी हो जावे।

चौ०—कहमुनि विहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारी सकल गुण खानी॥
सुंदर सहज सुशील सयानी। नाम उमा, अम्बिका, भवानी॥
सब लच्छन सम्पन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पियारी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। ऐहि तेजसु पैहहिं पितुमाता॥

देवर्षि बोले—"गिरिराज! तुम्हारी पुत्री अनन्त गुणों की निधि है। यह स्वभाव से ही सुन्दर, सुशील और समझदार है, इसके नाम उमा, अम्बिका, भवानी हैं। कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति से सदा प्यारी होगी, इसका सुहाग सदा अचल रहेगा, इससे आप माता-पिता भी यश पावेंगे।

चौ०—होइहि पूज्य सकल जग मांही। ऐहि सेवत कछु दुर्लभ नांही॥
एहि करनाम सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइचारी॥
अगुन अपमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संशय छीना॥

यह सारे जगत में पूज्य होगी, और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा, यह संसार की माता मानी जायेगी। पतिव्रता स्त्रियाँ इसके आदर्श से तथा इसके चरणों के प्रसाद से अपना व्रत चला सकेंगी, संसार समस्त ऐश्वर्य इसके चरणों की पूजा से ही प्राप्त हो सकेगा, सम्पूर्ण विघ्न और क्लेश इसके स्मरणमात्र से दूर हो जायेंगे, हे पर्वतराज! तुम्हारी कन्या सुलक्षिणी है बड़े से बड़े देवता भी इसके पाद पंकजों में अपना किरीट रखने में अहोभाग्य मानेंगे, इसके बहुत से नामों में से तुम इसे उमा नाम से ही पुकारो। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं उन्हें भी सुन लो। गुणहीन, माता पिता विहीन, उदासीन, संशयहीन (लापरवाह) और-

दोहा—जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एह कहँ मिलहिं परीहस्त अस रेख॥1॥

योगी, जटाधारी, निष्काम हृदय, नंगा और अमंगल वेष वाला, कंगाल, शमशान में रहने वाला, कपाल माली, चर्म और सर्प लपेटने वाला, भाँग धतूरे का भोजी, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथों में ऐसी रेखा पड़ी है।

सूख गये मुख मातु-पितु, आनंद हवा हो जाय।
व्याकुल देखा देवऋषि, धैर्य दियो समुझाय॥2॥

अवगुणों की बात सुन माता पिता का जो गुणों को सुनकर जो आनंद हुआ था वह समस्त आनंद हवा हो गया, उनके मुख सूख गये। देवर्षि ने देखा कि वे बहुत अधिक व्याकुल हो गये हैं, वे उन्हें धैर्य देते हुए समझाने लगे।

कह मुनीश हिमवंत सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव, दनुज, नर नाग मुनि को उन मेटनिहार॥3॥

हे हिमवान्! आप लोग चिंता न करें, सुनों, प्रारब्ध में जाके विधाता ने ललाट पर जो कुछ लिख दिया है वह तो टल नहीं सकता, उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते। आपकी कन्याओं को वर ऐसा ही मिलेगा। जैसा मैंने बताया है फिर भी-

चौ०—तदपि एक मैं कहहुँ उपाई। होई करैं जो देव सहाई॥
जस वरु में वरनेउँ तुम पांही। मिलहिं उमाहि तस संशय नाहीं॥
जे जे वरके दोष बखाने। ते सब शिव महँ अनुमाने॥
जो विवाह शंकर सन होई। दोषहु गुन सम कहें सब कोई॥

तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ यदि देव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है, जितने दोष मैंने वर में बताये हैं ये सब भगवान्शंकर में हैं, यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाय तो दोषों को भी ~से सेवा) सब वस्तुओं को स्वच्छ करके
चौ०—वे त्रैलोक्यना पर सजातीं, (मन से सेवा) फिर भी सशंकित रहतीं कि
समरथ तो नहीं हुई, प्रातः से संध्या तक सेवा करके, (बचन से सेवा) अंत

सहजहिं मिलना उनका नांही। तप से आशुतोष होइ जाहीं॥
जो तप करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेंटि सकहिं त्रिपुरारि॥

वे त्रिलोकनाथ भगवान हैं अत: उनके लिये ये सब दोष भी गुण तथा श्रेष्ठ ही हैं। कोई समर्थ को दोष नहीं लगता, कोई बताता है, सूर्य, अग्नि और श्रीगंगाजी का यश सभी गाते हैं ये पवित्र-अपवित्र सभी को अपनाते हैं, पर उनका मिलना सहज नहीं है, वे तप से शीघ्र संतुष्ट हो जाते हैं, यदि तुम्हारी कन्या तप करे तो त्रिपुरारी होनहार को भी मिटा सकते हैं।

दोहा—असकह कन्या चरणहिं, प्रणाम मनहिं मन कीन्ह।
रख माता की गोद महँ, देवर्षि तबहि चलि दीन्ह॥1॥
सोरठा-गिरजहिं दीन्ह असीस, सुता लगाओ तपहिं महँ।
संशय तजहु गिरीस, होइहि यह कल्ज्यान जहँ॥2॥

देवर्षि तो इतना कह कर मन ही मन बालिका के चरणों में प्रणाम कर, उसे माता की गोद में रखकर चलते राम हुए और चलते वक्त पार्वती को आशीर्वाद दिया कहा बड़ी होने पर पुत्री को तप की प्रवृत्ति में लगाने से सब अमंगल, मंगल हो जायेंगे। हे पर्वतराज! तुम सन्देह का त्याग कर दो, अब यह कल्याण ही होगा।

दोहा—संस्कार जन्म जन्मान्तरहिं, बचपन भावी बन जात।
होनहार विरवान के, होत चीकने पात॥3॥

जन्म-जन्मान्तर के संस्कार बचपन में ही भावह जीवन का मानचित्र रख देते हैं। बच्चे की विभिन्न प्रकार के खेलों की रुचि देखकर चतुर अभिवावक जान सकता है कि बालक के हृदय का प्रवाह किस दिशा में है। वह किस ओर जग कर शीघ्र सफल होगा, उसका जीवन कैसा होगा?

दोहा—पूर्व संस्कारवश उमा, बचपन में ही शिव अनुरक्त।
कंकड़ रख शिव पूजतीं क्रीडा जलहिं चढ़ात॥4॥

बालिका उमा अपने पूर्व संस्कारवश बचपन से ही भगवान शिव पर अनुरक्त थीं। थोड़ी बड़ी होते ही वह खेल में शिव-पूजा करतीं, वहीं एकाध कंकड़ रख कर या धूलि का ऊँचा टीला बनाकर उसे शिव मानने लगतीं, फिर उस पर जल चढ़ातीं, घास पत्ते चढ़ातीं। मिल जाता तो फूल चढ़ाकर भोग भी लगातीं, फिर ध्यान करतीं। नन्हीं सी बालिका जब आँखें बन्द कर ध्यान करतीं तो इस प्रकार शरीर सुधि को भूल जातीं मानो समाधि दशा में पहुँच गई हों, ऐसा होने पर दूसरे ही उसे जगाते, बालकों के साथ ऐसा पूजा संबंधी खेल चलता।

एहि करनाम सुमिरि संसारा। त्रिय [illegible] सौंदर्यसार कहा नहिं जाता॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब [illegible] शिव आये तबहीं॥
अगुन अपमान मातु पितु हीना। उदासीन सब [illegible]ढा, जगन्माता की

कुमारिकावस्था का सौंदर्य त्रिभुवन के सौंदर्य का सार वर्णन नहीं किया जा सकता। जब उमा युवा हो चली थीं, उन्हीं दिनों भगवान शंकर हिमालय के समीप की ही एक उपत्यका पर तपस्या करने पधारे। वे लीलामय ही जानें कि वे किस उद्देश्य से तपस्या को तत्पर हुए, जो स्वयं तपस्या के फलों के दाता हैं, उनकी तपस्या का उद्देश्य क्या कोई बता सकता है? अर्थात् नहीं।

चौ०—स्वागत कियो प्रभु पर्वत राजा। सेवा धर्म योगि तपसी काजा॥
तपहिं योग्य तहँ सुविधा कीन्हीं। आश्रम सेवा सखियन्ह दीन्हीं॥
सुता उमा अति प्यारी प्रानन। नियुक्त करी सेवा पंचानन॥
इच्छा थी संभव इस सेवा। हों प्रसन्न स्वीकारें महादेवा॥

धर्मात्मा पर्वतराज ने प्रभु का स्वागत किया, राजा का धर्म है अपने राज्य में रहने वाले योगी-तपस्यियों की सुविधा सेवा का प्रबंध करे अतः उन्होंने उस उपत्यका पर तपस्या के योग्य सब सुविधाएँ कर दीं। आश्रम-सेवा के लिये सखियों को वहाँ भेजा गया। अपनी प्राणाधिक पुत्री को उनकी (पंचाचन शिव) सेवा में नियुक्त कर दिया, यह भी इच्छा तो थी ही कि सम्भव है इसकी सेवा से प्रसन्न होकर वे देव-देव = महादेव इसे स्वीकार कर लें।

दोहा—निर्विकार कोई मूल्य नहिं, विकार कारणों से रहें दूर।
सच्ची निर्विकारिता तभी, मध्य रहे विकार भरपूर॥2॥

विकार के कारणों से दूर रहकर निर्विकार रहना कोई मूल्य नहीं रखता। पर विकार की सामिग्रियों के मध्य में रहते हुए निर्विकार रहना ही सच्ची निर्विकारिता है। (इसी का नाम है इन्द्रिय व मनोजय)

चौ०—विघ्न-तपस्या स्त्री नियराई। स्वीकार शिवहिं गिरिजा सेवकाई॥
दर्शन भये उमा शिव जबहीं। निजउर पद्मन वारि दियो तबहीं॥
मनहिं मन आत्म समर्पण कीयो। आराध्यहिं लखि निज उमड़्यो हीयो॥
तन मन बचन से सेवा करहीं। आज्ञा ले शायं घर पग धरहीं॥

तपस्या में स्त्री का पास आना भी विघ्न है, यह जानते हुए भी भगवान शंकर ने पार्वती की सेवा स्वीकार कर ली। उमा ने शिव के दर्शन होते ही शिव के चरणों में अपने हृदय को चढ़ा दिया। अपने जन्म-जन्म के आराध्य को देखते ही उमा का हृदय उमड़ आया, मन ही मन उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। तन, मन, बचन तीनों से भलीभाँति सेवा में लग गयीं, वे स्वयं तपस्या तथा उनके आसपास के स्थान को दूर तक झाडू देकर लीपतीं, स्वयं गोबर व जल लातीं। वन से पुष्प, कुश, समिधा, फल-फूल चुन लातीं। (तन से सेवा) सब वस्तुओं को स्वच्छ करके आवश्यकतानुसार स्थानों पर सजातीं, (मन से सेवा) फिर भी सशंकित रहतीं कि कोई असावधानी तो नहीं हुई, प्रातः से संध्या तक सेवा करके, (बचन से सेवा) अंत

में अँधेरा होते ही शंकर जी के चरणों में प्रणाम करके उनकी आज्ञा से घर लौटतीं।

चौ०—घर नहिं छुआ तृण राजकुमारी। सेवा शिव दूसर न दैन बिचारी॥
श्यामगात श्रम से परिगयऊ। उँगली खुरदरी कुश छिल भयऊ॥
हाथन घट्टे पड़े तहँ जाहीं। फिर भी कष्ट उन अनुभव नांही॥
दत्त चित्त नियमहिं कर सेवा। मातु लखि द्रवित अश्रु भरि लेवा॥

जो राजकुमारी घर तृण भी नहीं छूती थीं वह यहाँ सखियों को किसी काम में भाग नहीं लेने देती थीं। उनका वर्ण श्रम से कुछ सांवला हो गया। हाथों में घट्टे पड़ गये, उगलियाँ कुशों से छिलकर खुरदरी हो गईं, फिर भी उन्हें कष्ट का तनिक भी अनुभव न होता था। वह नियम से सेवा में दत्त चित्त थीं। माता कन्या के सुकोमल शरीर पर इस श्रम के प्रभाव को देखकर, विशेषकर सन्ध्या को जब पसीने से भरी हुई लड़की लौटती तो उसे देखक द्रवित हो जाती और नेत्र में आँसू भर आते और कहती "बेटी अब कल तू मत जाना। यह सखियाँ वहाँ का कार्य कर आवेंगी।"

दोहा—मन ही मन माता कहै, सेवहिं फल तुम्हरे हाथ।
फूल सी बच्ची मम करे, यह कठोर तपस्या नाथ॥

माता मन ही मन कहती "प्रभो! मेरी सुकुमारी कन्या की इस सेवा का फल तुम्हारे ही हाथ है, मेरी फूल सी बच्ची की यह कठोर तपस्या सफल करें।"

चौ०—इत तप लीन तपस्या भयेऊ। वर अजेयता विधि तारक दयेऊ॥
तारक असुर भये तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज विशाला॥
तेहि सब लोक लोक पति जीते। भये देव सुख सम्पत्ति रीते॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुरकरि विविध लराई॥

इधर तो शंकर जी तपस्या में लीन थे, उधर तारकासुर नाम का असुर हुआ, जिसकी भुजाओं का बल प्रताप और तेज बहुत बड़ा था, उसने तपस्या करके ब्रह्माजी से वर प्राप्त करके सब लोक परलोक एवं स्वर्ग पर अधिकार जमा रखा था। सब देवता सुख एवं सम्पत्ति से रहित हो गये। वह अजर-अमर था। इसलिये किसी से जीता नहीं जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरह की लड़ाइयाँ लड़कर हार गये।

चौ०—अपना बल न चले आपत्ति। शरण ग्रहण करे बड़की शक्ति॥
तब विरंचि सन जाइ पुकारे। देखे विधि सब देव दुखारे॥
पूछा विपत्ति निवारण देवा। ब्रह्मा बोले सुन सब लेवा॥
घोर तपहिं तारकहिं प्रभाउ। भस्म होन त्रिलोक मम भाऊ॥
वर दे लोकन रक्षा करेऊ। तावर अजेय नहीं वह मरेऊ॥

आपत्ति में जब अपना बल नही चलता तो पुरुष बड़ों की शक्ति की शरण ग्रहण करता है। देवता रोते-बिलखते ब्रह्मा के पास जाकर पुकार करने लगे, ब्रह्माजी ने सब देवताओं को दुःखी देखा। देवताओं ने उनसे अपनी विपत्ति का वर्णन करके

उसके निवारण का उपाय पूछा। ब्रह्मा ने कहा तुम सब सुनो—"जब उस असुर की घोर तपस्या से तीन लोक भस्म होने को थे ऐसा मेरे मन जागा, तब मैंने उसे वरदान देकर लोकों की रक्षा की, मेरे वरदान के प्रभाव से वह अजेय है, तुम उसे नहीं मार सकते।"

दोहा—सब सन कहा बुझाइ विधि, दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्रसंभूत सुत, ऐहि जीतइ रन सोइ॥

ब्रह्माजी ने सबको समझाकर कहा—"इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो, वही इसको युद्ध में जीतेगा। अर्थात् भगवान शंकर के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही उसका वध कर सकेगा।"

चौ०—शिव तो लीन तपस्या तेहि काले। तेहि शुक्र नहिं कोऊ सँभाले॥
केवल आदिशक्ति अरु गंगा। धारण शक्ति तेहि भवभंगा॥
सती जो तजी दच्छमख देहा। जनमी जाइ हिमालय गेहा॥
लही आजकल सेवा करेऊ। शिवजी की तनमन अनुसरेऊ॥

भगवान शिव तो इस समय तपस्या में लीन हैं, दूसरे उनके वीर्य को सँभाल पाने की शक्ति किसी में नहीं, केवल आदिशक्ति और गंगा में ही है, संभाल पाना भवभंगा (शिव) आदि शक्ति ने दक्ष के यज्ञ में शरीर त्याग कर हिमालय के घर में अवतार ले लिया है, वे ही आजकल प्रभु शिव की सेवा में तन-मन से लगी ई हैं।

चौ०—पठवहु कामु जाइ शिव पांही। करै छोभु शंकर मन मांही॥
तब हम जाइ सिवहिं सिरनांई। करबाउव विवाहु बरिआई॥
ऐहि विधि भलेहिं देवहित होई। मत अतिनीक कहइ सब कोइ॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रकटेउ विषमवान झसकेतू॥

तुम जाकर कामदेव को शिवजी के पास भेजो, वह शिवजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे = उनकी समाधि भंग करे, तब हम जाकर शिवजी के चरणों में सिर रख देंगे, और राजी करके विवाह करवा देंगे। इस प्रसंग से भले ही आप लोगों का हित हो सकता है और कोई उपाय नहीं है, सबने कहा—'यह सम्मति बहुत अच्छी है फिर देवताओं इन्द्र सहित बड़े प्रेम से कामदेव की स्तुति की तब विषम (पाँचवाण धारण करने वाला) वाण धारण करने वाला और मछली के चिन्ह युक्त ध्वजा वाला कामदेव प्रकट हुआ।

दोहा—सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
संभु विरोध न कुशल मोहि, विहँसि कहेउ अस मार॥

देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति कही, सुनकर कामदेव ने मन में विचार किया और हंसकर देवताओं से यों कहा कि शिवजी के साथ विरोध करने में मेरी कुशल नहीं है।

चौ०—तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
परहित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रशंसहि तेही॥
अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय विचारा। शिव विरोध ध्रुव मरन हमारा॥

तथापि मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरे के उपकार को परम धर्म कहते हैं, जो दूसरे के हित के लिये अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं। यों कहकर सबको सिन नवाकर कामदेव अपने पुष्प के धनुष को हाथ में लेकर (वसन्तादि) सहायकों के साथ चला। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिवजी के साथ विरोध करने से मेरा मरण निश्चित है। "जब मृत्यु से ही खेलना है तो एक बार अपनी समस्त शक्ति लगा देनी चाहिए।" साथ ही अंतिम समय में विश्व को भी दिखा देना है कि काम में कितनी शक्ति है।

चौ०—तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहि वारिचर केतू। छन में मिटे सकल श्रुति सेतू॥
ब्रह्मचर्ज व्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान विज्ञाना॥
सदाचार जप जोग विरागा। सभय विवेक कटकु सब भागा॥

तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जिस समय उस मछली के चिन्ह की ध्वजा वाले कामदेव ने धनुष उठाया और उस पर रख कर असंख्यों पुष्प वाण दिशाओं में फेंकने लगा, वह अनाचार वर्णनातीत है उस समय क्षणभर में ही वेदों की सारी मर्यादाएँ मिट गयीं, ब्रह्मचर्य, नियम, नाना प्रकार के संयम, धीरज, धर्म, ग्यान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेक की सारी सेना डर कर भाग गयी।

छन्द— भोउ विवेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महिमुरे।
सदग्रन्थ पर्वत कन्दरन्हिं महुँ जाइ तेहि अबसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरु भरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जे कहुँ कोपि कर धनुसरूधरा॥

विवेक अपने सहायकों सहित भाग गया, उसके योद्धा रणभूमि में पीठ दिखा गये। उस समय वे सब सद्ग्रन्थ रूपी पर्वत की कन्दराओं में जा छिपे (अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचार आदि ग्रन्थों में ही लिखे रह गये) उनका आचरण छूट गया। सारे जगत में खलबली मच गई, सब कहने लगे—हे विधाता! अब क्या होने वाला है? हमारी रक्षा कौन करेगा? ऐसा दो सिर वाला कौन है जिसके लिये रति के पति कामदेव ने कोप करके हाथ में धनुष बाण उठाया है?

दोहा—जो सजीव जग अचरचर नारि पुरुष असनाम।
ते निज निज मरजाद तजि भये सकल बस काम॥

जगत में स्त्री-पुरुष संज्ञा वाले जितने चर-अचर प्राणी थे वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश हो गये।

चौ०— सबके हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु शाखा॥
नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई। संगम करहिं तलाब तलाई॥
जहँ असदशा जड़न्ह कैबरनी। को कह सकै सचेतन करनी॥
पशु पच्छी नभ जल थल चारी। भये काम बस समय बिसारी॥

सबके हृदय में काम की इच्छा हो गयी, लताओं (बेलों) को देखकर वृक्षों की डालियाँ मुरझाने लगीं, नदियाँ उमड़-घुमड़ कर समुद्र की ओर दौड़ीं और ताल-तलैया भी आपस में संगम (मिलने-जुलने) लगीं। जब जड़-वृक्ष, नदी आदि की यह दशा कही गयी तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वी पर विचरने वाले सारे पशु-पक्षी (अपने संयोग का) समय भुलाकर काम के वश में हो गये।

चौ०— मदन अंध व्याकुल सब लोका। निशि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किन्नर व्याला। प्रेत पिशाच भूत वैताला॥
इन्ह कै दशा न कहेउ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामवश भये वियोगी॥

सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा-चकवी रात-दिन नहीं देखते, देव, दैत्य, मनुष्य, किंन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, वैताल ये तो सदा ही काम के गुलाम हैं इसलिये इनकी दशा का वर्णन नहीं किया। सिद्ध, विरक्त, महामुनि और महान योगी भी काम के वश होकर योग रहित या स्त्री के विरही हो गये। अर्थात् ऋषि मुनि भी स्त्री के पीछे भागने लगे। न कोई मर्यादा थी न लज्जा।

सोरठा— धरी न काहू धीर सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुवीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥

किसी ने भी हृदय में धैर्य धारण नहीं किया, कामदेव ने सबके मन हर लिये। विश्व में सभी इस समय कामोन्मक्त हों ऐसी बात नहीं अब भी कुछ परम प्रभु के प्रेमी ऐसे थे जिनके मन को विकार स्पर्श नहीं कर सकता था। वस्तुतः जो सच्चे हृदय से प्रभु की शरणागत हैं उनकी रक्षा स्वयं प्रभु करते हैं जिनका हृदय प्रेम से पूर्ण है, उनके हृदय में उस प्रेमपाश में बँधे प्रभु सदा विराजते हैं। जिनकी रक्षा स्वयं जगदीश्वर कर रहे हैं जिनके हृदय में वे अखिलेश विराजमन हों उनके समीप क्या काम किया जा सकता है? अंधेरे में इतनी शक्ति कहाँ कि वह सूर्य के समीप जावे। काम को वहाँ से कोसों दूर रहना पड़ता है। प्रभु तक तो भला चला जाय, उनकी क्रीड़ा का एक अंग है पर प्रभु के भक्तों की ओर जाने का विचार करते ही उसे नष्ट होना पड़ेगा। सेवक का अनिष्ट करने वाला तो दूर सोचने वाला भी प्रभु के कोप से बचने

की आशा नहीं कर सकता।

चौ०—उपत्य हिमालय तप शिव करहीं। तहीं काम सहचर पग धरहीं॥
उभय घड़ी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि काम शंभु पहिं गयऊ॥
सिवहिं विलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाधित सब संसारू॥
भये तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गये मतवारे॥

इस कृत्य के साथ ही कामदेव ने उस हिमालय की उपत्यका पर जिस पर भगवान शंकर तपस्या कर रहे थे पैर बढ़ाया अपने सहचरों के साथ। दो घड़ी तक संसार में ऐसा तमाशा हुआ, जब तक कामदेव शिवजी के पास पहुँच गया। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार जैसा का तैसा हो गया, तुरंत ही सब जीव सुखी हो गये जैसे मतवाले (नशा किये हुए) लोग नशा उतर जाने पर सुखी होते हैं।

चौ०—प्रगटेसि तुरत रुचिर रितु राजा। कुसुमित नवतरु राजिव विराजा॥
वन उपवन वापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा विभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥
कामान्कुर उत्तेजित हेतू। चहै काम शिव को झषकेतू॥

कामदेव ने तुरंत ही सुन्दर ऋतुराज बसंत को प्रकट किया। फूले हुए नये-नये वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गईं। वन-उपवन बावली-तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुन्दर हो गये, जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है जिसे देखकर मरे मनों में भी कामदेव जाग उठा। उत्तेजना ही काम की भूमि है। कामान्कुर तो उत्तेजित हृदय में ही उठता है अत: पहले शंकर जी को उत्तेजित करना था।

छन्द— जागेउ मनोभव मुएहुँमन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंदमारुत मदन अनल सखा सही॥
विकसे सरन्हि बहुकंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिकसुक सरस खकरि गान नांचहिं अपक्षरा॥

मरे हुए मन में भी कामदेव जागने लगा, वन की सुन्दरता कहीं नहीं जा सकती। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र शीतल मन्द, सुगन्धि तप वन चलने लगा। सरोवरों में अनेकों कमल खिल गये, जिन पर सुन्दर भौरों के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और मयूर नाचने लगे, झुंड के झुंड मृगादि बन पशु कलोलें करते घूमने लगे, भगवान शिव के समीप ही मेनका, उर्वशी, प्रभृति अप्सरायें नृत्य करने लगीं।

दोहा—काम उत्पादक संगीत कर, बाजे बजै करन उरचेत।
सकल कला करि कोटि विधि हारेउ सेन समेत॥

अत्यंत मनोहर कामोत्पादक संगीत गाया जा रहा था, बाजे उनके प्रभाव को

मिलकर भगवान के हृदय में चेत करने के लिये द्विगुणित कर रहे थे, कामदेव अपनी सेना समेत करोड़ों प्रकार की सब कलाएँ = उपाय करके हार गया।

चौ०—कामदेव निराशहिं भयेऊ। तेहि उत्साह टूट सब गयेऊ॥
करते छूटि धनुष गिरजाहीं। शान्ती सकल विश्व मनहिं॥
अरुणोदय समय अवकारी। संखि संग उमा सेव करन पधारी॥
त्रिभुवन सुन्दरि देखत भयेऊ। मदन हर्ष से उछल तब गयेऊ॥

कामदेव निराश हो गया, उसका उत्साह टूट गया, धनुष हाथ से छूट कर गिर गया, साथ ही विश्व में शान्ति हो गई। ठीक इसी समय अरुणोदय से रंजित प्राप्त दीखने लगा, वहाँ सखियों के साथ भगवती उमा शिव सेवा के लिये पधारीं। नव कुसुमों के श्रृंगार से शोभित त्रिभुवन सुन्दरी की छटा उस सारभूत मूर्ति को देखते ही मदन हर्ष से उछल पड़ा।

चौ०—निश्चित पूर्ण विजय मन भयऊ। धनुष बाण हाथ लै लयऊ॥
देखि रसाल विटप पर शाखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा॥
सम्मोहन पुष्प धनुसर धरेऊ। प्रतीक्षा ठीक समय की करेऊ॥
शिव समाधि त्यागि उठि जबहीं। नंदी ने अस देखा तबहीं॥

कामदेव को अपनी विजय का पूर्ण निश्चय हो गया। उसने हाथ में धनुषबाण उठा लिया और भगवान शंकर के पीछे देख अवस्थित भौंरों के भार से झुके एक सघन आम्रतरु पर जा चढ़ा, पत्रों में छिपकर अवसर देखने लगा। धनुष आम्र मौर का सम्मोहन नाम का एक सर्वश्रेष्ठ बाण चढ़ाकर वह प्रयोग के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। इसी समय प्रभु ने समाधि का त्याग किया, हाथों की गोद से उठाकर मृगचर्म पर रखते हुए धीरे-धीरे प्राणवायु को छोड़कर उन्होंने आसन को शिथिल किया, ये सब कृत्य नंदी ने भीतर की ओर करते शिव को देखा।

दोहा—उठा देखि प्रभु समाधि से, मार्ग छोड़ खड़ा एक ओर।
सखि संग भीतर कूँ चली, उमा पुष्पन अंजलि जोर॥2॥

प्रभु को समाधि से उठा देखकर नंदी पार्वतीजीके भीतर प्रवेश के लिये मार्ग छोड़कर एक ओर खड़ा हो गया, वे सखिों के साथ भीतर गयीं चुने हुए सुन्दर पुष्पों की अंजलि जोरी हुई।

चौ०—सुन्दर पुष्प चढ़ायेउ शिव चरना। सिर भू टेक प्रणाम लगि करना॥
आशीर्वाद शिवहिं दै डारेउ। सुफल मनोरथ होहु तुम्हारेउ॥
कमल बीज उमा माल बनाई। सहर्ष युगल कर शिव पहिराई॥
अति समीप दोऊ कामहिं लखकर। गल माला निज सर छोड़ा शिव उर॥

भगवाती उमा ने वे सुन्दर पुष्प भगवान शंकर के चरणों में चढ़ाकर उन्होंने मस्तक पृथ्वी पर रखकर प्रणाम किया। 'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो' सर्वेश ने आशीर्वाद

तो दे ही डाला। फिर कमल बीजों = कमल गट्टों की माला जो कि उमा ने आज घर पर स्वयं बनायी थी, प्रभु के गले में डालने के लिये दोनों हाथों में लिया, प्रभु तो भक्तवत्सल ठहरे। उन्होंने सिर झुका दिया माला स्वीकार करने को, अत: माला पहन ली। यही उपयुक्त अवसर था जिसकी प्रतीक्षा काम कर रहा था। माला गले में और काम का सम्मोहनास्त्र हृदय पर एक ही साथ पड़े ।

चौ०—हल्का प्रहार चाहे अचानक होई। बड़े योद्धान्ह गिरादे सोई॥
वो भी मर्म थान लगि जावै। अति प्रभावशाली बनि आवै॥
आकस्मिक आघातहि दीन्हा। शिव उर विचलित क्षुभ्रित कीन्हा॥
दृष्टि उमा मुख लालस डारी। दृष्टिहि सब कृत करने वारी॥

हलका सा भी प्रहार जो अचानक हुआ हो, बड़े-से बड़े योद्धा को गिरा देता है, फिर यदि वो मर्म पर हो तो और भी प्रभावशाली होता है। इसी से साधक को सदा प्रतिपल सावधान रहने का आदेश है। इस काम के आकस्मिक आघात से प्रभु विचलित हो गये। हृदय क्षुभित हो गया। लालसापूर्ण दृष्टि से उन्होंने पार्वतीजी के अरुणाधर और चन्द्रमुख की ओर देखा, दृष्टि में ही तो सब कुछ है। वही दृष्टि पुत्री पर जाती है, पर वहाँ कुछ नहीं, पर वही पत्नी पर जाने पर प्रभावोत्पादक हो जाती है। दृष्टि ही भावना को व्यक्त कर देती है।

दोहा—लज्जा से मुख लाल हो, सन्मुख प्रेम लखाय।
मुख कछु दूसरि मोड़ लखि, उमा दृष्टि कटाक्षहिं पाय॥2॥

यह भगवान शिव की विचित्र भावपूर्ण दृष्टि पड़ते ही पार्वती का मुख लज्जा से लाल हो गया। हृदय का प्रेम सम्मुख से आश्वासन पाकर जोकि वरदान से उल्लसित हो गया था, फूट निकला, मुख को तनिक दूसरी ओर फेरकर उन्होंने कटाक्षपूर्ण दृष्टि से जो लज्जा सनी थी, भगवान शंकर को देखा।

चौ०—ये दृष्टि कामी भरपूरहिं। यहाँ तो गिरिजा योगी घूरहिं॥
आइ सकैमहा पुरुष विकारा। पर स्थाईन शीघ्रहिं देवें टारा॥
चौंके तुरत शिवहिं भगवाना। ये विकार मम उरकस आना॥
कारण निज संदेह न कोई। बाह्य अवस अस कारण होई॥

ये दृष्टि कामी के लिये बहुत थी, पर यहाँ तो योगी को घूरा जा रहा है। महापुरुषों के हृदय में विकार आ तो सकता है, पर वह स्थायी नहीं हो सकता, शीघ्र ही वे पुन: अपनी स्थिति में आ जाते हैं तुरंत भगवान शंकर चौंके-मेरे हृदयों में यह विकार क्यों ? अपने पर संदेह का कोई कारण न था," अवश्य बाहर ही कोई कारण होना चाहिए।

चौ०—नयन उघारि सकल दिसि देखी। भयो ईस मन छोभ विशेषी॥
सौरव पल्लव मदनु विलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका॥

तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भये असुर सुखारी॥

दृष्टि अन्वेषण पूर्ण ढंग से आँख खोल सब ओर देखा। राग कहीं भी हो हानिकारक ही होता है, इस समय तपस्या में राग था अत: उस तपस्या में विकार आने से जो थोड़ी सी बाधा पड़ी, उसने क्रोध का रूप धारण कर लिया। शिवजी तपोभंग से क्रोधित हो गये, क्षोभ हुआ-उनका मुख तथा नेत्र अरुण वर्ण हो चुके थे, सर्प फुँफकारने लगे, भृकुटी कठोर हो गई। सखी एवं पार्वतीजी इस भावभंगी से भयभीत हो सिमट कर एक ओर खड़ी हो गईं, काम के प्राण सूख गये जब आम के पत्तों में छिपे हुए काम देव को देखा, क्षोभ का कारण ज्ञात हुआ, प्रलयंकर ने हुंकार भरकर तीसरा नेत्र खोला जिससे तीनों लोक, काँपने लगे, उससे एक भीषण ज्वाला निकली, जिससे कामदेव जलकर भस्म हो गया। जगत में बड़ा हाहाकार मच गया। देवता डर गये, दैत्य सुखी हुए "यह और अनर्थ हुआ" क्रोध का विकार एक क्षण में ही रोककर भगवान शिव ने सोचा "काम तक तो ठीक था पर उससे क्रोध भी" हल्का सा पश्चाताप हुआ। तृतीय नेत्र बन्द हो चुका था।

दोहा—सकल बखेड़ा जगह यह, स्थान छोड़ि अब देहिं।
समस्त गणन ले साथ ही, अन्तर्हित होइ जेहिं॥

"सारे बखेड़ों की जड़ इस स्थान को छोड़ देना चाहिए। मन में यह आते ही शंकरजी ने तुरंत गणों के साथ अन्तर्हित हो गये। पार्वती अब तक घटनाओं से स्तम्भित थीं, इस प्रकार अकस्मात प्रभु के जाने से उन्हें बड़ी चोट लगी। "मेरे ही दोष से यह हुआ, प्रभु रुष्ट हो गये" इस व्यथा से वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं, सँभालकर सखियों ने उन्हें घर पहुँचाया।

जो है या था, उसका अभाव तो हो नहीं सकता। यद्यपि काम का शरीर जल गया, पर इससे काम का नाश थोड़े ही हुआ। जीवात्मा तो अजरामर तथा नित्य है, फिर काम तो प्रभु की सृष्टि का एक कारक अंग है, उसके अभाव में तो सृष्टि ही न चलेगी, ऐसी दशा में उसका नाश कैसे अभीष्ट हो सकता था। काम का शरीर दहन सुनकर उसकी पत्नी रति मूर्च्छित हो गई, चेतना प्राप्त होने पर रोते-रोते उसने सती होने का निश्चय किया, प्रभु तो सर्वव्यापी हैं साथ ही करुणा सागर भी, रति की दशा पर दया आ गई, आकाशवाणी होने लगी—

दोहा—अब ते रति तव नाथ कर, होइहि नाम अनंग।
बिनु वपु व्यापहिं सबहिं पुनि सुनु निजमिलन प्रसंग॥

रति दु:खी मत हो, तेरे पति का नाश नहीं हुआ है, अब से तेरे स्वामी का नाम अनंग होगा, वह बिना ही शरीर के सबको व्यापेगा अब तू अपने पति से मिलने की बात सुन—

चौ० — जब जदुवंश कृष्ण अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्ण तनय होइहि पति तोरा। वचन अन्यथा होइ न मोरा॥

पृथ्वी के भार को उतारने भगवान जब द्वापर में यदुवंश में श्रीकृष्ण रूप से अवतरित होंगे तो वह उनका पुत्र होगा, मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा, वहाँ तू उसे प्राप्त कर सकेगी। रति को कुछ धैर्य हुआ, वह पति मिलन की प्रतीक्षा में समय व्यतीत करने लगी।

इधर उमा को घर आने पर चेतना हुई। माता-पिता प्यारी पुत्री को देखकर व्याकुल हो गये, पार्वती को चेतना तो हुई पर प्रेम का रोग उन्हें लग गया, उदास रहने लगीं, एकान्त में बैठकर कभी हँसती, कभी रोतीं और कभी "वृषभध्वज! विश्वनाथ! मुझे कहाँ छोड़ चले" इस प्रकार चौंक पड़तीं, अंत में बहुत सोच विचार कर हृदय की शक्ति प्राप्ति के लिये पार्वती जी ने तपस्या करने का विचार किया। सखियों के द्वारा अपने विचारों को उन्होंने माता पर प्रकट किया, माँ सुनते ही व्याकुल हो गयी, रोने लगी—"मेरी फूल सी बच्ची तपस्या के योग्य है?" पगली तपस्या ऋषियों का कार्य है कि भला कहीं लड़कियाँ भी तपस्या कर सकती हैं? गोद में लेकर पुत्री को माता ने प्रेम से कहा। उमाजी बोलीं—"माँ बिना कष्ट के उत्तम फल मिलता भी तो नहीं, फिर मेरा यह शरीर भी किसलिये, आप मुझे प्रसन्नता से आज्ञा दें।" माता ने देखा यह हठ पर तुल गई है, पति को बुलाकर कहा—"देखो अपनी लड़ैती को तुम्हीं समझाओ, अब यह तपस्या करने जायेगी।" माँ रो पड़ी। सब बातें जानकर पिता दुःखी तो हुए पर हृदय को उन्होंने कड़ा किया। उन्हें देवर्षि नारद के वचन स्मरण आ गये। पुत्री की मंगल कामना ने मोह पर विजय पाई, उन्होंने पत्नी को समझाकर पार्वती को तपस्या के लिये आज्ञा दे दी। माता-पिता के चरण स्पर्श कर उमा उसी शिखर पर जहाँ भगवान शंकर तपस्या करते थे उसी स्थान पर तपस्या को विदा हुईं, एक सखी साथ गई।

तपस्या तो ऋषीमुनि भी करते हैं, लेकिन पार्वती ने तो तपस्या की सीमा ही पार कर दी—

चौ० — उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ विपिन लागी तप करना॥
अति सुकुमार न तन तप जोगू। पति पद सुमिर तजेउ सब भोगू॥
नितनवचरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा॥
संवत सहस मूल फल खाये। सागु खाय सत वर्ष गँवाये॥

प्राणपति शिवजी के चरणों को हृदय में धारण करके पार्वतीजी वन में जाकर तप करने लगीं। पार्वती का अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नहीं था, तो भी पति के चरणों का स्मरण करके उन्होंने सब भोगों को तज दिया। स्वामी के चरणों में नित्य नया राग उत्पन्न होने लगा और तप में ऐसा मन लगा कि शरीर की सारी सुधि बिसर

गई। एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाये फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताये।

चौ०—कछु दिन भोजन वारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेलि पांति महि परइ सुखाई। तीन सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परि हरे सुखानेउ परना। उमहिं नाम तब भयो अपरना॥
ठाड़ी एक पैर निराहारा। कर दोऊ ऊपर ध्यानहिं सारा॥

कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किये जो बेलपत्र सूखकर पृथ्वी पर गिरते थे तीन हजार वर्ष तक उन्हीं को खाया फिर सूखे पत्ते भी छोड़ दिये, तो उसका नाम ही अपर्णा पड़ गया। वे प्रथम पूजा पाठ करती रहीं, फिर ध्यान करने लगीं, अन्त में निराहार रहकर एक चरण से खड़ी होकर दोनों हाथ ऊपर करके अखण्ड ध्यान में स्थिर हो गयीं। चित्त भगवान शंकर में तदाकार हो गया। श्वाँस गति अवरुद्ध हो गईं।

उनके प्राण की गति रुद्ध हुई तो धीरे-धीरे शरीर स्थिर देवांशों एवं ब्रह्माण्ड पर इतना अधिक प्रभाव पड़ने लगा कि व्यापक ब्रह्माण्ड भी प्रभावित हो उठा, देवताओं के प्राण रुकने लगे, उनके शरीर जलने लगे, विश्व भस्म होने की संभावना होने लगी। तपस्या में इतनी शक्ति है कि तपस्वी विश्व के अधिष्ठाता को विवश कर देता है अपनी माँग पूरी करने के लिये। विश्व का नाश हो जाय यदि तपस्या अपनी सीमा से बढ़ जाय, अन्ततः समस्त महासागर का जल भी खोलने लगा।

तपस्या में विघ्न तो पड़ते ही हैं, प्रलोभन भी आते हैं, पार्वती के साथ भी यही हुआ, प्रारम्भ में आलस्य आया, फिर रोग आने लगे, कभी हाथ दर्द कभी पैर और सिर, ज्वर, खाँसी आदि ने भी पीछा किया, पर वे शरीर की चिंता छोड़कर अपने साधन पर दृढ़ रहीं, सबको स्वतः दूर होना पड़ा। भूकम्प, वृक्ष अचानक गिर जाना, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि भय भी आये और सिद्धियाँ भी आयीं, शरीर कभी पृथ्वी से अपने आप उठ गया, कभी हल्का हो गया आदि। पर भय और प्रलोभन से आँखें बन्द कर उन्होंने अपना उद्देश्य स्थिर रखा, न भय का भय किया न सिद्धि पर ध्यान दिया। ब्रह्मा और इन्द्र कई बार वर देने आये भी पर यहाँ तो एक ही टेक थी कि "यदि देना है तो हृदय धन ही आकर अपने को देंगे नहीं तो शरीर ही मिटेगा, इस जन्म में न सही, दूसरे में—"**जन्म कोटि लगि रगर हमारी। वरउँ शम्भुनत रहउँ कुँवारी॥**" मेरा तो करोड़ों जन्मों तक यही हठ रहेगा, या तो शिवजी को वरूँगी, नहीं तो कुँवारी ही रहूँगी। ब्रह्मादिकों का सत्कार करके उमा ने उन्हें आदर से विदा कर दिया, वे बार-बार निराश होकर लौट गये, जब विश्व के नाश का संदेह होने लगा, तो समस्त देवता ब्रह्माजी को लेकर भगवान शिव के समीप पहुँचे। उधर तपः प्रभाव से कैलाश भी काँपने लगा था, शंकरजी का आसन भी विचलित हो चुका था,

देवताओं ने भूमि में सिर रखकर विश्वनाथ को प्रणाम किया, आशुतोष ने भी ब्रह्मा का अभिवादन कर उन्हें आसन देकर आगमन का कारण पूछा।

ब्रह्माजी बोले—'प्रभो! सर्वज्ञ! आपसे कुछ छिपा थोड़े ही है फिर भी मुझसे सुनना है तो सुनिये—"तारक मेरे वरदान से अजेय होकर उपद्रवी हो गया, अब उसने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया है, ये समस्त देवता बिना घर द्वार के आर्त होकर आपकी शरण में आये हैं, इनकी रक्षा कीजिये, वह असुर संसार में से धर्म को वैदिक कर्म को तथा गौ, विप्रों को मिटाये दे रहा है, धर्ममूर्ति धर्म को बचाइये। साथ ही हिमालय की पुत्री के तप से हम सबके प्राण रुद्ध होते जा रहे हैं, विश्व का अब नाश होने को है, विश्व की रक्षा कीजिये उसे तप से निवृत्त कीजिये। हम सबको यह बड़ी अभिलाषा है कि अपने नेत्रों से प्रभु विवाह देखें।

दोहा—सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हिं देखा चहहिं नाथ तुम्हार विवाहु॥

चौ०—यह उत्सव देखहिं भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
पारवती तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥
सुनि विधि विनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखमानी॥
तब देवन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुर सांई॥

हे कामदेव के मद को चूर करने वाले, आप ऐसा कुछ कीजिये जिससे सब लोग इस उत्सव को नेत्र भर कर देखें। हे नाथ! पार्वती ने अपार तप किया है अब उन्हें स्वीकार कीजिये। ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर और श्री रामजी के वचनों को याद करके शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"ऐसा ही हो" यदि आप लोग ऐसा ही चाहते हैं तो आनंद से देवता पुकार उठे "भगवान शंकर की जय" नगाड़े बजाये और फूलों की वर्षा करते हुए विदा हुए।

चौ०—विप्र कुमार रूप शिव धारा। पहुँच अकेल उपातम सारा॥
देखि गौर तन श्यामहिं काफी। कठोर चर्म भयो तन यों भापी॥
नेत्र समीप कालिमा छाई। सूखे अधर दैं फीके लखाई॥
मुख सूखा हड्डी मात्र शरीरा। मेखलाहिं गढ्ढा भयो कटि तीरा॥

शंकरजी ने स्वयं एक ब्राह्मण कुमार का रूप बनाया और अकेले ही वहाँ पहुँचे जहाँ पार्वती तपस्या करती थीं। भगवान ने देखा—उनका वह गौर शरीर तपस्या के कारण काफी श्याम पड़ गया है। कोमल चमड़ा कुछ कड़ा हो गया है, मुख सूख गया है। नेत्रों के आसपास कालिमा छा गई है। अधर सूखकर फीके पड़ गये हैं। कटिमें मेखला से काला गहरा चिन्ह हो रहा है, शरीर में केवल हड्डी मात्र शेष हैं।

दोहा—सौन्दर्य प्रतिमा सूखकर, कैसी है रही हाय!
मानोकमलिनी जेष्ठ की, धूपहिते मुरझाय॥

वह सौन्दर्य की प्रतिमा हाय! सूखकर जाने कैसे हो रही है, मानो कमलिनी जेष्ठ की धूप में सूखकर मुरझा गयी है। "मेखला, मृगचर्म और वल्कल क्या इन सुकुमार अंगों के योग्य है? क्या यह शरीर वेदिका पर सोने और तपस्या करने योग्य है? वे काले घुंघराले लम्बे केश आज जटा हो रहे हैं" आशुतोष के दोनों नेत्र भर आये। फिर उन्होंने अपने को सँभाला।

चौ०—प्रातः कर्म निवृत है गयेऊ। उमा मनहिं उद्यत तप भयेऊ॥
आयो लखि इक तपसी कुमारा। ताकर तेज दिशन्ह उजियारा॥
अभिवादन गिरिजा उठ कीन्हा। चरण धोइ सखि आसन दीन्हा॥
आगन्तुक बैठ जब गयऊ। कारन आन सखि पूछत भयऊ॥

प्रातः के नित्य कर्म से निवृत्त होकर तप में लगने को उमा उद्यत ही थीं कि तेज से दिशाओं को उज्जवल करते हुए एक तपस्वी कुमार को आश्रम में आया देखकर अतिथि सत्कार धर्म समझ उठकर गिरिजा ने अभिवादन किया। सखी ने जल से चरण धोये, आसन दिया, आसन पर आगन्तुक के बैठ जाने पर उमा के संकेत से उनसे पधारने का कारण पूछा।

चौ०—बोले शिव सुनु शैल कुमारी। करहु कवन कारण तपु भारी॥
केहि अपराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥
कहत बचन मन अति सकुचाई। हँसिहहु अपु हमारी जड़ताई॥
मनु हठ परान सुनइ सिखावा। चहत वारि पर भीति उठावा॥
देखहु मुनि अविवेकु हमारा। चाहिअ सदाशिवहिं भरतारा॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन हम चहहिं उड़ाना॥

शिवजी बोले—हे शैल कुमारी! सुनो तुम किसलिये इतना कठोर तप कर रही हो? तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो, हमसे अपना सच्चा भेद बताओ। पार्वती ने कहा—बात करते मन बहुत सकुचाता है। आप मेरी मूर्खता सुनकर हँसेंगे, मन ने हठ पकड़ लिया हैं, वह उपदेश नहीं सुनता और जल पर दीवाल उठाना चाहता है। नारद जी ने जो कह दिया उसे सत्य जानकर मैं बिना ही पंख के उड़ना चाहती हूँ, आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि मैं सदाशिवजी को ही पति बनाना चाहती हूँ।

दोहा—सुनत बचन बिहँसे शिवहि, गिरि सम्भव तब देह।
नारद कर उपदेश सुनि कहहु बसेउ किसु गेह॥

पार्वती की बात सुनते ही शिवजी हँस पड़े और बोले तुम्हारा शरीर पर्वत से ही तो उत्पन्न हुआ है, कहो तो नारद का उपदेश सुनकर आज तक किस का घर बसा है।

चौ०—दच्छ सुतन्ह उपदेसिन्ह जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनक कसिपुकर पुनि असहाला॥
नारदा सिख जे सुनहिं नर नारी। अबसि होहिं तजि भवन भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सब ही चह कीन्हा॥

उन्होंने जाकर दक्ष के पुत्रों को उपदेश दिया था, जिससे उन्होंने फिर लौटकर घर का मुँह भी नहीं देखा। चित्रकेतु के घर का नाारद ने ही चौपट कर दिया। फिर यही हाल हिरण्यकशिपु का हुआ जो स्त्री-पुरुष नारद की सीख सुनते हैं वे घर-बार छोड़कर अवश्य भिखारी हो जाते हैं, उनका मन तो कपटी है, शरीर पर सज्जनों के चिन्ह हैं वे सभी को अपने समान बनाना चाहते हैं।

चौ०—तेहि के बचन मानि विश्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिंबर व्याली॥
कहहु कवन सुख असबरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ॥
पंच कहें सिव सती विवाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही॥

उनके वचनों पर विश्वास मानकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेष वाला, नर कपालों की माला पहनने वाला, कुलहीन, बिना घरवार का, नंगा और शरीर पर साँपों को लपेटे रहता है ऐसे वर के मिलने से कहो, तुम्हें क्या सुख मिलेगा, तुम उस ठग नारद के बहकावे में आकर खूब भूली, पहले पंचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया था परंतु उसे त्यागकर मरवा डाला।

दोहा—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख माँगि भव खांहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं॥

अब शिव को कोई चिंता नहीं रही, भीख माँगकर खा लेते है। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वाले के घर भी भला क्या कभी स्त्रियाँ टिक सकती हैं?

चौ०—अजहू मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुँ बरुनीक विचारा॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुशीला। गावहिं वेद जातु जश लीला॥
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी॥
असबरु तुम्हहिं दिखाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी॥

अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिये अच्छा वर विचारा है, वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है जिसका यश और लीला वेद गाते हैं, वह दोषों से रहित, सारे सद्गुणों की रासि, लक्ष्मी का स्वामी और वैकुण्ठपुरी का रहने वाला है। मैं ऐसे वर को लाकर तुमसे मिला दूँगा, यह सुनते ही पार्वती जी हँसकर बोलीं।

चौ०—सत्य कहेउ गिरि भव तनु ऐहा। हठ न छूट छुटै वरु देहा॥
कनकउ पुनि पाषान तें होई। जारेहुँ सहज न परिहरि सोई॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

आपने यह सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है, इसलिये हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है सो वह जलाये जाने पर भी अपने स्वभाव-सुवर्णतत्व को नहीं छोड़ता। अत: मैं नारद के वचनों को नहीं छोडूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती, जिसको गुरु के बचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।

दोहा—महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुण धाम।
जेहि कर मनु रमजाहिं सन तेहि तेही सन काम॥

माना कि महादेवजी अवगुणों के भवन हैं और विष्णु समस्त सद्गुणों के धाम हैं, पर जिसका मन जिसमें रम गया उसको तो उसी में काम है।

चौ०—जो तुम्ह मिलतेउ प्रथम मुनीशा। सुनतिहुँ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्म संभु हित हारा। को गुन दूषन करै विचारा॥
जो तुम्हरे हठ हृदय विशेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी॥
तो कौतुकिअन्ह आलस नांही। वर कन्या अनेक जग मांही॥

हे मुनिवर! यदि आप पहले मिलते तो मैं आपका उपदेश सिर माथे पर रख कर सुनती। परंतु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिये हार चुकी, फिर गुण दोषों का विचार कौन करे? यदि आपके हृदय में बहुत ही हठ है और विवाह की बातचीत = बिचौलिया बने बिना रहा ही नहीं जाता तो संसार में वर-कन्या बहुत हैं, खिलवाड़ करने वालों को आलस्य नहीं होता, और कहीं जाकर कीजिये ।

चौ०—जन्म कोटि लगि रगर हमारी। वरउँ शंभु नत रहहुँ कुँवारी॥
तजउँ न नारद करउपदेशू। आपु कहहिं सतवार महेशू॥
मैं पा परउँ कहइ जगदम्बा। तुम्ह गृह गवनहुँ भयऊ विलम्बा॥
वे आषुतोष सर्वत्र सुजाना। द्रवित कबहुँ होइ मम मन माना॥

मेरा तो करोड़ जन्मों तक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजी को बरूँगी नहीं तो कुँवारी ही रहूँगी। स्वयं शिवजी सौ बार कहें तो भी नारद जी के उपदेश को नहीं छोडूँगी। और कहा कि मैं आपके पैरों पड़ती हूँ आप अपने घर जाइये, बहुत देर हो गयी। वे आशुतोष, सर्वज्ञ एवं सुजान हैं, इस सेविका के हृदय को भली भाँति जानते हैं, कभी न कभी तो अवश्य ही द्रवित होंगे।

दोहा—बोली उमा सखी सन, बटु निंदा शिवहि कर और।
ये यहाँ से हटते नहीं, मैं ही जाऊँ दूसरि ठौर॥

उमा ने चुप होते ही देखा, ब्रह्मचारी और कुछ कहने जा रहा है, वह कहता ही क्या—निंदा करता, वे सखी से बोलीं कि ये बटु-ब्रह्मचारी जी तो यहाँ से हट नहीं रहे और शिव की निंदा करेंगे अत: मैं ही हटी जाती हूँ, दूसरी जगह वह शीघ्रता से चल दीं।

चौ०—उमा प्रेम शिव ने जिय जाना। मुग्ध होयँ मन ही मन माना॥
मधुर मनोहर अमृत सानी। सुनी कड़ी से कड़ी उन बानी॥
अब उनसे रहा नहिं गयेऊ। बटु वपु त्यागि निज रूपहिं लयेऊ॥
शीघ्र बढ़े उमा अंकहिं लीन्हीं। मुख फेरि सखी हर्षि हँसि दीन्हीं॥

भगवान शंकर मन ही मन उमा के प्रेम पर मुग्ध हो रहे थे, उमा की कड़ी-कड़ी बातें उन्हें अमृत से भी सनी और अधिक मधुर ज्ञात हो रही थीं। अब उनसे रहा नहीं गया। उसी क्षण ब्रह्मचारी वेष को त्याग वे अपने वास्तविक वेष में आ गये और जल्दी से आगे बढ़कर जाती हुई पार्वती को अंक में ले लिया। सखी हर्ष से मुख फेरकर हँसने लगी।

चौ०—क्रोधित वदन उमा था लालहिं। झट झुक गया लाल वो भालहिं॥
अति संकोच किया निज बानी। प्रभु ने कहा प्रिय! प्रेमहिं जानी॥
निज तपते वशतुव मम कीन्हा। अब मैं बिका तुम्हहिं आधीना॥
पार्वती लज्जा अस कहेऊ। कन्या धन पिता वस रहेऊ॥

उमा का मुख जो क्रोध से लाल हो रहा था अब लज्जा से लाल होकर झुक गया। अपने कड़े शब्दों पर अत्यधिक संकोच हुआ। प्रभु ने कहा प्रिये! मैंने तुम्हारे प्रेम को जान लिया, तुमने अपनी तपस्या के मूल्य से मुझे खरीद लिया, अब मैं तुम्हारे हाथों बिककर तुम्हारे अधीन हुआ। अन्तर के इस उल्लास को जो इन शब्दों से उत्पन्न हुआ था दबाकर पार्वती जी संकोच एवं लज्जा से भरे धीरे स्वर से बोली "कन्या पिता का धन होती है।"

दोहा—मुझे पिता से माँगिये, देवें अति हर्षाय।
'एवमस्तु' छोड़ी उमा, शिव अन्तर्हित हो जाय॥1॥

पिता जिसे दे दें वह उसी की है, अत: आप पिता से ही मुझे माँगें, वे ही हर्षित होकर आपको दें। अंक से उमा को छोड़ते हुए भगवान शंकर हँसकर 'एवमस्तु' कहा और वहीं अन्तर्हित हो गये।

दोहा—शिव लौटे कैलाश पहँ, आइ कियो सप्त ऋषि ध्यान।
स्मरण करते हि आयेहु, व्योमहिं ऋषी महान॥2॥

शंकर भगवान कैलाश लौट आये, आकर उन्होंने सात ऋषियों का स्मरण किया, वे लोग स्मरण करते ही व्योम मार्ग से झट आ गये।

प्रभु को प्रणाम करके, स्तुति करने के अनन्तर उन्होंने कुछ सेवा की आज्ञा

चाही। प्रभु बोले-परोपकार के लिये अपनी स्थिति से नीचे आना ही श्लाघ्य है। देवताओं के आग्रह से उनको तारकासुर से त्राण दिलाने के लिये विवाह करना चाहता हूँ, आप लोग हिमालय के घर जावें **"तुरतहिं शिव गिरि भवन पठाये"** और उनकी कन्या को मेरे लिये माँगें, हाँ, वह लड़की अभी तपस्या के आश्रम में होगी पिता को भेज कर उसे बुलवा लें।

दोहा—हियँ हरषे शिव बचन सुनि, देखि प्रीति विश्वास॥
चले शंकरहिं नाँय सिर, गये हिमाचल पास॥3॥

शिवजी के वचन सुनकर और उनका प्रेम और विश्वास देखकर ऋषी लोग हृदय में बड़े प्रसन्न हुए। ऋषियों ने इस सेवा के लिये अपने को धन्य समझा। आज्ञा लेकर प्रणाम कर सिर नवाकर चल दिये और व्योम मार्ग से हिमाचल के यहाँ पहुँचे।

चौ०—सबु प्रसंग गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुःख माना॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुख माना॥
हृदय विचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिये बुलाई॥
सुदिन सुनखतु सुधारी सोचाई। वेगि वेद विधि लगन धराई॥

ऋषियों ने पर्वतराज हिमालय को सब हाल सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर हिमालय बहुत दुःखी हुए। फिर मुनियों ने रति के वरदान एवं शिवजी द्वारा उनकी कन्या की माँग की बात कही, उसे सुनकर हिमवान ने बहुत सुख माना। शिवजी के प्रभाव को मन में विचार कर हिमालय ने श्रेष्ठ मुनियों को आदरपूर्वक बुलवा लिया और उनसे कहा पार्वती के विवाह के लिये शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी शोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कर लिखवा लिया।

चौ०—पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्हीं। गहि पद विनय हिमाचल कीन्हीं॥
जाइ विधिहि तिन दीन्हीं सोपाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती॥
लग्न बाँचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलश दसहुँ दिशि साजे॥

फिर हिमाचल ने वह लग्न पत्रिका सप्तऋषियों को दे दी और चरण पकड़कर उनसे विनती की। उन्होंने जाकर वह लग्न पत्रिका ब्रह्माजी को दी, उससे पढ़ते समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था। ब्रह्माजी ने लग्न पढ़कर सबको सुनाया। उसे सुनकर सब मुनि और देवताओं का सारा समाज हर्षित हो गया। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओं में मंगल-कलश सजा दिये गये।

दोहा—लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विधान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान॥

सब देवता अपने भाँति-भाँति के वाहन और विमान सजाने लगे, कल्याण प्रदमंगल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गान करने लगीं।

चौ०—सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे व्याला। तन विभूति पट केहरि छाला॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। अशिव बेष सिव धाम कृपाला॥

शिवजी के गण शिवजी का श्रृंगार करने लगे। जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर साँपों का मौर सजाया गया। शिवजी ने साँपों के ही कुण्डल और कंकड़ पहिने, शरीर पर विभूति रमाई और वस्त्र की जगह वाघम्बर लपेट लिया। शिवजी के सुन्दर मस्तक पर चन्द्रमा सिर पर गंगाजी, तीन नेत्र, सर्पों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नर-मुण्डों की माला थी। इस प्रकार उनका वेष अशुभ होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं।

चौ०—कर त्रिशूल अरु डमरू विराजा। चले वसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि शिवहिं सुनत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥
विष्णु विरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि-चढ़ि वाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलहिं अनुरूपा॥

एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू शोभित है। शिवजी बैल पर चढ़कर चले, बाले बज रहे हैं, शिवजी को देखकर देवांगनाएँ मुस्करा रही हैं और कहती हैं कि इस वर के योग्य दुलहिन संसार में नहीं मिलेगी। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर चले, देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम = परम सुन्दर था, पर दूल्हे के योग्य बारात न थी।

दोहा—विष्णु कहा अस विहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
विलग-विलग होइ चलहु सब निज-निज सहित समाज॥

तब विष्णु भगवान ने सब दिक्पालों को बुलाकर हँसकर कहा-सब लोग अपने-अपने दल सहित अलग-अलग होकर चलें।

चौ०—वर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुरजाई॥
विष्नु वचन सुनि सुर मुसकाने। निज-निज सेन सहित बिलगाने॥
मन ही मन महेश मुसुकाहीं। हरि के विंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

हे भाई! हम लोगों की यह बरात वर के योग्य नहीं है क्या पराये नगर में जाकर हँसी कराओगे? विष्णु भगवान की बात सुनकर देवता मुस्कराये और वे अपनी-अपनी सेना सहित अलग हो गये, महादेव जी यह देखकर मन ही मन मुस्कराते हैं कि विष्णु भगवान के व्यंग्य-वचन = दिल्लगी नहीं छूटती, अपने प्यारे

इष्ट भगवान के इन अतिप्रिय बचनों को सुन उन्होंने भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुलवा लिया।

चौ०—शिव अनुसासन सुनि सब आये। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाये॥
नाना वाहन नाना भेषा। बिहंसे शिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन विपुल मुख काऊ। बिनु पद कर कोऊ बहु पद बाहू॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना॥

शिवजी की आज्ञा सुनते ही सब चले आये हैं और उन्होंने स्वामी के चरणों में सिर नवाया, तरह-तरी की सवारियाँ और तरह-तरह के वेष वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हँसे। कोई बिना मुख का है किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है, तो किसी के कई हाथ-पैर हैं किसी के बहुत आँखें हैं तो किसी के एक भी आँख नहीं है, कोई बहुत मोटा ताजा है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है, कोई पवित्र कोई अपवित्र वेषधारण किये हुए है। भयंकर गहने पहने हाथ में कपाल लिये है, और सब के सब शरीर में ताजा खून लपेटे हैं। गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुँह हैं। गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने ? बहुत प्रकार के भूत, प्रेत, पिशाच और योगिनियों की जमातें हैं, उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सोरठा—नाँचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति विपरीत बोलहिं बचन विचित्र विधि॥

भूत प्रेत नाचते और गाते हैं वे सब बड़े मौजी हैं, देखने में बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं बड़े विचित्र ढंग से बोलते हैं।

चौ०—जस दूहहि तस बनी बराता। कौतुक विविध होंय मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति विचित्र नहिं जाइ बखाना॥

जैसा दूल्हा है अब वैसी ही बरात बन गई है, मार्ग में चलते हुए भाँति-भाँति के कौतुक होते जाते हैं। इधर हिमालय ने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जगत में छोटे-बड़े पर्वत थे, जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, हिमाचल ने सबको न्योंता भेजा।

चौ०—काम रूप सुन्दर तन धारी। सहित समाज सहित वर नारी॥
गये सकल तुहिना चल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥
प्रथमहि गिरि बहुगृह सँवराये। जथाजोग तहँ-तहँ सब छाए॥
पुर शोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु विरंचि निपुताई॥

वे सब अपने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सुन्दर शरीर धारण कर सुंदरी स्त्रियों और समाजों के साथ हिमाचल के घर गये, सभी स्नेह सहित मंगल गीत गाते हैं। हिमाचल ने पहले से ही बहुत से घर सजवा रखे थे। यथायोग्य अनुकूल स्थानों

में सब लोग उतर गये। नगर की सुंदर शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना चातुरी भी तुच्छ लगती थी।

दोहा—जगदम्बा जहँ अवतरी, सोपुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि सम्पति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥

जिस घर में स्वयं जगदम्बा ने अवतार लिया क्या उसका वर्णन हो सकता है? वहाँ ऋद्धि-सिद्धि सम्पत्ति और सुख नितनये बढ़ते जाते हैं।

चौ०—नगर निकट बरात सुनि आई। पुरू खर भरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव साजि वाहन नाना। लेन चले सादर अगवाना॥
लै अगवान बरातहिं आये। दिए सबहि जनवासु सुहाये॥
मैंना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥

बरात को नगर के निकट आई सुनकर नगर में चहल-पहल मच गई, अगवानी करने वाले लोग बनाव-श्रृंगार करके नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर आदर सहित बरात को लेने चले और बरात को लिवा लाये, उन्होंने सबके सुंदर जनवासे ठहरने को दिये। पार्वती की माता मैंना ने शुभ आरती सजाई, उनके साथ की स्त्रियाँ उत्तम मंगल गीत गाने लगीं।

चौ०—कंचन थार सोहबर पानी। परिछन चली हरहिं हरषानी॥
विकट वेष रुद्धहिं जब देखा। अवलन्ह उर भय भयउ विशेषा॥
भागि भवन पेंठी अति त्रासा। गये महेश जहाँ जनवासा॥
मैंना हृदय भयउ दुःख भारी। लीन्हीं बोलि गिरीश कुमारी॥

सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभित है, इस प्रकार मैंना हर्ष के साथ शिवजी का परिछन करने चलीं। जब उन्होंने महादेव जी को भयानक वेष में देखा, तब तो स्त्रियों के मन में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया। बहुत डर के मारे भाग करके घर में घुस गयीं और शिवजी जहाँ जनवासा था वहाँ चले गये। मैंना के हृदय में बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने पार्वती को अपने पास बुला लिया।

चौ०—अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे वारी॥
जोहि विधि तुमहिं रूप अस दीन्हा। तेहि जड़बरू वाउस अस कीन्हा॥

और अत्यन्त स्नेह से गोद में बैठाकर अपने नीलकामल के समान नेत्रों में आँसू भरकर कहा जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया, जो फल वृक्ष में लगना चाहिए वह जबरदस्ती बबूल में लग रहा है। **"तुम सहित गिरिते गिरौ पावक जरौ जल निधि महुँ परौं। घरु जाउ अपयशु होइ जग जीवत विवाह ना हौ करौ॥"** मैं तुम्हें लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँगी, आग में जल जाऊँगी, समुद्र में डूब पड़ूँगी, चाहे घर उजड़ जाय और संसार भर में अपकीर्ति फैल जाय, पर जीते जी मैं इस वावले वर से तुम्हारा विवाह न करूँगी।

दोहा—भई विकल अबला सकल, दुःखित देखि गिरि नारि।
करि विलाप रोदति बदति, सुता सनेह सभारि॥

हिमाचल की स्त्री मैंना को दुःखी देखकर सभी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं, मैंना अपनी कन्या के स्नेह को याद करके बिलाप करती, रोतीं और कहती थीं।

चौ०—नारद कर मैं कहा विगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेश उमहिं जिन्ह दीन्हा। बौरे वरहिं लागि तपु कीन्हा॥
सांचेहुँ उनके मोह न माया। उदासीन धनु धाम न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझकि जान प्रसव कै पीरा॥

मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था जिन्होंने मेरा बसा हुआ घर उजाड़ दिया और जिन्होंने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वर के लिये तप किया। सचमुच उनके न किसी का मोह है, न माया, न उनके धन है न घर और न स्त्री ही है वे सबसे उदासीन हैं इसी से वे दूसरे का घर उजाड़ने वाले हैं उन्हें न किसी की लाज है न डर है, भला बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा को क्या जाने?

चौ०—जननिहि विकल बिलोकि भवानी। बोली जुत विवेक मृदु बानी॥
अस विचार सोचहिं मति माता। सो न टरै जो रचहिं विधाता॥
करम लिखा जौ बाउर नाहू। तौ कत दोष लगाइअ काहू॥
तुमसन मिटहिं कि विधि के अंका। मातु व्यर्थ जनु लेहु कलंका॥

माता को विकल देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोलीं-हे माता! जो विधाता रच देते हैं वह टल नहीं सकता, ऐसा विचार कर तुम सोच मत करो, जो मेरे भाग्य में बाबला ही पति लिखा है तो किसी को दोष क्यों लगाया जाय? हे माता! क्या विधाता के अंक तुमसे मिट सकते हैं? वृथा कलंक का टीका मत लो, रोना छोड़ो, यह अवसर विशाद करने का नहीं है—

"दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पावहुँ तहीं" मेरे भाग्य में जो दुःख-सुख लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं पाऊँगी।

दोहा—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिन गिरि गवने तुरत निकेत॥

इस समाचार को सुनते ही हिमाचल उसी समय नारद जी और सप्तर्षियों को साथ लेकर घर में गये।

चौ०—तब नारद सब ही समुझावा। पूरव कथा प्रसंग सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदम्बा तब सुता भवानी॥
अजा अनादि शक्ति अविनासित। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीजा वपु धारिनि॥

तब नारदजी ने पूर्वजन्म की कथा सुनाकर सबको समझाया कि हे मैना, तुम

मेरी सच्ची बात सुनो, तुम्हारी यह लड़की साक्षात् जगज्जननी है, ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति है, सदा शिवजी के अर्धांग में रहती है। ये जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं। और अपनी इच्छा से ही लीला-शरीर धारण करती हैं।

कवित्त—"बाबरी तू बाबरो बतावै शिवशंकर को,
किंकर हैं जाके देव सेवत सुरेश हैं।
महिमा बखानैं नेति-नेति कर मानें,
भेद वेदहू न जानें गुन गावत रमेश हैं।।
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप,
पति भाव तिनही में ताते धरत हमेस है।
सबके सुपासी आपु रहत उदासी,
भुक्ति-मुक्ति जहँ दासी ऐसे मालिक महेश हैं।।

दोहा—सुनि नारद के बचन तब, सबकर मिटा विषाद।
छन महँ व्यापेउ सकल पुर, घर-घर यह सम्वाद।।

तब नारद के बचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षण भर में यह समाचार सारे नगर में घर-घर फैल गया।

चौ०—ऋषी देवतन्ह शिव सन कहेऊ। प्रभु यहाँ लीला तजि रहेऊ।।
तंग क्यों करो मात गिरि जायेउ। व्याकुलता अबला मरि जायेउ।।
विष्णु प्रेम मय रोषहिं कहेऊ। प्रलहि प्रलय तुम सूझत रहेऊ।।
प्रलय देव यहाँ शान्ति रमाओ। काम न अक्खड़पन से चलाओ।।

ऋषियों एवं देवताओं ने जाकर शिव से कहा—"प्रभो! यहाँ तो अपनी लीला रहने दो, क्यों बेचारी पार्वती की माता को तंग करते हो, वह अबला व्याकुलता से मरी जा रही है, शंकरजी हँस पड़े, तब विष्णु भगवान ने प्रेममय रोष के स्वर में शिवजी से कहा—"आपको तो बस प्रलय ही प्रलय सूझती है, सृष्टि और रक्षा में तो हमें श्रम करना पड़ता है—प्रलय के देवता! यहाँ शांत रहना होगा, यहाँ अल्हड़पन से काम नहीं चलेगा। अतः भगवान विष्णु ने तथा ऋषियों ने शिव से बचन ले लिया कि यहाँ अपने त्रिभुवन मनोहर बेथ के अतिरिक्त शिवजी और कोई भी रूप किसी को भी न दिखायेंगे।

चौ०—तबहिं सर्प शिव भये मणि माला। मुण्ड स्वर्ण रतन भये हाला।।
चिता भस्म चंदन होइ जाई। गजहिं चर्म दुकूल बनि ताई।।
भूतादि प्रेतगण सुन्दर भयेऊ। मनोहर सकल वस्तु है गयेऊ।।
भयंकर बदन कांतिमय होई। लखि शिव हर्षि भये सब कोई।।

तब ही शिवजी के जो सर्प लपेटे थे वे सभी मणिमाला में बदल गये, मुण्ड

स्वर्ण रत्नों में बदल गये, गज चर्म दुकूल तथा चिताभस्म चंदन हो गयी। भूत-प्रेतादि गणों के रूप भी परम सुन्दर हो गये, शिव ने जितनी वस्तुएँ धारण कर रखी थीं सभी मनोहर बन गईं, उनका भयंकर वेष अति सुन्दर मनमोहन बन गया, विश्व का समस्त सौंदर्य एकत्र होकर शिवमूर्तिमान हो गये। ऐसा वेष देख सब ही हर्ष से झूम उठे।

दोहा—डरते-डरते मातु लयो, परिछन थाल उठाय।
स्वयं आत्म विस्मृत भई लखि वर अति हर्षाय॥

डरते-डरते माता ने परिछन का थाल उठाया, दूर से ही पहले पीछे भागने को स्थान देखकर तब सबने आगे वर की ओर झाँका, दृष्टि वहीं रुक गई, माता स्वयं मुग्ध होकर आत्मविस्मृत हो गयीं, ओह! इतना सौंदर्य, हर्ष और आनंद से फूल उठी।

चौ०—लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूप सास्त्र जस कछु व्यवहारा॥
सो जेवनारि कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहि मातु भवानी॥

नगर में मंगल गीत गाये जाने लगे और सबने भाँति-भाँति के सुवर्ण के कलश सजाये। पाकशास्त्र में जैसी रीति है उसके अनुसार अनेक भाँति की ज्योनार = रसोई बनी। जिस घर में स्वयं माता भवानी रहती हों वहाँ की भोजन सामिग्री का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

बड़े उत्साह से विवाह कार्य सम्पन्न हुआ स्वयं ब्रह्माजी वर के पिता और वृहस्पति जी गुरु पुरोहित थे। विष्णु भगवान ही प्रधान एवं सर्वे सर्वा थे। गिरिराज ने मुक्तहस्त से मणि-माणिक लुटाये। जगत्पिता ने जगदम्बा का पाणिग्रहण किया। दहेज की तो कोई गणना ही नहीं कि हिमवन्त ने कितना दिया। मणियों के पर्वत लगा दिये। विवाह हो जाने पर बड़ी दीनता से कहा "प्रभो! आप विश्व के अधीश्वर हैं, यह जड़ आपको दे ही क्या सकता है, मेरी यह प्राण प्यारी पुत्री है इसे श्री चरणों की सेविका करें।"

दोहा—नाथ उमा मम प्रान सम, गृह किंकरी करेहु।
छमेउ सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न वर देहु॥

इसके सब अपराधों को क्षमा करते रहियेगा, अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिये।

चौ०—जननी उमा बोलि तब लीन्हीं। लैं उछंग सुंदर सिख दीन्हीं॥
करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धर्म पति देव न दूजा॥
पुनि पुनि मिलति परति गृह चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन मिलि भेंट भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बैठाकर यह सुन्दर सीख दी—हे पार्वती! तू सदा शिवजी के चरणों की पूजा करना, नारियों का यही धर्म है

उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। मैना बार-बार मिलती है और पार्वती के चरणों को पकड़ कर गिर पड़ती है बड़ा ही प्रेम है कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। भवानी सब स्त्रियों से मिल भेंट कर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं। तब माता ने उनको धीरज धर विदा किया।

प्रभु शिव शंकरजी ने श्वसुर को शांत किया, धूमधाम से बरात विदा हुई। कैलाश तक आकर सब देवता प्रभु को प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकप अपने-अपने धाम को गये। *(मानस मणि मई, जून, जौलाई, सन् 66, से)*

सवैया—भूति विभूषन देइ विभूति कियो, तिहुँलोक विभूसन दीनो।
आपु हलाहल पान कियो, तब पाय पियूष भये सुर पीनो॥
व्याल कराल धरे गज खाल, कंगालन देत पटंम्बर झीनो।
बैल चढ़यो गजराज चढ़ावत, जाचक को सजि साज नवीनो॥

॥ जै शिव शंकर पार्वती ॥



(5) कुमारोत्पत्ति

श्लोक—"आपूर्यमाणमचलं प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रवशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामायं प्रविशान्तिं सर्वे स शांति माप्नोति न काम-कामी॥"

"पूर्णतः भरे हुए, अविचल, प्रतिष्ठ (अपने में ही संतुष्ट) समुद्र में जैसे जल में प्रवेश करता है, वैसे ही (निरपेक्षभाव से) जिसमें समस्त कामनाएँ (स्वतः) प्रविष्ट होती हैं, वही शांति प्राप्त करता है, कामनाओं का चाहने वाला नहीं।"

जिनके चरणों की रज को प्राप्त करके, जिनकी कृपा कोर मात्र से लोग वासनाओं के जल को तोड़ फेंकने में समर्थ होते हैं, कामनाओं के दुस्तर महासागर से पार हो जाते हैं, उनके समीप क्या वासना जा सकती हैं? परलोक का शिक्षणार्थ इच्छा रहित होते हुए भी कर्मों में प्रवृत्त होकर उनके द्वारा संसार का रक्षण करना यही उनकी (शिवकी) महत्ता है।

कर्मों को त्यागकर विषयों से दूर रहकर उनमें आसक्त न होना कोई मूल्य नहीं रखता। विषयों के अकस्मात उपस्थित हो जाने पर पतन का भय तो लगा ही रहता है। पर विषयों की सन्निधि में रहते हुए, उनमें व्यवहार करते हुए भी उनमें निरपेक्ष रहना, उनमें आसक्त न होना यही सच्चा 'मनोजय' है। सावधान! साधक कहीं अभिमान में पड़कर अपने आत्मजय की परीक्षा न करने लगे। निश्चय ही वे अपने स्थान से गिर जावेंगे। यह तो अत्यन्त उच्चकोटि के महापुरुषों की स्थिति है। हमें धृष्टतावश अग्नि में हाथ नहीं डालना चाहिए।

भगवान शंकर विवाह करके पार्वती जी के साथ कैलाश पर आये। जिसने पल भर में काम को भस्म कर दिया था, उसी ने संसार के कल्याण के लिये उसे स्वीकार किया। विवाह का सर्वप्रधान उद्देश्य तारका का वध था। उसके लिये आवश्यक था कि पुत्रोत्पादन हो। अत: कामारि विषयों से परे होने पर भी गृहस्थ धर्म के पालन में तत्पर हुए। यह शिक्षा भी दी कि विवाह का एकमात्र उद्देश्य पुत्रोत्पादन है, विषय भोग नहीं।

उर्ध्वरिता का ग्रार्हस्थ्य भी क्या? अन्तत: अग्निदेव को कपोत बनकर देवताओं की ओर से आकर शिवजी को स्मरण दिलाना पड़ा कि—प्रभो! आपके द्वारा उत्पन्न हुए पुत्र से ही देवताओं की रक्षा हो सकती है। देवता बहुत पीड़ित हैं, अतएव कृपादृष्टि शीघ्र ही होना चाहिए। प्रभु की तो इच्छा ही सब कुछ है। 'एवमस्तु' कहकर उन्होंने अपने तेज का विसर्जन किया। माता पार्वती मूर्च्छित हो गईं जो उस असह्य तेजोमय प्रभु के रेतस् को धारण करने में सफल न हुईं। प्रभु ने प्रेम से अंक में लेकर उन्हें चैतन्य किया।

भगवती उमा से अग्नि ने उस तेज को ले लिया, पर वह जहाँ भी जाता था वहाँ इतना प्रखर था कि धारण करने वाला जलने लगता था, असमर्थ होकर अग्नि ने उसे गंगा को दिया, गंगाजी भी जब असमर्थ हुईं तो उसे दिशाओं को दिया, दिशाओं ने मातृकाओं को और मातृकाओं ने जब स्वयं असमर्थ होने पर धारण करने वाला न देखा तो उसे सरकण्डों के मध्य में छोड़ दिया।

कहीं भी पड़े, अमोघ रेताओं का वीर्य व्यर्थ थोड़े ही जाता है, उन सरकण्डों के मध्य में ही उससे अत्यन्त सुन्दर एक कुमार उत्पन्न हुआ, कुमार के तेज से दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। दोड़कर माता पार्वती ने बच्चे को उठाकर गोद में ले लिया। इधर सभी माताएँ आ गयीं। (1) पार्वती, (2) अग्नि, (3) गंगा, (4) दिशाएँ, (5) मातृकाएँ, और (6) सरकण्डों की अधिष्ठातृ देवी, सभी का पुत्र पर मातृभाव था। सभी को कुमार को पुत्र कहने का अधिकार था, सब उसे अपना दूध पिलाना चाहती थीं।

"पिता ही पुत्र के रूप में प्रकट होता है यह शास्त्र सिद्धान्त है। वह कुमार था तो भगवान शंकर का ही पुत्र। पिता की शक्ति और प्रभा उसमें विद्यमान थे। माताओं को पीड़ा न हो, खेद न हो, इसलिये उस कुमार शिशु ने इच्छा मात्र से अपने छ: मुख बना लिये, एक साथ ही समस्त छ: माताओं का दुग्धपान करके उन्हें सन्तष्ट किया। अत: कुमार षटमुख हो गये। प्रभावशालियों के लिये कुछ भी कठिन नहीं होता।

चौ०—कुमार युवाभये थोड़े समया। शंकर नाम रखा कार्तिकेइया॥

थोड़े ही समय में कुमार जिसका नाम शंकर भगवान ने कार्तिकेय रख दिया था। युवा हो गये। देवताओं ने आकर विश्वनाथ से उन्हें अपने सेनापति के पद पर

अभिषिक्त करने के लिये माँगा। भगवान शिवकी पुत्रोत्पत्ति का तो यह उद्देश्य ही था। पुत्र प्यार करने के लिये नहीं उत्पन्न किया जाता वह तो लोक कल्याण करने के लिये उत्पन्न किया जाता है, प्रभु शिव ने सहर्ष अनुमति दे दी ।

सच्ची माता तो वही है जो देश, जाति, धर्म, राष्ट्र और शरणागत की रक्षा के लिये अपने हाथों से पुत्र को सजाकर युद्ध में भेजती है स्वयं प्रोत्साहित करती है, बलि वेदी पर हँसते-हँसते चढ़ जाने के लिये। कायर पुत्र हो तो भी उसमें बलिदान की भावना का संचार करती है।

दोहा— रण सज्जाते सजा दिया, सुत पार्वती निज हाथ।
देववृन्द पीड़ित शरण, कर रक्षा जाउ उन साथ॥1॥
रक्षहु आर्त शरणागतहिं, यही तुम्हारा धर्म।
धैर्य और निज तेज से, दल मल शत्रु कर्म॥2॥
मंगलमय हो मार्ग ये, स्मरण रखो संदेश।
हनो शत्रु या रण शैया पीठ दिखाइन आओ देश॥3॥

माता पार्वती ने अपने हाथों पुत्र को रण-सज्जा से सजाया, उसे विदा करते हुए कहा, "बेटा! ये देववृन्द पीड़ित होकर तुम्हारी शरण आये हैं। इन आर्त शणागतों की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। जाओ! इनके साथ! अपने धैर्य और तेज से शत्रु को दलमल कर यमपुर भेज दो, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। माता के इस संदेश को स्मरण रखना कि या तो शत्रु को जीतकर जय श्री पाना, या युद्ध में सन्मुख लड़ते हुए वीरों की भाँति रणशैया ले लेना। पीठ दिखाकर फिर मेरे यहाँ मुख दिखलाने मत आना।

जिस पुत्र को माता से ऐसे संदेश मिले हों, क्या भय उसके सम्मुख फटक सकता है? क्या मृत्यु में इतनी शक्ति है जो उसे विचलित कर सके? कोनसी शक्ति है जो उसके सम्मुख टिक सके। मातृ-संदेशों से उत्साहित होकर जब उस वीर के हाथ विद्युत की भाँति तड़पते हुए पड़ेंगे तो कौन सा शत्रु उसके सम्मुख ठहर सकेगा। माता ही पुत्र के जीवन के सुधार या पतन की उत्तरादायी है, वीर माताओं के पुत्र वीर न हों, यह कभी सम्भव नहीं।

देवताओं ने कुमार कार्तिकेय को सेनापति बनाकर स्वर्ग पर जो तारक के अधिकार में इस समय था चढ़ाई कर दी। दैत्य भी प्रबल थे वे भी आगे आये, बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अपनी बुद्धि कौशल से असुर सेना छिन्न-भिन्न हो रही थी, उनकी सेना में भगदड़ मच गई, स्वयं तारक अन्त में युद्ध में आया और छल से, माया से, शस्त्र कौशल से तारक ने कुमार को पराजित करना चाहा पर अंत में कुमार के वणों के द्वारा हत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

विजय दुंदभी बजने लगी, देवता हर्ष से सेनापति की जय बोलने लगे, बचे हुए असुर प्राण बचा पाताल में प्रविष्ट हो गये। आनंद से देवताओं ने स्वर्ग में प्रवेश

किया, उन्हें उनका स्थान, सम्पत्ति आदि सब कुछ मिल गयी। यही भाँति विजयोत्सव मनाया गया है और सदैव के लिये देव सेना के सेनापति पर कार्तिकेय जी को उस पद पर नियुक्त कर दिया।

देवताओं के साथ कुमार माता-पिता के दर्शन करने कैलाश पधारे। चरणों में प्रणाम करते हुए पुत्र को माता ने उठाकर गोद में ले लिया। विजयी पुत्र को पाकर माता कितनी आनन्दित हुई, यह वर्णन की बात नहीं। पुत्र चाहे जो भी हो जावे, चाहे जितना भी बड़ा हो जावे, माता के लिये वह बच्चा ही है। गोद में लेकर उसका मुख पोंछते हुए पुत्र के एक-एक अंग को माता पार्वती देख रही थीं कि उसे युद्ध में कहीं चोट तो नहीं लगी। वह तारक से पराक्रमी दैत्य के वधकर्ता, देवताओं के सेनापति होंगे औरों के लिये, माँ के लिये तो अभी बच्चे ही हैं। (मानसमणि सन् 1966 अगस्त माह से)

(द्वितीय सोपान समाप्त)

(जै-जै कार्तिकेय स्वामी)



श्री शिव कथा सार

तृतीय सोपान

❋ मंगलाचरण ❋

श्लोक—(1) "नमः शिवाय साम्बाय ससुतायादिहेतवे।
पञ्चावरण रूपेण प्रपञ्चेनावृताय ते ॥1॥"

जो पंचावरण रूपी प्रपच्च से घिरे हुए हैं और सबके आदिकारण हैं, उन आप पुत्र सहित साम्ब सदाशिव को मेरा नमस्कार है।

(2) "प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिव भाविता।
शिवयो शासनादेता मंगलं प्रदिशन्तु मे ॥2॥"

प्रभा, सरस्वती, गौरी तथा शिव के प्रति भक्तिभाव रखने वाली लक्ष्मी ये शिव और शिवा के आदेश से मेरा मंगल करें।

(3) "त्रिशूलमथ वज्रं तथा परशुसायकौ।
खंग पाशं कुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः ॥3॥"

त्रिशूल, वज्र, परशु, वाण, खंग, पाश, अंकुश और श्रेष्ठ आयुध पिनाक—ये महादेव तथा महादेवी के दिव्य आयुध शिव और शिवा की आज्ञा का नित्य सत्कार करते हुए सदा मेरी रक्षा करें।

(4) "श्री राघवं दशरथात्मजमप्रमेयं सीतापतिं रघुकुलान्यरत्न दीपम्।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥4॥"

श्री दशरथनन्दन अप्रमेय, सीतापति, रघुकुलरनृदीप, प्रलम्ब वाहु, कमलदल लोचन (आभ्यन्तर) निशाचर विनाशक, राघवेन्द्र श्री राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

(5) "पारावार पयोविशोषण कला पारीण कालानल-
ज्वाला जाल विहार हारी विशिख व्यापार घोरत्क्रमः।
सर्वावस्थसकृत्प्रपन्नजनता संरक्षणैकव्रती,
धर्मो विग्रहवान धर्मविरतिं धन्वी सतन्वीतनः ॥5॥

अपार अम्बोधि विशेषण पदु, ज्वल्ज्वाला प्रलयानल प्रचण्डविशिख-विहार-घोर पराक्रम, एक बार भी शरण आये जन की सर्वदा, सर्वावस्था में संरक्षण का व्रत धारण करने वाले मूर्तिमान धर्म स्वरूप धनुर्धर श्री रामजी हमारे अधर्म-अन्तःकलुष का नाश करें।



(6) श्री गंगावतरण

श्लोक—"गंगाधृता न भवता शिव पावनीति
नास्वादितो मधुर इत्यपि कालकूटः।
त्रैलोक्य रक्षणकता भवता दयालो
कर्म द्वयं कलितमेतदनन्य साध्यम्॥"

"हे प्रभो! शिवजी! आपने 'यह पवित्र है' ऐसा समझ कर गंगा को धारण नहीं किया और मीठा समझकर कालकूट को भी नहीं खाया। हे दयालो! ये दोनों सुन्दर कर्म जो किसी दूसरे से नहीं हो सकते थे, आपने त्रिलोकी की रक्षा के लिये किये।"

भगवान विष्णु ने वामन वेष रखकर बलि से तीन पद भूमि की याचना की। दैत्यपति ने जानबूझकर भी कि इस दान का क्या परिणाम होगा, अपने वचन से हटना कायरता समझा और अभीष्ट दान का संकल्प गुरु के रोकने पर भी कर दिया। इसका नाम है 'दान'। जीवन तक के उत्सर्ग को इसी से आज 'बलिदान' कहते हैं। बलि के दान का इतना महत्व है।

चौ०—बावन ते विराट भये ईशा। एक पद भू नापी जगदीशा॥
दूसरे पद स्वर्गादिप लोका। स्थान नहीं तीसर पदरोपा॥
निज शरीर बलि आगे करेऊ। प्रभु तीसर पग ऐहि पर धरेऊ॥
बाँधा तेहि भेजा पाताला। स्वयं द्वार पाल बनेहु कृपाला॥

भगवान वावन से विराट हो गये, एक पद में जगदीश ने सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरे समस्त स्वर्गादिक लोक तक नाप लिये, पर तीसरे पद को रोकने के लिये कोई स्थान नहीं था, बलि भी बचन का सच्चा निकला, उसने तीसरे पद के लिये अपना शरीर आगे कर दिया। प्रभु ने उसे बाँधकर पाताल भेज दिया, याा स्वयं उसके हाथों उसके प्रेम पाश में बँधकर उसके पाताल के द्वारपाल बनने चले गये कृपालु भगवान। इस कृत से इन्द्र को उनका अपहृत स्वर्ग मिला।

लोग कहते हैं, भगवान ने बलि के साथ अन्याय किया। पर उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि भगवान विष्णु स्थिति के अधीश्वर हैं। संसार और उसकी व्यवस्थाओं को स्थित रखना ही उनका कार्य है। ऐसी स्थिति में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला, व्यवस्था में अनियमित हाथ डालने वाला निश्चित ही अपराधी होगा। चाहे वो जितना भी अच्छा हो पर व्यवस्था में हाथ डाले तो वह दण्डनीय हो ही गया।

चौ०—विराट रूप त्रिभुवन हरि आपा। पहुँचा ब्रह्मलोक चरणाया॥
कमण्डल जल झट ब्रह्मा लीयो। अग्रचरण नख धोइ धरिलीयो॥
चेतन का चेतन सब होवा। प्रभु सम्बन्ध विधि पग धोवा॥
प्रभु का वह चरणामृत चंगा। वाको ही नाम भयो श्री गंगा॥

जब प्रभु अपने विराट रूप से त्रिभुवन को माप रहे थे, तब उनका एक चरण जो स्वर्गादिक लोकों को मापने के लिये बढ़ा और अग्रभाग ब्रह्मलोक तक पहुँचा। झटपट उठकर ब्रह्माजी ने अपने कमण्डल के जल से अपने सम्पूर्ण लोकों को कांति से प्रकाशित करते हुए प्रभु के नख चन्द्रिकाओं युक्त चरण के अग्रभाग को धो लिया। चेतना का सभी कुछ चेतन, उससे जो सम्बन्धित हो वही चेतन। प्रभु का वही चरणामृत ही गंगा हुआ।

दोहा—नित करते पूजा विधि, आरती और प्रणाम।
दर्शन से पावन निजहिं, गंग रह बहु दिन ब्रह्म धाम।

ब्रह्माजी उसकी नित्य आरती, पूजा करते, उसे प्रणाम करते और उनके दर्शन से अपने को पवित्र करते। इस प्रकार बहुत दिनों तक गंगाजी ब्रह्मा के कमण्डल में ब्रह्मलोक में रहीं।

चौ०—अश्वमेध कर सगरहिं राजा। एक सत पूर्ण होहिं तब साजा॥
अंतिम यज्ञ करहिं तेहि जाई। गुप्त रूप इन्द्र बाज चुराई॥
अश्व लेइ पातालहिं जाई। कपिल आश्रमहिं बाध्यों ताई॥
सहसा अश्व अदृश्यहि भयेऊ। रक्षक सेन चौंक तब गयेऊ॥

पृथ्वी पर चक्रवर्ती सम्राट महाराज सगर ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया, वे पूरे एक सौ अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे क्योंकि सौ यज्ञ पूर्ण हो जाने पर इन्द्र पदवी मिल जाती है, निन्यानवे यज्ञ पूरे हो चुके थे इससे इन्द्र घबड़ा गये, अंतिम सौंवे यज्ञ में इन्द्र ने गुप्त रूप से घोड़े का हरण करके उसे ले जाकर पाताल में जहाँ महर्षि कपिल तपस्या कर रहे थे वहाँ बाँध दिया। अश्व के सहसा अदृश्य होने से रक्षक सैनिक चौंके।

चौ०—दौड़ धूप बहु खोजत होई। अश्वन मिला लौटि आये वोई॥
समाचार ये सगर सुनायेहु। महाराज सुनि अति दुःख पायेऊ॥
साठ सहस्र सुत खोजन भेजे। सब भू ढूढ़ि कतहु नहिं हेजे॥
नहिं संदेह हरण करें देवा। हरण असुर अवसकरि लेवा॥

रक्षक सैनिकों ने बहुत दौड़ धूप की, बहुत अन्वेषण किया पर अश्व नहीं मिला, अंत में निराश होकर वे लौट आये। महाराज सगर से उन्होंने सब समाचार कहा, महाराज बड़े दुःख से अपने साठ हजार पुत्रों को अश्व के अन्वेषण की आज्ञा दी, उन्होंने भी सारी पृथ्वी का कोना-कोना छान डाला, पर घोड़ा वहाँ हो तब मिले, लौटकर उन्होंने भी अश्व के न मिलने की बात पिता से आकर कही। महाराज ने कहा कि "यदि अश्व पृथ्वी पर नहीं है तो स्वर्ग के देवता उसे हरण करेंगे यह संदेह तो होता नहीं, निश्चय ही असुरों ने उसे चुराया है।

दोहा—पुनः सुतन्ह आज्ञा दई, भू खोद जाउ पाताल।
ढूँढ़ निकालो अश्व को, लाओ उसे सँभाल॥

पुनः महाराज सगर ने उन लोगों को आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी को खोदकर पाताल में जाओ और वहाँ घोड़े को ढूढ़ों, सँभालकर उसे ले आओ।

राजपुत्र फावड़े लेकर पृथ्वी खोदने लग गये, कोई खोदता कोई मिट्टी फेंकता, वे वहाँ उस दिशा में खोदते जब तक उस दिशा की सीमा पर पृथ्वी के आधारार्थ दिग्पाल न मिल जाते, क्रमशः उत्तर, पश्चिम, दक्षिण के दिग्पालों तक उन्होंने पृथ्वी खोद डाली, वे दिग्पालों को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा करते तब दूसरी दिशा की ओर बढ़ते थे। इस प्रकार वे अंत में पूर्व की ओर चले। उन राजपुत्रों की खोदी हुई भूमि आज समुद्र-सागर के नाम से जलपूर्ण विद्यमान है।

चौ०—पूर्व दिशा खोदते जाहीं। पहुँच कपिल आश्रम कहँ माहीं॥
ध्यान मग्न बैठे मुनि ताहीं। बाँधा अश्व पता उन नांहीं॥
कौन खोद धरणी यहाँ आहीं। नहीं कुछ पता उनहिं मनमांही॥
राजपुत्र घोड़ा तहँ देखा। मनमें उपजा क्रोध विशेषा॥

जो ढूँढ़ता है वह पाता भी है, सगर पुत्र पूर्व दिशा को खोदते चले जा रहे थे, वे उधर बढ़ते-बढ़ते कपिल के आश्रम तक पहुँच गये। महर्षि ध्यानमग्न थे, उन्हें न तो इन्द्र के यहाँ अश्व बाँधे जाने का पता था और न पृथ्वी खोदते हुए उन राजपुत्रों के आने का। घोड़ा उनके समीप ही बँधा था। परिश्रम से थके व्यक्ति को क्रोध बहुत शीघ्र आता है। जहाँ क्रोध आया, वहाँ विचार शक्ति का नाश हो जाता है, इतना श्रम करने पर राजपुत्रों को घोड़ा मिला ऋषी के समीप, अतः उनको विशेष क्रोध हुआ।

चौ०—सोचा अश्व इसी ने चुराया। भय से ऋषि का वेष बनाया॥
समाधी लगाइ बहाना करके। बैठा आय वेष मुनि धरके॥
हाथ फावड़े उन सुत ताँहीं। झपट ऋषी कहँ मारन चाहीं॥
दुर्वचन उनहिं सब कहने लागे। सुना शोर मुनि ध्यान से जागे॥

उन्होंने सोचा "यही घोड़े को चुराने वाला है। घोड़े को चुगकर हमारे भय से ऋषी-वेष बनाकर समाधि का बहाना करके यहाँ आ बैठा है, फिर क्या था "क्रोध पाप कर मूल" हाथ में फावड़े तो थे ही, उन्हें ही लेकर वे दुर्वचन करते हुए ऋषी को मारने झपटे। कोलाहल से ऋषी का ध्यान टूट गया।

दोहा—देखा ऋषि मारन चहैं उर उपजा क्रोध विशेष।
कड़ी भ्रकुटि भस्मी भये, रहीं अस्थियाँ शेष॥

ध्यान के अकस्मात टूटने पर एक तो स्वतः ध्यान तोड़ने वाले पर क्रोध हो आता है, दूसरे महर्षि ने देखा कि ये उद्दण्ड उन्हें मारना चाहते हैं सो विशेष क्रोध से कठोर भृकुटि करते ही उनके तपः तेज से सगर-पुत्रों को वहीं भस्म कर दिया।

केवल वहाँ अस्थियों के समूह रह गये, शेष सब राख हो गया।

चौ०—सुतन्ह लौटि बहु दिन नृप जाने। अंशुमान भेज पता लगाने॥
तेहि मारग नारद मिलि जाहीं। पुत्रन्ह अश्व वृत्तांत बताहीं॥
खोदा मारम पुत्रन्ह कांही। कपिलाश्रम अंशु तेहि जाँही॥
अस्थि समूह चाचन्ह तहँ पेखा। अश्रु भरे नयनन्ह उन देखा॥

महाराज सगर ने देखा कि पुत्रों को गये बहुत दिन हो गये, पर वे लौटे नहीं, उन्होंने अपने निर्वासित पुत्र असमंजस के लड़के अन्शुमान को अपने चाचाओं का पता लगाने को भेजा। अन्शुमान को मार्ग में ही देवर्षि नारद मिल गये और प्रणाम करके पूछ ने पर उन्होंने अन्शुमान को सगर पुत्रों के भस्म होने का वृत्तान्त तथा घोड़े का पता भी बता दिया। राजपुत्रों के द्वारा खोदते हुए मार्ग से कपिलाश्रम में जाकर अन्शुमान ने अपने चाचाओं की अस्थियाँ देखीं, उनके नेत्र अश्रुओं से भर आये।

चौ०—करि प्रणाम विनय मुनि काहीं। भये प्रसन्न सुन मुनि मन मांही॥
अश्व यज्ञ का है ये तुम्हारा। ले जाओ बेटा यज्ञ सँवारा॥
चाचा भस्म भये मम क्रोधा। तेहि उद्धार सुनो ये बोधा॥
गंगा भू पर आवैं जब ही। तेहि जल अस्थि छुवत होइ तबहीं॥

अन्शुमान ने भूमि में पड़कर महर्षि कपिल को प्रणाम किया, उनकी प्रार्थना की, महर्षि बालक पर प्रसन्न हुए। वे बोले—बेटा! यह तुम्हारे पितामह के यज्ञ का अश्व है इसे ले जाकर यज्ञ काज सँवारो अर्थात् सम्पन्न करो। ये जो तुम्हारे चाचा मेरे क्रोध से भस्म हो गये हैं, इनका उद्धार का बोध तुमको सुनाता हूँ, जब गंगा पृथ्वी पर आवें और उनके जल से इनकी अस्थियों का स्पर्श हो तभी इन सबका उद्धार सम्भव है।

दोहा—अन्शू ऋषि हि प्रणाम कर लौटेउ घोड़ा लाय।
यज्ञ सगर पूरन कियो, सुतह नाश सुनि विरति पाय॥

महाराज सगर ने अश्व पाकर यज्ञ पूर्ण किया। पुत्रों का नाश सुनकर उनका चित्त विरक्त हो गया।

चौ०—अन्शुमान कहँ राज्यहि दयेऊ। बनहिं तपस्या करने गयेऊ॥
पितृव्य उद्धार अंशु चितभारी। गंगा हेतु तप मनहिं विचारी॥
सुत दिलीप सोंपेउ सिंहासन। तपहित अंशु चले बनवासन॥
करते तपहिं देह उन पाती। सफल न गंगा भू पर आती॥

अतः सगर महाराज अंशुमान को राज्य देकर वे वन में तपस्या करने चले गये, अंशुमान राजा तो हुए पर उनके चित्त में गंगा को पृथ्वी पर लाकर अपने पितृव्यों के उद्धार करने की लगन दृढ़ता से जमी थी। पुत्र दिलीप के योग्य होते ही उसे राज्य सिंहासन देकर वे गंगा को लाने के लिये तपस्या करने वन को चल पड़े। वे सफल

न हो सके। तपस्या करते-करते ही उनका शरीर पात हो गया ।

जिस बात पर क्षत्रिय अड़ जाये, भला वो होगी कैसे नहीं, सो भी क्षत्री कौन ? सूर्यवंशी। बलिदान का तो उनके लिये कोई मूल्य ही नहीं। जहाँ प्राणेत्सर्ग हो रहा हो, वहाँ विश्व में ऐसा कौन सा कार्य है जो न हो सके।

चौ०—पितु अनुकरण दिलीपहिं कीन्हा। सुत भागीरथ राज्यहिं दीन्हा॥
नहीं सफलता उनको होई। आत्मदान दूसर ये सोई॥
पूर्ण तपस्या तब ही होवै। ममता अहं पूर्ण जिय खोवै॥
अब तक ये दोनों नृप नांही। राज्य कहँ मोह उनहिं जिय माँही॥

दिलीप ने भी पिता का अनुकरण किया। पुत्र भागीरथ को सिंहासन देकर वे भी गंगा के लिये तपस्या करने गये। सफलता तो उन्हें नहीं हुई। गंगा के लिये यह दूसरा आत्म दान था। तपस्या की पूर्णता तो तब होती है जब मनुष्य समस्त संसार के सम्बन्धों को हृदय से निकाल दे। अहंता और ममता से रहित हो जावै। अभी तक ये दोनों राजाओं में यह बात न थी। इसी से वे विफल हुए। उनमें राज्य का मोह था, अत: पुत्र जब राज्य करने योग्य हो गया, तब वे वन में आये, पर भागीरथ का त्याग अपूर्व था।

दोहा—सुना भगीरथ पिताहि जब, तपकर भयो पात शरीर।
राज सचिवन्ह छोड़कर, वन चला स्वयं वो धीर॥

"पिता का तपस्या ाकरते-करते शरीर शांत हो गया" यह सुनते ही उन्होंने राज्यभार तो मंत्रियों पर छोड़ा और स्वयं वन को चले "गंगा को लाना ही है। जिस पथ पर पिता और पितामह गये, जिसके लिये उन्होंने आत्मोत्सर्ग किया, वही मेरे लिये प्रसस्त पथ है।"

मंत्रियों ने तथा प्रजा ने बहुत रोका कि "अपने पितृ-पदों की भाँति राज्य के लिये उत्तराधिकारी हो जाने पर तब आप वन में जावें।" पर महाराज भागीरथ ने किसी का मत ग्रहण नहीं किया। और कहा "राज्य किसी की सम्पत्ति थोड़े ही है। मेरे पुत्र नहीं हैं तो विश्व में बहुत से पुत्र हैं। मुझे तो अपना मूल-लक्ष्य प्राप्त करके हां शान्ति मिलेगी" वे वन को चले ही गये।

वास्तव में तपस्या वही पूर्ण कर सकता है जो बाल-ब्रह्मचारी हो। गृहस्थ रहने के पश्चात तो तपस्या शरीर को रुग्ण कर देती है, ब्रह्मचर्य भंग होने के बाद शरीर में वह शक्ति नहीं रह जाती जो तपस्या की चरम सीमा के कष्ट को सँभाल सके। महाराज भागीरथ अभी तब ब्रह्मचारी ही थे।

चौ०—घोर तपस्या महँरत भयेऊ। त्रिभुवन चकित उनहिं कर दयेऊ॥
तप प्रभाव विधि आसन डोलेउ। पास आइ ब्रह्म अस बोलेउ॥

माँगो जो वरदान चहेऊ। सुत श्रम क्लांति दूर है गयेऊ॥
अस्तुति अरु प्रणाम तेहि कीन्हा। गंगाजी को माँगि तब लीन्हा॥

उनकी घोर तपस्या ने एक बार त्रिभुवन को चकित कर दिया, उग्र तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा का आसन हिलने लगा। उन्हें भागीरथ के समीप आना ही पड़ा, ब्रह्माजी ने वरदान माँगने को कहा, सुनकर भागीरथजी की समस्त क्लांति, समस्त श्रम दूर हो गया, उद्देश्य सफल होता देखते ही। अस्तु ब्रह्माजी को प्रणाम करके स्तुति की तथा गंगाजी को उनसे माँगा।

चौ०—राजन! गंगा मैं दै देंही। ठहरन सकइ भूमि पर येही॥
निज वेगहिं पातालहिं जाई। उद्योग करौ रोकै भू माहीं॥
उनहिं वेग धारण शिव पाहीं। रोकि सकैं यदि उन मन चाहीं॥
प्रसन्न करो शंकर भगवाना। प्रस्तुत धारण होयँ मनमाना॥

राजन! मैं गंगा को तो दे दूँगा, पर वह पृथ्वी पर ठहर न सकेगी। अपने वेग के कारण वे सीधे पाताल चली जायेंगी, अतः प्रथम आप कुछ ऐसा उद्योग करें जिसमें उनका वेग पृथ्वी पर ही रुक सके। भगवान शंकर यदि चाहें तो उनका वेग धारण कर सकते हैं, आप उन्हें प्रसन्न करें ताकि वे गंगा धारण करने को तो प्रस्तुत हो जावें।

दोहा—प्रस्तुत होने पर शिवहि तुम करना मम स्मरण।
कहकर निज लोकहिं चले करूँ गंगा का अवतरण॥

उनके प्रस्तुत होने पर जब आप मेरा स्मरण करेंगे तभी मैं गंगा का अवतरण अर्थात् गंगा को छोड़ दूँगा। ब्रह्मा जी इतना समझा कर हंस पर बैठकर अपने लोक को चले गये।

चौ०—पुनः तपस्या नृप जब कीन्हीं। आषुतोष प्रसन्न मन चीन्हीं॥
आरूढ़ वृषभ होइ दर्शन दीन्हा। भागीरथ गदगद उर भीना॥
वारहिं वार चरण परणामा। स्तुति करी विविधि लै नामा॥
'वर मांगो' तुम शिव अस कहेऊ। मैं प्रसन्न तुमसे अति भयेऊ॥

महाराज भागीरथ की तपस्या पुनः चली, भगवान शिव तो आषुतोष ठहरे। थोड़ी सी तपस्या से ही संतुष्ट होकर उन्होंने वृषभ पर सवार होकर भागीरथ को दर्शन दिया। भागीरथ गदगद हो गये। उन्होंने बारम्बार प्रभु के चरणों में प्रणाम करके उनकी विविध नामों से स्तुति की। 'वर माँगो' ऐसा कहा भगवान शिव ने, मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ।

चौ०—प्रार्थना गंगा धारण कीन्हीं। विधि की बात सुना सब दीन्हीं॥
'एवमस्तु' शंकर तब कहेऊ। चरणामृत मम इष्टहि भहेऊ॥
याते बड़ मम भाग्य सराहीं। चरणामृत मस्तक धर पाहीं॥

शंकर जी वरदानहिं देकर। चले कैलाश वृषभकूँ लेकर॥

राजा भागीरथ ने शिवजी से गंगा धारण की प्रार्थना की तथा सारी बात ब्रह्मा जी को बताई। 'एवमस्तु' कहकर शंकरजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि गंगा मेरे आराध्य देव की चरणामृत है, इससे अधिक सराहना मेरे भाग्य की क्या होगी कि प्रभु का चरणामृत मैं मस्तक पर धारण करूँ। शंकरजी वरदान देकर वृषभ पर कैलाश चले गये।

दोहा—भागीरथ की विनय पर, गंग छोड़ ब्रह्मने दीन।
जटा खोल प्रतीक्षा महँ, गिरती गंगा धारी लीन॥

भागीरथ की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने गंगा को छोड़ा। कैलाश पर हर्ष से जटा खोले, नागराज से कटि में व्याघ्राम्बर कसे, कमर पर दोनों हाथ रखे, भगवान शंकर ऊपर दृष्टि किये उन्हीं की प्रतीक्षा में खड़े थे। बड़े वेग से वह गंगा शब्द करती हुई उज्ज्वल धारा आकाश के अन्तराल को विदीर्ण करती हुई शिव के मस्तक पर गिरीं। गंगा पृथ्वी पर रहना नहीं चाहती थीं, ऐसा कुछ अभिमान उनके हृदय में था, इसी से वे अपने वेग से रसातल पहुँचने को चली थीं। पर योगीश्वर की जटाएँ समुद्र से भी गंभीर सिद्ध हुईं। एक वर्ष तक जटाओं में भटकने पर भी गंगाजी को उनमें से निकलने का मार्ग न मिला। उन्हीं जटाओं में लीन रहीं ।

चौ०—प्रार्थना पुनः विश्वनाथहिं कीन्हीं। जटा से गंग नृपहिं दै दीन्ही॥
माता गंग नृपहिं अस कहेऊ। पापी निज पापन्ह मोहि बहेहू॥
कैसे छूट सकँहु उन पापा। प्रबन्ध बिना भू नहिं जाउँ आपा॥
महाराज तब माँ से कहेहू। स्नान करें जन हरि उर रहेहू॥

भागीरथ ने पुनः विश्वनाथ से प्रार्थना की। उन्होंने जटा से गंगा को भागीरथ को दे दिया। माता गंगा बोलीं—"राजन! पृथ्वी के समस्त पापी मुझमें स्थान करके अपने पाप मुझमें बहायेंगे-छोड़ेंगे, भला मैं उन पापों से कैसे छूट सकूँगी? इसका प्रबन्ध हुए बिना तो मैं पृथ्वी पर जाती नहीं।" महाराज बोले—"दयामयी माँ! पापियों के साथ वे महापुरुष भी तो आप में स्नान करेंगे जिनके हृदय में सर्वदा श्रीहरि विराजते हैं।"

चौ०—पाप भस्म उन छूवत जाहीं। प्रलोभन भै गंग मन माहीं॥
होइ स्पर्श चरणहरि पांही। छोड़िन सकी लोभ अस लाहीं॥
फिर भी धार तीन होइ जाहीं। मंदाकिनि इक स्वर्ग बहाहीं॥
भोगवति पातालहिं जाई। शेष एक धरणी पर आई॥

"उनके स्पर्श से ही समस्त पाप भस्म हो जासेंगे।" यह गंगाजी के लिये एक बड़ा प्रलोभन था। "इसी बहाने कि (भक्तों के हृदय में हरि भगवान विराजते हैं) प्रभु के चरणों का स्पर्श होगा" इस लोभ को श्री गंगाजी नहीं छोड़ सकीं। फिर भी उनकी

तीन धाराएँ हो गयीं, एक स्वर्ग को चली गई जो मन्दाकिनी हुई, दूसरी भोगवती नाम पाताल को गई शेष एक धारा पृथ्वी पर आयी। इसलिये उसे गंगा तथा भागीरथ के नाम से उसी को भागीरथी भी कहते हैं।

दोहा—भागीरथ आज्ञा मिली, तुम चलो तीव्र रथ बैठ।
जिस मारग से चलहु तुम, मैं चलूँ उसी में पैठ॥

भागीरथ को आज्ञा मिली "तुम अत्यन्त तीव्र रथ पर बैठकर मेरे आगे-आगे चलो, मैं तुम जिस मार्ग से चलोगे उसी में पैठकर चलूँगी।"

चौ०—आगे रथहिं चले महाराजा। पाछे धारा गंग विराजा॥
पर्वत तोड़त फोड़त पत्थर। गड़गड़ाहट बोलत हर-हर॥
दौड़ भाग तेहि पशु घबराहीं। पहुँची हरद्वार मध माहीं॥
सकल ऋषी मुनि हर्षित भयेऊ। करि स्नान आचमन लयेऊ॥

आज्ञा का पालन हुआ। महाराज का रथ आगे-आगे और पीछे गंगाकी विमल धारा। भगवान शंकर जी के पास से विदा होते समय जो नमस्कार हुआ 'हर-हर' वह गंगा अब तक कीर्तन करती हैं। पर्वतों को तोड़ते, फोड़ते, पत्थरों को गड़गड़ाहट और घबराये हुए पशुओं के भाग दौड़, चीख पुकार के बीच वे हरद्वार पहुँचीं। सभी ऋषी मुनि हर्ष से प्रफुल्लित हो गये। वे स्नान, आचमन करके स्वयं पवित्र होते और महाराज भागीरथ को आशीर्वाद देते।

चौ०—आश्रम जह्न महर्षि आया। रथ महाराज समीप से धाया॥
ध्यान न गंग रहा मन मांही। निकली मृगचर्मादि बहाही॥
कुपित महर्षि हैं गये जबहीं। अंजलि भर पी गये वो सब हीं॥
धारा सकल सूख गई वारी। भागीरथ घबराये भारी॥

आगे महर्षि जन्ह का आश्रम आया। ध्यान न देने के कारण महाराज का रथ महर्षि के समीप से ही निकल गया। फलतः गंगा भी उधर से निकलीं और आश्रम के मृगचर्मादि बहा ले गयीं। महर्षि को क्रोध आ गया, उन्होंने अंजलि में भरकर योग-प्रभाव से समस्त गंगाजी को ही पी लिया, सारी धारा सूख गई। यह देख भागीरथ बहुत घबड़ाये।

दोहा—गिरे महर्षि चरण पै, क्षमा माँगि अपराध।
दक्षिण जानु चीर कर, सुता सम गंग निकारी साध॥

भागीरथ ने महर्षि के चरणों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा माँगी, प्रार्थना की, ऋषीगण दयालु तो होते ही हैं। महर्षि को दया आ गई, उन्होंने दक्षिण जानु चीर कर गंगाजी को अपनी पुत्री समझ निकाल दिया।

चौ०—तबहिं धार जल पूरन होई। नाम जाह्नवी जब भई सोई॥
प्रयागहि आ बड़ बहिना मिलेऊ। यमुना संग आगे तब चलेऊ॥

काशी आदि तीर्थन बढ़ जाहीं। स्थान आया तहँ रथ रुक पांही॥
आगे पातालहिं तक खाई। अस्थि थीं पितृन की तांहीं॥

धारा जल पूर्ण हो गई और आगे चली, गंगाजी जाह्नवी हो गयीं, प्रयाग में आकर बड़ी बहिन यमुना से बड़े हर्ष से आगे बढ़ कर मिलीं उन्हें साथ लेकर आगे चलीं। मार्ग में अनेकों नदियों को लेती हुईं काशी आदि तीर्थों में होती वे आगे बढ़ीं। अंततः वह स्थान भी आया जहाँ पहुँच कर रथ रुक गया। आगे पाताल तक खाई थी, वहीं उनके पितृत्व की अस्थियाँ थीं।

चौ०—पवित्र करन जिस गंगहिं लाये। खाई मांहि ते प्रवेश कराये॥
गंगा सागर तेहि सबु कहहीं। खोदी भूमि जलमय ह्वै गहहीं॥
पितृव्यहिं उद्धारहिं कीन्हा। पवित्र होन साधन जन दीन्हा॥
कुलहि पवित्र एक सुत करही। जो भागीरथ सम आचरही॥

जिसे पवित्र करने के लिये महाराज भागीरथ गंगाजी को ले आये थे, उसी गंगाजी को खाई में प्रवेश कर दिया। उसी स्थान को आज गंगा सागर कहते हैं, सगर पुत्रों की खोदी हुई समस्त भूमि जलमय हो गई, वही भरा हुआ गंगाजल आज समुद्र है। जो समय के प्रभाव से खारा हो गया। महाराज भगीरथ ने अपने पूर्वजों को तो पवित्र किया ही साथ ही असंख्य प्राणियों को पवित्र होने का साधन कर दिया। एक ही पुत्र कुल को पवित्र कर देता है, यदि वह भागीरथ के समान आचरण करे तो। (मानसमणि सितम्बर 66 से)

दोहा—छोड़ो गंग आचमन मज्जन, छोड़े जल का पान।
उन स्मरण नाम जप दर्शन, जन पावें भव कल्यान॥

गंगाजी के स्नान, पान, आचमन को तो छोड़ दीजिये, उनके दर्शन, स्मरण एवं उनके नाम के जप से मनुष्यों का कल्याण होता है।

(रामचरित मानस का एक अभूतपूर्व मंत्र श्री गंगाजी का जो एक महापुरुष ने बताया) मैंने स्वयं अनुभव किया। **"गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥"** इसको गंगाजी में बैठ 108 बार जप करके सिद्ध करें, सिद्ध होने पर यह मंत्र सभी प्रकार के शूलों—दर्दों को तुरंत भस्म कर देता है, प्रसंगवश याद आया, जो लाभ उठाना चाहे, उठायें। (प्रियदास)

बोलिये—"गंगा मैया की जय, महाराज भगीरथ की जय, भगवान गंगाधर शंकर की जय।"

आज 10-2-2015 है शिवरात्रि का दिन है सज्जन शिव पर गंगाजल लाकर चढ़ा रहे हैं, मुझे केवल यह सौभाग्य मिला कि उस समस्त गंगाजी को ही शिव मस्तक पर लेखनी से धारण कराया, अतः शिव प्रसन्न होकर कृपा करें। आपका ही कोई 'प्रियदास'। 17-2-2015

(7) अर्धनारीश्वर

श्लोक—"एक लोचन मेकार्धे सार्ध लोचन मत्यतः।
नीलार्धं नीलकण्ठार्धं महः किमपि मन्महे॥"

"हम किसी ऐसे तेज का ध्यान करते हैं जिसके आधे भाग में एक नेत्र और शेष आधे में डेढ़ नेत्र है। आधा भाग तो पूरा नील (काली का) है और आधे का केवल कण्ठदेश नीला है।

प्रभु लोक के आदर्श के लिये स्वयं कार्य करते हैं, उसमें उनका कोई अपना कार्य नहीं होता। मनुष्य मात्र को भगवान की आराधना करनी चाहिए, इसलिये वे इस आदर्श स्थापन के लिये अपनी ही नाना मूर्तियों का स्वयं ही पूजन करते हैं। जैसे भगवान शंकर, राम, कृष्ण या विष्णु की और भगवान श्रीराम श्रीकृष्ण एवं विष्णु भगवान शंकर की। वस्तुतः जो आराधक वहाँ दोनों एक ही हैं। यह तो लोक शिक्षण मात्र हैं।

दोहा— विष्णु सहस्त्रहि नाम का, पाठ करै नित ध्याय।
पाठ किये बिनु पार्वती, परसाद नहीं वे पाय॥1॥

माता पार्वती का नियम था कि वे बिना विष्णु सहस्र नाम का पाठ किये प्रसाद ग्रहण नहीं करती थीं।

एक दिन भगवान शिव भोजन करने बैठ गये, किंतु माता पार्वती का पाठ समाप्त नहीं हुआ था, उसे ही भज रही थीं।

चौ०—शिव उन भोजन हेतु बुलाया। उत्तर माँ ने ये फरमाया॥
मेरा पाठ पूर्ण नहिं भयऊ। आप प्रसाद ग्रहण कर लयऊ॥
शेष भाग पूरा करि दैंऊ। तब पीछे भोजन मैं लैंऊ॥
माँ मर्याद नियम की कीनी। परीक्षा पति भक्ति लै लीनी॥

भगवान शिव ने उनको भोजन हेतु बुलाया, उत्तर में उन्होंने कहा—स्वामिन! मेरा पाठ अभी पूरा नहीं हुआ है, आप प्रसाद ग्रहण करें, थोड़ी देर में शेष भाग को पूरा करके मैं पीछे भोजन ग्रहण कर लूँगी। भगवत प्रसाद के लिये नियम यही है कि समय, अवस्था या पात्र का बिना विचार किये, यह बिना सोचे कि "कौन दे रहा है, क्या दे रहा है, मैं पवित्र हूँ या नहीं।" प्रसाद पा लेना चाहिए। प्रसाद की मर्यादा रखनी थी, माता पार्वती के नियम की मर्यादा रखनी थी और उनके पति भक्ति की परीक्षा लेनी थी।

चौ०—शंकर पार्वती से कहेऊ। राम, राम, रामहिं कह लहेऊ॥
तीन बार कहो नामहिं रामा। पाठ सहस्त्रहिं नाम समाना॥

इन्हहिं नाम ले पाव परसादा। आओ फिर पूर्ण कर वादा॥
पार्वती राम-नामहिं लीना। आकर साथ हे भोजन कीना॥

भगवान शंकर ने पार्वती से कहा—"राम, राम, राम" यह तीन नाम ही सहस्त्र नाम के बराबर हैं अतः इन नामों को लेकर प्रसाद लेने आ जाओ। "राम रामेति रामेति, राम नाम मनोरमे-सहस्त्र नाम तातुल्य राम-नाम बराननने।" नियम फिर पूर्ण कर लेना। नियम तो करना ही चाहिये, पर समानता होने का यही अर्थ है कि अभी इन तीन राम-नाम के जप से नियम भंग का दोष न होगा।

पति ही स्त्री का ईश्वर है, पति ही स्त्री का आराध्य है, पति आज्ञा ही स्त्री के लिये शास्त्राज्ञा है। पति की आज्ञा के अनुसार चलकर, पति की पूजा करके स्त्री परमात्मा को पा लेती है। पति के विरुद्ध चलने वाली स्त्री चाहे जितने जप, तप, योग, यज्ञ, भजन, पूजन, ज्ञान, ध्यान करे तब भी उसका उद्धार नहीं हो सकता। उसका अधः पतन ही होता है, स्त्री का ईश्वर और उसका शास्त्र तो उसका पति ही है।

सती शिरोमणि पार्वती जी भगवान शंकर की आज्ञा से ही विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करती थीं, पति की आज्ञा सुनते ही वे राम-नाम का जप करते हुए प्रसाद लेने आ गयीं, उनके मन में तनिक भी संकल्प-विकल्प न उठा, और आकर भगवान शंकर के साथ भोजन ग्रहण किया।

दोहा—पति-आज्ञा श्रद्धा अटल, अति प्रसन्न भगवान।
निज शरीर वामांग महँ, दिया उनहिं स्थान॥

स्त्री की इस पति आज्ञा पर अटल श्रद्धा से भगवान आशुतोष अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वजी को अपने शरीर के अर्ध-वामांग में स्थान दिया, प्रभु के उसी रूप को अर्ध-नारीश्वर कहते हैं, इस मनोहर रूपका ध्यान करें—

एक व्याघ्रचर्म के आसन पर कैलाश शिखर पर बट-वृक्ष के नीचे भगवान अर्ध-नारीश्वर विराजमान हैं। एक चरण नग्न है और एक साड़ी पहने। कटि के आधे भाग में व्याघाम्बर सर्प से बँधा है और आधे में साड़ी किंकणी से शोभित। हृदय पर आधे में रुद्राक्ष है और आधे में कंचुकी के ऊपर मणिमाला। आधा कंठनीला और आधा मणि से भूषित उज्ज्वल। नाक आधी शून्य और एक ओर आभूषण। तीसरा नेत्र भी आधा ही है और चन्द्रकला भी आधी। आधे मस्तक में जटाएँ हैं जो सर्प से बँधी हैं और आधा मस्तक साड़ी से ढ़का है। ऊपर से नीचे तक आधा अंग पुरुष का और आधा स्त्री का है। सगुण परमेश्वर की यह मूर्ति है। सृष्टि कार्य लगे मायायुक्त ईश्वर या शक्ति समन्वित शिव का यही वास्तविक ध्यान है। शक्ति कभी शिव से पृथक नहीं रहतीं। वह तो शिव का ही अंग हैं। *(मानसमणि-अक्टूबर 1966)*

❋ आशुतोष ❋

कवित्त– (1) "चिदाकाश रूप आस मान में प्रकाशमान,
सुख को निधान सावधान ध्यान धर रे।
एक है अचिंत जो विचिंतनीय विश्व बीच,
ताकी चिंत करके निचिंत चित्त कर रे॥
विपति विनाश ह्वै है, संपति सुपास ह्वै है,
पारवति पति को सुदास ह्वै विचर रे।
रहै दुःख दोषहन, पातक परौस हन,
मोरे आषुतोष को भरोस हिय भर रे॥"

❋ शिव-भक्ति का फल ❋

(2) "कोउ शत्रु सामने न आवै न सतावै कोउ,
जतन बिना विपत्ति सारी भारी भगि जाय।
जाचैं बिना ऋद्धि-सिद्धि द्वार पर ठाड़ी रहैं,
आपै आप आइकें रमाहू प्रेम पगि जाय॥
हाथी रथ घोड़ा की सवारी अधिकारी रहैं,
नाती और पोतन ते पूरो भाग्य जगि जाय।
काऊ बात की कमी रहै न विष्णु कवि,
जो पै साँची लगन दिगम्बर ते लगि जाय॥"

(3) "बाहर और भीतर कलंक को रहै न नाम,
भारी हू ते भारी पाप रासि आपु जरिजाय।
धर्मराज दूर तेई ठाड़े ह्वै करै प्रणाम,
देखत ही कालहू की हुलिया बिगरि जाय॥
दान और धर्म के बिना ही जप तप ध्यान,
धारण के 'विष्णु' निज जनम सुधरि जाय।
तीनों ताप पास में न आवैं कहूँ शंकर की,
जो पै साँची प्रीति हिय माांहि घर करि जाय॥"

दोहा– "जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत श्रुति सकल पुरान।
सोइ गति मरन काल अपने पुर, देत सदा-शिव सबहिं समान॥"

(अर्धनारीश्वर भगवान शंकर की जय)



(8) गणेश

श्लोक—सर्व स्थूल तनुं गजेन्द्र वदनं लम्बोदरं सुन्दरं,
प्रस्पन्दमद गंध लुब्धमधुपव्यालोलगण्ड स्थलम्॥
दंताधात विदारितारिरुधिरैः सिंदूर शोभाकरं,
वंदे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥"

"नाटे और मोटे शरीर वाले, हस्ती के मुखवाले, लम्बे पेट वाले, सुन्दर, निकली हुई मद-धारा की गंध के लोभी भ्रमरों को बार-बार हटाने से चंचल गण्डस्थल वाले, दाँतों के प्रहार से वध किये शत्रु के शोणित से सिंदूर की शोभा को धारण करने वाले, समस्त सिद्धि एवं कामनाओं के दाता माता पार्वती के पुत्र श्रीगणेश जी की हम वंदना करते हैं।

चौ०—कैलाश श्रृंग अन्तः शिव तांहीं। स्फटिक मणिन्ह निर्मित जे मांही॥
पार्वती आसनहिं विराजेउ। उबटन सखी शरीरहिं आजेऊ॥
इसी समय शिव भीतर आहीं। सखियाँ एक ओर हट जाहीं॥
वस्त्र ठीक कर माता ठाड़ी। देख असुविधा लौट पुरारी॥

भगवान शंकर के अन्तःपुर में कैलाश के श्रृंग पर जोकि, स्फटिक मणियों से निर्मित है, माता पार्वती एक सुन्दर आसन पर विराजमान थीं। सखियाँ उनके शरीर में जया-विजया नाम की उबटन लगा रही थीं। इसी समय शंकरजी भीतर आये। सखियाँ एक ओर हट गयीं, माता भी जल्दी से वस्त्र ठीक करके खड़ी हो गयीं। प्रभु ने अपने आने के कारण जब इस समय यह असुविधा देखीं तो वे लौट गये।

चौ०—उबटन कार्य पुनः आरम्भा। विजया सखि बोली अस अम्बा॥
सूचित किये बिना शिव आही। संकोच असुविधा हम सब पाहीं॥
शिखिर द्वार प्रभु गण बहु रहहीं। गण एक अंतःपुर कहँ चहहीं॥
प्रभु आने की सूचना कैंहीं। ऐसे समय पै मना कर देहीं॥

उबटन का कार्य समाप्त तो हुआ न था, त्रह पुनः प्रारम्भ हुआ। उबटन करते हुए ही विजया सखी ने कहा—अम्बे! देखो जब कभी भी प्रभु बिना सूचना किये भीतर समय-कुसमय चले आते हैं, प्रायः ऐसे समय हम सब और आप भी उनके आगमन के लिये तत्पर नहीं होतीं, बड़ी असुविधा एवं संकोच होता है, द्वार पर प्रभु के गण तो रहते हैं, पर उनके साथ कोई एक अन्तःपुर का गण भी होना चाहिए, वह प्रभु के आने की आपको सूचना तो दे देगा, और ऐसे असुविधा के समय प्रभु को भीतर आने की मनातो कर देगा।"

समर्थन सखी जया तेहि कीन्हा। भगवती कहा ठीक तुम चीन्हा॥

दूसरी सखी जया ने भी उसका समर्थन किया, भगवती ने कहा—"हाँ तुम ठीक

कह रही हो, अच्छा यही सही।"

(चेतन का सब चेतन होई)

दोहा—उबटन छूटा मैल देह, माँ पुतला एक बनाय।
प्राण प्रतिष्ठा फूँक तेहि, एक बालक सन्मुख पाय॥1॥
अधिष्ठात्री सौंदर्य माँ, निर्मित अंग मैल ते कीन्ह।
तेहि बालक सौंदर्य कह, न वर्णन काऊ लीन्ह॥2॥
अस्थि रक्त मज्जादि से, पुतलीन्ह सौंदर्य महान।
शिवा शक्ति मैलहिं रच्यो, कैसे वर्णन करै जहान॥3॥

इधर उबटन होते समय स्वभावतः ही शरीर के उबटन से छूटे हुए मैल से जगदम्बिाका के कर एक पुतला सा बना रहे थे, माता ने सखी का बात सुनकर उस पुतले पर ध्यान दिया, उसके अधबने भाग को पूर्ण करके उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर दी, (अर्थात् चेतन शक्ति की सभी वस्तुएँ चेतन होती है) जीवन फूँक दिया। वह पुतला एक बालक रूप में सम्मुख खड़ा हो गया। सौंदर्य की अधिष्ठात्री देवी के अंगों के मैल से बने उस बालक का सौंदर्य अवर्णनीय जब हड्डी, रक्त और मज्जादि से बनी पुतलियों में इतना सौंदर्य होता है तो उस बालक के सौंदर्य का वर्णन हो भी कैसे सकता है, साक्षात शिवा शक्ति का बालक जो ठहरा।

चौ०—गोद उठाय पुचकारयो बच्चा। दूध पिलाय प्यार कियो सच्चा॥
था सामान्य न बालक वो ही। शुरू से किशोरावस्था सो ही॥
तेहि प्रणाम कर आज्ञा चाही। सखी हर्ष निज बातहिं पाही॥
एक लाठी कर बालक दयेऊ। खड़ा होइ ले द्वारहिं रहेऊ॥

माता पार्वती ने बच्चे को गोद में लेकर पुचकारा, प्यार किया, दुग्ध पिलाया, वह कोई सामान्य बालक तो था नहीं, आरम्भ से ही उसकी अवस्था किशोर ही थी, माता के चरणों में प्रणाम कर उसने सेवा की आज्ञा चाही, पार्वती ने हँसकर सखियों से कहा—"यही हमारी ओर से द्वार रक्षा करेगा।" सखियाँ अपनी बात रखती देख प्रसन्न हो गयीं, उन्होंने एक लाठी उस बालक के हाथ में देदी पुत्र को माता से आज्ञा मिली "बेटा! तुम इस लाठी को लेकर द्वार पर खड़े रहो।"

चौ०—तुम मम द्वारपाल बन जाओ। मम सुत आज्ञा तुम अपनाओ॥
मम आज्ञा बिनु आव न कोई। महल प्रवेश करे नहिं सोई॥
मुख चूमा सुत हृदय लगाया। दण्ड धारी द्वारपाल बनाया॥
आज्ञा मानि द्वार पैहिं जाती। चुपचाप खड़े सैनिक की भाँती॥

पार्वती ने उस बालक से कहा—तुम मेरे पुत्र हो, मेरे अपने हो, आज से तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। सुपुत्र! मेरी आज्ञा के बिना कोई भी हठपूर्वक मेरे महल के भीतर प्रवेश न करने पाये, चाहे वो कहीं से भी आये, कोई भी हो, उन्होंने परम

प्रेमपूर्वक अपने पुत्र का मुख चूमा और कृपा परवश हो छाती से लगा लिया। फिर दण्डधारी गणराज को द्वारपाल बना, द्वार पैं जाने की आज्ञा दे दी, आज्ञा का पालन हुआ। वे कर्त्तव्य परायण सैनिक की भाँति चुपचाप द्वार पर लाठी लिये खड़े हो गये।

दोहा—इधर पार्वती सखिन्ह संग, स्वयं करन लगीं स्नान।
परम कौतुकी शंकरहिं, नित भाँति द्वारहिं आन॥

सुत को दरवाजे पर नियुक्त करके स्वयं पार्वती सखियों के साथ स्नान करने लगीं, इसी समय परम कौतुकी नाना प्रकार की लीलाएँ रचने में निपुण भगवान शिव नित्य की भाँति द्वार पर आये, भीतर जाने के लिये।

जब शंकर भीतर जाने लगे, मार्ग में लाठी अड़ाकर गणेश जी ने डाँटा "कौन है जो, भीतर घुसा जाता है? देखता नहीं कि मैं यहाँ किस लिये खड़ा हूँ। माता की आज्ञा बिना कोई भीतर नहीं जा सकता" फिर प्रभु ने गणेश जी से कहा "तुम्हें यहाँ पर खड़ा किसने किया है?" गणेश जी ने लाठी द्वार से हटाये बिना ही उत्तर दिया—"इस भवन की स्वामिनी मेरी माता ने।" प्रभु हँसे—वे बोले "बेटा! भवन तो मेरा ही है यदि इसकी स्वामिनी तुम्हारी माता हैं तो मैं तुम्हारा पिता हुआ, मार्ग छोड़ो और अन्दर जाने दो।"

पिता के चरणों में पुत्र ने प्रणाम किया, आशीर्वाद मिला "विजयी हो, सर्वोच्च हो।" फिर नम्रता से पुत्र ने कहा—"पिताजी आप पिता हैं, यह मैं मानता हूँ, पर इस समय में कर्त्तव्य पर नियुक्त हूँ, माताजी इस समय स्नान कर रही हैं, माता ने मुझे यहाँ नियुक्त किया है कि उनकी आज्ञा के बिना कोई भी भीतर न आने पावै, मैं आपको जाने देकर कर्त्तव्यभ्रष्ट नहीं हो सकता। आप पूज्य हैं आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है फिर भी मैं कर्त्तव्य पर नियुक्त हूँ, इसे पूर्ण करने के बाद आपकी सेवा करने को तत्पर हूँ, फिर आप जो आज्ञा देंगे, उसका भी पालन करूँगा, इस समय मुझे धृष्टता के लिये क्षमा करें।"

चौ०—तनिक कड़े स्वर प्रभु अस कहेऊ। सामान्य रीति से जाना चहेऊ॥
यदि सीधे नहिं जाने दे मोकूँ। अपनाऊँ मारग दूसर तोकूँ॥
युवक भृकुटि मँह बलपरि गयेऊ। माँ आज्ञा बिनु जान न दयेऊ॥
जब तक प्राण देह मम मांही। भय कोई च्युत मोइ कर सक नांही॥

प्रभु ने तनिक स्वर कड़ा करके कहा "देखो मैं सामान्य रीति से ही अन्दर जाना चाहता हूँ, पर यदि तुम सीधे नहीं जाने दोगे तो मुझे दूसरे मार्ग से काम लेना होगा।" युवक की भृकुटी में बल पड़ गये। गणेशजी ने कहा-"माँ की आज्ञा बिना, मैं तब तक किसी को भीतर जाने नहीं दूँगा, जब तक मेरे शरीर में प्राण है। कोई भी भय मुझे अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं कर सकता। सभी प्रकार की स्थितियों का सामना

करने के लिये मैं तैयार हूँ।

चौ०—गर्व वस्तुतः शिव गण मांही। शक्ति नाश प्रभु करना चांही॥
डाँटत गणन्ह शिवहि अस कहेऊ। पकड़ इसे फेंक तुम दहेऊ॥
झपटतहि वे गणेश फटकरा। सावधान! आगे पगु धारा॥
लाठी से तोड़ सिर देहूँ। आओ कौन खड़ा यहाँ मैं हूँ॥

वस्तुतः तो गणों में अपनी शक्ति का गर्व हो गया था, तब लीला रूप शंकर ने विचित्र लीला करनी चाही तथा अपने गणों का गर्व भी दलित करना चाहा, गणों को डाँटते हुए प्रभु ने कहा "देखते क्या हो? इसे यहाँ से पकड़कर फेंक दो।" गण झपटे, गणेशजी ने फटकारा "सावधान जो भी अपने स्थान से मेरी ओर एक पद भी आगे बढ़ाएगा। उसकी खोपड़ी लाठी से तोड़ दूँगा" आओ कौन आता है, मैं यहाँ दरवाजे पर मुस्तेदी से खड़ा हूँ।

दोहा—गण झपटे अति गर्व से, पर लाठी मारि गिराय।
हाथ पैर टूटे किसी, सिर फूटा भगे चिल्लाय॥

गण अति गर्व से गणेश पर झपटे, पर लाठी के भीषण प्रहार से किसी के हाथ टूटे, किसी के पैर टूटे, किसी का सिर फट गया चिल्लाते हुए वे सब पीछे भाग गये।

चौ०—मुख्य गणन्ह शंकर बुलवाये। प्रभृति वीर भद्र नन्दी आये॥
कहा शिवहि इसे मारि भगाओ। अस्त्र-अस्त्र ले झपटो धाओ॥
अन्दर से सखि वीरता देखहिं। द्वार आड़ पारवति पेखहिं॥
भूरि-भूरि प्रशंसा करहीं। वीरता युवक उमा उच्चरहीं॥

भगवान शंकर ने तब प्रधान गण वीरभद्र, नन्दी, प्रभृति आदि समस्त गणों को ललकारा "इसे यहाँ से मार भगादो।" सभी अस्त्र-शस्त्र लेकर इस पर टूट पड़ो, भीतर से सखियाँ अपने युवक कुमार की वीरता देख रही थीं। द्वार की आड़ से पार्वती भी निहार रही थीं, वे सखियाँ गणेश की वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा पार्वती से बखान कर रही थीं।

चौ०—सब गण मिलिंकर झपटे ताही। फिर भी नहीं सफलता पाही॥
मरम्मत लाठी से कर दीन्हीं। चोट न ऊपर एकउ लीन्हीं॥
स्नान रक्त से गण भये भारी। अंग भंग सबके करि डारी॥
मरे कछू भगे प्राण बचाई। प्रभु खड़े देख ललकारहिं ताई॥

समस्त गण झपटे सही, पर सफलता किसी को नहीं मिली, गणेश जी ने अपनी लाठी से ही सबकी मरम्मत कर डाली उन्हें तो तनिक भी चोट नहीं आई, पर सब गण रक्त से स्नान कर गये, सबके अंग भंग हो गये, कुछ मारे भी गये, और प्राण लेकर भागे, प्रभु अब तक केवल खड़े होकर गणों को ही ललकार रहे थे।

दोहा—गणन्ह भागते देख प्रभु, कर तिरशूल उठाय।
प्रलयंकर देखे सुरन्ह, इन्ह कुपित प्रलय हो जाय॥1॥

अब गणों को भागता देख शंकर जी स्वयं त्रिशूल उठाकर आगे बढ़ने लगे, देवताओं ने देखा कि प्रलयंकर स्वयं त्रिशूल लेकर युद्ध करने जा रहे हैं, उन्हें पता था कि रुद्र को क्रोध आ जाने पर फिर कुछ नहीं दीखता, इनके क्रोध का शांत होना भी अत्यन्त कठिन है, उन्होंने सोचा "कहीं ये क्रुद्ध हो गये तो प्रलय ही कर डालेंगे।"

चलना हमको चाहिये, धृष्ट बालक दण्डहिं दीन्ह।
बढ़ें नहीं शिव युद्ध को, तेहि उर कोप न कीन्ह॥2॥

अब हम सबको चलकर ही इस धृष्ट बालक को दण्ड देना चाहिए जिससे शिव युद्ध को आगे न बढ़ें और उन्हें क्रोध करने का अवसर ही न आवै।

छन्द— निज-निज वाहन, सुरन्ह सँवारन, अस्त्र-शस्त्र ले धावहीं।
सैन सुसज्जित, चढ़ि वाहन निज कैलाशहिं पर आवहीं॥
चक्र सुदर्शन लेकर विष्णु भी आये गरुड़ सवारहीं।
आकर सबन्ह रोक शंकर कर, लड़न स्वयं मन धारहीं॥1॥
सुन पारवति देव सेना आवति, अकेले सुत देव लड़न सिधाये।
निज देहहि ते असंख्य देवियाँ, प्रकटीं विविधि भाँति अपुनाये॥
कोई मुण्डमाली, कोई देवि काली, खंग हाथ ले साजहीं।
वे डटी आय, गणेश सहाय, शिवा-शिव युद्धहिं बाजहीं॥2॥

समस्त सेना अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर, अपने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर कैलाश पर उतर पड़ीं, यहाँ तक कि भगवान विष्णु भी चक्र लेकर गरुड़ पर सवार होकर आये। सबने आकर शंकरजी को आगे युद्ध के लिये बढ़ने से रोका। देव सेना स्वयं लड़ने को चली। माता पार्वती ने जब यह सुना कि अकेले पुत्र से लड़ने समस्त देवता आ गये हैं तो उन्होंने अपने शरीर से असंख्यों देवियाँ उत्पन्न कीं, वे मुण्डमालिनी, काली देवियाँ हाथ में खंग लेकर गणेशजी की सहायता को आ डटीं। युद्ध ने पार्वती और शंकर के युद्ध का रूप धारण कर लिया।

दोहा—शक्ति पुत्र गणेश जी, शक्ति अंग उत्पन्न।
शक्ति सहायक उन बनी, कौ करै सामना भंग॥

गणेशजी शक्ति पुत्र थे, शक्ति के समस्त अंगों से उत्पन्न हुए थे। साक्षात् शक्ति उनकी सहायक थी किसकी शक्ति जो उनका सामना भंग करने में समर्थ हो? शक्तिहीन शिव भी शव ही हैं।

चौ०—तुमुल युद्ध अब छिड़ने लागेउ। करि टुकड़े सुर कालिन्ह दागेउ॥
मयूर कार्तिक लाठी खाकर। भागा दूर उन्हें ले जाकर॥
पूर्व इन्द्र जो बज्र उठाई। लाठी ने बाहु तोड़ि गिराई॥
लाठी चोट वरुण कै कलाई। टूटी पाश उठा नहीं जाई॥

तुमुल युद्ध छिड़ गया। कालियों ने देवताओं के टुकड़े करने प्रारम्भ कर दिये।

स्वामी कार्तिक का मयूर गणेश की लाठी की चोट खाकर उन्हें दूर ले भागा। वज्र उठाने से पहले ही इन्द्र की भुजा को लाठी ने तोड़ डाला, बेकार भुजाही गयी। वरुण का पाश उनकी लाठी की चोट से कलाई टूट जाने से उठ न सका।

चौ०—जबहिं दण्ड यमराजहिं लीन्हीं। चकनाचूर उँगलियाँ कीन्हीं॥
सबकि देह क्षतविक्षत होई। बिना पिटे बिनु रह्यो न कोई॥
सरिता बहन लगीं तहँ रक्तत। अब भी गणेश रहे वहँ अक्षत॥
कालिन्ह मार खाय सुरसेना। भागि चली अब कोई बचेना॥

दण्ड लेते ही लाठी ने यमराज की उँगलियाँ चकनाचूर कर दीं। किसी का भी शरीर क्षत-विक्षत हुए बिना न रहा। रक्त की सरिता बहने लगी। गणेश जी अब भी अक्षत थे। कालियों की कराल मार से देव सेना भाग गई।

दोहा—अन्त विष्णु भगवान ने, चक्र हस्त लेधारि।
उसके एक प्रहार से काली दईं सब मारि॥1॥
गणेश अकेले रह गये, वध अभीष्ट न ताहि।
दुबारा चक्र उठावहीं, गणेश टूट पड़े उन पाहि॥2॥
लाठी दबादब बरषहीं, तब गरुड़ गये घबराय।
उड़न सके जल्दी तबहिं, पैदल ही भागे जाय॥3॥
गणेश मारते आ रहे, देख पीछे रहहिं हैं धाय।
चक्र प्रभु न उठा रहे, तो ले उन को उड़िजाय॥4॥

अन्त में भगवान विष्णु ने चक्र उठाया। चक्र के एक ही प्रहार से समस्त कालियों को मार दिया। अकेले गणेश जी रह गये। भगवान को स्वयं गणेश का वध तो अभीष्ट था ही नहीं। उन्होंने दुबारा जैसे ही चक्र को उठाने का उपक्रम किया, गणेश जी लाठी लेकर दौड़े। गरुड़ पर दबादब लाठियाँ बरसने लगीं। गरुड़ घबरा कर जल्दी उड़ भी न सके, पैदल ही भागे, पर देखा कि गणेशजी तो पीछे दौड़कर मारते ही आ रहे हैं और प्रभु चक्र उठाते नहीं, तो गरुड़ उन प्रभु को लेकर उड़ चले। इस प्रकार भगवान विष्णु ने भी रणभूमि छोड़ दी।

चौ०—तब शंकर मन में अस सोचेउ। विष्णु सहित सुर चोटिल पहुँचेउ॥
अनुचित होइ युद्ध नहिं चाहूँ। दण्ड दैन बालक मैं धाहूँ॥
झपटेउ तुरत त्रिशूलहिं लेई। गणेशहि लाठी उठाइ के देई॥
बहुत देर युद्धहिं उन भयेऊ। लाठी तड़ातड़ शिव पर पड़ेउ॥

शंकरजी ने सोचा—"समस्त गणों को, समस्त देवताओं को, भगवान लक्ष्मीपति तक को, युद्ध में घसीट कर, उन्हें घायल करा कर भी यदि मैं युद्ध न करूँ तो अनुचित होगा। अब तो स्थिति ऐसी हो गयी है कि इस लड़के को दण्ड देना ही होगा। अतः शिव त्रिशूल लेकर स्वयं गणेश पर झपटे। गणेशजी आक्रमणकारियों

को भगाकर पुनः द्वार पर पूर्ववत् आ खड़े हुए थे, शंकर जी को युद्धार्थ आते देख फिर लाठी तड़ातड़ शिव पर देने लगे, बड़ी देर तक युद्ध होता रहा, रुद्र पर भी खूब लाठियाँ बरसीं।

चौ०—प्रहार गणेशहि मस्तक कीन्हा। त्रिशूलहिं काटि अलग कर दीन्हा॥
धड़ सिर हीन धरनि पर गिरिहीं। गिरतेहु लाठि तोड़ि शिव करहीं॥
गिरते सुत उदास शिव भयेऊ। सखि चिल्लाय पार्वती कहेऊ॥
निकली बाहर देखन आईं। पाछे सखियाँ दौड़ी धायी॥

अंत में अपने त्रिशूल से उन्होंने गणेश जी का मस्तक काट लिया। सिरहीन धड़ घूमकर पृथ्वी पर गिरा। गिरते-गिरते भी उसने लाठी के प्रहार से शंकरजी का हाथ तोड़ ही दिया। पुत्र के गिरते ही शिवजी उदास हो गये, उधर विजया सखी जो द्वार की सीध में युद्ध को देख रही थी, गणेश के सिर कटते ही चिल्ला उठी, पार्वती से कहा, पार्वती बाहर निकल आईं, उनके पीछे सखियाँ भी दौड़ी चली आयीं।

दोहा—लाठी कर पकड़े पड़ा, धड़ सुत का द्वारहिं देखि।
सिर झुकाय शंकर खड़े पार्वती भैदुख विशेषि॥

द्वार के पास ही सिर कटा हुआ पुत्र का धड़ हाथ में अब भी बलपूर्वक लाठी पकड़े कटे स्थान से रुधिर की धारा छोड़ते पड़ा था पास ही सिर झुकाये भगवान शंकर उदास खड़े थे।

माता के सम्मुख पुत्र का सिर कटा शव हो तो माता की क्या दशा होगी, यह तो कोई माता ही अनुभव कर सकती है। फिर यह तो ऐसा पुत्र था जिसने माता की आज्ञा की रक्षा के लिये प्राण दिये थे। ज़गदम्बिका की दृष्टि पति पर गई ही नहीं, पुत्र के धड़ को देखते ही वे उसी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं, रोती हुई सखियों ने किसी प्रकार उन्हें सँभाला। थोड़ी देर में माँ को चेतना आई, उनकी आँखों में असूँ न थे। एक बार पुत्र के शव की ओर फिर ऊपर आकाश को देखा। "मेरे पुत्र का वध" कहती हुई वे अट्टहास करके उन्मत्त की भाँति खड़ी हो गयीं।

चौ०—नेत्रन्हते अंगारे वरषेउ। भृकुटी उनहिं कठोरहिं करवेउ॥
अधर काट दांतन ते लेहीं। थर-थर क्रोध काँप रही देही॥
लम्बी स्वाँस हो गई जबही। क्रुद्ध महाशक्ति भई तबही॥
महामायाहि क्रुद्ध है जाहीं। रक्षा कस ब्रह्माण्डहिं पाहीं॥

दोनों नेत्रों से अंगारे बरस रहे थे, उनकी भृकुटि कठोर हो गई थी। बार-बार वे दाँतों से अधरों को काट रही थीं। शरीर मारे क्रोध के थर-थर काँपने लगा। श्वाँस लम्बी हो गई। महाशक्ति क्रुद्ध हो गयी। जब महामाया ही क्रुद्ध हों तो फिर ब्रह्माण्ड की रक्षा कैसी?

चौ०—लागीं जलन दिशाएँ सारी। बार-बार भू काँपत भारी॥

वारि समुद्रहि उछलन करेहू। तारे गगन टूट महि गिरेहू॥
उपस्थित दृश्य प्रलयका जोड़े। सकल दैव कैलाशहिं दौड़े॥
साहस नहीं किसी का होई। सन्मुख महा शक्ति जहँ कोई॥

सारी दिशाएँ जलने लगीं, पृथ्वी बार-बार काँपने लगी, समुद्र का जल उछलने लगा, आकाश से तारे टूट-टूट कर गिरने लगे। महाप्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। ब्रह्मा, विष्णु समस्त इन्द्र वरुणादि देवताओं के साथ कैलाश पर दौड़े आये। शंकरजी को साथ लेकर वे महाशक्ति को शांत करने के प्रयत्न में लगे, पर किसी का भी साहस नहीं होता था कि शक्ति के सम्मुख जावे।

दोहा—दूरहि से प्रणाम करि (सुर) कर जोड़े अस्तुति कीन्ह।
क्रोध तनिक कम तो भयो, हुँकारहिं आद्या दीन्ह॥1॥
अकेल पुत्र मम तुम्हहिं ने, मिलि मारा बल अपनाय।
युद्ध चुनौती तुम्हहिंकूँ, बढ़ै बदला लऊँ चुकाय॥2॥

दूर से ही प्रणाम करके देवताओं ने नम्रता से हाथ जोड़कर बहुत देर तक स्तुति की, क्रोध तनिक कम हुआ। आद्याा ने हुँकार भरी और कहा—"मेरे अकेले पुत्र को तुम सब इतनों ने मिलकर मारा है। अब माता तुम्हें युद्ध की चुनौती देती है। जिसमें साहस हो, शक्ति अपने बल का गर्व हो, वह आगे बढ़े, थोड़ी ही देर में तुम सबसे अपने पुत्र के वध का बदला ले लूँगी, यह समस्त विश्व निश्चय ही प्रलय के गर्भ में जावेगा।"

देवता और करते भी क्या ? 'हे दयामयी माँ! अपने दुष्ट पुत्रों के अपराध को क्षमा करो।' कहकर शक्ति के सम्मुख भूमि पर मस्तक रख क्षमा माँगने लगे। क्रोध की प्रबलता तो तभी तक रहती है जब तक क्रोधित पुरुष प्रतिपक्षी से सन्धि के विषय में बोलता नहीं। बातचीत आरम्भ होने पर शब्द चाहे कितने कड़े हों पर क्रोध घटता ही जाता है। माता की भी यही दशा थी।

माता ने विकट हास्य से कहा—"क्षमा! मेरे सन्मुख मेरे पुत्र का शव पड़ा है और उसके वधकर्ता मुझ से क्षमा चाहते हैं!! कितनी विडम्बना है!!! मूर्खो! प्राणों का मोह छोड़ना ही पड़ेगा। पुत्र के शव को देखते हुए माता किसी को भी क्षमा नहीं कर सकती।" शंकर जी ने सिर झुकाए हुए ही दबे स्वर से कहा—"देवि! पर तुम्हारे इस पुत्र को पुनः जीवन दान दिया जा सकता है, अभी तक ये केवल तुमसे उत्पन्न तुम्हारा ही पुत्र था, अब मैं भी सम्मिलित होऊँ, तब दोनों का पुत्र कहलावेगा" क्रोधाग्नि में मानों शीतल जल पड़ा। माँ ने कहा—"हाँ तुम्हें क्षमा की मिल सकेगी। मेरे इस पुत्र को जीवित करना होगा। इसे समस्त देवताओं से उच्च माना जावेगा और समस्त गणों का अधीश्वर होगा, यदि तुम सब इतना कर सको तो माता क्षमा कर देगी।" यह शर्तें तो कुछ भी नहीं थीं, जहाँ जीवन की आशा नहीं थी, वहाँ इतना

स्वीकार करना कौन न चाहता शंकरजी ने बताया कि "किसी तत्काल उत्पन्न होते शिशु का मस्तक लाकर इस धड़ पर लगा दिया जावे तो बालक जीवित हो जावेगा।"

चौ०— खोज बहुत सुर शिशु की कीन्हीं। सफल न मानव शिशु तन चीन्हीं॥
प्रसवहिं इक हतिनी बन मिलेऊ। तेहि शिशु मस्तक ले धड़ धरेऊ॥
जीवित झट उठ बैठ गनेशा। एक दंत शिशु मस्तक लेशा॥
एक दंत गणेशहिं सोही। गजानन कहैं उन्हें सब कोही॥

देवताओं के बहुत ढूँढ़ने पर भी किसी मानव शिशु का मस्तक उस समय नहीं मिला। समीप के वन में एक हस्तिनी प्रसव कर रही थी। उसी के बच्चे का मस्तक लाकर गणेश जी के धड़ पर लगाया गया। गणेश जी जीवित होकर झटपट उठ बैठे। इस हथिनी के शिशु के एक ही दंत था। अतः गणेशजी एक दंत गजानन हो गये। "बोलिये एक दंत गजाननजी की जय॥"

चौ०— उठतही लाठी कर लै लीन्हीं। पुनः द्वार रक्षा तेहि कीन्हीं॥
माँ पर सहसा दृष्टि गयेऊ। माता झपट सुत गोदहिं लयेऊ॥
गोदि ले भवनहिं चलि धाई। विस्मृत शक्ति गौरी रूपहिं आई॥
देव सकल संतोषहिं चीन्हा। अंग भंग पूरण शिव कीन्हा॥

उठते ही उन्होंने हाथ की लाठी सँम्भाली, मानो कुछ हुआ ही न हो। उन्हें पुनः द्वार रक्षा करनी है। सहसा माता पर दृष्टि गयी। माता ने झपट कर अपने प्रिय पुत्र को गोद में ले लिया। वात्सल्य के जागृत होने पर फिर क्रोध कहाँ रह सकता है। पुत्र को गोद में लेकर माता भवन में चली गयीं, वे अपने महाशक्ति रूप से विस्मृत होकर गौरी के रूप में आ चुकी थीं। देवता शांत और अपने को संतुष्ट चीन्हने लगे क्योंकि भगवान शंकर की कृपा से उनके अंग-भंग पूर्ववत् हो गये थे, जो मर चुके थे, वे भी जीवित हो गये।

दोहा—सर्वश्रेष्ठ सब देवन्हहिं, प्रथम गणेशहिं मान।
बना अधीश्वर गणों का, शिव सकल करे उन ध्यान॥

देवताओं में गणेशजी सर्वश्रेष्ठ एवं प्रथम स्मरणीय = ध्यान करने योग्य माने गये। भगवान शंकर ने उन्हें समस्त गणों का अधीश्वर बना दिया।

ब्रह्माजी ने माता पार्वती से कहकर बड़े धूमधाम से उनका ब्याह ऋद्धि और सिद्धि नामक पत्नियों से कर दिया। गणेशजी जहाँ बल के अधिष्ठाता हैं वहाँ बुद्धि के भी। साथ ही वे विघ्नेश भी हैं उनके स्मरण मात्र से ही समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है। समस्त सिद्धियाँ समस्त सम्पत्ति उनके पूजन से प्राप्त होती है, इसी से वे हिन्दू मात्र में सर्वाधिक प्रिय देवता हैं।

शीघ्र लेखन कला में सम्भवतः कोई भी गजबदनी की तुलना नहीं कर सकता। भगवान व्यास को महाभारत लिखवानी थी पर उन्हें ऐसा लेखक चाहिये था

जो बिना रुके श्लोकों को लिखता जावे। किसी प्रकार व्यासजी ने गणेशजी को इस कार्य के लिये तत्पर कर लिया। गणेशजी ने इस नियम पर लिखना स्वीकार किया कि "जहाँ भी मेरी लेखनी को लिखने के लिये श्लोक न मिलेगा अर्थात् मेरे लिखने भर यदि आप न बोल सके तो मैं लिखना बन्द कर दूँगा।" व्यासजी ने स्वीकार कर लिया। इतना नियम यह और बढ़ा दिया कि गणेशजी जो कुछ भी लिखेंगे उसका अर्थ समझकर लिखेंगे। व्यासजी अनवरत धारा प्रवाह से श्लोक बोलते चले जाते थे और गणेशजी की लेखनी तालपत्र पर तूफान मेल की गति से दौड़ती जाती थी, जब व्यासजी को कुछ सोचना होता था तो वह एक कूट श्लोक (गूढ़) बोले देते थे, जितनी देर गणेश जी उस श्लोक को समझने के लिये रुकते, उतनी देर में व्यासजी आगे का श्लोक सोच लेते। इस प्रकार महाभारत में आठसौ से अधिक श्लोक गूढ़ हैं। देवताओं में सर्वश्रेष्ठ के साथ गणेशजी प्रथम पूज्य भी हैं।

बहुत दिनों तक देवताओं में यह विवाद चला कि यज्ञों में सर्वप्रथम किसकी पूजा हो, जब किसी प्रकार निर्णय न हो सका, वे ब्रह्माजी के समीप पहुँचे। ब्रह्माजी ने कह दिया "जो सर्वप्रथम पृथ्वी की परिक्रमा करके लौट आवे उसी की सर्वप्रथम पूजा हो।" देवता परिक्रमा को चल पड़े। सब अपने-अपने वाहनों पर थे, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, कोई बैल पर, कोई भैंसे पर, कोई गधे पर तो कोई खच्चर पर, कोई भेड़े पर तो कोई बकरे पर, कोई मयूर पर तो कोई मुर्गे पर। इस प्रकार पशु-पक्षियों में से जो जिसके वाहन थे वे उन सब पर बैठकर बड़े वेग से चले।

गणेशजी इस प्रतियोगिता में बड़े उदास हुए। एक तो उनका स्थूल शरीर, दूसरे वाहन चूहा। पैदल दौड़ें तो दौड़ नहीं सकते, वाहन पर बैठें तो वह भार के मारे चींटों की चाल चलता है। निराश होकर बैठ गये। देवर्षि नारदजी पर्यटन करते उधर आ मिले, उन्होंने गणेशजी को उदासीनता का कारण पूछा, गणेशजी ने सभी बातें साफ-साफ बतायीं। परम वैष्णव नारद जी बोले-"आप व्यर्थ चिंता करते हैं। पृथ्वी प्रदक्षिणा के लिये इतनी दौड़ धूप करना तो पागलपन है आप जानते ही हैं कि श्री हरि के रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं वे भगवान अपने नाम में निवास करते हैं, अतः पृथ्वी लीपकर उस पर 'राम-नाम' लिखकर आप उसकी प्रदक्षिणा करके ब्रह्माजी के समीप चले जाइये, इस प्रकार आप पृथ्वी तो क्या अखिल ब्रह्माण्डों की परिक्रमा कर लेंगे।

भला देवर्षि के वचनों पर कौन अविश्वास कर सकता है। हर्ष से गणेशजी उछल पड़े।

चौ०—झटपट भूमि लीपतेहि लीन्हीं। राम नाम चन्दन लिख दीन्ही॥
बड़े प्रेम से पूजा करेऊ। परिक्रमा राम नाम करि लयेऊ॥
तब ब्रह्मा समीप वे जायेऊ। परिक्रमा ब्रह्माण्ड करि आयेउ॥
ब्रह्मा ध्यान वस्तुका चीन्हा। गद-गद है प्रणाम उन कीन्हा॥

झटपट गणशेजी ने पृथ्वी को लीपकर उस पर चन्दन से राम नाम लिखा। नाम की पूजा करके अपने चूहे पर बैठकर उन्होंने उस नाम की परिक्रमा कर ली। फिर सीधे ब्रह्माजी के पास जा पहुँचे। ब्रह्माजी को आश्चर्य हुआ, जब पूछने पर गणेशजी ने कह दिया "मैं पृथ्वी तो क्या सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की परिक्रमा कर आया।" ब्रह्माजी ने ध्यान में वस्तुस्थिति का प्रत्यक्ष किया। गदगद होकर ब्रह्माजी ने गणेशजी को प्रणाम करते हुए कहा— **"सचमुच अग्र पूज्य हो आपू। राम-नाम कर लीना जापू॥"** आप सचमुच ही अग्रपूज्य हो। पृथ्वी की परिक्रमा करने वाला चाहे पूज्य न हो पर नाम-जप के विश्वासी को हम कैसे पूज्य न कहैं। आपने ऐसा आधार ले लिया है जिसके सम्मुख विश्व की समस्त शक्तियाँ तुच्छ हैं। जिसके लिये कोई भी कार्य कठिन है ही नहीं। नाम के विश्वासी के लिये दुर्लभ या अशक्य क्या हो सकता है।

उधर देवता चलते समय सोचते थे "गणेश विचारे आज अच्छे फँसे, सर्वश्रेष्ठ बनते थे, पर आज तो चले भी न होंगे। उनका तुन्दिल शरीर चूहा भला क्या ढोवेगा, पर तनिक देर पश्चात ही देवताओं के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्हें अपने वाहनों के आगे-आगे चूहे के पैरों के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। वे सोचने लगे "आज गणेशजी के चूहे में कितना बल आ गया है, वे कब हमसे आगे निकल गये। ये चिन्ह पुराने भी तो नहीं, अभी-अभी इधर से गया मालूम होता है, यह इन चिन्हों से स्पष्ट है।

देवता जितना भी आगे बढ़ते हैं उन्हें बार-बार चूहे के पैरों के चिन्ह मिलते ही गये। मार्ग में ही वे निराश हो गये। ब्रह्माजी के यहाँ पहुँचने पर वहाँ उन्होंने गणेशजी को चूहे के साथ बैठा पाया। बिना पूछे देवताओं ने स्वयं ब्रह्माजी को प्रणाम करके कहा—"हम लोगों ने स्वीकार कर लिया कि गणेशजी ही हम सब में प्रथम पूज्य हैं, आज इनके चूहे में पता नहीं कहाँ की शक्ति आ गई थी।"

ब्रह्माजी हँस पड़े। उन्होंने देवताओं को समझाया "भौतिक स्थूल शक्ति जो कि शारीरिक है, उससे भगवद् विश्वास रूपी सूक्ष्म शक्ति अत्यन्त प्रबल है। यही विश्वास शक्ति आज की गणेशजी की विजय का कारण है" देवता वहाँ से अपने लोकों को लौट आये। गणेशजी तब से ही प्रत्येक कार्य में प्रथम पूज्य माने गये।

गणेशजी लम्बोदर तो हैं ही, उन्हें लड्डुओं से विशेष प्रेम है। मोदकप्रिय प्रभु भक्तों के मोदक के भोग से बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं, उनकी प्रसन्नता से फिर दुर्लभ क्या? वे रिद्धि और सिद्धि के पति भी हैं। अतः सिद्धि-दाता और विघ्नहरण हैं। ऋद्धि, सिद्धि से क्षेम तथा लाभ दो पुत्र उत्पन्न हुए।

शंकरजी के परिवार में कितनी विचित्रता-माता पार्वती, गणेशजी की दो पत्नियाँ ऋद्धि और सिद्धि, यहाँ तक तो सौंदर्य, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की पूर्णता हो गयी। गणेशजी स्वयं लम्बोदर और एकदंत, गजवदन, स्वामी कार्तिकेय षटमुख

और भगवान शंकर स्वयं पंचमुख एवं त्रिनेत्र, भूत पिशाचों के अंग वैभिन्न का कोई ठिकाना नहीं। प्रकृति की समस्त विचित्रता यहाँ एकत्र हो गई ।

अब रही वाहन की बात—गणेशजी का वाहन चूहा, शंकरजी के भूषण सर्प, उनके साथ ही कुमार कार्तिकेय का वाहन मयूर। देवी उमा का वाहन सिंह, भगवान शंकर का वाहर बैल और गणों के वाहनों में कुत्ते, श्रृगालादि। विश्व का समस्त वैभिन्न एवं द्वन्द भी एकत्र है।

न चूहा सर्प से डरता है, न सर्प मयूर से। सिंह न हाथी समझ गणेशजी पर झपटा न बैल पर। न कुत्ते भौं-भौं करते, न श्रृगाल हुआ-हुआ। यह परमात्मा का निवास है। विश्व के समस्त जीव चाहे वे परस्पर कितने भी विरोधी हों उनकी झोड़ी में एक-से हैं, उनके समीप पहुँच कर सब शांत हैं, यही समस्त विचित्रताओं का स्थान तथा समस्त विरोधी स्वभावों का एकीकरण है।

जहाँ शिव और शक्ति-ईश्वर और माया का एकत्र निवास है, वहीं समस्त सौन्दर्य, समस्त सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण विभूतियाँ हैं, समस्त विचित्रताएँ भी वहीं रहती हैं। समस्त विषमताओं का भी वही समन्वय होता है, इन दोनों में से जहाँ भी एक नहीं-वह अपूर्ण है। शिव के बिना शक्ति जड़ है और शक्ति के बिना शिव-शव। यह एक शिक्षा प्रभु दे रहे हैं कि शक्ति प्राप्त करो व शिव = परमेश्वर के आराधक बनो फिर समस्त सम्पत्तियाँ, विभूतियाँ, स्वतः पास आ जावेंगी। समस्त विचित्रताएँ अनूकूल रहेंगी। विश्व की विषमताएँ तुम्हारे लिये सम हो जायेंगी। (मानसमणि अक्टूबर 6)

कवित्त— "आपु विषय चाखैं, पुत्र षटमुख राखैं,
देखि आसन में राखैं बस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया आस-पास के रखैया
और काली के नथैया हूके ध्यान हू ते न चलै॥
बैल वाघ वाहन वसन को गयन्द खाल
भाँग और धतूरे को पसार देत अचलै।
घर को हवाल यहै शंकर की बाल कहै
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै॥"

सवैया—"आपु को वाहन बैल बली बनिता हू को वाहन सिंघहि पेखिकैं।
मूसे को वाहन है सुत एक के दूजो मयूर के पच्छ विशेखिकैं॥
भूषण है कवि चैन फनिन्द के बैर परे सबते सब लेखिकैं।
तीनहु लोकन के ईश गिरीस सुजोगी भये घर की गति देखि कैं॥

(जै शिव)



(9) चित्रकेतु को शाप

श्लोक—"नारायण पराः सर्वे न कृतश्चन विरूपति।
स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपि तुल्यार्थ दर्शिनः॥

"श्री हरि के भक्तवृन्द कहीं भी डरते नहीं। वे स्वर्ग, मुक्ति और नर्क सबमें समदृष्टि वाले हो हैं।"

महाराज चित्रकेतु के समस्त सम्पत्ति होने पर भी संतति न थी। महर्षि अंगिरा एक दिन उनके यहाँ पधारे। महापुरुषों की जिस पर कृपा हो जाय, उसका तो कल्याण निश्चित है। महापुरुष प्राणीमात्र का आत्मिक कल्याण चाहते हैं, वे भौतिक विषयों से दूर करके प्राणी को प्रभु के श्रीचरणों तक पहुँचाना चाहते हैं, पर सभी कार्यों के लिये समय होता है। परिस्थिति अनुकूल मिलने पर ही प्रयत्न सफल होते हैं। महर्षि ने देखा कि राजा का चित्त पुत्र के लिये इतना आतुर है कि वे दूसरी ओर ध्यान दे ही नहीं सकते। इस समय उन्हें वैराग्य आ ही नहीं सकता, अतः जाते समय महर्षि राजा को पुत्रोत्पत्ति का वरदान दे गये।

चौ०—बहुत रानियाँ थीं महाराजा। बड़ी रानिहिं सफल भयो काजा॥
पुत्र उत्पन्न गर्भ उन जायेउ। राजउ उत्सव भरपूर मनायेउ॥
खुले हाथ नृप दानहिं दीन्हा। इच्छा पूर्ण सफल उन चीन्हा॥
पुत्रवती रानी अति प्यारी। दूसर रानीं सबही विसारी॥

महाराज के बहुत सी रानियाँ थीं। उनमें से बड़ी राज महिषी के गर्भ से समय पर पुत्र उत्पन्न हुआ। राज्य में भरपूर उत्सव मनाया गया। राजा ने खुले हाथों दान-पुण्य किये, राजा की चिर अभिलाषा सफल हुई। जो वस्तु जितनी अभिलिषित होती है, जितनी देर व चेष्टा से मिलती है वह उतनी अधिक प्रिय भी होती है। राजा का सम्पूर्ण स्नेहवश उस पुत्र पर केन्द्रित हो गया। उस पुत्रवती स्त्री पर प्रेम स्वाभाविक ही अधिक रहा, परिणाम यह हुआ कि पुत्र स्नेह के कारण दूसरी स्त्रियों को भूल ही गये।

चौ०—पतिहि उपेक्षा मृतु सम जानी। अन्य नारि मन ईर्ष्या आनी॥
मोहजन्य कामहि यह होई। द्वेष क्रोध उनमें उपजोई॥
बदला लैन भावना जागी। इक पुत्र के हेतु राउ हम त्यागी॥
महाराज अब बोलन चीन्हा। मिल सबने सुत विष तेहि दीन्हा॥

स्त्री के लिये पति की उपेक्षा ही मृत्यु समान होती है। दूसरे सपत्नी से ईर्ष्या करने की नारी जाति में स्वभावतः प्रवृत्ति होती है वह यही चाहती है कि मेरा प्रियतम केवल मुझसे ही प्रेम करे, उनके हृदय पर एकमात्र मेरा ही अधिकार रहे। यह मोहजन्य काम है। जब कामपूर्ति में बाधा पड़ती है तो क्रोध उत्पन्न होता है और प्रिय

के प्रेम के विभक्त होने का संदेह होने पर द्वेष होता है, इसी द्वेष को स्त्री में सौतिया डाह कहते हैं। द्वेष और क्रोध में बदला लेने की भावना उपजताी है उसे भले बुरे परिणाम का भी ध्यान नहीं रहता, उन रानियों ने द्वेषान्ध होकर सोचा "देखो केवल एक पुत्र होने के कारण ही ये रानी महाराज की प्रिय है और पुत्र न होने से हम सब इनकी दासियों से भी गई बीती हो गयीं, महाराज हमसे बोलते भी नहीं" द्वेष प्रचंड होता ही गया। अंत में उन सबों ने मिलकर उस राजकुमार को विष दे दिया।

दोहा—राजकुमार की मृत्यु से, भयो राज्यहि हाहाकार।
माता-पिता शव कुमर का, लख खाये बहुत पछार॥1॥

राजकुमार की मृत्यु से राज्य में हाहाकार मच गया। उस कुमार की माता और पिता महाराज तो शव को देखते ही बार-बार पछार खाने लगे, पुनः मूर्छित हो जाते। वे उन्मक्त से हो गये।

इसी समय नारद सहित, ऋषि पहुँच अंगिरा आय।
समझाया बहुभाँति नृप, पर नहीं समझ उर लाय॥2॥

इसी समय देवर्षि नारद के साथ महर्षि अंगिरा पुनः पधारे, उन्होंने राजा को बहुत प्रकार से समझाया, पर शोक में समझाना है टेढ़ा। महाराज के हृदय में समझ का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

अंत में योग शक्ति से देवर्षि ने उस कुमार की आत्मा का आकर्षण करके उससे कहा "ओ जीव! तेरे माता-पिता इतने दुःखी हो रहे हैं, तो अपने इस शरीर में आकर इन्हें सुखी कर।"

जीवात्मा ने उत्तर दिया "देवर्षि! ये किस जन्म के मेरे माता-पिता हैं? अरे इस संसार चक्र में कौन किसका माता-पिता! जाने कितनी बार मैं इनका पुत्र हुआ होऊँगा और पता नहीं कितनी बार ये मेरे पुत्र। इस जगत में अपने कर्मों के वश ही जीव भ्रमण करता है। जहाँ जितने दिन कर्म का भोग है वहाँ उतने दिन रहकर भोगता है" यह कह कर जीवात्मा चला गया।

चौ०—नृपहिं सुनी अव्यक्तहिं बाता। शोक मोह दूरि होइ जाता॥
देवर्षि उन से अस कहेऊ। जैसे कष्ट पुत्र तुम भयेऊ॥
तैसेहि स्त्रीधन परिवारा। कोष राज सकल तुम सारा॥
निरासक्त इन सबहोइ जाहीं। भजन प्रभु कल्याण कराहीं॥

इस अव्यक्त वाणी को महाराज ने सुना, उनका शोक, मोह दूर हो गया। उन्होंने पुत्र के शरीर का संस्कार किया। देवर्षि ने उन्हें समझाया कि "पुत्र के द्वारा जैसे कष्ट होता है, वैसे ही इन समस्त स्त्री, कोष, धन, राज्य एवं परिवारों से भी। इनसे निरासक्त होकर भगवान का भजन करने में ही कल्याण है। सांसारिक पदार्थों में आसक्ति ही दुःख का कारण है।"

चौ०—समझाया शेष मंत्रहिं दीन्हा। सविधि बताय विदा ऋषि लीन्हा॥
चित्रकेतु विरत भै जबहीं। ऋषि उपदेश लगनकरि तबही॥
साधन दृढ़ विश्वासहि कीन्हा। शेष प्रभु दर्शन तब दीन्हा॥
विद्या रूप साधनहिं धारा। विद्याधर उस देह अकारा॥

समझाकर और भगवान शेष का मंत्र सविधि बताकर वे ऋषी युगल वहाँ से विदा हुए। महाराज चित्रकेतु देवर्षि नारद के उपदेशानुसार विरक्त होकर बड़ी लगन, दृढ़ विश्वास से साधन करने लगे। साधन के प्रभाव से उन्हें भगवान शेष के साक्षात् दर्शन हुए। उस विद्या रूप साधन को धारण करने के कारण शरीर परिवर्तन हुए बिना ही विद्याधर हो गये। पृथ्वी को छोड़कर वे विद्याधरों के लोक में रहने लगे।

चौ०—पृथ्वी लोक छोड़ दिया तब ही। विद्याधर लोक गये वे जब ही॥
दोहा— नभ मार्ग जाते हुए, (ऊपर) कैलाश विमान से देख।
गोद लिये शिव उमहिं को, उपदेशहिं मुनीन्ह लेख॥

चित्रकेतु एक दिन विमान से आकाश मार्ग से होकर कैलाश के ऊपर से जा रहे थे। उन्होंने देखा कि भगवान शंकर उमा को गोद में लिये मुनियों की सभा में बैठे ज्ञानोपदेश कर रहे हैं (नोट—गुण चंचल हैं, उनमें स्थिरता रह ही नहीं सकती। अतः जो गुणों के भीतर है वह एक गुण में स्थिर नहीं रह सकता। चाहे जैसा महापुरुष हो, पर उसके मन में भी रजोगुण, तमोगुण आते ही रहते हैं क्योंकि मन तो त्रिगुणों से ही बना है। मन शरीर रहते तक रहेगा और मन रहते तक उसमें गुणों का प्रभाव भी रहेगा।)

चौ०—चित्रकेतु कहँ बुरा लगा यह। राजस वृत्ति जाग्रत मै तहँ।
उच्च स्वरों से बोल सुनाये। अस स्त्री एकान्तहिं भाये॥
पर ये तो धर्मन्ह के निर्माता। आदर्श लोक योगी विख्याता॥
ऋषिन्ह मध्य स्त्री अंकहिं लेई। साथ ही ज्ञानोपदेशहिं देई॥

चित्रकेतु को यह बात बहुत बुरी लगी, उनकी राजस वृत्ति जागृत हो गयी, वे उच्च स्वर से बोले—"संसारिक पुरुष भी स्त्री को एकान्त में रखते हैं, पर यह धर्मों के निर्माता, लोक के आदर्श, योगीश्वर होने पर भी ऋषियों की सभा में स्त्री को अंक में लिये हुए हैं और साथ ही ज्ञानोपदेश दे रहे हैं, यह कितना बुरा है।"

चौ०—तेहि बात शिव ध्यान न दयेऊ। पार्वती से सहन नहिं भयेऊ॥
बोलीं क्या ये ही विश्व शासक। धर्म वेत्ता ऐश्वर्यहि भाषक॥
ऐसे पुरुष भक्त नहिं होहीं। धृष्टता का फल भोगो जोहीं॥
कुछ दिन राक्षस योनि रहेऊ। ऐसा साहस करि न सकेऊ॥

महापुरुषों की लीला के विषय में तुच्छ बुद्धि लोग व्यर्थ में कुकल्पना कर लेते हैं। उनके चरित्र की आलोचना करने की अनाधिकर चेष्टा करके वे अपना ही

अकल्याण कर लेते हैं, भगवान् शंकर भला ऐसी बातों पर क्यों ध्यान देने लगे? वे चित्रकेतु की बात सुनकर केवल मुस्करा गये, पर माता पार्वती से सहन नहीं हुआ। वे बोलीं "क्या यही आजकल विश्व का शासक है, हम जैसे कुपथगामियों को यही ठीक करने वाला है। जिस बात को ये महर्षिगण अनुचित नहीं मान रहे हैं उसे अनुचित बताने का गर्व करने का इसे क्या अधिकार है? यही सबसे बड़े धर्मों का वेक्ता है, धन एवं ऐश्वर्य से भक्त ऐसा भाषण देने वाला भगवान का भक्त नहीं हो सकता। बेटा! तुम अपनी धृष्टता का फल भोगो, कुछ दिन राक्षस योनि में रहो, जिससे फिर ऐसी धृष्टता करने का साहस न हो ।

दोहा—जो भी हो, भगवान का, भक्त रहा चित्रकेतु।
विमानहिं से नीचे उतरि, मुख खिन्न चिन्ह नहिं लेतु ॥1॥
पार्वती चरनन पड़ा, कीन्हा उनहिं प्रणाम।
छूटकारा शाप न चाहता, माँ कष्ट बचन मम बाम ॥2॥
क्षमा करैं उसके लिये, कष्ट शाप नहिं आन।
प्रारब्ध हि सब होत हैं, शाप और वरदान ॥3॥

जो भी हो, चित्रकेतु था तो भगवान का ही भक्त। वह विमान को नीचे लाकर उतरा। तनिक भी खेद का चिन्ह उसके मुख पर न था। उसने पार्वती जी के चरणों में प्रणाम करके कहा "माँ! मैं शाप से छुटकारा नहीं चाहता, पर मेरे बचनों से जो आपको कष्ट हुआ, उसके लिये आप मुझको क्षमा करें। रहा शाप, सो न तो कोई किसी को कष्ट दे सकता है औन न सुख। न शाप दे सकता, न वरदान। देवता मनुष्य के लिये शाप या वरदान जो भी देते हैं वह उस पुरुष का प्रारब्ध ही होता है।

इस संसार चक्र में शाप या वरदान, स्वर्ग या नर्क मूल्य ही क्या रखते हैं। सब एक समान बन्धन के होने के कारण दुःखदायी ही तो हैं। अतः कष्ट देने के लिये ये आप मुझे क्षमा करें।"

चौ०—बचन सुनत तेहि अचरज सबहीं। असंगता से चकित भये तबहीं॥
पार्वती मुख लख रहीं शंकर। स्वर गंभीर कहा प्रलयंकर॥
अनंत भक्त अचरज कोइ नाहीं। दासानुदास नारायण पाहीं॥
महत्व आप लोगों ने पेखा। भक्त सभी एकहि सम देखा॥

सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। चित्रकेतु की असंगता से चकित सभी एवं पार्वती जी श्री शंकर जी के मुख की ओर देख रही थीं। प्रभु प्रलयंकर गम्भीर स्वर में बोले—"भगवान अनन्त के भक्तों के लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान नारायण के दासानुदास का महत्व आप सब लोगों ने देखा। ये श्री हरि के भक्त, स्वर्ग, नर्क, यहाँ तक कि मुक्ति में भी एक समान समझते हैं और सबमें अपने आराध्य का ही दर्शन करते हैं।

चौ०—सकल दर्श आराध्यहिं पाहीं। इनकूँ कहूँ न भय मन मांही॥
पार्वती ने शाप जो दयेऊ। वृत्रासुर पृथ्वी पर भयेऊ॥
अस्थि दधीचहिं तब दै दीन्हीं। निर्मित बज्र उसी से कीन्हीं॥
इन्द्र ने उसी बज्र से मारा। चित्रकेतु तब भयो उद्धारा॥

ऐसे भक्तों को उनके मन में कहीं भी भय नहीं हो सकता। पार्वती जी ने जो शाप दिया था, उसके कारण चित्रकेतु को पृथ्वी पर वृत्रासुर के रूप में आना पड़ा। तब दधीचि से अस्थि माँगने पर उन्होंने अपनी अस्थियाँ दे दीं, उन अस्थियों से वज्र का निर्माण हुआ और इन्द्र ने उस वज्र से वृत्रासुर को मार कर चित्रकेतु का उद्धार किया। *(मानसमणि सतना सन 1966 नवम्बर मास से)*

❃ भगवान शिव ❃

(1) सित गंगा जल राशि, शीश पर, जटा विरति आकृति निर्मल,
दिव्य बाल शशि ललित भाल, शुचि तेज राशि मय मुख मण्डल।
जगत-दाधकारी प्रचण्ड विष द्वारा कृत सुकण्ठ श्यामल,
पुंजीकृत जग सुन्दरता सम अति सुडौल तन गौर सबल।
वश्य काल सम केलि-निरत फणि शोभित विस्तृत वक्षस्थल,
चरम दयामय दो लोचन हैं, चरम क्रोधमय एक अमल॥

(2) सदन गर्वहर गिरिजा सुखकर, योगेश्वर धृत बाल-स्वभाव,
तब उपासकों के हित रहता जग में कोई नहीं अभाव।
स्वयं ब्रह्म के तुम स्वरूप हो याकि ब्रह्म के अंश प्रधान,
अथवा हो आनन्द-सिंधु की गुरुतम लहरों के उत्थान॥
हो जाता जिस समय असंभव जगती में, दुर्भावदमन,
करते तब तुम उसमें हित कर नाश-रूप गुरु परिवर्तन॥



(10) हलाहल पान

श्लोक—अकाण्डं ब्रह्माण्डं क्षय चकित देवासुर
कृपा विधेयस्याऽसीद्यास्त्रि नयन विषं संहृतवतः।
संकल्पाषः कष्ठेतवन कुरुते श्रिय
महोविकारोऽपिश्लाध्यो भुवन भयभंग व्यसनिनः॥

"हे त्रिनयन! असमय में ही ब्रह्माण्ड के नाश से चकित सुर-नर-असुर सब की रक्षा के लिये आपने जो विष पान कर लिया, क्या वह कालिमा आपके कण्ठ

की शोभा को नहीं बढ़ाती (बढ़ाती है) संसार के भय को दूर करने के व्रती के शरीर में हुआ विकार भी प्रशंसनीय ही है।"

महर्षि दुर्वासा अपने क्रोध के लिये तो प्रसिद्ध ही हैं। उन्होंने एक दिन एक अप्सरा के पास कल्प वृक्ष के पुष्पों की एक बड़ी सुन्दर माला देखी, महर्षि का मन बच्चों का सा ही तो ठहरा, जाकर उससे माला माँग ली, माला लेकर वे अपनी धुन में मस्त जा रहे थे। मार्ग में ऐरावत पर सवार इन्द्र कहीं जा रहे थे। ऋषी के मन में आई और उन्होंने वह माला इन्द्र के ऊपर फेंक दी। इन्द्र ने ध्यान तो दिया नहीं, माला को ऐरावत के मस्तक पर डाल दिया। हाथी ने सूँड से माला उतार कर पृथ्वी पर फेंककर पैरों से कुचल दी।

महर्षि सब देख रहे थे, वे क्रोधित होकर बोले "इन्द्र! तुझे इतना अपने पद का अहंकार हो गया है कि तू मेरी माला का इस प्रकार अपमान करता है। अरे तुझे चाहिये था कि तू माला को सिर से लगाकर पहनता, इसमें अपना सौभाग्य समझता, पर उल्टे इतना अभिमन! तूने मेरे द्वारा अर्पित श्री का अपमान किया है, अत: तेरे समस्त भुवन की श्री = (लक्ष्मी, शोभा, तेज, ओज) नष्ट हो जायेगी।

इन्द्र भय से काँप उठे, ऐरावत से कूदकर महर्षि के चरणों पर गिरकर रोकर प्रार्थना करते हुए क्षमा माँगने लगो। महर्षि बोले "इन्द्र इस रोने-धोने से द्रवित होने वाले ऋषि यहाँ नहीं, वे तो दूसरे ब्राह्मण हैं, मेरा नाम दुर्वासा है, क्षमा करना मैं जानता ही नहीं।" महर्षि इन्द्र की उपेक्षा करके चले गये। त्रिभुवन की श्री नष्ट हो गई। इसी समय दैत्यों ने देवताओं पर चढ़ाई कर दी। श्री हीन देवताओं का हार जाना स्वाभाविक ही था, उनके घर द्वार सब असुरों के द्वारा ही छीन लिये गये।

देवता रोते-बिलखते ब्रह्माजी की शरण में गये, उनको साथ लेकर ब्रह्माजी देवताओं की, आर्तों की एकमात्र शरण श्री हरि के निवास क्षीरसिन्धु के तट पर गये। बहुत स्तुति करने पर कमल लोचन कमलेश प्रकट होकर बोले "इस समय तुम लोगों की स्थिति विपरीत है। नीति यह है कि दुर्दिन में शत्रु से भी सन्धि करके काम निकाल लेना चाहिए। तुम लोग अमृत में समान भाग देने को कहकर असुरों से सन्धि कर लो। इस प्रकार देवता और दैत्य दोनों मिलकर समस्त औषधियों को पहले इस क्षीर सिंधु में डालो। फिर मदराचल की मथानी और वासुकि नाग की रस्सी बनाकर इसका मंथन करो। इससे जो कालकूट विष निकलेगा, उससे डरना मत। साथ ही किसी भी दूसरी वस्तु में लोभ मत करना। व्यर्थ के सम्मान के कारण या लोभवश दैत्यों से लड़ना मत। इस भाँति जो अमृत निकलेगा वह तुम्हें मिलेगा। दैत्य केवल श्रम भागी होंगे। मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा। अमृत पीकर बलिष्ट एवं श्रीसम्पन्न होने पर ही तुम राक्षसों पर विजय प्राप्त कर सकोगे" आदेश देकर भगवान हरि तो अन्तर्हित हो गये, ब्रह्माजी भी अपने लोक को गये। इन्द्र कुछ प्रधान देवताओं को

लेकर दैत्यराज बलि के समीप जो इस समय स्वर्गाधीश थे पहुँचे।

दैत्यों ने इन्द्र को आता हुआ देखकर मारना चाहा, पर उन्हें निशस्त्र और शान्त भाव से आता देखकर रोक दिया। द्वारपालों ने इन्द्र के साथियों सहित दैत्यराज के पास पहुँचाया। इन्द्र ने बलि को अभिवादन किया। मर्यादा को जानने वाले बलि ने उठकर उनका स्वागत किया तथा उचित आसन दिया। बैठने के पश्चात् इन्द्र नम्रता से बोले "दैत्येश! मैं आपके समीप कुछ विशेष कार्यवश आया हूँ, यों तो हम लोगों में परस्पर लड़ाई झगड़ा होता रहता है, फिर भी हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं, भाई हैं। मुझे कोई भी इस बात का खेद नहीं कि मेरा स्थान आपने छीन लिया, वह पराये के पास तो है नहीं, बड़े भाई के ही पास है, स्वर्ग आपका ही रहे। पर मैं एक नवीन सम्पत्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। वह मेरे अकेले वश की नहीं। मैं चाहता हूँ कि देवता और दैत्य दोनों मिलकर क्षीर सागर का मंथन करें। ऐसा करने से उससे अमृत निकलेगा, उसे पीकर हम सब-मृत्यु से निर्भय हो जावेंगे। उस सिंधु मंथन से और जो कुछ निकलेगा, वह परस्पर सहयोग से विभक्त कर लिया जावेगा। आशा है आप मेरे प्रस्ताव से सहमत होंगे और इस महान उद्योग में मेरी सहायता करेंगे।"

आतुरता तो दैत्यों की प्रधान वस्तु ठहरी, महाराज बलि के कुछ कहने से पहले ही सभी उपस्थित दैत्यों ने एक साथ आनन्द से उछलते हुए कहा "अवश्य-अवश्य।" बलि ने भी इन्द्र के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मदराचल को देवताओं और दैत्य दोनों उखाड़ कर क्षीर सागर तक ले जाने लगे, पर्वत को उन्होंने उखाड़ तो लिया, पर उसका भार न संभाल सके। वह दोनों हताश हो गये, उन्हें निराश देख भगवान गरुड़ासन प्रकट हुए और उन्होंने पर्वत को गरुड़ पर रखकर क्षीर सागर तक पहुँचा दिया। वासुकी नाग रस्सी बनने के लिये तत्पर कर लिया गया। यों तो प्रारम्भ से इस समुद्र मंथन में श्रीहरि का हाथ था, उनके बिना देवता और दैत्य कर ही क्या सकते थे, उन सबों में इतनी शक्ति कहाँ? प्रभु ने ही मंदराचल को पहुँचाया, जब वह जल में स्थिर न रहकर डूबने लगा तो कच्छपावतार धारण कर उसे पीछ पर लिया, एक दूसरे रूप से पर्वत के ऊपर अवस्थित हुए, यहाँ तक कि जब मंथन करते-करते देव-दैत्य दोनों थक गये तो स्वयं मंथन भी किया। असुरों का हृदय ही अभिमानी होता है।

श्री हरि ने जब वासुकी के मुख की ओर भाग ग्रहण किया तो असुरों ने पूँछ पकड़ने से स्पष्ट मना कर दिया, इसमें उन्हें अपना अपमान दीख पड़ा। किन्तु अभिमानी सदा अपनी ही हानि करता है, लाभ सदैव विनम्र के पक्ष में रहता है। देवताओं ने सर्प का मुख भाग छोड़कर पुच्छ पकड़ ली, मुख दैत्यों को मिला। फल यह हुआ कि दैत्य बार-बार सर्प के मुख से निकलने वाली विषैली श्वाँस से झुलसने लगे और देवता सुरक्षित हो गये। दैत्यों को अपने अभिमान पर पश्चाताप तो हुआ,

पर स्वयं माँगी हुई विपत्ति तो उठानी ही थी।

प्रकृति का नियम है कि किसी भी अच्छे परिणाम होने वाले कार्य में विघ्न आते ही हैं। परिणाम जितना उच्च होगा विघ्न भी उतने ही प्रबल। जो अमृत चाहता है, उसे पहले हलाहल की तीव्रता सहन करने के लिये उद्यत रहना होगा। क्षीर सागर से प्रथम निकला भयंकर हलाहल विष।

चौ०—हलाहल विष प्रकट जब भयऊ। दिशाएँ तेज जलन लगि गयऊ॥
विष स्पर्श विषैली पवना। मूर्छित होन लगे पशु खगना॥
सुरासुर दोनों विचलित हों ही। त्राहि त्राहि शरणहिं प्रभु जोहीं॥
हरि ने उन्हहिं कहा विष हेतु। उपसंहार कर सक वृष केतू॥

विष प्रकट होते ही अपने उज्ज्वल तेज से दिशाओं को जलाने लगा। उसके स्पर्श से वायु विषैली होने लगी, उस भगवान नारायण की शरण गये। श्रीहरि ने उन्हें बताया कि इस विष का उपसंहार तो श्रीशंकर जी ही कर सकते हैं।

चौ०—देव प्रजापति अरु लोकपाला। पहुँच चरण आषुतोष कृपाला॥
भूसिर रख प्रणाम प्रभु कीन्हा। पुकार करी रक्ष गरलहिं दीना॥
सकल शिवहिं शरणातग भयऊ। डरो मती आश्वासन दयऊ॥
पूछा शिवहिं उमा माता से। शरण मैं रक्ष मम आशा से॥

देवता, प्रजापति लोकपाल आदि सभी दीनभाव से आशुतोष के श्री चरणों में पहुँचे, उन्होंने पृथ्वी में मस्तक रखकर प्रभु को प्रणाम किया और इस गरल से रक्षा की पुकार की। शरणागत की रक्षा ही परम धर्म है, "माभैः" डरो मत का तुरंत आर्त शरणागतों को भगवान आशुतोष से आश्वासन मिला। प्रभु ने माता उमा से पूछा—"प्रिये! ये देवतागण हलाहल से भयभीत होकर आशा लिये हुए मेरी शरण आये हैं। मुझे इनकी रक्षा करनी चाहिए। तुम कहो तो मैं इस भयंकर विष को पीकर के इनको निर्भय कर दूँ।"

अपने प्राणों पर संकट लेकर भी दीनों की रक्षा करना ही प्रशंसनीय कार्य है। सम्भवतः यह माता पार्वती की परीक्षा थी कि उनमें सचमुच प्रेम है या मोह। मोह शरीर के साथ होता है और प्रेम आत्मा के साथ। माता की तो परीक्षा ही व्यर्थ थी। बच्चों पर आपत्ति हो तो माता उसे अपने ऊपर स्वतः झेलकर बच्चों की रक्षा करती है। भक्तों के तनिक से आर्तनाद पर जो भवानी चंचल हो जाती है और प्रभु को स्वयं उसकी सहायता की प्रेरणा करती हैं वे भला बच्चों पर आपत्ति देखकर स्थिर रह सकती थीं, वे तो प्रथम से ही व्याकुल हो गयईं थीं, फिर भय तो उसे हो जो विश्वनाथ के प्रभाव को न जानता हो। माता भली प्रकार जानती थीं कि हलाहल में इतनी शक्ति नहीं जो प्रभु पर प्रभाव डाल सके उन्होंने उत्साह के साथ सम्मति दी।

दोहा— नन्दी पर बैठे शिवहिं, सहित पारवति माय।
चले देवगण के सहित, क्षीर सिन्धु तट आय॥1॥
मुस्कराकर हरि से कहा, अमृत तो आपका भोग।
पगले शंकर कूँ तो ही, पर्याप्त विषहि संयोग॥2॥

नंदी पर बैठकर माता पार्वती को लिये जगतत्पति देवताओं के साथ क्षीर सागर के तट पर आये। एक बार उन्होंने भगवान नारायण की ओर देखा, मुस्कराकर बोले—"अमृत तो आपका भोग है, पगले शंकर को तो विष ही पर्याप्त ।

श्री हरि हँस पड़े। उन्होंने उत्तर दिया 'आपकी माया के इस प्रपंच में कैसे विष और कैसा अमृत। दृष्टि मायिक है तो अमृत भी विष ही है और दृष्टि आपको देखती हो तो विष भी अमृत है। फिर आपके समीप पहुँचकर क्या कुछ विष रह सकता है। आपके दृष्टि मार्ग में पड़से से ही तो यह समस्त विषमय प्रपंच अमृत सा हो रहा है' भगवान शिव पुनः हँसे प्रभु की बातों का मर्म वो ही जान सकते हैं।

सम्पूर्ण सिंधु में मन्थन से दूध के ऊपर आये हुए मक्खन की भाँति ऊपर आये हुए विष को आषुतोश ने तनिक तनिक सा तक हाथों से एकत्र किया। फिर उसे अंजलि में उठाकर—'जैसे श्री राम' कहते हुए पान कर गये। "हृदय में आराध्य की मूर्ति और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है मुख से भक्तों को वरदान, ऋषियों को उपदेश देना पड़ता है" यह सोचकर शिवजी ने विष को न तो पेट में जाने दिया और न मुख में रखा। गले के भीतर ही उसे राम-नाम में मिलाकर स्थिर कर दिया। अर्थात् विष + राम = विश्राम पा गये।

थोड़े से विष के सीकर पीते समय हाथ से गिर पड़े। उन्हें ही ग्रहण करके विश्व के समस्त विषैले जीव तथा औषधियाँ विषैली हुईं। भगवान ने विषपान तो कर लिया, पर उसने अपना प्रभाव उन पर भी दिखलाया। कपूर की भाँति भगवान शंकर का श्वेत कंठ उसी समय नीला पड़ गया, प्रभु उसी समय से नीलकण्ठ हो गये। भगवान शंकर की यह कंठ नीलिमा भी जगत वन्दनीय हो गयी। केवल उसका रूप लक्षण होने से ही नीलकंठ पक्षी को भी लोग प्रणाम करते हैं। *(मानसमणि नवम्बर 1966)*

श्री नीलकण्ठ भगवान की जय

सवैया— कैसे महेश्वर हैं तन में जब छार लपेटिकैं बैल सवार हैं।
भक्तन के अभयंकर साथ भयंकर भूत-प्रेत अपार हैं॥
संकट में परिजात हैं आप यों औढ़रदानि के हेतु तैयार हैं।
भोले सदाशिव क्यों न बनैं। घर भूलि जिन्हें रुचे श्वेत पहार हैं॥

❑❖❑

(11) मोहिनी

श्लोक—"अपि व्ययस्यस्त्व भजस्य मायां परस्य पुसः परदेवतायाः।
अहं कलानाभृषभो विमुह्येयया वशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः॥"

"तुम लोगों ने अजन्मा महापुरुष परम देवता की उस माया को देखा ही जिसके वश में होकर भगवत्कलाओं में सर्वश्रेष्ठ मैं = शंकर भी मोहित हो गया। फिर दूसरे माया परतन्त्रों की तो चर्चा ही क्या?"

हलाहल पान के अनन्तर पुनः समुद्र मन्थन से केला[1], रम्भा[2], अप्सरा[3], मदिरा[4], कल्पवृक्ष[5], ऐरावत[6], उच्चेश्रवा घोड़ा[7], लक्ष्मीजी[8], शंख[9], कौस्तुभ मणि[10], चन्द्रमा[11] और कामधेनु[12] ये बारह और निकले। इनके लिये कोई विवाद नहीं हुआ। जो जिस के योग्य था उसने उसे ले लिया। अन्त में भगवान धन्वन्तरि[13] सुधा कलश[14] लिये हुए प्रकट हुए। बस झटपट दैत्यों ने वह कलश उनसे छीन लिया।

देवता दैत्यों के कलश छीन लेने से उदास हो गये। उधर दैत्यों में भी पहले और पीछे पीने के लिये विवाद हो रहा था। एक दूसरे के हाथ से कलश छीन रहे थे। दुर्बल दैत्यों ने देखा कि 'प्रबल दैत्य कलश की सुधा हमें नहीं देना चाहते' तो वे न्याय की दुहाई देकर देवताओं के भी भाग को दिलाने की माँग करने लगे। स्वार्थ एक होने पर शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। दुर्बल दैत्यों और देवताओं का स्वार्थ प्रबलों के विरुद्ध एक था, अतः वे देवताओं का पक्ष करने लगे। उद्देश्य तो यह था कि देवताओं को अमृत मिलेगा तो हमें भी मिल सकेगा ।

दोहा—अमृत देने सुरन्ह कहँ, हरि युक्ति निकाली ऐहि।
अपूर्व सुंदरी प्रकटेउ तुरत आपनी देहि॥

भगवान श्रीहरि ने देवताओं को अमृत देने की युक्ति निकाली, उन्होंने अपनी देह से अपूर्व सुन्दरी प्रकट की।

चौ०—सुन्दरि आवत दैत्यन्ह देखा। सौंदर्य घन स्त्री बनी विशेषा॥
असुर लखि सुन्दरि मुग्ध भयेऊ। शांत विवाद सुधा बाँट कहेऊ॥
चाहहिं यही श्री भगवाना। प्रथम तो अस मोहिनी न माना॥
दैत्य विचार कियो अस नाहीं। दृढ़ विश्वास भयो मन मांही॥

दैत्यों ने इस हड़बड़ी में एक अपूर्व सुन्दरी को अपनी ओर आते देखा, जब वही सौंदर्यघन ही स्त्री बन आया हो तो उसके सौंदर्य का कहना ही क्या? दैत्य मुग्ध हो गये। उन्होंने बड़े प्रेम से इस माया स्त्री से इस अमृत को बाँट कर विवाद शान्त करने को कहा। भगवान तो यही चाहते थे। मोहिनी ने प्रथम तो अस्वीकार किया। इस अस्वीकार ने उस उस पर दैत्यों के विश्वास को और दृढ़ कर दिया।

चौ०—मोहिनी वाक्य चतुरता कीन्हीं। सम्मुख शर्त दैत्य रख दीन्हीं॥

उचित कि अनुचित जैसा करऊँ। सुधा विभाजन मैं अनुसरऊँ॥
दोनों पक्ष स्वीकार करेऊ। बैठि पृथक पंक्तिन्ह धरेऊ॥
पिलाना शुरू देवतन्ह कीन्हा। दैत्य कटाक्ष मुग्ध करि दीन्हा॥

दैत्यों ने सौंदर्य एवं वाक्य चातुरी से भ्रम में पड़कर मोहनी की यह शर्त स्वीकार कर ली कि "मैं उचित या अनुचित जैसा भी विभाजन करूँगी सभी को स्वीकार होगा" देवताओं और दैत्यों की अलग-अलग पंक्ति बैठा कर मोहिनी ने देवताओं को अमृत पिलाना प्रारम्भ किया, वह दैत्यों पर कटाक्ष कर उन्हें मुग्ध भी करती जाती थी।

दोहा— सुरन्ह पिवावतहिं पछैं, हमें पियावै आप।
विवाद प्रतिज्ञा ठीक नहिं, बैठे रहे चुपचाप॥

देवताओं के पश्चात् हमें पिलावेगी, स्त्री से स्वयं प्रतिज्ञा करके विवाद करना ठीक नहीं। इसी विचार से दैत्य चुपचाप बैठे रहे। मोहिनी का सौंदर्य और उसका कटाक्ष उनकी उत्तेजना को और भी शांत कर रहा था।

चौ०—उतावला होइ दैत्य सुरभानू। बैठ गया सुर पंक्तिन आनू॥
भगवानहि पता लगि जाही। सुरन्ह सभी अमृत लै पाहीं॥
झट स्त्री वेष त्याग निज धरेऊ। चक्र काटि सिर भूपर डरेउ॥
पी चुका अमृत सुर्भानुहि। सिर राहू धड़ केतू मानहिं॥

उतावला होकर स्वर्भानु नामक दैत्य देवताओं की पंक्ति में आ बैठा, पंक्ति का वही अंतिम व्यक्ति था, भगवान को अमृत पिलाते समय पता लगा यह तो दैत्य है, देवता अमृत पी चुके थे, भगवान ने झट स्त्री वेष त्याग कर अपना चतुर्भुज रूप धारण किया, चक्र से स्वर्भानु का सिर काट डाला। फिर तुरंत अन्तर्हित हो गये। स्वर्भानु अमृत पी चुका था अत: सिर कटने पर भी मरा नही उसका सिर राहू नामक ग्रह हुआ और धड़ केतू माना गया।

चौ०— दैत्यनभान विष्णु स्त्री वेषा। रही न आश सुधा पिव शेषा॥
क्रोधोन्मत्त सकल होइ जाही। धाबा बोल सुरन्ह पर ताहीं॥
सुधापान सुर अमरहिं भयेऊ। मृत्यु भय उन्हें नहिं रहेऊ॥
छिड़ा भयंकर युद्धहिं ताहीं। दैत्य प्रधान बहुत मरि जाहीं॥

अब दैत्यों को पता लगा कि वह तो स्त्री वेष में विष्णु थे। दैत्यों को अमृत पाने की आशा जाती रही। क्रोधोन्मत्त होकर उन्होंने देवताओं पर आक्रमण कर दिया अर्थात् धावा बोल दिया। देवता तो अमृत पीकर अमर हो गये थे। मृत्यु का भय तो था ही नहीं। बहुत भयंकर देवासुर संग्राम छिड़ गया। अस्त्र-शस्त्रों की भीषण वर्षा होने लगी। जय या पराजय तो भगवान की इच्छा पर है, दैत्यों के सभी प्रधान सेनापति युद्ध में मारे गये।

चौ०—बलि स्वयं मूर्च्छित भये तबहीं। संहार रोक आ नारद जबही॥

बलि स्वयं मूर्च्छित हो गये। नारद जी ने आकर देवताओं को दैत्यों के व्यर्थ संहार से रोका।

दोहा— संजीवनि विद्या से सकल, मृत दैत्यन्ह जीवित कीन्ह।
लेकर दैत्यगुरु उन्हें पातालहिं चलि दीन्ह॥

अपनी संजीवनी विद्या के प्रभाव से सभी मृत दैत्यों को जीवित करके दैत्यगुरु शुक्राचार्य उन्हें पाताल ले गये। देवताओं को उनका स्वर्ग प्राप्त हुआ।

भगवान शंकर को इस विष्णु भगवान के मोहिनी अवतार का पता लगा। मन में एक उत्कण्ठा हुई 'और सब अवतारों के दर्शन तो किये ही हैं, इस अवतार के भी दर्शन करने चाहिये। देखें श्री कमलापति का स्त्री रूप कैसा होता है।' पार्वती के साथ शिव वृषभ पर सवार होकर क्षीरसागर के तट पर आये। उनके स्मरण करते ही भगवान विष्णु प्रकट हो गये। परस्पराभिवादन के अनन्तर शंकर जी ने अपने आने का उद्देश्य बतलाया। शेषशायी हँसे, उन्होंने कहा—"यह नवीनता की उत्कण्ठा आप में भी जाग्रत हो गयी। अच्छा मैं इसे पूर्ण करूँगा।" इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये।

चौ०—ध्यान शिवहिं लखि इत उत जाइकें। कहँ स्त्री हरि प्रकटें आइकें॥
गेंद खेलती सुन्दरि देखी। मन उत्कंठा उठी विशेषी॥
मुग्ध कामारि सुंदरि पेखहिं। भूले निकट पार्वती देखहिं॥
नेत्रन मनहिं आइबसी बाला। देह जगत सुधि भूलि तत्काला॥

शंकर जी बड़े ध्यान से इधर-उधर देख रहे थे "कहाँ से श्रीहरि स्त्री रूप में प्रकट होते हैं।" सहसा सम्मुख थोड़ी दूर पर गेंद खेलती हुई एक सुन्दरी दिखाई दी। एक हाथ से वह सिर से बार-बार खिसकते हुए वस्त्रों को ठीक करती जाती थी और दूसरे से गेंद उछालती इधर से उधर कभी लता की आड़ में और कभी सम्मुख घूम रही थी। एक तो स्त्रियों में स्वभावतः सौंदर्य एवं पुरुष के लिये आकर्षण होता है। दूसरे जिस सौंदर्य सागर के एक बिन्दु के लेशमात्र से यह समस्त स्वर्ग और पृथ्वी का सौंदर्य है वही स्वयं स्त्री बन आया था। कामारि उस सुन्दरी को देख कर मुग्ध हो गये। वे भूल गये कि "समीप ही पार्वती खड़ी देख रही हैं।" सम्पूर्ण मन एवं नेत्रों में वह आकर बाला बस गई, शरीर की संसार की तत्काल सुधि भूल गये। आज कामारि काम के द्वारा जीत लिये गये।

चौ०—कोई भी यहि नहिं कह सक। माया जीत लई मैंने भरसक॥
माया विश्वेस इच्छा कहँ नामा। अविद्या जन्य फिरें वश कामा॥
थोड़ी दूर गेंद चलि गयेऊ। लेने सुन्दरि दौड़ति भयेऊ॥
झीना वस्त्र पवन उड़ चाला। नग्न भई वह सुन्दर बाला॥

कोई भी यह नहीं कह सकता कि "मैं माया को जीत चुका हूँ।" माया उस

विश्वेष की इच्छा का ही दूसरा नाम है। अविद्याजन्य मनुष्य ही काम के वशीभूत होते हैं, पर इस अज्ञान पर विजय पा लेना एक बात है और उस विश्वेष की इच्छा दूसरी बात। वह तो अमोघ है।

प्रभु संसार को शिक्षा देने के लिये स्वयं ही जाने क्या-क्या चरित्र किया करते हैं, उनके चरित्रों के रहस्य को न समझने के कारण ही अल्पज्ञ लोग इन पर विकारों का आरोप करते हैं। रामावतार में वे सीता के वियोग में पागल से हो गये। श्रीकृष्णावतार में शाल्व के द्वारा पिता का माया निर्मित शव देखकर मूर्च्छित हो गये और आज शिव रूप में मोहिनी पर मोहित हो गये। प्रभु में न तो रामावतार में आसक्ति थी, न कृष्णावतार में मोह और न यहाँ शिव में काम है। यह तो संसार को शिक्षा देने के लिये आचरण है "योगीश्वर भी स्त्री के दर्शनमात्र से इतना काम परवश हो सकता है। अत: साधक और सिद्ध सावधान रहें। वे स्त्रियों के बीच में, उनके संग में अपने मन पर विश्वास करके न रहें, मन विश्वास योग्य नहीं होता।"

गेंद थोड़ी दूर चली गई, वह सुन्दरी दौड़ कर उसे लेने चली। वस्त्र तो उसका बहुत पतला था ही, पवन तनिक वेग से चला, और वस्त्र उघड़ दूर ले गया, वह बाला नग्न हो गयी।

दोहा— रोक न सक शिव स्वयं को, कामोन्मत्त होइ तेहि जाय।
आते देखि लज्जा वो हँसी, निज अंगहिं हस्त छिपाय॥1॥
शंकर जी ने दौड़ तेहि, पकड़ अंक भर लीन्ह।
बाघम्बर छूट पहले हि गिरा, नग्न शरीरहिं कीन्ह॥2॥

शंकरजी अपने को रोक न सके, वे कामोन्मत्त होकर उसकी ओर चले। इन्हें अपनी ओर आते देखकर वह स्त्री लज्जा से कुछ हँसती हुई, लताकुन्जों में छिपने लगी। दौड़कर शंकरजी ने उसे पकड़कर अंक में भर लिया। इनका वाघम्बर तो पहले ही छूट गिरा था, वे भी नग्न हो गये।

बड़ी शीघ्रता से उस स्त्री ने अपने को इनके वाहुपाश से छुड़ा लिया। कामोवेश होते ही शक्ति का, बल का तो ह्रास हो जाता है, अत: वह अपने को छुड़ा लेने में सफल हुई। अपने को छुड़ाकर वह भाग गयी और शंकर भी उसके पीछे दौड़े। स्पर्श ने काम को और भी उत्तेजना दे दी थी। अब आगे-आगे वह सुन्दरी और उसके पीछे भगवान दौड़ रहे थे। दोनों ही नग्न थे। वह सुन्दरी लज्जा और भय मिश्रित नेत्रों से बार-बार पीछे देखती। उसका वह कटाक्ष उत्तेजना को बढ़ाता ही जाता था।

जिसका मन संयत नहीं, संयम के द्वारा बलिष्ट नहीं, वे किसी ओर भी दृढ़ता से नहीं लग सकते। उनमें न तो परमार्थ की ओर उतनी लगन होती है और न विषयों की ओर। उनमें कामादि विकार आते हैं वे भी शिथिल होते हैं, उन विकारों का शीघ्रता से दमन हो सकता है। यही कारण है कि हमारे लिये ऋषि मुनियों की विषयों

की इतनी प्रबल मोहकता हमें आश्चर्य में डाल देती है जिसका मन बलिष्ठ है संयत है, एकाग्र होना सीख चुका है वह जिधर भी लगता है, बड़ी दृढ़ता से लगता है, जब वह कहीं भी एक ओर लगता है तो उस समय उसे उधर से हटाना सरल नहीं होता। कारण यह है कि उनका मन एक स्थान पर एकाग्र होना सीख चुका है जब वह दूसरी ओर लगता है तो वह एकाग्र होने का स्वभाव उसे वहाँ सफलता देता है, इसी प्रकार महापुरुषों का संयत मन जब कदाचित विषयों में प्रवृत्त होता है तो वह उधर भी पूर्णरूपेण लग जाता है। उस समय उसका निग्रह अशक्य ही है।

पर्वतों पर, वनों में, नदियों के किनारे, ऋषियों के आश्रम में, स्वर्गादिलोकों में, सब कहीं वह माया सुन्दरी भागती फिरी तथा उसके पीछे शिवजी भी। माता पार्वती, रुद्रगण, देवता एवं ऋषिमुनि सभी चकित से इस दृश्य को देख रहे थे, पर किसी का साहस बोलने का नहीं होता था। यह समझने का समय भी न था, उस समय अपने आवेश से विरुद्ध कुछ सुनने और समझने की शक्ति उसमें नहीं होती, उस समय यदि उससे कुछ कहा जायगा तो स्वभावतः उसे वह अपने उद्देश्य की बाधा समझेगा, फलतः काम में बाधा पड़ने से क्रोध होगा। वह उपदेश देने वाले का ही अनिष्ट करने की चेष्टा करेगा।

यदि उत्तेजना अधिक देर तक रह जाय तो उसका जो परिणाम होना चाहिये, वह यहाँ भी हुआ।

चौ०—रेतःपात शिव दौड़त भयऊ। उत्तेजना तब शांत है गयेऊ॥
वे खड़े हुए अपने कूँ देखहिं। उन्मत्त दशा अचरज से पेखहिं॥
मुस्करा कर शिव अस कहेऊ। माया प्रबल मायामय भहेऊ॥
उससे मुग्ध भये मैं याहीं। बड़ी बात किमि कह नहिं जाहीं॥

दौड़ते-दौड़ते ही भगवान शंकर का रेतपात हो गया। बस काम की उत्तेजना की यही इति है, इसके बाद तो पश्चात्ताप की बारी आती है शंकरजी की उत्तेजना शांत हुई, वे खड़े हो गये, आश्चर्य से उन्होंने अपने को और अपनी उन्मत्त दशा को देखा। साधक के लिये एकमात्र पश्चात्ताप ही उसे पवित्र करने का साधन है, पर जो अहंकार शून्य है, जिसमें कर्त्तापन का अभिमान ही नहीं, वे किस बात के लिये पश्चात्ताप करें। जब "मैंने किया" यह भाव होगा, तभी तो फल के दूषित होने पर पश्चाताप होगा। भगवान शंकर और अहंकार! अहंकार तो उनके श्रीचरणों के स्मरण से दूसरों का भी भस्म हो जाता है। तनिक भी पश्चाताप नहीं हुआ। मुस्करा कर शिवजी ने कहा "मायामय" तुम्हारी माया अत्यन्त प्रबल है। मैं उससे मुग्ध हो गया यह कौन बड़ी बात हुई।

चौ०—मेरे द्वारा यहि लीला चाही। मैं प्रसन्न इच्छा तुम पाही॥
प्रणाम करहिं कर जोड़े बाला। अन्तर्हित स्त्री तत्काला॥

वहाँ तो खड़े श्री घनस्यामा। शंख चक्र गद पद्म ललामा॥
चतुर्भुज रूप धरयो प्रभुताहीं। देखा विमोहित रूपमय चाहीं॥

मेरे द्वारा यह लीला ही करनी थी तो मैं इसमें भी प्रसन्न हूँ जैसी तुम्हारी इच्छा। हाथ जोड़कर उन्होंने कुछ दूर खड़ी उस सुन्दरी वाला को प्रणाम किया। उसी क्षण वह स्त्री रूप अन्तर्हित हो गया। वहाँ तो साक्षात् घनस्याम चक्र, शंख, गदा चक्रधारी चतुर्भुज वनमाली अपनी छवि में खड़े थे। नारायण ने हँसते हुए कहा "शंकर जी! आपने मेरा असुरों को विमोहित करने वाला मोहिनी वेश देखना चाहा था। वह तो देख लिया न।

दोहा— गंभीर हो शंकर कहा, देखा भली प्रकार।
आपकी लीला का भला कौन पाइ सकै पार॥

"भली प्रकार देख लिया। वेश को ही नहीं, उसकी मोह की शक्ति को भी। आपकी लीला का भला कौन पार पा सकता है" उत्तर में गंभीरता से श्री शंकरजी ने कहा।

शंकरजी का यह स्वलित वीर्य जहाँ-जहाँ भी पड़ा, वहाँ पारे और सोने की खानें हो गयीं। कुछ अंश उसी का उड़ाकर पवन ने कर्ण मार्ग से माता अंजना के उदर में पहुँचा दिया जिससे महावीर हनुमान जी की उत्पत्ति हुई। शंकरजी पार्वती के साथ वहाँ से कैलाश को पधारे और विष्णु भगवान क्षीर सागर।

(मानसमणि दिसम्बर 1 56 से)

❃ झूलनोत्सव ❃

चेतावनी— **"काम क्रोध मद लोभ गरव की रसरी।**
विवर्तवाद अध्यास भुलाती रहती है फँसरी॥

इस हाय-हाय भरे विकराल काल के अखिल प्रकृति में प्राकृत झूला याद होता जा रहा है जिस पर जिंदगी की नींद आ जाती है। आवरण-माया की सत्ता में यह जीवन दीर्घकाल जला है क्योंकि जन्म-मरण के कर्मों का रसपान किया है। पशु बना है। विज्ञान कला, प्रलयकाल-सकल पशु तो हैं हीं। अब आगे बढ़ो भगवत्भक्ति की गंभीरता की ओर। यहाँ पर परमात्म तत्व का झूला है। यह वह पालना है जिस पर 'ॐकार' के सर्वात्मक झूला पर अलख निरंजन सच्चिदानन्द झूलता है।

वह अखंड-तत्व अविभकृसत्वा अनादि सिद्धि को साधन बना रखा है जो ब्रह्म में अनेकों कल्पना कर सकता है। योगमाया लीला मंच सजाती है, भूतनाथ झुलाते हैं, ब्रह्मा वेदों की स्वर लहरी में झूलते-झूलते झुलाते हैं। विष्णुजी विभूतियों के साथ, नारद मुनि वीणा के सरगम पर झुलाते-झुलाते झूल जाते हैं ।

हम झूलें तो छाया भी न साथ दे। ब्रह्म झूले, जमीं झूले, आसमा झूले। झूला

के चमत्कार ने अवतारों का प्रभाव विस्तार कर डाला। मनु ने झुलाया, यशुदा ने झुलाया, कौशल्या ने झुलाया। इनकी गोद में पाँवहि माया ब्रह्म! धन्य हे झूला! जय जय झूला! भक्ति ज्ञान का आसन झूला।

भक्तो झूलो और झुलाओ, बौद्ध-ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान अंतर में झुलाओ ।

मौत कभी भी मिल सकती है, जीवन फिर न मिलेगा।
मरने वालों सोच समझ लो, यह पल कल न मिलेगा।
अब न बनी तो फिर न बनेगी।

(जै शिव शंकर भोले की)

(ऋषी जीवन सितम्बर 1985 द्वारा राम नारायण द्विवेदी)



(12) नारी-प्रदेश

"सृष्टि के वैचित्र्य का किसको पता। तुच्छ बुद्धि मानव! तू भूत मत॥"

"मेरू के नीचे के एक अत्यन्त रमणीय कानन प्रदेश में भगवान शंकर पार्वती के साथ एक दिन एकान्त विहार कर रहे थे। अवाध गति सप्तर्षि घूमते-घामते विश्वनाथ के दर्शन को वहीं आ पहुँचे। पार्वती जी वस्त्रहीन थीं। आकाश से ऋषियों को आते देख वे अत्यन्त लज्जित होकर जल्दी से उठकर वस्त्र पहनने लगीं। ऋषियों ने प्रभु क्रीड़ा में विघ्न डालना उचित नहीं समझा, वे व्योममार्ग से ही लौटकर नर-नारायण ऋषि के आश्रम पर चले गये।"

ऋषि तो चले गये, पर पार्वतीजी की लज्जाा दूर न हुई। उन्होंने शंकरजी से कहा "आपके विहार स्थल पर भी पुरुष आवें, यह ठीक नहीं। पता नही कब कौन से ऋषि आ जावें, ऋषियों के आने का न तो कोई समय निश्चित है और न उनके आने में कोई रुकावट ही है। एक स्थान तो ऐसा होना ही चाहिए जहाँ दूसरा कोई न आ सके।"

दोहा— प्रभु कह अच्छा आज से, कोई पुरुष न इस बन आय।
यदि प्रविशि कोई पुरुष, स्त्री तुरत होइ जाय॥1॥

प्रभु ने कहा, "अच्छा अब आज से इस वन में कोई पुरुष न आ सकेगा। यदि कोई पुरुष इस वन में प्रवेश करेगा तो वह तुरन्त स्त्री हो जावेगा।"

आज्ञा सृष्टि विधायक, नियम सृष्टि के होंय।
इच्छा परमेश्वरहि की, प्राकृत नियम सँजोय॥2॥

सृष्टि विधायक की आज्ञा ही सृष्टि के नियम हैं, परमेश्वर की इच्छा का ही दूसरा नाम प्राकृतिक नियम है।

**चौ०–जो नियमों का है निरमाता। तेहि परिवर्तन कर सक धाता॥
उसी दिनहिं वन वर्जित भयेऊ। पुरुष जाति तेहि कोई न गयेऊ॥
शिवहीं पुरुष मात्र तहँ रहवाँ। पुरुष जाति पशु पक्षी न तहवाँ॥
मनु महाराज प्रथम शिशु पायो। स्त्री रूप इला वो जायो॥**

जो नियमों के निर्माता हैं, वह उसमें परिवर्तन भी कर सकते हैं, वह वन उसी दिन से पुरुषों के लिये वर्जित हो गया। पुरुष जाति के पशुपच्छी कीट पतंग भी उसमें नहीं रहते, वहाँ पुरुष तो एकमात्र भगवान शिव ही रहते हैं।

(**नोट**–परतंत्रता ही स्त्रीत्व है और स्वतंत्रता ही पुरुषत्व। पर आजकल इसका उल्टा हो रहा है अत: नाश का कारण बनता जा रहा है। यह विश्व वह वन है यहाँ पुरुष (स्वतंत्र) एकमात्र भगवान शंकर हैं, शेष सब स्त्रियाँ (परतंत्र) हैं। जो भी पुरुष (स्वतंत्र जीव) इसमें प्रवेश करेगा वह तुरन्त स्त्री (परतंत्र) हो जावेगा।)"

मनु महाराज के प्रथम संतति = शिशु जो कि यज्ञ से उत्पन्न हुई थी स्त्री इला के रूप में हुई।

**चौ०–आराधना प्रभू की कीन्हेउ। ऋत्वज स्त्री पुरुष कर दीन्हेउ॥
तेहि करनाम सुद्युम्नहिं होई। साथिन सहित एक दिन वोई॥
निकले वन आखेटहिं ताँई। घूमत भूल उसी बन जाँई॥
साथिन्ह सहित नारि बनि गयेऊ। घोड़े भी घोड़ियाँ भयेऊ॥**

फिर भगवान की आराधना करके ऋत्विजों ने उन्हें पुरुष बना दिया, उनका नाम सुद्युम्न हुआ। बड़े होने पर एक दिन वे साथियों के सहित आखेट ताईं निकले। घूमते-घामते वे भूल से उसी उपरोक्त वन में जा पहुँचे। फल यह हुआ कि स्वयं सब साथियों सहित स्त्री हो गये और घोड़े घोड़ियाँ हो गयीं।

**दोहा– लज्जावश लौटे नहीं, स्वयं राज्य के माँहिं।
लौटत को पहचानता, रहन न देता उस ठाँहि॥**

लज्जावश वे राज्य को लौट न सके। लौटते भी तो वहाँ उन्हें कौन पहचानता और उस ठौर कौन रहने देता।

**चौ०–एक बन दूसर घूमत तहवाँ। पहुँचे बुध आश्रम था जहवाँ॥
सुन्दर स्त्री वेष सुघम्ना। लखि मोहित है बुद्धहि मन्मा॥
इला भी बुध को चाहन पाहीं। गान्धर्व व्याह दोनों होइ जाहीं॥
बुध से इला पुत्र भै कैई। बुध आश्रम रहे सब जैई॥**

अस्तु वे वहाँ एक वन से दूसरे वन में घूमने लगे। सुद्यम्न स्त्री वेष में भी अत्यन्त सुन्दर थे, अत: वे अब इला थे आकृति के साथ प्रकृति भी बदल गई थी। सब स्त्रियों की भावनाएँ आ गई थीं। घूमते-घामते वह स्त्री मण्डल तपस्या करते हुए चन्द्रमा के पुत्र बुद्ध के आश्रम पर पहुँचा। वह सुद्युम्न पर जो कि अब स्त्री रूप

इला थे मोहित हो गये, इला भी बुध को चाहने लगी, दोनों में गांधर्व विवाह हो गया। बुध से इला को उस आश्रम में कई पुत्र उत्पन्न हुए।

चौ०—सुद्युम्न न लौटे अपने राजहिं। सूना पड़ा नृपति बिनु काजहिं॥
बहुत दिना बीते बिनु काजा। लौटे नहीं यहाँ महाराजा॥
वशिष्ठ ध्यान स्थित है गयेऊ। सब कारण वे जानत भयेऊ॥
गुरु वशिष्ठ बुध आश्रम आयेउ। आराधना शिव इला करायेउ॥

इधर सुद्युम्न के न लौटने से राजकाज सूना पड़ा था। बहुत दिन बीत गये बिना राज-काल के। और महाराज लौटे नहीं, तो गुरु वशिष्ठ जी कारण जानने के लिये ध्यानास्थित हो गये। ध्यान के द्वारा कारण का पता सब जान गये और वे बुध के आश्रम पर आये। वहाँ स्त्रीरूप इला जो सुद्युम्न हो गये थे उससे उन्होंने भगवान शंकर की आराधना करायी।

दोहा— आषुतोष प्रसन्न भै, तुरत प्रकट भये आइ।
वशिष्ठ गुरुवर मांगिउ, इला पुरुष बन जाय॥

आषुतोष प्रभु प्रसन्न होकर तुरंत वहीं आ प्रकट हुए। वशिष्ठजी ने प्रभु शिव भगवान से इला के पुरुष होने का वरदान माँगा।

चौ०—शंकर ने अस कहा तहीं। मम बच मिथ्या होइ नहीं॥
पूजा मेरी व्यर्थ न जावै। एक मास पुरुष बनि जावै॥
फिर एक मास स्त्री रह जयेऊ। असकह वे अन्तर्हित भयेऊ॥
लौटे गुरु सुद्यम्न हि लीना। राजकाज कहकर चल दीना॥

तब शंकर जी ने तहीं पर कहा—"मेरा बचन झूँठ तो हो नहीं सकता, पर मेरी पूजा भी व्यर्थ नहीं जायेगी। यह इला एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्री रहेगा।" ऐसा कहकर शंकर जी अन्तर्हित हो गये। गुरु वशिष्ठ जी सुद्यम्न को लेकर लौटे। और उनसे राजकाज सँभालने की कहकर विदा हुए।

चौ०—जब सुद्यम्न पुरुष होइ रहते। तब सब राज्य काज्यन गहते॥
मास दूसर स्त्री बन जाते। पड़े अंतःपुर महँ रह जाते॥

सुद्युम्न एक महीने जब पुरुष रहते तो राज्यकार्य करते और दूसरे महीने जब स्त्री बने रहते तो अन्तःपुर में ही पड़े रहते। प्रजा इस पद्धति से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हुई। वह विरुद्ध होने लगी। फल यह हुआ कि प्रजा संतोष के लिये वे इच्छाकुँ को राज्य देकर सुद्युम्न वन में तपस्यार्थ चले गये। *(मानसमणि दिसम्बर 1966)*

दोहा— निज परजा संतोषहित, इच्छांकु देकर राज।
सुद्युम्न बनहिं में चलि दिये, तप समझा शुभ काजा॥

❑❖❑

(13) त्रिपुर-दाह

श्लोक—"रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्दीधनुरथी,
रथाँगे चन्द्रकौंरथचरणपाणिः शर इति ।
दिध क्षस्तेकोऽयं त्रिपुरतृणभांडवर विधिः,
विधेयैः क्रीडन्त्यौ न खलुपरतन्त्राः प्रभुधियः ॥"

"पृथ्वी का रथ, ब्रह्मा सारथी, हिमालय धनुष, सूर्य-चन्द्र रथ के चक्र और भगवान विष्णु का बाण बनाकर एक तृण के समान त्रिपुर को भस्म करने की इच्छा से आपने यह क्या आडम्बर रचा। सचमुच भक्तों के साथ लीला करते हुए स्वामियों की बुद्धि परतन्त्र नहीं होती।"

चौ०—गुरु दैत्यमय मायावि प्रधाना। शंकर भक्त अनन्य महाना॥
मायाश्रित त्रय नगर बसाये। सोना चाँदी लोह मन भाये॥
तीन पुत्र अधि पती नियुक्ता। तारकाक्ष पुरी स्वर्ग संयुक्ता॥
रजत पुरी कमलाक्ष को दीन्हीं। लौह पुरी विद्युन्माली लीन्हीं॥

दैत्यों का प्रधान मायावी गुरु 'मय' भगवान शंकर का अनन्य भक्त था, उसने अपनी माया से एक बार तीन नगरों का निर्माण किया। एक नगर सोने का, एक चाँदी का और एक लोहे का। उसने अपने तीनों पुत्रों को इन नगरों का अधिपति नियुक्त किया, तारकाक्ष को स्वर्णपुरी का, कमलाक्ष को रजतपुरी का और विद्युन्माली को लौहपुरी का।

चौ०—तीनों पुर आकाश विराजहिं। निर्मित निराधार ही साधहिं॥
अस्त्र शस्त्र इन प्रभावन डालहिं। अजेय, अभेद्य होइ जहँ चालहिं॥
एक हजार वर्ष बीत जाहीं। आधे पल आपस मिलि पांही॥
सम्भव नाश परस्पर ऐका। पृथक होयँ अविनाशी टेका॥

ये तीनों पुर आकाश में निराधार निर्मित थे। अभेद्य और अजेय थे। किसी भी अस्त्र-शस्त्र का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था, ये इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ तीव्र गति से आ जा भी सकते थे, एक हजार वर्ष पर केवल आधे पल को तीनों पुर आपस में एकत्र हों ऐसा बनाया गया था। इसी एकत्र होने के समय ही इनका नाश सम्भव था। पृथक होने पर तो ये अविनाशी ही थे।

दोहा—ऐसे त्रियपुर पाइकें, दैत्य भये मदमस्त।
उत्पात मचायो जगत में, करैं मन्दिरन ध्वस्त॥1॥
ऋषिन्ह आश्रमन्ह नष्ट कर, नगरन्ह अग्नि लगाहिं।
गौ विप्र जहँ मिलहिं, तहँ संहारहिं या भगि जाहिं॥2॥

भय के तीनों पुत्रों ने ऐसे पुरों को पाकर संसार में बड़ा उत्पात मचाया, अपने

मद में मस्त हो गये, वे अपने पुर के साथ ही चाहे जहाँ पहुँच जाते, मन्दिरों को ध्वस्त कर देते, उपवनों एवं ऋषियों के आश्रमों को नष्ट कर देते, नगरों में अग्नि लगा देते, गौर ब्राह्मण जहाँ भी मिलते, या तो उनको मार देते या डर के मारे वे भाग जाते।

चौ०—स्वर्गऊ रक्षित इनसे नाँहीं। नन्दक बन विध्वंस कराहीं॥
भवन सुरों के गिरा मिटावहिं। पीछा कर मारन लगि जावहिं॥
अलग-अलग तीनों संहारहिं। सुरगण किमि इन प्राणहिं धारहिं॥
हा हाकार मच्यो जग माँही। सबहीं जग उत्पात मचाहीं॥

स्वर्गादि लोक भी इनके उपद्रव से रक्षित न थे, इन्होंने नन्दन वन को उजाड़ कर दिया, देवताओं के भवन गिराकर मिटा दिये। देवताओं का पीछा कर करके उन्हें मारने लगे, एक हो तो वह भी कुछ बचाव रहे, तीनों पुरधीश अलग-अलग रहकर संहार कर रहे थे, संसार में हाहाकार मच गया, देवताओं के प्राणों के लाले पड़ गये। क्योंकि सब जगह उत्पात मचा रहे थे।

चौ०—विकल समस्त देवमन मांही। ब्रह्मलोक रक्षण हितु जाहीं॥
विचिलित स्वयं ब्रह्म इस गाथा। क्षीर सिंधु गये देवन साथा॥
विविध भाँति स्तुति जब कीन्हीं। होय प्रसन्न विष्णु सुनि लीन्हीं॥
हरि बोले सुरगण सुनि लेऊ। अनन्य भक्त वो शंकर जेऊ॥

समस्त देवता मन से विकल होकर अपनी रक्षा हेतु ब्रह्मलोक पहुँचे। ब्रह्मा जी स्वयं लोकों के संहार की गाथा से विचलित थे वे देवआतों के साथ क्षीर सागर पहुँचे, बहुत प्रकार से स्तुति की, तब भगवान विष्णु ने प्रकट होकर ब्रह्मा की बातें सुन कर कहा—हे देवगणों! मयदानव भगवान शंकर का अनन्य भक्त हैं।

चौ०—सभी दैत्य करें शिव की भक्ति। शंकर चाहें तो टरै विपत्ति॥
चलकर उन्हें सुनाओ गाथा। आये कैलाश सुर विष्णु साथा॥

दैत्यवंशी सभी शिवोपासक हैं अतः भगवान शंकर ही कुछ चाहें तो ये विपत्ति टल सकती है, इसलिये चलकर उन्हीं को यह संसार गाथा सुनावै, तब देवता भगवान विष्णु के साथ कैलाश आये।

दोहा—बहु विनती प्रकटे शिवहिं, निज कष्ट निवेदन कीन्ह।
अपने ही भक्तों के विरुद्ध, कुछ करन शिवहिं प्रिय चीन्ह॥1॥
कुछ उत्तर दियो न देवतन्ह, निज भवन में पहुँचे जाय।
सुर प्रभु के पीछे लगे, कुंभांडहिं मारि भगाय॥2॥

बहुत प्रार्थना करने पर भगवान शंकर प्रकट हुए, देवताओं ने अपना कष्ट निवेदन किया। अपने भक्तों के विरुद्ध ही कुछ करना आशुतोष को प्रिय न था। वे देवताओं को कुछ उत्तर दिये बिना ही अपने भवन में चले गये। देवता प्रभु शंकर के पीछे भवन में जाने लगे तो द्वार स्थित गण कुंभांड ने उन्हें मारकर भगा दिया।

दोहा— सुरगण कष्ट भयो अति, दैत्यन्ह भाग्य महान।
श्री चरणन पूजा सहज, हम अभाग न दर्शन पान॥3॥

देवताओं को बड़ा कष्ट हुआ। देखो दैत्य कितने सौभाग्यशाली हैं, प्रभु के श्री चरणों की सेवा पूजा उन्हें सहज प्राप्त है, हम अभागों को प्रभु का दर्शन भी नहीं पा सकते, दुर्लभ है उनके समीप भी नहीं जा सकते।

चौ०— अस पश्चाताप कियो सुरभारी। करी तपस्या लौटि तैयारी॥
बन में घोर तपस्या कीन्हीं। भक्त समान शिवहिं प्रकटीन्हीं॥
पुनः त्रिपुर उत्पात सुनायो। स्पष्ट कहा शिव वो मोहि भायो॥
उनकी श्रद्धा मो में भारी। हानि न कर सक कोउ नर-नारी॥

इस प्रकार पश्चातप करते हुए देवताओं ने लौटकर वन में घोर तपस्या करनी प्रारम्भ की, प्रभु के लिये तो सभी भक्त एक समान प्यारे हैं उन्हें तो प्रेम चाहिये, चाहे वह देवता हों चाहे दैत्य। देवताओं की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शंकर उनके समीप प्रकट हुए, देवताओं ने पुनः वही त्रिपुर के उत्पात का रोना रोया, प्रभु ने इस बार स्पष्ट कह दिया 'दैत्य मेरे उपासक हैं, भक्त हैं, मैं उनसे प्रसन्न हूँ उनकी मेरे प्रति भारी श्रद्धा है उनकी कोई भी हानि नहीं कर सकता।

चौ०— मम श्रद्धा उर रह नहीं जाहीं। आराधना विमुख होइ पाहीं॥
तब कछु रक्षा करूँ तुम्हारी। बध उनका कर विपतिह टारी॥
शिव उपासना विमुख होइ जाहीं। विष्णु स्वयं ये भार उठाहीं॥
उन्हें धर्म से च्युत कर जबही। शक्ति दमन नष्ट होइ तपही॥

यदि उन दैत्यों में मेरी श्रद्धा न रह जावै, वे मेरी आराधना से विमुख हो जावें तो तुम लोगों की रक्षा के लिये मैं उनका वध करूँगा, भगवान इतना कहकर अन्तर्हित हो गये। देवताओं को चिंता हुई कि दैत्यों को शिवोपासना से विमुख कैसे किया जाय, भगवान विष्णु ने यह भार स्वयं लिया, जब धर्म का सहारा लेकर कोई अपनी शक्ति को बढ़ाकर संसार का अहित करतार है तो धर्माचरण से उसकी शक्ति तो बढ़ती ही है, जैसे तपस्यादि से, वह शक्ति को लोकोत्पीड़न में ले आवे तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी शक्ति का दमन, उसे धर्म से च्युत करके ही किया जा सकता है अतः मुझे अब उनको धर्म से च्युत करना पड़ेगा।

दोहा— लक्ष्मी पति इच्छा करी, निजदेह पुरुष प्रकटाय।
वस्त्र बाँध मुँह झाडू लिये, कर पाखंडहिं कहि आय॥1॥
सब जीवों का वध कर रहे, अरे! कर रहे पाप महान।
शरीरस्य मैल स्नान कर, जीव बध मैलहिं में जान॥2॥

इच्छा मात्र से ही भगवान लक्ष्मीपति के शरीर से एक पुरुष प्रकट हुआ, उसे पाखण्ड पुरुष कहते हैं, उसने मुख में कपड़ा बाँध रखा था और हाथ में उसके झाडू

थी, उत्पन्न होते ही वह कहने लगा 'अरे रे! देखो सब जीवों का बध कर रहे हैं, महापाप महापाप! स्नान करने से शरीरस्थ मैल के जीवों का वध होता है।

चौ०—अग्नि यज्ञ जीव जल जाहीं। मरें अदृश पूजा पुष्प माँही॥
ये धार्मिक कर्म धर्म नहिं होई। अधिगति का कारण सोई॥
कौशल करि हँसेउ भगवाना। वैसे ही चारि पुरुष प्रकटाना॥
धर्म प्रचार साथ तेहि कीन्हे। पुर दैत्यन के भेज तब दीन्हें॥

यज्ञ की अग्नि में जीव जलते हैं, पूजा में पुष्प, चन्दनादि में अदृश्य जीवों का संहार होता है, यह घोर पाप है, जीव हिंसा करके होने वाला कोई धार्मिक कर्मधर्म नहीं है वह अधोगति का कारण होता है। भगवान उस अपने कौशल पर हँसे, उन्होंने वैसे ही चार पुरुष और प्रकट किये, इन चारों को उस पाखण्ड पुरुष के साथ उनका शिष्य बनाकर दैत्यों के पुर में धर्म प्रचारार्थ भेज दिया।

चौ०—मारग प्रथम साफ वो करहीं। झाड़ू दे तब पग तहँ धरहीं॥
साधू वेष रखे बड़े बाला। दैत्य समझ शिव भक्त निराला॥
पाखण्डी गै दैत्य पुर अन्दर। देखा मध्य भव्य शिवमन्दिर॥
मणिमय मन्दिर तहँ अति भावित। स्वर्ण लिंग जहँ पर स्थापित॥

पाखंड पुरुष मुख पर कपड़ा तो बाँधे ही था, पहले झाड़ू से मार्ग साफ कर लेता तब वहाँ पैर रखता, कहीं बैठता तो पहले उस स्थान पर झाड़ू लगा लेता, उसके वेष को जो कि बड़े-बड़े बालों से साधुओं की सी छवि निराली हो रही थी। देखकर दैत्यों ने कोई शिव-भक्त समझकर पुर में आने से नहीं रोका। पाखण्ड पुरुष ने देखा कि दैत्य पुर के ठीक मध्य में भव्य शिव मन्दिर बना है, मणिमय मन्दिर भली प्रकार सजा है, स्वर्णलिंग स्थापित है।

दोहा— दैत्यन स्त्री अरु पुरुष, आबाल वृद्ध तहँ आय।
भक्ति षोडपचार से, पूजा शिव अपनाय॥1॥
पूजा करते समय उन, तन पुलकित हो जाय।
कंठ स्तुति से भरे, नैनन अश्रु चुयाय॥2॥

प्रत्येक दैत्य स्त्री-पुरुष, आबाल वृद्ध बड़ी ही भक्ति से षोडसोपचार से शिव भगवान की पूजा करते हैं, पूजा करते समय उनका शरीर रोमांचित हो जाता है, नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है, कण्ठ स्तुति के समय भरा हुआ रहता है, इस तरह वे सब प्रेम और श्रद्धा की मूर्ति हैं।

चौ०—प्रारम्भ कियो पहुँचत उपदेशू। ओह! अपराध करेउ शिव हेतू॥
स्वर्ण पिंड जड़ ईश्वर नांही। शिव प्रसन्न नहिं होतु मन मांही॥
वे तो सर्वव्यापि भगवाना। चन्दन पुष्प लघु जीव ये नाना॥
छोटे-छोटे जीव मरि जाहीं। जब तुम इन पै ये वस्तु चढ़ाहीं॥

पहुँचते ही पाखण्ड ने अपना उपदेश प्रारम्भ कर दिया "अरे तुम यह क्या कर रहे हो? ओह! तुम्हें पता नहीं कि तुम इस प्रकार शिव के हेतु कितना बड़ा अपराध कर रहे हो, इस जड़ सोने के पिंड में भगवान थोड़े ही रहते हैं वे तो सर्वव्यापी हैं, तुम्हारी इस पूजा से शिव प्रसन्न कैसे होंगे वे तो इससे अप्रसन्न ही होंगे क्योंकि फूल तोड़ने, चढ़ाने, चन्दन घिसने, हवन करने सब में छोटे-छोटे जीवों का नाश होता है।

चौ०—पता नहीं तुम श्वॉस जो ले हीं। सहस्त्रों जीव मर अंदर जेहीं॥
बाँधो कपड़ा निज मुख ऊपर। जन्तु मरहिं चल मार्ग भू पर॥
ताते प्रथम स्वच्छ मग करहीं। तब भूपर अपना पग धरहीं॥
धर्म समझ भ्रम में पड़ जाहीं। जीव मार कर अधर्म कराहीं॥

तुम्हें यह भी पता नहीं कि श्वाँस लेने से सहस्त्रों जीव मर कर अंदर चले जाते हैं, इसीसे मुख पर कपड़ा बाँधना चाहिये। अंधाधुंध मार्ग चलने से पता नहीं कितने जन्तु मरते हैं, इसलिये पहले मार्ग को स्वच्छ करो तब पैर रखो। तुम लोग भ्रम में पड़कर धर्म समझ कर जीवों को मारकर अधर्म कर रहे हो, घोर आत्मपात के पथ पर हो।

दोहा— मम समीप आओ सभी, अहिंसा धर्म सिखाँय।
एकमात्र कल्याण का, मार्ग तुम्हहिं बताँय॥1॥

तुम सभी मेरे समीप आओ, मैं तुम्हें अपने महान अहिंसा धर्म की दीक्षा देकर एकमात्र कल्याण का मार्ग बताऊँगा।

कोई सुनै या ना सुनैं, पाखण्ड रहयो चिल्लाय।
उच्च स्वर से बात निज, निज धुनि में मनहिं रमाय॥2॥

उसकी बात को कोई सुने या न सुने, पाखण्ड तो जोर-जोर से चिल्ला रहा था, अपनी बात की धुन में उच्च स्वर से अपने मन को उसमें रमाये हुये था।

जब एक ही बात बार-बार कान में पड़ती है तो प्रथम चाहे वह अच्छी न लगे, बुद्धि के विपरीत ही पर धीरे-धीरे उसके संस्कार पड़ने लगते हैं। बुद्धि पहले उसे व्यर्थ समझती है, फिर उपेक्षा करती है फिर उसके सत्यासत्य में संदेह करने लगती है और फिर इस संसयात्मक स्थिति से आगे बढ़कर उसे स्वीकार कर लेती है। अतः सावधानी से मनुष्य को इस विषय में सतर्क रहना चाहिये, कोई भी ऐसा भ्रम जीव में प्रवेश न कर पावे। जो भी प्रसंग अपने को पथ भ्रष्ट करने वाला प्रतीत हो उसे पुनः सुनने का अवसर ही न आने देना चाहिये, कुसंग की इसीलिये निंदा की जाती है।

चौ०—पाखंड वैन दैत्य न सुहाईं। उनमें बहुत कुपित होइ जाहीं॥
पागल समझ उपेक्षा कीन्हीं। अस्थिरमति किमिथिर रह लीन्हीं॥
उपेक्षा थोड़े समय दूर होई। साधू क्या कहै ध्यान दें सोई॥
खण्डन मंडन करने जायऊ। वाक्य पटु आगे चलि नहिं पायेऊ॥

प्रारम्भ में तो दैत्यों को पाखण्ड के वचन बहुत बुरे लगे, और उनमें से बहुतों को क्रोध भी आया पर पागल साधु समझ कार उसकी उपेक्षा करने लगे, पर दैत्यों की अस्थिर बुद्धि कब तक स्थिर रहती, थोड़े समय में ही उपेक्षा देर हो गई और ध्यान देने लगे कि आखिर यह साधु कहता क्या है ? अब कुछ लोग संशयात्मक स्थिर आने पर पाखण्ड के समीप खण्डन मण्डन के लिये भी जाने लगे, वह वाक्यपटु तो था ही, लोगों की युक्तियों का सफलता से खण्डन करके अपने पक्ष का समर्थन कर लेता।

चौ०—कुछ को तर्क पाखंड प्रभावा। आदर करन लगे उर भावा॥
पूजा पाठ दिखावट रहहीं। श्रद्धा उनके मन से बहहीं॥

इसका प्रभाव यह हुआ कि पाखंड के तर्कों से प्रभावित होकर कुछ दैत्य हृदय में उसके सिद्धान्तों का आदर करने लगे। उनका पूजा-पाठ दिखावट मात्र रह गया, श्रद्धा उनके मन से जाती रही, सभा करके छोटी पार्टियाँ बनाकर लोग अनेक प्रकार से पाखण्ड के सिद्धान्तों की चर्चा करने लगे। धीरे-धीरे सभाओं में ववाद-विवाद होने लगा कुछ अपने पूजा-पाठ का समर्थन करते कुछ विपरीत संस्कार लेकर दैत्य लौटते।

दोहा— आवेशित हो समर्थक, पाखण्डहिं दीक्षा लीन्ह।
अपने पूरे प्रयत्न से, खुल मतहिं प्रचारहिं कीन्ह॥

जो पाखण्ड के मत के समर्थक थे उनमें से कुछ ने पाखण्ड से दीक्षा भी ले ली, वे अब खुलकर पाखण्ड के मत का पूरे प्रयत्न से प्रचार करने लगे।

चौ०—दैत्य भ्रमित होने लगि जाहीं। मय को कष्ट भयो मन माहीं॥
वह तो अनन्य भक्त शिव काहीं। संशय रहित चलित मन नाहीं॥
बहुत भाँति दैत्यन्त समुझाई। विपरीतकाल समझ नहिं आई॥
मय का विरोध सहायक होई। नाश समय मति उनकी खोई॥

प्रचार से दैत्यों की मति भ्रमित होने लग गई। ऐसा देख भय के मन में बड़ी पीड़ा हुई क्योंकि भय शंकर जी का अनन्य भक्त था, अपने सिद्धान्त पर दृढ़, संशय रहित और कभी विचलित होने वाला नहीं। उसने सभा कर दैत्यों को विविध भाँति से समझाया, उनके तर्कों का विरोध किया, पर जब समय विपरीत होता है तो प्रयत्न सफल नहीं होते, फल यह हुआ कि मय का विरोध उनके प्रचार में और भी सहायक हो गया। जब मनुष्य के नाश का समय आता है तब उसकी बुद्धि मारी जाती है।

चौ०—दिन प्रतिदिन संख्या घटि लागी। पूजा पाठ श्रद्धा मति भागी॥
जो कुछ भी मंदिर में जावैं। लज्जा संकोच भय मन पावैं॥
दैत्य संगठन टूटत जाहीं। मुख्य लोग संकित मन माहीं॥
तेहीं समय देव ऋषि आये। पाखंडहिं सिद्धांत अपनाये॥

अब पूजा पाठ करने वालों की संख्या दिनप्रति घटती गई, जो मंदिर में जाते भी थे, वे किसी लज्जा, संकोच या भय के वश ही। उनकी श्रद्धा पूजा पाठ से भाग गई, दैत्यों के प्रधान-प्रधान लोगों ने देखा कि इस प्रकार तो अपना संगठन ही टूटजा जा रहा है, इसी बीच में देवर्षि नारद घूमते-घामते वहाँ आ पहुँचे, दैत्यों ने अपनी धर्म सम्बन्धी शंकायें उनके सामने रखीं। देवर्षि तो आये ही थे देवताओं का कार्य बनाने उन्होंने बड़ी प्रशंसा से पाखण्ड के सिद्धान्तों का समर्थन कर दिया। दैत्यों को अब पूर्ण विश्वास हो गया।

छन्द— दैत्य पूजा पाठ छोड़ि, वस्त्र मुख पर धारहीं।
हाथ ले झाड़ू उठाकर, मग साफ कर पग डारहीं॥
स्नान ध्यान सन्ध्या सकल, त्याग हवन न उपचारहीं।
जहँ तक कि मय के पुत्र पत्नी, पाखण्ड मत अनुसारहीं॥

तीनों पुरों के दैत्य पूजा पाठ को छोड़ अपने मुख पर वस्त्र बाँध कर और हाथ में झाड़ू लेकर रास्ता साफ करके अपना पैर रखते थे। उन्होंने स्नान, ध्यान, सन्ध्या आदि त्यागकर हवन करना भी छोड़ दिया। यहाँ तक कि मय के पुत्र और पत्नी भी पाखण्ड पथगामी हो चुके थे।

दोहा— मय अकेला त्रिपुर महँ, शैव रह गया शेष।
राजा था कारण यही, आक्षेप न कोउ विशेष॥

अकेला भय ही दैत्यों के तीनों पुरों में शैव रह गया। एकमात्र वही प्रेम से भगवान शंकर की पूजा करता था। राजा होने के कारण दैत्य उस पर आक्षेप करने का साहस नहीं करते थे।

चौ०— क्षत्री क्षात्र धर्म चलि जाहीं। 'अहिंसा परमो धर्म' निवाहीं॥
वीर युद्ध प्रिय भावत नाहीं। देश राज्य रक्षा कस पाँहीं॥
अहिंसा धर्म सीमा नहीं कोई। भै बाहर हानि अरु निंदित होई॥
भीरुता पौरुष हीनता लावै। कारण पराधीन नष्टावै॥

क्षत्रियों में से जब क्षात्र धर्म चला गया, वीर एवं युद्ध प्रिय लोग 'अहिंसा परमो धर्मः' के अनुयायी हो गये तो राज्य और देश की रक्षा कैसी? अहिंसा धर्म की भी कोई सीमा है सीमा से बाहर बढ़ने पर प्रत्येक वस्तु हानिकारक एवं निंदित होती है, अहिंसा की सीमा से बाहर होने पर भीरुता, कायरता एवं पौरुष हीनता में परिणित हो जाती है, नाश एवं पराधीनता का कारण होती है।

चौ०— दैत्यन्ह धर्म विमुख कर जबही। उत्साह हीन निरुद्योगी भै तबही॥
उत्तेजना शौर्य भी खोई। ओजस्विता शिथिलता गोई॥
सुअवसर देखि देवता धाये। त्रिपुर नाश शिव विनय सुनाये॥
युद्धार्थ शिवहि तत्पर हो जाहीं। अस्त्र शस्त्र देवहु लै धाहीं॥

दैत्यों को अपने धर्म से विमुख करके पाखण्ड ने इधर लगा दिया। उसके अहिंसा धर्म ने जो कि सीमा से बाहर बढ़ा था, निरुद्योगी और उत्साह हीन कर दिया, उनकी उत्तेजना, उनका शौर्य, उनकी ओजस्विता मर गई, उनका संगठन भी शिथिल हो गया, देवताओं ने ऐसा सुअवसर देखकर भगवान शंकर से त्रिपुरनाश की प्रार्थना की। प्रतिज्ञा के अनुसार भगवान शिव युद्धार्थ तत्पर हुए, समस्त देवता भी अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर रणार्थ जुटकर धाये।

दोहा— चारों ओर घेरा त्रिपुर, रुद्ध करी गति जाय।
लख शत्रु रक्त खोलता, अब दैत्य न युद्धहि भाय॥
आनन्द उत्साह क्रीड़ा हती, अहिंसा करे विपरीत।
मृत्यु से डरते न थे, उर कंपित भै भयभीत॥2॥
बिना लड़े ही सोहता, वहाँ मरना धर्म प्रतीत।
जो आये कुछ युद्ध को, ते उत्साहरहित विनीत॥3॥

देवताओं ने तीनों पुरों को चारों ओर से घेर लिया और उनकी गति को रुद्ध कर दिया। जहाँ शत्रु को देखकर दैत्यों का रक्त खौलने लगता था उनके नाश के लिये अधीर हो उठते थे, युद्ध अब उनको नहीं भा रहा है जबकि युद्ध उनके लिये एक आनन्द की क्रीड़ा थी, पर अहिंसा धर्म ने उन्हें विपरीत बना दिया, जो मृत्यु से डरते न थे, वे अब अपने हाथ से दूसरे का वध करने का प्रसंग सोचते ही हृदय काँपता था। भयभीत हो जाते थे। बिना लड़े शत्रु के हाथों मरना ही उन्हें धर्म प्रतीत हुआ, कुछ ने तो युद्ध में लड़ना ही स्पष्ट अस्वीकार कर दिया, और जो युद्ध में आये भी उनके न तो उत्साह था न उद्योग, विनीत बने रहे। यथा सम्भव वे शस्त्र प्रहार करने से बचते रहे, आघात करते उनके हाथ काँपते थे, किसी को यदि उनके आघात से चोट लग जाती, तो शस्त्र उनके हाथ से छूट गिरता। वे युद्ध से पीठ दिखाकर भागते या बिना आघात किये आघात सहते। कहीं इस प्रकार का भी युद्ध होता है? दैत्य शत्रु के प्रहारों से मरने लगे।

चौ०—पुर जब आपस में मिल जावें। संभव तबहिं नाश कहँ पावैं॥
एक कूप निर्मित मय जाहीं। संजीवनी रस भरा वो ताहीं॥
दैत्य जो मरें घायल होइ जाहीं। तेहि कूप रस डालत पाँही॥
मृतक पुन जीवित होइ जावैं। कटे टूटे अंग ठीक बन जावैं॥

एक तो पुरों का नाश तब तक सम्भव नहीं था जब तक वो आपस में मिले नहीं। दूसरे भय ने एक कुँआ बनाकर उसमें संजीवनी रस भर रखा था जो दैत्य मर जाता, घायल हो जाता, उसे उठाकर मय उस कुएँ के रस में डाल देता, उसे पाकर अर्थात् उसके प्रभाव से मृतक पुनः जीवित हो जाता, कटे-टूटे अंग भी ठीक हो जाते।

चौ०—देखा अस सुर भये निराशा। वध हम करहिं व्यर्थ भयो खासा॥

इस विधि ये जीतिन जाई। मरैं दैत्य जीवन पुनः पाई॥
रुद्र भी खिन्न देखि असहाला। उनने युद्ध बंद कर डाला॥
म्लान उदास चिंता सुर भयेऊ। परमाश्रय हरि सान्त्वना दयेऊ॥

देवताओं ने देखा कि "यह तो दैत्य इस प्रकार जीते न जायेंगे। हमारे लिये तो उनका वध व्यर्थ ही हो रहा है", वे निराश हो गये। भगवान रुद्र भी पुनः पुनः दैत्यों को जीवित होते देख खिन्न हो गये, उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया। देवताओं को उदास एवं म्लान होकर चिंता करते देखकर देवताओं के परमाश्रय हरि ने उनको सान्त्वना दी।

दोहा—स्वयं हरि गौ रूप धरि, ब्रह्मा वत्स बनाय।
देव सेना से अलग हो, प्रविष्ट कियो पुरजाय॥

स्वयं भगवान ने गौ का रूप धारण किया और ब्रह्मा जी को बछड़ा बनाया, इस प्रकार सुन्दर वेश बनाकर वे देवसेना से प्रथक होकर दैत्यों के पुर में प्रविष्ट हो गये।

चौ०—गौ बछड़ा सुंदरता देखी। मुग्ध भये सब दैत्य विशेषी॥
गई गौ रसकूप की ओरा। दैत्य अहिंसा वादी घोरा॥

दैत्य इस गौ-बछड़े की सुन्दरता पर मुग्ध हो गये। अहिंसा को स्वीकार करने वाले दैत्यों ने गौ को उस संजीवन रस के कुएँ की ओर जाने से हाथ उठाकर, वस्त्र दिखाकर रोकने की चेष्टा तो की, पर गाय जब स्वयं नहीं भागी तो मारकर भगाना उनके लिये वहाँ से सम्भव न था।

चौ०—कूप रक्षक ललकार मचाई। शस्त्र दिखाइ रोकना चाही॥
झपटी गऊ वत्स लै साथा। रस की ओर प्यास अति माथा॥
दैत्यन देख रक्षकन्ह कहेऊ। प्यासी ये रस पीवन दयऊ॥
रक्षक उरन्ह ढिलाई जागी। वत्स गऊ रस पीवन लागी॥

कूप के रक्षकों ने भी ललकार कर, शस्त्र दिखाकर गाय को रोकना चाहा, पर गाय तो बछड़े के साथ बड़े वेग से रस की ओर माथा नवाइ ऐसी झपटी, मानों बहुत ही प्यासी हो। देखने वाले दैत्यों ने रक्षकों से कहा—"प्यासी गऊ है थोड़ा रस पी लेने दो" यह सुन रक्षकों के हृदय में ढ़िलाई आ गई, अर्थात् ढ़िलाई बरती, गौ रस पीने लगी।

छन्द—गऊ मुख रस माँहि डारि, समाप्त किये बिनु हट नांहि चाही॥
दैत्य और रक्षक ललकारेउ, फटके शस्त्र भुशुण्डि लाही॥
लेकिन सामान्य कोई गऊ होइ, तो हटि जाती डपटि भगाहीं॥
ठेलते भी वो समझ डर मांहि, कष्टन इसे कहीं होइ जाही॥

जब गौ ने रस में मुख लगा दिया तो वह बिना रस के समाप्त किये हटती ही

क्यों, रक्षकों ने दूसरे दैत्यों ने काफी ललकारा, शस्त्र पटके, भुशुण्डी को लाकर धड़ाके किये, हाथ से ठेलना चाहा, लेकिन कोई सामान्य गौ हो तो उसे आहट करके हटाया जाय, दैत्यों का अहिंसक हृदय मारने को तो दूर रहा, बलपूर्वक ठेलने को भी उद्यत न था, ठेलते भी तो यह समझ कर ही कि 'कहीं इसे कष्ट न हो'।

दोहा— ठीक नहीं लगता उन्हें, भोज्य छीनत हिंसा होइ।
हटाना रस पीते उसे, धर्म नहीं यह कोइ॥1॥

जब वह नहीं हटती तो छोड़ देते, पीते हुए रस से हटाना भी उन्हें ठीक नहीं लगता था। वे दैत्य गऊ का भोजन छीनने में भी हिंसा देख रहे थे, उसको हटाना अधर्म माना, यह कोई धर्म नहीं है।

दोहा— मय ने चाहा पीटकर, गौ को दऊँ भगाय।
दैत्य बीच में आ खड़े, थोड़ा पीकर ये हटि जाय॥2॥

मय ने गौ को पीटकर हटाना चाहा, पर बहुत से प्रधान दैत्य यह कहते हुए बीच में ही आ खड़े हो गये कि "मारिये मत, वह स्वयं थोड़ा सा पीकर हट जायेगी।"

चौ०— नहीं गौ थोड़ा पीने वाली। पी समस्त रस कर दियो खाली॥
बहुत उदास दैत्य मय होई। रस बिनु कूप दैत्य दुःख सोई॥
होना था जो करके जाई। वत्स सहित गऊ बाहर आई॥
दैत्यन पुर रस बिनु है गयऊ। याहि जान सुर हर्षित भयऊ॥

वह गौ थोड़ा सा पीकर हटने वाली तो थी नहीं, एक-एक बूँद रस समाप्त करके वह हटी। मयदानव बहुत उद्धत हुआ। दैत्यों को भी रस सारा पी जाने का दुःख था, पर अब तो जो होना था वह गाय कार्य पूरा करके चली। बछड़े के साथ अपना कार्य पूरा करके दैत्यों के पुर से बाहर हो गई। दैत्यों के पुर में संजीवन रस रहा ही नहीं, यह बात जानकर देवताओं को बड़ा हर्ष हुआ।

चौ०— स्तुति करी विष्णु भगवाना। विनय करी रुद्र मिलि सुर नाना॥
शंकर ने इस बार कहेऊ। मेरे योग्य रथ शक्ति चहेऊ॥
जस शिशु खेल ठीन नहिं लागेउ। भस्म त्रिपुर इक बाणहिं दागेउ॥
समस्त देवगण शक्ति लगावें। तबहि त्रिपुर नाश होइ जावें॥

देवता भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे। पुनः भगवान रुद्र से देवताओं ने सम्मिलित प्रार्थना की। शंकरजी ने इस बार कहा-"मेरे योग्य रथ, शस्त्र, परिच्छद उपास्थित करो, यह बच्चों जैसा खेल करना मुझे अच्छा नहीं लगता। एक ही वाण से त्रिपुरों को अब भस्म करना चाहता हूँ, रथादि में सब देवता अपनी शक्तियाँ लगावें" देवताओं ने आज्ञा स्वीकार कर ली।

दोहा— अलौकिक रथ निर्मित भयो, शस्त्र कल्पना होइ।
सभी वस्तु थीं देवमय, वास्तव में रथ संजोइ॥1॥

अलौकिक रथ निर्मित हुआ, शस्त्रों की कल्पा हुई, वास्तव में तो सभी सामिग्री देवताओं से संजोई गई।

दोहा— रवि शशि रथ के चक्र थे, द्वादस आदित्य अरे।
चन्द्र कलाओं से सकल, गये अरे जड़े॥2॥

सूर्य और चन्द्रमा रथ के पाहिए थे। द्वादस आदित्य रथ के चक्रों के अरे थे, वे सभी चन्द्र की कलाओं से जड़े गये।

दोहा— निर्मित मंथर गगन से, द्वीप पुष्करहि नीड़।
उदया, अस्ताचल दोऊ स्थान कूबरहिं जीड़॥3॥

आकाश से मन्थर और पुष्कर द्वीप से नीड़ निर्मित हुआ, उदयाचल, अस्ताचल दोनों कूबरों के स्थान पर लगे जड़े गये।

दोहा— द्वादस अयन लौह धर, गति काल रथ वेग।
नदिन्ह चमर धारण कियो, समुद्र लीक अनुरेग॥4॥

द्वादस अयन लौह धारण हुए। काल की गति ही रथ का वेग बनी, समुद्र लीक बने, नदियों ने रथ पर चमर धारण किये।

चौ०—ब्रह्माजी सारथी बनायेउ। चारों वेद अश्व बनि जायेउ॥
मन्दराचल का दण्ड बनाया। धनुष हिमालय का सजवाया॥
शेष नाग प्रत्यन्चा भयेऊ। विष्णु स्वयं बाण बनि गयेऊ॥
सरस्वती घंटा लगि जाहीं। अग्नि भाला बन कर आहीं॥

ब्रह्मा जी सारथी और चारों वेद घोड़े बनाये गये। मन्दराचल दण्ड, हिमालय धनुष, शेष नाग प्रत्यन्वा और भगवान विष्णु स्वयं बाण बने। सरस्वती जी घण्ट एवं अग्नि शल्य = भाला बनाये गये।

चौ०—ब्रह्माण्ड भस्म तीसर अँख खोलत। क्या जरूरत अस दिव्य रथ डोलत॥
त्रिपुर भस्म कर बड़ी न बाता। तृण समान उनको होइ जाता॥
भस्म कर देती नेत्र की ज्वाला। इतने आडम्बर क्यों उन पाला॥
शिव लीलामय क्रीड़ा कीन्हीं। वाहय वस्तु जरूरत क्यों लीन्हीं॥

इतनी दिव्य सामिग्रियों से सज्जित रथ पर देवदेव प्रभु आसीन हुए, जिनके तीसरे नेत्र के खुलते ही समस्त ब्रह्माण्ड भस्म हो जाता है, उनके लिये त्रिपुर भस्म करना कोई बात थोड़े ही थी, त्रिपुर तो उनके लिये एक तृण के समान था। उसने नेत्र की ज्वाला ही भस्म कर देती, इतने आडम्बरों की आवश्यकता थोड़े ही पड़ती। पर प्रभु को क्रीड़ा करनी थी, इतना आडम्बर उन्होंने अपनी क्रीड़ा के लिये ही रच लिया था। भला प्रलयन्कर प्रभु को कहीं केवल तीन नगरों के नाश के लिये बाह्य सामिग्री की क्या जरूरत थी? पर लीलामय की लीला ही बड़ी विचित्र है। इतनी लीलाओं की विचित्रता ही तो उन्हें लीलामय कहलाती है।

छन्द—भक्त वत्सलता प्रभु अपार, दया निज भक्त कबहु भूले नहीं।
उठाते धनुष आई याद, परम भक्त दानव मय अब भी तहीं॥
भेजा नन्दि को पुर मांहि प्रभु, पाताल जाये मय अभी।
ढिंग मय के पहुँचे नन्दि तब, मय हर्ष अति उमड़ा तभी॥

भगवान शिवजी की भक्तवत्सलता अपार है, वे दयामय भक्त को कभी भी किसी भी अवस्था में नहीं भूलते, धनुष उठाते ही स्मरण हुआ कि इन्हीं पुरों में मेरा परम भक्त दानवपति 'मय' अब भी है। प्रभु ने नन्दी को भेजा कि वह जाकर मय को पुर छोड़कर पाताल में चले जाने का आदेश सुना दे। नन्दी मय के समीप गये, मय के हर्ष का ठिकाना न रहा। अति अपार हर्ष हृदय में उमड़ आया।

दोहा—पार्षद निज इष्ट लखि, हृदय से स्वागत कीन्ह।
नंदी कह दानव पति, पुर छोड़ इसी क्षण दीन्ह॥1॥
जाओ तुम पाताल अब, प्रभु भस्म करन पुर चाहिं।
नहीं समय पूजा मेरी, तुरत जानों यह मन माँहि॥2॥

अपने आराध्य के पार्षद का उसने हृदय से स्वागत किया। नंदी ने कहा—'दानवपति' प्रभु का आदेश है कि तुम इस पुर को छोड़कर इसी क्षण पाताल को चले जाओ, प्रभु पुरों को भस्म करना चाहते हैं, मेरी पूजा का समय नहीं। एकाकी और इसी क्षण पुर को छोड़ दो। यह बात अपने मन में अच्छी तरह जान लो।

चौ०—करि प्रणाम आज्ञा स्वीकारी। सच्चे भक्तहिं मनहि विचारी॥
सबही पुरमय इष्ट विधाता। भस्म करै आपत्ति न बाता॥
सेवक तो आज्ञा अनुयायी। मन्दिर से स्वर्ण लिंग उठाई॥
चला पाताल आज्ञा सिर धरहीं। उसी लिंग पूजा तहँ करहीं॥

नन्दी को भय ने प्रणाम करके आज्ञा स्वीकार की। सच्चे भक्त तो आराध्य की इच्छा पूर्ण करने में ही संतुष्ट रहते हैं उसने मन में विचारा कि सभी पुर प्रभु के हैं, भस्म करना चाहते हैं तो मुझे इसमें क्या आपत्ति की बात है? सेवक तो आज्ञा का अनुयायी है। मय ने मन्दिर से म्वर्ण लिंग उठाया और उसे लेकर पाताल चला गया। आज तक पाताल में वह उसी लिंग मूर्ति की पूजा करता है।

चौ०—मय जाते नंदीपुर छोड़ा। मुहूर्त पुरन्ह मिलने का जोड़ा॥
बाण छोड़ शंकर भगवाना। प्रज्वलित वाण प्रलयाग्नि समाना॥
आघात पुरन्ह पै जबही कीन्हा। चोंकन समय पुरवासिन दीन्हा॥
आधे पल में भस्म भये सारे। नर-नारि दैत्य पशु पक्षी मारे॥

मय के जाते ही नन्दी ने पुर को छोड़ दिया। मुहूर्त पुरों के परस्पर मिलने का था, भगवान शंकर जी ने बाण छोड़ा, प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित वाण दिशाओं को जलाता हुआ आगे बढ़ा। इधर तीनों पुर परस्पर मिले और साथ ही बाण का उन

पर आघात पड़ा। पुरवासियों को चोंकने का भी समय न मिला। उस आधे पल में ही दैत्य स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी भस्म कर दिये गये।

दोहा— बन उपवन गृह कोट सब, जले नष्ट हो जाहिं।
त्रिपुर केवल भस्म बन, गिरेउ समद्रहिं माँहि॥1॥
भगवान शंकर का तभी, नाम भयो त्रिपुरारि।
सकल जगत अरु धर्म का, देवन्ह कष्ट सँभारि॥2॥

वन, उपवन, गृह कोट सब जल कर भस्म हो गये। त्रिपुर केवल भस्म ही रह गया जो कि समुद्र में गिर पड़ा। भगवान शंकर का नाम त्रिपुरारी हो गया, समस्त संसार का, धर्म का, देवताओं का कष्ट सँभारकर दूर किया। सबके भय के कारण का विनाश हो गया, सब आनन्द से उछल पड़े, दिशाएँ एक साथ ही उनके उच्चनाद से गुंजितध्वनित हो उठीं—"श्री त्रिपुरारि भगवान की जय"॥

(मानसमणि जनवरी 1967 आलोक सुदर्शन चक्रकृत से)

(ॐ नम: शिवाय)



(14) नन्दी

श्लोक—"भक्ताग्रयाणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्थाममर्त्यैः
संसाराख्यं शमयति रुजं स्वात्मबोधौषधेन।
तं सर्वाधीश्वर भवमहादीर्धतीव्रामयेन क्लिष्टोऽहं
त्वां वरद शरणं यामि संसार वैद्यम्॥"

"जो समास्त देवताओं की शक्ति से बाहर है, उस संसार रूपी अपने भक्तवरों के रोग आत्मबोध रूपी दवा से नाश कर देते हैं। अत: अत्यन्त तीव्र और पुराने इस संसार रोग पीड़ित मैं ऐसे सर्वाधीश्वर एवं वर प्रदायक आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।"

दोहा— दिव्य पुरुष उत्पत्ति महँ, कुछ विचित्रता गोय।
शिलाद मुनि भूजोतते, उत्पन्नहिं बालक होय॥

दिव्य पुरुषों की उत्पत्ति में कुछ विचित्रता छिपी रहती है, महामुनि शिलाद (जिनका यह नाम उनके शिल = खेत में से अन्नकाट लेने पर जो गिरी वालों को चुन लेने पर भी जो थोड़ा दाने बच रहते हैं) उस शिल के ऊपर ही जीविका निर्वाह करने के कारण पड़ गया था, वह एक यज्ञ करने वाले थे, यज्ञ की भूमि को यजमान ही जोतता है यह विधि है। शिलाद मुनि यज्ञभूमि जोत रहे थे, सहसा उस भूमि से एक अत्यन्त सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ।

चौ०—पुत्र नहीं था मुनि के कोई। भूमाता सौंपा सुत सोई॥
बड़ा हर्ष आनन्द मनाया। सुतहिं नाम नन्दी रखवाया॥
पुत्र मान आश्रम ले गयेऊ। भली भाँति पालन मँह लगेऊ॥
सुसंग पाइशुक राम-राम कहहीं। ये शिशु तो स्वयं दिव्यता लहहीं॥

महर्षि के कोई पुत्र तो था नहीं, मानों उन्हें पृथ्वी माता ने अपना ही पुत्र सौंप दिया हो, उसे पाकर मुनि शलाद को बड़ा हर्ष आनन्द हुआ, अपने आनंद का कारण मानकर मुनि ने पुत्र का नाम 'नंदी' रख दिया। और उसे आश्रम में ले आकर पुत्र मानकर अच्छी तरह पालन करने लगे। सज्जनों के साथ से तो तोता भी राम-राम कहने लगता है, यह बालक तो स्वयं दिव्यता लिये हुए था।

चौ०—श्रद्धा, प्रेम अरु शिव की भक्ति। उत्पन्न ही ते गुण ये उन शक्ति॥
तापर संग महामुनि पायेऊ। तपसी पितु संरक्ष मन भायेऊ॥
बच्चा मन कच्चे घट जैसा। जैसे मोड़ दें बनि जाय तैसा॥
संस्कार बचपने चितदृढ़ पारैं। अभिवावक भावी जीवन सुधारैं॥

श्रद्धा, प्रेम, शिव भक्ति, तितिक्षा आदि सद्‌गुणों की शक्ति उसमें उत्पत्ति से ही थी, दूसरे महामुनि शिलाद से तपस्वी पिता की संरक्षता प्राप्त हो गई, बच्चों का मन कच्चे घड़ा जैसा होता है जैसा चाहो मोड़ दो, बचपन के संस्कार उनके चित्त पर दृढ़ हो जाते हैं। ऐसे संस्कार जीवन में अमिट हो जाते हैं, बच्चे का भावी जीवन का मानचित्र अभिवावकों की गोदी में ही निर्मित होता है, बड़ी सावधानी, बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है। अभिवावक की असावधानी या अज्ञान से बालक के मन पर जो इस समय दूषित संस्कार पड़ जाते हैं वे उसके जीवन को ही दूषित कर देते हैं। चतुर अभिभावक महान् पुरुषों का निर्माता है।

दोहा—एक दिवस मुनि आश्रमहिं, मित्रावरुणहि दर्शन दीन्ह।
ऋषि आसन दे स्वागत कियो, पूजा सविधि कीन्ह॥1॥
वात्सल्य सुत प्रेम के उत्सुक जीवन उन्नति चाँहि।
पधारे अस देवता यहाँ, जो भविष्य की बात बताहिं॥2॥
जीवन का वृत्त जानने सुत, भावी मन कियो विचार।
प्रणाम कर मित्रावरुण को सुत चरनन दीयो डार॥3॥
आशीर्वाद बालकहिं दियो, बाके देखे हाथ और भाल।
अंगहिं देखि शरीर के, बड़ खेद भयो तत्काल॥4॥

एक दिवस शिलादजी के आश्रम पर मित्र एवं वरुण देवता पधारे, ऋषि ने उनका स्वागत किया, आसन देकर सविधि पूजा की। माता-पिता में पुत्र के जीवन को जान लेने की उत्कण्ठा होती है, उनका वात्सल्य प्रेम पुत्र के जीवन की उन्नति को जानने का उत्सुक रहता है और जब कि ऐसे देव के आने पर जो भविष्य की

बातें आसानी से बता सकते हैं अत: पुत्र के भावी जीवन का वृत्त जानने हेतु शिलाद मुनि अपने मन में विचार किया और पुत्र से प्रणाम कराकर उनके चरणों में वृत्त पूछने हेतु डाल दिया, मित्रावरुण ने बच्चे को आशीर्वाद देकर उसके हाथ, भाल तथा शरीर के अंगों को देखकर तत्काल खेद हुआ कहने लगे—

चौ०—आठ वर्ष की आयु याकी। मारै को देखूँ शक्ति वाकी॥
बालक पाँच वर्ष अस बोला। पिता उदास मनहिं मन डोला॥
देखा मुनिहि उदासी भरेऊ। देव चलन तैयारी करेऊ॥
करि प्रणाम देव विदा कराहीं। सुत लै गोद अश्रु ढ़रकाहीं॥

इस बालक की तो कुल आयु ही आठ वर्ष है 'मुझे कोई नहीं मार सक़ता, देखूँगा उसकी शक्ति मुझे कौन मारेगा?' पाँच वर्ष के बालक ने पिता के मुख की ओर देखकर कहा, पिता तो उदास हो गये थे, मुनि को उदास देख देवता उठ खड़े हुए, उन्हें प्रणाम करके शिलाद जी ने सादर विदा किया। उनके जाने पर मुनि पुत्र को गोद में लेकर अश्रु ढरकाने लगे।

प्रबल प्रेम पुत्रहिं पर होई। योगिन्ह चित विचलित कर सोई॥
क्यों रोते पितु सुत अस कहहीं। क्या सचमुच मृत्यु मारे मम हीं॥
आप नित्य पूजा शिव करहीं। सब कुछ करन शक्ति उन धरहीं॥
स्वयं आपु बताई ये बाता। क्यों न भगाये मृत्यु मेरी ताता॥

पुत्र का प्रेम इतना प्रबल होता है कि वह योगियों के चित्त को भी विचलित कर देता है। बालक कहने लगा-"पिताजी आप रोते क्यों हैं? क्या सचमुच मृत्यु मुझे मार सकती है? आप तो कहते हैं कि भगवान शंकर में सब कुछ करने की शक्ति है, आप उनकी नित्य पूजा करते हैं तो क्या वे मेरी मृत्यु को भगा नहीं सकते! तात!

दोहा—ऐसी बात सुन पुत्र की, भयो पितु उर भक्ति विशेष।
बेटा सर्वसमर्थ प्रभु, भक्ती इस हेतु न देश॥1॥
जीवन हेतु आराधना, मूरखता कोरी जान।
जिन उपासना से मिले, उन चरणन भक्ति महान॥2॥

पुत्र की ऐसी बातों को सुनकर शोक के स्थान में पिता के हृदय में विशेष भक्ति का उद्वेग उत्पन्न हो गया। वे बोलो—"बेटा! प्रभु सर्व समर्थ हैं वे सब कुछ कर सकते हैं पर तुच्छ जीवन के लिये देश में अर्थात् घोर संसार कोन लेना चाहेगा, जीवन के लिये आराधना करना कोरी मूर्खता है। जिस उपासना से उनके चरणों की भक्ति प्राप्त हो सकती है।

चौ०—कामना रहित करै प्रभु भक्ति। तबहिं मिले जग भुक्ति मुक्ति॥
उपासना केवल प्रसन्न शिव पाहीं। अन्य न इच्छा करै मनमांही॥
धरा धाम थोड़े दिन रहेऊ। क्रीड़ा छोड़ भजन अनुसरेहू॥
प्रसन्न करो प्रभु नर तन पाकर। गर्भ न आन पड़े भू आकर॥

कामना लेकर कभी भी प्रभु की प्रार्थना नहीं करनी चाहिये, कामना रहित भक्ति करने से ही जगत में मुक्ति भुक्ति मिलती है। प्रभु की उपासना तो केवल उनकी प्रसन्नता के लिये ही करनी योग्य है, जब तुम्हें थोड़े दिन धराधाम में रहना है तो इस क्रीड़ा को छोड़कर शंकर भगवान का भजन करके उनको प्रसन्न करो और अपने इस मनुष्य जीवन नर तन को पाकर इस जन्म को सफल करो, इसी से फिर किसी के गर्भ में पृथ्वी पर न आना पड़े ऐसा उपाय करो।

चौ०—पायी विजय प्रेम ने मोही। प्रेम आत्मा मोह तन तोही॥
आत्मा नित्य शरीर विनाशी। प्रेम में कभी दुःख लेश न आसी॥
कष्ट दिलातन प्रेमहिं भावै। सच्चा प्रेमी वही कहावै॥
आत्मिक प्रेमास्पद जो होई। उन्नति ओर अग्रसर सोई॥

प्रेम ने मोह पर विजय प्राप्त की। प्रेम आत्मा से होता है तन से नहीं अर्थात् मोह शरीर से होता है जो तुझे मिला है, आत्मा तो नित्य है, अतः प्रेम में कभी दुःख का प्रसंग लेशमात्र भी नहीं आता। सच्चे प्रेमी शरीर को कष्ट दिलाकर भी प्रेमास्पद को आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है, शिलाद अपने कर्तव्य पर थे।

दोहा—पितु बातें सुनि शिशु कही, कस प्रसन्न होयँ भगवान।
पिताजी आप विश्वास कर, कुछ माँगू नहिं जिय जान॥1॥
षड़अक्षर शिवमंत्र दे, जपहु ध्यान लगाइ।
एक कोटि मंत्रिहिं जपो, प्रसन्न होंइ शिव आइ॥2॥
प्रतिज्ञा तब बालक करी, करूँ करोड़हिं जाप।
बिना किये एक कोटि जप, नहिं सम्मुख होऊँ आप॥3॥

बालक ने पिता की बातें सुनकर कहा—"पिताजी! आप बताइये कि भगवान शिव कैसे प्रसन्न होते हैं। मैं उन्हें अवश्य प्रसन्न करूँगा। विश्वास करें, मैं उनसे कुछ भी नहीं माँगूँगा। पिता ने षडअक्षर शिव मंत्र बता कर वहीं समीप ही उसका जाप करने को बता दिया। कह दिया कि 'इस मंत्र के एक करोड़ जप से शिव प्राप्त हो आवेंगे' बालक ने प्रतिज्ञा कर ली 'एक करोड़ मंत्र का जप किये बिना मैं आण्के सम्मुख नहीं आऊँगा।'

चौ०—वन एकान्त आश्रमहिं पासा। जप करने लगा मन दृढ़ विश्वासा॥
बच्चा लगन जितहि लगि जावै। दूसरी बात न ताहि सुहावै॥
सरल हृदय जिधर लगि जाई। पूरी निष्ठा मन ने जमाई॥
ध्रुव प्रह्लाद बाल दृढ़ कीन्ही। तैसेहि निष्ठा नंदी उर लीन्हीं॥

वहीं आश्रम के पास के एक वन की एकान्त में कुंज में नन्दी जप करने लगा। बच्चों में जितनी लगन होती है उतनी दूसरों में हो ही नहीं सकती। उनका सरल हृदय जिधर लगता है, पूरी दृढ़ता से लगता है। बाल हठ के साथ ध्रुव व प्रह्लाद ने

बालनिष्ठा की दृढ़ता प्रत्यक्ष कर दी है, ऐसी ही नन्दी की निष्ठा भी असीम थी।

चौ०—बाचनिक से उपांशु जप गयेउ। झट उससे मानसिक भयेउ॥
मन एकाग्र जपहिं होंन लागा। ध्यान देह का नहीं अनुरागा॥
असन बसन स्नानहिं भूला। निद्रा त्यागि समाधि महँ झूला॥
कृत्य कर्म सब विस्मृत होई। लगन अटल चित प्रभु में जोई॥

वह वाचनिक जप से अपांशु और उससे मानसिक जाप की स्थिति में झट से पहुँच गया। धीरे-धीरे शरीर का भाग झूलने लगा, जप में मन एकाग्र होने लगा। अंत में शरीर का ध्यान ही न रहा। स्नान, भोजन, निद्रा आदि सब कृत्य विस्मृत हो गये, चित्त में प्रभु के जप की लगन से अटल समाधि लग गयी।

दोहा—सत्कर्महिं करते समय, स्वाभाविक विघ्न आ जायँ।
बालक दृढ़ निष्ठा समुख, वे विघ्न नहीं टिक पाँय॥1॥
(इक) कोटि मंत्र पूरन भये, भगवान प्रकट भये आइ।
पिता वचन विश्वास दृढ़, प्रभु जप से प्रसन्न है जाइ॥2॥
प्रेम विभोर ह्वै बालकहिं, चरनन उठ कियो प्रणाम।
वरदहस्त मस्तक रखा, बेटा! मैं प्रसन्न तेहि काम॥3॥

विघ्नों का अच्छे कामों में आना तो स्वाभाविक ही है, यों तो शिलादजी अपनी तपस्या के प्रभाव से नन्दी के पथ के विघ्न संकल्प से दूर करते रहते थे, पर जो विघ्न आते भी, वे बालक की दृढ़ता के सम्मुख टिक नहीं सकते थे। अन्त में एक करोड़ मंत्र का जप पूर्ण होते ही भगवान शिव प्रकट हो गये, होना ही था-विश्वास ही फल का कारण है 'विश्वासहि फल दायकम्' बच्चे को पिता के इन वचनों पर दृढ़ विश्वास था 'एक करोड़ जप से प्रभु प्रसन्न हो जायेंगे।' उठकर बालक ने भगवान के चरणों में प्रेम विभोर होकर प्रणाम किया। प्रभु ने बच्चे के मस्तक पर अपना वरद हस्त रखकर कहा "बेटा! में तुम्हारे इस कृत्य से अर्थात् जप से प्रसन्न हो गया।"

चौ०—जो चाहो सो माँग तुम लयउ। नन्दी प्रसन्न मुख देखत भयउ॥
प्रभु का नाम अभिन्न है उनसे। आनन्द घन स्वरूप हैं मन से॥
समस्त विश्व आनन्दहिं पाहीं। तेहि एक सीकर अंश सम जाहीं॥
माया आवरण हटै उर माहीं। नाम सिंधु में डुबकी लगाहीं॥

"तुम्हें जो भी माँगना हो माँग लो" नन्दी ने प्रभु के प्रसन्नमुख की ओर देखा, प्रभु का नाम उनसे अभिन्न है, प्रभु आनन्द घन हैं अतः उनका नाम भी आनन्द स्वरूप ही है जो मन को भाता है, विश्व के समस्त आनंद उस आनन्द सिंधु के एक सीकर के अंशमात्र हैं, जिसने हृदय पर से, माया के आवरण दूर करके, चित्त को एकाग्र करके उस नाम सिंधु में एक बार डुबकी लगा लिया, फिर वे दूसरी ओर क्यों देखने लगा?

चौ०—नाम प्रेम इच्छा नहिं नामी। चाहे दर्शन देंय नहीं अनुगामी।
दर्शन की लिप्सा नाहिं अधिका। बड़ा नाम प्रभु अघगन वधिका॥
नामामृत स्वाद मिल पाहीं। गुड़ पर ध्यान करै किन धाहीं॥
यदि प्रसन्न प्रभु दीजै यह वर। एक करोड़ मंत्र जप अरु कर॥

नाम प्रेमी तो नामी की भी अपेक्षा नहीं करता। प्रभु को दर्शन देने की इच्छा हो तो आवें, न हो तो न आवें। नाम प्रेमी उनके दर्शनों की अपेक्षा नाम को अधिक महत्व देता है जो सहज ही पाप पुंजों को नष्ट कर देता है। नन्दी को नाम के अमृत सिंधु का स्वाद मिल चुका था, अमृत को छोड़कर गुड़ पर कौन दौड़े, उसने कहा "प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यही वरदान दीजिये कि पूर्ण तल्लीनता से मैं आपके इस मंत्र का एक करोड़ जप और कर सकूँ।"

दोहा—'एवमस्तु' कह हँस पड़े, प्रभु शिव भये अन्तर्धान।
पुनः कोटि मंत्रहि जपा, माँगा प्रभु से यही वरदान॥1॥
तीसर कोटि जप पूर्ण होइ, प्रभु पार्वती संग आन।
फिर भी नन्दी यही कहा, दो पुनः वही वरदान॥2॥

'एवमस्तु' कहकर शंकर भगवान अर्न्तहित हो गये। नन्दी पुनः जप में लग गये। एक करोड़ मंत्र जप पुनः पूर्ण हुआ। प्रभु फिर पधारे, वर माँगने को प्रेरित करने पर नन्दी ने वही उपरोक्त वर फिर माँगा। तीसरा एक करोड़ मंत्र जप भी पूर्ण हुआ। इस बार माता पर्वती के साथ प्रभु प्रकट हुए। नंदी से पुनः वर माँगने को कहने पर वही जप करने का वरदान माँगा।

चौ०—अति प्रसन्न शंकर अस कहेऊ। अब जरूरत जप की नहिं रहेऊ॥
कुछ भी अदेय नहीं मम पासा। विष्णु ब्रह्म मम सम होइ जासा॥
अस सुनि नंदी चुप रह गयेऊ। कामना हीन प्रलोभ न परेऊ॥
भूल न पितु गुरु के उपदेशा। निज परतिज्ञा अटल विशेषा॥

प्रभु बोले-बेटा! अब जप की आवश्यकता ही क्या? मैं तुम पर अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारे लिये मेरे समीप कुछ भी अदेय नहीं है। तुम ब्रह्मा, विष्णु या मेरे समान होना चाहो तो वह भी हो सकते हो। नन्दी चुप था, वह कामना हीन बालक इन प्रलोभनों में भला क्यों पड़े? पिता रूपी गुरु के आदेश उसे भूले न थे, अपनी प्रतिज्ञा पर वह अटल था (कि मैं कुछ नहीं माँगूगा)।

चौ०—विचलित नहीं प्रलोभन मांही। उमा हृदय करुणा भरि जाहीं॥
थिर न रह सकी वो अब माता। गोद उठाय धरयो सिर हाथा॥
पुष्प सा कोमल सुत है मेरा। सूख गया तन तप से तेरा॥
पग ले! भला तपहि मन चीन्हीं। क्या चहिए जो तपस्या कीन्हीं॥

उस बालक को प्रलोभन तनिक भी विचलित नहीं कर सके, माता उमा का

हृदय माता का हृदय ही तो ठहरा। माता और स्थिर न रह सकी। उन्होंने नन्दी को गोद में उठाकर प्रेम से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—"मेरा पुष्प सा कोमल पुत्र तपस्या करते-करते इसका तन सूख गया। पगले! भला तू तपस्या करने योग्य है जो मन में चीन्हीं है, तुझे चाहिये ही क्या जिसके लिये तपस्या करनी पड़े।

दोहा— माता ने प्रभु से कहा, मत डालो भुलावे ताहि।
पुत्र यहि मेरा रहे बन, नहिं ब्रह्मा विष्णु चाहि॥1॥
गदगद ह्वै नन्दी कही, सानिध्य चरनमाँ चाह।
माँ-बेटे की पट गई, प्रभु हँसे बता अब काह॥2॥

माता पार्वती ने प्रभु से कहा—"आप मेरे बच्चे को भुलावे में मत डालें, वह ब्रह्मा विष्णु नहीं बनेगा। वह तो मेरा पुत्र ही रहेगा।" नन्दी ने गदगद होकर कह दिया "माँ! बस तुम्हारे श्रीचरणों का सानिध्य ही सेवक को चाहिए।" प्रभु हँसे-माँ-बेटे की पट गयी। अब कहने को क्या है, अब ये हमारा पुत्र हुआ।

चौ०—प्रभु ने नन्दिहि वचन सुनाया। सकल गणन अध्यक्ष बनाया॥
तुम्हरे पिता सुहृदजन सारे। गण होंगे अजु सकल हमारे॥
जो त्रय कोटि मंत्र मम जपहीं। प्राप्त करें मम धामहिं अपुहीं॥
कुल पवित्र सुपुत्रहिं कीन्हा। नन्दी ने प्रत्यक्ष कर दीन्हा॥

प्रभु बोले—बेटा नन्दी मैंने तुम्हें समस्त गणों का अध्यक्ष बनाया। तुम्हारे पिता और समस्त सुहृदजन आज से मेरे गण हुए, मेरे इस मंत्र का जो कोई तीन करोड़ जप कर लेगा, वह मेरे धाम को प्राप्त होगा। एक ही सुपुत्र पूरे कुल को पवित्र कर देता है, इस सिद्धान्त को नंदी ने आज प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया। कुल का तो उद्धार हो गया। (**नोट**—अच्छा पिता पुत्र को इस शिव के परम धाम तक पहुँचा सकता है। पुत्र को अच्छा बनाने से यों ही पिता का उद्धार होता है जिनमें बुद्धि हो वह शिक्षा लें)

चौ०—शिलाद समेत समस्त सुहृदजन। शिवशंकर के सुगण भये बन॥
उन्हहिं तथा नन्दी ले जावहिं। नन्दी तब गणाध्यक्ष बनावहिं॥
कैलाश जाइ घोषणा कीन्ही। सुहृदजनहिं गण पदवी दीन्हीं॥
भेंट लेइ और गणहू आये। सिंहासन नन्दी पधराये॥

शिलादजी तथा उनके समस्त सुहृद शिवगण बन गये, उन्हें तथा नन्दी को लेकर प्रभु कैलाश पहुँचे। नियमित रूप से नन्दी को गणाध्यक्ष की घोषणा हुई, समस्त गण अपनी-अपनी सैन्य के साथ नाना प्रकार की भेंट लेकर पधारे। सिंहासन पर नन्दी विराजमान हुए।

दोहा—क्षत्र, चमर गण आदिले, करन लगे उन सेव।
पुष्प वृष्टि जय घोषकर, रहे वहाँ सब देव॥1॥

बाजहिं देवन्ह दुन्दुभी, अभिषेकहिं विष्णु कीन्ह।
पुरोहित ब्रह्माजी बने, मंत्र पढ़न में लीन्ह॥2॥
उपहारहिं गण भेंट कर, लागे करन प्रणाम।
आधीनता स्वीकार की, भये सकल सब काम॥3॥

क्षत्र, चमर आदि से गण उनकी सेवा करने लगे, देवता पुष्प वृष्टि करके जयघोष कर रहे थे। देव दुन्दुभियाँ बज रही थीं, स्वयं भगवान विष्णु ने अभिषेक किया और ब्रह्माजी पुरोहित बनकर मन्त्र पढ़ने में लीन थे। गणों ने उपहार भेंट करके प्रणाम करते हुए उनकी आधीनता स्वीकार की। सभी काम पूरे हुए।

चौ०—स्वभावतः मातु रहै अभिलाषा। पुत्रवधु मुख देखें खासा॥
व्याह पुत्र उत्कंठित रहहीं। नंदी हेतु शंकर से करहीं॥
तत्परभै शिव नंदी विवाहा। मरुत देव से पुत्री चाहा॥
सुन्दरि सर्व गुणहिं ते ललामा। तेहि मांगी सुभगा जस नामा॥

माता की अभिलाषा स्वभावतः ही पुत्रवधू का मुख देखने को रहा करती है, माताएँ पुत्र के विवाह के लिये अत्यधिक उत्कंठित रहती हैं। माता पार्वती के आग्रह से भगवान शिव भी नन्दी का विवाह करने को तत्पर हुए। उन्होंने मरुत देवताओं से उनकी सर्वगुण सम्पन्न सुन्दरी पुत्री जिसका नाम 'सुभगा' था नंदी के लिये माँगी।

चौ०—समझा देव सौभाग्य निज कन्या। सास श्वसुर उमा शिव (मिल) धन्या॥
गण अध्यक्षपति मिले पाँही। अच्छा घर वर पितु अस चाँहीं॥
मरुतो ने आभार जतायी। प्रभु याचन आज्ञा मन भायी॥
सम्बन्ध मधुरता यहिहो पाहीं। नम्र एक दूसर वनि जाँहीं॥

देवताओं ने समझा इससे बड़ा और कन्या का क्या सौभाग्य होगा कि उसे माता उमा सी सास, भगवान शंकर से श्वसुर और गणाध्यक्ष नन्दि से पति प्राप्त हों। पिता तो यही चाहता है कि कन्या को अच्छा घर वर मिले, मानस में भी कहा गया है कि—"**जो घर वर कुल मिलहिं अनूपा। करिअ विवाह सुता अनुरूपा॥**" सो सभी कन्या को प्राप्त हो रहे अनुरूप ही, अतः इस बात के लिये मरुतों ने आभार प्रभु का जताया, उन्होंने प्रभु की याचना को आज्ञा के रूप में ग्रहण किया। सम्बन्ध की मधुरता यही है कि दोनों पक्ष एक दूसरे के सम्मुख नम्र बने रहें।

दोहा— छोटा समझें अपुन से, दूसरि को मन माँहिं।
जहाँ घमण्ड आया यही, तहँ सम्बन्ध कटू हो जाँहिं॥

यदि एक दूसरे को अपने से छोटा समझने लगे मन से, जहाँ ये घमण्ड आया, वहाँ वह सम्बन्ध कटु हो जाता है।

चौ०—धूमधाम भयो नन्दी ब्याहा। कन्या पक्ष मरुत अपनाहा॥
वरपक्षी शिवगण भये सारे। संग में ऋषी मुनिहु पधारे॥

बरातहिं पक्ष तपस्या त्यागी। तेजमूर्ति सात्विक अनुराणी॥
तो सौंदर्य दूसरा पक्षी। ऐश्वर्य समृद्धि प्रतिमा अच्छी॥

बड़ी धूमधाम से नन्दी का विवाह हुआ। समस्त मरुत देवता कन्या पक्षीय और समस्त शिवगण, ऋषि, मुनि आदि वर पक्षीय थे। बरात का एक पक्ष तपस्या, त्याग एवं सात्विक तेज की मूर्ति था, तो दूसरा कन्या पक्षीय सौन्दर्य ऐश्वर्य, समृद्धि की प्रतिमा बड़ी सुन्दर थी।

चौ०—कन्या महँ सौन्दर्यता होई। सर्दगुणता मृदुता भरि सोई॥
वर में त्याग तपस्या चाहहिं। सात्विकता धर्महिं अपनाहहिं॥
सहनशीलता शक्ति होहहि। तबही कन्या वर दोऊ सोहहि॥
आदर्शहि रखि दोनों पक्षा। विश्वेसहिं आदर्शहि अच्छा॥

कन्या में सौन्दर्य, मृदुता, ऐश्वर्य एवं सद्गुण होनी चाहिए तथा वर पक्ष में त्याग, तपस्या, धर्म, सात्विकता, शक्ति और सहनशीलता हो। तब ही दोनों पक्ष कन्या-वर शोभित होते हैं। विश्वेश ने दोनों पक्षों = बरातों के रूप में एक अच्छा आदर्श प्रस्तुत कर दिया।

दोहा— नन्दी शिव के परमप्रिय, गण थे मुख्य प्रधान।
स्मरण करते नाम शिव, भक्तहिं याद उन आन॥1॥
यह उनकी दृढ़ भक्ति का, कोई एक मरमहिं जान।
भक्त वत्सलता प्रभुहि की, ये साक्षात प्रमान॥2॥

नन्दी भगवान के परम प्रिय और प्रधान गण हैं। भगवान शिव के नाम के स्मरण करते ही भक्तों को उनका स्मरण हो आता है, यह उनकी दृढ़ भक्ति का मरम कोई प्रभु की कृपा से ही जान सकता है, यह प्रभु शिव की भक्त वत्सलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। *(मानसमणि फरवरी 1967 आलोक 2 सुदर्शन चक्रकृत से)*



❋ भक्त रक्षक शिव ❋

सवैया— सोच विमोच अनेक लये, जस गान सुन्यों शिव तैं सुजसी है।
सेवन में गुरुदेव तुही प्रभु, तेरे ही चित्त में गाँस गँसी है॥
ओ सिरताज! चराचर के तुव प्रेम में प्रेम की फाँस फँसी है।
लाजु बचा कितौ देखुइतै अब मेरी हँसी किधौ तेरी हँसी है॥



(15) व्याघ्रपाद

श्लोक—"न किंचिन्मे नेतः समभिलषणीयं त्रिभुवने
सुखं वा दुःखं वा ममभवतु यद्भावि भगवन्।
समुन्मीलत्याथोरुह कुहर सौभाग्य मुषिते
यदद्वन्द्वे चेतः परिचयमुपेयान्मम सदा॥"

"नाथ! संसार में कुछ भी मुझे अभिलाषा नहीं है, सुख या दुःख जो कुछ भी मुझे होता हो, होवै! परमभगवन्! बस खिले हुए कमल की शोभा को चुराने वाले आपके चरण युगलों में मेरा चित्त सर्वदा परिचय प्राप्त करता = लगा रहे।"

**चौ०—एक कुमार ब्राह्मणहिं भयेऊ। श्रद्धा शील विनम्रता लयेऊ॥
विद्या सकल पिता से पायी। जो शास्त्रन ज्ञाता अधिकाई॥
विद्या रहस समस्त पढ़ावहिं। इच्छा सिंधु नदी को भावहिं॥
महत्वाकांक्षी विप्रकुमारा। विद्याप्राप्त संतोष न टारा॥**

एक ब्राह्मण कुमार हुआ जो कि शील श्रद्धा और विनम्राता के आदर्श ही थे, अपने पिता से ही समस्त विद्याएँ प्राप्त कीं, पिता शास्त्रों के मर्मज्ञ = ज्ञाता एवं विद्वान थे, उन्होंने पुत्र को रहस्यों के साथ समस्त विद्याएँ पढ़ा दीं। समुद्र के अभिलाषी को नदियों से कहाँ संतोष होने लगा। ब्राह्मण कुमार महत्वकांक्षी थे, ऐसे पुरुषों को विद्या आदि की प्राप्ति में संतोष कभी नहीं आता अर्थात् संतोष नहीं बनते और चाहने की लालसा रहती है।

**चौ०—हे पितु ऐसी विद्या सिखावा। सर्वश्रेष्ठ गति जसि मिल जावा॥
जन्म-मरण बंधन मिटिजाहीं। पुनः जनम नहिं होई जग माँही॥
अनन्य भक्त पितु शिव भगवाना। कहन लगे सुत सुनधरि ध्याना॥
विश्वनाथ आराधन कारी। मिलै परमगति वे ही अधिकारी॥**

अन्त में कुमार ने पिता से पूछा—"पिताजी! आप मुझे ऐसी विद्या सिखाओ जिससे सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त हो। संसार के जन्म-मरण के बन्धन मिट जावें, पुनर्जन्म न लेना पड़े। पिताजी भगवान शंकर के अनन्य भक्त थे, उन्होंने कहा बेटा—परमगति तो भगवान विश्वनाथ की आराधना = उपास करने से मिलती है वे ही इसके अधिकारी हैं।

**दोहा—उपासना विधि पूछि पितु, शिवमंत्र सुतहि को दीन्ह।
दीक्षा प्राप्त आज्ञा लई, शिवाराधन को चलि दीन्ह॥**

पुत्र ने पिता से उपासना विधि पूछी, पिता ने विधि निर्देश करके शिव मंत्र की दीक्षा दे दी। पुत्र ने दीक्षा प्राप्त कर पिता की आज्ञा ली और उन्हें प्रणाम करके एकान्त वन में शिवाराधना के लिये चल दिया।

चौ०—देशधर्म पर बलि-बलि जावै। आतम उन्नति पग जो बढ़ावै॥
पूज्य पूर्वज भारतीय नाना। अभीष्ट अस सुत कर कल्याना॥
शुभ प्रवृत्ति आज की भाँती। शत बाधाएँ नहीं डाली जातीं॥
पुत्रहिं प्रोत्साहन दियो जाता। वैसी रुचि उत्पन्न वो पाता॥

देश पर, धर्म पर और आत्मोन्नति पर बालि हो, ऐसे पुत्र ही उस काल को भारतीय पूज्य पूर्वजों को अभीष्ट थे। आज की भाँति पुत्र की शुभ प्रवृत्ति में सैकड़ों बाधाएँ नहीं डाली जाती थीं, पुत्र को प्रोत्साहन दिया जाता था, उसमें वैसी ही रुचि उत्पन्न की जाती थी।

चौ०—विप्रतपस्या सुतहिं सिखायीं। क्षत्री युद्ध हेतु उकसाहीं॥
निज-निज कर्म पुत्र जो चाहीं। निज सौभाग्य मातु पितु काहीं॥
आशीर्वाद दे पठवहिं ताहीं। हर्ष मनावहिं निजमन लायीं॥
ये रुचि भारत से चलि गयऊ। तब से पतन हमारा भयऊ॥

ब्राह्मण अपने पुत्रों को तपस्या के लिये और क्षत्रीय युद्ध के लिये प्रोत्साहित करते थे। पुत्र यदि इन निज-निज कार्यों में जाना चाहता तो माता-पिता अपना सौभाग्य समझते थे, बड़े उत्साह से आशीर्वाद देकर उसे विदा करते। जब से भारत से यह रुचि चली गई, तभी से हमारा पतन होने लगा।

दोहा—उचित जगह को खोजते, पहुँच बनहिं में जाय।
सुन्दर कमलों से भरा इक तालाबहिं पाय॥1॥
हरे भरे बन जड़हिं गिरि स्थानहिं अती सुहाय।
प्राचीन लिंग सरवर निकट, मनहिं गयो वो भाय॥2॥
वहीं ठहर पूजा करहिं शिव लिंगहिं मनहि लगाइ।
घासपत्रों से झोपड़ी, निकटहिं लई बनाइ॥3॥

ब्राह्मण कुमार योग्य स्थान की खोज में वन में जहाँ सुन्दर कमलों से भरा हुआ तालाब था पहुँचे। वे एक पर्वत की जड़ में हरे-भरे वन को देख वह स्थान सुहावना था, ठहर गये। सरोवर के समीप ही एक प्राचीन शिवलिंग था। यह स्थान मन को भा गया, वह वहीं शिवलिंग की पूजा करने लगे। पास में ही उन्होंने घास-पत्रों से अपनी एक झोंपड़ी भी बना ली।

चौ०—रुचि वैचित्र्य मनुष्य प्रसिद्धा। एक ही वस्तु टिके नहिं श्रद्धा॥
प्रिय से प्रिय वस्तु आराध्यहिं। कमल फूल संतोष न साधहिं॥
औरऊ अन्य पुष्प मैं लाऊँ। भोला बाबा चरन चढ़ाऊँ॥
नीचे वन कोई पुष्प न दूसर। पर्वत शिखर अनेक हैं ऊपर॥

मनुष्य की रुचि वैचित्र्य तो प्रसिद्ध ही हैं, सर्वदा एक ही वस्तु में उसकी श्रद्धा नहीं टिक पाती पूजा के कारणों में। आराध्य को प्रिय से प्रिय वस्तु भेंट करना चाहते

थे और इसीमें संतोष और शांति मिलती है, द्विज कुमार को कई दीन अर्थात् नित्य कमल पुष्पों से ही पूजा करने में संतोष नहीं होता था। वे अनेक प्रकार के पुष्पों की अंजलि प्रभु भोले बाबा के चरणों में चढ़ाना चाहते थे, नीचे वन में कोई पुष्प दूसरा था नहीं। पर पर्वत के शिखर पर नाना प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की लताएँ लहरा रही थीं।

चौ०—पुष्पन लदी लताएँ देखीं। उत्कण्ठा मन उठी विशेषी॥
दुर्गम सुगम तीव्र अभिलाषा। सोचा पुष्प लाऊँ गिरि खासा॥
ब्रह्म मुहूर्त पर्वत चढ़ेऊ। पूजा समय लौटन चहेऊ॥
अधिक समय लग गिरि चढ़ाई। लौटत में ही दुपहरिया आयी॥

उन फूलों से लदी लताओं को देखकर द्विज कुमार के मन में इनसे पुष्प लाने की बड़ी उत्कण्ठा मन में उठी। तीव्र अभिलाषा दुर्गम को भी सुगम बना देती है, सोचा कि पर्वत से खास अच्छे-अच्छे पुष्प लाऊँ, तो एक दिन ब्रह्म मुहूर्त में ही उठकर पर्वत पर चढ़ना प्रारम्भ किया, विचार तो पूजा के समय तक पुष्प लेकर लौट आने का था पर अनुमान से अधिक पर्वत की दुर्गम चढ़ाई में ही लग गया, पुष्पों को लेकर उतरते-उतरते दोपहरिया हो गई।

चौ०—इतना श्रम उत्कण्ठा कीन्ही। इष्ट चरण फूल अर्पित चीन्हीं॥
सुमन मनोहर विविधहिं लाये। रवि किरणन तप से झुलसाये॥
पुष्प म्लान भै शोभा रहिता। कृत सब पर पानी गयो फिरता॥
प्रबल लालसा मनहिं जो कीन्हीं। पूजा योग्य न पुष्पहिं चीन्हीं॥

इतना श्रम, इतनी उत्कण्ठा और आराध्य के चरणों पर मनोहर पुष्पों को अर्पित करने की इतनी प्रबल लालसा सब पर पानी फिर गया। सूर्य की प्रचण्ड किरणों ने मार्ग में ही पुष्पों को झुलसा दिया, अधिकांश पुष्प म्लान तथा शोभाहीन हो गये थे, वे अब पूजा में काम लाने के योग्य नहीं दीखते थे। हालाँकि वे विधि भाँति के पुष्प लाये थे।

दोहा— जिस वस्तु की प्राप्ति महँ, महत्त्व अधिक श्रम पाहिं।
उसके नाश विकृतसे, खेद होइ मन माँहि॥

जिस वस्तु के पीछे जितना अधिक श्रम उसे प्राप्त करने में ही होता है और उसके उपयोग को जितना अधिक महत्व देते हैं, उस वस्तु के नाश या विकृत होने से उतना ही अधिक खेद होता है।

चौ०—समस्त प्रेम अस विप्र कुमारा। पुष्पान्जलि दे प्रभु मन वारा॥
परम प्रेम एकत्रहिं होई। प्रभु चरनन पर वारेउ जोई॥
भयो जो श्रम पुष्पन के लाहीं। वह सीमा से बाहर था हीं॥
पुष्पन देखि ग्लानि लागी। मैं इतना अब भयेउ अभागी॥

ब्राह्मण कुमार का प्रभु को पुष्पान्जलि देने में अपने प्रेम को वार दिया था। वे समस्त प्रेम आराधना में एकत्र हो चुका था। पुष्पों के पीछे श्रम जो हुआ वह सीमा से भी बाहर था, पुष्पों को म्लान देख उन्हें बड़ी ग्लानि हुई, सोचने लगे 'मैं इतना अभागा हूँ कि अपने प्रभु को इच्छानुसार पुष्प भी नहीं चढ़ा सकता।

चौ०—रुचि अनुसार सुमन न चढ़ाये। क्या स्वीकृत नहीं प्रभु मन भाये॥
इन्हीं विकल्पन शोक बढ़ाई। लिंग पास मूर्छित गिरि जाई॥
वाह्य वस्तु प्रसन्न न कर सक। अंतर भाव चहैं शिवभरसक॥
प्रेम पूर्ण सच श्रद्धा होई। वैभव पूर्ण स्वीकार न कोई॥

क्या मेरे द्वारा लाये सुमन प्रभु ने स्वीकृत नहीं किदे या उनको नहीं भाये। विकल्पों ने शोक को और बढ़ा दिया, तो वे मूर्च्छित होकर उस शिवलिंग के समीप ही गिर गये। प्रभु वाह्य उपकरणों से थोड़े ही प्रसन्न ोते हैं, उन सर्वेश्वर को हमारे पुष्पादि की अपेक्षा थोड़े ही है। वस्तु नहीं-वे प्रेममय तो सच्चे प्रेमभाव से प्रसन्न होते हैं, उनको किसी के वैभव पूर्ण पूजा भी उन्हें स्वीकार नहीं है।

दोहा— प्रसन्नता तो दूर रह, करैं नहीं दृष्टिपात।
स्वीकार करें बड़े प्रेम से, जो बेलपत्रहू चढ़ात॥

वैभवपूर्ण पूजा से प्रसन्न होना तो दूर, भगवान उसकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। पर भक्त के प्रेम से दिये हुए बेलपत्रों को भी वे सहर्ष ग्रहण कर लेते हैं।

चौ०—वस्तु रस आनन्द न पाहीं। भाव प्रेममय बस हो जाहीं॥
भक्त नहिं देयँ स्वयं लै पाहीं। छीन सुदामा तन्दुल खाहीं॥
म्लान पुष्प द्विज सुत स्वीकारे। सौंदर्य सुगन्धि उनहिं महँ धारे॥
सच्चे प्रेम कुमार जो लायेउ। प्रभु ही देखि उन्हें अपनायेऊ॥

भगवान को बस्तुओं के रसों में आनन्द नहीं मिलता, उन्हें तो प्रेम में आनन्द मिलता है, भक्त के प्रेम के वह वशीभूत हो जाते हैं, प्रेमपूर्ण वस्तु के लिये लालायित रहते हैं। भक्त न भी दे तो वे स्वतः, ग्रहण कर लेते हैं। सुदामा के सूखे चावल अपने कृष्ण रूप में उन्होंने छीन कर खाये थे। आज द्विज पुत्र के म्लान पुष्पों को स्वतः ग्रहण करके प्रसन्न हो गये। उन्हीं में दिव्य सौंदर्य और सुगन्धि का अनुभव करके अपनाया। उस तपस्वी ब्राह्मण कुमार के सच्चे प्रेम ने प्रदान करने हेतु लाया गया था उसे तो प्रभु ही देख सकते थे।

चौ०—प्रकट भये शिव सहसा जबही। कोमल हस्त उठायो सुत तबही॥
लौटि चेतना प्रभु स्पर्शहिं। सन्मुख देखि खड़े शिव हर्षहिं॥
प्रकाशित दिशा काँति उनकाहीं। म्लान पुष्पगल माला पाहीं॥
शोभा सिंधु समीप पहुँचकर। सुन्दर लगे मलान होने पर॥

सहसा प्रभु प्रकट हुए। उन्होंने अपने कोमल कर से स्पर्श करके द्विज पुत्र को

उठाया। उस अमृतस्पन्दी करके स्पर्श होते ही चेतना लौट आई। ब्राह्मण कुमार ने देखा अपने सम्मुख आराध्य देव अपने दिव्य विग्रह से खड़े हँस रहे हैं उनकी कान्ति दिशाओं को प्रकाशित कर रही है, उन्होंने गले में उन्हीं म्लान पुष्पों की माला बनाकर धारण कर रखी है। वे पुष्प शोभा सिन्धु के समीप पहुँचकर म्लान होने पर भी बड़े सुन्दर लग रहे हैं।

दोहा— गदगद भरहो कंठ शिशु, पुलकित भयो शरीर।
प्रभु चरन गिर नैननहिं लग्यो बहावन नीर॥1॥
मंगलमय प्रभु पद धुले, काऊ प्रकार उठि पाय।
एक टक लखि शोभा बदन हो विह्वल चरन गिर जाय॥2॥

विप्र बालक का कंठ गदगद होकर भर आया, शरीर रोमांचित हो गया, प्रभु के चरणों पर गिर कर वे अपनी अश्रुधारा से उन प्रभु के मंगलमय चरणों को धोने लगे, स्वयं प्रभु उन्हें उठाते, किसी प्रकार उठने पर एकटक वह प्रभु के शोभामयमुख की ओर देखकर फिर विह्वल होकर चरणों पर गिर पड़ता।

चौ०—मुग्ध भये असि प्रीति भगवाना। कहा माँगि अभीष्ट वरदाना॥
द्विज बोला कामना न कोई। मम मन रहै चरण तुम भोई॥
अति प्रसन्न शिव तब अस कहहीं। नित्यवर्धिनी भक्ति तुम पहहीं॥
माँगहुँ एक और वरदाना। प्रभु गिरि ऊपर पुष्प लगि नाना॥

प्रभु इनके प्रेम पर मुग्ध थे, बोले-तुम्हें जो अभीष्ट हो मुझसे वरदान माँग लो। विप्र कुमार ने कहा-मेरे मन में कोई कामना नहीं है इन नश्वर संसार या विनाशी स्वर्गादि की कोई भी वस्तु मुझे नहीं चाहिये, जिस किसी भी योनि में, जिस किसी अवस्था में रहूँ मेरा मन सर्वदा आपके चरण कमलों में लगा रहे, तब अति प्रसन्न हो प्रभु बोले-तुममें नित्य वर्धिनी मेरी भक्ति निवास करेगी, एक वरदान और माँग लो तब बालक बोला—प्रभु! इस पर्वत के ऊपर अनेक प्रकार के पुष्प हैं।

चौ०—चाहहुँ पूजा उन पुष्पनते। पाऊँ क्षमता मैं या तन ते॥
व्याघ्र भाँति मम पंजे होंही। तेही भाँति लखि तम में जोहीं॥
नेत्रन संख्या भी षट पाऊँ। तबहि पुष्प पूजन लै आऊँ॥
एवमस्तु कह अन्तर्हित भये। षट चमकीले नयन कुमर भये॥

मैं उन पुष्पों से आपकी पूजा करना चाहता हूँ पर इसमें यह शरीर समर्थ नहीं, मेरे पंजे व्याघ्र की भाँति दृढ़ हो जावें और नेत्र भी उसी भाँति अँधेरे में देखने योग्य छः हो जावें तो और अच्छा। इस प्रकार तब ही मैं आपकी अभीष्ट ढंग से पूजा कर सकूँगा। प्रभु वे कहा ऐसा ही हो और अन्तर्हित हो गये। द्विज पुत्र के छः चमकीले नेत्र लग गये।

दोहा— पंज्जे दृढ़ हो जावहीं, व्याघ्र समानहिं पाय।
तब उनका नाम भी 'व्याघ्रपाद' पड़ि जाय॥

व्याघ्र की भाँति दृढ़ पंजे भी हो गये, इसीसे ही उनका नाम 'व्याघ्रपाद' पड़ गया। (मानसमणि मार्च 67 आलोक 3)

❋ अलबेला शिव ❋

कवित्त— "माथे में त्रिपुण्ड विधु बालहू विराजै 'प्रिय',
जटन के बीच गंगधार को झमेला है।
सींगी कर राजै एककर में त्रिशूल धारे,
गरे मुण्डमाल घाले काँधे नाग-सेला है॥
कटि बाघ छाला बाँधे भसम रमाये तन,
बाम अंग गौरी देवी चढ़न को बैला है।
धेला है ना पल्ले, खरचीला है अजूबी भाँति,
ऐसा गिरि मेला देव शम्भु अलबेला है॥"

❋ श्री गंगा महारानी की कृपा ❋

कवित्त— लोचन असम अंग भसम चिता को लाय,
तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो।
कहै 'पदमाकर' बिलोकिइमि ढंग जाके,
वेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटाजूट बैठे परबत कूट माँहिं,
महाकालकूट कहो कैसे कै ठहरतो।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै,
ऐसे पूछतो को नंगै जो न गंगै शीष धरतो॥"

(जे श्री गंगाधर महाराज)

(16) उपमन्यु

श्लोक—"नो शक्य मुग्र तपसापि युगान्तरेण प्राप्तुं यदन्यसुरपुंगवतस्तदेव।
भक्त्या सकृत्प्रणमनेन सदा ददाति यो नौमि नम्रशिरसाचतमाशुतोषम्॥"

"जो फल युगों तक कठोर तपस्या करने पर भी दूसरे देवाधिपतियों से प्राप्त होना शक्य नहीं, उसी को जो केवल एक बार प्रणाम करने मात्र से प्रदान कर देते हैं, उन भगवान आषुतोष को हम मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं।"

समयानुसार श्री व्याघ्रपाद जी ने ग्रहस्थाश्रम स्वीकार किया, उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम उपमन्यु रखा गया। वह पुत्र पिता के समान ही नम्र, विनीत, सरल तथा शिव भक्त था। खेलते हुए एक दिन उपमन्यु किसी पड़ोस की ऋषि की कुटिया में गया। ऋषि पत्नी ने अपने पुत्र को दूध पिलाते समय थोड़ा गौ-दुग्ध उपमन्यु को भी पीने को दिया। बालक उपमन्यु को गौ-दुग्ध अभी तक कभी मिला नहीं था, दूध उसे अतिप्रिय लगा, उतने दूध से तृप्ति न हुई। संकोच के मारे वह ऋषि पत्नी से माँग भी न सका। माता से माँगने के लिये घर दौड़ा आया।

उपमन्यु बालक ही तो था, बालहठ के कारण वह माता से मचल उठा, जब बच्चा बहुत हठ करने लगा तो माता ने चावल पीसकर पानी में मिला कर उसे दे दिया। उपमन्यु को दूध का स्वाद मिल चुका था, मुख से उस पानी को लगते ही उसने फेंक दिया। "यह कैसा दूध है? अम्मा! क्या सचमुच यह दूध ही है? दूध तो ऐसा नहीं होता, वह तो बड़ा मीठा लगता है। यह दूध नहीं है।

माता के नेत्र भर आये। "आह! हम अपने पुत्र को थोड़ा दूध देने में भी असमर्थ हैं" मुनि पत्नी झूँठ नहीं बोल सकती थी। वे बोलीं "बेटा! सचमुच यह दूध नहीं है। हम वनवासी हैं, दरिद्र हैं, हमारे पास दूध कहाँ से आया। पुत्र! यदि तुझे दूध ही चाहिये तो भगवान शंकर को प्रसन्न कर। वे सर्वेश ही हमारे एकमात्र आधार हैं। तू जो भी चाहेगा, उनसे ही पा सकेगा।"

सरल हृदय बालक का हठ माता के नेत्रों में अश्रु देखते ही दूर हो गया। उसमें प्रेम का उद्वेग हुआ। अपने नन्हे हाथों से माता के अश्रु पोंछते हुए वह बोला "माँ! तू रोती क्यों है! मैं अब तुमसे दूध नहीं माँगूँगा, तू मुझे बता दे कि भगवान शंकर कहाँ रहते हैं? वे कैसे प्रसन्न होते हैं? मैं उन्हें अवश्य प्रसन्न करूँगा।

माता का हृदय भक्ति से भर गया। पुत्र को प्यार से गोदी में लेकर वे बोली, "हाँ बेटा! तू प्रभु को अवश्य प्रसन्न करेगा। मेरे लाल! तुम सफल हो, प्रभु तुममें उत्साह और दृढ़ता दें। बेटा! भगवान शंकर तो सब कहीं रहते हैं, तेरे पिता ने उन्हें प्रसन्न भी किया था, तू अपने पिता से ही उन्हें प्रसन्न करने की युक्ति पूछ ले।"

उपमन्यु ने तुरंत ही जाकर पिता से प्रश्न किया। पिता ने पुत्र को रोककर अध्ययन कराना पहले योग्य समझा। उन्होंने युक्ति बताने के बहाने उसे रोक लिया। धीरे-धीरे सम्पूर्ण शास्त्रों का उन्होंने अध्ययन कराया। उपमन्यु ने भी बड़ी लगन से अध्ययन किया। अध्ययन समाप्त होने पर उपमन्यु ने पिता से शिव दीक्षा ग्रहण की, उसकी धुन पक्की थी, वह माता के उपदेश को भूला नहीं था। भगवान शंकर को प्रसन्न करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था।

दोहा— दीक्षा ग्रहण करत ही, मातु-पिता सिर नांय।
अज्ञा आशीर्वाद ले, शिव प्रसन्न बन धाय॥

दीक्षा ग्रहण करके, माता तथा पिता के चरणों में सिर नवा प्रणाम करके, उनसे आज्ञा व आशीर्वाद लेकर वह उपमन्यु भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु वन में तपस्या करने को चल पड़ा।

चौ०—बन में देखि तपहित स्थाना। जलाशय हिं फल, फूल भी नाना॥
हिंसक पशु न बाधा तँहवा। कीट भी दंशक नहिं रह जहवां॥
स्थापना शिव लिंगहिं करेऊ। पूजा सविधिमन चित धरेऊ॥
उपमन्यु तप कर रहे जहवां। मुनि पिशाच होइ इक रहे तहवां॥

घोर वन में पहुँचकर तपस्या के योग्य एक सुन्दर स्थान मिला। जलाशय पास था, नाना प्रकार के फू-फूल पर्याप्त थे। हिंसक पशुओं की बाधा न थी, दंशक कीट भी न थे। वहीं एक शिवलिंग की स्थापना करके उपमन्यु सविधि पूजा एवं तपस्या में संलग्न हो गये। जहाँ उपमन्यु तपस्या कर रहे थे, वहाँ एक मुनि पिशाच होकर रहते थे।

चौ०—पिशाच भये मुनिऋषि के शापा। कष्ट दियो उपमन्यु बहु तापा॥
व्याधि शरीरहिं अस भय दयऊ। विचलित नहिं उपमन्यु भयेऊ॥
सज्जन संग सदा शुभकारी। चंदन काट सुगंध दे भारी॥
उपमन्यु जप श्रवनन परेऊ। तेहि स्पर्श पुनः मुनि भयऊ॥

ये मुनि ऋषियों के शाप से पिशाच हो गये थे। पिशाच ने उपमन्यु के बहुत ताप = कष्ट दिया। शारीरिक व्याधियाँ और भय दिखाये, पर वे विचलित न हुए। किसी भी प्रकार से हों, सज्जनों का संग कल्याणप्रद शुभकारी ही होता है। लोहे से पारस पर आघात भी किया जाय तो भी वह लोहे को स्वर्ण बना देता है। काटने पर भी चंदन बहुत भारी सुगन्धि ही देता है। उपमन्यु के जप के उस पिशाच के श्रवणों में पड़ने से एवं इनके स्पर्श से शाप से मुक्त होकर वह पुनः मुनि हो गये।

दोहा— प्रबल तपस्या देखकर, माँ पार्वती के साथ।
भक्त परीक्षा लेन कहँ, आये भोलेनाथ॥1॥
वृषभ बना ऐरावतहिं, स्वयं इन्द्र बनि जाँहि।
माता शची बनाइके, आ उपमन्यु तेहि ठाहिं॥2॥

तपस्या अब बहुत प्रबलता को पहुँच चुकी थी, प्रसन्न होकर माता पार्वती के साथ भगवान शंकर जी भोलेनाथ पधारे। भक्त की परीक्षा लेने या उनके संग विनोद करने के लिये प्रभु ने वृषभ को ऐरावत बना दिया और स्वयं इन्द्र तथा माँ पार्वती को शची रूप में कर दिया। जहाँ उपमन्यु थे वहाँ आये।

चौ०—आश्रम आते इन्द्र जब देखे। उठ उपमन्यु प्रणामहि लेखे॥
उनकी बंदना कर मन मानी। इन्द्र रूप प्रभु बोले बानी॥

मैं प्रसन्न उपमन्यु भयऊ। माँगहुँ वर चाहहु सो दयऊ॥
बोले देवराज सुनि लेऊ। मोहि शिव चरनन भक्ति देऊ॥

उपमन्यु जी अपने आश्रम में देवराज को आया देख, उठकर उन्हें सादर प्रणाम किया, मन ही मन उनकी वन्दना की। प्रभु जो इन्द्र के रूप में थे बोले "बेटा उपमन्यु! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो कुछ भी माँगना हो माँग लो।" उपमन्यु को माँगना ही क्या था। तपस्या के साथ सच्ची भक्ति ने मिलकर समस्त कामनाओं को भस्म कर दिया था। वे बोले "सुरनाथ! मैं तो केवल भगवान शंकर के चरणों में भक्ति चाहता हूँ। इसे ही दें।

चौ०—ठहाका मारि इन्द्र हँस परेऊ। कहने लगे शास्त्र तुम पढ़ेऊ॥
शास्त्र बतावें उनहिं भूतनाथा। कपाली नग्न सर्प भूषन साथा॥
तमोगुणी, पिशाचन संगी। विरूपाक्ष श्मशानी त्रिभंगी॥
भिक्षुक पागल है उन्मत्ता। लाभ कहा अस भगवत सत्ता॥

इन्द्र बड़े उच्च स्वर से ठहाका लगाकर हँस पड़े और कहने लगे "तुमने समस्त शास्त्र पढ़े, पर तुममें विचार शक्ति नहीं आई, शास्त्रों में उन्हें तमोगुणी, पिशाचसंगी, त्रिभंगी, भूतनाथ, कपाली, नग्नि, सर्पभूत, बिरूपाक्ष, श्मशान वासी तथा उन्मत्त कहा गया है, ऐसे पागल, भिक्षुक के पीछे क्यों पड़े हो, उसकी भगवत् सत्ता से भक्ति करके तुम्हें क्या लाभ होगा?

दोहा— जो चाहो सम्पत्ति धन, ऐश्वर्य धर्म अरू काम।
स्वर्गहि तुमहि अभीष्ट हो, मैं दऊँ तुमहिं तमाम॥

जो ऐश्वर्य, सम्पत्ति, अर्थ, धर्म, काम, या स्वर्ग तुम्हें अभीष्ट हो मैं इन तमामों को देने को तत्पर हूँ, मुझसे माँग लो।

चौ०—नेत्र लाल भै मुह उठ दमकन। भृकुटि कुटिल होठ लग फड़कन॥
परम शांत तपस्वी शिष्टहिं। सह न सके निंदा निज इष्टहिं॥
क्रोधित हो उपमन्यु चीन्हा। यज्ञ भस्म अभिमंत्रित कीन्हा॥
अघोरास्त्र मंत्रते दयऊ। तुरत इन्द्र पर फेंकत भयऊ॥

नेत्र लाल हो गये, मुख दमक उठा, भृकुटि कुटिल हो गयीं, ओष्ठ फड़कने लगे। उपमन्यु यद्यपि परम शान्त तपस्वी शिष्ठ थे, पर अपने इष्ट की निंदा सहन न कर सके। कोई भी हो, देव, दैत्य या मनुष्य यदि वह आराधक की निंदा करता है तो दण्डनीय है। जो शक्ति रहते हुए भी, प्रभु निंदक को दण्ड नहीं देता, वह पापी हे। उसके साधनों का फल नष्ट हो जाता है। क्रोधित होकर उपमन्यु ने अघोरास्त्र के मंत्र से वहाँ पड़ी यज्ञकुण्ड की भस्म को अभिमंत्रित करके इन्द्र पर फेंका।

चौ०—निंदा सुनी देह मम पापी। उचित है नष्ट करउँ ये आपी॥
यह विचार मन्यु मन माहीं। भस्म करन देह अग्नि चाहीं॥
तुरत ऐरावत वृष होइ जाहीं। इन्द्र न शची रहीं उन ताहीं॥
उस पर उमा शिवहिं विराजेउ। अघोरास्त्र नंदी ने साजेउ॥

"प्रभु की निंदा सुनने वाले इस पापी शरीर को भी मुझे अपने आप नष्ट कर देना चाहिए।" यह सोच कर उपमन्यु अपने शरीर को भस्म करने के लिये उसमें अग्नि की धारणा करने लगे। सहसा ऐरावत चन्द्रोज्वल वृषभ हो गया, न इन्द्र थे न शची, उस पर माता उमा के साथ भगवान शिव विराजमान थे। नन्दी ने अघोरास्त्र को ग्रहण कर लिया था।

दोहा— उपमन्यु प्रेमाधीर ह्वै, पुलकित भयो शरीर।
गिरे प्रभु के चरणहिं, धोये असुवन नीर॥1॥
प्रभु ने उन्हें उठा लिया, माँग पुत्र वरदान।
तेरी दृढ़ निष्ठा से ही, मैं प्रसन्न यहाँ आन॥2॥

उपमन्यु प्रेमाधीर हो गये, शरीर पुलकित हो गया, अश्रु से प्रभु के चरणों को धोते हुए वे उनके चरणों पर गिरकर प्रेमाधिक्य से मूर्च्छित हो गये। प्रभु ने उन्हें उठाया, शांत किया और बोले "पुत्र! तुम्हारी दृढ़ निष्ठा से मैं बहुत प्रसन्न होकर यहाँ आया हूँ मुझसे वरदान माँगो।"

यहाँ तो कभी का कामनाओं का अंत हो चुका था। उन्होंने प्रार्थना की "दयामय! आपके इन पादपद्मों में जन्म जन्मान्तर में भी मेरी भक्ति अटल रहे, यही आशीर्वाद दीजिये।"

एक बार भी यदि प्रभु के पथ में प्रवृत्त होने पर कामना उठ गई हो तो उसे पूर्ण तो होना ही चाहिए। कल्पवृक्ष स्वरूप प्रभु के पथ में चाहे कामना एक क्षण ही क्यों न रहे, पर उसकी पूर्ति तो होगी ही। उपमन्यु में दूध के लिये इधर प्रवृत्ति हुई थी, अतः प्रभु बोले, "बेटा! तुममें मेरी अविचल और नित्य भक्ति होगी। यह मेरा प्रसाद है इसे ग्रहण करो।" प्रसाद क्या था ? दूध जमा कर शुष्क = पाउडर तो आज भी लोग कर ही लेते हैं, बोतलों का दूध चूर्ण ही हो होता है, वह शंकर जी का प्रसाद भी दूध की सूखी पिण्डी थी। पर उसमें यह विशेषता थी, कि वह कितना भी प्रयुक्त होने पर घटती या समाप्त नहीं होती थी। प्रसाद देकर प्रभु अन्तर्हित हो गये।

उपमन्यु जी दूध के लिये प्रवृत्त हुए थे तो उन्हें पिण्डीभूत क्षीरोदधि ही मिला।

(मानसमणि मार्च 1967 से)



❋ फल ❋

कवित्त— "दरस किएतें दुःख-दारिद दलत,
पाँय परस किएतें पाप-पुंज हरि लेत हैं।
जल के चढ़ाएँ जमजातना न पाएँ कहूँ,
चन्दन चढ़ाएँ चित्त चौगुना सचेत हैं॥
कहत 'कुमार' कुंद कुसुम कनीर कंज,
कनक चढ़ाएँ देत कनक निकेत हैं।
त्रिदल चढ़ाएँ तें त्रिलोचन त्रितापन कों,
चिगुनी त्रिवैनी की तरंगै करि देत हैं॥"

❋ शंकर ❋

सवैया— 'शंकर' नाम सुधा सम है, भव-भूति भरैं भव-भावन शंकर।
शंकर[1]-हेतु तजैं यति धामहु, शंकर पावत भार अशंकर[2]॥
शंकर ही जन शंकर हैं, पुनि काल भयंकर[3] लोकव शंकर[4]।
शंकर को सब देव भजैं, 'सरयू' कवि-किंकर[5] के शिव-शंकर॥

(1) कल्याण (2) अमंगल (3) काल के भी काल (4) संसार को वश में करने वाले (5) सेवक।

(जै श्री शिव शंकर)



(17) कवित्तवास

**श्लोक—"विभूषणोद्भासि पिनद्धिभोगिवा, गजाजिनालम्बि दुकूल धारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दु शेखरं, न विश्व मूर्तेरवधार्यते वपुः॥"**

"चाहे आभूषण सजावें या सर्प लपेटे रहें, हाथी का चमड़ा पहनें या रेशमी वस्त्र, कपालमाली रहें या चन्द्रशेखर, जो विश्वस्वरूप हैं उनके वेश का 'इदमित्थम' निर्णय नहीं हो सकता।

'कृत्तिवास' शब्द का अर्थ है चर्म ही जिसका वस्त्र हो, जो चमड़ा पहनता हो। गजचर्म पहनने के कारण यह शब्द भगवान शंकर में ही रूढ़ हो गया है।"

**दोहा— शिव इक दिन मां पार्वती, रत्नेश्वर महात्म्य समझाय।
महिषासुर सुत गजासुर, करि रूपहिं पहुँचा आय॥**

एक दिन कैलाश के शिखर पर जब भगवान शंकर माता पार्वती को रत्नेश्वर का माहात्म्य समझा रहे थे, महिषासुर का पुत्र गजासुर जिसका कि रूप हाथी का ही

था आ पहुँचा।

चौ०—गणन कष्ट दैत्य देन लगेऊ। पराजित तेहि उद्योग न भयेऊ॥
शिव तक जाने रोक न पाहीं। बड़ा कष्ट गणन मन माहीं॥

वह दुष्ट दैत्य भगवान शंकर के गणों को कष्ट देने लगा। गणों ने बहुत उद्योग किया पर वे उसे पराजित न कर सके और न उसे भगवान शंकर तक जाने से रोक ही सके, गणों के मन में बड़ा कष्ट हुआ।

उसने तपस्याकरके ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किया था कि "वह किसी भी ऐसे व्यक्ति से परास्त न होगा जो एक बार भी काम के वश हो चुका हो।"

चौ०—अजेय सा हो वरदान प्रभावा। विप्रदेव मुनि कष्टहि दावा॥
चींटी मृत्यु कही अस जावै। उसके पंख निकल तव आवै॥

वरदान के प्रभाव से असुर अजेय सा हो गया था, वह देवता ब्राह्मण, ऋषि, मुनि तपस्वी आदि सबको कष्ट देता फिरता था। कहा जाता है जब चींटी की मृत्यु आती है तो उसके पंख निकल आते हैं।

आज गजासुर की मृत्यु ही उसे कैलाश तक ले आई थी। आपत्ति अपने कारणों तक स्वतः ले जाती है—"आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय।"

चौ०—ये ही बात गजासुर होई। भूला शिव कामारि सोई॥
जा रहा मैं उनके ही पासा। भस्म कियो जिन मदनहिं खासा॥

यही बात गजासुर के लिये भी हुई वइ यह भूल गया कि "मैं कामारि प्रभु के पास जा रहा हूँ, ये तो मदन को भस्म करने वाले हैं मुख्य = प्रधान। खास ।

चौ०—पार्वती को पास देखकर। भ्रमी देव सामान्य समझकर॥
प्रभु सामने जाइ चिंघारा। पत्थर ईंट फेंक दे डारा॥

माता पार्वती को समीप देखकर भ्रम में पड़ गया, उसने इन्हें भी सामान्य देवता समझ लिया। प्रभु के सामने जाकर हाथी चिंघाड़ने लगा और ईंट पत्थर प्रभु की ओर फेंक कर डारने लगा।

दोहा— उपदेशहिं बाधा परी, शिव दैत्य दुष्टता जान।
वेधा तेहि त्रिशूल ते, लटका दिया उसी पर तान॥

उपदेशों में बाधा पड़ने लगी। सर्वत्र प्रभु इस असुर की दुष्टता को जान गये। उन्होंने त्रिशूल उठाया और इसे बेधकर उसी त्रिशूल पर तान कर लटका दिया।

विधा हुआ दैत्य त्रिशूल के अग्रभाग में पड़ा था। प्रभु ने त्रिशूल समीप ही पृथ्वी में गाड़ रखा था। दुष्टों को सुबुद्धि तभी मिलती है, जब उन्हें दण्ड मिले ।

चौ०—महत्व प्रभू अब मन महँ जागा। लटके हि स्तुति करने लागा॥
आशुतोष प्रसन्नहिं भयेऊ। तेहिते वर मांगन की कहेऊ॥

गजासुर ने अब प्रभु के महत्व को मन में जाना। वह त्रिशूल पर लटके ही

लटके विनम्र शब्दों में प्रभु की स्तुति करने लगा। आशुतोष उसके स्तवन से प्रसन्न हुए और उससे वरदान माँगने को कहा।

असुरों में एक विशेषता है वे शरीर की अपेक्षा यश को अधिक महत्व देते हैं।

चौ०—अमर कीरती चाहहिं असुरा। चाहे प्राण कष्ट सह वपुरा॥
यश से श्रेष्ठ न वस्तु कोई। लखिन परै रजगुणवृत्ति होई॥

कष्ट सहकर, प्राण देकर भी वे अमर कीर्ति चाहते हैं, पर उन रजोगुणी वृत्ति वालों को यश से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं दीख पड़ती।

"यह सच है कि गजासुर ने प्रभु से नश्वर और तुच्छ जीवन न माँगकर बुद्धिमानी की परन्तु उन परम पद मुक्ति के दाता से मुक्ति न माँगकर उसने कम मूर्खता भी नहीं की। असुर यश तक ही रह गया, रजोगुण का धर्म ही यह है ।

चौ०—रजगुणी कस सात्विक होवै। माँगा वरदान गजासुर जोवै॥
प्रभु चर्म मम देह कहँ धारें। नग्न देह याही ते संभारै॥

वह असुर अब करता भी क्या, रजोगुण कभी सात्विक बुद्धि का कैसे हो सकता है। गजासुर ने वरदान में माँगा "प्रभु नग्न न रहकर मेरे शरीर का चर्म धारण किया करें।"

चौ०—"अच्छी बात" प्रभु हँसकर कहेऊ। उतारत चर्म देह तेहि भहेऊ॥
बड़े प्रेम धारण कर लीन्हा। कृत्तिवास तब से प्रभु कीन्हा॥

हँसकर प्रभु ने कह दिया "अच्छी बात" दयामय ने स्वयं असुर के मृतक शरीर से चर्म उतारा और उसे वैसे ही प्रेम से धारण कर लिया। प्रभु तभी से उस असुर के चर्म को धारण करके कृत्तिवास हो गये हैं। (मानसमणि अप्रेल 1967)



(18) पशुपति

श्लोक—"असम्ब दस्तस्य वृषेण गच्छतः, प्रभिन्मादिग्वारण वाहनो वृषा।
करोति पादानुयगम्य मौलिना, विंनिद्र मन्दार रजोऽरूणांगुली॥"

दरिद्र होने पर भी जब कैलाशपति प्रभु अपने बैल पर चढ़कर चलते हैं तो दिग्गजों को भी हरने वाले ऐरावत पर बैठे इन्द्र, उतरकर अपने सिर में शोभित कल्पवृक्ष के प्रसूनों की धूल से उनके चरण की अंगुलियों को और भी अरुण बनाते हैं (चरणों पर ऐरावत से उतरकर सिर रख कर प्रणाम करते है।)

भगवान शंकर का वाहन वृषभ है, उनके एक हाथ में मृगशिशु का भी शास्त्रों में वर्णन है, इस प्रकार इन दो पशुओं के तो वे प्रत्यक्ष स्वामी हैं। माता उमा का वाहन सिंह है और गणेश जी का वाहन चूहा प्रसिद्ध ही है। शेष गणों में सभी पशु आ जाते

हैं। जैसे भैरव का कुत्ता, काली का गधा आदि। इस सम्पूर्ण समाज के स्वामी होने के कारण शंकरजी उन वाहनों के भी स्वामी हैं। इस प्रकार से समस्त पशुओं के स्वामी अथवा 'पशुपति' कहे जाते हैं।

उपरोक्त अर्थ बुद्धि का विलास ही कहा जायेगा। शास्त्रों में पशुपति का बड़ा सुन्दर कारण दिया गया है। अब हम इस 'पशुपति' शब्द के वास्तविक कारण पर विचार करें—

दोहा— पशुता जो करे वही पशु, विषयन्ह, प्रवृत्ति धर्म।
क्रोध लोभ मोह कामहि, राग द्वेष समस्तहिं कर्म॥

पशुता जो करे वहीं पशु है, पशु का धर्म है विषयों में प्रवृत्ति। काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, राग आदि समस्त वासनाओं में लिप्त रहकर कर्म करना पशु का धर्म है साथ ही पशु का प्रधान लक्षण है अज्ञान ज्ञान शून्यता ही पशुता है इस प्रकार वासनाओं के विवश रहने वाले अज्ञानी जीवमात्र ही पशु हैं। पशु शब्द जीवमात्र का उपलक्षण है।

चौ०—वासना विवश पशु बंधन होई। सकल जीव बंध माया मोई॥
तेहि कारण अज्ञान प्रधाना। परतंत्रता भोग जीव नाना॥

अपनी वासना विवशता तथा मूर्खता से ही पशु बन्धन में पड़ता है। समस्त जीव वासना और अज्ञान के प्रमुख होने पर ही माया के बन्धन में पड़े हुए हैं और जीव मात्रों की माया से परतंत्रता अनेक प्रकार की है।

पशु का एक अर्थ और है परतन्त्रता ही पशुता है, सकलजीव माया से ही परतंत्रता है, अतः वे सबके सब पशुनाम से सम्बोधित हुए हैं। जो पशु को बंधन से छोड़ सके और बाँध सके, जो उसके द्वारा कार्य करा सके, जो उसका पालन पोषण तथा रक्षण और शासन करे वही 'पशुपति' है। प्रभु की माया ही बंधन का कारण है, जीव को बंधन से मुक्त भी प्रभु ही कर सकते हैं। उन्हीं की इच्छा से परतंत्र होकर प्राणिमात्र अपने क़ार्यों में लगे हैं, कोई उनकी इच्छा के विरुद्ध तनिक भी नहीं चल सकता। वे अखिलेश ही सबका पालन पोषण रक्षण तथा शासन करने वाले हैं, अतः इन समस्त जीव-पशुओं के स्वामी हैं वे पशुपति हैं।

चौ०—शंकरही पशुपति कहावै। अब हम उनकी किरया पावैं॥
माया पाश छूट तब सकहीं। काटन पाश समर्थ हैं शिवहीं॥

भगवान श्रीशंकर ही पशुपति हैं, हम उन्हीं की कृपा से इस माया के पाश से छूट सकते हैं। वे ही इस पाश को काटने में समर्थ हैं।

चौ०—जितना चाहे उद्योगहिं करहीं। उनके बिना छूट नहीं सकहीं॥
निज बल उछल कूद जित होहीं। पाशहिं बंधन दृढ़ उलझोहीं॥

हम स्वतः चाहे जितना भी उद्योग करें जिना भी हाथ पैर मारें, पर इस माया

पाश से उनके छुड़ायें बिना छूट नहीं सकते। अपने बल पर जो उद्योग या उछलकूद होगी वह पाश को और दृढ़ उलझा देगी।

चौ०—अहं प्रबलता धारण करहीं। छूटन पाश शिवहिं अनुसरहीं॥
निर्भर उन्हीं कृपा पै रहवें। निजको यंत्र बना उन देवें॥

अहंकार प्रबलता धारण कर लेगा। इस मायापाश से छूटना हो तो अपने को प्रभु इच्छा पर हमें निर्भर कर देना चाहिए। हमें उनका अपने को यन्त्र बा देना चाहिये। सीधे अनुकूल बनना चाहिए।

दोहा— वे आशुतोष दयामय, अवस मुक्तकर देयँ।
शरण गहैं उनकी सदा, उत्कंठित छोड़न रहेयँ॥

वे शिव भगवान आशुतोष दयामय हैं वे अवश्य हमें इस मायापाश से मुक्त कर देंगे। दयासिंधु पशुपति समस्त पशुओं के पाश को छोड़ने को सदा ही उत्कण्ठित रहते हैं। वे सदा प्रयत्न में लगे रहते हैं हमें मुक्त करने के लिये, पर हमने अपनी उछलकूद से पाश को दृढ़ बना लिया है। उनकी शरण नहीं गही है। वे शरणागत वत्सल हैं, शरण पड़ने पर अभय कर देते हैं।

अब भी हम अपनी उछलकूद बन्द करके उस पाश को खोलने का प्रभु को अवसर नहीं देते। हमारी यह उछलकूद, यह अहंकार ही हमारे बंधन का कारण है। अपने को यदि हम प्रभु पर छोड़ दें तो पाश को ढीला करने के लिये वे हमें इधर-उधर हटायेंगे, जिधर वे हटायें हटते रहें, उनकी इच्छा का अपने को यन्त्र बना लें, तो वे करुणासिंधु तो पाश को खोलने को कब से प्रस्तुत हैं। पशुओं को पाश से मुक्त करने के लिये सर्वता उत्कंठित रहने के कारण ही उन्हें 'पशुपति' कहा जाता है।

(मानसमणि अप्रैल 1967)

❋ कल्याणकारी शिव ❋

कवित्त— "काशी के वसैया, पर काशी के दिवैया नाथ,
भंग के छनैया अरु गंग के धरैया तुम॥
वेष के अमंगल औ जंगल के वासी प्रभु,
तौहू महामंगल हौ मंगल करैया तुम॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागर तें,
कैतिक सम्हारे ऐसे विपद-हरैया तुम ।
ऐहो त्रिपुरारि अघहारी सुखकारी शिव,
'प्रेम' पर्यो द्वारे आज लाज के रखैया तुम॥

❋ शंकर-स्तवन ❋

छप्पय—"भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धांग, भूषण भुजंगवर॥

मुंडमाल, बिधुबाल भाल, डमरू कपालु कर।
बिबुध बृन्द-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधार॥
त्रिपुरारी, त्रिलोचन, दिग्वसन, विषभोजन, भव-भय हरन।
कह तुलसीदासु सेवत सुलभ शिव-शिव शिव शंकर सरन॥"



(19) पंच्चमुख

श्लोक— "शान्तं पद्मासनस्थं शशधर मुकुटं पंच्चवक्रं त्रिनेत्रं,
शूलं बज्रं च खंगं परशुभ भयदं दक्षणागं वहन्तम्॥
नागं पाशं च घंटां प्रलयहुतवहं सांकुशं वामभागे,
नानालंकारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥"

"शान्त मुद्रा से कमल के ऊपर आसन लगाये (या पद्मासन से बैठे) चन्द्रमा का मुकुट धारण किये पंच्चमुख, त्रिनेत्र, दाहिनी ओर के करों में त्रिशूल, वज्र, खंग, परशु और अभयमुद्रा तथा वाम भाग के करों में सर्प, पाश, घंटा, प्रलयाग्नि और अंकुश लिये हुए, अनेक प्रकार के आभूषणों से सज्जित, स्फटिकमणि के समान उज्ज्वल वर्ण वाले पार्वती पति को हम नमस्कार करते हैं।"

माया की माया में अघट कुछ भी नहीं। वे लीलामय कोई भी कार्य क्यों करते हैं, यह केवल वही जानते हैं। बुद्धि के द्वारा तो उनका ही ग्रहण होना कठिन है, उनके कार्यों के रहस्य का ग्रहण होना तो दूर रहा। हम तो उनके कार्यों को वैसे ही देखते हैं जैसे कि वे प्रत्यक्ष करते हैं।

दोहा— एक दिन ब्रह्म अरु शिवहिं, बैकुण्ठ संयोग हि जाइ।
श्रीपति उस दिन कौतूहल, निज वेष किशोर बनाइ॥

एक दिन ब्रह्मलोक से ब्रह्मा और कैलाश से भगवान शिव संयोगवश एक साथ ही वैकुण्ठ पहुँचे। श्रीपति ने उस दिन कौतूहल से अपना वेष किशोरावस्था का बना लिया था।

चौ०—घनीभूत सौंदर्य किशोरा। त्रिभुवन मोहन सचमुच घोरा॥
लखि स्तम्भित दोऊ भयऊ। रूपमाधुरी इकटक पयऊ॥

वह सौंदर्य का आदि उद्गम, वेघनीभूत सौंदर्य किशोरावस्था में होने पर सचमुच त्रिभुवन मोहन हो गये। एक तो सौंदर्यघन, दूसरे किशोरावस्था में, श्री हरि को देखते ही स्तम्भित से होकर ब्रह्मा और शंकर जी एकटक उस रूप माधुरी का पान करने लगे।

चौ०—कर अरुचरण तहीं रुक जाहीं। जहाँ वहीं खड़े रह पाहीं॥
समस्त प्राण मानों नेत्रहिं आहीं। आकर्षण प्रिय धर्म कहाहीं॥

उन दोनों के कर व चरण रुक गये वे ज़हाँ थे वहीं खड़े रह गये। मानो सम्पूर्ण

प्राण नेत्रों में ही आ गये हों। प्रियता का आकर्षण का यही धर्म है।

चौ०—सेवन से तृप्ति नहीं हों ही। उससे अतृप्ति बढ़ती जों हीं॥
यही दशा उन दोउन होई। हर ब्रह्मा उस समय संजोई॥

जितना भी उसका सेवन हो कभी तृप्ति नहीं, सेवन से अतृप्ति ही बढ़ती रहे। यही दशा इस समय हर और ब्रह्मा की थी।

चौ०—जहाँ भावना तृप्ति मानैं। बस पर्याप्त यही उरजानैं॥
प्रियता तेहि कहीं नहीं जाई। आकर्षण सच्चा नहिं ताई॥

जहाँ तृप्ति हो जाय, यह भावना आ जाय कि "बस अब पर्याप्त है" वहाँ प्रियता नहीं कही जायेगी, उसमें सच्चा आकर्षण नहीं है। वहाँ तो वैषियिक अभिलाषा की पूर्ति मात्र हुई। पर यहाँ तो विशुद्ध सौंदर्य सिंधु लहरा रहा था, यहाँ तृप्ति कैसे हो सकती थी।

शंकरजी रूपमाधुरी की कल्पना करते-करते सोचते भी जाते थे कि ब्रह्मा के चार मुख हैं वे आठों नेत्रों से इस रूपानंद का स्वाद ले रहे हैं मुझे तीन नेत्रों पर ही संतोष करना पड़ रहा है। विचार में आने की देर थी, मन में आया मैं तीन नेत्रों पर क्यों संतोष करूँ, ब्रह्मा के चार मुख हैं तो मेरे पाँच मुख में क्या हानि। बस तुरंत भगवान शिव 'पंचमुख' हो गये और पन्द्रह नेत्र। वे बड़े आनंद से उन समस्त नेत्रों से वह सौंदर्य सुधापान करने लगे। श्रीपति ने सोचा, ये लोग तो जब तक मैं इस रूप में रहूँगा ऐसे ही मुग्ध खड़े रहेंगे, यह अभीष्ट न था, वे झट तारुण्य स्वरूप में आ गये, जैसे समाधि से जग पड़े हों, इस प्रकार ब्रह्मा व शंकर चौंक पड़े। श्री हरि ने हँसते हुए कहा "श्री कैलाश बिहारी का यह पंचमुख वेष अब से भक्तों के लिये कल्याण प्रद होगा।" शंकरजी ने अपनी मूर्ति को नित्य बना लिया।

परस्पर अभिवादनादि के अनंतर कुछ बातचीत होती रही फिर वहाँ से भगवान विष्णु से विदा लेकर ब्रह्माजी और शंकरजी अपने-अपने धामों को प्रस्थित हुए। भगवान शिव तभी से पंचमुख कहे जाते हैं।

(मानसमणि अप्रैल 1967)

(श्री पंचमुख शिवशंकर की जय)

❑ ❖ ❑

(20) जलंधर-संहार

"पतिरेव हि नारीणां परमो दैवतः स्मृतः॥"

"शास्त्रों में स्त्री के लिये पति ही परम देवता—परमात्मा बताया गया है।"

स्त्री के लिये जब तक पति जीवित है, दूसरी न कोई पूजा है न उपासना।

उसके लिये तो पतिकी पूजा-सेवा ही परमात्मा की परम भक्ति है। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि "जो स्त्री पति की आज्ञा के बिनाकिसी देवता की पूजा या व्रतोपासनादि करती है, उसे पतिघात का पातक होता है।" जितने भी व्रत, उपवास या अनुष्ठान हैं, सबका फल स्त्री को पति की पूजामात्र से मिल जाता है। पति की सेवा और भक्ति से स्त्री ज्ञान, भक्ति और मुक्ति जो कुछ भी चाहती है, सब प्राप्त होता है।

जब लोग पत्थर की मूर्ति की उपासना परमात्मा मानकर करते हैं, तो जीवित मूर्ति की उपासना में शंका करना तो मूर्खता ही है। पतिव्रता स्त्री जहाँ अपने पतिव्रत से अपना कल्याण कर लेती है, वहाँ उसके पातिव्रत के बल से उसके पति का भी कल्याण हो जाता है। महापापी पति का भी पतिव्रता पत्नी उद्धार कर लेती है, उसका पति इस लोक मेंउसके पातिव्रत के तेज से रक्षित रहता है, भौतिक और दैविक बाधाओं से भी रक्षा पाता है।

दोहा— जल के पुत्र जलन्धर, तेहि पत्नी वृन्दा नाम।
उच्चकोटि की पतिव्रता, पति अजेय भयो परिणाम॥1॥

जल के पुत्र जलन्धर की पत्नी वृन्दा उच्चकोटि की पतिव्रता थी। दैत्य जलन्धर अपनी स्त्री के पतिव्रत के प्रभाव से प्रबल तथा अजेय हो गया था। उसे युद्ध में कोई भी परास्त नहीं कर सकता था।

दोहा— तेहि कारण वह विश्व में, अति उत्पात मचाय।
वार-वार जाइ स्वर्ग महँ, सुरगणन्ह मारि भगाय॥2॥

इस कारण वह विश्व में अत्यन्त उत्पात मचाने लगा। देवताओं को बार-बार स्वर्ग में जाकर मार भगाता।

चौ०—ऋषिन आश्रमन आग लगायेउ। यज्ञ ध्वस्त गौ विप्र सतायेउ॥
उत्पात चरम सीमा पर जायेउ। सुरहिं शरण शंकर की आयेउ॥

ऋषि मुनियों के आश्रमों में आग लगा देता, यज्ञों को ध्वस्त कर देता, गौ और ब्राह्मणों को बहुत सताता।

(जब कोई विश्व में अत्यंत उत्पात करने लगता है तो भौतिक शक्तियों के द्वारा उसका दमन संभव नहीं होता तो देवी शक्तियाँ उसके दमन का प्रयत्न करती हैं। यदि दैवी शक्तियाँ भी सफल न हों तो भगवान् स्वयं उसका दमन करते हैं, चाहे वह अवतार लेकर चाहें इच्छा मात्र से।)

जलन्धर का उत्पात चरम सीमा पर पहुँच गया था। देवता स्वयं उससे पीड़ित थे। अंत में देवताओं ने भगवान शंकर की शरण ली।

चौ०—आषुतोष प्रसन्नहिं भयेऊ। परतिज्ञा वध दैत्य की करेऊ॥
सुर सेना शिव साथहिं लीन्हा। जलसुता पर आक्रमण कीन्हा॥

आशुतोष प्रभु देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न हुए। उन्होंने दैत्य के वध की

प्रतिज्ञा कर ली। भगवान शंकर के साथ समस्त देव सेना ने जलन्धर पर आक्रमण कर दिया।

चौ०—सैनिक साथ जलंधर आया। बड़ा भयंकर युद्ध मचाया॥
सुर न सह सके तेहि प्रहारे। भागे रण से छोड़ के सारे॥

जलन्धर भी अपने सैनिकों के साथ युद्ध में आ डटा। बड़ा ही भयंकर युद्ध होने लगा। देवता जलन्धर के प्रहार को सहन करने में असमर्थ होकर रणभूमि से भाग गये।

चौ०—अकेले रहे तहँ शिव भगवाना। बड़ा क्रोध उनके मन आना॥
छूटे वाण जलन्धर सेना। सकल भस्म कर शेष रहेना॥

जब भगवान शंकर अकेले रह गये तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपने पिनाक से छूटे तीखे बाणों के द्वारा जलन्धर के समस्त सैनिक भस्म कर दिये ।

दोहा— उधर जलन्धर स्त्री, तेहि मूरति चरनन ध्यान।
पति की मंगल कामना, नहिं मारि सके भगवान॥1॥

जब से युद्ध छिड़ा था जलन्धन की पत्नी पति की मंगल कामना से घर में ही उनकी मूर्ति के सामने बैठकर हृदय से पति चरणों का ध्यान कर रही थी। उसे विश्वास था कि शंकर भगवान उसके पति को नहीं मार सकेंगे।

एक सच्ची पतिव्रता का संकल्प विश्व की सृष्टि और प्रलय दोनों के करने में समर्थ है। अनुसुइया ने ब्रह्मा विष्णु और शंकर त्रिदेवों को ही अपने पतिव्रत के बल से शिशु बना दिया था। सावित्री यमराज के यहाँ से भी सत्यवान को लौटा लाई थी। पतिव्रता के संकल्प को विफल करने की शक्ति परमात्मा भी रखता है इसमें सन्देह ही है, वृन्दा के संकल्प से जलन्धर अजेय हो रहा था। एक सच्ची पतिव्रता जब तक उसकी मंगल कामना कर रही है तब तक किसी में इतनी शक्ति नहीं है कि जो उसे चोट भी पहुँचा सके।

जिनके क्रोध से विश्व की पलभर में प्रलय हो जाय। जिनके तृतीय नेत्र के खोलने मात्र से ब्रह्माण्ड छार-छार हो जाता है, वही प्रलयंकर प्रभु जलंधर को कई दिन संग्राम करके भी परास्त नहीं कर पा रहे थे। वे सर्वशक्तिमान असमर्थ थे ऐसी बात नहीं। जलन्धर तो क्या वे विश्व का संहार भी इच्छामात्र से कर सकते हैं पर पतिव्रत धर्म की शक्ति की मर्यादा न टूटे यह भी ध्यान था, दूसरे यह भी विचार था कि जलन्धर के वध से कहीं उसकी पतिव्रता स्त्री क्रुद्ध होकर जगत का संहार करने लगी तो संसार की रक्षा करना असम्भव हो जायेगा।"

इन सब विचारों से कठोरता नहीं हो सकती थी। जलंधर का वध भी अभीष्ट था, क्योंकि प्रतिज्ञा कर ली थी और पतिव्रता की शक्ति की मर्यादा भी रखनी थी दुविधा में पड़े हुए भगवान शंकर ने मायाधीश श्रीपति का स्मरण किया। नभ में दूर

प्रकट होकर संकेत से ही भगवान विष्णु ने शंकरजी को कुछ बताय कर अन्तर्हित हो गये।

जब किसी भी प्रकार के धर्माचरण का सहारा लेकर कोई शक्ति प्राप्त करके अधर्म करने लगता है। एक धर्म के आश्रित रहकर दूसरे धर्मात्माओं का नाश करने लगता है तो धर्म की रक्षा के लिये उसे धर्म-भ्रष्ट करना ही न्याय हो जाता है। एक वृन्दा के पातिव्रत के कारण प्रबल हुआ जलन्धन आज देवता, ऋषि, मुनि, धर्मयज्ञ, गौ, विप्र आदि सबका नाश कर रहा था, धर्म की प्रलय कर रहा था। इस व्यापक धर्म की रक्षा के लिये एक वृन्दा को धर्मच्युत करना अन्याय या अधर्म नहीं। अनिवार्य धर्म हो गया था।

दोहा— विष्णु ने सोचा यहि, जब तक पतिव्रत दृढ़ान।
जलंधर की मृत्यु नहीं, तेहि वेष बना प्रभु आन॥1॥

भगवान विष्णु ने सोचा "जब तक वृन्दा का पातिव्रत दृढ़ है, जलंधर की मृत्यु सम्भव नहीं" वे प्रभु जलंधर का वेष रखकर उसके घर आए।

दोहा— लगे पुकारन द्वार से, उसी की सी बोली बोल।
सुनते दौड़ी पतिव्रता, तुरत द्वार दियो खोल॥2॥
स्वेद सने पति के चरण, प्रणाम कियो सिर नाय।
पूछन लागी युद्ध वृत्त, तेहि ऐसे दियो बताय॥3॥

घर के द्वार पर आने पर उन्होंने द्वार से ही उसी की सी बोली में (जलन्धर की सी बोली में) वृन्दा को पुकारने लगे। पति का शब्द सुनते ही वह पतिव्रता दौड़ी आयी। द्वार खोल कर उसने अपने स्वेद से सने पति के चरणों में सिर नवाकर प्रणाम किया। युद्ध का वृत्तान्त पूछने पर उन्होंने बताया कि—

चौ०—हार गये शंकर भगि जाहीं। श्रम मोहि बहुत भयो रण माहीं॥
लेटे शैया बहाना बनायेउ। सेवा करन लगी पैर दबाययेउ॥

"शंकर भी हारकर भाग गये" घर में भीतर आकर बताया, रणस्थल में मुझे बहुत श्रम करना पड़ा है, ऐसा बहाना बनाकर श्रीहरि शैया पर लेट रहे। वृन्दा को क्या पता था कि यह छल है, वह तो उन्हें अपना पति ही समझ रही थी। वह भी शैया पर बैठकर इनके चरण दबाकर सेवा करने लगी।

चौ०—आधान वासना मन में कीन्हा। हाथ पकड़ वृन्दा का लीन्हा॥
वासना सह छू पर नरकर्मा। जबहि नष्ट भयो पतिव्रत धर्मा॥

मन में वासना का आधान करके इन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया। वासना सहित परपुरुष का स्पर्श होते ही उसका पातिव्रत तो नष्ट हो गया।

चौ०—शिव सर्वज्ञ हँसेउ रण मांही। निज नख तोड़ के चक्र बनाहीं॥
जलन्धर बध ताही से कीन्हा। कुण्ड रक्त रौरव भर दीन्हा॥

सर्वज्ञ भगवान शंकर भी युद्ध में उधर हँस पड़े। उन्होंने अपने नख को तोड़कर

उससे चक्र का निर्माण करके जलन्धर का वध कि। जलन्धर का रुधिर महा रौरव नर्क के रक्त कुण्डों का रक्त बना।

चौ०—छिन्न मस्तक सहसा शैया पर। गिरा सामने पति का आकर॥
हरि बदला तेही क्षण रूपा। अपने रूपमें विष्णु स्वरूपा॥

जलन्धर का कटा हुआ मस्तक सहसा शैय्या पर उसकी पत्नी के सम्मुख आकर गिरा। उसी क्षण भगवान विष्णु ने अपना जलंधर वाला स्वरूप बदल लिया, वे अपने निज रूप में हो गये।

दोहा— चौंकी वृन्दा देखकर, अब भेद हुआ है ज्ञात।
शो़क भरे अरु रोष से, बोली ऐसी बात॥1॥
तुमने जड़तावश किया, मेरा पतिव्रत नाश।
पतिवध करने के लिये चुनी छलहिं की आश॥2॥

वृन्दा चौंकी, उसे अब सब भेद ज्ञात हुआ। शोक एवं रोष भरे स्वर में बोली "मेरे पति का वध करने के लिये तुमने जड़तावश जो मेरे पातिव्रत धर्म का नाश किया है, छल की आशा ही चुनी।

चौ०—तेहि कारण तुम जग जड़ रहेऊ। हरि बोले अज्ञान से कहेऊ॥
मूर्खे सकल भूत आत्मा। सबका पति मैं ही परमात्मा॥
ज्ञान रहित तैने शाप जो दीन्हा। ज्ञानहीन तरु योनि तू लीन्हा॥
ज्ञान नेत्र खुल गये हरि वाक्यन। निर्मल हृदय हुआ वृन्दा तन॥
मल विक्षेप रहा नहिं ताहीं। आवरण दूर हरि वाक्यन माहीं॥
गिरी प्रभु के चरणन मांही। उठाय प्रभु ने अस समझाहीं॥
धर्म आचरण पावन कारी। फल देता सत्कर्म विचारी॥
साधन सकल धर्म यह सोई। सब कुछ छांड़ि भजै जन मोई॥

"उसके फलस्वरूप तुम जड़ होकर संसार में रहो" भगवान ने कहा "मूर्खे! समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा होने के कारण एकमात्र मैं ही सबका पति हूँ, इस वास्तविक ज्ञान से रहित होकर ही तूने यह शाप दिया है। अतः तू भी ज्ञानहीन वृक्षयोनि को प्राप्त हो।" सहसा भगवान के वाक्यों ने वृन्दा के ज्ञान नेत्र खोल दिये। पातिव्रत के धर्म के पतन से उसका हृदय पूर्णतः निर्मल हो ही चुका था, झट उसमें श्रवण मात्र से बोध हो गया, मल-विक्षेप था ही नहीं, प्रभु के वाक्यों ने आवरण को भी दूर कर दिया, वह प्रभु के चरणों पर गिर पड़ी और पश्चाताप करने लगी। प्रभु ने उसे उठाकर समझाया और कहा, "धर्म का आचरण ही मनुष्य को पवित्र बनाता है, सत्कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता, उसका विचार करके ही मैं फल देता हूँ, इस बात को सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि समस्त धर्म, समस्त साधन एवं सम्पूर्ण सत्कर्मों के करने का एकमात्र फल मेरी भक्ति अथवा मेरी प्राप्ति ही है। सब छोड़कर मुझे भजो।

धर्मों में ही मनुष्यों को पड़कर मूल लक्ष्य को नहीं भूल जाना चाहिए। तुम्हारे पतिव्रत धर्म के द्वारा जो प्रकारान्तर से मेरी उपासना हुई है उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, उसका प्रत्यक्ष फल देने ही मैं यहाँ आया। एक मायिक पदार्थ से हटाकर अपनी ओर लगा देना ही मेरे कार्य का मुख्य उद्देश्य था।"

वरदान माँगने को प्रेरित करने पर उसने प्रभु के चरणों का नित्य सानिध्य माँगा। वही उसे मिला।

दोहा— वृन्दा तुलसी है गई, प्रभु भये शालिग्राम।
पूजा में उनके रहे, तुलसी अवस ललाम॥

जलन्धर की वही स्त्री तुलसी हुई और प्रभु ने विश्व में अपनी पाषाणमयि मूर्ति शालग्राम रख दी। शालग्राम की पूजा में तो तुलसी का रहना अनिवार्य है ही। भगवान विष्णु के श्रीचरणों के साथ भी तुलसी का नित्य सम्बन्ध हो गया। यह पतिव्रत धर्म की महिमा है। *(मानसमणि मई 1967)*

(विष्णु भगवान की जय)



(21) चक्रदान

श्लोक— "हरिहस्तेसाहस्त्रं कमलबलि मांधाय
पदयो र्यदेको नैतास्मिन्निजमुदहरं नेत्रकमलम्।
गतोभक्तयुद्रेकः परिणतिमसौचक्रवपुषा त्रयाणां
रक्षायै त्रिपुरहर जागतिं जगताम्॥"

"हे त्रिपुरारी प्रभु! आपके चरणों में सहस्त्र कमल पुष्पों की भेंट रखकर जब श्रीहरि आपकी पूजा कर रहे थे तब तक एक पुष्प के घट जाने पर उन्होंने अपना कमल नेत्र ही चढ़ा दिया। तब से (मानों) उनकी भक्ति का उद्रेक ही चक्र रूप में परणित होकर जगत की रक्षा के लिये प्रकट हो गया।"

कभी-कभी संसार को किसी विशेष धर्म का उन्च्तम आदर्श प्रदर्शित करने के लिये भगवान विचित्र लीलाएँ करते रहते हैं। धुन्धक नाम के अड़सठ सहस्त्र दैत्यों के प्रावल्य से जब देवता अत्यन्त पीड़ित हुए तो उन्होंने भगवान विष्णु की शरण ली। भगवान ने उन्हें रक्षा का वचन देकर कहा, "इन दैत्यों का वध तो उसी चक्र से हो सकता है, जो भगवान आशुतोष ने जलन्धर के वधार्थ अपने नख के अग्रभाग से निर्मित किया था। अतः मैं भगवान शंकर को तुष्ट करके उसे प्राप्त करने की सर्वप्रथम चेष्टा करता हूँ।"

जो इच्छामात्र से दैत्यों का नाश कर सकते हैं, उनके लिये चक्र अनिवार्य थोड़े ही था। शारंग के वाण और कौमोद की गदा तो दूर रही, दैत्यों के नाश के लिये उनकी

भृकुटी का घूम जाना ही बहुत था। पर यहाँ तो कुछ उद्देश्य ही दूसरा था। संसार में साधन निष्ठा का आदर्श रखना था। संसार के साधकों को यह बताना था कि साधन में कितनी दृढ़ निष्ठा और श्रद्धा होनी चाहिए। किस प्रकार साधन की पूर्ति के लिये शरीर की बलि दी जा सकती है। यदि धर्म उद्‌गम स्वतः ऐसे उच्च आदर्श रखें तो मायामोहित प्राणी किस प्रकारउनकी ओर प्रवृत्त हो सकता है। ये आदर्श ही तो साधकों के पथ प्रदर्शक हैं जिन्हें दया करके वे दयामय स्वयं स्थापित करते हैं।

दोहा— लिंग स्थापित कर हरि, शिव सहस्त्र शिव नाम।
आराधन करने लगे, शंकर का अविराम॥

श्री हरि एक शिवलिंग स्थापित करके शिव सहस्त्र नाम के द्वारा शंकरजी की अविराम आराधना करने लगे।

चौ०— कमल सहस्त्र तोड़ जब लाहीं। तबहि बैठि उपासन ताहीं॥
शिव का एक नाम उच्चरहीं। तभी कमल एक लिंगहिं धरहीं॥

वे नित्य एक सहस्त्र कमल गिनकर तोड़कर तब उपासना के लिये बैठते थे। सहस्त्रनाम का पाठ करते समय शिव का एक नाम का उच्चारण करके एक कमल शिवलिंग पर चढ़ाते थे।

चौ०— पुष्प इक अर्पण नामाहिं साथा। नियम नित्य श्री लक्ष्मी नाथा॥
एक दिन पुष्प चढ़ाते चढ़ाहीं। अखीरी नाम इक पुष्पन पाहीं॥

(जब उपास्य व उपासक एक ही हों तो उपासक की पूर्णता या उपास्य की प्रसन्नता का क्या अर्थ, वहाँ तो लीला चल रही है। जो भगवान शिव के स्मरण मात्र से उपस्थित हो सकते थे, जो अपने से अभिन्न हैं उनकी उपासना की आवश्यकता थोड़े ही थी।)

लक्ष्मीनाथ नित्य नियम से सहस्त्र नामों के साथ पुष्पार्ण करके शिवाराधना करते। एक दिन पुष्प चढ़ाते समय अन्तिम नाम के समय एक पुष्प नहीं मिला अर्थात् कम पड़ गया। भक्त कहते हैं कि परीक्षा के लिये भगवान शंकर ने एक फूल हृत कर लिया था। नस्तुतः तो जिस आदर्श की स्थापना के लिये यह आराधना हो रही थी, उसकी पूर्ति के लिये जान-बूझकर ही पुष्प घट जाने का नाट्य भी हुआ।

चौ०— देह मोह अज्ञान कराहीं। मायामोहित जीवन्ह आहीं॥
चरण कमल जिन सेवन ताहीं। माया अज्ञान मोह तहँ नांही॥

शरीर का मोह तो अज्ञान से माया मोहित जीवों में होता है। जिनके चरण कमलों की उपासना से भक्तजन इस माया, अज्ञान एवं शारीरिक मोह से परे हो जाते हैं, जिनके स्मरण के प्रताप से शिवि हँसते-हँसते अपने अंगों को काटने में समर्थ हुए, दधीचि शरीर की अस्थियों का दान प्रसन्नतापूर्वक, जिनके हृदयस्थ होने से कर सके, उनके समीप मोह की गति कहाँ? उनके लिये शरीर का क्या मूल्य?

चौ०—नारायन सोचेउ मन मांही। विधि तो अवस पूर्ण कर चाहीं॥
मम नेत्रहिं तो कमल कहाही। ये किस दिन कामहिं आयीं॥

श्री नारायण ने मन में सोचा "विधि तो अवश्य पूर्ण करनी है, पर कमल एक रहा नहीं। एक आसन पर बैठकर, मौन होकर नाम जप का संकल्प है, स्वयं कमल लाने में या किसी को भेजने में दोनों प्रकार से विधि भंग होती है। एक ही कमल तो कम है। मेरे नेत्र भी तो कमल ही हैं, शास्त्रों में मुझे 'कमलनयन' कहा है, ये किस दिन काम आयेंगे।"

दोहा— तरकश ते वाण निकाल झट, एक नेत्रहिं लियो निकारि।
कष्ट न हिचकिचाहट कछु, दियो लिंग पर धारि॥

झट तरकश ते वाण निकालकर उसके द्वारा एक नेत्र निकाल लिया। न तो तनिक भी हिचकिचाहट हुई, न कष्ट का अनुभव। हाँ, शरीर और दोनों कर उस नेत्र स्थान से निकली हुई रक्तधारा से लथपथ हो गये। उन्होंने उस नेत्र को ही शिवलिंग पर धारण करा दिया, अर्थात् चढ़ा दिया, विधि पूर्ण हुई।

प्रभु ने संसार को दिखलाया कि साधन में इतनी दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए। अंतिम नाम के साथ नेत्र को उस मूर्ति पर चढ़ाते ही भगवान शंकर प्रकट हो गये। उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से भरे हुए थे। उठाकर श्रीहरि को उन्होंने हृदय से लगाया। वह निकला हुआ नेत्र अपने स्थान पर पूर्ववत् ऐसा लग गया मानो निकाला गया ही न था। शंकर जी ने अपने नख से निर्मित वह चक्र श्रीहरि को दे दिया।

भगवान विष्णु के करों में वह सुदर्शन चक्र नित्य शोभित रहता है। दुष्टों का विनाश और भक्तों का रक्षण उससे होता ही रहता है। उस अमोघ चक्र के एक ही प्रहार से सम्पूर्ण धुन्धक दैत्य भस्म हो गये। *(मानसमणि मई 1967)*



(22) अन्धक

श्लोक—"नूनं नाना मदोन्नद्धाः शान्ति नेच्छन्त्य साधवः।
तेषां हि प्रशमोदण्डः पशूनां लगुडो यथा॥"

"अवश्य ही अनेक प्रकार के घमण्ड से प्रबल दुष्ट लोग शान्ति नहीं चाहते। उन्हें शान्त करने का उपाय दण्ड ही है। जैसे पशु के लिये डण्डा।"

कैलाश के शिखर पर आनन्द से बैठे हुए भगवान शंकर के नेत्र पीछे से आकर कोतूहल एवं विनोदवश पार्वतीजी ने बंद कर लिये, उन सूर्य एवं चन्द्रस्वरूप नेत्रों के ढ़कते ही संसार में सहसा अन्धकर हो गया। खलबली मच गई। भगवान ने अपने ललाट में तुरन्त अग्निमय तृतीय नेत्र उत्पन्न किया। उस नेत्र से भयंकर ज्वाला निकलने लगी। चौंक कर उमा ने नेत्र छोड़ दिये। पुनः विश्व प्रकाशित हो गया। संसार भस्म न हो जावे इसलिये शिवजी ने तीसरा नेत्र बन्द कर लिया। चन्द्र, सूर्य

और अग्नि इन तीनों के नेत्र होने से शिव त्रिनेत्र कहे जाते हैं।

दोहा—बन्द किये माँ उमा ने, नेत्र प्रभु निज हाथ।
स्वेद हुआ नेत्र पलकन्हहिं, प्रभु विश्व के नाथ॥1॥
मिश्रित इसी स्वेद से, एक प्रकट पुत्र भयो आय।
प्रभु के नेत्रहिं बन्द थे, अन्धता ही वह पाय॥2॥

जब माता उमा ने प्रभु के नेत्र बन्द किये तो माता के करों एवं प्रभु की नेत्रों की पलकों में स्वेद हो गया। इस मिश्रित स्वेद से ही एक पुत्र प्रकट हो गया। प्रभु के नेत्र बन्द थे, अत: वह पुत्र भी अन्धा ही उत्पन्न हुआ। अंधा होने के कारण उसका नाम 'अंधक' पड़ गया।

चौ०—नेत्र बन्द जन्मा अंधकारहिं। जन्म ते असुर तमोगुण धारहिं॥
पुत्र नहीं हिरण्याक्षहिं कोई। तेहि ते शिव आराधै सोई॥

नेत्रों के बन्द होने पर वह अन्धकार में उत्पन्न हुआ था, इससे जन्म से ही तमोगुणी और असुर था। हिरण्यकशिपु के भाई हिरण्याक्ष के कोई पुत्र होना था नहीं, वह पुत्र के लिये भगवान शंकर की आराधनाकर रहा था।

चौ०—तेह प्रसन्न शंकर भगवाना। पुत्र रूप अंधकहि प्रदाना॥
अन्धक पा सन्तुष्ट भयेऊ। लेकर सुत निज भवन गयेऊ॥

भगवान शंकर ने उस पर प्रसन्न होकर अन्धक को पुत्र रूप से उसे प्रदान किया। अन्धक को पाकर हिरण्यक्ष संतुष्ट हो गया और उस पुत्र अंधक को लेकर अपने भवन को लौट आया।

चौ०—घोर तपस्या अन्धक कीन्हा। देविधि नेत्र अमर कर दीन्हा॥
मृत्यु से निरभयता पाहीं। दुष्ट असुर उत्पात मचाहीं॥

अंधक ने घोर तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। ब्रह्माजी ने उसे अमर बना दिया तथा नेत्र भी प्रदान किये। मृत्यु से निर्भय होने के कारण अन्धक अत्यन्त दुष्ट और उत्पाती होकर उत्पात मचाने लगा।

चौ०—वध हिरण्याक्ष कीन्हा बाराहा। हिरण्यकशिणु तपु रत धारा॥
सेन ले अंधक इत-उत धावै। पहुँच कैलाश एक दिन जावै॥

हिरण्याक्ष को तो भगवान वाराह ने वध कर दिया था। हिरण्यकशिपु तपस्या में रत था। अन्धक अपनी सेना लेकर इधर-उधर घूमा करता था, अचानक सेना सहित कैलाश शिखर पर एक दिन पहुँच गया।

दोहा—अन्धक चर ने जाइके, मां पार्वती लई चीन्ह।
आइके अंधक से तेहि, सौंदर्य वर्णन कीन्ह॥

अन्धक के किसी चर ने माँ पार्वती को देख लिया। अंधक से जाकर उसने उमा के सौंदर्य का वर्णन किया।

चौ०—शून्य विचारहिं पापी होहीं। पता क्या दुष्टहि माता जोहीं॥
भेजा दूत मांगने तेही। अवहेलना शंकर कर देही॥

पापी विचार के शून्य होते हैं। दुष्ट को क्या पता था कि वो मेरी माता हैं। उसने पार्वती को माँगने के लिये दूत भेजा और शंकरजी के द्वारा उसकी माँग की अवहेलना कर दी गई।

चौ०—शंकर पार्वती के संगा। विराज रहे एक गुफा त्रिभंगा॥
रक्षक गुफा द्वार वीरक गण। अंधक दौड़ा युद्ध हेतु चढ़॥

भगवान शंकर माता पार्वती के साथ इस समय एक गुफा में विराज रहे थे। गुफा के द्वार रक्षा प्रभु के परम प्रिय गण वीरक कर रहे थे, अंधक की माँग की अवहेलना शंकर द्वारा करने पर वह युद्ध के लिये चढ़ दौड़ा।

चौ०—अंधक वीरक दोनों जोधा। लड़े परस्पर करि अति क्रोधा॥
अंत में दैत्य हार गये सारे। भाग गये रण से अपुढ़ारे॥

अंधक की वीरक के साथ बड़ी क्रोधित होकर घमासान लड़ाई हुई अंत में दैत्य अपुढारे सभी वीरक से हार कर भाग गये।

चौ०—शिव सूझी तासमय तमस्या। कोई लीला रचन की इच्छा॥
पार्वती से कहने लागे। हारे दैत्य आवहिं आगे॥

इसी समय भगवान शंकर को तपस्या करने की सूझी। सर्वतंत्र स्वतंत्र प्रभु के लिये समय असमय क्या। अवश्य ही इसमें भी उन्हें कोई लीला रचनी थीं। प्रभु ने पार्वती से कहा, "दैत्य हार तो गये पर वे अवश्य दूसरी बार अवश्य अधिक शक्ति से आक्रमण करने तुम्हारे सामने आवेंगे।"

दोहा— चाहहुँ तप करना अभी, तुम वीरक रक्षा भार।
पार्वती मानी तभी, स्वामी इच्छा अनुसार॥

"मैं तो तपस्या करना चाहता हूँ, वीरक की रक्षा का भार तुम पर है।" पति प्राण माता पार्वती पति की आज्ञा कैसे न मानतीं, स्वामी की इच्छा में क्यों बाधा देतीं, उन्होंने स्वामी की आज्ञा स्वीकार कर ली, प्रभु तपस्या में लग गये।

चौ०—निकला सत्य शिवहिं अनुमाना। युद्ध को दैत्य सकल पुनः आना॥
शक्ति न आसुरि वीरक पासा। कर रहे युद्ध तपहिं मन आशा॥

भगवान शिव का अनुमान सत्य निकला। समस्त दैत्यों को इकट्ठा करके अंधक ने दूसरी बार आक्रमण किया। वीरक के पास आसुरी शक्ति तो थी नहीं, वे तो अपनी तपस्या के प्रभाव की आशा से युद्ध कर रहे थे।

चौ०—प्रथम युद्ध तप नष्टहिं भयेउ। तातै दैत्य विजय नहिं लयेऊ॥
पचशत वर्ष युद्धहिं भयेऊ। मूर्छित हो वीरक गिरि परेऊ॥

लगातार दैत्यों ने पाँच सौ वर्ष तक युद्ध किया। अंत में दैत्य के प्रहार से आहत होकर वीरक मूर्छित होकर गिर पड़े। पहले युद्ध में वीरक की बहुत कुछ तपस्या नष्ट हो गयी थी। इसलिये वीरक इस बार दैत्यों पर विजय न पा सके ।

चौ०—रक्षा भार छोड़ि तेहि माँ पर। खड़ग उठायेउ दुर्ग रूप धर॥
स्त्री रूप सब देवन्ह धारा। आयेउ युद्धहिं देन सहारा॥

वहरक की रक्षा का भार प्रभु ने माँ पार्वती पर छोड़ दिया था अतः माता ने दुर्गारूप धरकर खड़ग उठाया। देवताओं ने जगज्जनी को युद्धार्थ प्रस्तुत देखकर उनकी सहायता करना अपना कर्तव्य समझा। स्त्री की सेना स्त्रियों की ही रहै तो अधिक उपयुक्त समझकर सभी देवताओं ने स्त्री वेष रखकर माँ पार्वती की सहायता के युद्धार्थ आ गये।

चौ०—देवासुर संग्राम रूप धर। तप समाप्त कर आयेउ शंकर॥
युद्ध हो रहा था भयंकरी। विघस नाम एक दैत्य था भारी॥

युद्ध ने नियमित देवासुर संग्राम का रूप धारण कर लिया। माता पार्वती के युद्धारम्भ करने के पश्चात् ही तपस्या समाप्त करके भगवान शंकर भी आ गये थे। भयंकर युद्ध हो रहा था। दैत्यों में एक विघस नाम का महादैत्य था।

दोहा—उसने सब सुर खा लिये, तब नन्दी युद्ध में आय।
उदरस्थ उसे भी कर गया, मूर्छा वीरक चलि जाय॥1॥
वीरक विधसहिं युद्धभा, उदरस्थ उसे भी कीन्ह।
मूर्च्छित उरदहिं नाहिं भये, यमजीत तपस्या लीन्ह॥2॥
शिव के नाम प्रभाव से, सुरन्ह सचेतहिं कीन्ह।
बाहर सब आये तभी, कर विघस का पेट विदीर्ण॥3॥

उस विधस नाम के महादैत्य ने समस्त देवताओं को खा लिया। देवताओं के पश्चात् नन्दी युद्ध में गये पर विघस ने उसे भी उदरस्थ कर लिया। वीरक की मूर्छा दूर हो गई। वे विघस से युद्ध करने लगे। विघस ने उदरस्थ तो उन्हें भी कर लिया, पर अपनी तपस्या के प्रभाव से वे यम को जीत चुके थे। औरों की भाँति उस दैत्य के पेट में मूर्छित नहीं हुए। भगवान शंकर के नाम के जप के प्रभाव से उन्होंने सब देवतादि को सचेत किया और विघस का उदर विदीर्ण करके सभी बाहर आ गये।

चौ०—आहत होहिं देव युद्ध मांही। पर दैत्य न हत कम होते नाहीं॥
जो दैत्य मरे घायल होइ जाहीं। निज विद्या शुकराचार्य जिवाहीं॥

देवता तो युद्ध में आहत होते थे, पर दैत्य मरकर भी कम नहीं होते थे। जो दैत्य मरता या घायल होता था, उसे अपनी संजीवनी विद्या के प्रभाव से शुक्राचार्य जी पुनः जीवित और स्वस्थ कर देते थे।

चौ०—देखेउ शंकर ने असहाला। उदरस्थ शुक्राचार्यहि डाला॥
अब होने लगा दैत्य संहारा। मरकर जीवित होयँ न दुबारा॥

जब ये हाल शंकरजी ने देखा तो पकड़कर शुक्राचार्य को ही उन्होंने उदरस्थ कर लिया। अब युद्ध में दैत्यों का संहार होने लगा। शुक्राचार्य के अभाव में पुनः जीवित होने की आशा जाती रही।

चौ०—छोड़ा रण भागे पाताला। एकमात्र अंधक तेहि काला॥
शिव कर वारहिं वार प्रहारा। अंधक तन जेती रक्त भू डारा॥
पड़ती रक्त बूँद भू जबहीं। उतने ही दैत्य प्रकट होय तब ही॥
युद्ध समस्या भई बड़ि भारी। विकट स्थिति शिवहिं विचारी॥

दैत्य रणभूमि छोड़कर पाताल में भाग गये। उस समय युद्ध में एकमात्र अन्धक ही सम्मुख रह गया। भगवान शंकर अंधक पर बार-बार प्रहार कर रहे थे, पर अन्धक के शरीर से जितनी रक्त की बूँदें पृथ्वी डाली गईं, वे बूँदें पृथ्वी पर पड़ते ही उतने ही दैत्य उससे उत्पन्न हो जाते थे। इस प्रकार युद्ध की बड़ी भारी समस्या उत्पन्न हो गयी, विकट स्थिति को देख शिव ने विचार किया।

दोहा— करने तेहि परिमार्जन, देवी प्रकट कान शिव कीन्ह।
हस्त बहु तन शुष्कहिं, निज हाथन खप्पर लीन्ह॥1॥

भगवान शिव ने उसका परिमार्जन करने के लिये अपने दाहिने कान से एक देवी प्रकट की। उसके बहुत से हाथ थे। उसका शरीर शुष्क कंकाल था। और अपने हाथों में खप्पर लिये हुए थी।

दोहा— अंधक तन के रक्त से, अरु उत्पन्न दैत्य न देह।
भू गिरने से पूर्व ही, भर खप्पर पी वो लेह॥2॥

अब अन्धक के शरीर से तथा उसके रक्त से उत्पन्न दैत्यों के शरीर से जो भी रक्त अब निकलता उसे पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही वह देवी खप्पर में लेकर पान कर लेती।

चौ०—विद्युत भाँति दौड़ रही देवी। खप्पर ले बहु रक्तहिं पेवी॥
रक्त उत्पन्न सकल दैत्य हनेऊ। अन्धक तन समस्त रक्त खनेऊ॥

वह देवी विद्युत की भाँति अनेकों खप्पर लिये रण स्थल में दौड़ रही थी। रक्त से उत्पन्न समस्त दैत्य मारे गये। अंधक के शरीर का भी समस्त रक्त निकल गया।

चौ०—अंधक रक्त सकल पान करेऊ। अस्थिचर्म नाड़ी शुष्कहिं रहेऊ॥
शंकरजी के लगे प्रहारे। छिन्न भिन्न अंग है गये सारे॥

जब अन्धक के शरीर का रक्त समस्त, देवी ने पान कर लिया। अब केवल अस्थि, चर्म और शुष्क नाड़ी तन्तु मात्र ही रह गया था। शंकरजी ने उस पर तेज प्रहार किये जिससे उसके अंग भी छिन्न-भिन्न हो गये थे।

चौ०—अन्तहिं शिव त्रिशूल कर लीना। अन्धक उदर फाड़तेहि दीना॥
मरा नहीं इतने पर वो ही। वर विधि अमरकर दिया सोई॥

अन्त में शंकर जी ने अपने हाथ में त्रिशूल लेकर उससे अंधक का उदर फाड़

डाला। इतना होने पर भी अन्धक मरा नहीं ब्रह्माजी के वरदान से वह अमर हो गया था।

चौ०—शिव त्रिशूल से उसे बेध कर। लटका दिया ताहि पर ऊपर॥
अपरा शिव आज्ञा सुर करके प्रणामा। सकल गये अपने निजधामा॥

भगवान शंकर जी ने उसे अपने त्रिशूल से वेधकर उसी के ऊपर लटका दिया। देवता समस्त शिव की आज्ञा से उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने धामों को चले गये।

दोहा—जो निकली देवी कर्णसे, प्रविष्ट शिवहिं हो जाय।
शुकराचार्य मरे नहीं, शंकर उदर समाय॥

वह कर्ण से निकली देवी भी शंकर जी में प्रविष्ट हो गई। इधर आषुतोष के उदर में पहुँचकर भी शुक्राचार्य मरे नहीं।

चौ०—विद्या संजीवनी प्रभावा। जीवित रहे मरण नहिं पावा॥
लघु शंका मारग वे आये। आइकें महेश्वर स्तुति गाये॥

शुक्राचार्यजी अपनी संजीवनी विद्या के प्रभाव से जीवित रहे, मरे नहीं। वे लघुशंका के मार्ग से बाहर निकल आये, और बाहर आकर उन्होंने भगवान महेश्वर की बहुत प्रकार से स्तुति का गान किया।

चौ०—शिव अरु उमा प्रसन्नहिं भयेऊ। बना विद्येश्वर शुक्कर दयेऊ॥
सूखा हुआ अंधक त्रिशुल पर। लटका हुआ उसी के ऊपर॥

भगवान शिव और माता पार्वती शुक्राचार्य की स्तुति से प्रसन्न हो गये। माता पार्वती ने उन्हें विद्येश्वर बना दिया। इधर सूख हुआ कंकाल अंधक त्रिशूल के ऊपर अभी तक लटका हुआ था।

चौ०—प्रभु की स्तुति करते रहेऊ। तीन सहस्त्र वर्ष चलि गयेऊ॥
अंत में शिवजी प्रसन्नहिं भयऊ। त्रिशूलहिं ताहि उतार दयेऊ॥

सूख हुआ त्रिशूल पर लटका अंधक वहीं से तीन हजार वर्ष तक प्रभु शंकर भगवान की स्तुति करता रहा। अंत में प्रभु उससे प्रसन्न हुए और उसे अपने त्रिशूल से नीचे उतार दिया।

चौ०—उतार उसे गण अपना बनाया। भलीभाँति शिव ने अपनाया॥
वह तो था पुत्र अपना ही। अधिकार मिला पुत्रत्वहिं ताहीं॥

भगवान शिव ने उतार कर त्रिशूल से उसे अपना गण बनाया। वह पुत्र तो अपना ही था, अब उसे पुत्रत्व का अधिकार मिल गया।

दोहा— अंधक स्वस्थ शरीर भा, किरपा शंकर कीन्ह।
सबहि गणन के संग रह, तन मन बच से लीन॥

भगवान शंकर की कृपा से उसका शरीर पूर्व की भाँति स्वस्थ हो गया और वह तन, मन, वचन से सभी गणों के साथ रहने लगा। *(मानसमणि जून 1967)*

कवित्त— "जग में जिते जड़ जीव जाकी अंत समय,
जम के अबर जोधा खबर लिये करैं।
काशीपति विश्वनाथ वाराणसी वासिन की,
फाँसी यम नाशन को शासन दिये करैं॥
मेरी प्रजा ह्वै कें किम पैहैं काल दण्ड त्रास,
'सालग' यही विचार हमेश हिये करैं।
तारक की भनक पिनाकी याते प्रानिन के,
प्रान के पयान समय कान में किये करैं॥"
(शंकर भगवान की जय)



(23) रुरु-वध

श्लोक— "स्तदर्थोहि लोके, स्मिन्नवतारो मया कृतः।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिका॥"

"मैंने इसलिये पृथ्वी पर अवतार धारण किया है। धर्मध्वजी (धर्म के आश्रय से पाप करने वाले) ही मेरे द्वारा वध योग्य हैं। क्योंकि सबसे अधिक पापी तो वे ही हैं।"

धर्माचरण से शक्ति तो मिलती ही है, पर यदि उस शक्ति का दुरुपयोग किया जावे तो यह महान पाप होगा। धर्म की आड़ में, धर्म के आधार पर होने वाला पाप महान कराल होता है। वह सामान्य पाप से कई गुना भयंकर होता है।

रूरू नामक असुर ने कहीं माता गिरिजा को देख लिया, वह कामी दैत्य जगन्माता के सौंदर्य पर मुग्ध हो गया और गौरी की प्राप्ति के लिये तपस्या करने लगा, ब्रह्मा ने आकर बहुत समझाया, बहुत प्रकार से उसे दूसरे सभी वरदान देने को कहा, पर वह अपने दुराग्रह पर अड़ा ही रहा, यह वरदान देना ब्रह्माजी के वश की बात तो थी नहीं अतः वे लौट गये, उसकी तपस्या अत्यन्त उग्र हो गई, उसके घोर तप से संसार भस्म होने लगा, उसके प्रकाण्ड तप तेज ने विश्व को व्याकुल कर दिया। भगवान शंकर ने संसार का असमय में ही संसार का क्षय देख माता गौरी से कहा, "देखो विश्व के समस्त प्राणि व्याकुल हो रहे हैं, संसार का नाश रूरू की तपस्या से होने जा रह है, वह तुम्हें प्राप्त करने के लिये ही तप कर रहा है अस्तु तुम्हीं उसका उपशमन करो।" प्रभु ने मुस्करा कर उपरोक्त बातें कह तो दीं।" माता का मुख अरुण हो गया। क्रोध से उनकी भृकुटि कठोर हो गयी। उन्होंने कठोर अट्टहास करते कहा, "दुष्ट मुझे प्राप्त करना चाहता है तो मैं उसे अवश्य प्राप्त होऊँगी।" अपना चण्डी रूप धारण करके रूरू की ओर चल पड़ीं।

.माता उमा ही महाशक्ति हैं, जब हम श्रद्धा से, भक्ति से, सात्विकता से उनके लिये प्रवृत्त होते हैं तो वे हमारे लिये दयामयी माँ, रक्षिका, प्रेषिका होकर हमें प्राप्त होती हैं हमें प्रेम से अपनी गोद में लेने के लिये कल्याणमयी होकर आती हैं, पर जब हम वासनाओं से, तामसिकता से, आसुरी शक्ति के रूप में उन्हें चाहते हैं तो वे आती हैं चण्डी, चामुण्डा और नरमुण्डमालिनी होकर। वे प्रलयंकारी होकर पधारती हैं। उनके कोप से हमारा विनाश अवश्यम्भावी है। वे श्रद्धालु के लिये सात्विक और वासनाओं के लिये चण्डी घातिका हैं।

"दुष्ट दैत्य! जिसके लिये तू तपस्या कर रहा है, वह मैं तेरे सम्मुख उपस्थित हूँ, आ! और मुझसे पूर्व मेरी इस कठोर करवाल का आलिंगन कर।" रूरू देवी के रूप को देखकर तथा करालता को देख भयभीत हो गया। उसने तो गौरी भुवन मोहन रूप ही देखा था, उसे क्या पता था कि उसका यह रूप भी होगा। पापी-कामी वाह्य सौंदर्य जो वासना का रूप है उसे ही तो देखते हैं। उसके मूल में निहित वे विकराल परिणाम रूप को कहाँ देख पाते हैं। खड़ग के आघात ने रूरू का सिर धड़ से अलग कर दिया।

भैरव रूप से भगवान शंकर भी प्रकट हुए। दोनों ने उसका रक्तपान किया। भगवान शंकर ने उस दैत्य के चर्म का वस्त्र बनाया। किसी प्रकार भी पुण्य कर्म किया जावे, उसका फल शुभ ही होगा, वह व्यर्थ नहीं जा सकता। रूरू को यह सौभाग्य उस तपस्या के फलस्वरूप ही मिला। माता के हाथों मृत्यु हुई। प्रभु ने चर्म को वस्त्र बनाया। *(मानसमणि जून 1967)*

कवित्त— "रुचिर रकार विन तज दी सती सी नारि,
कीन्हीं नांहि रति रुद्र पायकें कलेश को।
गिरिजा भई हैं, पुनि तपते अर्पणा तवै,
कीनी अंर्धगा प्यारी लागी गिरिजेश को॥
विष्णु पदी गंगा तउ धूर्जटी धरिन सीस,
भगीरथी भई तव धारी है अशेष को।
बार-बार करत रकार व मकार ध्वनि,
पूरण है प्यार राम-नाम ते महेश को॥"



(24) श्वेत-मुनि

श्लोक— नातः परं कर्म कर्म निबन्धकृन्तनं मुमुक्षुणां तीर्थपदानु कीर्तनात्।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा॥"

"मुमुक्षुओं के लिये पवित्र चरण प्रभु के कीर्तन के अतिरिक्त दूसरा कोई भी

साधन कर्म बन्धन के काटने वाला नहीं है। क्योंकि इससे तो मन पुनः रज और तमोगुण से मलीन कर्मों में आसक्त नहीं होता, दूसरे साधनों से होता है।"

साधन तो वह है जिससे हृदय शुद्ध हो। पाप करने के पश्चात् प्रायश्चित कर देने मात्र से चित्त शुद्ध नहीं होता। प्रायश्चित से पाप के दुष्फल का नाश तो हो जायेगा, किंतु यह नाश वैसा ही होगा जैसा वृक्ष की डालें काटना। देखना तो यह चाहिये कि पाप हुआ ही क्यों? पाप का मूल कारण क्या है? विषयासक्त चित्त ही पाप का कारण है। जिसमें विषयासक्ति नहीं है उससे पाप हो ही नहीं सकते। जब चित्त विषयों से हट जायेगा तो स्वतः पाप होने बंद हो जायेंगे। सच्चा प्रायश्चित तो चित्त की शुद्धि है। पाप करके प्रायश्चित कर लिया तो पाप का फल नष्ट हो गया। इतना होने पर भी चित्त की आसक्ति तो विषयों में है ही। कारण रहने पर कार्य का होना कठिन नहीं। जिस आसक्ति के कारण एक बार पाप हुआ था, वही पुनः पाप करा सकती है। फल यह होगा कि बार-बार पाप होने पर धीरे-धीरे पापों में जो घृणा है वह जाती रहेगी, प्रायश्चित भार ज्ञात होने लगेंगे उनसे अरुचि होकर अधःपात होगा।

साधारणतया विषयासक्त पुरुष योग, ज्ञान या ध्यान कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि चित्त स्थिर ही नहीं होगा। भक्ति ही उसके लिये एक सरल साधन है, भक्ति में ही प्रभु के नाम, गुण, लीलादि का कीर्तन सर्वसुगम है। इधर प्रवृत्त होने पर स्वतः विषयों की प्रवृत्ति छूट जायेगी जो कि पाप का मूल कारण है अस्तु यह कीर्तन ही सच्चा प्रायश्चित है।

पहले कल्प में एक ब्राह्मण जो फिरंग रोगियों की भाँति उनका शरीर आपाद मस्तक स्वेत होने के कारण उनका नाम श्वेत मुनि था, थे तो वे घोर तपस्वी, पर दुर्वासा के समान महाक्रोधी, तनिक सी बात पर रुष्ट होकर शाप दे देते, इस प्रकार जीवों को कष्ट देकर उन्होंने अनंत पाप किये। तपस्या पुण्य कर्म है, पुण्य से पाप का नाश नहीं होता। पुण्य और पाप का फल सुख-दुःख अलग-अलग भोगना पड़ता है, मुनि भगवान शंकर का नाम लेते हुए तपस्या का प्रारम्भ करने ही जा रहे थे कि सहसा उनकी मृत्यु हो गयी। यम के पास पहुँचे और उन्होंने उनकी जीवात्मा को पाश से बाँध लिया।

यदि अंतिम समय भगवान का नाम यदि मुख से निकल जावे तो फिर जीवन का उद्धार हुआ ही है। अन्तिम क्षण की वासना ही अगले प्रारब्ध का निर्माण करती है, उस समय प्रभु का स्मरण होने पर प्रभु के उस धाम की प्राप्ति हो जायेगी जहाँ से पुनः लौटना नहीं पड़ता। जीवन में जिसका सर्वाधिक चिंतन हुआ हो उसी का अंतिम क्षण में स्मरण होता है, यह सामान्य नियम है। जीवन भर साधन करने का यही उद्देश्य है कि अन्त में प्रभु का स्मरण हो सके।

प्रभु का नाम प्रभू से अभिन्न है। प्रभु ज्ञान स्वरूप हैं, अतः उनके समीप अज्ञान या माया की गति कहाँ? उनके नाम में ही यह प्रभाव है। भूल से निकला हुआ भी

भगवान का नाम समस्त पापों को भस्म कर देता है। अंत समय में स्मरण हुआ नाम जन्म-जन्मान्तर के सम्पूर्ण कर्म-बन्धनों को तोड़ देता है।

श्वेतमुनि के अंतिम स्मरण करने के कारण स्वयं कैलाशपति यमलोक पहुँचे और यम के दूतों को फटकार कर उन्होंने जीवात्मा को पाश-मुक्त कराया। मुनि को शिव धाम की प्राप्ति हो गई। नाम के प्रताप से वे शंकर जी के गणों में एक हो गये।

(मानसमणि जुलाई 1967 से)

"देव बड़े, दाता बड़े, शंकर बड़े भोरे।
किये दूर दुःख सबन के, जिन्ह जिन्ह कर जोरे॥"
(जै शिव शंकर)



(25) यक्ष और देवी उमा

श्लोक—"उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमेत्यु दाहृताः।
यो लोक त्रयमाविश्व विभर्त्य व्यय ईश्वर॥"

"वह उत्तम पुरुष दूसरा (परे) है जो परमात्मा कहा जाता है। जो समर्थ अविनाशी तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर उसका धारण करता है।"

प्रकृति तो जड़ है, उसमें स्वतः कोई चेष्टा करने की शक्ति है ही नहीं। भगवान के सानिध्य से ही वह सब कुछ करने में समर्थ है। समस्त आब्रह्म तृण पर्यंत पदार्थों में जो शक्ति है, वे जो कुछ करने में समर्थ है, वह उस परपुरुष की ही शक्ति है। उसके बिना तो इनकी कोई सत्ता ही नहीं। अज्ञान में पड़ा जीव इस वस्तु सत्य को भूल कर अपने को ही कर्त्ता मान लेता है, यही उसके बंधन का कारण है।

देवताओं ने एक बार युद्ध में दैत्यों को बुरी प्रकार पराजित कर दिया। इस विजय से उन्हें अपने बल का गर्व हो गया। वे अपने को ही सर्व-शक्तिमान और विजय का कारण समझने लगे। सात्विक शक्तियों में जो कारक पुरुष है, संसार की रक्षा पर नियुक्त है, अभिमान का आ जाना सर्वेश्वर को अभीष्ट न था। "अभिमानी हो जाने पर तो ये संसार का ठीक संचालन कर ही नहीं सकेंगे उच्छृंखलता फैलेगी, मर्यादा भंग हो जावेगी और अभी प्रलय होने लगेगी।" यह सोचकर सर्वेश ने उस अभिमान को दूर करना चाहा।

दोहा— सुरन्ह के सम्मुख गगनमहँ, एक प्रकट्यो यक्ष लखाय।
सहस्र रविसम तेज उस, चौंके सुर समुदाय॥1॥

आकाश में दूर देवताओं के सम्मुख एक यक्ष प्रकट हो दिखाई पड़ने लगा। सहस्त्रों सूर्यों के समान उसके अपार तेज से देवगण समूह चौंक पड़े।

दोहा— परिचय लेने इन्द्र ने, तेहि भेजा वायु देव।
पूछने पर यक्ष पूछहीं, हम तुम्हरो परिचय लेव॥2॥

इन्द्र ने वायुदेव को उस यक्ष का परिचय प्राप्त करने को भेजा। वायु के परिचय पूछने पर यक्ष ने पूछा-पहले हम तुम्हारा परिचय जानना चाहते हैं।

दोहा— कितनी शक्ति तुमहिं में, ये भी मुझे बताव।
मैं वायु अहमहि कहा, निज शक्ति विश्व उड़ाव॥3॥

तथा तुममें कितनी शक्ति है यह भी मुझे बताओ। अहंकार से वायु ने कहा—मैं वायु हूँ, इस समस्त विश्व को उखाड़ देने की, उड़ा देने की शक्ति मुझमें है।

दोहा— वायु में से यक्ष ने, लई निज शक्ति अपनाय।
तिनका रख कर तेहि कहा, इसको देउ उड़ाय॥4॥

यक्ष ने वायु में से अपनी शक्ति ले ली फिर एक तिनका रखकर उसे वायु से उड़ाने को कहा।

चौ०—समस्त शक्ति वायु लगाई। फिर भी तिनका उड़ा न पाई॥
लौटे वायु लज्जित होकर। अग्नि देव फिर भेजा वहाँ पर॥

वायुदेव ने समस्त शक्ति लगाई, बहुत प्रयत्न करने पर भी तिनके को नहीं उड़ा सके, लज्जित होकर लौट आये। वायु के लौटने पर आग्निदेव को यक्ष का परिचय लेने भेजा।

चौ०—यक्ष ने अग्नि शक्ति पूछी। भस्म करूँ जग बनि जाइ छूँछी॥
परमात्म शक्ति यक्ष हत करेऊ। तिनका भी उनसे नहिं जरेऊ॥

परिचय पूछने पर उनसे भी यक्ष ने उनकी शक्ति पूछी। विश्व को भस्म कर देने की शक्ति उन्होंने बताई। "अभिमानी का सिर नीचा" यक्ष ने परमात्म शक्ति उनसे खींच ली, परमात्म शक्ति हृत होने के कारण वे भी उस तिनको को जलाने में असमर्थ रहे, वे भी लज्जित होकर लौट आये।

चौ०—अग्नि के बाद वरुण तहँ गयेऊ। पूछने पर वरुणहिं अस कहेऊ॥
जलमग्न विश्व को मैं कर जांही। वे भी तिनका भिगन न पाहीं॥

अग्नि के बाद वरुण देव गये, उनसे यक्ष ने शक्ति पूछने पर बताया कि मैं समस्त विश्व को जलमग्न कर सकता हूँ, पर वे भी तिनके को नहीं भिगो सके। लज्जित होकर वे भी लौट आये। क्योंकि यक्ष ने व्यापक शक्ति से उनको रहित कर दिया था।

चौ०—इद्रिहि स्वतः अंत में गयेऊ। उनसे भी शक्ति पूछत भयेऊ॥
तिल-तिल काट सके संसारा। ऐसा वज्र रखूँ मैं भारा॥
यक्षहिं तृण उन सनमुख धारा। बज्र चोट बार-बारहिं मारा॥
काटत नहिं न चिन्ह बनाहीं। यक्ष तभी अन्तर्हित होइ जाहीं॥

अंत में स्वतः इन्द्र ही परिचय प्राप्त करने गये। इन्द्र को अपने वज्र का घमण्ड

था। उपरोक्त प्रश्न होने पर उन्होंने कहा, "मैं अपने बज्र से संसार को तिल-तिल काट सकता हूँ।" वही तृण उनके सम्मुख भी रख गया। जी-जान से इन्द्र ने अपने वज्र से सैकड़ों बार वज्र चलाकर चोट की पर वे भी उस तृण को काटना तो दूर उसमें कोई चिन्ह भी न बना सके। यक्ष इसी समय अन्तर्हित हो गया।

दोहा— पूर्व गर्व निज पराजय, इन्द्रग्लानि पाहिं।
पुनः सुरन्ह कूँजाइकें, वे कैसे मुख दिखलाहिं॥

इन्द्र को अपनी इस पराजय पर तथा पूर्व के गर्व को सोचकर बड़ी ग्लानि हो रही थी। वे अब पुनः देवताओं को जाकर कैसे मुख दिखायें? अतः जाना नहीं चहते थे।

चौ०— उमा प्रगट व्योमहिं तेहि काला। इन्द्र ने अस्तुति करि तत्काला॥
भई प्रसन्न माता अस कहेऊ। इन्द्र ग्लानि महँ मत भहेऊ॥

इसी समय वहाँ व्योम में भगवती उमा प्रकट हुईं, तत्काल ही इन्द्र उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति से प्रसन्न हो माता बोलीं, "देवराज ग्लानि मत करो।"

चौ०— दैत्य विजय अहंकारहिं कीन्हा। किया दूर प्रभु शिक्षा दीन्हा॥
यक्ष रूप आयेउ कैलाशी। मैं हूँ शक्ति उन अविनाशी॥

दैत्य विजय के उपलक्ष में तुम लोगों को अहंकार आ गया था, उसे दूर करने के लिये ही प्रभु ने यह शिक्षा दी है, यक्ष के रूप में वे परम प्रभु कैलाश नाथ ही थे। मैं उन अविनाशी की शक्ति हूँ।

चौ०— तेहि सानिध्य शक्ति तुम पाहीं। समरथ निज काजन होइ जाहीं॥
भूलो मत तुम अस संयोगा। उन बिन कछु न कर सको लोगा॥

उनके सानिध्य से, उनकी शक्ति प्राप्त करके ही तुम लोग अपने कार्यों समर्थ होते हो। इसे अर्थात् इस संयोग को मत भूलो। उनके बिना तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

चौ०— देख लिया तुमने अस हाला। करि न सके कछु तुम तत्काला॥
शक्ति रहित उन तृण न उड़ायेउ। जला न सके भिगो नहिं पायेउ॥

तुमने ऐसा हाल अब देख लिया उनकी शक्ति रहित इस समय तुम लोग कुछ नहीं कर पाये। न तिनका उड़ा सके, न जला सके न भिगो सके।

दोहा— वायु अग्नि अरु वरुण, तुम भी नहीं समर्थ।
काटि सके नहिं तृणहिं को, बज्र सहित असमर्थ॥

वायु, अग्नि, वरुण और तुम भी समर्थ नहीं हो। पवन की उड़ाने की शक्ति, अग्नि की जलाने की शक्ति, वरुण की प्लावन शक्ति, तुम्हारे वज्र की छेदन की शक्ति तथा और भी जिसमें जो शक्ति है वह प्रभु की ही शक्ति है, उनके बिना तुम सब असमर्थ हो।

जाओ अभिमान छोड़कर प्रभु का स्मरण करते हुए अपना कार्य करो। इन्द्र

को ज्ञान हो गया। उन्होंने कृतज्ञता से देवी भगवती को सादर प्रणाम किया। देवी भी वहीं अंतर्हित हो गयीं। और इन्द्र ने वहाँ से लौटकर सभी देवताओं को सारा हाल समझा दिया। (मानसमणि जुलाई 1967 से)

जीवन किसका पूर्ण—तत्वज्ञानी कहते हैं—"ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता।" भक्तिमार्गी कहते हैं "उपासना के बिना न ज्ञान होता न वैराग्य।" कर्म योगी "निष्काम कर्म ही लोक-परलोक का उत्तम साधन है।" ज्ञान के बिना भक्ति अंधी है और कर्म के बिना वह पंगु है। भक्ति के बिना ज्ञान रूक्ष है, कर्म के बिना ज्ञान कल्पना मात्र व्यर्थप्राय है। ज्ञान के बिना कर्म जड़ व्यापार मात्र है, भक्ति श्रद्धा के बिना कर्म क्रूर व्यवहार जैसा है। ज्ञान, भक्ति कर्म तीनों का सम्यक सामजस्य ही जीवन की पूर्णता है। भगवान ने मनुष्य को देह, मस्तिष्क और हृदय दिया है। देह कर्म के लिये, हृदय श्रद्धा विश्वास प्रेम की भक्ति के लिये और मस्तिष्क विवेक के ज्ञान के लिये। तीनों का जिसमें ठीक सामंजस्य एवं विकास है उसका ही जीवन पूर्ण है। वही ठीक मनुष्य कहलाने योग्य है ।

(जै शिव काशीवासी अविनाशी)



(26) रोष-पान

"सर्वस्मिन् सर्वभूताय सर्वरूपाय ते नमः।"

"समस्त भूतों (पदार्थों) में सर्वभूत स्वरूप, सर्वरूप प्रभु! तुम्हें नमस्कार है ।"

चौ०—दारुक महा उत्पात करेऊ। वर प्रभाव तेहि अजय है गयेऊ॥
तेहि वध स्त्री से ही होई। मारि सकें न देवता कोई॥

दैत्यराज दारुक महा उत्पात करने लगा था। वरदान के प्रभाव से वह देवताओं के द्वारा अजय हो गया था। वह केवल स्त्री के द्वारा वध्य था, अतः उसे कोई देवता नहीं मार सका।

चौ०—पीड़ित देव शरण आषुतोषा। आरत रक्षक ते दियो भरोसा॥
मर्यादा रखनी वरदाना। करन उपाय पारवति ठाना॥

उससे उत्पीड़ित देवता आषुतोष शराणागत वत्सल भगवान काशीपति की शरण में आये। आर्तों के रक्षक प्रभु भला देवताओं की कैसे उपेक्षा करते, उन्होंने उनको भरोसा दिलाया और (पार्वती को कोई उपाय करने को कहा, वरदान की मर्यादा भी तो रखनी थी।)

चौ०—शंकर तन प्रविष्ट होइ जाही। निज एक अंश भगवती माँही॥
नीलकंठ से शक्ति अंशा। काली रूप प्रकट अवतंसा॥

अज्ञात रूप से ही अपने एक अंश से भगवती शंकर जी के शरीर में प्रविष्ट

हो गयीं। वही शक्ति का अंश प्रभु के नीलकंठ से काली के रूप में प्रकट हुआ ।

चौ०—कराल कालिका युद्धहिं जाहीं। दारुक बध कीयो तहँ पांही॥
बध तो दैत्य का कर उन जाहीं। शान्त न क्रोध भयो मन मांही॥

कराल वदना कालिका ने उस दैत्य का (दारुक) वध तो कर दिया युद्ध में जाकर, पर उनका क्रोध शांत नहीं हुआ।

दोहा— भीषण अट्टहास तेहि, लागीं फटन दिशायँ।
बार-बार पद घात से, कँपती धरनी मायँ॥

उनके भीषण अट्टहास से दिशायें फटने लगीं। बार-बार के पदाघात से पृथ्वी माँ काँपने लगी।

चौ०—साहस कोउ न पासहिं जावै। क्रोध शक्ति कहँ शांत करावै॥
तब हो स्तुति सुन जब जाहीं। क्या शक्ति देवन्ह केताहीं॥

किसी का भी साहस न पड़ता था कि उनके समीप जावे। महाशक्ति के क्रोधित होने पर देवताओं की क्या शक्ति जो उन्हें शान्त कर सकें। स्तुति तो तब हो जब कोई सुने।

चौ०—शान्त हेतु इन सुर शिव पाहीं। स्तुति विविध भाँति अपनाहीं॥
आश्वासन प्रभु ने उन दयेऊ। काशी श्म्शान देवि घूमि रहेऊ॥

देवताओं ने शंकर जी की पुनः इनकी शान्ति के लिये विविध भाँति से स्तुति की। प्रभु ने उन्हें आश्वासन दिया। काली इस समय काशी के श्मशान में उन्मत्त सी घूम रही थीं।

चौ०—शिव शिशु रूप भये क्षन मांही। पड़े भूमि श्मशान जहाँहीं॥
मातु पिता भाई सब कोई। स्त्री पुत्र आदि वह सोई॥

शिवजी उसी क्षण शिशु का रूप धारण कर उसी श्मशान में पृथ्वी पर पड़ रहे। माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र आदि रूपों में वही हैं, इसे उन्होंने प्रत्यक्ष बताया। वही पिता हैं, वही पति हैं एवं पुत्र भी।

चौ०—काली के उत्पादक वोही। पति अरु पुत्र बने वो सोही॥
तीनों बन प्रत्यक्षहिं कीन्हा। यह रहस्य प्रकट कर दीन्हा॥

वे काली के उत्पादक, पति और पुत्र तीनों बनकर उन्होंने यह रहस्य प्रकट करके प्रत्यक्ष कर दिया।

दोहा— स्त्री का हो स्वभाव कस, पर हृदय मात का होय।
सुतहि देखि बदलै तुरत, क्रोधहि जाये गोय॥

स्त्री कैसे भी स्वभाव की हो, पर उसमें माता का हृदय तो होता ही है। क्रोध के सीमा की दशा भी पुत्र को देखकर तुरन्त बदल जाती है, क्रोध अंदर ही छिप जाता है।

चौ०— कालिका दृष्टि शिशु पर परहीं। सौंदर्य घन तेहि मन परिहरहीं॥
बालक वो सामान्यहिं नाहीं। जगत आत्मा प्रेम घन ताहीं॥

कालिका की दृष्टि बालक बने सौंदर्यघन, शिव पर पड़ी, जो मन को हरण कर रही थी। वह सामान्य बालक तो था नहीं, जगदान्तरात्मा, प्रेमघन आकर्षण की मूर्ति ही बालक हो गया था।

चौ०— नन्हे हाथ पग फैंकत ताहीं। रुदन कर रहा बालक वहाँहीं।
चण्डी हृदय प्रेम उमड़ाया। बालक निज गोदी में उठाया॥

बालक अपने नन्हें-नन्हें हाथ-पैर फेंककर रुदन कर रहा था। चण्डी के हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा और उसने उठाकर बालक अपनी गोद में ले लिया।

चौ०— तेहि चुप करने महँ अनुरागा। उसके मुख स्तन निज लागा॥
क्रोध अरु प्रेम साथ नहीं रहहीं। क्रोधांश शेष शिव पानहिं लहहीं॥

चण्डिका ने स्वभावत: उस बालक को चुप करने का अनुराग जागने पर उसके मुख में अपना स्तन लगा दिया। प्रेम और क्रोध एक साथ नहीं रहते हैं, थोड़ा बहुत क्रोधांश था भी उसे स्तनपान के बहाने शंकर ने पान कर लिया।

चौ०— देवी क्रोध शान्त है जाहीं। पूरा ध्यान शिशू मन माहीं॥
ओ त्रिनेत्र तुम स्वामी मेरे। प्रकट भये शिव हँसते नेरे॥

क्रोध शान्त होते ही देवी ने पूरे ध्यान से शिशु को देखा, देखते ही एकदम चौंक कर बोली, "ओ त्रिनेत्र! तुम मेरे स्वामी!" वे प्रभु हँसते हुए ही उनके पास अपने वास्तविक रूप से प्रकट हो गये।

दोहा— लज्जा अरु संकोच को, दूर करन विश्वनाथ।
ताण्डव नृत्य करने लगे, सुर निर्भय भये सनाथ॥

देवीजी के संकोच व लज्जा को दूर करने के लिये प्रभु विश्वनाथ ने ताण्डव नृत्य किया। देवता निर्भय हो सनाथ हो गये।

दूसरी बार महिषासुर तथा शुम्भ और निशुम्भ को मारकर भगवती माँ पाशुमेदिनी क्रोधित हुई थीं। और इसी प्रकार देवता उन्हें शान्त न कर सके, तब भी उन्होंने शंकर जी की ही शरण ली। शंकर जी श्मशान में लेट गये। क्रोधित देवी उनके वक्षस्थल पर बड़ी देर तक नृत्य करती रही। पर पति पर दृष्टि जाते ही लज्जा से क्रोध अपने आप शान्त हो गया। काली की शिव के वक्षस्थल पर खड़ी नृमुण्डोहिनी मूर्ति भक्तों में परम विख्यात है।

इस मूर्ति का एक तात्पर्य है। शक्ति जब तक सात्विक रहती है तब तक तो वह परम पुरुष परमात्मा आराधिका, उनकी ओर प्रवृत्त करने वाली और मंगलमयी रहती है। पर जब वह क्रोधान्ध अत: तामसी हो जाती है तो वह शिव के ऊपर ही नाचती है, परमात्मा को दबाकर भूल जाती है, लोक भयंकारी हो जाती है।

(मानसमणि जुलाई 1967)

रुद्र हृदय-उपनिषद में लिखा है कि विष्णु कार्य, ब्रह्मा क्रिया एवं महेश्वर कारण हैं। वास्तव में तीनों एक ही हैं।

"कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः।
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता॥"

विष्णु कार्य हैं, ब्रह्मा क्रिया हैं, महेश्वर कारण हैं। प्रयोजन के अर्थ के लिये रुद्र ने एक मूर्ति तीन प्रकार की कर ली है।

दोहा— श्रवन घटहुँ पुनि दृग घटहुँ, घटउ सकल बल देह।
इते घटहिं घटि है कहा, जौ न घटै हर नेह॥

❃ राजनीतिज्ञ शंकर ❃

कवित्त— "मूंसे पर साँप राखै, साँप पर मोर राखै,
बैल पर सिंह राखै, वाकै कहा भीति है।
पूतनिकों भूत राखै, भूत को विभूति राखै,
छः मुख को गजमुख यहे बड़ी नीति है॥
काम पर बाम राखै, विष कों पियूष राखै,
आग पर पानी राखै सोई जग जीति है।
'देवीदास' देखौ ज्ञानी, शंकर की सावधानी,
सब विधि लायक पै राखै राजनीति है॥"

(जय भोले शंकर)

❑ ❖ ❑

(27) वृकासुर की दुष्टता

श्लोक— "हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वैकृत किल्विषः।
क्षेमी स्यात्किम्र विश्वेशेकृता गस्को जगदरौ॥"

"भला कौन जीव महान समर्थों का अपराध करके नहीं मारा गया! फिर क्या जगद्गुरू विश्वनाथ का अपराध करके कोई सकुशल रह सकता है?"

मंगलमय कार्य भी दुष्टों के हाथ में जाकर उनके लिये अमंगलकारी हो जाते हैं, क्योंकि उसे वे अपनी कुत्सित वासना के कारण दूषित कर देते हैं।

शकुनी का पुत्र वृकासुर तपस्या करने के विचार से वन में जा रहा था। मार्ग में उसे देवर्षि नारदजी मिल गये। उसने देवर्षि से पूछा, "मैं तपस्या के द्वारा त्रिदेवों में से एक को प्रसन्न करना चाहता हूँ आप कृपा करके बता दें कि सबसे शीघ्र कौन प्रसन्न होता है।" सरल भाव से देवर्षि ने कह दिया, "प्रसन्न होने में ब्रह्माजी कुछ कठिनता से प्रसन्न होते हैं, भगवान विष्णु तो बहुत ही कठिनता से। तुम राक्षस प्रकृति

के पुरुषों के लिये तो उन्हें प्रसन्न करना असम्भव सा ही है। आषुतोष तो भगवान शंकर ही हैं वे थोड़े श्रम से ही प्रसन्न हो जाते हैं पर थोड़े अपराध से क्रोधित भी।"

दोहा— अस कह नारद चलते बने, बनहिं वृकासुर जाय।
यज्ञकुण्ड बनाइकें, प्रज्वलित अग्नि कराय॥1॥
लेकर शंकर नाम वह, काटत अपनी देह।
माँस के टुकड़ों से हवन, यज्ञ कुण्डकरि लेह॥2॥

देवर्षि नारद तो इतना कहकर चलते हुए और वृकासुर वन में जाकर भगवान शंकर को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। तामसिक पुरुष की बुद्धि, श्रद्धा और क्रिया सब तामसिक ही ठहरीं, उसे सात्विक क्रियाओं का क्या ज्ञान। वृकासुर ने यज्ञकुण्ड बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित की और शंकर जी का नाम लेकर काट-काट कर अपने शरीर के माँस के टुकउत्रों का उस यज्ञकुण्ड में हवन करने लगा।

चौ०—आहुति देत गये दिन साता। नहिं प्रसन्न भै वो जगत्राता॥
अवधि तुच्छ में ही व्याकुल होई। अब और प्रतीक्षा करुँ न कोई॥

अपने माँस की आहुति देते हुए वकासुर को सात दिन हो गये। जगदाधार को प्रसन्न करने के लिये वह इस तुच्छ अवधि में ही व्याकुल हो उठा। उसे ये सात दिन ही बहुत अधिक ज्ञात होने लगे, मैं इस तुच्छ शरीर का माँस सात दिन से हवर कर रहा हूँ और वे अब तक भी प्रसन्न नहीं हुए अब और कितनी प्रतीक्षा की जाय, मैं नहीं कर पाउँगा। इसके लिये और प्रतीक्षा असंभव हो गई।

चौ०—मस्तक काट हवन कर चाही। निज करमें तलवार उठाई॥
यज्ञकुण्ड ऊपर सिर झुकेऊ। काटन गला तभी वह चहेऊ॥

उसने अपने हाथ से सिर काटकर हवन कर देना चाहा। अपने हाथ में तलवार तो ली और यज्ञकुण्ड के ऊपर सिर झुका कर वह गला काटना ही चाहता था कि—

चौ०—यज्ञकुण्ड से प्रकटे तबही। माता पार्वती शिव जबहीं॥
पकड़ा हाथ असुर तलवारा। अहो दैत्य तुम कहा विचारा॥

सहसा यज्ञकुण्ड से माँ पार्वती के साथ भगवान शिव प्रकट हो गये, उन्होंने झट से ही असुर का तलवार वाला हाथ पकड़ लिया और कहा "अहो! दैत्य तुमने यह क्या विचार किया?"

चौ०—सकल जीव कहँ देह अति प्यारी। या ते मिलहिं पुरुषारथ चारी॥
व्यर्थ नष्ट मत करो शरीरा। मैं प्रसन्न वर माँगेहुं वीरा॥

दैत्यराज! यह शरीर समस्त प्राणियों को अत्यन्त प्रिय है। इसी के द्वारा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। व्यर्थ में तुम इसे क्यों नष्ट कर रहे हो, अतः इस शरीर को नष्ट मत करो, मैं तुम्हारे त्याग और दृढ़ता से प्रसन्न हूँ, तुम्हें जो भी अभीष्ट हो, वह वर हे वीर! मुझसे माँग लो।

दोहा—अमर होन हेतू करी, वृकहि तपस्या जाय।
थिर विचार होते नहीं, दुष्टन मन विचलाय॥

वृकासुर ने तपस्या तो की थी अमर होने के लिये, किंतु दुष्टों के विचार स्थिर तो होते नहीं।

चौ०—लखा सौंदर्य पार्वती माता। मुग्ध भयो तेहि मन उन राता॥
विवश काम ने वह कर दीया। कैसे मिलैं सोच उर कीया॥

शंकरजी के साथ सौंदर्य की देवी माता पार्वती को देखकर वह उन पर मुग्ध हो गया। उसके मन को काम ने विवश कर दिया। असुर ने सोचा, "इस सुन्दरी की प्राप्ति कैसे होगी। शंकरजी की यह पत्नी है। माँगने पर अपनी इतनी सुन्दर स्त्री देंगे नहीं, और नारद जी ने कहा था कि शिवजी जल्दी संतुष्ट हो जाते हैं और जल्दी क्रुद्ध हो जाते हैं, यदि पत्नी को माँगने पर क्रुद्ध हो गये तो मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा, पर हाँ यदि मैं शंकर का ही वध कर सकूँ तो सहज में इसे प्राप्त कर सकता हूँ।"

चौ०—कुछ देर सोच असुर अस कहेऊ। सचमुच आप प्रसन्नहिं भयेऊ॥
तो वरदान देहु मोहि नाथा। रखूँ मैं जा सिर अपना हाथा॥
रखते ही हस्त भस्म होइ जावै। वर मोय प्रभू यही मन भावै॥
खिन्न हुए शिव सुन वरदाना। अब क्या होइ बचन दे पाना॥

कुछ देर सोचकर असुर बोला, "प्रभो! यदि आप मुझपर सचमुच ही प्रसन्न हैं तो यह वरदान दीजिये कि मैं चाहे जिसके सिर पर अपना हाथ रखूँ, मेरे हाथ रखते ही वह भस्म हो जावै।" दयामय प्रभु इस लोक भयंकर वरदान को सुनकर बहुत खिन्न हुए। अब हो भी क्या सकता था, वरदान देने का बचन दे चुके थे।

चौ०—'एवमस्तु' कह भये उदासा। वृक भयो तब भस्मासुर खासा॥
परीक्षा कहाँ करूँ अब जाऊँ। तुम्हरे ही सिर पर हाथ धराउँ॥

दुष्ट स्वार्थ साधन के लिये तो बड़ी विनम्रता धारण कर लेते हैं, पर कार्य सिद्ध होते ही फिर दुष्टता करने लगते हैं, असुर ने अब आसुरी भाव प्रकट किया। उसे शंकरजी को पराजित करने की युक्ति मिल गई, हँसकर बोला, "तुम्हारे वरदान की सत्यता की परीक्षा करने अब और कहाँ जाऊँ? ठहरो तुम्हारे ही सिर पर हाथ रखकर अनुभव कर लूँ।"

दोहा—अरे-अरे शिव ने कहा, पीछे हटे घबराय।
मुझे छोड़ भागहु कहाँ, बिना परीक्षा जाय॥

भगवान शंकर घबड़ाकर, "अरे! अरे!" कहते पीछे हटे, असुर बोला, "मुझसे भागकर कहाँ जाते हो? मैं परीक्षा किये बिना जाने नहीं दूँगा छोड़ने का नहीं।"

चौ०—शंकरजी अब आगे भागे। दैत्य झपटा पीछे लागे॥
अन्तर्धान पार्वती माता। भस्मासुर शिव पीछे ही जाता॥

अब तो शंकरजी आगे भागने लगे, दैत्य झपट कर पीछा करने लगा। माता

पार्वती वहीं अन्तर्हित हो गयीं। भस्मासुर भी शिवजी का पीछा करने लगा।

चौ०—सब लोकन शिव भागत फिरहीं। दैत्य भी उनका पीछा करहीं॥
भय आश्चर्य देख सब देवा। चुपचाप मति प्रतिकार न लेवा॥

शंकरजी स्वर्ग, महलोक, जनलोक, ब्रह्मलोक आदि सब में भागते फिरे, फिर दैत्य ने उनका पीछा न छोड़ा। देवता भय तथा आश्चर्य से इस दृश्य को चुपचाप देखते रहे उनकी बुद्धि में इसकी कोई प्रतिकार न समझ पड़ा।

चौ०—चाहत बध शिवही कर देते। पर स्वयं आपुही क्यों वर देते॥
मारन उसका नहीं अभीष्टहिं। शिक्षा देनी थी जन शिष्टहिं॥

चाहते तो शंकरजी उसका वध कर सकते थे, पर अपने आप ही वरदान देकर उसे मारना अभीष्ट नहीं था। संसार के शिष्ट पुरुषों को यह शिक्षा भी देनी चाहिए कि—

चौ०—दुष्टन हाथ शक्ति दै जाहीं। नाश प्रदाता करना चाहीं॥

दुष्टों के हाथ में शक्ति देने पर वह प्रदाता का ही नाश करना चाहते हैं।

दोहा— भागत-भागत शंकरि, पहुँचे बैकुण्ठ धाम।
प्रकृति पार तहँ मोह भय, नहिं दुःख दैन्यहिं नाम॥

भागते-भागते शंकरजी वैकुण्ठ धाम पहुँचे, वह भगवान विष्णु का लोक प्रकृति से पार है, वहाँ शोक, मोह, भय, दुःख, दैन्य आदि इसका स्पर्श भी नहीं कर सकते। वैकुण्ठ की सीमा में प्रवेश करते ही लोक के प्रभाव से स्वतः भय दूर हो गया। चित्त में शिव के निभर्यता आ गयी।

चौ०—सोचा श्री हरि ने यह बाता। यहाँ असुर मर्यादा जाता॥
मेरे लोकहि भय नहिं कोई। कामी पापी प्रवेश न होई॥

श्री हरि ने अपने मन में विचार किया, "यदि असुर मेरे लोक में भी आ गया तो यहाँ की मर्यादा जाती रहेगी। मेरे लोक में आने पर किसी को भय नहीं रहता, कामी और पापी का यहाँ प्रवेश नहीं हो सकता।"

चौ०—कछु पाछै छूटा भस्मासुर। दौड़त हुआ आ रहा तत्पर॥
वृद्ध विप्र प्रभु वेब बनायेउ। तेहि मारगहिं खड़े है जायेउ॥

भस्मासुर कुछ पीछे छूट गया था, वह तत्परता से दौड़ता हुआ आ रहा था। मायापति प्रभु उसके मार्ग में वैकुण्ठ से बाहर एक वृद्ध ब्राह्मण का वेष रखकर खड़े हो गये।

चौ०—आते हि पास दैत्य से कहेऊ। दौड़े क्यों विकल है रहेऊ॥
देहहि प्रिय रक्षा करो ताही। विश्राम तनिक कर थकि तुम जाही॥

दैत्य के पास आते ही प्रभु बोले, "असुरपति! आप इतने विकल से क्यों दौड़ रहे हैं? अरे! यह शरीर ही सबसे प्रिय वस्तु है इसकी रक्षा करनी चाहिए, आप थक गये हैं, तनिक विश्राम कर लें।"

चौ०—बाधा न हो तो कारण बतावें। इतनी आतुरता क्यों धावें॥
अमृत सने बचन प्रभु पाहीं। दैत्य थका बहु रुक तब ताहीं॥

बाधा न हो तो अपनी आतुरता का कारण भी मुझे बतावें, प्रभु के वे अमृत सने बचन थे, दैत्य बहुत थक गया था। रुककर उसकी दौड़ने से साँस दीर्घ हो गई थी शरीर स्वेद से लथपथ था, ब्राह्मण की बात मानकर वह रुककर वही खड़ा हो गया।

दोहा— असुर सुनायीं प्रभुहि को, शंकर वर की बात।
बुद्धिमान भी होइ कर, क्यों तुम धोखा खात॥1॥
ऐसे प्रलापी फेर में, कैसे गये तुम आय।
उन्मत्त भयो विष पान से, श्मशानहिं वास बनाय॥2॥

असुर ने शंकरजी के वरदान आदि की बातें सुनार्यी। प्रभु जोर से हँसे ओह! आप इतने बड़े बुद्धिमान होकर इस प्रलापी के फेर में पड़कर तुमने धोखा क्यों खाया। यह तो पागल है। श्मशान में रहता है, विष पीने से उन्मत्त हो गया है। तुम इसके चक्कर में कैसे आ गये।

चौ०—हमतो यह जानत मनमांही। तुमसे इसने झूँठ कहाहीं॥
व्यर्थ ही इतना कष्ट करेहू। क्यों इसका विश्वास धरेहूँ॥

हम तो जानते हैं अपने मन में विचार करके कि तुमसे इसने झूँठ ही कहा है। इसके लिये आपने इतना व्यर्थ कष्ट किया है, तुमने इसका विश्वास धारण क्यों कर लिया?

चौ०—निज सिर पर हाथ रख लीजै। झूँठहि बात परीक्षा कीजै॥
तेहि वरदानहिं झूँठा पायेउ। अवस दण्ड इसकूँ अपनायेउ॥

तुम अपने सिर पर अपना हाथ रख कर इस झूँठ की परीक्षा क्यों नहीं कर लेते? यदि इसका वरदान झूँठा निकले तो अवश्य इसे दण्ड दीजिये।

चौ०—बोलै ताते झूँठ न कबुहीं। चकमा आयो असुरकूँ तबुही॥
निज सिर रखा हाथ वो जबहीं। भस्म भयो तन उसका तबही॥

जिससे ये कभी काऊ से झूँठ न बोले। असुर चकमे में आ गया। उसने अपने सिर पर जैसे ही हाथ रखा तैसे ही उसका शरीर भस्म हो गया। शंकर जी का भय दूर हो गया। *(मानसमणि सितम्बर 1967 से)*

छप्पय—"गरलअसन, दिगबसन व्यसनभंजन जन रंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर गौर सच्चिदानन्दघन॥
विकट वेष, उर शेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम अभिराम धाम नितराम नामरुचि।
कंदर्प दर्प दुर्गम दमन, उमा रमन गुन भवन हर।
त्रिपुरारि! त्रिलोचन! त्रिगुनपर! त्रिपुरमथन! जय त्रिदसबर॥"

जै श्री विश्वम्भर शंकर भगवान

(28) प्रदोष नृत्य

श्लोक— "महीपादाद्यातादव्रजति सहसा संशयदंपदं
विष्णोर्भाम्युद्धजपरिधरुग्ण ग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौदौरथ्यं यात्यभृत जटाताडित
तटा जगद्रक्षायैत्वं नटसि ननुवामैव विभुता॥"

प्रभो! पृथ्वी की स्थिति आपके चरणाघात से संशय में पड़ जाती है, आपकी परिधाकार उठी भुजाओं से वैकुण्ठ काँपने लगता है, तारकमण्डल पीड़ित होने लगता है और जटाओं से होकर स्वर्ग बार-बार दुखित होता है, इतने पर भी आप विश्व की रक्षा के लिये नृत्य करते हैं। यह आपकी उल्टी ही विभूति है।"

वस्तुतः तो भगवान शंकर का प्रदोष नृत्य और श्रीकृष्णचन्द्र जी की रास-लीला दोनों ही आध्यात्मिकतत्व हैं। विश्व के अणु-अणु में हो रहे हैं। थोड़े में कथा भाग को देकर हम इधर भी तनिक प्रकाश डालें-

दोहा— एक दिना माँ पार्वती, सिंहासन रत्न विराज।
कैलाश प्रदोषहि समय पर, सब जुरिरहे देव समाज॥

एक दिन कैलाश के शिखर पर माता पार्वती रत्न सिंहासन पर विराजमान थीं। प्रदोष = सायं संध्या का सुन्दर सुहावना समय था, सभी देव उस समय वहाँ आये हुए थे।

चौ०—रूप चतुर्भुज शंकर कीन्हा। ताण्डव नृत्य शुरू कर दीन्हा॥
एक हाथ लै, डमरू विशाला। एक में लिया त्रिशूल कराला॥
एक हाथ प्रलयाग्नि खप्पर। अभय मुद्रा में चौथा तत्पर॥
अमर सभी सहयोगहिं कीन्हा। वीणा उठा नारद ले लीना॥
हरि मृदंग बनसी इन्द्र साथा। शारद-सितार, ताल विधि हाथा॥
गान करन तब लक्ष्मी लागीं। स्तुति सकल देव मुनि पागीं॥
और यक्ष किन्नर गन्धर्वा। अप्सरायें आदि आये सर्वा॥
चरणनहिं अपस्मार दवाहीं। तेहि पर नच नटराज कराहीं॥

शंकरजी ने अपना चतुर्भुज रूप रखा और ताण्डव नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। एक हाथ में डमरू, एक में कराल त्रिशूल और एक में प्रलयाग्नि का खप्पर। इतना होने पर भी चौथी भुजा अभय मुद्रा में उठी हुई अभय दान दे रही थी। देवताओं ने भी सहयोग दिया, देवर्षि नारद जी ने वीणा उठाली, श्री हरि ने मृदंग, इन्द्र ने वंशी, सरस्वती ने सितार और ब्रह्माजी अपने हाथों से ही ताल देने लगे, लक्ष्मी जी गान करने लगीं और समस्त देवता, मुनि, यक्ष, किम्नर, गन्धर्व, अप्सरायें आदि जो वहाँ आये थे, सब स्तुति करने लगे।

अपने चरणों के नीचे शंकरजी अपस्मार पुरुष = (मृत्यु, दासी, अहंकार) को दबाकर नृत्य कर रहे थे।

दोहा— बार-बार पग उछलने, कँपि रही पृथ्वी माय।
संदेहहि यह है रहयो, कि धरा कबहु फटि जाय॥1॥

उनके बार-बार के उछल कर चरण रखने से पृथ्वी काँप रही थी, यहाँ संदेह होता था कि धरा न जाने कब फट जाय।

दोहा— उठे हुए जो हाथ शिव (ले) डमरू त्रिशूलहि जोक।
तेहि लगि डगमग ह्वै रहे, वैकुण्ठ ब्रह्महि लोक॥2॥

भगवान शिव के उठे हुए त्रिशूल और डमरू के हाथ के लगने से ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ तक डगमगा रहे थे।

चौ०—उछली भई जटायें जत्था। स्वर्ग कपाँ जैसे पीपल पत्ता॥
संघर्ष भुजाओं के परि गहेऊ। तारे टूट टूट गिरि रहेऊ॥

उनकी उछलती हुई जटाओं के समूह के लगने से स्वर्ग तो पीपल पत्ते की तरह काँप रहा था, भुजाओं के संघर्ष में पड़कर तारे टूट-टूटकर गिर रहे थे।

चौ०—फिर भी अभय मुद्रा जनाहीं। भय का कोई कारण नांही॥
विश्व की रक्षा कारण हेतू। नृत्य कर रहे ये वृषकेतू॥

फिर भी अभय मुद्रा जना रही थी कि डरने की कोई बात नहीं, विश्व की रक्षा के लिये है यह वृषकेतु का नृत्य हो रहा है।

ताण्डव समाप्त होने पर माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने देवताओं को अभीष्ट वरदान दिया। कथा भाग तो इतना ही है।

"व्यापक तत्व का यह नृत्य है। प्रभु के हाथ का डमरू सृष्टि का और अग्न प्रलय की सूचक है। त्रिशूल तीनों गुण हैं जो स्थिति के कारण हैं। प्रभु के एक चरण के नीचे अपस्मार दबा है और दूसरा चरण उसके ऊपर उठा है। अभय मुद्रा उसी उठे चरण का संकेत कर रही है।

भाव यह है कि इस चरण की शरण में ही अभय है। इसकी शरण लेने पर मृत्यु का भय नहीं। मृत्यु तो वह दूसरे चरण के नीचे ही कुचल दी गई है।

उठे हुए हाथ और चरण अपनी नृत्य की गति से घूम-घूमकर दशों दिशाओं में शक्ति का संचार कर रहे हैं। काल को सर्प रूप से प्रभु ने लपेट रखा है। काल उनका अनुयायी तथा आभूषण है। योगमाया पार्वती जी डमरू नाद से आकृष्ट हुई इस नृत्य को देख रही हैं। प्रभु का यह नृत्य हो रहा है श्मशान में। समस्त वासनाओं की चिंता को भस्म किये हुए भक्त के हृदय में या घोर कष्टमय श्मशान विश्व में। समस्त देवता, विश्व की समस्त विभूतियाँ इसमें सम्मिलित हैं। सम्पूर्ण विश्व नृत्य से काँप रहा है।

जगत के अणु-अणु में होने वाली विकर्ष गति के रूप में यह शंकरजी का नृत्य व्याप्त है। यही नृत्य आकर्षक के रूप में रासलीला के स्वरूप से व्याप्त है। आकर्षण मधुरिमा मय है। रास में वही शिव श्रीकृष्ण चन्द्र हैं, योग माया राधारानी और देवता गोपियों के प्रेममय रूप में डमरू यहाँ वंशी होकर विश्व में मोहिनी बिखेरता है। रास और ताण्डव श्रीकृष्ण और श्री शिव का नृत्य आकर्षण और विकर्षण ये एक ही बातें हैं। व्यक्त होने पर वे रास या ताण्डव हैं और अव्यंक्त रूप में आकर्षण और विकर्षण। व्यापक तत्व का यह नृत्य दो ही प्रकार का है।

(मानसमणि सितम्बर 1967 से)

तृतीय सोपान समाप्त

❋ हर हर हर ❋

कवित्त— (1) "बसत अचल पर धवल वरन हर,
सरप लसत अँग गँग शशधर सर।
जलज नयन गर गरल अमल धर,
धरत चरम गज भजत धनद कर॥
करज कमल सज रजत बदन रज,
वरद बदत भल सहज वचन वर।
दरस करत सब चढ़त अछत जल,
लहत मनन घन कह हर हर हर॥"

(2) जरत सकल जग, गरल धरत गल,
करत अभय भय जय कह जय कर।
तपत करम तप तन मन जरजर,
छनकन भल रह जनम जनम जर॥
जप तप मख सत धरम अगमफल,
लहत सहज जन बदत वरद वर।
सरवस अधनस धर भर धन जन,
रह न तनक डर कह हर हर हर॥"

(शिवरत्न शुक्ल 'निरस')



श्री शिव कथा सार का

चतुर्थ सोपान

❃ मंगलाचरण ❃

श्लोक (1) — "नयस्य कालो न च बन्ध मुक्ती, न यः पुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम् ।
विचित्र रूपाय शिवाय तस्मै नमः परस्मै परमेश्वराय॥"

"जिसका कभी काल नहीं" 'कालं महाकाल कालं कृपालं' और न कोई किसी प्रकार का बंधन, जब बंधन ही नहीं तो मुक्ति का प्रश्न ही नहीं, और न वे प्रकृति के अधीन, रोसे विचित्र रूप परम परमेश्वर शिव को हम नमस्कार करते हैं।"

श्लोक (2) — "ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एवहि।
द्वयक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥
किंचिदूलेन संतुष्टः पुष्पेणापि तथैव च।
तोयेनापि च संतुष्टो महादेवो निरन्तरम्॥
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह॥
एको महान् ज्योतिरजः परेशः परावराणां परमो महात्मा।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः॥
निरंजनो नित्ययुक्तो निराशो निराधारो नित्यमुक्तः सदैव हि॥"

"जिनकी जिह्वा के अग्र भाग पर सदा भगवान शंकर का दो अक्षरों वाला नाम = शिव विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नाम का उच्चारण किया है, वे तो निश्चय ही मनुष्य रूप में रुद्र हैं, इसमें संशय नहीं है। महादेव जी थोड़ा सा विल्वपत्र पाकर भी सदा संतुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करने से भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान शिव सदा सबके लिये कल्याणस्वरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जल से ही संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिए। शिवजी इस जगत में मनुष्यों को महान् सौभाग्य प्रदान करने वाले हैं। ये एक हैं, महान् हैं, ज्योति स्वरूप हैं तथा अजन्मा परमेश्वर हैं। महात्मा शिव कार्य और कारण सबसे परे हैं। ये व्यवधान शून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्वाध, निर्विकल्प, निरीह, निरंजन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।" *(स्कन्दपुराण मा० के० अ० 27)*

श्लोक (3) — "एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय।
तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले,
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥"

"जो अपनी शासन शक्तियों के द्वारा लोकों पर शासन करते हैं वे रुद्र भगवान एक ही हैं (अर्थात् शिवत्व तो एक ही है—"एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म" (छा० उ० 6।2।1) उस अद्वय तत्व के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। "एकमेव सत। नेह नानास्ति किंचन।" (वृ० उ० 4।4।19) किंतु उस अद्वय तत्व के नाम अनेक होते हैं-"एकं सद् विप्रा बहुधा बदन्ति।" (ऋग० 1।164।46) अर्थात् उस अद्वय तत्व को विज्ञगण अनेक नामों से पुकारते हैं।) इसलिये विद्वानों ने जगत के कारण के रूप में किसी अन्य का आश्रयण नहीं किया है। वे प्रत्येक जीव के भीतर स्थित हैं। समस्त जीवों का निर्माण कर पालन करते हैं तथा प्रलय में सबको समेट भी लेते हैं।

**श्लोक (4) — "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बहूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥"**

(कठोपनिषद् 2।2।9)

"जैसे कण-कण में अनुस्यूत अग्नि एक ही है किंतु अनेक रूपों में हमारे सामने प्रकट होती है, वैसे ही भगवान शिव एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। लोक कल्याण के लिये सद्योजात, वामदेव तत्पुरुष, अघोर, ईशान आदि अनेक अवतार रूपों में वे प्रकट हुए हैं। *(शिव पु० शतरुद्र संहिता)*

इस तरह शिव और रुद्र ब्रह्म के पर्यायवाची शब्द ठहरते हैं शिव को रुद्र इसलिये कहा जाता है कि अपने उपासकों के सामने अपना रूप शीघ्र ही प्रकट कर देते हैं।



(29) शरभावतार

**श्लोक— "त्राता यत्र न कश्चिदस्ति विषमे तत्र प्रहर्तुं
पथिदोग्धारो यदि जाग्रति प्रति विधि कस्तत्रशक्य क्रियः।
यत्र त्वं करुणार्णव स्त्रिभुवन त्राणप्रवीणः
प्रभु स्तत्रापिप्रहरन्ति चेत्यरिभवः कस्यैष गर्हावहः॥"**

"जहाँ भयंकर मार्ग में कोई रक्षक न हो वहाँ यदि शत्रु सताने पर तप्त रहें तो वहाँ किया ही क्या जा सकता है। पर जहाँ आप जैसे करुणा सागर संसार की रक्षा करने में कुशल स्वामी हों, वहाँ भी यदि कोई प्रहार करे तो वह किसकी निंदा और अपमान है?"

हिरण्यकशिपु का वध करके क्रोधित भगवान नृसिंह उसकी राज सभा में विराज रहे थे। उनके बार-बार के गर्जन से दिशाएँ काँप रही थीं। विश्व भय से व्याकुल हो रहा था। किसी प्रकार भी उनका क्रोध शान्त होता ही न था। देवताओं ने बहुत स्तुति की पर विफल रहे। निकट जाने का किसी का साहस न था। अंत में विवश होकर देवताओं ने भगवान शंकर की शरण ग्रहण की। उन्हें प्रसन्न किया।

देवताओं को आश्वासन देकर शंकरजी ने विदा कर दिया। अपने रुद्र स्वरूप वीरभद्र को आज्ञा दी, "तुम जाकर पहले नृसिंहजी को समझाओ, वे मेरे ही अंशावतार हैं। क्योंकि मैं और हरि अभिन्न हैं, पर यदि न मानें तो अपने रौद्र रूप से शात करना।" अपनी ही विभूति जब उत्तेजित होकर मर्यादा भंग करने लगे तो उसका शासन करना ही पड़ता है।

दोहा— वीरभद्र शिव आज्ञा, नृसिंह पास आ जाहिं।
कहा बड़े हो पराक्रमी, दैत्य मारा जग भल ताहिं॥

शिवजी की आज्ञा से वीरभद्र नृसिंह जी के पास आये। निर्भयता पूर्वक समीप आकर कहने लगे, "नृसिंह जी! आप बड़े पराक्रमी हैं, इस दुष्ट दैत्य को मारकर आपने संसार का बड़ा उपकार किया।"

चौ०—प्रकट आप रक्षार्थहिं देनी। क्रोध से जग में मची बेचैनी॥
सर्वश्रेष्ठ तुम भक्त हो शंकर। आज्ञा शान्तहिं दई भयंकर॥

"आपका प्राकट्य विश्व की रक्षार्थ हुआ है, कार्य तो हो ही गया, अब आपके क्रोध से संसार में बेचैनी फैल रही है। आप शंकरजी के सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं, उनके ही अंश हैं, प्रभु (भयंकर) ने आपके भयंकर रूप को शांत होने की आज्ञा दी है, रोष को त्याग का शांत हो जावे, संसार को शान्त होने दें।"

चौ०—मर्यादा क्रोधित नहिं ध्यानूँ। कहा नहीं काऊ आज्ञा मानूँ॥
लौट कुशल जहाँ से तू आया। तेरी बात मोहि नहीं भाया॥

क्रोध में मर्यादा का ध्यान नहीं रहता, वे क्रोध से बोले, "मैं किसी की आज्ञा नहीं मानता, तू जहाँ से आया है वहीं लौट जा इसी में कुशल है, तेरी बातें मुझे नहीं सुहा रही, मैं नहीं सुनना चाहता।"

बहुत कुछ विवाद करने के पश्चात् वीरभद्र ने देखा कि ये तो और अधिक उत्तेजित होते जा रहे हैं, मेरी बातों का कोई प्रभाव इन पर पड़ने की आशा नहीं है क्योंकि क्रोधोन्मत्त (क्रोधोन्मक्त) को बचनों से नहीं समझाया जा सकता। 'भय बिनु होइ न प्रीति।'

चौ०— वीरभद्र धरि रूप भयंकर। विश्वतेज लय हो गये अन्तर॥
मृग अरु शरभ रूप धरि आधा। मिटी तबन्हि नृसिंह व्याधा॥

सहसा वीरभद्र ने अपना भयंकर रूप आधा मृग का आधा शरभ नाम के पक्षी का रूप धारण किया, समस्त विश्व का तेज उनके तेज में लय हो गया। नृसिंह भयंकर रूप को देखकर क्रोध की बाधा जाती रही। शरभ रूपधारी रुद्र उन्हें पूँछ में लपेट कर आकाश में ले उड़े। वहाँ चोंच से उनकी छाती में प्रहार करने लगे। असह्य प्रहारों से व्याकुल होकर नृसिंह जी अपने अपराध की क्षमा माँगते हुए वीरभद्र की स्तुति करने लगे, प्रसन्न हो वीरभद्र ने उन्हें छोड़ दिया, वीरभद्र ने भी अपने शरभरूप का उपसंहार कर लिया, वे कैलाश पर चले गये। विश्व में नृसिंह जी के शांत हो जाने से शांति हो गयी, देवता प्रसन्न हो गये। *(मानसमणि अक्टूबर 1967 से)*



(30) रावण की शिव-भक्ति

श्लोक— "अमुष्यत्वत्सेवाम मधिगत सारंभुजबलं,
बलात्कैलाशेऽपित्व दधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातात्मेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितौ मुह्यति खलः॥"

"यही आपकी सेवा से ही सार पूर्ण बाहुबल प्राप्त करके मोह से दुष्ट रावण बलपूर्वक जब इसी कैलाश पर ही बल दिखाने लगा तो केवल आपके अंगुष्ठ के चलाने से उसके मस्तकों की पाताल में भी जो प्रतिष्ठा थी वह चंचल हो गयी, नहीं मिली, (अर्थात् मस्तक दब गया)।"

भगवान शंकर का रावण अनन्य भक्त था, यह बात तो लोक प्रसिद्ध है।

दोहा— कैलाशहिं नित जायके, शिव पूजा कर आराध्य।
निज कर काटे शीष आहुत, यज्ञ कुण्ड निरबाध॥

कैलाश परजाकर वह नियम से आराध्य का पूजन करता था, भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिये वह वहाँ यज्ञकुण्ड में अपने हाथों अपने मस्तक काट कर बिना किसी बाधा के उसने उनकी आहूति दी।

चौ०—शिव की कृपा कटे सिर जबही। वैसा ही शीष लगे वहाँ तबही॥
आहुति सिरन्ह भई तब नाना। प्रसन्न भये शंकर भगवाना॥

प्रभु की कृपा से एक मस्तक के कटते ही उसे दूसरा मस्तक उसी स्थान पर और ही वैसा ही हो जाता था। कई बार मस्तकों की आहुति देने पर आशुतोष शंकर भगवान प्रसन्न हुए।

चौ०—विजयी विश्व पराक्रम कीन्हा। ऐश्वर्य महान उसे तब दीन्हा॥
सभी विद्या मर्मज्ञ बनाया। पराक्रम पाइ मस्त होइ धाया॥

उन्होंने प्रसन्न होकर रावण को विश्वविजयी पराक्रम, महान ऐश्वर्य प्रदान किया तथा समस्त विद्याओं का मर्मज्ञ बना दिया। भगवान शिव की कृपा से महान पराक्रम पाकर वह राक्षस मस्त होकर विश्व में धावा बोलने लगा।

चौ०—प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। भुज शक्ति अनुमान लगावा॥
दाँत तोड़ दिकपालन्ह डारे। भगे देव सब भये दुःखारे॥

दुष्ट लोग ऐश्वर्य तथा बल पाकर पागल हो जाते हैं। उन्हें उसके द्वारा दूसरों को कष्ट देने की ही सूझती है, रावण भी बल पाकर मतवाला हो गया। विश्व में घूम-घूमकर वह युद्ध के लिये अपना प्रतिभट खोजने लगा, कहीं मिलता ही नहीं, वह अपनी भुजाओं की शक्ति का अनुमान लगाना चाहता था; दिग्पालों से जाकर लड़ने पर उनके दाँत तोड़ डाले, देवता युद्ध से भाग ही गये, बहुत दुःखी हो गये।

चौ०—भुज बल का कहीं पता न लागेउ। कैलाश उठा अनुमानहिं जागेउ॥
होइ प्रविष्ट पातालहिं ताहीं। सहित शिवहिं कैलाश उठाहीं॥

भुजबल का कहीं पता न लगने से उसने कैलाश को ही उठाकर उसके हृदय में अनुमान जाग गया। पाताल में प्रविष्ट होकर रावण ने कैलाश की जड़ में हाथ लगाकर सचमुच ही उस पर्वतराज को हाथों पर भगवान शिव शंकर के सहित उठा लिया।

दोहा— उठता हिलता गिरहि लखि, भैं पार्वती भयभीत।
प्रभु के अंकहिं चौंककर, लगि गई तुरत विनीत॥1॥

पार्वत को हिलता तथा ऊपर उठा हुआ देखकर माता पार्वती भयभीत हो गयीं। वे चौंककर तुरंत विनीत हो प्रभु शिव के अंक से लग गयीं।

दोहा— डरने की कोइ बात नहीं, प्रभु विहँसि कही अस बात।
पराक्रम मम उन्मक्त हो, कर रावण उत्पात॥2॥

प्रभु हँसे, "डरने की कोई बात नहीं, मेरे द्वारा दिये गये पराक्रम से रावण उन्मक्त होकर उत्पात करने लगा, अब मेरे निवास भूत पर्वत को ही उठाने की धृष्टता करने लगा है।

प्रभु ने अपने वाम चरण के अँगूठा से पर्वत को तनिक दबा दिया, नीचे रावण की दुर्दशा हो गई, पर्वत को गिरता देख पीठ पर लेना चाहा, भार के मारे गिर पड़ा, आँखें लाल हो गईं आँसू निकल आये, मुख लाल हो शरीर की नस-नस फटने लगी, पिचक कर प्राणों पर आ बनी, आर्त होकर पुकारने लगा-करुणामय रक्षा करो, रक्षा करो मुझ मूर्ख के अपराध को छमा कर मुझे बचाओ, प्रभु मुस्कराये। माता ने रावण के दीन बचनों को सुनकर स्वयं अपने हाथ से प्रभु का अँगूठा उठाते हुए बोलीं-"तुम हँस रहे हो वह बेचारा मरा जा रहा है तुम्हारा ही भक्त है, उसकी दीन पुकार सुनो।" हँसकर अँगूठा उठा लिया। यदि जोर से दबाते तो हड्डी पसली भी नहीं बचती।

किसी तरह नीचे से निकल कर लज्जा से सिर झुका चला गया।

(मानसमणि अक्टूबर 1967 से)



(31) शिव अयोध्या में

श्लोक—"रामं कामारि सेव्यं भवभयहरणं काल मत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रं ध्यानगम्यं गुणनिधि मजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलबधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं,
बन्दे कुन्दावदातंसरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥"

"शंकर जी के आराध्य, संसार के भयहर्ता, कालरूपी भक्त हाथी के लिये सिंह समान, योगीश्वरों के ध्यान के आधार, सम्पूर्ण सद्गुणों के समुद्र, अजित, निर्गुण, निर्विकार, माया से परे देवताओं के स्वामी, दुष्टों के वध में लगे, ब्राह्मणों के एकमात्र देवता, कुन्द के समान उज्ज्वल कांति वाले, कमलनयन, नृपतिरूप में प्रकट श्री रामचन्द्र जी की हम वन्दना करते हैं।

परस्पर उपासना तो चलती ही है, विश्व को उपासना का आदर्श दिखाना है, पर अपने से बड़ा कोई आराध्य नहीं, तो अपने ही दो रूपों में परस्पर एक दूसरे की उपासना होती है। वह परमतत्व राम, कृष्ण या विष्णु के रूप में शिव रूप की और शिव रूप से रामादि की उपासना करने का आदर्श रखता है। तत्व एक ही और परस्पर अभिन्न हैं।

दोहा— राम प्रकट दशरथ अजिर, चले दर्शन हेतु महेश।
काक भुशुंडहिं साथ ले, अवध गये करुणेश॥

भगवान शंकरजी श्रीरामचन्द्र जी के अनन्य भक्त हैं। महाराज दशरथ के यहाँ प्रभु श्री रामजी का प्रकाट्य हो गया, यह जानकर आराध्य के दर्शन करने के लिये आप कैलाश से अयोध्या को चल पड़े। परम रामभक्त श्री काकभुशुण्ड जी को साथ ले लिया।

शंकरजी ने सोचा 'अभी तो रघुनाथ जी बाल रूप में होंगे, उनके दर्शन कैसे हो सकेंगे? राजभवन के भीतर मुझे जाने के लिये कोई प्रबन्ध करना होगा, प्रभु मर्यादावतार हैं मैं अपने वास्तविक वेष से जाऊँ तो लोगों को उनका परमात्म तत्व ज्ञात हो जायेगा। प्रभु ऐसा चाहते नहीं। मुझे तो उनकी इच्छा रखनी है। अतः कोई दूसरी युक्ति होनी चाहिए।

चौ०—बृद्ध ज्योतिषी रूप बनाया। काक शिष्य बालक अपनाया॥
पहुँचे अवधरूप ये धरहीं। विज्ञापन तेहि भाँती करहीं॥

सोच विचार कर शंकरजी ने वृद्ध ज्योतिषी का रूप बनाया और काकभुशुण्डि जी को अपने बालक रूप में शिष्य अपनाया। इसी रूप में अयोध्या पहुँचे, किसी प्रकार विज्ञापन करना था।

चौ०—सन्मुख राज भवन के ताहीं। महिला द्वार बैठ वहाँ जाहीं॥
राज भवन जो निकसहिं नारी। भूत भविष्य बता कामारी॥

वे राजभवन के महिला द्वार के सम्मुख बैठ गये, जिससे राज भवन में बुलाए जाएँ। जो भी दासी आदि स्त्रियाँ भीतर से निकलतीं, उन्हीं का भूत-भविष्य बताने लगे।

चौ०—निज भविष्य का वृत्तहिं जानन। उत्कण्ठा सबकी को भानन॥
बीती बात बतावैं सारी। भई परतीत भविष्यहिं भारी॥

अपने भविष्य का वृत्त जानने की उत्कण्ठा सभी में होती है। ज्योतिषी बीती बातों का अक्षरशः वर्णन करता था, अतएव भविष्य के सम्बन्ध में विश्वास पूरा हो गया, अविश्वास करने का कोई कारण न था। ("तुमते कछू न छिपी शिव शंकर तुम्ह हो अन्तर्यामी")।

चौ०—ज्ञान अनादि अनंत है जाके। भूत भविष्य कहाँ हैं ताके॥
कुछ भी जानना उनको नाहीं। देखहिं हाथ बहाना बनाहीं॥

सर्वज्ञ के लिये भूत और भविष्य क्या? उनके सम्मुख तो सब वर्तमान ही है। यह भूत और भविष्य तो बुद्धि की अपेक्षा करता है। हमारी ज्ञान शक्ति में जो उपस्थित है, वह वर्तमान, जो उसके सामने से निकल गया, वह भूत और जो आने वाला है वह भविष्य। पर जिसका ज्ञान अनादि और अनंत है, उसके लिये सब वर्तमान ही है। शंकरजी को जानना तो कुछ था नहीं, यों ही बहाना बनाने के लिये हाथ देखते थे।

दोहा—जो कुछ भी दें ज्योतिषिहि, तो भी कुछ नहिं लेय॥
भूतकाल का कथन वह, बता सही कह देय॥

एक तो ज्योतिषी कुछ देने पर भी नहीं लेता था, दूसरे अक्षरशः ठीक भूतकाल का कथन करता था।

चौ०—पूछीं गुप्त बात कुछ लोगा। वह भी बता बना संयोगा॥
भीड़ जुरी नर नारी भारी। उत्सुक जानन भविष्यत सारी॥

कुछ लोगों ने अत्यन्त गुप्त बातें पूछीं, पर उसने वह भी सब बता दिया। स्त्री-पुरुषों की वहाँ बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हो गयी, सभी को अपने भविष्य जानने की उत्सुकता था।

चौ०—ते ज्योतिषी सरल आचरणा। निराश न कर सब प्रश्नहिं बरणा॥
फैली चर्चा नगर मंझारी। प्रशंसा यत्र-तत्र भैभारी॥

ज्योतिषी का आचरण बड़ा सरल था, किसी को भी निराश नहीं करता था, क्रमशः सबके प्रश्नों का उत्तर दे रहा था। धीरे-धीरे नगर में इस अपूर्व ज्योतिषी की चर्चा फैल गई। आते-जाते पुरुष ज्योतिषी की ही यत्र-तत्र प्रशंसा करते दीख पड़ने लगे।

चौ०—राजभवन कुछ दासी जाहीं। चर्चा कौशल्या हि चलाहीं॥
अपूर्व ज्योतिषी आया द्वारे। भूत भविष्य बतावै सारे॥

कुछ दासियें ने राजभवन में जाकर माता कौशल्या से उसकी चर्चा चलाई कि राजभवन के महिला द्वार के समीप एक अपूर्व ज्योतिषी आकर बैठा है, सबके भूत-भविष्य की अक्षर-अक्षर बातें बता रहा है।

चौ०—दासी इच्छा उरमन मांही। राजकुमार दिखावन चाहीं॥
प्रिय प्राण थे राजकुमारा। विषय उन्हीं के जाननिहारा॥

दासी का मन हृदय चाहता था कि महारानी उसे बुलाकर राजकुमार को उसे दिखावे, राजकुमार सबक प्राण-प्रिय थे अतः सब उनके विषय में जानने को उत्सुक थीं।

दोहा— मातु हृदय उत्सुक भयो, मैं कैसे लऊँ बुलाइ।
पर पुरुष अन्तःपुरी, मर्यादा मिटि जाइ॥

माता का हृदय भी ज्योतिषी को बुलाने के लिये उत्सुक हो गया, वे सोचने लगी, "उसे कैसे बुलायें, वह पर पुरुष है अन्तःपुर में बुलाना मर्यादा विरुद्ध पड़ेगा।"

चौ०—समाचार तेहि दासिन्ह ज्ञाता। भयो सुमित्रा कैकई माता॥
निज-निज भवनों से तहँ आयीं। सलाह बुलाने की तेहि चांही॥

माता सुमित्रा और कैकई को दासियों के द्वारा ज्योतिषी का समाचार ज्ञात हो चुका था। वे कौशल्याजी से उसे बुलाने के विषय में सलाह लेने के लिये अपने भवनों से उसी समय वहाँ आ गयीं।

चौ०—कैकई बोलीं सुनु मेरी बहिना। द्वारे बैठ ज्योतिषी महना॥
कथन करहि वो भूत भविष्यत। है वृद्ध एक बालक शिष्यत॥

पहुँचते ही कैकई जी बोलीं, "बहिन सुनो राजभवन के महिला द्वार पर एक महान = बड़ा प्रामाणिक ज्योतिषी बैठा है अक्षरशः भूत-भविष्य का कथन कर रहा है, ऐसा हमें दासियों द्वारा मालूम हुआ है। वह है भी वृद्ध और उसके साथ एकमात्र एक बालक शिष्य है।

चौ०—स्वीकारो यदि तुम मम बाता। अन्तः बुलाइ दिखावें ये भ्राता॥
तुम्हरी इच्छा भी अस होई। नहिं आपत्ति बुलावो सोई॥

कैकई कहती गई कि मैं चाहती हूँ कि यदि तुम मेरी बात को स्वीकार करो तो उसे भीतर बुलाकर राज्य पुत्रों चारों भ्राताओं को उनको दिखावा जावे। माता कौशल्या तो पहले से ही उत्सुक थीं। उन्होंने कहा, "यदि वह वृद्ध है, तो उसे बुलाने में क्या आपत्ति है बालक के आने में भी कोई बाधा नहीं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब तुम सब उसे बुलाना चाहती हो तो वह अवश्य बुलाया जावे।

चौ०—बीचहिं महँ सुमित्रा कहेऊ। मोहि संदेह अन्तः आनहिं भयेऊ॥
राज्य भवन यश धन जो चाहैं। तेहि लोभी अंतःपुर आवैं॥

बीच में ही सुमित्रा जी बोलीं, "बुलाने पर वह भीतर आवेगा, इसमें मुझे तो संदेह है। राजाओं के भवन में यश और धन के लोभी ही अक्सर आते हैं।

दोहा— उसके विषय में यह सुना, कुछ देने पर नहिं लेइ॥
गुणी यशी इतना बड़ा, जहँ बैठ भीड़ चलि देय॥

सुनते हैं कि वह देने पर भी किसी से कुछ नहीं लेता है। यश तो वह इतना बड़ा गुणी है कि वह जहाँ बेठै वहीं उसके पीछे लोग दौड़कर भीड़ इकट्ठी कर देते हैं। बड़े गुणवान प्राय गर्वीले होते हैं वह कहीं जाते ही नहीं।

चौ०—दासी बोल पड़ी महारानी। सरल है गुणी नहीं अभिमानी॥
गृहन्ह कई आग्रह से आयेउ। आज्ञा दें बुला मैं लायेऊ॥

दासी बीच में ही बोल पड़ी, "महारानी, वह जितना बड़ा गुणी है उतना ही सरल भी, अभिमान नहीं, आग्रह करने पर वह कई सामान्य गृहों में भी गया था। आप आज्ञा दें तो मैं बुला लाऊँ।"

चौ०—दासी को आज्ञा मिलिजाहीं। लावै तो परितोषक पाहीं॥
श्रेय चाहती दौड़ी जाई। पग स्पर्श गुहार लगाई॥

दासी को तुरंत आज्ञा मिली जा लिवा ला। यदि तू ला सकी तो अच्छा पुरस्कार मिलेगा। दासी तो यह श्रेय चाहती ही थी, उतावली सी हो दौड़ती गई और ज्योतिषी के पैर पकड़कर गुहार लगाई।

चौ०—विनय नम्रता ते तहँ कीन्हीं। पधारन राजभवन कह दीन्हीं॥
राजकुमारन्ह देखन काहीं। बैठे थे शंकर ये ही चाहीं॥

और बड़े नम्र शब्दों में राजभवन में कुमारों को देखने के लिये प्रार्थना की, इसी प्रतीक्षा में तो शंकर बैठे ही थे।

चौ०—सुयोग आराधहिं दर्शन पांही। अत्यन्त हर्ष उनके मन मांही॥
अक्खड़पन ऊपरी दिखावहिं। भिक्षुक बन वासी ठहरावहिं॥

इसीलिये तो इतना सब आडम्बर कर रखा था। आराध्य के दर्शनों का सुयोग देख वे अत्यन्त हर्षित हुए। ऊपरी मन से तनिक अक्खड़पन दिखाते हुए बोले, "मैया

हम वनवासी भिक्षुक ठहरे।"

चौ०—राज भवन जा क्या हम करहीं। पसंद नहीं भूपन मन धरहीं॥
दासी चरणन तेहि सिर नाँई। कुमार प्राण प्रिय सबके भाई॥

राजभवन जाकर हम क्या करेंगे? हम राजा महाराजाओं से दूर रहना ही पसंद करते हैं। दासी उनके चरणों पर सिर रखकर विनती करने लगी। राजकुमार अयोध्या के प्राणीमात्र के प्राणप्रिय प्राणाधार हैं भाई।

दोहा— सभी उपस्थित नारि नर, विनय पधारन कीन्ह।
शिष्य बने काकहि कही, गुरु आग्रह हानि न चीन्ह॥1॥

अत: सभी उपस्थित स्त्री पुरुषों ने राजभवन में पधारने की प्रार्थना की है। बालक शिष्य बने काकजी बोले, "गुरुदेव! जब सभी लोग ऐसा ही आग्रह करते हैं तो हानि ही क्या है?"

दोहा— उठे खड़े हँस कर कही, तेरी इच्छा हम चलि जाहिं।
श्वेत केश बिखरावते, चले दासी मार्ग दिखाहिं॥2॥

हँसकर ज्योतिषी उठ खड़े हुए, "अच्छा तेरी भी इच्छा है? चल यही सही" वृद्ध पके हुए श्वेत केशों की जटाओं को फहराते हुए शिष्य सहित चले, दासी मार्ग दिखाते हुए चली।

दोहा— आवत देखे ऋषी, कुमार, मातु खड़ी हो जाहिं।
कुमारहिं चरनन में रखे, अंचल से आपु छुवाहिं॥3॥

ज्योतिषी के साथ एक परम सुन्दर बालक (अर्थात् ऋषी एवं ऋषी कुमार) को आते देख माताएँ उठ खड़ी हुईं, उन्होंने कुमारों को ज्योतिषी जी के चरणों में रखकर स्वयं भी अंचल से उनके चरण छूये।

दोहा— रत्न सिंहासन मनोहर, कोमल मृगचर्म बिछाँहिं।
उन्हें बिठाया ताहि निज, हाथन चरण धुवाहिं॥4॥

रत्न मनोहर सिंहासन पर कोमल मृग चर्म बिछाकर उस पर उन्हें बैठाया। दूसरे आसन पर बालक को, स्वर्ण के थाल में जल मँगाकर माता कौशल्या ने स्वयं अपने हाथ से सशिष्य उनके चरण धोये।

दोहा— चन्दन पुष्प आरती, की पूजा सविधि प्रकार।
किया बहुत आग्रह तभी, बालक भोजन को तैयार॥5॥

चन्दन, पुष्प, आरती आदि से उनकी सविधि पूजा की गई। बहुत आग्रह करके शिष्य बने बालक को भोजन के लिये तैयार कराके भोजन कराया।

चौ०—यह सब कर्म हो रहा ताहीं। ध्यान शिष्य गुरु अंतहिं जाहीं॥
नील जलद सुंदर तन स्यामा। कैकई गोद मचल रहे रामा॥

यह सब हो रहा था, पर ज्योतिषीजी और उनके शिष्य का ध्यान कहीं और ही था, वे एकटक कैकई माता की गोद में हाथ-पैर फेंककर मचलते हुए अपनी ही ओर देखकर हँसते हुए नीलजलद सुंदर श्याम शरीर बड़े कुमार श्री रामजी को देख रहे थे।

चौ०—तन पुलकित कंठ भर आयेउ। नेत्रन्ह प्रेमाश्रु छिपायेउ॥
मन ही मन प्रणाम तिन कीन्हा। मुग्ध अपूर्व छटा मन दीन्हा॥

शरीर रोमांचित हो रहा था, कंठ भरा हुआ था, नेत्रों के प्रेमाश्रु बड़ी कठिनता से दवा के छिपाये गये थे। आते ही मन ही मन शंकरजी ने एवं काकभुशुडिजी ने प्रभु रामजी को भाइयों सहित प्रणाम किया था। माताएँ ज्योतिषी तथा उनके शिष्य को एकटक राजकुमार की ओर देखकर भी आश्चर्य में न पड़ी, उनके लिये वह स्वाभाविक था। वे जानती थीं कि जैसे और लोग कुमार की अपूर्व छटा पर मुग्ध हो जाते हैं वैसे ज्योतिषी जी भी हो गये हैं।

चौ०—कैकई से ले राजकुमारा। कौशल्या शिव चरनन धारा॥
झट से शिव गोदहिं ले लीन्हा। बड़ आश्चर्य मातु तब कीन्हा॥

पूजादि समाप्त होने पर माता कौशल्या ने बड़े कुमार को कैकई से लेकर शंकर जी के चरणों पर रखा। झट से उन्होंने गोद में उठा लिया, माताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ।

चौ०—बच्चा गोद प्रसन्नहिं भारी। बहुत दिनन परिचित हो जारी॥
हँसि-हँसि ओर ज्योतिषी देखा। हाथ-पैर अपने वो फेंका॥

बच्चा उस ज्योतिषी की गोद में ऐसे जाकर भारी प्रसन्न हो गया मानो ज्योतिषी से वह बहुत परिचित हो। ज्योतिषी की ओर देखते हुए वह हँस-हँस कर हाथ पैर फेंक रहा था।

दोहा—प्रेम विवस हो ज्योतिषी, रहे उसे पुचकार।
शंकर से परसन्न हो, राघव राजकुमार॥

ज्योतिषी जी प्रेम विभोर हो गये, उसे बार-बार पुचकारने लगे। रहा न गया अंततः शंकर जी बोल ही पड़े, "रघुनाथ! शंकर से तुम प्रसन्न हो न?"

चौ०—मातु समझि शंकर तेहि नामा। प्यार कर रहे अति अविरामा॥
भविष्य की बात विनय मां चाही। हाथ पैर निज हाथ लखाहीं॥

माताओं ने समझा शंकर ज्योतिषी का नाम है, वह बालक से अत्यन्त प्यार कर रहा है। माता ने बालक के भविष्य को बताने की प्रार्थना की। बड़े ध्यान से चिन्ह देखने के बहाने ज्योतिषीजी ने उस बालक के हाथ औरचरण अपने हाथ में लेकर के बड़ी देर तक देखते रहे।

चौ०—पुत्रेष्टि यज्ञ प्रकट दिन कहेऊ। विश्वास सकल माता कूँ भयेऊ॥
विद्या महँ उत्कर्ष है अच्छा। विश्वामित्र यज्ञ की इच्छा॥

फिर विश्वास दिलाने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ तथा कुमारों के प्राकट्य का दिन उन्होंने बताया। माताओं को विश्वास हो गया, फिर क्रमशः विद्या में अच्छा उत्कर्ष और विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा—

चौ०—सुबाहु आदि निशाचर ध्वंसा। धनुष भंग कर पायँ प्रशंसा॥
सीता विवाह प्रभृति कहेऊ। परशुराम चर्चा कहि दयेऊ॥

सुबाहु आदि निशाचरों का बध, जनकपुर में जाकर धनुष भंग करके प्रशंसा पावेंगे, सीता विवाह प्रभृति, परशुराम वार्ता आदि भविष्य की घटनाओं का वर्णन किया। वनवास की दुखद घटना का वर्णन योग्य न समझा उसे छोड़ दिया।

चौ०—राज्याभिषेक अवध होइ जाहीं। अश्वमेध यज्ञ बहुत कराहीं॥
माता सुन सुनकर हर्षाहीं। सुतन्ह उत्कर्ष सुना मन मांही॥

फिर अवध में राज्याभिषेक का वर्णन की बात एवं बहुत से अश्वमेध यज्ञों की बात बताई। माताएँ पुत्रों के उत्कर्ष की बातें सुन सुनकर हृदय में हर्ष और अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

दोहा— काकभुशुण्ड रघुनाथहिं, निज गोदी में लेइं।
कौशल्या फिर भरत कूँ, ज्योतिषी हूँ दै देइं॥

रघुनाथ जी को काकभुसुण्डि जी ने गोद में ले लिया, कौशल्या ने भरतजी को गोद में लेकर ज्योतिषी जी को दिया।

बड़े कुमार के पश्चात् सभी बालक ज्योतिषी की गोद में जाने को तनिक हिचके। विशेषकर जब ज्योतिषी चरण देखने लगते थे तो वे उसे छुड़ाना चाहते थे। शंकरजी के द्वारा उन्हें चरण छुवाने में संकोच हो रहा था। मन ही मन हँसते हुए आषुतोष कह रहे थे, "आज तो मेरी वारी है, आज बिना भली प्रकार चरण स्पर्श किये थोड़े ही छोड़ दूँगा।" क्रमशः सभी बालकों को शंकरजी ने गोद में लेकर देखा, उनका उत्कर्ष वर्णन किया, शंकरजी की गोद से काकजी बच्चों को ले लेते थे। वे फिर माता को देते थे।

बालकों को कोई विघ्न बाधा न सताये, इसलिये माता ने कोई मंत्रादि माँगा। भोले बाबा ने विभूति दे दी। माताओं ने बड़ा सत्कार किया, बहुत कुछ देना चाहा, पर उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। बड़े कुमार के बिछोने का चद्दर अवश्य माँगा और बताया कि वह मेरे पास रहने से कुमार को कोई ग्रहादि नहीं तंग कर सकेंगे। माता से वह चद्दर लेकर मन ही मन आराध्य देव को प्रणाम करके विदा हुए। जाने को जी तो नहीं चाहता था, पर यहाँ रह भी तो नहीं सकते थे।

माताओं ने ज्योतिषी के चरण छूये। बच्चों को पुनः उनके चरणों पर रखा। ज्योतिषी जी ने बालकों के मस्तक पर अपना वरदहस्त रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया। बहुत आग्रह करने पर भी ज्योतिषी जी के साथ के शिष्य ने कुछ ग्रहण नहीं किया। बाहर एक भीड़ ज्योतिषी जी की प्रतीक्षा कर रही थी "देर हो गयी, मुझे आश्रम पर जाना है।" इस प्रकार बहाना बनाकर शंकरजी ने भीड़ से पिण्ड छुड़ाया। लोगों के आग्रह करने पर अपना स्थान काशी बतला दिया।

शंकर जी तो कैलाश पधारे और काकभुशुण्डि जी अपने काग रूप से अयोध्या में ही रह गये। वे तो भगवान का पूर्ण बाल-चरित्र देख कर ही अयोध्या से गये। जनकपुर से लौटने पर तथा राज्याभिषेक के समय शंकरजी दो बार और अयोध्या पधारे। वन में सीतान्वेषण के समय और लंका में रावण-वध के पश्चात् भी वे भगवान श्रीरामजी के समीप पहुँचे। वन में तो दूर से ही प्रणाम करके चले गये। प्रभु को वियोग का नाट्य करते देख प्रत्यक्ष दर्शन करना उचित नहीं समझा, पर शेष तीनों वार आकर उन्होंने प्रणाम तथा स्तुति वंदना आदि भी की है।

(मानसमणि नवम्बर 1967 से)

पद (धुनि बैठूँगी बुलेरो में)

"जो देह गेह आसक्त रहें वो शिव कूँ नायँ पियारो है,
वानें वैसे ही जन्म विगारयो है॥टेक॥
कुटम धरा धाम-धन कोषा। अपनो मानि इन करयो भरोसा॥
इनकी सार-सँभाल ही में, जर्जित है गयो अति भारौ है॥1॥
वानें वैसे ही जनम विगारियो है,
इनकूँ निशिदिन पाप कमावै। अंत समय छोड़ि यहीं जावै॥
सबहि उपेक्षित और तिरस्कृत अपमानित करि डारयो है॥2॥ वानें वैसे...
मनहिं मनोरथ भरि रहे पूरे। जी-जान लग्यो रहयो रहे अधूरे॥
काल आइ सिर मंडरावै फिर नाँई कोई देइ सहारौ है॥3॥ वानें वैसे...
भोग विलास में जीवन बीता। लोकेषणा वासना मीता॥
मानस पढ़ी, सुनी नहिं गीता, इनते करयो किनारौ है॥4॥ वानें वैसे...
चेत-चेत रे अबहू प्रानी। जिन विश्वनाथ चरण रति मानी॥
आवागम मिटै जग को, 'प्रिय' 'शिवहिं' नामचित धारयो है॥5॥
वानें वैसे ही जनम विगारयो है।
जो देह-गेह आसक्त रहै वह 'शिव' कूँ नॉय पियारो है,
वानें वैसे ही जनम बिगारयो है।

कुण्डली—विनय यही श्री सदाशिव, चरणों में अरदास।
जीह नाम रटती रहै, साँस ही साँस उसास॥

साँस ही साँस उसास, फेरि कछू अन्यन भावै।
नामामृत रसपान करूँ 'प्रिय' नाम ही गावै॥
कोई कामना रहै न हिय बिच, केवल नाम की लग्न लगै।
सब कलिमल कटि जायँ, जग भक्ति भाव में मति पगै॥ *(प्रियदास)*

(जै श्री शंकर भगवान)



(32) रामेश्वर

श्लोक– "मद्भक्तः शंकर द्वेषी मद्द्वेषी शंकर प्रियः।
उभौ तौ नरकं यातो चावचन्द्र दिवाकरौ॥"

"जो मेरा (भगवान श्री हरि) का भक्त है और शंकरजी से द्वेष करने वाला है, तथा जो शंकरजी का भक्त है और मुझसे द्वेष करने वाला है, ये दोनों ही नरक में जाते हैं। वहाँ तब तक रहते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं।"

जहाँ शंकरजी श्री राघवेन्द्र जी के अनन्य भक्त हैं, वहाँ कौशल किशोर भी शिव के अनन्योपासक हैं। परस्पर एक दूसरे के आराध्य तथा एक दूसरे के आराधक हैं। तत्वतः एक ही की दो मूर्तियाँ हैं।

लंका पर चढ़ाई करने के लिये नल-नील ने भालु तथा कपियों के लाये हुए वृक्ष और पर्वतों से समुद्र पर सेतु बाँधा। सेतु बड़ा सुदृढ़ और सुन्दर बना। सच्चे भक्त को कोई भी सुन्दर वस्तु देखकर यह भावना उठती है कि "यह मेरे आराध्य देव के उपयोग में आती तो अच्छा था।"

दोहा– सेतु लखि कह रामजी, बन्यो सुन्दर बड़ ये सेतु।
लिंग थापना करिहहुँ, पूजन शंकर हेतु॥

रघुनाथ जी सेतु को देखकर बोले, "पुल बड़ा ही सुन्दर बन गया, मेरा जी चाहता है कि यहाँ पूजा करने के लिये श्री शंकर जी की स्थापना होनी चाहिए।

चौ०– लिंग थापि विधिवत कर पूजा। शिव समान प्रिय मोहिन दूजा॥
जाने से पूर्व शत्रु स्थाना। पूजहिं इष्ट अवस मनमाना॥

शत्रु के स्थान में जाने से पहले अपने आराध्य = इष्टदेवता की पूजा मन से अवश्य कर लेनी चाहिए अतः शिवलिंग की स्थापना करके विधिवत पूजा करके ही पुल पर चढूँगा, शिव के समान दूसरा मुझे कोई प्रिय नहीं है।

चौ०– पत्थर भालू बन्दर लावा। नल-नीलहिं मन्दिरहिं बनावा॥
महावीर नद उदगम धाये। नर्मदेश्वर लिंगहि लाये॥

आज्ञा की ही तो देर थी असंख्य नर-भालू पत्थर ले आये, और कुशल कारीगर नल-नील ने वहाँ मन्दिर बना दिया। महावीरजी प्रभु की आज्ञा से नर्मदा के उद्गम से एक विशाल नर्मदेश्वर शिवलिंग उठा लाये।

चौ०—लिंग स्थापन रामहिं कीन्हा। विधिवत पूजन तेहि कर लीन्हा॥
अब भी भारत दक्षिण ताहीं। थापित लिंगहि सिंधु तटाहीं॥

विधिवत रघुनाथ जी ने लिंग की स्थापना करके वहाँ शंकरजी की पूजा की। भारत के दक्षिण में अब भी समुद्र के तट के वमीप ही शिवलिंग स्थापित है ।

दोहा—रामेश्वर रख नाम प्रभु, गोप्य रहस्य बताइ।
वैष्णव जन वहाँ सर्वदा, पूजा करें तहँ जाइ॥

श्रीरामजी ने उस शिवलिंग का नाम 'रामेश्वर' रखकर एक परम गोप्य रहस्य बताया। तुलसीदास जी के शब्दों में मानस से वह आदेश ज्यों का त्योग दिये देते हैं।

चौ०—शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न भावा॥

शिव का जो द्रोह करे और मेरा दास कहावे वह मुझे सपने में भी नहीं सुहाता। और **"शंकर भजन बिना नर, भगति न पावहिं मोरि॥"**

बिना शंकर जी के भजन के व्यक्ति मेरी भक्ति कभी नहीं पा सकता। और

"शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि घोर नरक महुँ बास॥"
"जे रामेश्वर दर्शन करहीं। ते तनु तजि मन लोक सिधरहिं॥
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहिं॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहिं। भगति मोरि तेहि शंकर देहहिं॥"

इतना रहस्य श्रीराम ने रामेश्वर का बताया। 'रामेश्वर' नाम का अर्थ तत्पुरुष समास से 'राम के जो ईश्वर हैं' शंकरजी बोले 'बहुब्रीहि समास से' 'राम हैं जिनके ईश्वर' यह तो दोनों अर्थों ने उलझन पैदा कर दी, वास्तव में कर्म धारय समास = 'राम ही ईश्वर = शिव हैं और शिव ही राम हैं' राम और शिव परस्पर अभिन्न हैं यही वस्तु तत्व है। *(मानसमणि दिसम्बर 1967 से)*



पहले गणेश दूजे शेष तीजे शारद का
भाव के प्रसून श्रद्धा भाव से चढ़ाऊँ मैं
चौथे मां पार्वती, पांचवें मां सीता के
चरण कमलों में शीष को झुकाऊँ मैं

(33) गोकुल में

श्लोक— "पद नखनि विष्ट मूर्तिक एकादसतामिवागतां निष्ठाम्।
यं समुपासते गिरिशः वन्दे तं नन्द मन्दिरे कंचित्॥"

"चरण के नखों में प्रविष्ट हुई मूर्तियों (प्रतिबिम्बों) से मानों एकादश स्वरूपों को धारण करके (एक स्वयं और दश नखों में पड़े प्रतिबिम्ब) भगवान शंकर जिसकी उपासना करते हैं, नन्द बाबा के प्रांगण में हम उसी की वन्दना करते हैं।

जगत के कारागार के विनाश श्याम सुन्दर स्वयं मथुरा के कारागार में अवतीर्ण हुए। भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की अर्धनिशा, घोर अंधकारमयी रात्रि ही उनके पधारने से सौभाग्यशालिनी हुई। बन्दी-माया के बन्धन में पड़े हुए लोगों के यहाँ निराशा के भयंकर अंधकार में संसार के भीषण बन्दीगृह में वह मुक्ति का संदेश देने वाला, घनीभूत प्रकाश श्री कृष्णचन्द्र प्रकट होते हैं।

रख न सके बन्दी गृह में, वे कंस के भय से आतुर बन्दी हो गये, अपने हृदय पर पत्थर रख कर हृदय के टुकड़े को उसी की रक्षार्थ अपने से पृथक करने के लिये। सुरक्षित करने के लिये उस नवजात शिशु को चुपचाप गोकुल पहुँचा दिया। यशोदाजी के पास रख उनकी कन्या उठा लाये। अपने पुत्र को बिना बताये दूसरे का बना देना, कितनी आपत्ति की दशा होगी। ममता ने यह त्याग भी कराया। बच्चा कंस से सुरक्षित हो गया। बाद में कृष्ण ने गोपियों से कहा कि—

"इकलो ब्रजवासी मति जानों, मेरे दोइ दोइ बाप डुकरिया।
ना मानो नाहक हठ ठानों, क्यों लाऊँ पास नवरिया॥"

विश्व के मूल में स्थित वह अधोक्षज वसुदेव और देवकी-प्रकाशमयी वृत्तियों से युक्त प्रकाशमान चित्त में ही प्रकट होता है, प्रकट होने पर भी यदि वे निर्बल हों, भीत हों तो वहाँ ठहरता नहीं। श्रुति कहती हैं "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः॥" बलहीन को यह आत्मा प्राप्त नहीं होता। उस परम तत्व की क्रीड़ा तो नंद और यशोदा-यशस्विनी सात्विक वृत्तियों से युक्त किन्तु आनन्दमय अन्तःकरणों में ही होती है। वह वहीं खेल सकता है। वह प्रकट तो बन्दीगृह में ही होता है-बंधनमय संसार में ही आता है, पर वह वन का स्वतंत्रता का देवता है। वह बन में स्वतंत्र ही रहेगा।

जिसका हृदय जिसमें लगा है वह उसे खोज ही लेता है। ढूँढ़ने वाले गंगा की अपार रेणुराशि में से भी स्वर्ण निकाल ही लेते हैं।

दोहा— पता लगा शिव शंकरहिं, श्याम सुन्दर गोकुल आय।
डमरू खप्पर हाथ ले, आराध्यहिं दर्शन धाय॥1॥

शंकरजी को श्यामसुन्दर की गोकुल में उपस्थिति का पता लग गया। हाथ में डमरू और खप्पर उठाकर आराध्य देव के दर्शनार्थ चल पड़े।

दोहा— भिक्षुक बन आये शिवहिं, त्रिभुवनपति के द्वार।
'अलख-अलख' कहने लगे, बाबा नन्द के द्वार मझार॥2॥

विश्वनाथ आज त्रिभुवनपति के द्वार पर भिक्षुक बन कर पहुँचे थे। उन्हें भिक्षा क्या चाहिए? वही जो प्रत्येक सच्चा प्रेमी अपने हृदय-धन से चाहता हँ'एक बाँकी झाँकी' पर हृदय-धन तो अभी मैया की गोदी का खिलौना है, वह झाँकी तो मैया की कृपा से ही प्राप्त होगी। भोले नाथ ने बाबा नन्द के द्वार पर पुकार लगाई 'अलख-अलख', माता ने सोचा कोई भिक्षुक होगा। रत्नों से भरा थाल दासी को भिक्षा देने के लिये देकर भेजा।

चौ०— भाल चन्द्रमा जटनन्ह व्याला। गल में नर मुण्डन की माला॥
नयन तीन उपवीत भुजंगा। हाथ गले रुद्राक्ष अभंगा॥
तन विभूति पट केहरि छाला। हाथन खप्पर डमरू विशाला॥
कराल त्रिशूल बगल में जासी। भिक्षुक देखि डरि गई दासी॥
बाघम्बर कटि बाँधेउ नागा। भिक्षा थाल बढ़ायेउ आगा॥
भिक्षुक भिक्षा लेन न आयेउ। तेरे हाथ से नहिं अपनायेउ॥
अपनी स्वामिनी भेजउ जाकर। उनसे ही भिक्षा लेऊँ अपनाकर॥
अक्खड़पन भिक्षुक का चीन्हा। जाकर माता से यों कीन्हा॥
बड़ा घमंडी वो भिखमंगा। नहिं ले भिक्षा दासीहि नंगा॥
हँसकर फिर बोली तेहि माता। होइ महा-जन तुझे न ज्ञाता॥

सिर पर चन्द्रमा, जटाओं में फुँकार मारता भयंकर सर्प, तीन आँखें, गले में नरमुण्डों की माला, सापों का यज्ञोपवीत, हाथ और गले में रुद्राक्ष, एक मोटे सर्प से बँधा कटि में लगा बाघम्बर, एक हाथ में खप्पर और दूसरे में डमरू विशाल, बगल में त्रिशूल दबाये, शरीर पर विभूति रमाये, उस भिक्षु को देखकर दासी डर गई। बड़ा साहस करके उसने भिक्षा का थाल उनके आगे को बढ़ाया। "मैं तेरे हाथ से भिक्षा लेने वाला भिक्षुक होकर नहीं आया-मेरा नाम शंकर है, तुझे जिसने भेजा है उस अपनी स्वामिनी को जाकर भेज दें।" शंकर ने यह कह कर भिक्षा अस्वीकार कर दी। दासी भिक्षुक के अक्खड़पन पर रुष्ट होकर धीरे से लौट गई और जाकर माता से कहा, "वह बड़ा घमंडी भिखमंगा है, मैं तो दासी ठहरी, मेरे हाथ से वह नंगा भिक्षुक भिक्षा नहीं लेगा, आपको बुलाता है" माँ हँसकर बोली-"पगली! तू क्या जाने महापुरुषों के स्वरूप को वे कोई महापुरुष होंगे।"

दोहा— मोहि दर्शन देने आयेउ, एक स्वर्ण थालकर लीन्ह।
बहुत रत्न मुद्रा भरी, स्वयं द्वार चलि दीन्ह॥1॥

कृपा कर मुझे दर्शन देने पधारे हैं, माता बड़े थाल में स्वर्ण का अपने हाथ में ले उसमें और अधिक रत्न मुद्राएँ रखकर स्वयं द्वार पर आयीं।

दोहा— भिक्षुक ने तब मातु को, माता ने योगिराज।
एक साथ मस्तक झुका, दोनों का सिरताज॥2॥

भिखारी ने माता को और माता ने उस योगीराज को एक साथ ही मस्तक झुकाया।

चौ०— बाबा! लो स्वयं मैं आई। नहीं मैंने कछू देर लगाई॥
मैं तो कर्म व्यस्त होइ जाई। याते दासी दई पठाई॥

बाबा! लो मैं स्वयं मही आ गई, बिलकुल देर नहीं की, कार्य व्यस्त होने के कारण मैंने दासी को भेज दिया था।

चौ०— अब तुम मोहि क्षमा कर देहीं। अनुग्रहीत कर भिक्षा लेहीं॥
थाल बढ़ाया मैया आगे। बोले भिाक्षुक अति अनुरागे॥

अब आप मुझे क्षमा करो, यह भिक्षा ग्रहण करके मुझे अनुग्रहीत करो, मैया ने भिक्षा का थाल आगे बढ़ाया तो भिाक्षुक अति अनुराग से कहने लगे।

चौ०— मैया तेरी चरण रज मोकूँ। वैसे ही पूज्य बताऊँ मैं तोकूँ॥
मम आराध्य बनी तू माता। ये धन दौलत मोय न भाता॥

वैसे तो मैया तुम्हारी चरण रज भी मेरे लिये पूज्य है, तुम मेरे आराध्य की माँ बनी हो, यह धन दौलत मुझे नहीं सुहाती।

चौ०— इन पत्थर ले क्या कर पांही। जहाँ रहू अस पर्वत तांहीं॥
ऐहि तपसी अजु द्वारहिं आया। जो तैने मैया गोद खिलाया॥

यह वनवासी अवधूत इन पत्थरों को लेकर क्या करेगा, मैं जहाँ रहता हूँ वह पर्वत ऐसे ही पत्थरों का है, वहीं से उतरकर यह तपस्वी आज तुम्हारे द्वार पर जो तुम्हारी गोद में खेल रहा है।

छन्द— मैं जोगी कैलाशी वासी, आयो तेरो देखन लाला।
वेदशास्त्र श्रुति सार सबन को, जग को है उजियाला॥
श्याम सुन्दर के दर्शन को मैं, आय्या तेरे नेरे।
लाला दर्शन की भिक्षा दे, मैं चरण छू रहा तेरे॥

मैं कैलाशी वासी योगी तुम्हारे लाला को देखने आया हूँ जो वेद शास्त्र श्रुति सबका सार और जग का उजाला है। उसी श्याम सुन्दर के दर्शन हेतु तुम्हारे पास आया हूँ अपने लाल के दर्शन की मुझे भिक्षा दो, मैं तुम्हारे चरण छूता हूँ।

दोहा—असमंजस होइ मां कहा, तुम्हारा भयंकर वेष।
इसे देख मैं ही डरी, कन्हैया डरे विशेष॥

माँ बड़े असमंजस में पड़कर बोली, "भगवन! आपके इस भयंकर वेष को देखकर तो मैं ही डर रही हूँ, इसे देख कन्हैया डर जायेगा।"

मैया- सकल अंग में सर्प लपेटे, गल मुण्डन की माला।
चिताभस्म को वेष भयंकर, डरपैगो मेरो लाला॥
योगी- पालय, सृजय, हरइ सब जग को, मेरो हू रखवाला।
सुन्दरि सूरति नयन निहारूँ, मैं चाखन को प्रतिपाला॥
मैया—हमारे तो यह एक ही, शिशु बड़े दिन में देखि॥
उर पैगो कुछु है गयो तो, हमकूँ दुःख विशेष॥

हमारे तो यह एक ही बच्चा है जो बहुत दिन में जाके देख्यो है, डर गया, उसे कुछ हो गया तो हमको विशेष दुःख होगा।

चौ०—क्षमा करो योगी अब मोकूँ। दूसरी वस्तु चहौ दऊँ तोकूँ॥
वात्सल्य प्रेम माता लखि कहेऊ। दूसर वस्तु मुझे नहीं चहेऊ॥

आप मुझे क्षमा करें और जो भी दूसरी वस्तु चाहें आप ले लें। माता के वात्सल्य प्रेम को देखकर शिवजी हँस कर बोले—"मुझे दूसरी वस्तु तो कोई चाहिये ही नहीं, तपस्वी को चाहिये ही क्या?

योगी- योग गुरु आदेश यही, मैं दर्शन करके जाउँ॥
जो न करावै दर्शन मैया, धूनी यहीं रमाउँ॥

योग गुरू का यही आदेश है, मैं लाला के दर्शन करके ही जाऊँगा, हिमालय पर तपस्या न की आपके द्वार पर ही सही, मैं तो बिना आपके पुत्र के दर्शन किये यहाँ से हटता नहीं। यहीं धूनि रमाउँगा।

चौ०—इतना मैया तुम्हहिं जताऊँ। लाल डरैनहिं तुम्हें बताऊँ॥
निश्चिंत सर्वथा अस मम बाता। मेरी दृष्टि से अमंगल जाता॥

हाँ इतना मैं मैया तुमको पहले ही जताये देता हूँ कि आपका पुत्र मुझे देख कर डरेगा नहीं आप इस बात से सर्वथा निश्चिंत हो जावें, मेरी दृष्टि पड़ने से उसके समस्त अमंगल नष्ट हो जायेंगे।

चौ०—योगिराज जब अस हठ कीन्हीं। बच्चा लेन मातु चलि दीन्हीं॥

साधु हठ पर ही उतारू हो गया यह देखकर और अन्तिम वचन सुनकर माता अपने बच्चे को लेने चल दीं।

ऐसे अक्खड़ सेवक जब द्वार पर धरना ही देने पर उतारूँ हो जावें तो आराध्य भी क्या करे। उसे आना ही पड़ेगा वह आये बिना चाहे तो भी नहीं रह सकता। संसार तो क्या ईश्वर भी झुक सकता है दृढ़ता चाहिये, अपनी टेक पर बलि हो जाने का साहस चाहिये।

"रोय परे नटखट वनवारी, दिखरावत अपनी लीला।
प्रेम भाव से भरे नयन, मेरे शंकर हैं सुख शीला॥"

माँ ने जाकर देखा कि प्रभु रो रहे हैं, तुरंत गोद में लेकर हाँ-हाँ नहीं-नहीं कहकर चुप करना चाहा, किंतु जब वह मधुर ब्रह्म भला बोलने लगे तो विधि अथवा निषेध दोनों से परे होने पर वह चुप कैसे हो सकता है? एक वृद्ध गोपी ने लाला के उँगुली के इशारे से अनुमान लगाया और कहा कि हे नंदरानी तू तो भोली भाली है शिशुओ की भाषा क्या जानें, यह योगी के पास जाने को रो रहा है।

चौ०—कज्जल बिन्दु भाल लगाहीं। लाला गोदी में ले आहीं॥
दूरहिं से प्रणाम शिव कीन्हा। विभोर भये छवि पर लवलीन्हा॥

माता भाल पर कज्जल बिन्दु लगाकर अंचल से ढ़ककर डरते-डरते ही अपने कन्हैया को गोदी में लेकर आ गयीं। दूर से ही उस आनन्दघन को देखकर शंकरजी ने प्रणाम किया, और विभोर हो गये। उस नील कमल कान्ति अंग वाले शिशु की मनोहर छवि पर।

दोहा— डरा नहीं सचमुच शिशु, देखा शंकर ओर।
चुप हो किलकारी भरी, भक्तन को चितचोर॥

शिशु सचमुच ही डरा नहीं। वह तो कुतूहल से शंकरजी की ओर देख-देखकर चुप होकर किलकारियाँ भरने लगा। क्योंकि वह तो भक्तों के चित्त को चुराने वाला नटखट चोर है। शंकर कहने लगे मन ही मन, "मेरे नटखट लीलाधर तुम सचमुच दयामय हो, बालक को अपनी जटाओं से झाड़ा, चरणों को हाथ में लिया और विभूति देकर माता को विश्वास दिलाया कि अब बालक भी नहीं रोयेगा। प्रभु की उस अलौकिक छवि के माधुर्य में डूबे उसी का ध्यान करते हुए शंकरजी कैलाश को लौटे। बालक अच्छा हो गया। माता ने वही विभूति बड़े यत्न से रखी।

(मानसमणि दिसम्बर 1967 से)



(34) वृन्दावन में

दूसरी बार वृन्दावन में कैलाशनाथ पधारे। रासेश्वर अपनी आल्हादिनी शक्ति के साथ शरद पूर्णिमा की उज्ज्वी निशा में कालिन्दी के स्तुत पुलिन पर मोहिनी मुरली के नाद से समस्त गोपिओं को आकर्षित करके रासक्रीड़ा कर रहे थे। विश्व में अपने उस मधुरिमामय नृत्य से मादकता बिखेर रहे थे। प्रकृति का अणु-अणु उस माधुरी में मस्त होकर रास के ताल पर नृत्य कर रहा था। अब तक वैसे ही नाँचता है।

भोले बाबा के मन में भी गोपियों की भाँति इस माधुर्य रस का आस्वादन करने की इच्छा हुई, इस भाव में प्रवेश करते ही यह सत्यतत्व तो सम्मुख आ ही जाता है कि एकमात्र श्री कृष्ण ही पुरुष हैं, शेष सब स्त्रियाँ। पराधीन होने के कारण जीव मात्र ही स्त्री है। पुरुष तो स्वतंत्र श्री वृन्दावन चन्द्र ही हैं।

शंकरजी ने सोचा "मधुर भावों में प्रवेश के लिये तो स्त्रीत्व अनिवार्य है। पुंसत्व की अपने में जिसे तनिक भी भावना है वह उस दिव्य रस का अभी अधिकारी ही नहीं। रास का दर्शन तो स्त्री बनकर ही किया जा सकता है, पुरुष के लिये वृन्दावन चन्द्र का रास नहीं, उसके लिये तो मेरा ताण्डव है। अतः झटपट आपने स्त्री रूप धारण कर लिया।

एक गोपी के रूप में विश्वनाथ रास मंडल में पहुँच तो गये किंतु चोरी पकड़ी गई। रासेश्वरी वृषभानुनंदिनी ने आपका हाथ पकड़कर मदनमोहन के सम्मुख करते हुए मुस्करा कर कहा, "रासिकेश, देखो तुम्हारी छवि पर मुग्ध होकर ये गोपीश्वर भगवान इस वेष में पधारे हैं।" लज्जा से शंकर जी ने सिर झुका लिया। श्री श्यामसुन्दर हँसकर बोले, "सचमुच आप अब से गोपीश्वर हुए। इस आडम्बर को दूर कीजिये, गोपियों ने उनकी पूजा की। तब से वे गोपेश्वर के रूप में श्रीवृन्दावन धाम में विराजमान हैं। (मानसमणि दिसम्बर 1967 से)



(35) गोवर्धन

श्री कृष्णजी के द्वारा गोवर्धन धारण के समय इन्द्र की प्रलयंकारी वृष्टि का जल पी जाने के लिये भगवान श्री कृष्णचन्द्रजी ने चक्र को आज्ञा दी। सुदर्शन चक्र पर्वत के ऊपर स्थित होकर उस अभूतपूर्ण वृष्टि का शोषण करने लगा। इतने जल के शोषण से चक्र को अपनी शक्ति का घमण्ड हो गया। घमण्ड भगवान को कब इष्ट था। चक्र की शोषण शक्ति से जल बाहर जाने लगा। गर्व चूर्ण हो गया। शंकरजी को प्रभु की प्रेरणा हुई। चक्र के ऊपर खड़े होकर आपने अपनी जटायें खोल दीं, समस्त सृष्टि का जल उन जटाओं में जाकर तृतीय नेत्र की ज्वाला से सूख गया। वृष्टि निवृत्ति होने पर श्री कृष्णचन्द्र जी ने गोवर्धन पर ही उन चक्रेश्वर शिवजी की स्थापना की। अपभ्रंश होकर गोवर्धन में यह शिवलिंग अब 'चकलेश्वर' कहा जाता है। *(मानसमणि दिसम्बर 1967 से)*

श्री त्रिपुरारी शिव भगवान का तबेला

कवित्त–'वार-वार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि,
हुँकरत बाघ विरूझानो रस रेला में ।

भूधर भनत ताकी बास पाय शोर करि,
कुत्ता कोतवाल को बगानों बग मेला में॥
फुँकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों,
जंग करिबो को झुक्यो मोर हृद हेला में।
आपस में पारषद कहत पुकार कछु,
रारि सी मची है त्रिपुरारी के तबेला में॥
(जै श्री शिव)



(36) श्रीकृष्ण की शिवोपासना

श्लोक— ये ये भक्त जना निजेष्ट शरणाः श्रेष्ठं सदोपासते,
तेज लपन्ति वद्रमृषान्य दैवतमिदं मन्यामहे नोवयम्।
अस्माकंतु शशांक शेखरपद द्वन्द्वै कनिष्ठात्मनां,
सर्वखल्दिभाम्बिकेश्वरमयं चित्ते जगद्भासते॥"

"जो जो भक्त अपने इष्ट की शरण होकर उनकी उपासना करते हैं वो तो श्रेष्ठ हैं, पर वे जो दूसरे देवगणों को मिथ्या आक्षेप करते हैं, इस बात को हम नहीं मानते, क्योंकि श्री भगवान चन्द्रशेखर के युगल चरणों में एकमात्र निष्ठा रखने वाले हमारे चित्त में तो समस्त संसार ही उमा-महेश्वरमय प्रतीत होता है।"

जो ग्रहस्थ हैं उसे अपनी अर्धांगिनी का ध्यान रखना ही होगा। यदि वह पत्नी की इच्छाओं की उपेक्षा करता है, उस पर ध्यान नहीं देता तो अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होता है, इसका अर्थ स्त्री का दास होना नहीं है, इसका अर्थ है स्त्री की उचित माँगों पर ध्यान रखना। जैसे पुरुष चाहता है कि स्त्री मेरी सुविधा का ध्यान रखे, वैसे ही पुरुष को स्त्री की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिए।

श्री रुक्मिणी के कहने पर भगवान कृष्णचन्द्र पुत्र प्राप्ति के लिये कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान शंकर की आराधना करने लगे, आषुतोष प्रभु प्रसन्न हुए, अभीष्ट वरदान प्राप्त हुआ। यह दीक्षाहीन तपस्या अपने उद्देश्य तक ही सीमित रही, अच्युत लौट आये। रुक्मिणी जी को प्रद्युम्न जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई।

हृदय का स्वाभाविक धर्म है कि अपने समता के सहयोगियों को अपने से अधिक किसी भी ओर सफल होते देख ईर्ष्या करता है। यों तो बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबमें यह भावना होती है, पर स्त्रियों में सपत्नी के प्रति बहुत अधिक है। सौत की वृद्धि उनके लिये असह्य हुआ करती है। वे स्वयं उससे बढ़ने के लिये प्राण तक देने को तत्पर हो जाती हैं।

स्वाभाविक ही था कि रुक्मिणी जी के पुत्र होने पर जामवन्ती जी की प्रथम की पुत्रेच्छा प्रबल हो गयी। भगवान श्रीकृष्ण जी के चरणों में प्रणाम करके एकान्त में उन्होंने प्रार्थना की, "जैसे आपने शंकरजी को प्रसन्न करके बड़ी महारानी को पुत्र प्रदान किया है, वैसे ही सुन्दर और गुणवान पुत्र की मुझे भी कामना है मेरी भी इच्छा आपको पूर्ण करनी चाहिए।" केशव ने उनकी इच्छा पूर्ण करने का वचन दे दिया।

"पुत्र की इच्छा तो सभी रानियों को होगी। रुक्मिणी को पुत्र उत्पन्न होने से सभी मुझसे प्रार्थना करेंगी। आज जामवन्ती ने कहा तो कल कोई और कहेगी। सबको कहने का अधिकर है। एक-एक की प्रार्थना पर बार-बार तपस्या करने ज़ाना ठीक नहीं, बिना कहे हुए ही सबकी इच्छा पूर्ण करना चाहिए।" यह सब सोचकर गोविन्द कैलाश की ओन चल दिये।

पहली बार ही गुरु दीक्षा न लेने का अभाव खटक चुका था। इस बार महर्षि धौम्य के बड़े भाई उपमन्यु जी के आश्रम में पहुँचे-

"भगवान श्रीकृष्ण पुत्र-प्राप्ति के लिये तप करने को तपोवन में जाते हैं। वहाँ मुनि उपमन्यु के आश्रम में जब आते हैं तो धौम्य के ज्येष्ठ बन्धु उपमन्यु का दर्शन होता है, तब मुनि को प्रणाम करके श्रीकृष्ण तीन प्रदक्षिणा करते हैं। उन मुनिवर्य के दर्शन से ही श्रीकृष्ण के कायज और कर्मज मल नष्ट हो जाने पर मुनि उन्हें भस्मोद्धूलन कराते हैं, फिर उपमन्यु मुनि से श्रीकृष्ण शिव मंत्रोपदेश ग्रहण कर एक वर्ष तपश्चर्या करते हैं इस तपोऽनुष्ठान से प्रसन्न होकर महेश्वर श्रीकृष्ण को वर प्रदान करते हैं, पुत्र प्राप्ति का जिससे जाम्बवती के साम्ब नाम के पुत्र पैदा होते हैं। पाशुपत अस्त्र प्रदान करते हैं इत्यादि।

जिन ईश के कर्मों की गति को तत्व से हिरण्यगर्भादि देव और महर्षि भी नहीं जान सकते और जिनके स्थान को सूक्ष्मदर्शी आदित्यादि भी नहीं पा सकते, वह सत्पुरुषों द्वारा प्राप्य भगवान शिव नर-मात्र से कैसे जाने जा सकते हैं? उन असुरहन्ता भगवान् के गुण व महिमा अपरम्पार है। शिव के गुणों का वर्णन स्वयं वासुदेव करने लगे—पहले मैंने अपने पुत्र साम्ब के लिये जो तप किया था-पुत्रार्थिनी जाम्बवती मेरे पास आकर दुःखित होकर कहने लगी कि आपने जैसे द्वादश वार्षिकी तपश्चर्या से शरीर पोषण के द्वारा पशुपति का आराधन करके देवी रुक्मिणी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया, वैसे ही हे मधुसूदन! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये।

फिर मैं ब्राह्मणों से स्वस्ति वचन कराकर तपश्चर्यार्थ हिमालय पर गया, वहाँ व्याघ्रपादमुनि के पुत्र उपमन्यु के दिव्य आश्रम में जाकर मस्तक नवाकर मुनि का वंदन कर शिवमंत्र की दीक्षा ले तप करके महेश को प्रसन्न कर पुत्र प्राप्ति का वर पाया। भगवान श्रीकृष्ण परम शिव भक्त और शिव महिमा के जानने वाले हैं, यह कूर्म पुराणों में भी लिखा है—

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव न संशयः।
को ह्यन्यस्तत्त्वतोरुद्रं वेन्तितं परमेश्वरम्॥
नार्जुनेन समः शम्भोर्भन्तो भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवती सुतुं कृष्णं वा देवकी सुतम्॥

'कृष्णद्वेपायन'-व्यास मुनि साक्षात् विष्णु रूप ही हैं इसमें संशय नहीं। व्यास मुनि को छोड़कर परमेश्वर रुद्र को और कौन तत्व से जान सकता है? सत्यवती सुतव्यास और देवकी सुत श्रीकृष्ण-इन दोनों के सिवा अर्जुन के समान कोई शिवभक्त भूतकाल में हुआ नहीं, और भविष्य में होगा भी नहीं। इन वाक्यों से श्रीकृष्ण का शिवभक्तत्व स्पष्ट सिद्ध होता है।

महाभारत सौप्तिकपर्व में स्वयं शिव ने भी कहा है—

'अहं यथावदाराध्यः कृष्णेनाक्लिष्ट कर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो ममन विद्यते॥'

अति क्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण मेरा यथावत आराधना करते हैं, इसलिये कृष्ण से बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं है। वह शिव का वचन श्रीकृष्ण की शिव भक्ति के परमोत्कर्ष को दिखलाता है।

महाशिवपुराण-ज्ञान संहिता (अ० 61 से 71) में इस बात का वर्णन मिलता है कि बटुकाचल—सुदामापुरी के पास वरडा पर्वत पर सात महीने तक श्रीकृष्ण ने तप किया और वे महादेव को नित्य सहस्रनाम से विल्वपत्र चढ़ाते थे। उनके तपसे तुष्ट होकर महादेव ने उन्हें कई वर दिये, जिनमें पुत्रप्राप्ति का वर मुख्य था। श्रीकृष्ण जिस शिवलिंग में शिवार्चन करते थे वह लिंग विल्वेश्वर नाम से अद्यापि प्रसिद्ध है और जिस नदी के तीर पर उनका मंदिर है उस नदी का नाम भी 'विल्वगंगा' है।

आनुशासनिक पर्व अध्याय 15 में कहते हैं—

श्लोक—धर्मे दृढ़त्वं युधि शत्रुघातं यशस्त थाऽग्रयं परमं बलंच।
योगप्रियत्वं तव सन्निकर्ष वृणे सुतानां चशतं शतानि॥
द्विजेष्व कोपं पितृतः प्रसादं शतं सुतानां परमं च भोगम्।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं शम प्राप्तिं प्रवणे चापि दाश्यम्॥

धर्म से मेरी दृढ़ता रहे, युद्ध में शत्रुघात, जगत में उत्तम यश, परम बल, योग बल, सर्वप्रियता, आपका—शिवका सानिध्यदस हजार पुत्र, ब्राह्मणों में कोपाभाव, पिता की प्रसन्नता, सैकड़ों पुत्र, उत्कृष्ट वैभव योग, कुल में प्रीति, माता का प्रसाद = अनुग्रह, शम-प्राप्ति = शान्तिलाभ और दक्षता = कार्य कुशलता—ये सोलह वर कृष्ण ने माँगे और महादेव तथा पार्वती ने प्रसन्न होकर ये सभी वर श्रीकृष्ण भगवान को दिये।

श्रीकृष्ण से सुदामा कैवल्य मुक्ति की प्रार्थना करते हैं तब श्रीकृष्ण स्कन्द

पुराणान्तरगत सूत संहितायज्ञविभव खंड के 25वें अध्याय में सत्यसन्ध के प्रति स्वयं विष्णु भगवान ने जो वचन कहे हैं वहीं कहते हैं—संसार मग्न जनों को मैं संसार से साक्षात मुक्ति नहीं दे सकता, मैं और ब्रह्मादि अन्य सभी देव त्रिशूलधारी महादेव के प्रसाद से ही शिवाज्ञा-सम्पादन के द्वारा संसार मोचक हो सकते हैं इसमें संशय नहीं है। सो हे अनघ-निष्पाप! नाम से और अर्थ से महेश्वर ही महादेव हैं, जो महादेव को छोड़कर मेरा भजन श्रद्धा से करते हैं उनका कोटि जन्म होने पर भी संसार से कदापि मोक्ष नहीं होगा क्योंकि कैवल्य मुक्ति देने वाले केवल महादेव हैं।

इस प्रकार श्रीमुख से स्पष्ट निर्देश करते हुए श्रीकृष्ण ने सुदामा को कैवल्य मुक्ति के लिये शिवभक्ति रूप उपाय का उपदेश दिया और सुदामा ने श्री केदारेश्वर के आराधन के द्वारा स्वात्मसाक्षात्कार रूप कैवल्य मुक्ति प्राप्त की और श्रीकृष्ण ने शिव महिमा का स्वमुख से वर्णन किया, अतः श्रीकाृष्ण परम शिव-भक्त थे यह सिद्ध होता है, अब सूक्ष्म विचार से देखा जाय तो "यो मद्भक्तः स एव सः" इस वाक्य समन्वय से श्रीकृष्ण स्वयं भी शिवरूप ठहरते हैं वस्तुतः दोनों का अभेद भाव पारिणत होता है। शंकर नाम—

सवैया—"शंकरनाम सुधासम है, भवभूति भरैंभव भावन शंकर।
शंकर हेतु तजैं यति धामहुँ शंकर पावत मार अशंकर॥
शंकर ही जन शंकर है पुनि काल भयंकर लोकव शंकर।
शंकर को सब देव भजे सरयू कवि किंकर के शिवशंकर॥"

समस्त रानियों ने एक के बदले दस-दस पुत्र पाये। द्वारिका श्रीकृष परिवार से ही भर गयी। ये सभी पुत्र रूप और गुण में अपने पिता के ही समान थे।

(मानसमणि जनवरी 68 से)

❃ श्री शंकर की सच्ची प्रीती ❃

कवित्त—"बाहर और भीतर कलंक को रहै न नाम,
भारीहू ते भारी पाप रासि आपुही जरि जाय।
धर्म र।ज दूरि हूते ठाड़े होकर करैं प्रणाम,
देखत ही काल हू की हुलिया बिगरि जाय॥
दान और धर्म के बिना ही जप तप ध्यान,
धारण के 'विष्णु' निज जन्म सुधरि जाय।
तीनों ताप पास में न आवै कहूँ शंकर की,
जो पै साँची प्रीति हिय माँहि घर करि जाय॥
(जै शिव शंकर)



(37) किरात शिव और अर्जुन

श्लोक—"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥"
अनन्याश्चिन्त यन्तो मांये जना पर्युपासते।
तेलां नित्याभि युक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥

"मैं (परमेश्वर) अपने साधु-संतों की रक्षा के लिये दुष्टों का नाश करने के लिये और धर्म की रक्षा के लिये प्रत्येक युग में अवतार धारण करता हूँ॥"

"जो लोग अनन्यता से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं। उन अपने में नित्ययुक्त लोगों का पोषण तथा रक्षा मैं स्वयं करता हूँ।" *(श्रीमद्‌भगवतगीता)*

धर्मराज प्रभृति पाण्डव पाँचाली के साथ दुर्योधन से द्यूत में हारकर वनवास की प्रतिज्ञा के अनुसार जंगलों में भटक रहे थे। निश्चित ही था कि वनवास समाप्त होने पर दुर्योधन से युद्ध करना होगा। वह दुष्ट स्वेच्छा से इनका भाग नहीं लौटावेगा। अत: भावी महासमर के लिये आवश्यक सुविधायें अभी से कर लेने में व्यस्त भी थे।

घूमते-घामते श्री व्यासजी एक दिन पाण्डवों के समीप वन में पधारे। जो हो सकता था पाण्डवों ने स्वागत सत्कार किया। अपनी कष्टकथा का वर्णन किया। भगवान पर विश्वास रखने को कहकर व्यासजी ने उन्हें संतोष दिया, फिर बोले—"महासमर तो निश्चित ही है। कौरवों की ओर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा ही इन सबका सामना करना होगा। कुशल होने पर भी अर्जुन अभी समर्थ नहीं। दिव्यास्त्रों पर कौशल काम नहीं देता। अत: इन्हें इन्द्र तथा शंकर जी को प्रसन्न करके दिव्यास्त्र प्राप्त करने चाहिये। इनके लिये हिमालय पर जाकर कुछ काल पर्यन्त तपस्या करना होगा।" व्यास अर्जुन को विधियाँ बतलाकर पाण्डवों से विदा हुए।

दोहा—धर्मराज अज्ञा ले पारथ, तेहि दीक्षा वादरायण।
सीख उपासन पद्धति, चले आराधन पारायण॥

संकट के समय या कार्यसिद्धि के लिये सब कुछ सहना पड़ता है। बिना त्याग किये उत्तम फल की आशा करना मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अपने प्यारे बन्धु को कौन एकाकी पर्वतों पर तपस्या करने को भेजना चाहेगा। पर धर्मराज ने धैर्य से काम लिया, अर्जुन भाइयों को धैर्य देकर, द्रोपदी को आश्वासित करके वादरायण से इन्द्र तथा शिव का मन्त्र की दीक्षा ले और उपासना पद्धति सीख कर हिमालय पर आराधन अर्थात् तपस्या करने चले। बड़े भाई युधिष्ठिर और भीम ने आशीर्वाद दिया, "तुम्हारा उद्देश्य सफल हो" छोटे भाई नकुल और सहदेव ने ईश्वर

से सफलता की प्रार्थना की। कृष्णा ने मन ही मन अपने आराध्य श्रीकृष्णजी का स्मरण किया। युधिष्ठिर वहीं वन में अर्जुन के लौटने तक प्रतीक्षा करने के लिये रुके रहे।

चौ०—शिखर हिमालय पारथ जाकर। इन्द्र आराधन में भये तत्पर॥
प्रसन्न भये इन्द्र थोड़ेहि काला। मैं तो प्रसन्न सर्वदा लाला॥

हिमालय की एक सुन्दर उपत्यका पर अर्जुन इन्द्र की आराधना करने लगे। इन्द्रदेव थोड़े ही समय में प्रसन्न हो गये, प्रकट होकर उन्होंने कहा, "पुत्र! मेरे लाल! मैं तो सर्वदा ही तुमसे प्रसन्न हूँ।"

चौ०—सभी स्वर्ग दिव्य अस्त्र तुम्हारे। शिवहिं प्रसन्न प्रथम कर प्यारे॥
प्राप्त करो दिव्यास्त्र ते मांही। याद करो तब मैं आ जाहीं॥

स्वर्ग के समस्त दिव्यास्त्र तुम्हारे ही हैं, पर पहले शंकरजी को प्रसन्न करो कैलाश पर जाकर तपस्या करके, उनसे दिव्यास्त्रों को प्राप्त करो, उनके प्रसन्न होने के बाद तुम्हारे याद करते ही मैं आ जाऊगा।

चौ०—आज्ञा शिरोधार्यहिं लाहीं। इन्द्र पुनः अमरावति जाहीं॥
कैलाश शिखर पारथ चलि जाहीं। आराधन शिव तुष्टि चाहीं॥

अर्जुन ने इन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य की, इन्द्र पुनः अमरावती को चले गये। अर्जुन कैलाश के शिखर पर जाकर भगवान् शंकर जी की तुष्टि के लिये घोर आराधना अर्थात् तपस्या करने लगे।

चौ०—निमग्न हते तपस्या पारथ। असुर वराह आयो संहारथ॥
भान नहीं अर्जुन निज देहा। रक्षा भार दूसरे तेहा॥

अर्जुन तपस्या में निमग्न थे। उसी समय एक असुर वाराह का रूप रखकर उन्हें मारने को आया। अर्जुन को अपने शरीर का भी भान न था, पर उनकी रक्षा का भार तो इस समय किसी दूसरे पर था।

"भगवान की प्रतिज्ञा है कि जो अनन्य चित्त से मेरा चिन्तन करता है, उसका पालन तथा उसकी आपत्तियों से रक्षा मैं करता हूँ। यह कैसे सम्भव था कि अर्जुन तो शंकर के ध्यान में मग्न रहे और दैत्य उसे मार जावें। शंकर जी ऐसा कभी देख ही नहीं सकते। अर्जुन सचेत होने पर युद्ध में किसी कारणवश विजित हो सकते हैं, पर प्रभु के ध्यान के समय विश्व की कोई भी शक्ति उसका स्पर्श तक नहीं कर सकती। प्रेमवश भगवान स्वयं चाहें संकट उठा लें, पर भक्त का कष्ट उन्हें सहन नहीं। विश्व एक ओर और प्रेमी भक्त दूसरी ओर। प्रेममय प्रभु के लिये भक्त के सम्मुख विश्व नगण्य है।

छन्द—ध्यानस्थ अर्जुन की तरफ, वाराह असुर आवहीं।
वधार्थ जाते लख पिनाक पाणि, पिनाक उठावहीं॥
बाघम्बर गिरा कहीं, कहीं नर मुण्ड माल गिरावहीं।
त्रिशूल अरु डमरू घोर रह, सुधि उनहिं की विसरावहीं॥

ध्यानस्थ अर्जुन की ओर वाराह वेषधारी असुर को वधार्थ जाते देख पिनाक पाणि ने पिनाक उठाया। कहीं बाघम्बर गिरा, कहीं नरमुण्डों की माला, त्रिशूल और डमरू सब धरे रह गये, उनकी सुधि नहीं रही।

दोहा—चाह रहा वाहन स्वयं, प्रभु जायँ पीठ पर बैठ।
भक्त आपत्ति ध्यान ने, सुधि नहीं रही मन पैठ॥

पर वाहन स्वयं चाहता था, कि प्रभु पीठ पर बैठ जावें। भक्त आपत्ति ध्यान ने बेसुधि बना दिया, मन में यह ध्यान ही नहीं आया।

चौ०—दौड़े नंगे पैदल तांही। वीरभद्र ले पहुँचे वाहीं॥
थोड़ी दूर वराहहिं पारथ। तेहि कीन्हीं घुरघुराहट॥

प्रभु शिव नंगे पैरों पैदल ही दौड़ पड़े, केवल वीरभद्र साथ हो लिये थे। वाराह थोड़ी सी दूर अर्जुन से रह गया था तब वहाँ उसने जोर से घुरघुराहट की।

चौ०—भंग हुआ अर्जुन का ध्याना। पड़े तरकसहिं निकाला बाना॥
गाण्डीवहिं तेहि तुरत चढ़ाया। छोड़ा वान पार्थ धर धाया॥

उसकी घुरघुराहट से अर्जुन का भी ध्यान भंग हो गया। अर्जुन ने एक भयंकर वाराह को अपनी ओर आते देख पास में पड़े तरकस से एक बाण निकाल कर गाण्डीव पर चढ़ाया, और गाण्डीव पर धरते ही बाण छोड़ दिया।

चौ०—उधर शिवहिं निज वाणहिं दागा। बाराहहि द्वय एक संग लागा॥
असुर समाप्त तुरत है गयऊ। पारथ वाराह देखन गयऊ॥

वह वाराह रूपधारी असुर वहीं समाप्त हो गया। क्योंकि इधर से अर्जुन का वाण लगा, उधर से शिवजी का वाण लगा दोनों वाण वाराह के एक साथ लगे। तपस्या की स्थिति में होने पर भी एक विशाल वाराह को अपने वाण से मरा देख अर्जुन उठकर उसे देखने गये। एक शिकारी कीं भाँति मेरे शिकार को अच्छी प्रकार देखकर संतुष्ट होना ही उद्देश्य था, कोई कैसा भी क्यों न हो जावे, उसकी अपनी प्रकृति तो जाती नहीं।

चौ०—भक्त से कौतुक शंकर करेऊ। तुरत किरात वेष धरि लयऊ॥
वीरभद्र भी किरात बनाया। वो भी पास बाराह पठाया॥

शंकरजी को भी भक्त कौतुक करने की सूझी, वे झटपट किरात वेष में हो गये, उन्होंने वीरभद्र को भी किरात बनाकर वाराह के पास भेज दिया।

दोहा— वाण निकालन अर्जुनहि, ललकारा एक किरात।
छूमत स्वामी शिकार को, तू कौन बता यहि बात॥

अर्जुन वाराह से अपना बाण निकालने ही जा रहे थे कि सहसा एक किरात ने उन्हें ललकारा "कौन है बताओ, मेरे स्वामी के शिकार को छूने वाला? इसे मत छू।"

चौ०—चौंके अर्जुन देखा ताहीं। एक किरात निकट आइ जाहीं॥
कहने लगा तुम क्षत्रियधारी। शिकार दूसरहि चोरी विचारी॥

अर्जुन चौंककर देखने लगे। किरात ने निकट आकर "वेष तो तुमने क्षत्रियों का बना रखा है पर दूसरे के शिकार की चोरी करने का विचार किया है।"

चौ०—चहो शिकार करौ जंगल महँ। बन पशु बहु घूमत रहे तहँ॥
छू नहिं सक मम स्वामी शिकारा। तेहि धृष्टता पार्थ क्रुध धारा॥

शिकार चाहिये तो जंगल में से मार लो। वन में बहुत से पशु घूमते फिरते हैं, मेरे स्वामी के शिकार को तुम नहीं छू सकते। अर्जुन को इस किरात की धृष्टता पर क्रोध आ गया।

चौ०—तू यदि सीधे माँगता मोही। यह सूअर देता मैं तोही॥
अब चाहे काग श्रृगाल ही खावें। देख मम बाण लगा है तावें॥

वे कहाँ पराक्रमी क्षत्रिय और यह तुच्छ किरात उन्हें चोर बताता है, डाँटते हुए बोले, "तू सीधे माँगता तब तो मैं यह सूअर तुझे दे भी देता, मुझे इसका करना ही क्या है, पर अब तो इसे चाहे कौवे श्रृगाल ही खा जावें तुझे नहीं दूँगा, अन्धा हो गया है, देखता नहीं कि मेरे नाम से अंकित बाण इसके मस्तक में धँसा हुआ है।

चौ०—झुककर बाण किरातहिं चीन्हा। नियम विरुद्ध अपराधहि कीन्हा॥
म्हारे शिकार चलायिउ बाना। चोर नहीं तुम डाकूँ जाना॥

किरात ने अर्जुनका वाण झुककर देखा, वह बोला, "तुमने हमारे शिकार पर बाण चलाकर शिकार के नियम के विरुद्ध अपराध किया है। तुम चोर तो नहीं, पर डाकूँ अवश्य हो, ये हमने जान लिया।

दोहा— देखो इस वाराह के, पीछे लगा हमारा बान।
बहु दूरहिं पीछा कर रहे, देखा प्रथमहिं जंगल आन॥

"देखो! इस वाराह के पीछे हमारा वाण लगा है, हम लोग बड़ी दूर से इसका पीछा कर रहे हैं, हमने इसे जंगल में आते पहले देखा है अतः यह हमारा है। हमारे ही बाण से मरा है। अनाधिकार चेष्टा छोड़ दो। अपना बाण ले जाना चाहते हो तो ले जा सकते हो, शिकार पर तो हमारा स्वत्व है।"

चौ०—क्रोध और भी अर्जुन बाढ़ा। असभ्य जंगली जा क्यों ठाड़ा॥
धृष्टता का यदि दण्डहि चाहत। मरा मम बाण अपना बतावत॥

अर्जुन को और भी क्रोध बढ़ता गया, "जंगली असम्भ जाता है क्यों खड़ा है? या अपनी धृष्टता का दण्ड चाहता है। मेरे बाण से मरे पशु को अपना बताता है। जंगली पशुओं पर भी तुम्हारी मुद्रा लगी है, पहले देखने से क्या हुआ। पशु तो जिसने मारा उसी का होगा। भाग जा यहाँ से, मैं तुझे पशु तो देना दूर रहा तेरा बाण भी नहीं दूँगा।"

चौ०—किरात कहा तुम अस नहिं मानहु। धनुष उठाना हम भी जानहुँ॥
मैं स्वामी से कहने जयेऊ। अब भी समझ ठीक नहीं रहेऊ॥

किरात ने कहा, "तुम ऐसे नहीं मानोगे। सोच विचार लो, धनुष उठाना हमें भी आता है, मैं अपने स्वामी से कहने जा रहा हूँ, अब भी समझ जाओ तो ठीक है वरना भला नहीं होगा।"

चौ०—खीज उठे अर्जुन तेहि बचना। करले जो करना हो रचना॥
स्वामी या सेना तुम लाहीं। मम शिकार लेंनन पाहीं॥

किरात के इन वचनों पर अर्जुन खीज उठे बोले-"तुझे जो करना हो कर ले, स्वामी को या सेना को जिसे भी बुलाकर लाना हो, बुला ले, मैं अपनी शिकार किसी कीमत पर नहीं देने का। किरात लौट गया।

चौ०—वीरभद्र जा शिव से कहेऊ। लेन परीक्षा शिवजी भयेऊ॥
पहुँचे स्वयं किरात वेष धर। धनुष बाण कर में धारण कर॥

वीरभद्र ने जाकर शिवजी को सब हाल सुनाया। समाचार जानकर भक्त के पराक्रम की परीक्षा लेने के लिये स्वयं शिव किरात वेष में धनुष बाण लिये जा पहुँचे।

दोहा—आशंका से युद्ध पारथ उठा लिया गाण्डीव।
गौर वरण लख किरातहिं, अचरज भयो अतीव॥

युद्ध की आशंका से अर्जुन ने त्रोण कस कर गाण्डीव उठा लिया था। गौरवर्ण किरात को देखकर अर्जुन को बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

चौ०—वाद-विवाद प्रथम भयो भारी। दोउ ओर वान चले संहारी॥
अर्जुन अचरज में पड़ गयेऊ। वाण तेहि चमड़ा नहिं विंधेऊ॥

पहले तो बड़ा वाद-विवाद हुआ। फिर दोनों ओर से बाण चलने लगे। अर्जुन आश्चर्य में पड़ गये कि उनके गाण्डीव से छूटे वाण किरात के चमड़े को भी नहीं बींध पाते हैं।

चौ०—इधर किरातहिं वाण चलाहीं। झरना रक्त शरीर बन जाहीं॥
निज प्रभाव शिव कामहिं लयऊ। समाप्त वाण पारथ है गयऊ॥

इधर से किरात के वाणों से अर्जुन का शरीर रक्त का झरना हो गया है। शंकरजी ने अपने प्रभाव रो काम लिया, अर्जुन के दोनों अक्षय त्रोण जिनके बाण कभी समाप्त हो ही नहीं सकते थे रिक्त हो गये।

चौ०—अब कोई दूसर अस्त्र न चीन्हा। प्रहार किरातहिं धनुषहिं कीन्हा॥
किरातन धनु फेंक छीनकर। होन लगा मल्ल युद्ध परस्पर॥

यहाँ कोई दूसरा शस्त्र भी न था। धनुष से ही अर्जुन ने किरात पर प्रहार किया। हँसते हुए किरात ने धनुष भी छीनकर दूर फेंक दिया। अब आपस में दोनों का मल्ल युद्ध होने लगा।

चौ०—मल्ल युद्ध महँ किरातहि भारी। मूर्छित हो गिरि गांण्डिवधारी॥
मूर्छा कछु देर हटि जाहीं। सम्मुख आषुतोषहँ पाही॥

मल्ल युद्ध में भी किरात भारी पड़े तो गाण्डीवधारी अर्जुन मूर्छित होकर गिर पड़े। थोड़ी ही देर नें मूर्छा दूर हुई, अर्जुन ने नेत्र खोलते ही सम्मुख हँसते हुए आषुतोष को खड़ा पाया।

चौ०—अर्जुन चौंके अति मन माहीं। प्रभुही किरात वेष में आहीं॥
हृदय बड़ा व्याकुल है जाहीं। रोते हुए चरण गिर जाहीं॥

अर्जुन अपने मन में अत्यन्त चौंक उठे, अरे! प्रभु ही किरात वेश में थे, हृदय व्याकुल हो गया, रोतु हुए चरणों पर गिर कर पुनः संज्ञा शून्य हो गये, प्रभु ने उन्हें उठाया।

दोहा— बोले अर्जुन सँभलकर, अश्रु भरत जोरि हाथ।
मैं पापी अपराधी, घोर दयामय नाथ॥1॥
दुर्वचन मैंने कहे, त्रिभुवन स्वामी आघात।
सुरमुनि श्रुति स्तुति करैं, चरणों पुष्प चढ़ा हर्षात॥2॥
उसी परम प्रभु को मैंने, बड़ी अधमता कीन्ह।
उन्हीं दयामय परम पै, बाण चलावन लीह॥3॥
दण्ड देउ अस पातकी, ए प्रभु करुना आप।
अधम फेरि नहिं कर सै, कभी ये ऐसा पाप॥4॥

तनिक सँभलकर अर्जुन हाथ जोड़कर अश्रुवृष्टि करते हुए बोले-"नाथ! दयामय! मैं पापी हूँ, मैंने घोर अपराध किया है, त्रिभुवन के स्वामी को मैंने दुर्वचन कहे, उन पर आघात किया, अरे! जिसकी देवता तथा महर्षि श्रुति-वेदवाणी से स्तुति करते हैं, जिनके श्रीचरणों में मृदुल मनोहर कुसुमों की अन्जलि चढ़ाते हैं, उसी परम प्रभु को इस अधम ने दुर्वचन कहे, अधमता की उन्हीं दयामय पर वाण चलाये! प्रभो! इस पातकी को दण्ड दो, ऐसा दण्ड दो जिससे यह अधम फिर कभी ऐसा पाप न कर सके।

दोहा— अभय हस्त सिर पर रखा, प्रभु अर्जुन शान्तहिं कीन्ह।
असुर दुष्ट वध के लिये, मैंने आया वध कर दीन्ह॥5॥

मस्तक पर अपना अभय हस्त रखकर प्रभु ने अर्जुन को शान्त किया, "पार्थ!

दुष्ट असुर तुम्हारे वध के लिये वाराह रूप से आ रहा था, मैंने ही आकर उसका वध कर दिया।

तुम्हारी दृढ़ता की परीक्षा के लिये ही मैंने यह लीला रची थी, यहाँ जो कुछ भी हुआ मेरी इच्छा से ही हुआ, उसके लिये शोक मत करो, मैं तुम्हारे पराक्रम से संतुष्ट हो गया। तुम्हें जो भी अभीष्ट हो वरदान माँग लो।"

अर्जुन ने दिव्यास्त्र माँगे, प्रभु ने पाशुपत सहित अस्त्र प्रदान करके उनकी प्रयोग विधि भी बतला दी। प्रभु के अन्तर्हित होने पर स्मरण करते ही इन्द्र आये, इन्द्र के साथ स्वर्ग जाकर अर्जुन ने वहाँ और दिव्यास्त्र प्राप्त किये, गान विद्या सीखी। अंत में देवताओं के कहने पर उनके शत्रु असुरों का वध करके तब स्वर्ग से लौटे। दिव्यास्त्र प्राप्त करके अर्जुन के लौटने पर पाण्डव अत्यन्त प्रसन्न हुए। भावी महासमर में जो भय था, वह दूर हो गया। *(मानसमणि जनवरी 1968 से)*



(38) वाणासुर

श्लोक– "सन्निकर्षोऽत्र भर्त्यानामनादरण कारणम्।
गागं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये॥"

"संसार में समीप रहना ही मनुष्य के अनादर करने का कारण हो जाता है, जैसे गंगाजी के तीरवासी गंगाजी को छोड़ कर शुद्ध होने दूसरे तीर्थों के जलों में स्नान करने जाते हैं।"

जिसके दान के महत्व को सूचित करने के लिये ही 'वलिदान' शब्द बन गया, उसी प्रसिद्ध दानी दैत्यपति महाराज बलि के सौ पुत्रों में बाण सबसे बड़ा था। बड़ा था अवस्था में, बल में, गुण में और ओजिस्विता में भी। उनके एक सहस्त्र भुजायें थीं। नृत्य का वह अनन्य भक्त कैलाश के शिखर पर जाकर अपने हाथों में अनेकों वाद्य लेकर एक साथ ही बजाते हुए ताण्डव नृत्य करने से उमा-महेश्वर को प्रसन्न करता था।

दोहा– नित्य-नित्य ताण्डव से, शिव प्रसन्न भगवान।
प्रकट होइ उनने कहा, माँगो चाहो जो वरदान॥

नित्य-नित्य के वाण के ताण्डव से भगवान शिव प्रसन्न हुए, उन्होंने वरदान माँगने को कहा, जो चाहो माँग लो।

चौ०–सम्पत्ति ऐश्वर्यहि अभावहिं नाहीं। वो आसुरी मति भक्ति कांही॥
मुक्ति कहँ संस्कार नहिं चीन्हीं। नगर रक्षक प्रभु प्रार्थना कीन्हीं॥

वाण को सम्पत्ति ऐश्वर्य का तो अभाव था ही नहीं, उसकी आसुरी बुद्धि में

भक्ति या मुक्ति का संस्कार कहाँ? उसने प्रभु शंकर को अपना नगर रक्षक होने की प्रार्थना की।

चौ०—अदेय नहीं कछुभक्त के ताहीं। हिचक न आषुतोष मनमांही॥
मान अपमान कर्मकस होई। मूल भावना करतव सोई॥

भक्त के लिये आषुतोष को अदेय तो कुछ होता नहीं, वे प्रेमी के लिये कुछ भी बनने में अपने मन में नहीं हिचकते। फिर मान-अपमान तो किसी कर्म में उन्हें होता नहीं, वह तो आचरण की मूल प्रेरक भावना में होता है।

चौ०—अपमान जनक छुद्र होइ जावै। महान पुरुष सम्मानहिं पावै॥
साथहि कर्म महता बाढ़ै। जो सर्वरूप अपमानन काढ़ै॥

छुद्रों के लिये कोई कार्य अपमानजनक हो सकता है किंतु महान पुरुष तो छोटे काम को करके उल्टे और भी सम्मानित होते हैं, साथ ही उस कार्य की महत्ता भी बढ़ा देते हैं। जो सर्वरूप हैं उन्हें कोई कार्य अपमानप्रद नहीं है।

चौ०—वाणहिं प्रभु तथास्तु कहहीं। असुर नगर रक्षक बन रहहीं॥
सम्बन्ध भयो परिवार समाना। बाण शिवहिं पूजहिं विधि नाना॥

प्रभु ने वाण को 'तथास्तु' कह दिया। वे उस असुर के नगर रक्षक बन गये। फल यह हुआ कि वाण का शंकरजी से परिवार का सम्बन्ध हो गया, फिर भी वाण नियम से अनेक विधियों से शंकर की पूजनादि करता था।

दोहा— ऊषा पुत्री वाण की, माता पार्वती ढ़िग जाय।
नित शिक्षा संगीत की, वह ऊषा रही सिखाय॥1॥
विनोद उमा शिवहिका एकबार, ऊषा ने लखि लीन्ह।
जगा काम स्वाभाविकी, पति इच्छा मन कीन्ह॥2॥

बाण की पुत्री ऊषा माता पार्वती से संगीत शिक्षा पाने नित्य जाती थी। एक दिन उसने उमा और शंकर जी का एकान्त विनोद देख लिया। दर्शन से काम का उठना स्वाभाविक ही था, उसमें भी पति इच्छा जाग्रत हुई।

चौ०—शिष्या भाव उमा तब जानहिं। धैर्य रख पुत्री कछु दिन मानहिं॥
स्वप्न में जो पुरुष मिलि जाहीं। होगा व्याह तुम्हारा वाहीं॥

हृदयवासिनी जगदम्बा ने शिष्या के भाव जानकर कहा—"पुत्री! तू थोड़े दिन धैर्य रख, स्वप्न में जो पुरुष तुझे मिलेगा, उसी से तेरा विवाह होगा। वह स्वप्न की प्रतीक्षा करने लगी।

तामसिक और राजसिक प्रकृति के लोग चाहे जितने श्रद्धालु हों, शान्त नहीं हो सकते, इनसे निकट का परिचय होने पर ये सिर चढ़ जाते हैं, मर्यादा को सर्वथा भूल जाते हैं। बल के गर्व से चूर वाणासुर ने एक दिन शंकरजी के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की, "प्रभो! आपने कृपा करके मुझे जो बलशाली सहस्त्र भुजाएँ दी

हैं, वे मुझे भार स्वरूप हो गयी हैं। युद्ध के लिये प्रतिभट न मिलने से खुजला रही हैं। मुझे युद्ध के लिये एक प्रतिभट चाहिये। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई तो ऐसा दृष्टि पड़ता नहीं।" वाण इतना कहकर चुप हो गया।

चौ०—हुई ये विनय युद्ध आह्वाना। बड़ा क्रोध शिवहि उरआना॥
महान लोग काटत नहिं ताही। निज हाथन विष वृक्ष लगाई॥

यह प्रार्थना हुई या युद्ध का आह्वान! शिव के हृदय में बड़ा क्रोध आया। पर महान लोग अपने हाथों लगाये विष वृक्ष को भी नहीं काटते।

चौ०—क्रोधित हो शंकर अस कहेऊ। युद्ध करन मोहि समही दहेऊ॥
भारस्वरूप भुजा सोइ काटै। काट छाँटकर तोकूँ डाँटे॥

शंकर जी ने क्रोधित होकर कहा, "मूर्ख! तुझसे युद्ध करने के लिये मेरे समान ही योधा तुझे दहेगा, वह तेरी भार स्वरूप भुजाओं को काट-छाँटकर ठीक करके डाँटेगा।

चौ०—दऊँ ये ध्वजा इसे ले आगे। अपने भवन के द्वार लगादे॥
जब ये स्वतः आपु गिर जावै। प्रतिभट प्रगट समझले आवै॥

मैं तुझे ये ध्वज देता हूँ, इसे आगे अपने भवन के द्वार पर लगा दे। जब यह ध्वजा स्वत: अपने आप गिर जाय तो समझ लेना कि तेरे प्रतिभट शत्रु का प्रादुर्भाव हो गया, वही आवेगा।

'विनाश काले विपरीत बुद्धि' जब विनाश आता है तो बुद्धि मारी जाती है। बाण को शंकर जी का वह क्रोध भरा वाक्य भी वरदान ही प्रतीत हुआ। बड़े हर्ष से ध्वजा लाकर उसने अपने भवन के द्वार मर हीं लगा दिया। उत्सुकता से उसके गिरने की प्रतीक्षा करने लगा।

दोहा—प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्धहि, स्वप्नहिं ऊषा चीन्ह।
काम सुवन सुन्दर भुवन, तेहि साथ विलासहिं कीन्ह॥

एक दिन स्वप्न में ऊषा ने प्रद्युम्न पुत्र श्री अनिरुद्ध जी को देखा। स्वप्न में उन भुवन सुन्दर काम सुवन के साथ उसने विलास किया।

दोहा—चौंकी ऊषा नयन खुलते ही। बोल उठी व्याकुल हो जेही॥
अकेली छोड़ कहाँ गये प्यारे। सखी समीप खिलखिला मारे॥

सहसा नेत्र खुले, ऊषा चौंक पड़ी। अचानक ही वियोग दुःख से व्याकुल होकर बोल उठी-"प्यारे! तुम मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले गये? समीप बैठी सखी ये सुनकर खिलखिला कर हँस पड़ी। उसे हँसते देख ऊषा भी लज्जित हो गई।

चौ०—ऊषा उदास रहन अब लागी। दूर-दूर सखियन से भागी॥
सखि आग्रह विदोनहिं करही। सम्मिलित होइ न मन उन धरहीं॥

अब ऊषा उदास रहने लगी। सखियों से दूर-दूर भागने लगी। बहुत आग्रह करने पर भी उनकी हँसी तथा विनोद में सम्मिलित नहीं होती थी।

चौ०—सुहायन कुछ भोजन स्नाना। रोती रहै एकान्तहिं आना॥
सुत कुमांड जे मंत्री वाणा। अन्तः सखी उषा तेहि जाना॥

अब ऊषा को भोजन स्नान कुछ अच्छा नहीं लगता था, एकान्त आकर रोती रहती थी। वाण के मंत्री कुमाण्ड की पुत्री चित्ररेखा ऊषा की अन्तरंग सखी थी।

चौ०—परिवर्तन लख ऊषा तेही। एकान्तहि बात पूछ वो लेही॥
सुहृदों से बात छिपाव न कोई। स्वप्न दशा ऊषा कहि जोही॥

ऊषा में इतना परिवर्तन देखकर एकान्त में उसने जानना चाहा। अन्तरंग सुहृदों से कोई बात छिपाई थोड़े ही जा सकती है। छिपाना योग्य भी नहीं है। सच्चे सुहृद उसे प्रगट न करके कष्ट को दूर करने की चेष्टा ही करते हैं, उन्हें सुना देने से लाभ होता है, अतः ऊषा ने अपने स्वप्न की दशा बतला दी।

दोहा— नाम पता नहिं प्रियतम, चित्रलेखा कह अस जान॥
मैं अब चित्र बनावती, तुम लेउ उन्हें पहिचान॥

कुछ सोचकर चित्रलेखा ने कहा, "सखी! तुम अपने प्रियतम का नाम-पता तो जानती नहीं हो, पर उससे कोई चिंता की बात नहीं, तुम उन्हें पहचान तो सकती हो। देखो मैं चेष्टा करती हूँ उनका नाम और पता ज्ञात करने की, यदि वे विश्व में हुये तो मैं अवश्य तुम्हें समीप लाऊँगी। चित्रलेखा ने घर जाकर बहुत से रंगों की स्याही, बहुत सी चित्रकारी की कूँचियाँ और एक लम्बा सा सादा चित्रपट ले आई। अब इस कला का अभाव हो गया, उस युग में योग साधन से सिद्ध इस कला से समस्त जीवित विश्व के देवता से लेकर कीट पतंग तक अज्ञात प्राणियों का चित्र बनाया जा सकता था।

चित्रलेखा ने कहा, "मैं चित्र बना रही हूँ, तुम ध्यान से देखती रहो, जब तुम्हारे प्रियतम का चित्र बने तो मुझे बता देना" ऊषा से यह तो पता लग ही गया था कि स्वप्न में जिसका दर्शन हुआ वह युवक थे। यह सरलता हुई। बालक, वृद्ध, स्त्री और तरुणों को छोड़कर चित्रलेखा केवल युवक या उस अवस्था से लगने वाले लोगों का ही चित्र बना रही थी।

पट पर बड़ी शीघ्रता से लेखनी घूम रही थी, कभी एक लेखनी उठती कभी दूसरी। कभी एक रंग आता कभी दूसरा चलता। चित्रलेखा तल्लीन थी, क्रम से देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, ऋषी, पितर, नाग, असुर, दैत्य दानव प्रभृति मनुस्येतर युवकों का चित्रांकन हुआ। अन्त में मनुष्य बनने लगे। जब श्रीकृष्णजी का चित्र बना तो ऊषा ने हाथ जोड़ लिये। प्रद्युम्न का चित्र देखते ही लज्जित हो गई, और

अनिरुद्ध का चित्र देखकर तो सहसा बोल उठी, "यही तो हैं" लेखनी रुक गई।

चित्रलेखा ने कहा, "ये तो यादव कुल में श्रीकृष्णचन्द्र जी के पौत्र हैं। द्वारिका के राज महल में ही इनके दर्शन होंगे। चक्र द्वारिका की रक्षा करता है, वहाँ तक पहुँचना सरल नहीं, फिर भी मैं चेष्टा करती हूँ। तब तक तुम धैर्य से मेरी प्रतीक्षा करो।" चित्रलेखा ने चित्रपट स्याही आदि तो समेट कर रख दिया। वह योगिनी एक रामनामी चद्दर ओढ़कर रात्रि में ही आकाशमार्ग से द्वारिका चल पड़ी।

अर्धरात्रि में चित्रलेखा द्वारिका पहुँची। चक्र ने चादर से इसे कोई वैष्णवी समझकर मार्ग दे दिया। सोये हुए अनिरुद्धजी को भवन से पलंग सहित ही उठाकर, पुनः व्योममार्ग से उसे शोणित पुर में ऊषा के अन्तःपुर में लाकर रख दिया। "लो! यह आ गये तुम्हारे हृदयेश!" इतना कहकर चित्रलेखा अपने घर चली गई। लज्जा के मारे ऊषा उससे कुछ पूछ भी न सकी।

सोते हुए प्रियतम के उस मनोहर मुख को निकट से जी भर कर ऊषा ने देखा, नेत्र तृप्त होना जानते ही न थे वह सोचले लगी, "इन्हें जगाया कैसे जावे ?" अन्त में वीणा लेकर गृह के एक कोने में छिपकर बजाने लगी, अनिरुद्धकी स्वप्न में ऊषा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वीणा के शब्द से स्वप्न भंग हुआ, नेत्र खुलते ही उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं अपने भवन में न होकर किसी अपरिचित स्थान में हूँ। चौंक कर उठ बैठे, नेत्र फाड़ कर चारों ओर ध्यान से देखने लगे "यह स्वप्न है या सत्य, मैं तो जाग्रत हूँ, सोया तो मैं अपने भवन में था, फिर निद्रित दशा में यहाँ कौन उठा लाया, मैं इस समय कहाँ हूँ" इस प्रकार संकल्प विकल्प करते हुए वे दृष्टि दोड़ा रहे थे।

मणियों के मधुर प्रकाश में कोने में वीणा लिये एक अनिन्द्य सुन्दरी स्त्री छिपी दृष्टि पड़ी, ध्यान से देखने पर ज्ञात हुआ कि यह तो वही स्त्री है जो अभी स्वप्न में साथ थी। शैय्या से उठकर अनिरुद्धजी ऊषा के पास गये। लज्जा से वह अपने शरीर में ही सिकुड़ी जाती थी। हाथ पकड़कर उसे लाकर किसी प्रकार अनिरुद्धजी ने शैय्या पर बैठाया। धीरे-धीरे लज्जा दूर हुई। ऊषा ने अनिरुद्धजी को अपना तथा इस स्थान का परिचय दिया, उनके यहाँ तक आने का वृत्तांत भी बताया।

अब ऊषा की प्रियतम के साथ एकान्त क्रीड़ा चलने लगी। प्रायः दिन रात उसका भवन भीतर से बन्द रहता। बहुत आवश्यक होने पर ही वह कुछ क्षणों के लिये बाहर आती थी, इस प्रकार महीनों बीत गये। अनिरुद्ध भी ऊषा के प्रेम में परिजनों को भूल गये। पर चोरी और जारी कब तक छिप सकती है, ऊषा के शारीरिक परिवर्तनों से अंतःपुर के रक्षकों को उस पर संदेह हो गया, सदा भवन में रहने से सब पुष्टि हो रही थी, संदेह की। पर बहुत चेष्टा करने पर भी वे कुछ ठीक पता नहीं लगा सके।

रक्षकों ने जाकर वाणासुर से प्रार्थना की, "हमारा अपराध क्षमा हो! लक्षणों से आपकी पुत्री के आचरण पर हमें संदेह हुआ है। कन्या अन्त:पुर में जाकर भेद प्राप्त करने में हम असमर्थ हैं। अतः ठीक कुछ भी नहीं कह सकते। संदेह मिथ्या भी हो सकता है और सत्य भी। पर हमने यह सोच कर कि पीछे कहीं स्वामी को कलंक न लगे, संदेह की निवृत्ति के लिये ही यह धृष्टता की है।

पुत्री के आचरण का दोष सुनकर कौन पिता आपे में रह सकता है? दुराचारी से दुराचारी भी पुत्री के आचरण दोष को सहने में असमर्थ है। वाणासुर क्रोध से पागल हो गया। सेना को अन्त:पुर घेर लेने की आज्ञा हुई। वह भवन लगी शिव प्रदत्त ध्वजा बहुत पहले ही गिर चुकी थी। शंका हुई कि कही वही प्रतियोगी तो नहीं आ गया।

कपाट के छिद्रों से जाकर वाण ने देखा कि उसकी पुत्री एक अत्यन्त मनोहर श्यामरंग के सुन्दर युवक के साथ ही एक ही आसन पर बैठी चौसर खेल रही है। युवक के सौंदर्य को देखकर वह मुग्ध हो गया। "ऊषा के योग्य ही पति है, क्रोध का वेग कम हो गया। फिर भी इसे चोरी से अन्त:पुर में आने का दण्ड तो देना ही था। वाण ने बाहर से ललकारा।

ऊषा पिता के शब्द से चौंक पड़ी, झाँककर वातायन से देखने पर असुर सेना से भवन घिरा मिला। वह थर-थर काँपने लगी। अनिरुद्ध जी ने प्रिया को आश्वासन दिया। वीर जहाँ विलास करने में कुशल होते हैं वहाँ युद्ध में शत्रु का मुख मर्दन करने में भी। सुख ही पुरुष का भोग नहीं। वह वीर का विजय पुरस्कार है। आमोद शक्तिशाली की भुजाओं की वस्तु है। भवन में एक परधि पड़ा था, उसे उठाकर द्वार खोलकर अनिरुद्ध जी ललकारते हुए बाहर आ गये। वाण के संकेत से असुरों ने उन पर आक्रमण किया। वे भी परिघ = डंडे से आघात करने लगे।

सिंह का पुत्र चाहे जितना भी छोटा हो मृगों के लिये वह भारी होता है। अनिरुद्ध जी के प्रहार से किसी के हाथ टूटे, किसी के सिर फटे, किसी की पसली चूर हो गयी, रक्त की धारा बह चली। वो स्वयं भी उसी रक्त से लाल हो गये। असुर युद्ध में टिक न सके, भाग चले।

ऊषा बड़े भय से युद्ध देख रही थी, दैत्यों के प्रहार करते ही उसका हृदय काँप उठाता। पर जब शत्रु का आघात व्यर्थ करके अनिरुद्ध जी अपना शौर्य दिखलाते तो वह हर्षित हो जाती। सेना को भागती देखकर वाणासुर आगे आया। अनिरुद्ध का वध उसे अभीष्ट न था। चाहे जैसे भी हो यह उसके जामाता तो हो ही चुके थे। जानबूझकर पुत्री को विधवा करना कौन चाहेगा। नागपाश में उसने अनिरुद्धजी को बाँधकर बन्दी बना लिया। आह! बेचारी ऊषा मूर्च्छित हो गयी।

अनिरुद्धजी वाण की सभा में नागपाश में जकड़े खड़े थे, इसी समय वहाँ देवर्षि नारदजी आ पहुँचे। देवर्षि ने अनिरुद्धजी को देखते ही वाण से कहा,

"असुरेश! तुमने यह क्या अनर्थ कर डाला। अरे! ये तो यदुकुल भूषण श्री कृष्णचन्द्रजी के प्रपौत्र हैं, इन्हें अभी आदरपूर्वक छोड़कर क्षमा माँगो। विशाल यादवी सेना पता पाते ही यहाँ चढ़ आवेगी, तब कुशल नहीं होने की।"

गर्व से भक्तवाण ने उपेक्षा की। "मैं युद्ध के लिये तो आतुर हूँ। युद्ध मेरे लिये शुभावसर है। उसे मैं क्यों छोड़ने लगा। इसने अपराध किया है, अतः इसे मैं नहीं छोड़ने का।" समस्त घटनाएँ जानकर देवर्षि वहाँ से द्वारिका पहुँचे ।

रात्रि में जब से अनिरुद्ध लापता हो गये थे, तभी से द्वारिका में बड़ी हलचल थी। सभी लोग आश्चर्य में थे। दूत देश-विदेश सब कहीं पता लगाने को भेज दिये गये थे। देवर्षि के पहुँचते ही स्वागत सत्कार करके भगवान ने उनसे अनिरुद्ध का पता पूछा, सम्भव है अपने पर्यटन में इन्होंने देखा हो, अनुमान ठीक निकला, देवर्षि ने बताया कि वे बाणासुर के बंदी हैं, समस्त घटनायें भी बताईं ।

आज्ञा की देर थी, अपार यादव वीरों की सेना देखते-देखते ही सुसज्जित हो गयी। श्रीबलराम जी के सेनापतित्व में वे वीर शोणितपुर वाणासुर को दण्ड देने चल पड़े। मार्ग में नृपतियों ने इस विशाल सेना का स्वागत किया। मित्र राजाओं ने अपनी सैन्य भी साथ कर दी। शत्रुओं का साहस ही नहीं पड़ा छोड़छाड़ करने का।

शोणितपुर चारों ओर से घेर लिया गया।

चौ०—रक्षक नगर शिवहि भगवाना। युद्ध को आये सहित गण नाना॥
भक्त की रक्षा को प्रभु आहीं। स्वयं ठान कर युद्ध मचाहीं॥

नगर रक्षक भगवान शंकर स्वयं अपने गणों के साथ युद्ध के लिये आये। भक्त की रक्षा के लिये प्रभु ने अपने आप युद्ध ठान लिया। वाण भी ससैन्य नगर से निकला।

चौ०—शंकर और मुरारी भिरहीं। बाण और सात्यकि लरहीं॥
कार्तिकजी और बलरामा। अपने योग्य भिड़े तहँ ठामा॥

शंकरजी और मुरारी का बाण और सात्यकि का, कार्तिकेय जी और बलउदाऊ जी का, इस प्रकार अपने-अपने योग्य योद्धाओं से भिड़कर युद्ध छिड़ गया।

चौ०—कट-कट कर गिरने लगे धरनि पर। हाथ पैर धड़ बहुत के सिर॥
हाथी घोड़ा आदि गिर जाही। रक्त से भू नभ धूम्रहि छाहीं॥

हाथ पैर सिर धड़, घोड़े हाथी आदि कट-कटकर जमीन पर गिरने लगे, पृथ्वी रक्त से आकाश धूम्र से छा गया।

चौ०—मारो पीटो भई ध्वनि भारी। अस्त्र शस्त्र झंकार मझारी॥
तुमुल शब्द विस्फोटन भयऊ। ताते दिशा फटन लगि गयेऊ॥

मारो, पीटो, हाय, आह के साथ जयध्वनि भारी होने लगी, अस्त्र-शस्त्रों की

झंकार तथा विस्फोट के शब्दों से दिशायें फटने लगीं। पिनाक और सारंग की वाण वृष्टि ने तो प्रलय की सम्भावना अपस्थित कर दी।

दोहा— चूहा डर कर प्रथम ही, भागा श्री गणेश।
टिक न कुमार मयूर भी, पड़ मुशल चोट विशेष ॥1॥

गणेशजी का चूहा सबसे पहले डरकर भाग गया। मुशल के प्रहार से कुमार का मयूर भी न टिक सका।

दोहा— प्रद्युम्न प्रभृति ने तहाँ, नन्दी भैरव आदि।
वीर भद्र महाकालिका, मारि भगाई व्याधि ॥2॥

प्रद्युम्न प्रभृति ने नन्दी भैरव वीरभद्र और महाकाली आदि व्याधियों को मार-मार कर भगा दिया।

दोहा— निवृत्ति न होती युद्ध की, देखी केशव ताहि।
जभ्रुणास्त्र छोड़ा तबहि, शिव निद्रित होइ जाहि ॥3॥

इधर युद्ध की निवृत्ति होती न देख केशव ने जभ्रुणास्त्र का प्रयोग किया, उसके प्रभाव से भोले बाबा रथ पर ही निंद्रित हो गये।

चौ०— सारग वाण परे सैन मांही। बचे खुचे शिवगण भगि जाहीं॥
बध अभीष्ट नहीं गण ताहीं। घायल कर मधुसूदन पाहीं॥

अब सारंग के वाण शिव सेना पर पड़ने लगे। बचे खुचे शिव गण भी इन असहय बाणों की वृष्टि को सहने में असमर्थ होकर भाग खड़े हुए। अबध्य शिवगणों का वध अभीष्ट तो था नहीं। उन्हें इसी से घायल करके मधुसूदन ने भगाना ही उचित समझा।

चौ०— मधुसूदन जब गणन्ह भगावा। सात्यकि छोड़ बाण तब आवा॥
सहस्त्र भुजान पाँचसौ बाना। धनुष चढ़ाय इकन्ह सन्धाना॥

मधुसूदन ने सेना पर आघात करके गणों का भगाया तो बाण अपनी सहस्त्र भुजाओं से पाँच सौ बाण धनुष पर चढ़ाकर सात्यकि को छोड़कर आगे आया और बाणों का संधान किया।

चौ०— काटि मुरारी तेहि सरवर्षा। धनुष भी काटे लगायो न अर्सा॥
तब तेहि शक्ति शूल तलवारा। तोमर पाश गदा सब मारा॥

थोड़ी ही देर में मुरारी ने उसकी वाण-वर्षा की तो तिलशः काटकर उसके सब धनुष भी काट फेंके। उसने शूल, तोमर, शक्ति, पाश, गदा, तलवार आदि जो भी उठाया, काट दिया गया। निशस्त्र होकर वह नगर की तरफ भागा।

चौ०— पुत्र हेतु माँ क्या नहीं कर सक। शस्त्रहीन हो भागै नगर तक॥
मातु कोटरा लख असहाला। वस्त्रहीन दौड़ति तत्काला॥

पुत्र के लिये माता क्या नहीं कर सकती? वाण की माता केटरा ने देखा कि पुत्र शस्त्रहीन होकर नगर तक भागा आ रहा है, कहीं प्रहार करके केशव उसे क्षति न पहुँचा दें, अतः माता वस्त्रहीन होकर तुरंत दौड़ी।

दोहा— केशव वाणहि मध्य में, तब तक खड़ी रह पाय॥
जब तक वाण नगर में, पहुँच सुरक्षित जाय॥

वह केशव और वाण के बीच में खड़ी हो गयी। तब तक खड़ी रही जब तक वाण नगर के कोट में सुरक्षित पहुँच जाय।

प्रभु ने, नंगी स्त्री को नहीं देखना चाहिए-इस शास्त्रोक्त मर्यादा का पालन किया वे मुँह फेरकर खड़े हो गये। युद्ध प्रायः बन्द था, बाण की सेना भाग चुकी थी या कट चुकी थी। शिवगण तो पहले ही भाग गये थे, शंकर जी निंद्रा मग्न थे। इसी समय शंकरजी के विषम ज्वर ने यादवी सेना पर आक्रमण किया, सेना के वीर ज्वर की पीड़ा से त्राहि-त्राहि करने लगे। अखिलेश ने शीघ्र ही शीतज्वर को प्रतिकार की आज्ञा दी। लेने के देने पड़ गये। विषम ज्वर संसार भर भागता फिरा फिर भी उसे शीतज्वर से त्राण न मिला। स्वामी निद्रित थे, विवश होकर आर्तभाव से केशव के चरणों में गिर पीड़ा, प्रभु तो शरणागत वत्सल हैं, शरण आने पर अपराधी के अपराध को वे कभी देखते भी नहीं। शीतज्वर निवृत्त कर लिया गया। विषमज्वर की जान बची।

नगर में जाकर वाण ने पुनः युद्ध की सामिग्री लेकर भय और प्रलोभन से भागे हुए असुरों को साथ लेकर वह पुनः बड़े वेग से युद्ध के लिये निकला। केशव के बाण उसके बाणों को काटते ही थे, साथ ही सेना का संहार भी करते थे, यादवी सेना भी प्रहार कर रही थी, थोड़ी ही देर में कुछ असुर सेना कुछ मारी गयी और कुछ भाग गई, वाण एकाकी रह गया।

युद्ध लम्बा चलना अभीष्ट नहीं था। चक्रधर ने अपना अमोघ चक्र उठाया। चक्र प्रभु के हाथों से छूटकर वाण की भुजाओं को वैसे ही छाँटने लगा जैसे लकड़िहारा वृक्ष की छोटी टहनियों को। इसी समय शंकरजी की निद्रा भंग हुई। चौंककर पिनाक उठाते-उठाते देखा कि केशव सम्मुख ही हैं। दृष्टि दौड़ी, वाण की कटती भुआएँ दीख पड़ीं। 'ओह! चक्र चल चुका है, अब तो उसका कोई प्रतिकार संभव नहीं, लेकिन वरदान देकर वाण को मैंने अमर बना दिया है। इसकी रक्षा करनी होगी।' रथ से कूदकर शंकरजी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख आये।

प्रणाम करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे, "दयामय! आप तो परम कृपालु हैं मुझ पर अनुग्रह रखते हैं, यह मेरा परम भक्त है, मैंने इसे वरदान देकर अमर बना दिया है, करुणा सिंधु। इसे प्राण दान मिले" चक्र ने अब तक वाणी की समस्त भुजाएँ काट दी थीं केवल चार बच रही थीं, श्रीकृष्ण जी का संकेत हुआ, चक्र

लौटकर कर में आ गया।

मुरारि शंकरजी को हृदय से लगाते हुए बोले—"विश्वनाथ! आपका भक्त क्या मेरा भक्त नहीं? यह आपका भक्त है तो मेरा भी हुआ, हम आप क्या दो हैं? आपने वरदान दिया तो मानों मैंने ही दिया। दूसरे प्रहलाद को मैंने वरदान दिया है कि तुम्हारे वंशजों को मैं नहीं मारूँगा। इस प्रकार भी यह मेरे लिये अवध्य है। अपनी भुजाओं के मद से इसने आपका अपमान किया था, अतः वो भुजाएँ मैंने काट दीं। अब इसके ये चार भुजायें ही रहेंगी, यह अजर आपका गण हुआ।"

बाणासुर का गर्व चूर हो गया, वह केशव और शंकरजी के वचनों को सुन रहा था। शंकरजी का संकेत पाते ही वह दौड़कर श्रीकृष्णचन्द्र के चारु चरणों में रोते हुए गिर पड़ा, अपने दोष पर पश्चातप करके क्षमा माँगने लगा, प्रभु ने उसे उठाकर अभयदान किया।

ऊषा ने जब सुना था कि यादवी सेना नगर पर चढ़ आई है, उसे कुछ धैर्य हो गया था, वह चाहती थी कि वह विजयी हो, मेरे प्रियतम मुक्त हो जायें। पहली बार जब वाण परास्त होकर नगर में लौटकर पुनः युद्ध की तत्परता करने लगा तो ऊषा नगर में उसकी लम्बी चौड़ी बातें सुनकर भयभीत हो गयी थी। दूसरी बार वाण लौटा बाहुओं के कटने से शरीर में क्षत हो रहे थे। पिता की यह दुर्दशा देख ऊषा रो पड़ी। अपने आपको इस अनर्थ की जड़ समझकर धिक्कारने लगी।

बाण सीधे ऊषा के भवन में आया। "मैं ही इस अनर्थ की जड़ हूँ, मेरे ही कारण आपकी यह दशा हुई। मुझ कुलघातिनी को मार डालो।" कहते हुए रोकर कटी लता की भाँति पिता के चरणों पर वह संज्ञाशून्य होकर गिर पड़ी। बाण ने प्रेमाश्रु बहाते हुए पुत्री को उठाया—"बेटी! तुझे पाकर तो मेरा कुल पवित्र हो गया। तेरे ही कारण तो मुझे आज श्री लक्ष्मीपति के दर्शन हुए। तू उनके पौत्र की पत्नी है। मैं उनका सम्बन्धी होकर पवित्र हो गया।" भरे कंठ से गोद में पुत्री को लेकर शान्त किया।

सखियों ने ऊषा का श्रृंगार किया, बन्दीगृह से निकाल कर अनिरुद्धजी को भी आदर पूर्वक वस्त्रालंकार से आभूघित किया गया। जामाता और पुत्री को रत्न, धन, वस्त्र, आभूष आदि के महान दहेज के साथ बाण ने श्रीकृष्णचन्द्र को भेंट किया। अनिरुद्ध को ऊषा के साथ लेकर तथा पारिवर्हग्रहण करके यादव दल बड़ी धूमधाम से द्वारिका लौटा। शंकरजी भी गणों के साथ कैलाश पधारे। बाणासुर तभी से शंकर का गण हो गया। ठीक इससे मिलती-जुलती एक कथा पद्मपुराण में है, उसे पृथक न देकर संक्षिप्त में यहाँ दे रहे हैं—

त्रेता में देवपुर के राजा वीरमणि जी शंकरजी के अनन्य भक्त थे। महाकाल के स्थान पर उन्होंने आषुतोष को प्रसन्न करने के लिये घोर तपस्या की। प्रभु प्रसन्न

होकर प्रकट हुए। राजा की प्रार्थना करने पर उन्होंने वरदान दिया, "किसी भी शत्रु के आक्रमण करने पर मैं तब तक तुम्हारी ओर से लड़ूँगा जब तक मेरे इष्टदेव स्वयं युद्ध में विपक्ष में नहीं आवेंगे।"

लंका विजय करके लौटने पर राज्याभिषेक के पश्चात् श्री रघुनाथजी ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। अश्व विजय पत्र बाँधकर छोड़ गया। ससैन्य शत्रुघ्न जी उस घोड़े की रक्षा के लिये साथ चले। घूमते-घूमते अश्व देवपुर पहुँचा। महाराज वीरमणि ने घोड़ा पकड़वाकर बँधवा दिया। शत्रुघ्न जी की सेना और देवपुर की सेना में भयंकर युद्ध छिड़ गया। वरदान के अनुसार शंकरजी भी वीरमणि का पक्ष लेकर गणों के साथ युद्ध में आ डटे।

वीरभद्र, भैरव, नन्दी, कुमार कार्तिक, कुभाँण्ड, महाकाली, कूपकर्ण आदि के भीषण प्रहार के सम्मुख राघवी सैना टिक न सकी। संकट में पड़कर शत्रुघ्नजी ने प्रभु श्रीरामजी का स्मरण किया। स्मरण करते ही धनुषवाण लिये, निषंग कसे राघवेन्द्र वहीं प्रकट हो गये। वरदान शंकर जी का पूरा हो गया। शंकरजी हाथ जोड़कर प्रभु श्रीरामजी के समीप आये। स्तुति करके वीरमणि को प्रभु के चरणों में डाला। वीरमणि ने उपहार के साथ अश्व लौटा दिया। उसे श्री शंकरजी की कृपा से रघुनाथजी की प्राप्ति हुई। (मानसमणि फरवरी 1968 से)

❃ शंकर के घर का हवाल ❃

कवित्त- "आपु विष चाखें, सुत षटमुख राखै,
देखि आसन पै राखें वस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया, आस-पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यान हूते न चलै॥
बैल बाघ वाहन वसन को, गयंद खाल,
भाँग और धतूरे को पसार हेतु अचलै ।
घर को हवाल यहै शंकरकी बात कहें,
लाज रहे कैसे पूत मोदक को मचलै॥"



(39) श्रीकृष्ण और अर्जुन कैलाश पर

श्लोक— "यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति र्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम्॥"

"जहाँ पर योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हैं (जहाँ चित्त संयम, शक्ति, उद्योग शक्ति साथ हैं) वहीं लक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य तथा दृढ़ निश्चय है, ऐसा

मेरा विचार है।"

महाभारत में अर्जुन संसप्तकों के युद्ध में दूर गये थे। इधर द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। अर्जुन के अतिरिक्त कोई भी पाण्डवों में व्यूह भेदन जानता था, पर अर्जुन तो दूर चले गये थे। अंत में अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने यह भार लिया। अभिमन्यु व्यूह भेदन कर स्वयं तो भीतर चले गये, पर व्यूह द्वार पर स्थित जयद्रथ को पराजित करके दूसरा कोई भी व्यूह में न जा सका। व्यूह के सप्तम द्वार पर कौरवों के छः महारथियों ने मिलकर बड़े परिश्रम से निशस्त्र करके उस एकाकी पराक्रमी बालक को अन्यायपूर्वक मार डाला।

युद्ध बन्द हो गया। अर्जुन भी उधर सन्ध्या को शिविर में लौटे। शिविर शोकपूर्ण हो रहा था। पुत्र का वध सुनते ही अर्जुन विक्षिप्त हो गये। बार-बार शोक से मूर्छित हो जाते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें शान्त किया। योगशक्ति से स्वर्गस्थ अभिमन्यु का दर्शन कराने पर तो कहीं उनका शोक दूर हुआ। जयद्रथ ही अभिमन्यु वध में मूल कारण था। शोक दूर होते अर्जुन को उस पर महान क्रोध हुआ उन्होंने प्रतिज्ञा की, "कल सूर्यास्त से पहले ही जयद्रथ का वध कर डालूँगा। यदि ऐसा न कर सका तो चिता में प्रवेश करके जल जाऊँगा।"

भक्तों की रक्षा का जिन पर भार है वे श्रीहरि चिन्तित हुए। भक्त की प्रतिज्ञा तो उन्हें पूर्ण करानी होगी। अर्जुन तो प्रतीक्षा करके अलग हुए, पर जिनके हाथ में उनकी रथ-रश्मि है, अयश तो उनका होगा पूर्ण न होने पर। केशव ने अर्जुन को बताया कि बिना पाशुपतास्त्र के जयद्रथ का वध संभव नहीं। वे पार्थ को लेकर व्योम मार्ग से रात्रि में ही योग शक्ति के द्वारा कैलाश पर पहुँचे।

शंकरजी बड़े प्रसन्न हुए। उद्देश बताने पर बोले-"आपका भक्त तो मेरा ही भक्त है उसकी प्रतिज्ञा का भार जैसे आप पर है वैसे मुझ पर भी" पाशुपतास्त्र देकर अर्जुन को उसकी प्रयोग विधि भी बतायी। शंकरजी से आज्ञा लेकर अभिवादन करके वे लोग लौटे और एक प्रहर रात्रि रहते ही शिविर में पहुँच भी गये।

कौरवों को अर्जुन की प्रतिज्ञा का पता लग गया था। भयातुर जयद्रथ को दुर्योधन के आग्रह से आचार्य द्रोण ने रक्षा का वचन दिया। आचार्य ने रात्रि में ही सेना का विशाल शकट व्यूह, उसके मध्य में कमल व्यूह और उसके मध्य में भी सूची व्यूह बनाकर सूची के छिद्र स्थान में जयद्रथ को छिपा कर रखा, स्वयं द्रोण मुख्य द्वार की रक्षा करने लगे।

प्रातः युद्ध छिड़ने पर केशव ने अर्जुन को बताया कि आचार्य से उलझना ठीक नहीं। थोड़ी देर आचार्य से युद्ध करके अर्जुन दूसरी ओर से व्यूह तोड़कर भीतर पहुँचे। पीछे इसी मार्ग से सात्यकि और द्वार से भीम भी आ मिले। दोपहर तक युद्ध करने से घोड़ों के थक जाने पर अर्जुन ने युद्धभूमि में ही बाण मार कर पृथ्वी से जल

निकाला, बाणों से उस सरोवर को ढ़क दिया। भगवान ने रथ से खोलकर स्वयं अश्वों को धोया, पानी पिलाया, स्वतः भी जल पीकर तब अर्जुन अश्वों के जुत जाने पर युद्ध में आये।

कौरव आज जी-जान से युद्ध कर रहे थे, किसी भी प्रकार चाहे जितना भी बलिदान देकर वे आज संध्या तक जयद्रथ की रक्षा करना चाहते थे। जयद्रथ की संध्या तक रक्षा से स्वतः ही अर्जुन चिता में जल जाते और उनकी विजय हो जाती पूर्ण बल लगाकर भी अर्जुन वेग से आगे नहीं बढ़ पाते थे। यद्यपि उन्होंने बहुत सैन्य संहार किया, बहुत महारथी मारे, फिर भी कौरव विचलित नहीं हुए, बड़ी कठिनाई से अर्जुन कमल व्यूह का भेदन कर सके, सूची-व्यूह तक पहुँचने पर दो घड़ी ही दिन शेष रह गया। **"जाके रथ पर केशो ताको कौन अंदेशो"** भगवान ने देखा कि दो घड़ी में सूची व्यूह अर्जुन से नहीं टूटने का, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दु:शासन, दुर्योधन, प्रभृति चुने हुए वीरों से यह व्यूह बना था। केशव जो चाहें वही होगा कैसे नहीं। चक्र को आज्ञा हुई, उसने सूर्य ढ़ककर रोक लिया, लोगों ने समझा संध्या हो गई। कौरव हर्ष से उछल पड़े, अर्जुन ने धनुष रख दिया, युद्ध रुक गया।

कौरवों ने व्यंग्य किया, "जिस पर बड़ा भरोसा था, उस श्रीकृष्ण ने रक्षा क्यों नहीं की?" दुष्टो वही रक्षा करेंगे। दुष्टता का परिचय देते हुए कौरवों ने चिता भी बना दी, अर्जुन दु:खी हो रहे थे, मधुसूदन ऊपर से शांत थे। दृढ़प्रतिज्ञ अर्जुन कौरवों की उपेक्षा करके चिता में प्रविष्ट होने लगे, केशव बोले-"विजय! अंतिम समय धर्मच्युत होना ठीक नहीं, अपना गाण्डीव उठाओ, उस पर अपने त्रोण का सबसे प्रधान दिव्यास्त्र चढ़ाओ और इस प्रकार क्षत्रिय की भाँति चिता प्रवेश करो। आज्ञा पालन हुई। अर्जुन गाण्डीव पर पाशुपास्त्र चढ़ाकर चिता पर चढ़े। अग्नि लगा दी गई। विजय तो सर्वथा धर्म की होती है, अधर्म की नहीं। शत्रु को जलते हुए देखने के लिए जयद्रथ भी व्यूह से निकल करबाहर सम्मुख आ गया। हँसते हुए उसने भी व्यंग बाण छोड़ा। केशव तो इसी अवसर की प्रतीक्षा में थे। अर्जुन से बोले, **"पार्थ! प्रण पूरा करो देखो अभी दिन शेष है। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ।"** भगवान ने चक्र हटा लिया था। सूर्य अस्ताचल पर अरुण वर्ण हो रहे थे, शत्रु पर अस्त्र का प्रयोग करो।

संकेत पाते ही चक्र हटते ही अस्त होते हुए भास्कर पर सबकी दृष्टि पड़ी। कौरवों में खलबली बच गई। जयद्रथ भागना चाहता था। पर सब व्यर्थ, सहसा गाण्डीव पर चढ़ा हुआ पाशुपत छूटा और जयद्रथ के मस्तक को काटकर आकाश में उड़ा ले गया। कौरवों पर मानों वज्र पड़ा। वे हताश हो गये। अब तक रोते और विलाप करते हुए सात्यकि एवं भीमसेन एक साथ ही हर्ष से उछलकर चिल्ला उठे-"श्रीकृष्णचन्द्र की ज़य"।

अर्जुन कूदकर चिता से नीचे आ गये थे। केशव के आदेश से भीम और सात्यकि तो शिविर को लौटे और रथ में बैठकर वाणों के द्वारा जयद्रथ के मस्तक को ऊपर ही ऊपर संग ले चलने को अर्जुन से कह कर भगवान श्रीकृष्ण ने एक ओर रथ चलाया। कौरव देखते ही रह गये। उनसे कुछ भी करते न बन पड़ा ।

जयद्रथ के पिता ने तपस्या से भगवान शंकर को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त किया था कि जिसके द्वारा मेरे पुत्र का मस्तक पृथ्वी पर गिरे उसका मस्तक उसी क्षण सौ टुकड़े हो जावे। वह पिता इस समय यमुना जी में खड़े होकर सूर्यनारायण को सायंकाल की जलांजलि दे रहा था। भगवान रथ लेकर वहीं पहुँचे दूर से ही उन्होंने जयद्रथ का मस्तक उनकी अंजलि में गिराने को कहा।

अंजलि उठाते ही उसमें मस्तक गिरा, उसने समझा कि नदी में बहते हुए मुर्दे का सिर हाथ में आ गया। सहसा चौंककर अंजलि छोड़ दी। हाथ से सिर नीचे गिरते ही उसका ही मस्तक सौ टुकड़े होकर गिर गया।

पाण्डवों के शिविर में हर्षनाद हो रहा था। लौटते ही युधिष्ठिर जी ने आगे बढ़कर भगवान को उठा लिया। आज प्रभु ने बड़े कुसमय में उनकी रक्षा की। वे अपने आश्रतों की रक्षा तो करते ही हैं। उनके आश्रतों का पराभव तो सम्भव ही नहीं। *(मानसमणि मार्च 1968 से)*



(40) काशी दहन एवं पौंड्रक बध

श्लोक–"कामं क्रोधं भयं स्नेह मैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥"

"काम से, क्रोध से, भय से, स्नेह से, एकता से (अभेद से), मित्रता से (चाहे जैसे भी हो) मन को नित्य भगवान में लगाने वाले भगवत रूपता को प्राप्त होते हैं।"

भगवान से कोई सम्बन्ध होना चाहिए। वे तो आनन्दघन हैं, उनसे सम्बन्धित होने पर भी सभी भाव शुद्ध हो जाते हैं। फेंककर मारने पर भी पारस लोहे को स्पर्श होते ही स्वर्ण बना ही देता है। काम, क्रोध, लोह, मोह, राग, द्वेष, भय, स्नेह, प्रेम, मैत्री आदि जो भी भाव हृदय में उठें उनका सम्बन्ध भगवान से कर दिया जावे। यही सबसे सुगम उपाय भगवत्प्राप्ति का है। विकारी भाव कामादि तो तब तक विकारी है और पतन के कारण हैं, जब तक उनका सम्बन्ध संसार के विषयों से है, भगवान से सम्बन्धित होते ही वे शुद्ध और उद्धार के कारण हो जाते हैं। उस सच्चिदानंद से सम्बन्ध होना चाहिए, चाहे जैसा भी सम्बन्ध क्यों न हो।

पौण्ड्रक को उसके चाटुकार लोगों ने बहका दिया था कि तुम्हीं विष्णु के

अवतार वासुदेव हों। लोग शासकों को वस्तुस्थिति से अन्धकार में रखकर स्वार्थी, चापलूस अपना स्वार्थ साधन करते हैं, शासक के विनाश का यही कारण है। पौण्ड्रक लोगों की बातों में पड़कर अपने को वासुदेव मानने लगा। दो नकली काठ की भुजायें लगाकर चतुर्भुज बन गया। सदा कृत्रिम चक्र, शंख, गदा और पद्म धारण करता, पीताम्बर और वनमाला पहनता, नकली कौस्तुभ भी धारण करता और प्रजा भी उसे वासुदेव कहकर ही सम्बोधित करती थी। सब होने पर भी असुर ही उसके मित्र थे।

जब अहंकार घरकर जाता है तो वह पुरुष को मूढ़ बना देता है। पाखंडी और अभिमानी दुस्साहसी हो जाते हैं। कृत्रिमता तक सीमा रहती तो कुशल थी। पौण्ड्रक ने द्वारिका में श्रीकृष्णचन्द्र के पास दूत भेजकर संदेश भेजा "अपना वासुदेव नाम और मेरे चिन्हों को छोड़कर या तो मुझ वास्तविक वासुदेव की शरण आओ, नहीं तो युद्ध करो।"

द्वारिका के सभासद सुनते ही हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। भगवान ने दूत से कहा—"जाकर उस मूर्ख से कह दो कि मैं डरकर या तो उसकी शरण आऊँगा, या वह रणभूमि में कुत्ते और कौवों की ही शरण में सोवेगा। दो में से एक निवटारा करने के लिये मैं आ रहा हूँ।" दूत लौट गया। पौण्ड्रक ने युद्ध की तैयारी की। उसके मित्र काशी के राजा भी उसके बुलाने पर एक अक्षोहिणी सेना लेकर मित्र की सहायता करने को आ गये।

केशव एकाकी ही रथ से पौण्ड्रक के पुर को चल पड़े। इनका आगमन सुनकर वह काशीराज के साथ विशाल सेना लेकर युद्ध के लिये नगर से निकला। शारंग के वाणों ने समस्त सेना और दोनों राजाओं की अस्त्रवृष्टि को व्यर्थ कर दिया। मधुसूदन के वाणाघात से थोड़ी ही देर में सैन्य समाप्त हो गयी। कुछ भाग गये और शेष मारे गये। अन्त में पौण्ड्रक आगे आया। मुरारी के गदाघात ने उसके रथ सारथि तथा घोड़ों को चूर-चूर कर दिया, पृथ्वी पर कूदकर बचे हुये पौण्ड्रक का मस्तक भी चक्र ने काट डाला।

मित्र का बदला लेने काशीराज झपटे। बीच में ही शारंगधार ने उसका भी बाणों से मस्तक काट लिया। उसका मस्तक बाण के द्वारा काशी में ठीक राजभवन के द्वार पर गिरा। पहले तो कोई पहचान ही न सका, पर महाराज का मस्तक पहचान कर राज्य में कोलाहल छा गया। रानियाँ विलाप करने लगीं, पुत्र रोने लगे, कर्मचारी भी व्याकुल हो गये। इधर केशव युद्ध में शत्रुओं को उनकी धृष्टता का दण्ड देकर द्वारिका लौट आये।

पिता के बध से काशीराज का पुत्र सुद्युम्न अत्यन्त दुःखी तथा क्रोधित हुआ। उसने केशव से पिता का बदला लेने का निश्चय किया। जब कायरों में सम्मुख युद्ध की शक्ति नहीं रहती तो अभिचार की सहायता लेते हैं। सुद्युम्न शंकरजी को प्रसन्न

करने के लिये तपस्या करने लगा। कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर आषुतोश प्रकट हुये। वरदान माँगने को कहा। सुद्युम्न ने कहा, "कोई ऐसी शक्ति प्रदान करें जो द्वारिका के साथ श्रीकृष्ण का वध कर सको" शंकर जी खिन्न हो गये, ऐसा तो सम्भव ही नहीं था। उन्होंने कह दिया, "तुम दक्षिाग्नि में अभिचार विधि से हवन करो उससे कृत्तिका उत्पन्न होगी। यदि तुम उसका किसी ऐसे व्यक्ति पर प्रयोग करोगे जो ब्राह्मण-भक्त न हो तो सफल हो जाओगे।" सुद्युम्न शब्दों के मर्म को समझ न सका। शंकर जी अन्तर्हित हो गये।

अपने पुरोहित को लेकर सुद्युम्न ने दक्षिाग्नि में हवन करना प्रारम्भ कर दिया। शंकरजी के शब्दों को ठीक न समझने के कारण संकल्प में ही श्री कृष्णचन्द्र पर प्रयोग पढ़ा गया था, शिवजी ने कहा था अब्रह्मण्य पर प्रयोग सफल होगा, और मूर्खतावश प्रयोग हो रहा था उस पर जिसे आज भी '**नमो ब्रह्मण्ये देवाय**' कहकर विश्व प्रणाम करता है।

प्रयोग पूर्ण होते ही यज्ञकुण्ड से विकराल वेषधारी कृत्तिका उत्पन्न हुई, अनेकों हाथ, लाल रंग के केश, भंकर दाँत, अंगारे से नेत्र, मुख से ज्वाला फेंकती हुई तथा हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिये अग्नि से निकलते ही वह संकल्प के अनुसार द्वारिका की ओर दौड़ी, उसे शक्ति प्रदान करने के लिये नियमानुसार सुद्युम्न का आभिचार यज्ञ चलता ही रहा। वहीं मद्य माँस, उड़द, वस्त्र, केश, नख आदि की आहुतियाँ दिशाओं को अपवत्रि करती रहीं।

भक्त भयहारी प्रभुराज सभा में चौसर खेल रहे थे। नगर के सहस्त्रों आर्त लोगों ने एक साथ पुकार की। "प्रभु! हमारी रक्षा करो, अग्नि देव क्रुद्ध होकर नगर की ओर आ रहे हैं, उन्होंने भयंकर वेष बना लिया है। दिशायें उनके मुख की लपटों से जल रही हैं, वन्य पशु भाग रहे हैं, तनिक देर में ही वे नगर में पहुँच जावेंगे।" सर्वज्ञ ने समझ लिया कि यह तो सुद्युम्न की अभिचार कृत्तिका है, सदा समीप रहने वाले चक्र को प्रतिकार की आज्ञा हुई। भीत लोगों की प्रभु ने अभय देकर आश्वासित किया।

सहस्त्रों सूर्य के समान प्रचण्ड तेजोमय चक्र के सम्मुख अभिचार की क्या शक्ति? तामसिक तेज सात्विकता के समीप ही नहीं आ सकता, चक्र को अपनी ओर आते देख कृतिका उल्टे भागी, अभिचार व्यर्थ नहीं जाते। यदि वे जहाँ प्रयुक्त हुए हैं वहाँ सफल न हों तो प्रयोक्ता को ही ले बीतते हैं, यही हुआ। लौटी हुई कृतिका पुरोहितों के साथ सुद्युम्न को भी भस्म करके ही शान्त हुई ।

चक्र कृत्तिका का पीछा करता हुआ काशी पहुँचा। दुष्टों के साथ, उनके नगर में या उनसे कोई भी सम्बन्ध रखना निरापद नहीं। अपराध तो वे अकेले करेंगे, पर दण्ड उनसे जो भी सम्बन्धित होंगे सबको मिल जावेगा। गेंहू के साथ घुन पिस जाता

है। बाँसों में उत्पन्न अग्नि सम्पूर्ण बन भस्म कर देती है।

अपराध केवल सुद्युम्न का था, पर पड़ा समस्त काशीपुरी के सिर। द्वारिका भस्म करने के संकल्प ने काशी को भस्म कराया। चक्र ने पूरे नगर को उलट-पलट कर जला दिया। केवल वहाँ श्मशान हो गया। वह धन धान्य तथा मनुष्य और पशुओं से पूर्ण नगर कुछ ही देर में भूतनाथ के सच्चे निवास में बदल गया। चक्र इतना सब करके केशव के पास लौट आया। (मानसमणि अप्रैल 1968 से)

"महादेव महादेव महादेवेति कीर्तनात्।
वत्सं गौरवि गौरीशो धावन्त मंनु धावति॥"

"अर्थात् महादेव!! महादेव!!! पुकारने से शिव उसके पीछे ऐसे दौड़ते हैं जैसे बछड़े के पीछे गाय।"



(41) दधीचि

श्लोक— "योऽध्रु वेणात्मना नाथ न धर्म न यशः पुमान्।
ईहते भूत दयया स शोच्यः स्थावरैरपि॥"

"जो समर्थ पुरुष इस नश्वर शरीर के द्वारा प्राणियों पर दया करके धर्म या यश कुछ भी नहीं प्राप्त करता, वह वृक्षों से भी अधिक शोचनीय है।"

देवताओं पर संकट आने पर अपने शरीर का भी दान देने वाले महर्षि दधीचि का नाम प्रत्येक हिन्दू जानता है।

दोहा— परम तपस्वी दधीची, तप शिखर हिमालय कीन्ह।
अनन्य भक्त शिव शंकरहिं, प्रिय अनुचर मनहिं लीन्ह॥

परम तपस्वी महर्षि दधीचि हिमालय के शिखर पर तपस्या करते थे। वे भगवान शिवशंकर के अनन्य भक्त तथा मन से प्रिय अनुचर भी थे।

चौ०— प्रसन्न उनहिं शिवशंकर भयऊ। माँगन वरदानहिं की कहेऊ॥
मांगा निस्पृह भक्तिदाना। अवध्य होन मिला वरदाना॥

उन पर प्रसन्न होकर जब शंकर जी ने वरदान माँगने को कहा तो उन निस्पृह ने केवल भक्तिदान माँगा। प्रसन्न होकर शंकरजी ने उनको अवध्य होने का भी वरदान दिया।

चौ०— अंतरंग सेवक रख लीना। तप में लीन मनहिं उन दीना॥
तप से प्रसन्न इन्द्र तहँ आये। माँगहु वर तुम जो मन भाये॥

शंकरजी ने उन्हें अपने अंतरंग सेवकों में रख लिया। महर्षि दधीचि को तपस्या में ही आनन्द मिलता था, वे बहुधा तपस्या में ही लीन रहते थे, उनकी तपस्या

से प्रसन्न होकर एक बार उनके पास इन्द्र आये और कहा "जो मन में भावै वरदान माँगो।"

चौ०—महर्षि ने उन से अस कहेऊ। प्रसन्नतार्थ शिव तप हम भहेऊ॥
अन्य चाह वरदान न कोई। अभीष्ट न होइ निज इष्टहि सोई॥

महर्षिजी ने उनसे कह दिया, "हम तो भगवान शिव की प्रसन्नतार्थ ही तपस्या करते हैं, हमें कोई भी वरदान नहीं चाहिये, एक तो कोई इच्छा ही नहीं, यदि इच्छा होती तो अपने आराध्य के अतिरिक्त किसी दूसरे से उसकी पूर्ति हमें अभीष्ट नहीं है।"

चौ०—यही हैं लक्षण सच्चे भक्ता। लें निज इष्ट रहै अनुरक्ता॥
फैलावें दूसर सन हस्ता। होहिं नहीं वे सच्चे भक्ता॥

सच्चे भक्त के लक्षण यही हैं। जो भी लेना होगा, अपने आराध्य से ही लेंगे, जो दूसरों की आशा करे, दूसरों के सम्मुख हाथ फैलाता फिरे वह सच्चा भक्त नहीं है। उसे अपने आराध्य का विश्वास ही नहीं है।

दोहा—इन्द्र समझ अपमान निज, तपसी अस साहस कीन्ह।
दण्ड दैन इच्छा हुई, कर ब्रज प्रहारहि लीन्ह॥

इन्द्र ने इसे अपना अपमान समझा "एक तपस्वी का इतना साहस कि वह देवराज का अपमान करे।" दण्ड देने की इच्छा हुई, इन्द्र ने प्रहार करने के लिये अपने हाथ में वज्र उठा लिया।

चौ०—स्तम्भित तेहि हाथ है गयेऊ। वे निज बज्र चलाइ न सकेऊ॥
देखासुरन्ह इन्द्र असहाला। सहायता को आये तत्काला॥

पर हाथ स्तम्भित हो गया व बज्र चला न सके, उनकी यह दशा देख देवता उसी समय सहायता को आ गये।

चौ०—कुवेर वरुण यम आदिहू धाये। तेहि विनय ते विष्णु ब्रह्मा आये॥
शक्ति बड़ी भक्त भगवाना। परवश प्रभु प्रेम पहिचाना॥

वरुण, कुबेर, यमराज आदि तो आये ही, इन लोगों की प्रार्थना करने पर ब्रह्माजी और विष्णु भगवान भी आ गये। भक्तों की शक्ति भगवान से भी बड़ी है, भगवान तो भक्त के प्रेम को पहचान कर उनके वशीभूत रहते हैं।

चौ०—शिव भक्तहिं उत्कर्ष लखाहीं। विष्णु तो निज मन ये चाहीं॥
सकल सुरन्ह शस्त्रास्त्र प्रहारा। मुसकराहट महर्षि धारा॥

भगवान विष्णु को शिव भक्त का उत्कर्ष उन लोगों को दिखाना था। सभी देवताओं ने अपने अस्त्र-शस्त्र का प्रहार प्रयोग किया, महर्षि केवल मुस्कराहट धारण करते रहे।

चौ०—या तो स्तम्भित कर भयेऊ। वे हथियार चलाइन सकेऊ॥
कुछ ने चलाये भी थे उन पर। दूर गिरे मुनि से वे भू पर॥

या तो देवताओं के कर स्तम्भित हो गये, वे हथियार चला ही न सके, कुछ ने चलाया भी तो व्यर्थ रहा। उनके शस्त्रास्त्र महर्षि से कुछ दूर ही पर पृथ्वी पर गिर पड़े।

दोहा—सिंह व्याघ्र शरभादि का, कुछ सुरन्ह रूप धर लीन्ह॥
आक्रमण करना चहहिं, मुनि तेज जलहिं तन चीन्ह॥

कुछ देवताओं ने सिंह, व्याघ्र, शभादि का रूप धारण कर आक्रमण करना चाहा। वह भी व्यर्थ रहा, महर्षि के समीप पहुँचते ही उनके तेज से उनका शरीर जलने लगता था। विवश होकर लौटना पड़ता था।

चौ०—तपस्या महँ विघ्न महर्षि पाहीं। दूर उपद्रव करना चाहीं॥
ऊपर दोनों हाथ उठावा। वाहन विधि विष्णु लै धावा॥

अंत में महर्षि ने इस उपद्रव को तपस्या में विघ्न समझ कर दूर करना चाहा। उन्होंने अपने दोनों हाथ ऊपर को उठा दिये। गरुड़ और हंस तो लक्ष्मीपति विष्णु को और ब्रह्मा को लेकर भाग खड़े हुए।

चौ०—शेष सुरन्ह मूर्छित गिर परहीं। चेतन लौटि लौटि चित धरहीं॥
कोई भी शक्ति केती महाना। दैवी, आसुरी विश्व जहाना॥

शेष देवता मूर्छित होकर धरनि पर गिर पड़े। चेतना लौटने पर वे भी लज्जित होकर लौट गये। कोई भी शक्ति चाहे वह कितनी भी महान हो, दैवी हो या आसुरी, या विश्व की समस्त शक्तियाँ मिलकर कर भी-

चौ०—पराभव करन सक सच भक्ता। आराधक निज इष्ट अनुरक्ता॥
वो आराध्य अभिन्नहिं पाहीं। आराध्य शक्तियाँ तेहि वश जाहीं॥

प्रभु के किसी सच्चे भक्त का पराभव नहीं कर सकतीं। आराधक यदि सच्चे मन से अपने इष्ट से अनुरक्त हैं तो वह अपने आराध्य से अभिन्न होता है, उसमें आराध्य की समस्त शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। विश्वनाथ के सम्मुख विश्व की शक्तियों की क्या महत्ता?

चौ०—सुरन्ह स्वर्ग वृत्रासुर छीना। बिन घर द्वार भये सुरदीना॥
दुःखी होइ वो इत-उत फिरेऊ। शरण तबहिं विष्नु की गयेऊ॥

कालान्तर में देवताओं का स्वर्ग वृत्रासुर ने छीन लिया। वे बिना घर द्वार के होकर मारे-मारे फिरने लगे। दुःखी होकर उन्होंने भगवान विष्णु की शरण ग्रहण की।

दोहा—उन्हें बताया श्रीपति, दधीचि अस्थि तुम पायँ।
तेहि निर्मित उस बज्र से, वृत्रासुर मरि जायँ॥

श्रीपति ने उन्हें बताया कि "यदि महर्षि दधीचि की अस्थि आप पा सको,

उससे वज्र बने तो उस तपोमय तेज से निर्मित वज्र से वृत्रासुर मारा जा सकता है।

चौ०—इन्द्रहिं बड़ी निराशा होई। सकल सुरन्ह जीत पाये न सोई॥
तेहि अस्थि प्राप्त कस होही। केशव धैर्य दियो उनको ही॥

इन्द्र तो बहुत निराश हो गये। जिसे एक बार युद्ध में सब देवता मिलकर पराजित नहीं कर सके थे, उनकी अस्थि कैसे प्राप्त होंगी? केशव ने उन्हें धैर्य देकर कहा—

चौ०—महर्षि दधीचि बड़े ही उदारा। युद्ध या विग्रह पावन पारा॥
विनय करो तहँ माँगत भयेऊ॥ प्रसन्नता से वह दे दयेऊ॥

"महर्षि बड़े उदार हैं, युद्ध या विग्रह से तुम अवश्य उनकी अस्थि नहीं पा सकते, पर माँगने पर विनय करने पर वे प्रसन्नता पूर्वक तुम्हें दे देंगे।"

चौ०—दूसर कष्ट न स्वारथी देखहिं। अन्धा होइ समय तेहि लेखहिं॥
माँगन अस्थि इन्द्र गयेऊ। देवन सह भू टेकत भयेऊ॥

स्वार्थी अपने स्वार्थ के आगे दूसरों का कष्ट देख नहीं पाता, दूसरों की ओर से वह अन्धा होता है। इन्द्र महर्ष्शि से उनकी अस्थि माँगने गये, देवताओं के साथ इन्द्र ने आकर पृथ्वी में लेटकर दूर से ही प्रणाम किया।

(शंकरजी के साथ महर्षि दधीचि भी ब्रह्माजी की उस सभा में गये थे, जहाँ दक्ष ने शंकरजी को अभिवादन न करने पर शाप दिया था जैसे ही दक्ष शंकरजी को दुर्वचन कहने लगा, महर्षि यह कहकर उठ आये कि, "जिस सभा में विश्वनाथ की निंदा होती हो वह बैठने योग्य सभा नहीं।" लौटने पर नन्दी और भृगु के शाप का भी पता चला । इससे दधीचि जी आजकल कुछ खिन्न हो गये थे।)

चौ०—स्वार्थी स्वार्थ प्रसंगहि आही। जरूरत से बहु नम्र दिखाही॥
महर्षि उठ सुर स्वागत करेऊ। कारण आन पूछन चहेऊ॥

स्वार्थी लोग स्वार्थ का प्रसंग आने पर आवश्यकता से अधिक नम्रता दिखाते ही हैं। महर्षि की पिछले युद्ध बी बातें स्मरण भी न थीं। महापुरुष दूसरे के आपकार बहुत शीघ्र भूल जाते हैं. पर दूसरे के उप्कार वे जीवन भर नहीं भूलते, उठकर महर्षि ने देवताओं का स्वागत किया, उनके पधारने का कारण पूछा।

दोहा—हाथ जोड़कर इन्द्र कह, हम आये स्वारथ लीन्ह।
स्वयं कष्ट सह रक्षणहि, आरत दान शरीरहिं कीन्ह॥

इन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! हम तो स्वार्थ वश आये हैं, हमें तो अपने कर्म का दोष दृष्टि पड़ता नहीं, पर आप जैसे दयालु और प्राणियों पर कृपा करने वाले महापुरुष हमसे आर्त शरणागतों की स्वयं कष्ट सहकर शरीर दान करके भी रक्षा करते ही हैं। प्राणियों पर दया करने वाले महात्माओं के लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

चौ०—हम सब शत्रुन्ह पीड़ित होंही। स्वारथ वस शरणागत जोहीं॥
सहज शांत बानी ऋषि कहेऊ। देवराज मुझसे क्या चहेऊ॥

हम सभी शत्रुओं से पीड़ित होकर कुछ स्वार्थ से ही शरणागत हुए हैं। अपनी सहज शान्त वाणी में महर्षि बोले, "देवराज! तुम मुझसे क्या चाहते हो? तुम अपना उद्देश्य बताओ।"

चौ०—इच्छा पूर्ण करूँ प्राण देकर। अस्थि याचना इन्द्र बिनय कर।"
सुनि दधीचि विचलित नहीं होही। नश्वर तन सुरपति ये मोही॥

प्राण देकर के भी मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। इन्द्र ने अस्थियों की याचना की, सुनकर दधीचि ने तनिकभी विचलित या चिंतित नहीं हुए, हँसकर कहने लगे, "सुरपति! ये मेरा शरीर तो नश्वर है।"

चौ०—आज नहीं तो अवस क्षय पावै। भोज्य काग कुत्ता बन जावे॥
आर्त जन रक्षा नहिं करही। गये बीते होहिं तरुन तन धरही॥

आज न सही फिर अवश्य कौवे कुत्तों का भोजन कभी बनेगा। जो इस नश्वर शरीर से आर्त प्राणियों की रक्षा नहीं करता वह तो वृक्षों से भी गया बीता है, वह धर्म प्राप्त नहीं करता।

चौ०—पते डाल दे करें उपकारा। अस सौभाग किमि होइ हमारा॥
घृणित अस्थि मम आयँ सुर कामा। अंततः ये भू ठोकर खामा॥

वृक्ष तो अपनी डाल पत्ते देकर भी लोगों का उपकार करते हैं, मेरे लिये इससे बड़ा और क्या सौभाग्य होगा कि मेरा घृणित हड्डियाँ देवताओं के उपयों में आवें। अंततः तो इन हड्डियों के जमीन पर ठोकर खानी ही पड़ती।

दोहा— धन्य भाग्य मम जो ये, सुरेश्वर हाथ विराज।
उपकारहिं ये आवहीं, सरें देवतन्ह काज॥

"मेरे धन्य भाग्य जो ये सुरेश्वर के कर में विराजेंगी, इनसे देवताओं का उपकार होगा।"

महर्षि ने समाधि लगा ली। उनके आदेशानुसार पृथ्वी ने गौरूप धारण करके उनके शरीर का चर्म, रक्त, माँस, मेद सब चाट लिया। त्याग और सहनशीलता की सीमा हो गई। गाय के चाटते-चाटते शरीर में केवल उज्ज्वल अस्थियाँ ही शेष रह गयीं, मानो उनमें एक माँस, नस आदि थे ही नहीं।

इन्द्र ने उन आस्थियों को लेकर विश्वकर्मा को दे दिया। विश्वकर्मा ने सम्पूर्ण कौशल लगाकर बड़े परिश्रम से उन अस्थियों से वज्र का निर्माण किया, यही वज्र इन्द्र का अमोघ अस्त्र है। वज्र के एक ही प्रहार से वृत्रासुर का नाश हो गया। बहुत से दैत्यों का नाश इन्द्र ने वज्र से किया। जब तक सृष्टि रहेगी वज्र उन परमोदार परोपकारी अनन्य शिव भक्त महर्षि दधीचि की कीर्ति की उज्ज्वल पताका के रूप

में सुरपति के करों को शोभित करता रहेगा। *(मानसमणि मई 1968 से)*

कवित्त—"चिदाकास रूप आसमान में प्रकाशमान,
सुख को निधान सावधान ध्यान धर रे।
एक है अचिंत जो विचिंतीय विश्व बीच,
ताकी चिंत करके निश्चिंत चित्त कररे॥
विपत्ति विनास ह्वै है, संपति सुपास ह्वै है,
पारवती पति को सुदास ह्वै विचर रे।
रहै दुःख दोष हू न, पातक परोसन्हू न,
भोरे आशुतोष को भरोस हिय भर रे॥"



(42) राम-सभा के कथावाचक
-शिव-

श्लोक—"अशनं गरलं फणी कलापो, वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो, तव पादाम्बुज भक्तिमेव देहि॥"

"भोजन विष का, आभूषण के नाम पर सर्प, वस्त्र के स्थान पर चमड़ा और सवारी बूढ़े बैल की! हे शिवजी! आप मुझे देंगे क्या? आपके पास धरा ही क्या है? अस्तु अपने चरण कमलों की भक्ति ही दीजिये।"

चौंकिए नहीं—भोले बाबा कथक्कड़ भी है, सो भी बड़े सुन्दर कथक्कड़! विश्वास हो तो स्कन्द पुराण काशी खण्ड उलट लीजिये।

दोहा— बन लौटत पितृपक्ष में, श्राद्ध पितर प्रभु कीन्ह।
ब्रह्म भोजन करा रहे, भरतादि भोजन दीन्ह॥

पितृपक्ष में वन से लौटने पर एक दिन अयोध्या में रघुनाथ जी पितरों का श्राद्ध कर रहे थे। वे तो ब्रह्मभोज करा रहे थे। भरतादि भ्राता ब्राह्मणों को भोजन परस रहे थे।

चौ०—रघुनाथहिं देखत तहँ रहहीं। जल अन्य वस्तु देत जो चहहीं॥
ताहि समय भोले जी आयेउ। पालती मार बैठ तहँ जायेउ॥

भगवान रघुनाथ देख रहे थे, पूछ कर जल तथा आवश्यक वस्तु भी देते जाते थे। उसी समय भोले बाबा भी घूमते-घामते पहुँच गये और एक ओर पालती मार कर बैठ गये।

चौ०—बोले भोले उनहिं डाँटकर। भोजन मुझे कराओ रुचिकर॥
सादर स्वर्ण थाल रख तबही। लक्ष्मण भोजन परसत जबही॥

और भोले जी डाँटकर बोले, "मुझे भी भोजन कराओ।" आदर पूर्वक आपके सम्मुख लक्ष्मण जी ने स्वर्ण थाल रखा और भोजन परोसा।

चौ०—जो भी वस्तु परसी जावैं। एक ग्रास मुख में रख पावैं॥
एक हाथ संकेत कराहीं। और भोजन लाने कहँ चाहीं॥

जो भी वस्तु आवै-परोसी जावे वह एक ग्रास में ही मुँह में रखते हुए अपने एक हाथ से और लाने को संकेत करने लगे।

चौ०—दूसर आव एक ग्रासहिं पाहीं। ढ़ोते परोसत तंग होइ जाही॥
पूरन न होकर भोले गस्सा॥ हँसे देखि राघव ये दृस्सा॥

दूसरा आया और वह भी एक ही ग्रास, परोसने वाले ढोते-ढोते तंग आ गये, पर आपका (भोले जी) ग्रासपूर्ण नहीं होता था। राघवेन्द्र हँसते हुए ये दृश्य देख रहे थे।

दोहा— राघवेन्द्र सोचा तबहि, चले न ऐसे काम।
जबही सुमिरन कर लिया, अन्न पूर्णा नाम॥

राघवेन्द्र ने सोचा कि ऐसे काम नहीं चलने का, तब उन्होंने अन्नपूर्णा का स्मरण किया।

चौ०—सुमिरन करते देवी आहीं। प्रभु कहा तेहि भोज कराहीं॥
करना तृप्त इन्हें हम नाहीं। थाल समीप वो देवी धाहीं॥

स्मरण करते ही देवीजी उपस्थित हुईं। प्रभु ने कहा, "अपने स्वामी को आप ही भोजन करावें। इन्हें तृप्त करना हमारे वस की बात नहीं।" अन्नापूर्णा जी स्वयं थाल के समीप जाकर खड़ी हो गयीं।

चौ०—बड़ा ग्रास भोले जो उठावें। थाली अन्न समाप्त न पावैं॥
उतने का उतना रह जाहीं। भोजन थाल खान नहिं पाहीं॥

अब शंकरजी चाहे जितना भी ग्रास उठाते, पर थाली का अन्न समाप्त ही न होता था, वह उतने का उतना ही रहता था। **"पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा वशिष्यते"** पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही बच रहता है।

चौ०—भर गया पेट तृप्त है गयऊ। तुमने बहुत खिला मोहि दयऊ॥
उठाओ मुझे अब उठा न जावै। हनूमान पूरी शक्ति लगावै॥

तृप्त होकर शंकरजी बोले, "अब पेट भर गया, तुमने बहुत खिला दिया, अब उठा भी नहीं जाता, उठाओ मुझे।" हनुमान जी को उठाने की आज्ञा हुई, उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगाई, पर रुद्र को न उठा सके।

चौ०—पिता पुत्र से भारी हो हीं। महावीर के पितु ये सोहीं॥
लक्ष्मन जी ने उन्हें उठाया। अनन्त की शक्ति अनन्त कहाया॥

अन्ततः पिता-पुत्र से भारी होता ही है। ये महावीरजी के पिता ही तो थे। प्रभु ने तब लक्ष्मण जी को उठाने को कहा, अनंत के अवतार की शक्ति भी अनंत, लखन लाल ने उठाकर भोले को एक सजी हुई सुंदर शैया पर लिटा दिया।

दोहा— भोजन करके विप्र सब, इन उठन प्रतीक्षा कीन्ह।
उठाने तेहि बड़ी देर लगि सब उठे विप्र चलि दीन्ह॥

भोजन करके बेचारे ब्राह्मण बड़ी देर तक उठने की प्रतीक्षा कर रहे थे, इनके उठने पर तो वे भी उठ पाये और चले गये।

चौ०—लेटे-लेटे आज्ञा देऊ। हाथ मुँह मेरे धोइदेऊ॥
मातु जानकी कर मुँह धोये। धोते समय कुल्ला तेहि जोये॥

इधर लेटे-लेटे ही इन्होंने आज्ञा दी, "मेरे मुँह हाथ धो दो।" मात जानकी ने इनके हाथ धोये, मुँह धोते समय भोले बाबा ने जानकी के ऊपर कुल्ला कर दिया।

चौ०—क्रोध नहीं कर जोड़ कहेऊ। कृपा तुम्हारी मो बड़ भयेऊ॥
उच्छिष्टवारि डारयो तन मेरे। पवित्र हुई सचमुच तुम केरे॥

क्रोध कहाँ? दयामयी जगज्जननी ने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक कहा-"प्रभो! आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की, आपके उच्छिष्ट जल के मेरे शरीर पर पड़ने से मैं पवित्र हो गयी, सचमुच मैं बड़भागिनी हूँ जो आपने मुझे इस महती कृपा का पात्र समझा।"

चौ०—शब्द ये हृदय जानकी माता। उनमें व्यंग लेश नहीं आता॥
यही इति नहीं भोले बाबा। आज्ञा रामचरण मेरे दावा॥

ये जानकी माता के हृदय के शब्द थे, उनमें व्यंग का लेश भी नहीं था। भोले बाबा की यही इति नहीं हुई। पुनः आज्ञा हुई कि "राम जी को आकर मेरे चरण दबाने को कहो।"

चौ०—समाचार पा रघुवर आये। लक्ष्मण रामहिं चरण दबाये॥
पंखा झालन लगीं जानकी। प्रसन्न भये शंकरहि मानवी॥

समाचार पाते ही रघुनाथ ही आ गये, रघुनाथ जी और लक्ष्मण जी चरण दबाने लगे और माता जानकी खड़ी होकर पंखा झलने लगीं मानवी शंकरजी के ऊपर।

दोहा—अब रहने दो मैं प्रसन्नभा तुव लई परीक्षा आइ।
क्रोधहि अवसर बहु दिये, नाम निशान न वाको पाइ॥

भोले बाबा प्रसन्न हो गये, बोले, "रहने दो, मेरी परीक्षा की सीमा हो गयी। मैंने बहुत से क्रोध करने के अवसर दिये पर आप लोगों में नाम मात्र का भी क्रोध नहीं।

चौ०—मैं प्रसन्न हूँ मम मनमाना। माँगो चाहो जो वरदाना॥
हँसते हुए रघुनाथहिं बोले। कहा माँगे हम तुमसे भोले॥

शंकरजी ने कहा, "मैं प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो वरदान मुझसे माँग लो। रघुनाथ जी हँसते हुए बोले-महाराज! हम तुमसे क्या माँगें ?

चौ०—रखते आप पास में जो है। सर्प, चर्म, बैल, ही तो सो है॥
पिशाच और विषादि हैं भारी। इनकी नहीं कुछ इच्छा हमारी॥

आपके पास जो है, सर्प, चर्म, बैल, पिशाच और विषादि वे हमें कुछ नहीं चाहिए।

चौ०—देउ चरण कमलो की भक्ति। निशिदिन उनहिं रहें अनुरक्ति॥
अट्टहास कर शिवजी हँसेऊ। हँसते एवमस्तु कहि दयेऊ॥

हँसी का अट्टहास गूँज उठा। हँसते-हँसते ही शंकरजी ने 'एवमस्तु' कह दिया ।

चौ०—और कछू माँगो मन मांही। राघवेन्द्र बोले अस ताहीं॥
तो फिर आप सभा मम आवैं। सकल जनन मम कथा सुनावैं॥

शंकरजी ने राम से पुनः कहा "और कुछ माँगो" राघवेन्द्र बोले "तो फिर आप मेरी सभा में आकर सभी जनों को मेरी कथा सुनाया करें।"

दोहा— उस दिन से श्री शंकरहिं, श्री राम सभा में आयँ।
पुराने कल्पों की कथा, सबको तहाँ सुनायँ॥

उसी दिन से शंकरजी राम सभा में आकर पुराने कल्पों की श्री रामकथा सुनाने लग गये। *(मानसमणि मई 1968)*

❋ आषुतोष शिव ❋

कवित्त—दरसन करत हरत तीन ताप आप,
परसन पद पाय होत पाप परस न।
परसन काज कौन लेश रहि जान शेष,
शोभित महेश लोक चारि दस हरसन॥
हर सनमानिवरो कौं नैंसुकन श्रम 'मान',
प्रेममान करू मन बाकी ओर करसन ।
कर सन जल पाय, बेल-पात सों अध्याय,
सूल नांसि मूल सों अमोघ देत दरसन॥"

(प्रेमयोगी 'मान')



(43) महिम्न-स्तोत्र

श्लोक—"नमो ने दिष्ठाय प्रियवर दविष्ठाय च नमो नमो
क्षो दिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वषिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो नमः
सर्वस्मै ते तदिदामिति सर्वाय च नमः॥"

"हे अत्यन्त समीप रहने वाले = निदिष्ठ आपको नमस्कार है, हे प्रिय वरदान देने वाले, दूर रहने वाले = विष्ठ आपको नमस्कार है, हे परम सूक्ष्म = क्षोदिष्ठ आपको नमस्कार है, हे काम को भस्म करने वाले महामहिमा शाली = महिष्ठ आपको नमस्कार है, हे अत्यन्त वृद्ध = वषिष्ठ आपको नमस्कार है, हे अत्यन्त युवा त्रिनेत्र! आपको नमस्कार है, यह समस्त विश्व वही है, इस कारण सर्वरूप! आपको नमस्कार है।"

जब किसी पर आपत्ति आती है, तभी उसे भगवान का स्मरण भी होता है। प्रायः सुख में मनुष्य भगवान को भूल जाता है। जिस पर प्रभू बहुत कृपालु होते हैं, उसे बार-बार आपत्ति में डालते हैं। इस आपत्ति के कारण ही तो वह सर्वदा भगवान का स्मरण करता रहता है।

गंधर्व राज पुष्प दल का बनाया शिव महिम्न स्तोत्र से शंकर जी अति प्रसन्न होते हैं।

महान शिवभक्त गन्धर्वराज पुष्पदन्तकी शिवाराधना

परम शिवभक्तों की गणना में गन्धर्वराज पुष्पदन्त का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है।

'शिव महिमास्रोत' शिव विषयक साहित्य का अत्यन्त विशिष्ट और प्रधान अंग है, इसके रचयिता परम शिवभक्त गन्धर्वराज पुष्पदन्त ही थे। शिव की यशभागीरथी में उनकी पवित्र वाणी ने अवगाहन कर शैव जगत को जो रत्न प्रदान किये हैं, वे भक्ति साहित्य की श्रीबुद्धि में सदा अमूल्य योग देते रहते हैं ।

चौ०—नृपहिं एक सुन्दर तहँ उपवन। पुष्पदन्त नित फूल तोड़ि मन॥
आराधना शिवहि हित लावहीं। पुष्पहीन लख दंडमाली पावहीं॥
लेने पुष्प कौन यहाँ आही। प्रयत्न किया माली पता न याहीं॥
फूल लेने जो यहाँ पर आवै। शक्ति विशेष अदृश हो जावै॥

गन्धर्वराज पुष्पदन्त प्रतिदिन शिव की आराधना के लिये प्रातःकाल ही एक राजा के उपवन से सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्प तोड़ लिया करते थे। राजा पुष्पों को न पाकर मालियों को कठोर दण्ड दिया करता था। मालियों ने बड़े-बड़े प्रयत्न किये

पर फूल ले जाने वाले का पता नहीं लगता था, वे सब इस निर्णय पर पहुँचे कि फूल ले जाने वाला उपवन में आते ही किसी विशेष शक्ति की कृपा से अदृश्य हो जाया करता है।

चौ०—सचिवन्ह यह समाधान निकाला। शिव निर्माल्य घेरा उपवन डाला॥
जो निर्माल्य लाँघ जन आहीं। अन्तर्हित शक्ति क्षीण होइ जाहीं॥
ज्ञान न गंधर्वहिं अस बाता। लाँघी निर्माल्य देख लिये जाता॥
गंधर्वराज पकड़ लिये जबही। कारागार डाल दिये तबही॥

सचिवों ने समस्या का समाधान निकाला, सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि 'उपवन के चारों ओर शिवनिर्माल्य' फैला दिया जाय, शिव निर्माल्य को लाँघते ही चोर की अदृश्य होने की अन्तर्धानिका शक्ति क्षीण हो जायेगी। ऐसा ही किया गया, गन्धर्वराज को इस बात का ज्ञान नहीं था। निर्माल्य का उल्लंघन करते ही मालियों ने देख लिया वे पकड़ लिये गये और कारागार में डाल दिये गये।

दोहा—पता चला पुष्प दन्त को, मोते भयो अपराध महान॥
लाँघी शिव-निर्माल्य जो, तोड़ी उसकी आन॥

गन्धर्वराज पुष्पदन्त को जब यह पता चला कि "मैंने शिव-निर्माल्य लाँघकर उसकी आन को तोड़ बड़ा अपराध किया है।"

चौ०—दृढ़ संकल्प मनहिं मन कीन्हा। आशुतोष दयाचित चीन्हा॥
दीन-हीन असमर्थहिं भयेऊ। विवश सर्वथा शिवचित धरेऊ॥
कारागार शिव सुमिरन साधन। अपराध-मार्जन शिवाराधन॥
निश्चय कर प्रसन्न शिव हेतू। स्तोतहि रचना कर मन चेतू॥

तब उन्होंने भगवान आशुतोष को उनकी दया प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प किया। एक दीन-हीन की तरह असमर्थ और सर्वथा विवश होकर गंधर्वराज ने भगवान शिव का कारागार में सुमिरण का साधन बनाया। अपराधमार्जन का एकमात्र उपाय शिवाराधन ही हो सकता है अतः ऐसा निश्चय कर उन्होंने भगवान शिव की प्रसन्नता के लिये मन और चित्त लगाकर स्तोत्र की रचना की जो इस प्रकार है—



(43) शिव महिम्न स्तोत्र

श्लोक 1—महिम्नः पारंते परम विदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मा दीनामपि तदवसन्ना स्त्वयि गिरः।
अथाऽवाच्यः सर्वः स्वमति-परिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर। निरपवादः परिकरः॥1॥

पुष्प दन्त गन्धर्व ने कहा—हे हर! (आप सब दुःखों का हरण करते हैं अतः हर हैं) अर्थात हम संकटग्रस्तों के संकट हटाने में आपको दूसरा व्यापार नहीं करना होगा, आपका नाम ही हर है। हे शम्भो! आपके महिमा की अन्तिम सीमा (अर्थात् आप इतने बड़े हैं यह स्वरूप है, यह महिमा है आदि) को न जानने वाला जो स्तुति करता है। वह स्तुति यदि उचित—उत्तम नहीं है तो ब्रह्म आदि सर्वज्ञों से की गई स्तुतियाँ भी आपके योग्य नहीं हैं (क्योंकि आपका परिमाण नहीं है अतः वे सर्वज्ञ होते हुए भी आपके ज्ञान में अधूरे ही हैं) और वे स्तुतियों मान्य भी हुई हैं, अतएव मैं भी अपनी स्तुति को निर्दोष ही समझता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार कोई भी भक्त आपकी स्तुति का गान करता हुआ हास्य का पात्र नहीं हो सकता, क्योंकि—

"सावाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्म करौ मनश्च।
जिह्वा सतीदार्दुरिकेव सूत! न चोपगाय त्युरु गाय गाथा॥"

वही वाणी है जिससे भगवान का गुणगान करें, जो हाथ भगवान का काम करते हें वही श्लाघ्य हैं जो जीभ भगवान का गुणगान नहीं की वह मेंढ़क की जीभके सरीखे है। अतः हमारा भी यह आरम्भ इस स्तोत्र में निंदा योग्य नहीं है।

श्लोक 2—अतीतः पन्थानंतव च महिमा वाङ्मन सयोरतदव्यावृत्या,
यं चकित ममिधन्ते श्रुतिरपि।
सकस्य स्तोतव्यः, कतिविधगुणः कस्य विषयः पदे त्वर्वाचीने,
पतति न मनः कस्य न वचः॥2॥

हे हर! अर्थात् सगुण तथा निर्गुण महिमा वाणी एवं मन का विषय नहीं है, वेद भी कहता है कि मन सहित वाणी आदि सभी उस परमात्मा को न पाकर लौट आते हैं-(यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह) "मन समेत जेहि जान नवानी" जिस महिमा का वर्णन वेद भी चकित सा होकर करता है अर्थात् श्रुति—वेद सगुण निर्गुण दोनों का वर्णन करते हुए चकित हो जाता है। जैसे सगुण का जगत से अभेद तथा निर्गुण का स्वप्रकाश वर्णन आदि। अतः ऐसी उस महिमा की स्तुति कौन कर सकता है? कोई नहीं, क्योंकि सगुण में कितने गुण हैं तथा निर्गुण में कैसे जाने जा सकते हो, यह जानना कठिन है। परंतु नये भव्य वस्तु के लिये किसका मन तथा वचन नहीं खिच जाता है इसी से आपके महिमा स्तोत्र में मैं भी उद्यत हूँ।

श्लोक 3— मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत स्तव
ब्रह्मन्किम्वागपि सुरगुरोर्विस्मय पदम्।
मम त्वेतां वाणीं, गुण कथन पुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्परमथन! बुद्धिर्व्यवसिता॥3॥

हे ब्रह्मन्! हे विभो! वृहस्पति आदि से की गई स्तुति क्या आपके चमत्कार

का कारण हो सकती है? (अर्थात् नहीं) क्योंकि बिना परिश्रम के ही **श्रीमान् के** निःश्वास द्वारा निकली हुई एवं सब अलंकारों से युक्त मधु के समान मधुर **तथा उत्तम** अमृत सी वह वेद-वाणी अत्यन्त स्वादु है। तत्पर्य यह है कि यदि वृहस्पति आदि की स्तुति में कोई भी विशेषता नहीं है तो हमारी क्या गणना! परन्तु हे पुरमथन! त्रिपुरासुर के मारने वाले प्रभो! आपके गुणगान से जो पुण्य होगा, उससे मेरी बुद्धि निर्मल होगी, इस अभिप्राय से आपकी स्तुति में मेरी बुद्धि उद्यत हुई है।

श्लोक 4— तवैश्वर्यं यन्तज्जगदुदयरक्षा-प्रलयकृत्
त्रयी वस्तु व्यस्तं त्रिसृषु गुणभिन्नासुतनुषु।
अभव्यानामस्मिन् वरद! रमणीयामरमणीं विहन्तुं
व्याक्रोशीं विद्धत इहैकेजऽधियः ॥4॥

हे वरदाता शंकर! सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, रक्षण एवं प्रलय के निमित्त रजः, सत्व और तमोगुण से युक्त क्रमशः ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीन विग्रहों में विभक्त हुए तुम्हारे ये तीनों ऐश्वर्य वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित होते हैं। कुछ मूढ़ लोग तुम्हारे उपर्युक्त ऐश्वर्य का खण्डन करने के लिये दुर्जनों को प्रिय लगने वाली, ऐसी वाणी का उपयोग करते हैं जो निंदामिश्रित होती है।

श्लोक 5—किमीहः किंकायः स खलु किमुपाय स्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादा न इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः कुतर्कोऽयं
कांश्चिन मुखरयति मोहाय जगतः ॥5॥

हे वरद! आप तर्क करने योग्य नहीं हैं आपके विषय में संसार को मोह में डालने वाला, कुतर्क बहुत से दुष्ट बुद्धियों (मूर्खो) को वाचाल बना रहा है कुतर्क यह है—कि वह धाता—परमेश्वर की त्रिभुवन की सृष्टि करता है यह सिद्धान्त है तो जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है चाक चलाता है आदि कई व्यापार करता है वैसे ही ईश्वर भी यदि संसार को बनाता है तो उसकी चेष्टा क्या है? तथा किस शरीर से, किन साधनों से, कौन से आधार पर तथा किस उपादान कारण से रचता है, यदि उसमें ये सभी व्यापार हैं तो वह ईश्वर कैसे? तथा यदि ये व्यापार नहीं हैं तो जगत का बनाने वाला कैसे? इत्यादि। इसका उत्तर इस प्रकार है जैसे आँख से दूसरी चीज देखी जा सकती है न कि आँख अपने रूप को देखती है उसी तरह सब जगत एवं तर्क के अधिष्ठान आप ही हैं अतः किसी भी तर्क से प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते। वेद भी कहता है (ईश्वरे तर्का प्रतिष्ठानात) ईश्वर में तर्क नहीं लगता अतः यही सिद्ध हैं कि दुष्ट लोग आप में तर्क करके संसार को मोह में डाल देते हैं।

श्लोक 6—अजन्मानो लोकाः किमवयवन्तोऽपि
जगतामधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।

अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवरा संशेरत इमे ॥6॥

हे अमरवर! (सब देवों में श्रेष्ठ) क्या ये भू--पृथ्वी आदिलोक अवयव-खण्ड होने पर भी क्या जन्म रहित है? अर्थात् नहीं तथा क्या पृथ्वी आदि की सृष्टि क्रिया बिना किसी अधिष्ठाता-कर्ता के हो सकती है अर्थात् नहीं। और ईश्वर से भिन्न यदि कोई पुरुष इसका कर्ता है तो उसके पास रचना की क्या सामिग्री है? क्योंकि जीव तो अपने शरीर के रचनाओं को ही नहीं जानता चौदहों भुवनों का तो दूर है इस प्रकार आप सब प्रमाणों द्वारा सिद्ध हैं इसलिये वे महान मूर्ख हैं जो आपके विषय में संदेह करते हैं।

श्लोक 7— त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिद्मदः पश्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषाम्
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥7॥

हे अमरवर! जैसे सभी नदियाँ सीधे या एक दूसरे नदी से सम्बन्ध करके समुद्र में ही जाती हैं वैसे ही त्रयी (वेद आदि अठारह विद्या—"पुराणान्याय मीमांसा धर्म शास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।" ये चौदह तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थशास्त्र ये चार) सांख्य, योग, शैवमत, वैष्णवमत आदि अनेक मत तथा आपके प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं। सभी भिन्न-भिन्न मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु साक्षात् या परम्परा या आपको प्राप्त करना ही सबका ध्येय है। जैसे समुद्र में गंगाजी सीधे जाती हैं, रावती आदि सरयू आदि से मिलकर जाती है। वैसे ही वेदान्ती सीधे जाते हैं, कुछ मतवाले परस्परयां जाते हैं परन्तु सबका ध्येय आपका चरण ही है।

श्लोक 8— महोक्षः खटवाङ्ग परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरदा! तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितांनहिं
स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥8॥

हे वरदाता शिव! तुम्हारे कृपामात्र से ही द्वन्द्वादि देवता अनेक प्रकार की सम्पत्तियों का सुखभोग करते हैं परंतु आपके उपभोग की वस्तएँ बूढ़ा बैल, खाट का एक पाया, आत्मरक्षणार्थ परशु, पहनने के लिये व्याघ्र चर्म, शरीर पर मलने के लिए श्मशान भूमि की राख, आभूषण के लिये सर्प एवं भोजन-पात्र के रूप में एक खप्पर। आप केवल इतनी वस्तुएँ रखते हैं। ऐसा क्यों? इसके समाधान का उत्तर यह है कि आनन्दस्वरूप आत्मा में रमण करने वाले जीवन्मुक्त को भी जब

विषयरूपी मृग-तृष्णा अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकती तो आपको क्यों चलायमान कर सकती है?

श्लोक 9— ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्व ध्रुवमिंदपरो
ध्रौव्याऽध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्ये तस्मिन् पुरमथन! तैर्विस्मित इव
स्तुवज्जिहेमित्वां न खलु ननु धृष्टामुखरता॥9॥

हे त्रिपुरारी! इस जगत को सांख्यानुयायी नित्य तथा सत्य, बौद्ध धर्मावलम्बी नश्वर तथा असत एवं नैयायिक संसार में विभेद करके परमाणु रूप नित्य और स्थूल रूप अनित्य मानते हैं। परंतु अनेक सिद्धान्तों में परिभ्रमित होता हुआ भी मैं तुम्हारी स्तुति करने में लज्जा का अनुभव नहीं करता वस्तुतः मेरी वाचालता ही धृष्टता कर रही है, अतः आप मुझे क्षमा करें।

श्लोक 10—तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरन्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमन लस्कन्धवपुषः।
ततो भक्ति-श्रद्धा-भरगुरु गृणद्भ्यां गिरिश! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥10॥

हे गिरिराज! तुम्हारा लिंगाकार स्वरूप अग्नि-स्तम्भ के समान तेजस्वी है। उस स्वरूप को जानने के लिये उर्ध्वभाग अन्तरिक्ष में ब्रह्मा एवं अधोलोक पाताल में विष्णु गये। वे दोनों अपनी पूरी शक्ति के साथ हजारों वर्षों तक तुम्हें खोजते फिरे और अन्त में हताश होकर जब भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति में प्रवृत्त हुए तो आप स्वयं ही प्रकट हो गये। अर्थात् किसी भी कार्य-साधन में जब तक आपका आश्रय नहीं लिया जाता तब तक कार्य सिद्धि उससे दूर ही रहती है। इससे यह निश्चय प्रतीत होता है कि आपकी स्तुति अवश्य फलद होती है। आपकी सेवा से आपका साक्षात्कार तक हो सकता है।

श्लोक 11—अयलादा पाद्य त्रिभुवनमवैर व्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणी रचितः चरणाम्भोरुह बलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहरा विस्फुर्ति तभिदम्॥11॥

हे त्रिपुरारी! रावण ने हजार वर्ष तपस्या कर लेने के बाद उसकी पूर्ण आहूति में हर बार अपने एक-एक मस्तक को काटकर तुम्हें अर्पित कर दिया। तुम्हारे प्रति भक्तिभाव रखने का ही यह प्रभाव था कि रावण ने बिना किसी प्रयास के सहज ही त्रैलोक्य को विजित कर लिया। तिस पर भी उसकी भुजाएँ युद्ध के लिये सदैव लालायित रहा करती थीं।

श्लोक 12—अमुष्य त्वत्सेवा समधिगत सारं भुजवनं
वलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलस चलिताङ्गुष्ठ शिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितोमुह्यति स्वलः ॥12॥

हे त्रिपुरहर! जिस रावण ने अपने पराक्रम के द्वारा आपके कैलाश पर्वत को, आपकी सेवा से ही प्राप्त बल पाकर सहज ही उठाया तो उसको पाताल में भी शरण नहीं मिली क्योंकि आपने धीरे से पर्वत अपने अँगूठे से दबा दिया अतः वह इतना चिल्लाने लगा कि पाताल में भी शरण नहीं रहा। यहाँ ऐसी कथा है कि किसी समय रावण अपने बाहुबल के घमण्ड से कैलाश पर्वत को लंका लाने के लिये गया और हिलाना शुरू किया कि पार्वती ने बताया, तब शिवजी धीरे से अपना अँगूठा दबाये, वह इतना नीचे चला कि पाताल में भी शरण नहीं मिला।

श्लोक 13—यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद! परमोच्चैरपि
सतीन्मधश्चक्रे बाणः परिजन-विधेयस्त्रि भुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयोर्न
कस्याऽप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥13॥

हे वरद! सेवक के समान तीनों भुवन हैं जिसके ऐसे बाणासुर ने सुत्रामा—इन्द्र की बढ़ी-चढ़ी सम्पत्ति को भी नीचा कर दिया। हे प्रभो! इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि वह आपका प्रधान भक्त था। मैं तो यह कहता हूँ कि आपके चरणों में किया हुआ नमस्कार किसके उन्नति के लिये नहीं होता, अर्थात् सभी की उन्नति का कारण होता है।

श्लोक 14—अकाण्डब्रह्माण्ड क्षयचकित देवासुरकृपा
विधेयस्याऽसीद्यस्त्रि नयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो!
विकरोऽपि स्वाध्यो भुवन भयभंग व्यसनिनः ॥14॥

हे त्रिनयन! समुद्रमन्थन से निकले कालकूट नामक महाविष का संहार—पान करने वाला कोई नहीं था, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी डरते थे। परन्तु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नाश की आशंका से चकित इन्द्र, कुबेर आदि देवगण तथा सभी राक्षसगण पर तथा समस्त ब्रह्माण्ड पर कृपा कर जो आपने उस महान विष का पान किया है, उससे गले में जो कल्याण—कालापन हो गया है वह क्या आपकी शोभा को नहीं बढ़ाता है? अर्थात् बढ़ाता ही है। हे भगवान्! संसार के भय को दूर करने का जिसका व्यसन है उसके यहाँ विकार भी प्रशंसा के योग्य हो जाता है।

श्लोक 15—असिद्धर्थानैव क्वचिदापि सदेवासुरनरे
निवर्त्तन्ते नित्यं जगत्रि जयिनो यस्य विशिखाः॥

सपश्यन्नीश त्वमितरसुरसाधारणभभूत स्मरः
स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥15॥

हे ईश! जिस कामदेव के बाण देवता, असुर, मनुष्यादि जितने जगत में हैं—सबको जीत लिये, कहीं भी निष्फल नहीं हुए। ऐसा अस्त्र वाला कामदेव घमण्ड के मारे अन्धा होकर आपको भी अन्य देवताओं के सरीखे समझकर गया, परन्तु फल क्या हुआ कि वह स्मरण करने योग्य हो गया (अर्थात् आपने उसे भस्म करके नाममात्र ही शेष कर दिया) क्योंकि जितेन्द्रियों का अनादर कभी कल्याणकारी नहीं होता, तो आप तो सर्वशक्तिमान हैं और जो सबसे बड़े घमण्डी तथा दुष्ट होते हैं उनको आप ही दुरुस्त करते हैं।

श्लोक 16—मही पादाघाताद् ब्रजति सहसा संशय पदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुज परिघ-रुग्ण-ग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृत जटा-ताडित-
तटाजगद्रक्षायैत्वं नटसि ननुवामैव विभुता॥16॥

हे नटराज! आपका ऐश्वर्य असमर्थों के लिये विपरीत होता है क्योंकि संसार की रक्षा के निमित्त जब आप ताण्डव नृत्य करते हैं "कहीं मैं धँस ज जाऊँ" इस शंका से पृथ्वी अशंकित हो जाती है। नृत्यकाल में भ्रमित भुजाओं के प्रहार से अंतरिक्ष में तारागण भी पीड़ित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त आपकी जटाओं की झटकार से स्वर्गलोक भी डाँवाडोल हो उठता है।

श्लोक 17—वियद्व्यापी तारागण-गुणित-फेनोद्गम-रुचिः
प्रवाहो वारां यः प्रषत लघुदुष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलाधिवलयं तेन कृतमित्यने
नैवोन्नयं धृतमहिम! दिव्यं तव वपुः॥17॥

हे ईश! आकाश में व्याप्त तथा तारागणों की चमक से चमकता हुआ फेन वाला महान वह आकाशगंगा का प्रवाह आपके सिर में छोटा सा बूँद जैसा दिखाई पड़ रहा है, जिस प्रवाह ने ही इस जगत के सातों समुद्रों को भरा है जिससे यह पृथ्वी समुद्र की परिधि वाली कही जाती है अर्थात् जिससे सात समुद्र भरे गये ऐसी आकाशगंगा (भगीरथी, भोगवती, नामकी) आपकी जटाओं में ऐसी सिमिट गयी कि एक छोटा-सा बूँद जैसे बन गई, इसी से आपकी दिव्य मूर्ति का महत्व सिद्ध हो रहा है, अधिक तो कहना ही क्या है?

श्लोक 18—रथः क्षोणी यन्ता शत धृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरण पाणिः शर इति।
दिध क्षोस्ते कोऽयं त्रिपुर तृणमाडम्बर विधिर्विधेयैः
क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रमुधियः॥18॥

हे ईश! आपके सामने तृण के समान जो त्रिपुरासुर था उसके जलाने के लिये आपने यह क्या आडम्बर रचा। पृथ्वी को रथ बनाया, ब्रह्मा को सारथि, पर्वतराज मेरू को धनुष तथा सूर्य, चन्द्रमा को चक्र तथा विष्णु भगवान को बाण बनाया। आपने यह बड़ा ही आडम्बर किया। क्योंकि कोई साधारणजन भी किसी तृन के लिये कुठार नहीं उठाता, आप तो सर्व शक्तिमान हैं। अथवा हे शम्भो! सही है पूर्ण शक्तिशाली लोग आपने वशवर्तियों के साथ क्रीड़ापूर्वक कुछ करते हुए परतंत्र नहीं कहे जाते।

श्लोक 19—हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय
पद्योर्यकोने तस्मिन्निजमुद्हरन्नेत्र कमलम्।
गतो भक्तयुद्रेकः परिणति मसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर! जागर्तिज्जगताम्॥19॥

हे त्रपुरहर! श्री विष्णु भगवान ने आपके चरणों में एक हजार कमलों को भेंट में चढ़ाते समय एक कमल के कम हो जाने पर (जिसको आपने परीक्षा के लिये छिपा रखा था) नियम भंग के डर से आपने नेत्र रूपी कमल को ही उखाड़ कर भेंट कर दिया। हे प्रभो! इसी उत्कृष्ट भक्ति का फल सुदर्शन चक्र है जो कि सारे जगत की रक्षा के लिये सदा सावधान गर्जता रहता है।

श्लोक 20—क्रतौ सुप्ते जाग्रत्वमसि फलयोगे
क्रतुमतांक्व कर्मप्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधन मृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदान प्रतिभुवंश्रुतौ
श्रद्धां वद्ध्वा दृढ़परिकरः कर्मसु जनः॥20॥

हे भगवन्! क्रिया रूप यज्ञादि कार्यों के सम्पन्न होने पर उन्हें उस यज्ञ का फल प्रदान करने के निमित्त आप सतत जागरुक रहते हैं। यज्ञादि कर्म तो क्षणमात्र में समाप्त होकर नष्ट हो जाता है। आपकी आराधना के बिना वह कहाँ और कैसे फलीभूत हो सकता है। अतएव कर्म फल प्रदायक आपको साक्षी मानकर लोग शास्त्रों में दृढ़ श्रद्धा रखकर सत्कर्म में तत्पर होते हैं।

श्लोक 21—क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृताम्
ऋषीणामर्त्विज्यं शरणद! सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुंभ्रंशस्त्वन्तः क्रतुफल-विधान व्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धा विधुरमभिचारायहि मरवाः॥21॥

हे शरणद! यज्ञादि कर्मों में निपुण एवं जीवधारियों के राजा 'दक्ष प्रजापति' स्वयं यजमान थे, भृगु वशिष्ठ आदि महर्षि यज्ञ के ऋत्विज थे, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि देवता स्वस्थ थे, किंतु उस यज्ञ में सफलता के सभी साधन उपलब्ध रहने पर भी वह यज्ञ आप ही के द्वारा विध्वंस हो गया क्योंकि दक्ष की श्रद्धा आप पर नहीं

थी, इसलिये उस यज्ञ का उन्हें विपरीत फल प्राप्त हुआ।

श्लोक 22—प्रजानाथं नाथ! प्रसभमभिकं स्वांदुहितरंगतं
रोहिद् भूतां रिरभार्यषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुंत्रसन्तं
तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभत्यः ॥22॥

हे प्रभो अपने पिता ब्रह्मा के दूषित भाव को देखकर उनकी पुत्री लज्जा के कारण मृगी बन गयी। आपकी पुत्री के साथ बलात रमण के लिये मृग शरीरधारी ब्रह्मा को शिक्षा देने के लिये पिनाक धनुषधारी आपका वाण छूटा, उससे विक्षुब्ध होकर 'मृगशिरा' नक्षत्र बनकर ब्रह्मा के आकाश में गमन करने पर 'आर्द्रा नक्षत्र रूपी आपका वाण उसे अभी भी नहीं छोड़ता। आज भी आकाश में ब्रह्मा मृगशिरा तथा शिव का वाण आर्द्रा नक्षत्र के रूप में दिखलाई पड़ते हैं ।'

श्लोक 23—स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमहूनाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्यायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत-देहार्धघटना दवैति
स्वामद्धावत वरद! मुग्धा युवतयः ॥23॥

हे वरद ! आप पर विजय की लालसा से पुष्प शर उठाये कामदेव को अपने सामने ही तृणवत् भस्मीभूत होते देखकर भी पार्वती उसके तप से प्रसन्न होकर दयालुता के कारण अपने अर्वाग में धारण करने के कारण आपको यदि स्त्री में मोहासक्त समझती हैं तो समझें, क्योंकि प्रायः युवतियाँ विचारविहीन एवं विवेकरहित होती हैं। क्या इससे आप कामी हो सकते हैं ? आप तो परम योगी संसार से अलग हैं।

श्लोक 24—श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मर हर! पिशाचाः
सहचराश्रिता भस्मालेपः स्वमपि नृकरोटी परिकरः।
अमंङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद! परमं मङ्गलमसि॥24॥

हे स्मरहर (कामदेव के नाश करने वाले) श्मशानों में क्रीड़ा करना, भूतप्रेत पिशाचों के साथ में रहना, चिता की भस्म शरीर पर लेप करना, मनुष्यों के शिर की हजारों हड्डियों की माला पहिनना आदि अमंगल चरित्र आपमें हैं वे आपके पास रहे सही। किंतु हे वरद ! स्मरण करने वालों के लिये वही आपका स्वरूप परम मंगल का देने वाला है अतः आप मंगल की कामना वालों से सदा याद करने लायक हैं।

श्लोक 25—मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायान्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।

यदा लोक्या हलादं हृद इव नियज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्वं किमपि यामिनस्तत्किल भवान्॥25॥

अमंगलकारी आचरण करने वाले शिव मंगल रूप कैसे हुए? इसका उत्तर यों है कि योग शास्त्रों में उल्लिखित विधि के अनुसार यमनियमादि अष्टांग योग का अनुष्ठान करने वाले योगीजन प्राण अपान की श्वाँस-प्रश्वॉस रुपगति को प्राणायाम द्वारा स्थिर कर, इस प्रक्रिया द्वारा विशुद्ध मन को अपनी प्रत्येक चेतना आत्मा से स्थिर करते हैं वे अपने हृदय में ही अकथनीय आनन्द तत्व का अनुमान कर रोमांचित होते हैं। अपने नेत्रों से आनंद के आँसू बहाते हुए अमृत-सरोवर में डुबकी लगाकर महान आनंद को प्राप्त करते हैं। वह निर्गुण तत्व आप ही तो हैं। अतः जो लोग आपका ध्यान धारण करते हैं, उनके आप मंगलकारी हैं।

श्लोक 26—त्वमर्कस्त्वं सोम स्त्वमसि पवनस्त्वं
हुतवहस्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मात्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रति गिरम् न
विदनस्तन्तत्वं व यमिह तु यत्वं न भवसि॥26॥

हे प्रभो! आप ही सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा आत्मा हैं इस प्रकार आपके अष्टमूर्ति स्वरूप का वर्णन करने में कितने ही विद्वान संकुचित वाणी को भले ही कहें, किंतु मैं संसार की ऐसी कोई वस्तु नहीं जानता, जिसमें आप न हों।

श्लोक 27—त्रयीं तिस्त्रो वृत्ती स्त्रिभुवन मधो त्रनिपि
सुरान्नकाराद्यैर्वर्णौ स्त्रिभिरमिदधन्तीर्ण विकृतिः।
तुरीयं ते धाम ध्वनि भिरवरुन्धानमवुभिः समस्तं
व्यस्तं त्वां शरणद! गृणात्यो मिति पदम्॥27॥

हे शरणदायक! सम्पूर्ण मंत्रों का बीज रूप 'ॐ' नाम अकार, उकार और मकार—इन तीन वर्णों में विभक्त ऋक, यजु, साम, इन त्रयी वेद जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अथवा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय इन तीनों के रूप में स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, इन तीनों रूपों में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश-त्रिदेवों के रूप में, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, शरीर, विश्व, तेजस, प्राज्ञविराट् हिरण्यगर्भ, ईश्वर, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव आदि अनेक त्रिपुटी रूप में ही व्यक्त वाच्यार्थ—सूक्ष्म, अर्धमात्रा रूप ध्वनि द्वारा समग्र

भूः भुवः स्वः—त्रिपुटी से अतीत = तुरीय आपके निर्विकार विशुद्ध निर्गुण स्वरूप को लक्ष्य करता है। अर्थात् चतुर्थ अखण्ड चैतन्य रूप को सदा गाता है।

श्लोक 28—भवः शर्वो रुद्रः पशुपति रथोग्रः सह
महांस्तथा भीमेशानाविति यदविधानाष्टकामिदम्।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुति रपि
प्रियायाऽस्मै धाम्ने प्रणिहित नमस्योऽस्मि भवते॥28॥

हे देव! भक्तों के मानस पटल में आनन्द स्वरूप प्रकट होने के कारण 'भव[1]' उन्हें सुखी करने के कारण 'शर्व[2]' दुष्टों को रुलाने के कारण 'रुद्र[3]', अज्ञानी जनों का रक्षण करने से 'पशुपति[4]', अविद्यादि पंचक्लेशों को ज्ञानाग्नि में दग्ध करने के कारण 'उग्र[5]' ईश के भी ईश होने से 'सहमहान[6]', अधर्मियों के लिये भयंकर होने से 'भीम[7]' एवं सम्पूर्ण जगत के शास्ता होने से 'ईशान[8]' आदि आपके आठ नाम विख्यात हैं। इस प्रकार परमप्रिय ज्योतिरूप आपको मैं मन और वाणी से साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

श्लोक 29—नमो नेदिष्ठाय प्रियदव! दविष्ठाय च नमो नमः
क्षोदिष्ठाय स्मरहर! महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन! याविष्ठाय च नमो नमः
सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥29॥

हे एकान्त प्रिया! विद्वानों के लिये निकट से भी निकटतर आपको मेरा नमस्कार है। अज्ञानियों के लिये दूर से भी दूरतर स्थित रहने वाले आपको मेरा नमस्कार है। हे मदनारि! सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर एवं व्यापक से भी व्यापक आपको नमस्कार है। हे भगवान् प्राचीन से भी प्राचीनतर नवीन से भी नवीनतर, सर्वात्मरूप, प्रत्यक्ष, अपरोक्ष तन मन वाणी से अतीत आपको नमस्कार है।

श्लोक 30—बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हरायनमोनमः।
जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ गृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः ॥30॥

हे भगवन्! संसार की सृष्टि के लिये रजोगुण प्रधान ब्रह्मा की मूर्ति धारण करने वाले आपके लिये बार-बार नमस्कार है। जीवमात्र के सुख के लिये सतोगुण प्रधान विष्णु रूपधारी आपको नमस्कार है, सबके नाश की इच्छा से तमोगुण प्रधान हर रूप धारण करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है एवं माया से परे तथा तीनों गुणों से रहित आपको बार-बार नमस्कार है। अर्थात् निर्गुण होते हुए भी आवश्यकता पर सगुण रूप धारण करने वाले आपके लिये बार-बार नमस्कार है।

श्लोक 31—कृशपरिणतिन्वेतः क्लेशवश्यं क्वचेदम्
क्व च तव गुण सीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दी कृत्य मां भक्तिराधा
द्वरद! चरणयोस्ते वाव्य पुष्पोपहारम्॥31॥

हे वरद! दुर्बल परिणाम वाला एवं अत्यन्त क्लेश के वश में रहने वाला कहाँ हमारा क्षुद्र चित्त, कहाँ आपकी बढ़ी चढ़ी हर एक गुणों की सीमाओं को लाँघने वाली ऋद्धियाँ, तो भला स्तुति कैसे करू? ऐसे चकित मंद मुझको 'मेरी भक्ति'

चमत्कारयुक्त बना कर आपके चरणों में यह वाक्यरूपी फूलों की माला सेवा में सादर अर्पित कराई है। अर्थात् हे प्रभो! यह पूवोक्त स्तुति मेरे सामर्थ्य से बाहर रही, परंतु आपको विषयों में जो मेरी भक्ति है उसने दृढ़ बनाकर यह स्तुति कराई है, जैसे 'पुष्प' रस लेने वाला भौंरा तथा पथिकों को अपने गंध से सुखी करता है उसी तरह यह स्तुति भक्त रसिकों को तथा सुनने वालों को यथायोग्य सुख देती है।

श्लोक 32—असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरूवरशाखा लेखनी पत्र मूर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वां शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश! पारंन याति ॥32॥

हे ईश = सर्व समर्थ—समुद्ररूपी पात्र = दवात में काले पर्वत के समान कज्जल = स्याही हो और सुरतरूवर = कल्पवृक्ष की शाखा की लेखनी = कलम हो, तथा सम्पूर्ण पृथ्वी पत्र = कागज हो, इन सबको लेकर साक्षात् सरस्वती भी निरंतर लिखा करें तब भी हे प्रभो आपके गुणों का पार नहीं पा सकती, तो हम सरीखे क्षुद्रजन की क्या बात है, अपरिमित गुण वाले हैं।

श्लोक 33—असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चित स्येन्दुमौलेर्ग्रथित गुण
महिम्नो निर्गुणस्ये श्वरस्य।
सकलगुणवषिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो रुचिरमल
ध्रुवृन्तै स्तोत्र मेतच्चकार ॥33॥

राक्षस देवता एवं मुनीन्द्रों से पूजित तथा ललाट में हैं, चन्द्रमा जिनके ऐसे तथा जिनके गुणों की महिमा यहाँ एक माला के रूप में गुंथी गई है, ऐसे निर्गुण ईश्वर के इस सुन्दर स्तोत्र को पुष्प दन्त नामक यक्षराज ने अलघुवृत्तैः (बहुत बड़े परिश्रम से अथवा शिखरिणी आदि छन्दों से) बनाया।

श्लोक 34—अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्र मेतत् पठति
परम भक्तया शुद्धचित् पुमान्यः।
सभवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रावान्कीर्तिमांश्च ॥34॥

जो शुद्ध हृदय वाला पुरुष परम भक्ति पूर्वक धूर्जटि = महादेव के इस पवित्र स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है वह शिवलोक में रुद्रों के समान होता है अर्थात् उसकी पूजा होती है और इस लोक में अत्यन्त धन, आयु, पुत्र एवं यश आदि को प्राप्त करता है अर्थात् दोनों लोक उसके बन जाते हैं।

श्लोक 35—महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरास्तुतिः।
अधोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्वं गुरोः परम ॥35॥

श्रीमहादेव जी से बढ़कर कोई देवता नहीं है महिम्न स्तोत्र से बढ़का कोई स्तोत्र नहीं है, अघोर मंत्र से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है। अघोर मंत्र वैदिक मंत्र है, गुरु से बढ़कर कोई तत्व नहीं है।

श्लोक 36—दीक्षादानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥36॥

दीक्षा, दान, तप, तीर्थ, भ्रमण, उपासना, योगादि कर्म आदि इस महिम्न स्तोत्र पाठ के सोलहवें अंश के समतुल्य भी नहीं हो सकता।

श्लोक 37—कुसुमदशननामा सर्वगंधर्वराजः
शशिधरन्धरमौलोर्देव देवस्य दासः।
सखलु निज महिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवन मिदमकार्षीद दिव्यदिव्यं महिम्नः॥37॥

भाल में बाल-शशि धारण करने वाले देवाधिदेव शिव का दास गन्धर्वराज पुष्पदन्त, अपने गर्व के कारण शिव द्वारा शापग्रस्त हुआ। अपने शाप की मुक्ति के लिये इस पुष्पदन्त ने इस शिवमहिमा की रचना की।

श्लोक 38—आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वर वर्णनम्॥38॥

अनुपम ऐसा एवं मन को हरने वाला परम मधुरशिव = कल्याण स्वरूप वह समाप्तिपर्यन्त ईश्वर वर्णात्मक पवित्र स्तोत्र गन्धर्वराज से कहा गया॥38॥

श्लोक 39—सुरवर-मुनि-पूज्यंस्वर्ग मोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नाऽन्यचेताः।
ब्रजति शिव समीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिद ममोघं पुष्पदन्त प्रणीतम्॥39॥

पुष्पदन्त का बनाया हुआ अमोघ = व्यर्थ नहीं होने वाला, बड़े-बड़े देवताओं और मुनियों से पूज्य और स्वर्ग तथा मोक्ष को देने का कारण जो यह स्तोत्र है इसको मनुष्य एकाग्रचित्त हो एवं हाथ जोड़कर यदि पढ़े तो मार्ग में किन्नरगण द्वारा स्तुति = प्रशंसा प्राप्त करता हुआ श्री शिवजी के पास पहुँच जाता है।

श्लोक 40—श्रीपुष्पदन्त-मुखपंकज-निर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विष हरेण हर प्रियेण।
कण्ठास्थितेन-पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः॥40॥

श्री पुष्पदेव के मुख कमल से निकले हुए सब पापों के दूर करने वाले श्री शिवजी के प्रिय स्तोत्र के कण्ठस्थ पाठ तथा एकाग्रचित्त पाठ से भूतों के नाथ श्री महेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

श्लोक 41—इत्येषा वाङ्गमयी पूजा श्रीमच्छंकर पादयोः।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदाशिवः ॥41॥

यह वाणी रूपी पूजा श्री शंकर भगवान के चरणों में सादर समर्पित है इससे हे सदाशिव! आप सदैव हम पर अपनी कृपा बनाये रखो।

श्लोक 42—तव तत्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेवतादृशाय नमोनमः ॥42॥

हे महेश्वर! आप कैसे हैं? क्या रूप है कितने गुण हैं इत्यादि मैं नहीं जानता, आप जैसे हैं वैसे ही के लिये नमस्कार है।

श्लोक 43—एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥43॥

जो साधक भक्त इस महिमा स्तोत्र का प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल पाठ करते हैं वे समस्त पापों से मुक्त होते हैं तथा शिवलोक = कैलाश में निवास करते हैं। ऐसा स्तोत्र पुष्पदंत ने रचकर शिव की स्तुति की।

आशुतोष भगवान भोलेनाथ की तो गति न्यारी ही है, भक्त पुष्पदन्त ने शिव को सच्चे हृदय से पुकारा था अतः भगवान शंकर कारागार में ही प्रकट हो गये, वहाँ दिव्य प्रकाश छा गया। गन्धर्वराज ने देखा कि—

चौ०—मस्तक पर गंगा मुस्काई। नील कंठ शोभा अति पाई॥
गौर वर्ण पर सर्पन्ह माला। तन भभूति पट केहरि छाला॥
सुन्दरता प्रतिक्षण बढ़ि जाई। लोटी सम्पति चरणन आई॥
चरणधूलि मस्तकहिं लगाई। अभयदान दियो शिवअपनाई॥

भगवान शिव के मस्तक पर गंगा मुस्करा रही हैं, कंठ नीला शोभायमान है, गौरवर्ण पर सर्पों की मालाएँ बड़ी सुंदर लग रही हैं। शरीर पर भस्म लपेटे, गज की खाल से प्रतिक्षण उनकी सुन्दरता बढ़ती जा रही है। लोक-लोकान्तर की समस्त सम्पदा उनके चरणों पर लोट रही है, भगवान शिव के साक्षात्कार ने उनकी भीषण तपस्या को सफल करके उन्हें अभयदान दिया, उनका अपराध मिट गया, भगवान की चरधूलि को सिर पर चढ़ाकर उनकी स्तुति की।

दोहा—दिव्य दर्शन बंदीग्रह, शिव दियो भक्त कूँ आय।
माँगेउ क्षमा नृप आइकर, दर्श भक्त का पाय॥

भगवान शिव ने कारागार में आकर अपने दिव्य दर्शन दे पुष्पदन्त को मुक्त दिया, उनको कारागार में बंद करने का साहस दूसरा व्यक्ति भला किस तरह कर सकता, राजा ने स्वयं उपस्थित होकर उनसे अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी, भक्त का दर्शन किया।

स्कन्द पुराण अवन्ती खण्ड लिंग माहात्म्य के 77वें अध्याय में पुष्पदंत की

शिवभक्ति के विषय में एक रोचक कथा आई है-प्राचीनकाल में शिवि नाम के एक धर्मात्मा अयोानिज ब्राह्मण थे, उनके कोई संतान नहीं थी, उन्होंने अयोनिज पुत्र की प्राप्ति के लिये कठोर तप द्वारा भगवान शंकर की आराधना की, अपने महान तप से महान तेजस्वी हो गये, उनकी घोर तपस्या से भगवान शंकर ने अपने गणों का स्मरण किया, क्षण भर में ही सहस्रों महान रुद्रगण उपस्थित होकर जिनमें गुणाधिक्य पुष्पदन्त भी थे उनसे भगवान शंकर बोले—गणो! शिनी नामक ब्राह्मण मेरा बड़ा भक्त है वह अयोनिज एवं अजर-अमर पुत्र की इच्छा से महान तप कर रहा है तुममें कौन ऐसा है जो भूलोक में उनका पुत्रत्व स्वीकार करेगा-मुझे भक्त की इच्छा पूर्ण करनी है क्योंकि मेरे भक्त का संकल्प मिथ्या नहीं हो सकता—"भक्तस्य न संकल्पो मिथ्याभवितुमर्हसि" *(अवंती० लिंग० अ० 77।27)*

भगवान शंकर का सानिध्य छोड़कर भूलोक के सभी भोगों का तुच्छ आनंद प्राप्त करना किसी भी गण को अभीष्ट नहीं था, अतः सभी नीचा मुख कर मौन रहे वहाँ पुष्पदंत गणाग्रणी थे, शिव के परमप्रिय थे, शिव की माया से मोहित हो वे बोल पड़े-'हे देव! इस उत्तम गति को प्राप्त कर अब हम भूलोक जाने को तैयार नहीं हैं' पुष्पदन्त से आज्ञापराध हो पड़ा था, अब तो कोपभाजन बनना ही था। भगवान ने उन्हें अप्रिय बचन कहने के कारण मनुष्य लोक में जन्म लेने का शाप दे डाला और वीरक को विप्रवर शिनि के पुत्रत्व प्राप्त करने के लिये कहा, भगवान की आज्ञा से वीरक ने ब्राह्मण पुत्र के रूप में उनका अनुग्रह प्राप्त किया।

इधर शाप से दुःखी हो भूलोक में आकर पुष्पदन्त करुण विलाप करने लगे, प्रभु की आज्ञा न मानने के कारण पश्चातप करने लगे और दुखित हो पुनः भगवान महादेव की शरण ग्रहण की, अन्य कोई उपाय नहीं था। बड़े ही दीन स्वरों में बार-बार प्रणिपात करते हुए प्रार्थना करने लगे—

दीनोऽस्मि ज्ञान हीनोऽस्मि प्रणतोऽस्मि च शंकर।
कुरु प्रसादं देवेश अपराधं क्षमस्व मे॥
नहिं निर्वइणं यान्ति प्रभूणा माश्रिता रूषः।
प्रसीद देव देवेश दीनस्य कृपणश्च च॥
अपि कीटपतंगत्व गच्छेयं तव शासनात्।
भक्तोऽहं सर्वदा देव पुत्रत्वे हि प्रतिष्ठितः॥

(स्कंद पु० भक्ती लिंग 77।44,46)

पुष्पदंत की भक्तिनिष्ठा एवं स्तुति से माता पार्वती एवं भगवान शिव प्रसन्न हुए उन्होंने उसे दर्शन देकर महाकाल वन में जाकर आराधना करने को कहा, फिर क्या था, पुष्पदन्त महाकाल वन में गये वहाँ उन्होंने 'शिवलिंग' रूप में भगवान की आराधना की। उनकी उपासना से भगवान प्रसन्न हुए। वे भगवती पार्वती और

देवगणों के साथ महाकाल वन में गये। पुष्पदन्त नित्य पुष्पों से महादेव जी का अर्चन करते थे, उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने वात्सल्य के वशीभूत हो स्नेहवश पुष्पदन्त को उठाकर अपनी गोद में बिठा लिया और पुनः अपने गणों का अधिपति बना लिया। पुष्पदन्त द्वारा प्रतिष्ठित वह लिंग 'पुष्पदन्तेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हुए। अवन्ती खण्ड में इस लिंग की बड़ी महिमा गायी गई है।



(44) कणप्प भील

श्लोक—"मूर्खो वदति विश्नाय धीरो वदति विष्णवे।
उभयोस्तु फलं तुल्यं भावग्राही जनार्दनः॥"

"मूर्ख 'विश्नाय नमः' कहता है और पंडित 'विष्णवे नमः' कहते हैं, पर दोनों का फल बराबर ही है। क्योंकि भगवान तो = कर्म नहीं, केवल हृदयगत भाव को ग्रहण करते हैं।"

घोर वन में एक भील राज रहते थे। उनका एक अत्यन्त पराक्रमी पुत्र था भीम। पिता की भाँति ही भीम भी दक्ष शिकारी था। एक दिन धनुष बाण लेकर वह वन में शिकार खेलने गया। दोपहर में शिकार के पश्चात् घूमते-घूमते एक पहाड़ी पर जा निकला। पहाड़ी पर एक मन्दिर था। उस मन्दिर में शंकरजी की एक ऐसी लिंग मूर्ति थी जिसके अग्र भाग पर मुख की आकृति बनी थी। भीम ने साथ के नौकर से पूछा कि "यह किसकी मूर्ति है? इस पर यह फूल-पत्ते किसने डाल रखे हैं? नौकर ने बताया कि यह शंकर की मूर्ति है, बहुत वर्षों से एक ब्राह्मण नित्य यहाँ आकर पूजा करता है। भीम ने पूछा-"पूजा कैसे करता है?" सरल भील ने उत्तर दिया "पहले मूर्ति पर पानी डालता है, फिर पत्ते रखता है, फिर फूल रखता है, फिर कुछ खाने को आगे रखकर हाथ जोड़कर, आँख बन्द करके संभवतः खाने को कहता है।"

मनुष्य के हृदय में जन्म जन्मान्तर के जाने कितने संस्कार पड़े होते हैं, किसी-किसी में तो कोई बहुत प्रबल संस्कार ऐसे होते हैं कि वह तनिक से निमित्त मिलते ही जाग्रत हो जात हैं, भीम में भी ऐसे ही शिव-भक्ति के संस्कार थे।

दोहा— शीघ्र दौड़कर वो तभी, रो लिपट मूर्ति मेल।
भयानक बन में मम प्रभु, रात्रि कस रहत अकेल॥

वह शीघ्र दौड़कर मूर्ति से लिपट कर रोने लगा" मेरे प्रभु! तुम इस भयानक वन में रात्रि को अकेले कैसे रहते हो?

चौ०—आते होंगे शेर अरु चीता। डरकर तुम होंगे भयभीता॥
कष्ट तुम्हें दे पशु आ कोई। मैं कस पशु न आनहु जोई॥

यहाँ तो शेर-चीते भी आते होंगे, तुम्हें डर लगता होगा, भयभीत हो जाते होंगे, कोई पशु आकर तुम्हें कष्ट भी दे सकता है। नहीं नाथ! मैं किसी पशु को अब यहाँ नहीं आने दूँगा।

चौ०—मैं न यहाँ से जाऊँ कबहू। रोते-रोते भाव अस अहहू॥
समझा नोंकर पागल होई। बहुत कहा घर जाइ न वोई॥

मैं अवश्य अब यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा, अपनी भावना के अनुसार भीम रोते-रोते कहता गया। नौकर ने समझा कि कुमार तो पागल हो गये, उसने बहुत चेष्टा की, पर भीम धर जाने को उद्यत न हुआ।

चौ०—तेहि पितु नोंकर हाल सुनाया। उपेक्षा भाव भील उर आया॥
एक दो दिनहिं स्वतः आजावहिं। अकेले गिरि साहस ही बढ़ावहिं॥

नौकर ने आकर उसके पिता को उसका हाल सुनाया, बुड्ढे भीलराज ने पुत्र की दशा सुनकर उसके स्वभाव के अनुसार उपेक्षा कर दी, **"एक दो दिन में स्वतः आ जावेगा, उसका अकेले पर्वत पर रहना साहस ही बढ़ावेगा॥"**

चौ०—लिपटा भीम मूर्ति रोवा। रोते-रोते सन्ध्या होवा॥
अँधेरा होत लिया धनु बाना। द्वार आइ पहरा मन ठाना॥

भीम वहाँ मूर्ति से लिपटा रो रहा था, रोते-रोते संध्या हो गई। अँधेरा होते देख उसने धनुष बाण उठाया और मन्दिर से बाहर आकर द्वार पर पहरेदारी अर्थात् रखवाली करने लगा।

दोहा—सावधान होकर जगेउ, दीनी राति बिताय।
पूजाहित सामान को प्रातः वन में जाय॥

बड़ी सावधानी से उसने रात्रि जागते व्यतीत की। प्रातः होते ही वह देवता की पूजा के लिये सामान लाने वन में चला गया।

चौ०—बन में जाइ शिकारहि कीन्हा। एक शशक मारि तेहि लीन्हा॥
माँस निकाल के टुकड़े कीये। अग्नि प्रकट भून वे लीये॥

भीम शिकारी तो था ही, वन में जाकर उसने एक शशक मार कर उसका माँस निकाल कर टुकड़े-टुकड़े किये और लकड़ियाँ एकत्र करके चकमक से अग्नि उत्पन्न कर बाण में एक-एक माँस का टुकड़ा बेधकर सब भून लिये।

वन में कहीं शहद की मक्खियों के छत्तों से शहद भी ले आया, फिर उन टुकड़ों को शहद में डुबाया। थोड़े से फूल और पत्ते भी तोड़ लिये। यह सब करते हुए भीम को दोपहर हो गया। वह चिंतत था कि देवता अभी तक भूखे होंगे, यथा सम्भव शीघ्रता कर रहा था। पहाड़ी के नीचे स्त्रोते के मुख में जल भर लिया, फूल और पत्ते बालों में लगा लिये, एक हाथ में धनुष और दूसरे में बाण में पिरोये भुने माँस के टुकड़े लेकर वह शीघ्रता से पहाड़ी पर चढ़कर मन्दिर में आया।

ब्राह्मण देवता मन्दिर से पूजा करके जा चुके थे। भीम के हाथ खाली तो थे नहीं, पैर के जूते से ही उसने मूर्ति पर चढ़े फूल पत्ते हटाये। मुख में लिये जल को चढ़ाने के लिये मूर्ति पर कुल्ला कर दिया। धनुष एक ओर रखकर बालों में लगे पत्ते और फूल मूर्ति पर रख दिये। अंत में माँस को एक पत्ते पर सामने रखकर नेत्र बन्द करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा, "देवता! यह शशक का बड़ा कोमल माँस है, मैंने इसे बहुत भली प्रकार भूना है, इसमें पर्याप्त मधु भी डाला है, यह बड़ा स्वादिष्ट होगा, शरीर को पुष्ट बनावेगा, आप इसे अवश्य भोजन करें।" बड़ी देर तक प्रार्थना करने पर भी भीम ने देखा कि देवता ने माँस नहीं खाया। "सम्भव है अभी भूख न लगी हो, फिर खावेंगे, या मेरे अपरिचित होने से संकोच करते हो।" वह माँस को वहीं छोड़कर धनुष बाण लेकर बाहर जा बैठा।

भीम देवतामय हो गया था, उसे अपने भोजन, जल या निद्रा का ध्यान नहीं था। उसे दुःख यही था कि देवता उसका लाया हुआ माँस खाते नहीं। रात्रिभर पूर्ववत् जागरण करके वह प्रातः नवीन माँस लेने वन में चला गया। इधर मन्दिर में आने पर ब्राह्मण देवता ने माँस पड़ा देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। "हरे! हरे! कोई दुष्ट मन्दिर को भ्रष्ट कर गया।" क्या करते? पूजा सामिग्री बाहर रखकर माँस फेंका, नीचे के स्त्रोत से जल लाकर मन्दिर को भली भाँति धोया, दुबारा स्नान करके तब पूजा की। फिर घर को चले गये।

भीम वन से लौटा और उसने अपनी पद्धति के अनुसार पुनः पूजा की। ब्राह्मण देवता को दूसरे दिन भी मन्दिर में माँस मिला, और तीसरे दिन भी। ये भी प्रभु के सच्चे भक्त थे। तीसरे दिन इन्हें चरम सीमा की ग्लानि हुई। मन्दिर धोकर पूजा करते समय फूटकर रोने लगा। यह कौन दुष्ट नित्य मन्दिर को भ्रष्ट कर जाता है।"

प्रभु तो भक्त की सच्ची प्रार्थना सुनने को सदा उद्यत रहते हैं। मन्दिर में शब्द हुआ—"ब्राह्मण देवता! आप व्यर्थ शोक कर रहे हैं, यह माँस डालने वाला दुष्ट नहीं, वह तो मेरा परम भक्त है। ओह! कितना सरल भक्त है। आप तो जानते हैं कि मैं बाह्य पदार्थों से प्रसन्न नहीं होता, मैं प्रसन्न होता हूँ निर्मल प्रेमपूर्ण हृदय से। मुझे ऐश्वर्य और पवित्र वस्तु उतना प्रसन्न नहीं करती, जितनी प्रेम से अर्पित एक तुच्छ वस्तु।

वाणी गद्गद् हो उठी "यह मेरा एक भील भक्त है। जब वह अपने जूते से मेरे ऊपर के पुष्प पत्र हटाता है तो मुझे पार्वती जी के से सुखद स्पर्श का अनुभव होता है। उसका कुल्ला किया हुआ जल गंगा जी की भाँति मेरा शिरोधार्य है। उसके केशों से निकले पत्र पुष्प कल्पवृक्ष के पुष्पों से भी मनोहारी हैं और उसका दिया हुआ माँस मुझे षटरस व्यंजन से भी सहस्त्रों गुणा अधिक प्रिय हैं। आपको उसका प्रेम देखना हो तो यहीं कहीं छिप रहिये।" ब्राह्मण देवता वहीं मन्दिर की आड़ में छिप गये।

भीम ने मन्दिर में आते ही देखा कि देवता के बाएँ नेत्र से रक्त जा रहा है। वह क्रोध और दु:ख से व्याकुल हो गया। माँसादि एक ओर रखकर धनुष लेकर बाहर इधर-उधर दौड़ने लगा—"किसने देवता को मारा है।" पर कोई पशु भी आसपास न मिला। फिर लौटकर वह धनुष रखकर वन में चला गया। थोड़ी देर में एक घास फूँस का एक ढेर सिर पर लिये लौटा। उसे घाव की जितनी जड़ी बूटियाँ ज्ञात थीं, सब ले आया था। एक-एक को रगड़ पीसकर देवता के नेत्र पर रखकर देखने लगा। सब व्यर्थ हुईं, रक्त किसी से भी बन्द न हुआ।

भीम अब और व्याकुल हो गया "अब क्या करे?" सहसा एक बूढ़े भील से सुनी एक दवा स्मरण हुई। "घाव पर माँस लगाने से यदि जहाँ घाव हो उसी स्थान का माँस लगे तो झट ठीक हो जाता है" बिना हिचकिचाहट के वाण की नोंक को अपने बाम नेत्र में घुसाकर भीम ने अपना नेत्र निकाल लिया। नेत्र देवता के नेत्र पर लगाते ही रक्त बन्द हो गया। भीम हर्ष से उछल पड़ा। "अरे यह क्या?" अब देवता के दाहिने नेत्र से रक्त आने लगा। एक क्षण केवल भीम उलझन में रहा। दूसरे ही क्षण उसने अपने पैर का अँगूठा देवता की दाहिनी आँख पर रखा क्योंकि दूसरी आँख के निकलने पर देख तो पाता नहीं, इसीलिये देवता की दाहिनी आँख पर पता लगाने के लिये अँगूठा रखा था।

वाण अभी दूसरी आँख तक पहुँचा ही था कि मूर्ति से प्रकट होकर शंकरजी ने हाथ पकड़ लिया। "पुत्र! बस परीक्षा हो गयी, मैं प्रसन्न हूँ। आज से कैलाश में मेरे बाम भाग में तेरा स्थान हुआ।" भीम का नेत्र ठीक हो गया। प्रभु उसे लेकर कैलाश पधारे। नेत्र चढ़ाने के कारण भीलों की भाषा में भीम का नाम 'कणप्प' पड़ गया। *(मानसमणि जून 1968 से)*

❃ श्री हरि-हर साम्य वर्णन ❃

कवित्त—"उनते कढ़ी है गंग, इनते बढ़ी है गंग,
वे हैं जो मुरारी वो पुरारीए कहावें हैं।
उनके रमा है संग, इनके उमा है संग,
उतै साँप सेज, इतै साँप लपटावें हैं॥
नंद गोद राजै वह, नंदि पीठ राजैं यह,
सीस चन्द छावैं, चंद सीस पै चढ़ावे हैं।
पाप के हरैया हरि, ताप के हरैया हर,
एक है, कहावें दोय भक्तन कूँ भावै है॥"



(45) शिव और तमोगुण

**श्लोक—"नते गिरित्राखिल लोकपाल विरंचि वैकुण्ठ सुरेन्द्र गम्यम्।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्वं न यद्ब्रह्म निरस्त भेदम्॥"**

"गिरीश! आपका जो भेद से रहित ज्योति स्वरूप परब्रह्म रूप है, जहाँ सत्व, रज और तम है ही नहीं, वह समस्त लोकपालों और ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र के लिये भी अगम्य है।"

यह भ्रान्त धारणा लोगों में पता नहीं कैसे बैठ गयी है कि शंकरजी तमोगुण से युक्त है। वास्तव में तो शिव निर्गुण और निराकार अवाङ्गमनसगोचर तत्व है। वह तत्व एक ही है, दो चार नहीं। अपनी माया से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिये वही मूलतत्व तीन रूप धारण कर लेता है। वह माया परतंत्र होकर ये तीनं ब्रह्मा, विष्णु और शिव बनता हो ऐसी बात नहीं। माया को तटस्थ उपादान मात्र बनाकर वह व्यक्त होता है। मायापति माया के बन्ध में कभी न आता, न उसका आना सम्भव ही है।

हम आज काम करने के लिये हाथ में लेखनी लिये हैं, और कल लाठी ले लें तो न तो हम लेखनी हो गये और न लाठी। ये हमारे द्वारा स्वीकृत साधन है। ये न तो हमसे ससक्त हो सकते हैं और न हमें छू सकते हैं। इसी प्रकार सृष्टि के लिये रजोगुण को ब्रह्मा रूप से हाथों में लेकरसतोगुण को विष्णुरूप से हाथ में लेकर और रुद्र रूप से तमोगुण को हाथ में लेकर एक ही प्रभु विभिन्न कार्य करते हैं। ये गुण उन-उन रूपों के हाथ के यन्त्रमात्र हैं, ये उनमें नहीं।

वह प्रभु अपने त्रय रूपों में व्यक्त होने पर भी निगुग्ण ही हैं। यद्यपि एक-एक रूप में एक-एक गुण को उन्होंने अपना करण बना लिया है, फिर भी वे उनमें ही सीमित नहीं। इन रूपों में भी वे गुणों के अधीश्वर हैं।

रज या तम पर अधिकार है वैसा ही सत्व पर भी। वे यदि अभी तम को यन्त्र बनाये हैं तो यह सोचना भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा कि वे सत्व को अपना यन्त्र नहीं बना सकते। समान रूप से तीनों गुणों का उनके प्रत्येक स्वरूप द्वारा उपयोग हो सकता है।

भगवान विष्णु केवल सत्वगुण का ही उपयोग करते हो, ऐसी बात नहीं। धर्म की रक्षा के लिये, विधि प्रवर्तन के लिये वे युग-युग में अवतार रजोगुण को आश्रयीभूत करके लेते ही रहते हैं। सत्वगुण से तो शेष शैय्या का शयन ही हो सकता है, कार्य तो रजोगुण से ही होंगे। श्रीहरि तमोगुण का आश्रय भी दुष्ट विनाश के लिये लेते हैं। उनका तमोगुण को कारण बनाने पर जो रूप होता है, उसे उन्होंने ही बताया है **"कालोऽस्मि लोकक्षयकृत प्रवृद्धो"** केवल स्थिति का उत्तरदायित्व ग्रहण

करके सत्वगुण का अधिक प्रयोग करने से ही वे सत्वगुण के अधिष्ठाता माने जाते हैं।

यही बात ब्रह्मा और शंकर के लिये भी है। भक्तों की रक्षा के लिये वे भी सत्व का ग्रहण करते हैं। केवल रज या तम को कार्य विशेष से अधिक प्रयोग करने के कारण उन्हें उन गुणों का अधिष्ठाता कहा जाता है। वास्तव में वे तीनों गुणों से परे हैं, तीनों गुणों के स्वामी हैं, तीनों में से चाहे जिस को ग्रहण करके उपयोग करने में स्वतंत्र हैं।

प्रभु कल्पवृक्ष हैं, जो जैसी भावना लेकर उनके समीप जावेगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा। जो दुष्ट हैं, पापी हैं, अभिमानी और अनाचारी हैं, उनके लिये वे रुद्र हैं, प्रलयंकर हैं। जो सदाचारी हैं, नम्र हैं, भक्त और शरणागत हैं, उनके लिये वे शिव, शंकर कल्याण स्वरूप हैं। उनके चरणों में जैसी भावना लेकर जाओगे वैसा फल मिलेगा। वे न तमोगुणी हैं न सत्वगुणी। तुम्हारा हृदय जैसा हो, तुम्हारे लिये वे वैसे ही हैं। भक्तों को भक्ति, मुमुक्षुओं को मुक्ति तथा राक्षसों को लोकोत्पीड़नी शक्ति तीनों ही वे देते हैं। सत्व, रज, तम और तीनों से परे की स्थिति सब उनके चरणों की छाया में रहती है। वे इनसे परे रहते हुए भी भक्त के लिये उसके भाव में हैं।

असुर ही अधिक शिवोपासक क्यों हुए? असुरों की वृत्ति-प्रवृत्ति भक्ति या मुक्ति की ओर तो होती नहीं वे तो ऐश्वर्य और शक्ति चाहते हैं, वे ऐसी शक्ति चाहते हैं जिससे विश्व में स्वेच्छाचरण कर सकें, धर्म, मर्यादा के वे शत्रु हैं, धैर्य तो होता नहीं अपने आवेश में वे उग्र कठिन से कठिन काम कर सकते हैं, धैर्य पूर्वक फल की प्रतीक्षा करना उनके वश की बात नहीं। महाघोर तपस्या करके भी वे शीघ्र फल के लिये आतुर रहते हैं, चाहे भयंकर कष्ट से भले प्रसन्न हों पर हों शीघ्र। यह गुण भोले बाबा के अतिरिक्त किसी में नहीं, आषुतोष इसी से असुरों को प्रिय हैं, फिर भी असुरों के अतिरिक्त नन्दी, व्याघ्र, उपमन्यु, दधीचि सात्विक भी शैव हुए हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति और रक्षा के लिये तो दूसरे रूप धारण कर ही रखे हैं वे तो करेंगे ही, उत्पत्ति और रक्षा मे निश्चिंत प्रभु पर तो केवल विनाश का भार है, असुरों को मनमानी शक्ति देने से इस विनाश में सहायता ही मिलती है। जो सृष्टिकर्ता हैं उन्हें वरदान देते समय सृष्टि का ध्यान रखना होगा और जो पालक हैं उन्हें भी। वे किसी को ऐसी शक्ति नहीं देंगे कि उससे वह सृष्टि नाश करे, पर प्रलयंकर को सोचने की क्या आवश्यकता। असुर शक्ति पाकर नाश ही तो करेंगे। यह तो यहाँ अभीष्ट ही है।

किसी भी भाव से और प्रभु के किसी भी रूप की शरण ग्रहण करने पर आत्मोद्धार तो हो ही जाता है। अग्नि के समीप् तृण चाहे जैसे पहुँचे वह जल ही जावेगा, पर जो कामना से जाते हैं उनकी कामना पहले पूर्ण होती है, प्रकारान्तर से

प्रभु के चरणों के प्रभाव से आत्मोद्धार भी हो जाता है। यही कुछ अंतर। शंकर जी आषुतोष हैं जिस भी भावना से भक्त ने शरण ग्रहण की वे भावनानुसार पूर्ण कर देंगे, उस भावना की पूर्ति में सुख हो या दु:ख, सृष्टि का संहार हो या कल्याण। यदि भावना सात्विक हुई तो आनन्दमय प्रेम या ज्ञान के मार्ग से विश्व का कल्याण करते हुए उस परमानंद को प्राप्त कर भवसागर से पार हो जायेगा। यदि भावना राजस या तामस हुई तो उसका फल पाकर वह विश्व में प्रवृत्त होगा, संसार का विनाश करेगा, उसका अहंकार बढ़ जायेगा जिसके फलस्वरूप अशांति और दु:ख मिलेगा, उद्धार तो उसका भी होगा क्योंकि प्रभु के चरणों तक वह पहुँच चुका है।

श्री हरि में यहाँ वैभिन्य है वे सत्व गुण के अधिष्ठाता हैं, संरक्षक का उन पर भार है भक्त जब उनकी शरण होता है तो वे उसे सात्विक मार्ग पर प्रवृत्त करते हैं, उनके यहाँ मनमानी कामनाएँ पूर्ण नहीं होतीं, किसी ऐसी कामना की पूर्ति नहीं जिससे भक्त का अभिमान बढ़े और वह सृष्टि का नाश करे, सारांश यह कि हरि के यहाँ सीधे मार्ग से आत्मोद्धार होता है दूसरे सभी रुकावटें कड़े हाथों दमन की जाती हैं। शास्त्र केवल किसी एक पुरुष के उद्धार के लिये नहीं बने मनुष्य मात्र के उद्धार के उनमें साधन हैं।

जो लोग सात्विक हैं वे उच्च अधिकारी हैं, राजस और तामस अधिकारी के साधन उनके लिये वैसे ही हैं जैसे उच्च कक्षा के विद्यार्थी के लिये वर्णमाला की पुस्तक। वे साधन उसे राजस और तामस कार्य ही प्रतीत होंगे किंतु अपने अधिकारी के लिये तो वे सात्विकता प्रदान करने वाले हैं। सकामी भक्त के लिये नारायण इष्ट नहीं हो सकते। उनमें राजस तथा तामस अधिकारी के योग्य साधनों की प्रवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि वे ऐसे फल के प्रदाता नहीं। ऐसे सभी प्रकार के फल के प्रदाता तो एकमात्र भगवान शंकर ही हैं। अत: सभी प्रकार के साधनों की प्रवृत्ति उनमें होती है। यही कारण है कि शिवपरक शास्त्रों में सभी प्रकार के अधिकारियों के योग्य साधन प्राप्त हैं।

यही ठीक है कि शिवपरक शास्त्रों में राजस और तामस अधिकारियों के योग्य रुचिकर साधन हैं, पर उनमें वे सात्विक तथा निरपेक्ष साधन के योग्य साधनों का भी बाहुल्य है, सब प्रकार के व्यक्ति वहाँ से अपने अनुकूल साधन ग्रहण करके अपना उद्धार कर सकते हैं। सच्ची बात तो यह है कि प्रभु और शास्त्र दोनों ही त्रिगुणों से परे है, हमारा हृदय जैसा होता है, हम जैसी भावना से प्रवृत्त होते हैं, हम जैसे अधिकारी हैं, प्रभु को भी हम उसी रूप में देखते हैं, उन्हें भी वैसा ही समझने लगते हैं। शास्त्र में भी हमें वैसी ही बात दीख पड़ती है। अपने अधिकारानुसार ही हम शास्त्रों के अर्थ और उद्देश्य को ग्रहण कर सकते हैं। *(मानसमणि जून 1968 से)*



(46) शिव-अद्भुत

श्लोक— "नमश्चर्म निवासाय नमस्ते पीत वाससे।
नमोऽस्तु लक्ष्मी पतये उमायाः पतये नमः॥"

"हे चर्म पहनने वाले! तुम्हें नमस्कार है, पीतपटधारी! तुम्हें नमस्कार है, लक्ष्मी पति! आपको मैं आपको नमस्कार करता हूँ और उमापति! मैं आपके सम्मुखनत हूँ।"

भगवान शिव और भगवान विष्णु दो नहीं, वास्तव में तो एक ही हैं, पर कार्य विशेष से उन प्रभु ने अपने दो वेष बना लिये हैं। मध्यकाल में दुर्भाग्य से ठीक विपरीत भावना होने के कारण शैव और वैष्णों में द्वेष हो गया था, पर स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार हम अपने ही आराध्य से द्वेष करके उन्हीं (वैष्णवों) पर आक्षेप करते हैं, अपने प्रभु का ही अपमान करते हैं।

एक होने पर भी विश्व को उपास्य-उपासक भाव की शिक्षा देने के लिये प्रभु ने अपने दोनों रूपों में परस्पर यह सम्बन्ध रखा है। शिव के आराध्य विष्णु **"तुम पुनि राम राम दिनराती। सादर जबहु अनंग आराती॥"** और विष्णु के आराध्य शिव **"करहुँ सदा शिव शंकर पूजा। शिव समान प्रिय मोहिन दूजा॥"** (मानस) शिव की आराधना करते हैं विष्णु और शिव विष्णु की। दोनों रूपों में परस्पर अपार प्रेम है, क्योंकि एक दूसरे की आत्मा, परस्पर अभिन्न है। एक दो कक्षाएँ यहाँ उद्धृत किये देते हैं—

दोहा— कर रहे प्रशंसा शंकरहिं, श्री हरिजी यों बतलाय।
सर्वाधिक प्रीयमम, उपासूँ आराध्य मनाय॥

श्री हरि भगवान श्री शंकरजी की अत्यन्त प्रशंसा कर रहे थे, बतला रहे थे कि "मुझे शंकरजी सर्वाधिक प्रिय हैं। मैं उनका उपासक हूँ और वे मेरे परम आराध्य हैं।"

चौ०—खेद हुआ लक्ष्मी बड़भारी। आराधना स्वामी शिवधारी॥
मुझसे यह सेवा नहिं होई। पश्चाताप रुदन कर सोई॥

लक्ष्मीजी को बड़ा खेद हुआ कि स्वामी तो शंकरजी की आराधना करते हैं पर मुझसे यह सेवा भी नहीं होती। वे पश्चातप से रुदन करने लगीं।

चौ०—श्री हरि ने उनहिं समझाया। प्रवृत शिवहिं पूजा मन भाया॥
प्रकट किया मैंने गोप्य प्रसंगा। तुम भी सेवक बन भव भंगा॥

श्री हरि ने समझाया, "तुम्हें शंकरजी की पूजा में प्रवृत्त करने के लिये ही मैंने यह परम गोप्य प्रसंग प्रकट किया, पश्चाताप मत करो, तुम भी शिव-सेवक बन उनकी पूजा करने से तुम मुझसे शिव के समान प्रिय हो जाओगी।"

चौ०—लक्ष्मी पतिआज्ञा रत जोहीं। शिव उपासिका तबते हि होही॥

अर्थ—लक्ष्मीजी पति आज्ञा से उसी दिन से शिवोपासिका हो गयीं।

शंकरजी के हाथ में ब्रह्माका कपाल लगने की कथा दो प्रकार से पुराणों में आती है, एक कथा तो पहले लिख ही आये हैं दूसरी यहाँ उद्‌धृत करते हैं—

कालान्तर में भगवान विष्णु के सृष्टि की उत्पत्ति की इच्छा करते ही एक साथ दो पंचमुख शक्तियाँ प्रकट हुईं। एक ब्रह्माजी और दूसरे शंकरजी। हरि तो वहीं अन्तर्हित हो गये पर ब्रह्मा और शंकर में परस्पर विवाद होने लगा। ब्रह्माजी कहते थे कि सृष्टिकर्ता और तुम्हारा पिता मैं हूँ और शंकरजी अपने को सृष्टिकर्त्ता तथा ब्रह्मा का पिता बताते थे। अंत में क्रोधित होकर नख के अग्रभाग से शंकर जी ने ब्रह्मा का पाँचवाँ मुख काट दिया।

सिर के कटते ही वह शंकरजी की हथेली पर आकर चिपक गया। बहुत यत्न करने पर भी वह नहीं छूटा। उसी समय शेषशायी प्रभु प्रकट हुए। विवाद शांत करते हुए उन्होंने बतलाया "आप दोनों समान रूप से मेरे ही अंश हैं, मुझसे उत्पन्न हुए हैं, विवाद छोड़ कर सहयोगपूर्वक सृष्टि का कार्य करें।" प्रभु फिर अपने लोक को पधारे। ब्रह्माजी सृष्टि के कार्य में लग गये। शंकरजी ब्र्ह्मा के साथ सृष्टि तो क्या करते, अपने हाथ पर चिपके उस कपाल को ही छुड़ाने में व्यस्त थे। समस्त तीर्थों में घूमने पर भी जब कपाल हाथ से नहीं छूटा तो एक स्थान पर स्थिर होकर श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिये घोर तपस्या करने लगे। गरुड़ासन प्रभु शिव की तपस्या से प्रकट हुए, आदेश हुआ, "मेरा परम पावन लोलार्क क्षेत्र है, वहाँ लोलार्क नाम के सूर्य सदा निवास करते हैं। उस क्षेत्र में स्नान करने से आपके हाथ का कपाल छूट जायेगा" प्रभु को प्रणाम करके शंकरजी उसी क्षेत्र की ओर चल पड़े। क्षेत्र में पहुँचते ही उनके हाथ का चिपका वह कपाल एक स्थान पर छूटकर गिर गया। जहाँ ये कपाल गिरा उस तीर्थ को अब भी कपाल मोचन कहते हैं।

यह दो कथाएँ तो उपास्य-उपासक भाव की रहीं, अब परस्पर प्रणय की चर्चा—

चौ०—सुरम्य शिखर कैलाशहिं तांही। गौतम ऋषी आश्रमहि वाँही॥
दैत्यराज वृष पर्वा आयेउ। शुक्राचार्य संग वे लायेउ॥

कैलाश के सुरम्य शिखर पर महर्षि गौतम का एक सुरम्य आश्रम था। दैत्यराज वृषापर्वा एक दिन शुक्राचार्य सहित आये।

चौ०—तेहि पिता प्रहलादहिं सहित। पुत्र बलि महर्षि के अतिथा॥
सत्कार यथोचित ऋषी करेऊ। वृषपर्वा पूजा अनुसरेऊ॥

वृष पर्व के पिता प्रहल्लाद तथा पुत्र बलि समेत सपरिवार महर्षि गौतमजी के

अतिथि हुए। महर्षि ने दैत्यराज का यथोचित सत्कार किया। वृषपर्वा स्नान करके पूजा करने बैठा।

चौ०—गौतम शिष्य प्राणप्रिय तहवाँ। अवधूत वेष कुछ दूरी रहवाँ॥
विचरते हुए स्वेच्छा से आयेउ। वृषपर्वा शिव मूर्ति मध ठाड़ेउ॥

इसी समय महर्षि गौतम जी का प्राणाधिक शिष्य शंकरात्मा जो कि कुछ दूरी पर अवधूत वेष में रहता था, स्वेच्छा से विचरते हुए वृषपर्वा के सम्मुख, अर्थात् वृषपर्वा और सम्मुख रखी शिवमूर्ति के मध्य में आ खड़ा हुआ।

दोहा—दैत्यराज पूजा समय, विघ्न उत्तेजक होय।
डाँटन ते वह नहीं हटा, तेहि असि कर टुकड़े दोय॥

दैत्यराज को पूजा के समय यह विघ्न बहुत उत्तेजक हुआ। डाँटने पर जब वे अवधूत महाराज न हटे तो तलवार से दैत्यराज ने उनके दो टुकड़े कर दिये।

चौ०—पता लगा गौतम को जबही। आकर उन देखा तहँ तबही॥
अनादर भी नहिं करना अतिथि। शिष्य मरण असह थी व्यतिथि॥

महर्षि गौतम को पता लगा कि जब, तब ही उन्होंने आकर देखा। अतिथि का अनादर भी नहीं करता था और शिष्य का मरण भी सह्य नहीं था, असह्य था।

चौ०—महर्षि योग शरीरहिं त्यागा। शुक्राचार्य दुक्ख बहु लागा॥
छोड़ दिया उनने भी शरीरा। फिर तो ताँता लगा बहुभीरा॥

महर्षि ने योग के द्वारा अपना शरीर त्याग कर दिया, आचार्य शुक्राचार्य बहुत दु:खी हुए, महर्षि के शरीर त्याग को न सह सके, उन्होंने भी शरीर छोड़ दिया। फिर तो वहाँ शरीर छोड़ने का ताँता लग गया। क्रमशः दु:खित होकर प्रहलाद, बलि आदि तथा वृषपर्वा ने भी शरीर त्याग किया।

चौ०—समाचार अहिल्या पावा। दौड़ आश्रमहिं बाहर आवा॥
देखा शिवभक्तन शव ढेरा। आर्त हो तेहि प्रभु पुकेरा॥

महर्षि की पत्नी अहिल्या समाचा पाकर आश्रम से दौड़कर बाहर आई। यहाँ तो शिव भक्तों के शवों का ढेर पड़ा था, वे कातर होकर प्रभु को पुकारने लगी।

चौ०—तेहि आर्त ध्वनि भारी होवा। बन के पत्ता-पत्ता रोवा॥
विष्णु शिवहिं पास थे जबही। तेहि सहित शिव दौड़े तवही॥

अहिल्या की भारी आर्त ध्वनि से वन का पत्ता-पत्ता रो उठा। आशुतोष दौड़े तथा कैलाश पर उस समय आये हुए विष्णु भगवान को भी साथ लेते आये।

दोहा—पड़ी दृष्टि मृत्युंजय, भई शवनन कृपा अपार।
पुनः स्वस्थ जीवित भये, होन लगी जयकार॥

मृत्युन्जय की शवों पर दृष्टि पड़ते ही सब लोग पुनः स्वस्थ और जीवित हो

गये। वहाँ फिर शिव की जय-जयकार होने लगी। 'बोलो शिव शंकर भगवान की जय।

चौ०—शंकरजी अस गौतम कहेऊ। मैं अत्यन्त प्रसन्नहिं भयेऊ॥
माँगहु वर जो तुम मन चहहीं। गद्गद् स्वर महर्षि कहहीं॥

शंकरजी ने महर्षि गौतम से कहा "मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।" महर्षि गद्गद् स्वर में बोले—

चौ०—प्रभो! दीन के यहाँ पधारेउ। पदपंकज दर्शन मोहि सारेउ॥
अब कुछ अन्य अप्राप्तहिं नाहीं। माँग जो बिना माँग मिल जाहीं॥

"प्रभो! आप मुझ दीन के यहाँ पधारे, मुझे इन पदपंकजों के दर्शन हुए तो अब और अप्राप्त क्या रहा? जो माँगना था वह बिना माँगे ही मिल गया।

चौ०—अहोभाग्य समझूँ मैं सोई। यदि अतिथ्य होउ प्रभु मोई॥
भाववस्य भूखे भगवाना। भूख लगी हम द्वयजन आना॥

"पर यदि नाथ! सेवक का आतिथ्य भी स्वीकार करें तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।" प्रभु तो भाव के भूखे हैं। "भूख भी लगी है। अकेले नहीं, हम दो जने आये हैं, दोनों भोजन करेंगे।" इस आदेश से महर्षि प्रेमविभोर हो गये।

चौ०—इधर अहिल्या असन बनाये। उत हरि-हर स्नानहिं जाये॥
नहाने क्या जल ऊधम होई। मुख छींटे अपु पीठ चढ़ जोई॥

ऋषि पत्नी अहिल्या इधर भोजन बनाने लगीं और उधर हरि-हर आश्रम के समीप के ही सरोवर में स्नान करने चले गये। स्नान तो क्या जल में ऊधम होने लगा। आपस में एक दूसरे के मुख पर जल के छींटा मारने लगे। अवसर पाकर एक दूसरे की पीठ पर भी उछल कर बैठ जाते। पकड़ कर जल में भी डुबाते।

दोहा—देव गगन से मुग्ध होइ, अस दृश्यहिं वे देखि।
पुष्प वृष्टि करते रहे, जय ध्वनि करहिं विशेष॥

आकाश से देवता मुग्ध होते हुए इस दृश्य को देख रहे थे। पुष्पों की वृष्टि करते हुए विशेष जय ध्वनि कर रहे थे।

चौ०—इसी समय नारद जी आये। अपूर्व हश्य लखि वीणा बजाये॥
करने लगे कीर्तन ताहीं। नारद गान शिवहिं मन माहीं॥

इसी समय देवर्षि नारदजी आ पहुँचे। इस अपूर्व दृश्य को देखते ही प्रेममग्न होकर सरोवर के किनारे अपनी वीणा बजा-बजाकर वे कीर्तन करने लगे। शंकरजी को नारदजी का गान बहुत प्रिय लगा।

चौ०—भीजे गज चर्म बाहर निकल कर। ताण्डव नृत्य करन लग शंकर॥
पीछे क्यों रह हरि भगवाना। लगे भीगे वस्त्र मृदंग बजाना॥

वे वैसे ही भीगे गजचर्म पहले जल से बाहर निकल कर शिवजी ताण्डव नृत्य करने लगे। श्री हरि भगवान क्यों पीछे रहते? वे भी जल से बाहर आकर भीगे पीताम्बर पहले हुए मृदंग बजाने लगे।

चौ०—गगन अप्सरा नाँचन लागीं। किन्नर गान करैं अनुरागी॥
बजने लगे वाद्य गन्धर्वा। जय ध्वनि पुष्प वृष्टि सुरसर्वा॥

आकाश में अप्सरायें नाचने लगीं, किन्नर बड़े अनुराग से गाने गाने लगे, गन्धर्व वाद्य बजाने लगे। पुष्प वृष्टि करते हुए देवता जयध्वनि करने लगे। एक सुन्दर समा बँध गया।

चौ०—कोर कसर सबरीहि निकारी। मारुत नंदन आये अगारी॥
आलाप युक्त गायन उन्ह कीन्हा। शांत होइ सब लोगन चीन्हा॥

रही सही कोर कसर मारुति नन्दन के आगमन ने पूर्ण कर दी। महावीरजी ने जो आलाप युक्त गायन प्रारम्भ किया तो सब लोग शान्त होकर सुनने लगे। वाद्य गीत नृत्य सब बन्द हो गये, उनकी स्वर लहरी में सबका मन डूब गया।

दोहा— करते-करते प्रतीक्षा, महर्षि गये घबराय।
मध्यान्ह हुआ स्नानकर, वे भोजन को नहिं आय॥

इधर महर्षि गौतम जी प्रतीक्षा करते-करते घबड़ा गये, मध्यान्ह हो गया पर स्नान करके ही प्रभु नहीं आये।

चौ०—दौड़े-दौड़े सरोवर गयेऊ। भोजन की अतिथि सन कहेऊ॥
बहुत भाँति तेहि प्रार्थना कीन्ही। अतिथि आश्रम को चलि दीनी॥

महर्षि दौड़े-दौड़े सरोवर पर गये और अतिथियों से भोजन की बात कही, उनकी प्रार्थना की तब वे आश्रम को चले।

चौ०—महर्षि सबहिं प्रसाद करायेउ। उमा सोच देरी मन लायेउ॥
पता लैन स्वामी ढिंग आयेउ। आतिथ्य महर्षि का उन पायेउ॥

महर्षि ने सबको प्रसाद कराया। पार्वतीजी शंकर के आने में विलम्ब होने से स्वयं स्वामी के समीप पता लेने के लिये आर्यी। पति की आज्ञा से उन्होंने भी महर्षिजी का आतिथ्य स्वीकार किया।

चौ०—आश्रम तरू सुशीतल छाया। सब समुदाय वहीं पर आया॥
व्याघम्बर मृगचर्म विराजे। महावीर संगीतहिं साजे॥

भोजनोपरान्त वहीं आश्रम में ही वृक्षों की सुशीतल छाया में सब लोग मृगचर्म व्याघम्बरों पर विराजे, महावीरजी अपना संगीत सुनाने लगे।

चौ०—संगीतहिं पुलकित शिव कीन्हा। महावीर सम्मुख चल दीना॥
एक चरण उठायेउ शंकर। हनुमान अंजलि दियो धर॥

भोले बाबा तो भोले ही ठहरे, अंज्जनेय के संगीत से आप आनन्द से पुलकित हो गये। प्रसन्नता की उमंग में अपने आसन से उठकर महावीर जी के सम्मुख जा पहुँचे। एक चरण उठाकर हनुमानजी की अंजलि में रख दिया।

दोहा—शिव ने दूसर चरण से, स्पर्श किये सब अंग।
उन आगे लेटत भये, वहीं भूपर भवभंग॥

तथा दूसरे चरण को उनके मस्तक, भाल, नेत्र, नासिका, मुख, कंठ, हृदय, वाहु, वक्ष और उदर से नाभि तक सभी अंगों को स्पर्श करते हुए आनन्द से उनके आगे वही पृथ्वी पर लेट गये। संगीत समाप्त हुआ।

चौ०—बोलेउ श्री हरि भगवाना। बड़भागी सम नहिं हनुमाना॥
सबहि अंग चरण रज लागी। चिन्मय बना पवन सुत भागी॥

श्री हरि भगवान बोले, "आज हनुमान के समान विश्व में कोई सौभाग्यशाली नहीं। महावीर के प्रत्येक अंग को अपनी चरण रज से विश्वनाथ ने आज चिन्मय बना दिया।

लोग कहते हैं तथा मैं भी यही समझता था कि मेरे समान शंकरजी को और कोई प्रिय नहीं, किन्तु इतनी महान कृपा तो मुझ पर भी कभी नहीं हुई जितनी हनुमान जी पर हुई है।

चौ०—बीचहिं में शंकर उठि जाई। आपु यहाँ ये किम कह पाई॥
हनुमान सेवक हैं तुम्हारे। ता कारण मोय अधिक पियारे॥

बीच में ही उठकर शंकरजी बोले-"आप यह कैसे कहते हैं? हनुमान आपके सेवक हैं अत: इस कारण वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

चौ०—अभिन्न आप तो मुझसे होई। मुझ आपुन अंतर नहिं कोई॥
प्रिय का प्रश्न उठाया सोई। मेरी आत्मा आपुहि होई॥

आप तो मुझसे अभिन्न हैं, मुझमें और आपमें तो कोई अन्तर ही नहीं है। ये जो प्रिय का प्रश्न आपने उठाया है सो आप मेरी आत्मा है। आत्मा से प्यारा कुछ नहीं होता।

चौ०—आपुसे अधिक प्रिय नहिं कोई। जहाँ तक आप शरीरहिं होई॥
अस प्रिय पार्वती नहिं मोई। जस प्रिय तुम्हहिं कहहुँ सच होई॥

आपसे अधिक प्रिय मेरा कोई नहीं है, न तो अपना यह शरीर है और न ये पार्वती ही मैं सच कहता हूँ।

प्रेमी का स्वभाव होता है कि वह अपने को ही प्रेमास्पद का सर्वाधिक प्रिय होना चाहता है। विशेषकर पत्नी तो पति का कहीं अन्यत्र प्रेम सुख को नहीं सह सकती। वह पति का पूर्ण प्रेम अपने पर ही केन्द्रित करना चाहती है। पति को कोई उससे भी अधिक प्रिय हो, यह तो उसे कभी भी सह्य नहीं।

पार्वतीजी का विश्वास था कि स्वामी सर्वाधिक मुझे ही प्यार करते हैं, पर जब उन्होंने सम्मुख ही श्री हरि भगवान को उनसे अधिक प्रिय बतलाया तो उनसे सहा न गया। दु:ख प्रणय में परिणित हो गया। रोष पूर्वक कहने लगी, "कपालधारी, सर्प और चर्म पहनने वाले, विरूपाक्ष, बिष भोजी, नंगे, पिशाचों के साथ श्मशान में घूमने वाले ये वृषभारोही भिाक्षुक किसी को भला क्या प्रेम करेंगे ? इन जैसे उन्मक्तों के प्रेम में स्थितरता ही कितनी।"

सम्भवत: उमा कुछ और कहतीं किंतु उन्हें बीच में ही रोकते हुए नारायण बोले, "माता! आप शंकर जी की पत्नी होने के कारण जगन्माता हैं, मेरी पूज्या हैं। आप देवाधिदेव विश्वेश की निंदा कर रही हैं। इसे सोचिये, अखिलेश की निन्दा मैं नहीं सुन सकता। कोई दूसरा ऐसा करता तो उसे दण्ड मिलता, पर आप पर तो मेरा कोई वश नहीं, लेकिन शिव निन्दा श्रवण करने वाले इस शरीर को मैं धारण नहीं करता।"

दोहा— सहसा विष्णु निज सिरहिं, छेदन को तैयार।
चीत्कार कर देवभय, जग मच गया हाहाकार॥

सहसा विष्णु भगवान अपना सिर छेदन करने को उद्यत हो गये। विश्व में हाहाकार मच गया। देवता भय से चीत्कार कर उठे।

चौ०— पकड़ा हस्त हरिहि शिव लीना। ते दुस्साहस निवृत कीना॥
लज्जित पार्वती निज बचना। तब समझीं प्रेम हरि इतना॥

जल्दी से शंकरजी ने हरि का हाथ पकड़ लिया और इस दुस्साहस से निकाल लिया। पार्वती अपने वचनों पर स्वत: लज्जित थीं, वे तभी समझ गयीं कि इसी उत्कट प्रेम से स्वामी सर्वाधिक प्रेम हरि से करते हैं।

चौ०— क्षमा माँगि हरि से अपराधा। बड़ कठिनाई हटी ये बाधा॥
विदा लई ऋषि शंकर गयेऊ। हरि भी वैकुण्ठहि चलि दयेऊ॥

पार्वतीजी ने श्रीपति से अपने अपराध की क्षमा माँगी। बड़ी कठिनाई से कहीं यह भयंकर बाधा = दुर्घटना होते-होते बची। महर्षि गौतम से विदा लेकर शंकरजी पार्वती सहित अपने स्थान पर गये। हरि भी वैकुण्ठ पधारे।

चौ०— शिव आदेश उमा तव पावा। आराधना विष्णु मन लावा॥
स्वप्न में विष्नु देखे शंकर। निंद्रा भंग कैलाश गमन कर॥

शिवजी के आदेश से विष्णु भगवान के समान ही स्वामी की प्रिय होने के लिये उसी समय से पार्वती जी नियम से सर्वदा भगवान विष्णु की आराधना करने लगीं। एक समय वैकुण्ठ में सोते समय भगवान विष्णु ने स्वप्न में शंकरजी को देखा। निद्रा भंग होते ही गरुड़ पर लक्ष्मी जी के साथ आसीन होकर शंकरजी के दर्शनों को कैलाश चल दिये।

चौ०— ताही समय शिव स्वप्नहिं आवा। हरि दर्शन मै मन भावा॥
तत्काल उठे संग उमा के जाऊँ। बैकुण्ठहिं हरि दर्शन पाऊँ॥

अर्थ—ठीक उसी समय कैलाश पर शंकर जी ने स्वप्न में श्री हरि के दर्शन किये, मनभाये, वेभी तत्काल उमा के साथ वृषभाषढ़ होकर नारायण के दर्शनार्थ बैकुण्ठ को चल पड़े।

दोहा— मार्ग में ही हरि-हर, दोनों का हुआ साक्षात।
एक दूसरे गल मिले प्रेमहिं बड़ हर्षात॥

मार्ग में ही हरि और हर का साक्षात हुआ लगभग आधे मार्ग में, बड़े हर्ष से एक दूसर से गले मिले।

लक्ष्मी जी पार्वती से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। अब शंकरजी विष्णु भगवान से कैलाश पर चलने का आग्रह करने लगे और विष्णु भगवान शंकर जी से वैकुण्ठ चलने का। दोनों एक दूसरे को अपने स्थान पर ले जाना चाहते थे, बहुत देर तक प्रेमानुरोध चलता रहा।

घूमते-घामते कहीं उधर से ही देवर्षि नारदजी निकले। पार्वतीजी ने कहा—"नारदजी जैसे कहें वैसा ही किया जाये।" यह बात सबको पसन्द आई। देवर्षि से सब आग्रह बताकर पूछा गया कि आप अपना निर्णय दीजिये। देवर्षि जी इस परस्पर के अनुराग को देखकर प्रेम विभोर हो गये।

कुछ देर आनन्दमग्न होकर चुप रहने के अनन्तर देवर्षि बोले—"प्रभो! मैं वैसे ही आपकी माया से मोहित जीव हूँ, मुझे क्यों और भ्रम में डालते हैं। आप हरि और हर में कोई अन्तर थोड़े ही है। हरि ही हर हैं और हर ही हरि। कैलाश ही वैकुण्ठ है और वैकुण्ठ ही कैलाश। मैं भला क्या बताऊँगा। आपमें परस्पर भेद होता तो मैं कुछ बता भी सकता, जब दो हैं ही नहीं तो मैं क्या और किस आधार पर बताऊँ।"

सिंधुजा हँसकर बोलीं "नारद जी! टालिये मत। निर्णायक को स्पष्ट निर्णय देना ही होगा।" देवर्षि भ्रम पूर्वक बोले, "माँ, मैं भला आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ, मुझसे ही कुछ कहलाना है तो मेरे विचार से आप और पार्वती जी तथा शंकर जी और नारायण जी अभिन्न हैं। अतः आप हरि के साथ यह समझ कर वैकुण्ठ लौटें कि हर और गिरिजा वैकुण्ठ पधार रहे हैं, और शंकर जी पार्वती के साथ ऐसी भावना से कैलाश पधारें कि नारायण श्री जी के साथ कैलाश चल रहे हैं।

देवर्षि के तात्विक वचन उभय पक्ष के प्रिय लगे। उन्हें शंकरजी तथा विष्णु भगवान ने भी अविचल भक्ति का वरदान दिया। देवर्षि उनका अभिवादन करके ब्रह्मलोक को गये। उमा-महेश्वर तथा नारायण भी लक्ष्मी सहित अपने-अपने धामों को देवर्षि के निर्णय के अनुसार परस्पर मिलकर पधारे। *(मानसमणि जुलाई 1968 से)*

❑ ❖ ❑

(47) दक्षिणा-मूर्ति

श्लोक—"बन्दे बोधमयं नित्यं गुरूं शंकरं रूपिणम्।
यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्धते॥"

"सर्वदा ज्ञान स्वरूप में मैं उन शंकर भगवान की वन्दना करता हूँ जिनके आश्रित होने से चन्द्रमा टेढ़ा होने पर भी सब कहीं वन्दनीय होता है।

सम्पूर्ण साधन मार्गो के आचार्य भगवान शकर है। ज्ञान, योग तथा भक्ति और इन तीनों मार्गो के अन्तर्गत जितने भी भेद हैं उन सभी के वे परम गुरु हैं। आप चाहे किसी भी सगुण रूप के उपासक हों पर उस एक इष्ट की प्राप्ति शिवजी श्री चरणों की शणर लेने पर ही होगी। शंकरजी ज्ञानियों के लिये ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानी उन्हें गुरुरूप में तो मानते ही हैं, आराध्य तथा आत्मरूप में '**शिवोऽहं**' कहते हैं। योगियों के लिये वे योगीश्वर हैं, योगाचरण के आदर्श हैं, उनके आदर्श पर बिना चले, बिनाउनका ध्यान किये और बिना उनकी उपासना के न तो सिद्धि मिलती, न समाधि ही प्राप्त होती है। भक्तिमार्ग में वे आद्य-वैष्णवाचार्य हैं। पर वैष्णव तो शिव ही हैं। इसके अतिरिक्त प्रभु ने स्पष्ट कह भी दिया है—"**शंकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि॥**"

वैष्णवों में चतुः सम्प्रदाय हैं। रामानुजाचार्य ज़ी के मत की मूल प्रवर्तिका लक्ष्मीजी हैं, माध्वाचार्य जी के मत के मूल प्रवर्तक ब्रह्माजी हैं और निम्बाकाचार्य का मत सनकादि कुमारों से हुआ है। चौथे बलरामाचार्य का प्रवर्तन तो स्वयं ही शंकर जी ने किया है। प्रकारान्तर से शेष तीनों मत भी शंकरजी से ही चले हैं। सनकादि कुमार, ब्रह्माजी तथा लक्ष्मीजी भी शिव के उपदेशों को ग्रहण करके, शंकर जी से ही उपासना रहस्य प्राप्त करके, अपनी श्रद्धा के अनुसार उसका विस्तार करने में प्रवर्तित हुईं। विष्णु भगवान ने भी इन लोगों को शिव सम्मत मत ही बताया।

इतना होने पर भी शंकरजी ने स्वयं उपदेश बहुत कम किया होगा। वे गुरू के रूप मे दक्षिणामूर्ति हैं। वट त्रृक्ष के नीचे सिद्धासन लगाये वे मौन होकर ज्ञान मुद्रा में बैठे रहते हैं। वेदिका से नीचे सनकादि कुमार या जिसे भी उपदेश की आवश्यकता हो वहाँ बैठकर अपलक दृष्टि से स्वयं भी मन तथा वाणी को मौन करके आपके मुखमण्डल की ओर देखता रहता है। मौनी गुरु के प्रभाव से जो ज्ञान की अखण्डधारा बहती है, वह शिष्य के सम्पूर्ण संशयों को नाश कर देती है। शिष्य के अन्तर में ही अपने सम्पूर्ण प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करता है।

भगवान शिव की यह 'दक्षिणा-मूर्ति' दक्षिण भारत में विशेष पूजित है। वहाँ के प्रत्येक मन्दिर के परिक्रमा-पथ में वाम-भाग की दीवाल में दक्षिणा-मूर्ति अवश्य रहती है। श्रद्धालु भक्त मन्दिर में जाते ही प्रथम तो वहाँ नारियल चढ़ा आते हैं और

जब दर्शनोपरान्त परिक्रमा करते हुए वहाँ पहुँचते हैं तो मौन होकर कपूर की आरती करके कुछ देर ध्यान करते हैं।

परमगुरू दक्षिणामूर्ति हमारे हृदय में ही विराजमान है। वे मौन उपदेशक हैं। चंचल मन और असंयत इन्द्रियों वाला पुरुष उनके उपदेशों को ग्रहण नहीं कर सकता। चाहे जिस किसी मार्ग में आपको गुरू की, पथ प्रदर्शक की, शंकाओं की निवारक की आवश्यकता हो, चुपचाप बैठ जाइये, इन्द्रियों के साथ मन को संयत करके दक्षिणमूर्ति का ध्यान कीजिये। हृदय के अन्तरतम प्रान्त में बैठे हुए उस परम गुरु का आदेश आपके संशयों को दूर कर देगा।

आपको मार्ग बतावेगा। वे सब के हृदय में और सर्वदा विराजते हैं। मानव-गुरु के उपदेश में भ्रम को स्थान हो सकता है, पर उनके उपदेशों में निभ्रणन्ति हैं। उनके उपदेश चित्त के साथ समस्त इन्द्रिय के मौन होने पर ही मिलते हैं।

(मानसमणि अगस्त 1968 से)

❃ शिव-समाज ❃

कवित्त—"केशोदास मृगज बलेरूचोखै बाघिनीन,
चाटन सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की जटा ऐंचे कलभ करनिकर,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है॥
फनी के फनन पर नांचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
वानर फिरत होरे-होरे अंध तापसनि,
शिव को समाज कैंधों ऋषी के सदन है॥"

❑ ❖ ❑

(48) कलाओं एवं विद्याओं के आचार्य शिव

श्लोक—"यस्य निःश्वसितं वेदाः यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ महेश्वरम्॥"

"वेद जिसकी श्वासों से निकला है और जिसने वेदों के द्वारा इस सम्पूर्ण संसार का निर्माण किया है, उन विद्याओं को भी पवित्र करने वाले महेश्वर की हम वन्दना करते हैं।"

विश्व में जितनी कलाएँ हैं जितनी विद्याएँ हैं चाहे वे लौकिक हों या

पारलौकिक, सबके उद्गम स्थान भगवान शंकर के युगलचरण विन्द ही हैं। ताण्डव नृत्य के समय जो कि स्वत: नृत्य कला का उद्गम है जो डमरू हाथ में बज रहा है उसी से प्रणव की उत्पत्ति हुई। प्रणव के गर्भ से सम्पूर्ण वेद निकले। वेद ही विद्याओं के कोष हैं।

शिव का नृत्य व्यायाम तथा नृत्य कलाओं का आदि है। उनका डमरू वाद्य संगीत का उद्गम है। डमरू ध्वनि से शिव सूत्रों की उत्पत्ति हुई, यही सूत्र व्याकरण के मूल हैं। योग का उपदेश तो शंकर जी ने पार्वतीजी को प्रथम दिया था, वहीं से योग मार्ग के सम्पूर्ण पथों का उदगम हुआ। अर्जुन, विश्वामित्र, परशुराम तथा ब्रह्माजी ने भी धनुर्वेद की शिक्षा शिवजी से ही प्राप्त की। संचालन के अतिरिक्त अस्त्र निर्माण में भी प्रथम अस्त्र चक्र का निर्माण शिव ने अपने पैर के नख से ही किया।

गणेशजी को पुन: जीवन दान, दक्ष का जीवन तथा दक्ष के यज्ञ में जिन देवताओं के अंग-भंग हो गये थे उनके अंग पुन: पूर्ववत कर देना विश्वनाथ का ही कार्य था। वहीं से चिकित्सा शास्त्र की उत्पत्ति हुई। रसराज पारद तो शंकरजी का वीर्य है। पार्वती के प्रश्न करने पर समय-समय पर अनेकों विद्याओं का आपने उपदेश किया है। शिल्प, ज्योतिष, धर्म, नीति, योग, भक्ति, आचार, नृत्य, गीत, वाद्य, विज्ञान, गृह निर्माण, स्वरोदय आदि जितने भी विज्ञान हैं, सबकी प्राप्ति संसार को शंकर के द्वारा ही हुई है। उन देवाधिदेव की उपासना से ही कला की पूर्णता होती है।

भक्तों के हृदयघन-ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के आचार्य और अद्वैत, वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य जी के मत के आदि गुरु श्री शुकदेवजी ने अमर विद्या शंकरजी की अमर कथा से ही प्राप्त की थी।

शुकदेवजी कैलाश पर रहने वाले सचमुच ही शुक = तोता थे। गोलोक में श्री राधिकाजी के लीला शुक होने का आपको सौभाग्य था। प्रणयरोष में श्रीजी ने आपको एक दिन मृत्युलोक में जाने का शाप दे दिया और अपने पिंजड़े से निकाल दिया। प्रार्थना करने पर दयामयी ने आदेश दिया—"अभी कैलाश पर चले जाओ। वहाँ शंकरजी से अमर कथा सुनकर भगवान व्यास की पत्नी से तुम्हारा जन्म होगा। तुम्हें वहाँ भी अखण्ड स्मृति रहेगी, माया तुम्हारा स्पर्श भी नहीं कर सकेगी।" शुक कैलाश पर आ गये।

शंकरजी पार्वतीजी को वट के नीचे बैठकर अमरकथा सुना रहे थे। वट के ऊपर बैठे, शुक बड़े ध्यान से उस अमरत्व के उपदेश को सुन रहे थे। पार्वतीजी को निद्रा आने लगी, वे सो गयीं। शुक ने सोचा कि यदि शंकरजी समझ जावेंगे कि भगवती सो गयीं तो कथा बन्द कर देंगे, इन्हें तो सुनना था, प्रत्येक वाक्य के अंत

में पार्वतीजी के स्वर में 'हूँ' कर देते थे, शंकरजी कथा कहते ही रहे।

कथा समाप्त होने पर पार्वतीजी को शंकरजी ने पुकारा और पूछना चाहा कि उनका संशय दूर हुआ कि नहीं, पर वे तो निद्रा में मग्न मिलीं। शंकरजी चौंके, "उमा तो सो रही हैं यह 'हूँ' कौन कर रहा था?" इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। ऊपर देखने पर वट पर एक तोता दीख पड़ा। कथा अत्यन्त गोप्य तथा रहस्य पूर्ण थी, शंकरजी ने सोचा, "यह पक्षी कथा तो सुन ही चुका है, अपने स्वभाव के अनुसार उसी कथा को जहाँ-तहाँ बोलता फिरेगा। अनधिकारी इसे प्राप्त कर पथ भ्रष्ट हो जावेंगे, यह तो महाआश्चर्य होगा।"

सोचकर तोते को मार देना ही शंकरजी ने ठीक समझा। उधर उन्होंने पिनाक उठाया और इधर से तोता उड़कर भागा। शंकरजी नहीं चाहते थे कि पक्षी चाहे जिसे ज्ञान कथा सुनाता डोले। आप भी उसके पीछे दौड़े, उड़ते-उड़ते तोता महर्षि वेदव्यास के आश्रम में पहुँचा और उनकी पत्नी के मुख से उदर में प्रविष्ट हो गया। शंकरजी भी व्योम मार्ग से पक्षी का पीछा कर रहे थे, उसे व्यास पत्नी के उदर में प्रविष्ट देखकर यह कहकर लौट गये कि "तू इस रूप से नहीं, अब महर्षि रूप का पुत्र होकर ही उदर से मानव शिशु के रूप में निकल सकेगा।"

वहीं शुकदेव जी उदर में मानव शिशु होकर द्वादस वर्ष रहे। बड़ी कठिनता से जब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने पधार कर स्वयं यह विश्वास दिलाया कि बाहर आने पर भी तुम्हें मेरी माया मोहित नहीं करेगी। तब कहीं गर्भ से बाहर आये। बाहर आते ही तुरंत वन में तपस्या करने चले गये।

इसी प्रकार और भी बहुत से तो क्या समस्त आदि आचार्यों ने शंकरजी से ही अपने पथ का ज्ञान प्राप्त किया है। आचार्य शंकर स्वयं साक्षत शंकर जी के अवतार ही हैं। संसार में सनातन धर्म की रक्षा और ज्ञान का प्रकाश देने स्वयं कैलाशनाथ ही इस रूप में प्रकट हुए।

असुरों की कला, उनकी माया, उनका अद्भुत-विज्ञान, शुक्राचार्य जी की मृत-संजीवनी विद्या, देवताओं का दिव्य-चमत्कार, गन्धर्वों का गान सबके आदि गुरु शिव ही की कृपा है। मय और विश्वकर्मा जो दैत्य और देवताओं के प्रधान शिल्पी हैं, शिव के ही शिष्य हैं। विद्याओं का निवास भगवान शंकर के श्रीचरणों में रहता है। भागवत के एकादस स्कन्ध में भगवान ने कहा है कि जिसे विद्या की कामना हो वह शंकर जी की उपासना करे। "विद्या कामास्तु गिरीशं।"

(मानसमणि अगस्त 1968 से)

❋ शिव-ताण्डव ❋

कवित्त-(1) "खुल गया तीसरा विलोचन त्रिलोचन का,
नेत्र की प्रभा से भरी भूतनाथ की कुटी॥1॥

रुद्र में अलख एक ज्योति भी बभक उठी,
दीप्ति से दमक उठी शंकर की त्रिकुटी ॥2॥
शीघ्र अपने में रज-रज को समेट लिया,
भेंट लिया नभ लेली नागिन की लकुटी ॥3॥
कमर दिगम्बर की चाप सी लरक उठी,
ढ़रक उठी गंगा फरक उठी भृकुटी ॥4॥

(2) डिम डिम डिम गूँज डमरू का नाद,
ताण्डव के उग्र भाव आने लगे हर में ॥1॥
नाँचै देव-दानव त्रिदेव सविनोद नाँचै,
नभ में पयोद नाँचे जल जलधर में ॥2॥
नाँचे यक्ष-किन्नर पिशाच भूत-प्रेत नाँचें,
नाँचे निशाकर कर नाँचे दिनकर में ॥3॥
हिल कर सुमेर नाचें बरुण कुबेर नाँचें,
घेर नाँचे गरुड़ सुमेर नाँचें कर में ॥4॥

(श्याम नारायण पाँडे 'श्याम' कृत)

❑ ❖ ❑

(49) प्रलयंकर

श्लोक—"जटाकटाहसभ्रमन्निलिं पनिर्झरी।
विलोलवी चिवल्लरी विराजमान मूर्धनि॥
धगद्धगद्धकज्ज्वलल्ललाट पट्ट मावके।
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥"

"जिनके सिरकी जटाजाल में उलझती हुई चंचल लहर लतिकाओं युक्त गंगाजी भ्रम से घूमती हुई शोभायमान हो रही हैं, जिनके ललाट के नेत्र में अग्नि धू-धू करके जल रही है, उन बाल चन्द्रमा को मुकुट बनाने वाले प्रभु में प्रतिपल हमारा प्रेम हो।"

प्रधानतः शंकरजी प्रलयंकर हैं, अपने निर्गुण रूप से वे सृष्ट के उत्पत्ति, स्थिति तथा पालन के लिये त्रिधारूपों में तीनों गुणों को तटस्थ उपादान बनाकर प्रकट होते हैं। उनका रुद्ररूप तमोगुण को तटस्थ उपादान बनाकर प्रलय के संहार के लिये अभिव्यक्त होता है।

प्रलय-मृत्यु यह बड़ा भयंकर शब्द है। संसार के बड़े से बड़े धैर्यशाली भी इस शब्द से भयभीत होते हैं; पर यह अनिवार्य है। इसे न तो हम टाल सकते हैं और

न इसके बिना सृष्टि चल सकती। सृष्टि है तो प्रलय रहेगी-जन्म है तो मृत्यु होगी। यदि ऐसा न हो तो विश्व जीर्ण वस्तुओं से ऐसा भर जावे कि नवीन को स्थान ही न रहे। प्रकृति एक कूड़ाखाना मात्र ही रह जावे।

रुद्र प्रलयंकर है पर उन्हें शिव कहा है **"शंकर! यदि तू शंकर है, फिर क्यों विपरीत भयंकर है॥"** क्यों ? प्रलय का ही दूसरा नाम कल्याण है। मृत्यु के पश्चात् ही नव-जीवन आता है। नवीनता, नवजीवन सौंदर्य, माधुर्य, आकर्षण, तेज, ओज, धर्म और शान्ति के आगमन के लिये पुराने खड़े हुए शक्तिहीन और अधर्म तथा व्यर्थ के भार को फेंककर स्थान रिक्त कर देना ही प्रलय या मृत्यु का कार्य है। पतझड़ न हो तो बसंत आवै कैसे ? नवीन मनोहर किसलय दल के आविर्भाव के लिये पुराने पत्तों का गिर जाना अनिवार्य है। इसी से संहार में ही कल्याण का मूल है। प्रलयंकर शिव हैं।

जब विश्व जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, जब प्रकृति कार्य करते-करते थक जाती है, तब वे रुद्र जो कि वस्तुतः शिव-कल्याणमय हैं, उसे विश्राम देने के लिये, नव-जीवन देने के लिये आगे बढ़ते हैं। वे उसे कार्य से छुड़ा कर शान्ति देते हैं, उसके पुराने ढाँचे को जो कि बेकार हो चुका होता है, तोड़कर उससे नवीन सुन्दर एवं सुदृढ़ ढाँचे का निर्माण करते हैं।

यह प्रलय भी पाँच प्रकार की है। नित्य प्रलय, खण्ड प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, महा-प्रलय और आत्यन्तिकी प्रलय। नित्य प्रलय निंद्रा है, खण्ड प्रलय है भूकम्प, ज्वालामुखी आदि उत्पातों से पृथ्वी के किसी विशाल भाग के प्राणियों का नष्ट हो जाना, पृथ्वी या किसी एक दो ग्रहों की टक्कर से उनका ही नाश नैमित्तिक प्रलय है, सम्पूर्ण विश्व का एक साथ ही नाश महाप्रलय है और जीव का माया से मुक्त हो जाना, उसके लिये आत्यन्तिकी प्रलय है।

सभी प्रलयों में प्रलयंकर का शिवस्वरूप कार्य करता है। दिनभर के थके शरीर को निद्रा के द्वारा, एक भाग में बड़े अधर्म को खण्ड प्रलय से दूर करके, पृथ्वी आदि जो ग्रह बहुत पुराना और बेकार हो गया उसे तोड़-फोड़ कर और जब समस्त विश्व जीर्ण हो गया तो उसे मिटाकर रुद्र नवजीवन, नवशक्ति तथा नवीन रूप देते हैं, इसी प्रकार जिस जीव ने साधना से अपने कर्माशय को बेकार कर दिया, ज्ञान रूप से उसके कर्माशय को भस्म करके प्रभु उसको सर्वदा के लिये अपने आनन्दमय चरणों में ले लेते हैं।

प्रलय या मृत्यु कोई दूसरी वस्तु नहीं। किसी भी पदार्थ के मूल भाव का नाश नहीं होता उसमें व्यक्त रूप का सर्वाशतः ही परिवर्तन मृत्यु के नाम से पुकारा जाता है। इस परिवर्तन के लिये जो उस रूप का अदर्शन होता है उसे मृत्यु कहते हैं।

वस्तुतः यह मृत्यु नवजीवन दान का उपकरण है।

जब समस्त प्रकृति कार्य करते-करते थक जाती है, उसके अंग उपयोग आते-आते इतने जीर्ण हो जाते हैं कि वे कार्य के योग्य नहीं रहते, तो प्रलयंकर उस सृष्टि और प्रलय की सन्धि में अपना प्रदोष नृत्य करते हैं। प्रकृति के इन रूपों को तोड़कर उसे नवीन शक्ति देने के लिये विश्राम देते हैं। वैसे तो प्रत्येक परमाणु में प्रतिपल-अनवरत यह सृष्टि और विनाश हो रहा है। प्रत्येक अणु का जीर्ण भाग तुरन्त नष्ट हो जाता है, पर जब इस प्रकार परिवर्तन से काम नहीं चलता तब पूरे विश्व को ही नष्ट करके पुनर्निर्माण की आवश्यकता होती है। यही नाश महाप्रलय है।

हाथों मे डमरू और त्रिशूल लेकर भगवान शंकर का प्रदोष-नृत्य होता है, तृतीय नेत्र खुल जाता है, जटाओं से गंगा प्रलय की धारा के रूप में उमड़ पड़ती है। त्रिशूल से लगातार तारे टूट-टूटकर गिरने लगते हैं, स्वर्ग जटाघात से चूर्ण हो जाता है, पृथ्वी और नीचे के लोक मदप्रहार से नष्ट हो जाते हैं। तृतीय नेत्र की ज्वाला उस चूर्ण-विचूर्ण विश्व को भस्म कर देती है, गंगा डुबा देती है। गंगा की धारा पृथ्वी की भस्म को जलमग्न कर देती है। अग्नि की प्रबलता से जल सूख जाता है और नृत्य की गति से उत्पन्न वायु उस अग्नि को अपने में मिला लेती है। विद्याओं एवं कलाओं का उत्पादक डमरू शब्द उस समय वायु में विश्लेषण करके आकाश में लीनकर देता है और आकाश उस शब्द में। रुद्र की कटि में लगा काल उस शब्दमय डमरू को बन्द कर देता है। माता पार्वती काल को निगलकर स्वयं शिव में अन्तर्हित हो जाती हैं।

यदि माया के बन्धनों से छूटना है, यदि इस जन्म-मरण के चक्र की प्रलय अभीष्ट है तो नृत्य करते हुए प्रलयंकर के रूप का ध्यान करो, मनन करो, प्रलय के इस तत्व का-पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश शब्द में, शब्द काल-महान में, महान उमा प्रकृति में और उमा शिव (ब्रह्म) में लीन हो गयीं। एक शिव ही शिव शेष हैं। मुक्ति का यही साधन है।

(मानसमणि अगस्त 1968 से)

❃ भगवान शिव ❃

(1) सित गंगा-जल रासि, शीशपर, जटा विरति-आकृति निर्मल,
दिव्य बाल-शशि-ललित भाल, शुचि तेज-राशिमय मुखमण्डल।
जगत-दग्धकारी प्रचण्ड बिष द्वाराकृत सुकण्ठ श्यामल,
पुंज्जीकृत जग-सुन्दर ता-सम अति सुडौल तन गौर सबल।
वश्य काल सम केलि-निरत फणि-शोभित विस्तृत वक्षस्थल,

चरम दयामय दोलोचन हैं, चरम क्रोधमय एक अमल।
(2) सदन गर्वहर, गिरिजा सुखकर, योगेश्वर, धृतबाल–स्वभाव,
तव उपासकों के हित रहता जग में कोई नहीं अभाव।
स्वयं ब्रह्म के तुम स्वरूप हो, याकि ब्रह्म के अंश प्रधान,
अथवा हो आनन्द सिन्धु की गुरुतम लहरों के उत्थान।
हो जाता जिस समय असम्भव जगती में दुर्भाव दमन,
करते तब तुम उसमें हितकर नाश रूप गुरु परिवर्तन॥

(आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव)



(50) मृत्युंजय श्री शिव

श्लोक– "चन्द्रार्काग्नि विलोचनं, स्मितमुखं, पद्म द्वियान्तः स्थितं,
मुद्रापाश मृगाक्षसूत्र विलसत् पाणि हिमांशु प्रभम्।
कोटीरेन्दु गलत्सुधाप्लुततनुम् हारादि भूषोज्वलं,
कान्त्या विश्व विमोहनं पशुपतिं, मृत्युंजयं भावयेत्॥"

"चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, मुस्कराते हुए, द्विदल पद्म पर स्थित, करों में मुद्रा, पाश, मृग, रुद्राक्ष तथा सूत्र धारण किये, चन्द्रमा के समान कान्ति वाले, सिर स्थित चन्द्र के कोने से झरते हुए अमृत से आप्लावित तथा मालादि आभूषणों से शोभित शरीर कान्ति से विश्व को मुग्ध करने वाले, पशुपति मृत्युंजय का ध्यान करो।"

दोहा– मृत्युंजय हैं शिव प्रभो, यदि याद उनहिं की पाय।
मृत्यु जीत ली जाय है, स्वयं परे मृत्यु कहाय॥

शिव भगवान मृत्युंजय हैं, मृत्यु उनके स्मरण मात्र से जीत ली जाती है, पर वे स्वयं मृत्यु से परे हैं ही।

चौ०– सेवहिं चरण उनहिं जन कोई। वो भी परे मृत्यु से होई॥
विधि पूर्वक जप उनका पाहीं। सकल अनिष्ट शांत होइ जाहीं॥

पर उनके श्री चरणों का स्मरण, सेवन करने वाला भी मृत्यु से परे हो जाता है। आज भी अकाल मृत्यु तथा किसी भयंकर रोगादि के होने पर ग्रहों के अनिष्टकारी स्थानों पर आने पर महामृत्युंजय मंत्र का श्रद्धालु लोग जप कराते हैं। विधिपूर्वक जप हो तो समस्त अनिष्ट तत्काल ही शान्त हो जाते हैं।

चौ०– मृत्युंजय स्वरूप उन ध्यावहिं। भीषण कष्ट तुरत भगि जावहिं॥
मारकण्डेय तपस्या द्वारा। प्रसन्न किया उन सिंधु विहारा॥

केवल प्रभु के मृत्युंजय स्वरूप के ध्यान से भी बहुत भीषण कष्ट तुरंत भाग जाते हैं। श्रीमार्कण्डेय ऋषि ने तपस्या के द्वारा भगवान क्षीरसायी नारायण को प्रसन्न किया।

चौ०—तेहि आराध्यहि प्रकटेउ तबही। पर माँग्यो माया देखन जबही॥
उन्हें मिला इच्छित वरदाना। माया सृष्टि प्रलय बहाना॥

उनके आराध्य के प्रकट होने पर उनकी माया को देखने का वरदान माँगा। उनका इच्छित वर उन्हें मिला। माया क्या देखना? सृष्टि और प्रलय करना ।

चौ०—सहसा विश्व समुद्र प्लावित। ऋषि देखा प्रलय ह्वै जावित॥
झकोले खायँ अकेले लहरै। प्रलियासिंधु की पड़े मझेरैं॥

सहसा ऋषि ने जगत को समुद्राप्लावित देखा, प्रलय हो गयी, अकेले वे प्रलय सिंधु के मध्य लहरों में झकोरे खाने लगे।

दोहा—बट पत्रशायी शिशु के, पहुँच समीपहिं जाहिं।
उनकी श्वाँसा से खिंचे, उदरहिं मांहि समाहिं॥

ऋषीजी झकोरे खाते-खाते वट पत्रशायी लीला शिशु के समीप पहुँचे और उनकी श्वाँस से खिंचकर उनके उदर में ही चले गये।

चौ०—कई युगों ब्रह्माण्डहिं देखहिं। घूम-घूम उदरहिं में पेखहिं॥
श्वाँस के साथ ही बाहर आये। दृश्य अदृश्य पलहिं हो जाये॥

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कई युगों तक घूम-घूम कर उदर में देखते रहे, श्वाँस के साथ ही बाहर आ गये। पलक मारते ही सब दृश्य-अदृश्य हो गया।

चौ०—तब निज आश्रम में ही पाया। कई युग समझे ये माया॥
सृष्टि प्रलय सकल उन देखी। भूल भुलैयाँ शक्ति पेखी॥

तब उन्होंने अपने को अपने आश्रम में ही पाया, जिसे वे कई युगों समझे थे वह कुछ क्षण ही निकले माया ही जो ठहरी! सृष्टि प्रलय तथा समस्त ब्रह्माण्ड एवं माया की भूल भुलैयाँ में डालने वाली शक्ति भी ऋषी ने देखी। उनकी इच्छा पूर्ण हो गयी।

चौ०—हर की कृपा चाहिं हर भक्ता। मार्कण्ड इष्टहिं अनुरक्ता॥
उमा साथ इत शंकर जाहीं। ऋषिहि पेखि दया माँ चाहीं॥

हरि के भक्त पर हर की कृपा होनी ही चाहिए। मार्कण्डेय जी अपने आराध्य के ध्यान में समाधिस्थ हो गये थे, उधर से उमा के साथ शंकरजी जा रहे थे, दयामयी माँ ने इस दृढ़ तपस्वी को देखकर दया करनी चाही।

चौ०—अनुरोध किया शंकर उन काहीं। देउ वरदान उन्हें जो चाहीं॥
हँसकर प्रभु बोले अस बानी। निष्काम भक्त वर चाह न आनी॥

माँ भगवती ने शंकरजी से उनको वरदान देने का अनुराध किया जो वे चाहें,

हँसकर प्रभु बोले—"निष्काम भक्त वरदान की चाह नहीं करते, वे वरदान चाहते ही कब हैं? फिर भी इनका सत्संग करूँगा।"

दोहा— समाधिस्थ तो थे ऋषी, शंकर जी गये आइ।
वाह्य ज्ञान उन था नहीं, पता नहीं चल पाइ॥"

ऋषी तो समाधिष्ठ थे और शंकरजी आ गये, उन्हें बाह्य ज्ञान था ही नहीं, क्या पता कौन आता है?

चौ०—योग शक्ति शिव उर तेहि जाहीं। इष्टहि साथ शिवा उर पाहीं॥
चौंक पड़े शिवहिं देखकर। बाहर पेखउ उमा महेश्वर॥

सहसा शिवजी ने योगशक्ति से उनके हृदय में प्रवेश किया। आराध्य के साथ हृदय में शिवा (अर्थात पार्वती) को देखकर चौंक पड़े। नेत्र खोलते ही बाहर ऋषीजी को बाहर उमा-महेश्वर दिखाई दिये।

चौ०—दर्शन भये जोर कर हाथा। चरणों पर टेका निज माथा॥
गदगद कंठ भये उन काहीं। अस्तुति करन लगे तेहि पाहीं॥

दर्शन हुए हाथ जोर लिये और चरणों पर अपना मस्तक रखा, कंठ गदगद हो गया, ऋषीजी उनकी स्तुति करने लगे।

चौ०—आषुतोष तब उन्हें उठाहीं। वर माँगन आदेशहिं लाही॥
बहु आग्रह करन ऋषि माँगा। अखंड ध्यान निज इष्टहिं सांगा॥

आशुतोष ने उन्हें उठाकर वरदान माँगने को आदेश दिया। बहुत आग्रह करने पर ऋषीजी ने माँगा "मैं अपने आराध्य का अखण्ड ध्यान कर सकूँ।"

चौ०—मृत्यु न छीन लेइ मम देही। कोई न बाधा पहुँचे ये ही॥
'एवमस्तु' शिव ने कह दीना। मृत्यु आन मम सुमिरन कीना॥

और मेरी मृत्यु में कोई बाधा न पहुँचे भक्त को और क्या चाहिए। "एवमस्तु" कहकर शंकरजी ने कहा, "मृत्यु के आने पर आप मेरा स्मरण कर लें। मैं आकर आपकी रक्षा करूँगा।" ऋषी अपने ध्यान में लग गये, और आषुतोष कैलाश पधारे।

जन्म के साथ मृत्यु लगी है। संसार में जन्म लेते ही मृत्यु का समय भी निश्चित हो जाता है। जिसने भी जन्म धारण किया है उसे मरना तो पड़ेगा ही ।

दोहा— मृत्यु काल आया ऋषी, यमदूतहिं लेने आय।
जलन लगे ऋषी तेज से, लौटे यमहिं बताय॥

मार्कण्डेय ऋषी का मृत्युकाल आया, यमदूत उन्हें लेने आये तो दूर से ही उनके तेज से जलने लगे। उन्होंने लौटकर संयमनी पुरी दूतों ने यमराज को बताया कि—

चौ०—ऋषी समीप पहुँच नहिं पाते। समर्थ नहीं तेहि तेजहिं ताते॥
उल्लंघन शासन नहिं पाऊँ। स्वयं ऋषि लेने मैं जाऊँ॥

"हम लोग उन ऋषि के समीप नहीं जा पाते, उनके तेज को सहने में हम असमर्थ हैं।" शासन में उच्छंखलता अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन नहीं होना चाहिए स्वयं यमराज महिष पर बैठकर ऋषि को लेने चल पड़े।

चौ०—माला पाश महिष यम बैठेउ। लख निज ओर आश्रमहि पैठेउ॥
मृत्युंजय स्मर मुनि लावा। आये न शिव यमराजहिं आवा॥

दूर से ही महिष पर स्थित यमराज को माला और पाश लिये अपनी ओर आते देख मार्कण्डेय जी ने मृत्युंजय का स्मरण किया, शंकरजी तो आये नहीं, और यमराज समीप आ गये।

चौ०—रुष्ट होइ आक्षेप विलोई। पिशाचहिं संग ठिकान न कोई॥
विषहिं नशा पागल है जाहीं। क्या आपति दूसर मन माहीं॥

कुछ रुष्ट होकर ऋषि आक्षेप विलोकने लगे "पिशाच के सहचर उन पागल का क्या ठिकाना। कहीं श्मशान में विष के नशे में पड़े होंगे, उन्हें क्या पता कि दूसरे पर क्या आपत्ति आई है।"

चौ०—प्रेम भरे आक्षेपहिं काहीं। रसहि लेन छिप गये शिव ताहीं॥
सर्व व्याप्त वो सब जग मांही। आना उन्हें कहाँ जग नाहीं॥

शिव प्रभु तो प्रेम भरे भक्त के आक्षेपों का रस लेने के लिये ही छिपे थे, उन सर्वव्यापक को आना कहाँ से था? वे तो वहीं उपस्थित थे।

दोहा—निकट आइ यमराज ने, चह भाला करन प्रहार।
सहसा महिषहि सामने, लखि शिवहिं त्रिशूलहिं धार॥

निकट आकर यमराज ने ऋषी पर प्रहार करने के लिये भाला उठाया। सहसा देखा कि ठीक उन्हें महिष के सामने ऋषी ने दूसरी ओर वृषभ पर सवार भगवान शंकरजी हाथ में त्रिशूल उठाये "ईंट का उत्तर पत्थर से" देने को प्रस्तुत हैं।

भाला बढ़ा नहीं कि त्रिशूल मस्तक के पार हो जावेगा। भाला और पाश फेंककर महिष से कूदकर यमराज प्रभु के चरणों पर जा गिरे। उठकर फिर बड़ी नम्रता से स्तुति करने लगे। प्रभु ने कहा, "मैंने ऋषी को अभय दिया है, आप उन्हें नहीं ले जा सकते, अस्तु अपने लोक को लौटे।" आज्ञा का पालन तो करते ही बनता, तुरन्त यमराज लौट गये।

ऋषी को अपने आक्षेपों के लिये बड़ा पश्चाताप हो रहा था। रोते हुए ऋषिजी शंकर जी के चरणों में लोटने लगे। प्रभु ने उन्हें उठाकर कहा—"पुत्र! पश्चाताप की आवश्यकता नहीं, रोओ मत। तुम्हारी प्रेम भरी रुष्ट वाणी सुनने के लिये ही मैंने जानबूझकर देर की। मुझे भक्तों के आक्षेप में स्तुति से भी अधिक आनन्द आता है। यह मृत्युलोक है यहाँ कोई अमर नहीं रह सकता। मर्यादा का पालन होना चाहिये। तुम यहाँ से कैलाश पर चल कर वहीं अपने आराध्य का ध्यान करो। यहाँ रहने से

यम के शासन की मर्यादा भंग होगी। शंकरजी मार्कण्डेयजी को लेकर कैलाश पर आ गये। आज तक ऋषी की अखंड तपस्या हो रही है।

(1) अब दूसरी कथा = दशार्ण देश के राजा वज्रवाहु के बहुत सी रानियाँ थीं, पर पुत्र किसी को न था। सौभाग्य से महारानी सुमति को गर्भ रहा। सपत्नियों ने द्वेषवश उसे विष दे दिया। विष के प्रभाव से रानी के समस्त शरीर में घाव हो गये। गर्भपात तो नहीं हुआ पर जो बच्चा हुआ उसका शरीर भी घावों से भरा हुआ था। राजा ने बहुत चिकित्सा करायी पर कोई लाभ न हुआ। द्वेष करने वाली सभी रानियों ने राजा से कहा—"सुमति का रोग संक्रामक है, कहीं ऐसा न हो कि उसका रोग आपको भी लगे। उसे पुत्र के साथ दूर वन में छोड़ देना अच्छा रहेगा। राज भवन में या प्रजा में इस रोग के फैलने से बड़ी आपत्ति आवेगी।"

राजा चिकित्सा कराते-कराते पुत्र से निराश हो चुका था। संसार में स्वार्थी में प्रेम थोड़े ही होता है। अपने शरीर के मोह से, रोग के डर से राजा ने दूसरी रानियों की सलाह मान ली। रात्रि में चुपचाप राजा का एक अन्तरंग सेवक बेचारी सुमति को पुत्र के साथ रथ में डालकर घोर वन में छोड़ आया। विपत्ति में कौन किसका साथी होता है?

एक राजरानी पुत्र के साथ घोर वन में पड़ी है, उसके पति ने ही उसे उसके ऐश्वर्य को छीनकर निर्वासित कर दिया है, सोचिये उसके दु:ख का क्या ठिकाना होगा? ऐसे ही समय सुमति के हृदय का टुकड़ा वह लाल भी घावों के विष से चल बसा। विपत्ति अकेले नही आती। रुग्णा रानी शोक से मूर्च्छित हो गयी। वह परम शिवभक्ता थी, अत: चेतना लौटने पर कातर होकर अपने आराध्य को पुकारने लगी।

सच्चे हृदय की पुकार प्रभु तक अवश्य पहुँचती है, वे दयामय सच्ची पुकार की उपेक्षा नहीं कर सकते। आषुतोष दुखिया की पुकार सुनते ही दौड़े। एक योगी के वेष में प्रकट हुए। कृपा दृष्टि ही पर्याप्त थी, झोली से भस्म डालते ही पुत्र जी उठा, उसके शरीर के घाव भी अच्छे हो गये, भस्म के प्रभाव से सुमति का शरीर भी तत्काल ठीक हो गया। प्रभु जिस पर कृपालु हों उसे किसी दूसरे के सहारे की क्या आवश्याकता। उनके चरणों के आश्रय में आकर फिर किसी का मुख क्यों देखना पड़े? दयामय ने सुमति को मृत्युंजय मंत्र की दीक्षा देकर उसको जपकरने को कहा, उन्होंने ही उस बालक का नाम 'मृत्युंजय' रख दिया ।

करुणासिंधु की करुणा निस्सीम है जिसकी इच्छा मात्र से ही यह सृष्टि होती है, उसी अखिलेश ने स्वयं सुमति के लिये एक फूँस की झोंपड़ी बनायी। प्रेम परवश प्रभु भक्त के लिये क्या नहीं करते? सुमति उस कुटी में रहने लगी। वहाँ पर्याप्त कंद, मूल, फल तथा निर्झर थे। हिंसक पशुओं का कहीं नाम न था। भद्रायु इसी कुटी में बढ़ने लगा।

उधर बज्रवाहु ने जब सुमति को राज्य से निकाला तभी से दैव उस पर रुष्ट हो गया। प्रभु भक्तों को कष्ट देकर कौन सुखी रह सकता है? शत्रु ने बज्रवाहु पर चढ़ाई की। उद्योग करने पर भी वज्रवाहु पराजित ही हुआ। शत्रु ने उसे रानियों के साथ बन्दी करके कारागार में डाल दिया। उसे अपने कर्म का फल मिला।

इधर धीरे-धीरे वन में भद्रायु बड़ा हुआ, माता के उपदेश से वह भी मृत्युंजय का जाप करता था। बालक को माता-पिता जिधर लगावें, उधर ही वह लग जाता है। एक दिन पुन: वे ही जीवन देने वाले योगिराज के वेष में शंकरजी सुमति के यहाँ पधारे। उन्होंने भद्रायु को एक खड्ग देकर चलाना सिखाया और अपने पिता के राज्य पर जो कि शत्रुओं के हाथ में था, आक्रमण करने का आदेश दिया।

अकेले खड़गधारी भद्रायु ने शत्रु को जाकर ललकारा। अखिलेश जिसके पक्ष में हो उसकी विजय तो होनी ही ठहरी। शत्रु की अपार रण-वाहिनी भद्रायु का कुछ न कर सकी। कुछ मारे गये और शेष भाग गये। पिता को शेष रानियों के साथ उसी निर्वासित पुत्र ने कारागार से मुक्त किया। सुमति राजमाता हुई। वज्रवाहु लज्जा के मारे वन में तपस्या करने चला गया।

(3) अब तीसरी कथा = काश्मीर भारत का स्वर्ग होने के साथ शिव-भक्तों का केन्द्रभूमि भी रहा है। इस भूखण्ड में महाप्रसिद्ध शिव-भक्त हो चुके हैं। अमरनाथ का ज्योतिर्लिंग इस दिव्यभूमि को पवित्र कर रहा है। प्राचीनकाल में इस देश के एक राजा भद्रसेन नाम के थे। महाराजा भद्रसेन बड़े ही धार्मिक तथा अनन्य शिव भक्त थे। महाराज के उनके ही समान शिव-भक्त एक कुमार था, उसका नाम सुधन्वा था। यह सुधन्वा अर्जुन से युद्ध करने वाले सुधन्वा नहीं हैं।

माता-पिता का इकलौता पुत्र पर अपार प्रेम होता ही है। यदि कहीं पुत्र सद्‌गुणी, अनुकूल, आज्ञापालक, नम्र, विद्यावान और सुशील हुआ तो माता-पिता तो क्या दूसरे भी उससे बहुत प्रेम करते हैं। सुधन्वा अपने गुणों के कारण पिता के साथ समस्त प्रजावर्ग का प्राण-प्यारा था। राजकुमार होने पर भी वह इतना श्रद्धालु शिव-भक्त था कि समस्त शरीर में भस्म लगाये रहता और आभूषणों के स्थान पर रुद्राक्ष की मालाएँ धारण करता था।

एक दिन महामुनि पाराशरजी भद्रसेन के यहाँ पधारे। महाराज ने आगे बढ़कर उनके चरणों में प्रणाम किया। विधिवत आसन देकर, धूप, दीप, चन्दन, पुष्प, माल्य, नैवेद्यादि से उनका पूजन करके अतिथि सत्कार किया। राजकुमार ने भी आकर मुनि के चरणों में मस्तक रखा। इस परम शिव-भक्त राजकुमार को देखकर पाराशरजी पहले तो बड़े प्रसन्न हुए, किंतु तुरन्त ही उनके मुख पर विषाद की रेखा दौड़ गयी। महाराज ने मुनि की मुखाकृति के इस भाव परिवर्तन को देखा। हाथ

जोड़कर उन्होंने बड़ी विनम्रता से इसका कारण जानने की प्रार्थना की। पाराशरजी ने पहले तो कुछ यों ही टाल दिया, परंतु जब राजा अधिक आग्रह करने लगे तो बताना ही पड़ा।

पाराशरजी बोले—"महाराज! मैं आपके इस कुमार की वेषभूषा से लक्षित होने वाली शिव भक्ति को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पर इस बालक के भालचिन्हों के द्वारा यह जानकर कि इसकी तो शीघ्र ही अकाल मृत्यु होने वाली है मुझे बहुत दुःख हुआ।" राजा पर जैसे वज्र गिरा हो। प्राण प्रिय एकमात्र पुत्र की अकाल मृत्यु सुनकर वे सहसा मूर्छित हो गये। सभी उपस्थित लोग रोने लगे। वहाँ शोक की धारा बहने लगी। मुनि ने दूसरे लोगों को धैर्य दिया। उपचार से जब राजा की चेतना लौटी तो पाराशर जी उन्हें आश्वासन देते हुए बोले—"आप धैर्य रखें। आकुल होने से कोई काम नहीं होता। भगवान शंकर मृत्यु को भी टालने में समर्थ हैं। मेरे विचार से दस सहस्त्र रुद्रावर्तन से शिवलिंग का अभिषेक करने से कुमार की आपातकाल मृत्यु टल जायेगी।" राजा मुनि के चरणों में विह्वल होकर गिर पड़े। वे उन्ही से इस अनुष्ठान को सम्पन्न कराने की प्रार्थना करने लगे परम दयालु मुनि ने स्वीकार कर लिया।

सैकड़ों ब्राह्मण बुलाये गये। सहस्त्रों मन दुग्ध एकत्र हुआ। शेष सब सामिग्री राजा ने एकत्र करायी। महामुनि पाराशर जी की अध्यक्षता में रुद्रावर्तन अभिषेक प्रारम्भ हुआ। मंत्र की ध्वनि से गगन मण्डल गूँजने लगा। राजकुमार मन्दिर में मूर्ति के समीप बैठा रखा गया था। वह समय आया जो कि मुनि ने मृत्यु के लिये बताया था। राजकुमार कुछ समय पहले ही से भयभीत सा दीख पड़ता था। सबके हृदय भय से काँप रहे थे। सहसा राजकुमार वहीं लेट गया। उसका मुख तेज हीन हो गया। समीप बैठे राजा ने पुत्र पर हाथ रखा। पुत्र का शरीर प्राणरहित हो चुका था। वह अब शवमात्र ही था।

लोगों के नेत्र भर आये, राजा मूर्छित ही होने वाला थे। सहसा मुनि ने उनका हाथ पल्ड़कर सावधान रहने का संकेत किया। पाराशर ज़ी का मुख दृढ़ निश्चय के तेज से दीप्तमान था। वह श्रद्धा और विश्वास का युग था। कुमार के मृत होने पर भी अनुष्ठान और मुनि में सबका ही विश्वास था। किसी को बोलने या रोने का भी साहस न हुआ। थोड़ी देर में अनुष्ठान पूर्ण हुआ। मुनि ने अभिषेक का दुग्ध कुण्ड से उठाकर कुमार के शरीर पर छिड़का। हर्ष और आश्चर्य से सबने देखा कि शव में तेज आ गया था और श्वाँस चलने लगी है। रुद्राक्ष से उस अभिषिक्त दुग्धके मुख में छोड़ते ही कुमार स्वस्थ होकर आँखें खोल कर उठ बैठा। हर्ष से मण्डप भर गया। जयध्वनि से आकाश गूँजने लगा। कृतज्ञता से राजा मुनि के चरणों पर गिर पड़े, उन्हें उठाकर मुनि ने कुमार के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

कुमार ने बताया "पहले कई भयंकर पुरुष रस्सी लेकर आते दीख पड़े, पर वे मन्दिर के द्वार से ही लौट गये। फिर थोड़ी देर में एक काला सा महाबलवान पुरुष अकेला रस्सी लिये आया और शिवलिंग को प्रणाम करके मन्दिर के भीतर आकर मुझे बाँधकर ले चला। थोड़ी ही दूर जाने पर एक ओर से बड़े सुन्दर तीन नेत्रों और पीली जटाओं वाले गौर पुरुष आगे दीख पड़े। उन्हें देखते ही पहले ने मुझे बन्धन से छोड़ दिया और उनकी स्तुति करने लगा। इतने में मंत्र ध्वनि कर्णों में पड़ने से मैं जाग गया।" सबने इसे शंकरजी की कृपा समझा ।

पुराणों में शंकरजी की कृपा से मृत्यु पर विजय पाने के ऐसे अनेकों दृष्टान्त हैं, यहाँ तीन उद्धृत किये गये हैं। वस्तुतः तो प्रभु के चरणों का जिसने भी सहारा लिया, वही मृत्यु से पार हो गया। मृत्यु पुनः उसका स्पर्श भी नहीं कर सकती।

(मानसमणि सितम्बर 1968 से)

'शिव शंकर की जय'

(चतुर्थ सोपान पूर्ण हुआ)



श्रीशिव कथा सार का

पंचम सोपान

❋ मंगलाचरण ❋

श्लोक (1)—"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः
केवलो निर्गुणश्च॥1॥"

"एक ही परमेश्वर जो चैतन्य, केवल और निर्गुण है, सारे भूतों में गूढ़ और सबमें व्यापक है तथा सब भूत प्राणियों का अन्तरात्मा है, वही कर्मों के फल का देने वाला तथा समस्त प्रपंच का निवास स्थान और साक्षी है।"

श्लोक (2)—"भक्ताप्रयाणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्या ममर्त्यैः
संसाराख्यं शमयति रुजं स्वात्मबोधौसधेन।
तं सर्वाधीश्वर! भवमहादीर्घतीब्रामयेन किलिष्टोऽहं त्वां वरद!
शरणं यामि संसार वैद्यम्॥2॥"

"हे सर्वेश्वर वरदायक शम्भो! आप आत्मबोध रूपी औषध के द्वारा अपने भक्तवरों के भवरोग को हर लेते हैं। अन्य देवताओं की सामर्थ्य नहीं कि वे इस दुःसाध्य रोग की चिकित्सा कर सकें। इस भवरूपी महाभयंकर एवं जन्म-जन्मान्तर के पीछे लगे हुए रोग से पीड़ित होकर मैं आप संसार वैद्य की शरण आया हूँ। कृपया ऐसा कीजिये कि जिससे फिर इस संसार रोग का मुँह न देखना पड़े।"

श्लोक (3)—"दासोऽस्भीति त्वयि शिवः! मया नित्य सिद्धं निवेद्यं
जानास्येतत त्वमपि यदहं निर्गतिः सम्भ्रमामि॥
नास्त्येवान्यन्मम किमपि ते नाथ! विज्ञापनीयं
कारून्यात्मे शरणवरणं दीनवृत्तेर्गृहाण॥"

"हे शिव! मैं आपका दास हूँ, यही मुझे आपके चरणों में नित्य निवेदन करना है। आप भी इस बात को जानते ही हैं कि मैं असहाय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। बस, आपसे और कुछ नहीं माँगता, केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप मुझ दीन को अपनी अकारण करुणा का कण मात्र प्रदान कर सदा के लिये अपनी शरण में ले लो।"



(51) काशी मरण से मुक्ति

**श्लोक—"असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां संगो गंगाम्भः शिवपूजनम्॥"**

"इस असार संसार में ये चार वस्तुएँ ही सार हैं—काशीका वास, सज्जनों का संग, गंगाजल और श्री भगवान शंकरजी की पूजा।"

भगवत् तत्वों के स्थूल जगत में चार रूप व्यापक हैं—नाम, रूप, लीला और धाम। इन चार में से किसी एक का भी आश्रय मनुष्य को संसार के जन्म-मरण के चक्र से पार कर देता है। चाहे भगवान के दिव्य नाम का जप कीजिये, चाहे शास्त्रों में वर्णित उनके दिव्य रूप या दिव्य लीलाओं का चिंतन कीजिये, अथवा कुछ न करके उनके धाम में ही पड़े रहिये।

यह नियम है कि मृत्यु के समय जो अन्तिम क्षण में जीव की स्थिति होती है, उसी के अनुसार उसका पुनर्जन्म होता है। अतः साधन जो भी हो अन्तिम क्षण तक चलना चाहिए। अन्तिम समय मुख से भगवान का नाम निकले, अन्तिम क्षण रूप या लीला का चिन्तन हो, या धाम में ही मरे, तभी मुक्ति हो सकती है।

नाम, रूप और लीला का अन्तिम समय स्मरण रहना सरल नहीं। इस दृष्टि से तो धाम बहुत सरल और सुगम है। धरा पर भगवान के जितने भी दिव्य धाम हैं, अयोध्या, मथुरा, मायापुरी, कांची, काशी, अवन्तिका, द्वारिका आदि इनमें जो मरता है, वह पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। इन पुरियों में कोई तारतम्य है कि नहीं, यह बात हम पौराणिक समन्वय के अध्याय में सोचेंगे। इतना ही समझना पर्याप्त है कि सभी पुरी मुक्तिदायिनी हैं।

जैसे केवल मनुष्य रूप में अवतीर्ण होने से भगवान का शरीर पांचभौतिक, मायिक तथा नश्वर नहीं होता, वह चिन्मय ही रहता है, उसका ध्यान और साक्षात करने वाले पुरुष माया से पार हो जाते हैं। वैसे ही प्राकृतिक स्थानों की भाँति प्रतीत होने पर भी भगवद्धाम मायिक और नश्वर नहीं। वे सगुण ब्रह्म की विभूति के दिव्य धाम हैं, माया से परे चिन्मय हैं अतः उनमें शरीर त्याग कर जीव पुनः जन्म नहीं लेता।

जब जीव किसी दिव्य धाम में शरीर त्याग करता है तो इस शरीर के स्थूल आवरण से पृथक होते ही वह अपने को एक विचित्र आकर्षणमय वायु मण्डल में पाता है। उसके सूक्ष्म और कारण शरीर के आवरण उस आकर्षण के प्रताड़न एवं खिंचाव से विदीर्ण होने लगते हैं और वह स्व स्वरूप को प्राप्त होता है।

वेदवाक्य है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। इस नियम के अनुसार केवल धाम में शरीर त्याग से मुक्ति सम्भव नहीं। पर दूसरे धामों में तो मरने पर जीव भगवान के दिव्य लोकों को जाता है और वहाँ के आनन्द भोगने के पश्चात् उसे वहीं प्रभु या प्रभु के किसी अन्तरंग सेवक से ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे वह मुक्त हो जाता है।

काशी में भगवान शिव मृत्युकाल में प्रत्येक जीव के दक्षिण कर्ण में तारक मंत्र का उपदेश करते हैं, जिसके प्रभाव से उसे ज्ञान हो जाता है।

धामों में रहकर जो लोग पापाचरण करते हैं, उन्हें उनके पाप का दण्ड भी भोगना पड़ता है। धामों में किये गये पाप साधारण से अधिक भयंकर हो जाते हैं। मरण के पश्चात् तत्काल मुक्ति तो उन लोगों की होती है जो धामों में श्रद्धापूर्वक प्रभु का स्मरण करते हुए धर्माचरण करते हैं जो साधन के द्वारा चित्त के मल को जीवन में ही नष्ट कर चुके होते हैं।

जब तक चित्त में संस्कारों के मल हैं, तब तक उसमें ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। धाम में रहकर जो साधना की जाती है वह बहुत शीघ्र सफल होती है क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से धाम का दिव्य वातावरण साधन को स्वयं बल देता रहता है और मलों को दूर करता रहता है। दूसरे स्थानों में केवल अपने साधन का ही आश्रय लेना पड़ता है और धाम में साधनको धामशक्ति का प्रबल सहारा मिलता है। साधन के द्वारा मल दूर हो जाने पर भी माया के प्रावल्य के कारण दूसरे स्थानों में ज्ञान का उदय नहीं होता। विक्षेप और आवरण बने ही रहते हैं। वे सात्विक योनियों में जन्म देते हैं। परधाम में मल के दूर होने पर जिसकी मृत्यु होगी उसके विक्षेप धाम के प्रभाव से और आवरण प्रभु के उपदेश से नष्ट हो जायेगा और तुरंत ज्ञान होकर मुक्ति होगी।

जो पापी हैं जिन्होंने धाम में रहकर पाप किये हैं उनकी एक गति होती है और जो पापी तो नहीं हैं पर साधन के द्वारा जिनके मल नष्ट नहीं हुए हैं उनकी दूसरी गति। पुनर्जन्म वैसे तो धाम में शरीर त्यागने पर किसी का भी नहीं होता। शरीर त्याग के समय काशी में प्रत्येक प्राणी को भगवान शंकर स्वयं तारक मंत्र का उपदेश करते हैं। यदि हृदय शुद्ध हुआ, साधन से मल नष्ट हो चुके हों तो मंत्र से तत्काल ज्ञान हो जाता है। यदि हृदय शुद्ध न हुआ तो मंत्र का हृदय पर एक संस्कार मात्र पड़कर उस समय रह जाता है।

शंकरजी के तारकोपदेश के अनन्तर भैरवजी दण्ड लिये आते हैं। मलिन हृदय जीवों को वे भयंकर से भयंकर कष्ट देकर शीघ्र से शीघ्र उससे पापों का समस्त फल भोग करा देते हैं। यदि काशी में उस जीव ने पाप नहीं किये हैं तो धाम के प्रभाव से बाहर के पाप तो प्रथम से ही नष्ट हुए होते हैं, धाम में भूल से हुए पाप इस घोर भैरवी यातना से भोग लिये जाते हैं। पाप के फल इस प्रकार भोग लेने पर शिवगण उसे शिवलोक में ले जाते हैं यहाँ के दिव्य भोगों से वह अल्प समय में ही अपने सम्पूर्ण पुण्यों का फल भी भोग लेता है।

शंकरजी मरण के समय तारक मंत्र का उपदेश कैसे करते हैं, यह जानना योगियों के लिये ही सम्भव है। दिव्य दृष्टि सम्पन्न महापुरुष ही प्रभु के दिव्य रूप का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इन स्थूल नेत्रों में उस परम तत्व को प्रत्यक्ष करने की

शक्ति नहीं। हमें तो एक ही मार्ग है-शास्त्रों और महापुरुषों के वचनों पर विश्वास करें।

रामकृष्ण परमहंस जी ने काशी आकर भगवान शिव को तारक मंत्र देते प्रत्यक्ष किया था—वे काशी आये हुए थे। एक दिन दशास्वमेध हो वे नाव पर बैठ कर गंगाजी में मणिकर्णिका घाट की ओर गये। मल्लाह और साथ के लोग पास दौड़े कि कहीं ये गंगाजी में न कूद पड़ें। पास आकर परमहंसजी की दशा देखकर वे स्तम्भित हो गये। परमहंस जी का मुख तेज से प्रकाशित हो रहा था। उनकी दृष्टि स्थिर होकर घाट पर जलती चिताओं की ओर लगी थी, और वे ध्यान की स्थिति में मुस्करा रहे थे।

थोड़ी देर में परमहंसजी का ध्यान टूटा। नाव किनारे लगा दी गयी। पूछने पर गद्‌गद् कंठ से नेत्रों में जल भरकर वे बोले—"मैंने देखा कि एक गौरवर्ण, पीली जटाओं वाले त्रिनेत्र पुरुष, सम्भवतः भगवान शंकर प्रत्येक चिता के पास आकर जीवात्मा को हाथों से उठाते हैं और उसके सूक्ष्म शरीर के दक्षिण कर्ण से मुख लगाकर कुछ कहते हैं। अवश्य ही शिवजी जीव को इस प्रकार तरक का उपदेश देते हैं। इसके अननंतर माँ काली आकर स्वयं अपने हाथों से जीव के सूक्ष्म एवं कारण शरीर के बन्धनों को खोलती हैं। ज्यों ही चिताएँ जलने लगीं, वे दोनों अदृश्य हो गये।" सब लोग परमहंस जी के दर्शन की घटना से आश्चर्य करने लगे।

काशी में मरण से मुक्ति तो उपरोक्त प्रकार से हो ही जाती है। यदि फिर भी हम नरकादि, कठोर भैरवी यातना से बचना चाहते हों, रुद्र पैशाचावस्था का भयंकरतम योग हमें अभीष्ट न हो, तो हमें पवित्र आचरण से वहाँ अर्थात् काशी में रहना चाहिये। पापकर्मों से बच कर सर्वदा प्रभु का स्मरण करना चाहिये।

धाम में रहकर भगवान की लीला के अभिनय देखे जा सकते हैं। वहाँ होने वाली कथाओं को सुनकर लीला का चिंतन किया जा सकता है। मन्दिरों में रूप का दर्शन करके उसका ध्यान भी सुगमता से हो सकता है और नाम तो अपनी वस्तु है, उसका तो सर्वदा स्मरण कर सकते हैं। धाम में चाहने वाले के लिये सब साधन सुगम हैं।

जो सदाचार एवं धर्माचरण पूर्वक लीलामय के धाम में रहते हैं, वहाँ रहकर प्रभु की कथाओं का श्रवण करते तथा उनकी लीलाओं का चिंतन करते हैं, मन्दिरों के दर्शन करते हैं और प्रभु के दिव्य रूप का ध्यान करते हैं, साथ ही भगवान के दिव्य नामों का जप-कीर्तन भी करते हैं, उन्हें तो मुक्ति प्राप्त ही है। उन्हें बन्धन कहाँ ? उनके समीप माया कैसी ? वे तो जीवन मुक्त ही हैं। *(मानसमणि अक्टूबर 1968 से)*

✻ अलबेला शिव ✻

कवित्त—"माथे में त्रिपुण्ड बिधु बालहू विराजै 'प्रेम',
जटन के बीच गंगधार को झमेला है।
सींगी पर राजै, एक कर में त्रिशूल धारै,
गरे मुण्डमाला घाले काँधे नागमेला है॥
कटि बाघ छाला बाँधे भसम रमाये तन,
बाम अंग गौरी देवी चढ़न को बैला है।
धेला है न पल्ले, खरचीला है अजूबी भाँति,
ऐसा गिरि मेला देव शम्भु अलबेला है॥"

"हर हर हर भूतनाथ पशुपति, योगेश्वर महादेव शिव पिनाक पाणि।
ऊर्ध्व ज्वलत जटा-जाल, नाचत व्योम कोट भाल,
सप्त भुवन धरत तालटलमल अवनी॥"



(52) शिव-निर्माल्य

श्लोक—"महाप्रसादे गोविन्दे नामे ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्प पुण्यवतां राजम् विश्वासो नैव जायते॥"

"राजन! भगवान के प्रसाद में, गोविन्द में, उनके नाम में और वैष्णवों में उन्हीं लोगों का विश्वास नहीं होता जिनके पुण्य थोड़े ही हैं।"

शब्दार्थ को छोड़ दें तो श्लोक का भाव यह है कि भगवान के प्रसाद में, भगवान में उनके नाम में और उनके भक्तों में पुण्यात्माओं का ही विश्वास होता है। थोड़े पुण्य वालों का विश्वास नहीं होता।

शंकरजी का प्रसाद ग्रहण करना चाहिये या नहीं ? इस विषय में शास्त्रों ने एक व्यवस्था की है। शंकरजी के लिंग विग्रह में से कुछ का प्रसाद चण्ड का भाग होता है। यह चण्ड का भाग अग्राह्य बताया गया है। बस इसी को लेकर लोगों में यह भ्रम फैल गया कि शिव प्रसाद मात्र अग्राह्य है। वस्तुतः शिव प्रसाद की महिमा अपार है। चण्ड के भाग के अतिरिक्त समस्त प्रसाद ग्राह्य है। यहाँ एक कथा विभूति प्रसाद के महात्मा की उद्धृत कर रहे हैं—

दुर्जय नाम का राक्षस कौंच वन में जो कि कुमार कार्तिक का निवास है, घूमते-घूमते पहुँचा। वन में एक वट वृक्ष के नीचे एक योगीराज ध्यान लगाये भगवान शंकर का ध्यान कर रहे थे। उनके शरीर में भगवान को चढ़ाकर प्रसाद रूप से धारण की हुई भस्म लगी थी। राक्षस भूखा था वह उन्हें खाने दौड़ा। वे तो ध्यानस्थ थे, उन्हें क्या पता बाहर क्या हो रहा है।

सहसा योगीराज का स्पर्श होते ही उनके शरीर की भस्म राक्षस को लगी तो उसके समस्त तापों का नाश हो गया। उसका हृदय निर्मल और शरीर दिव्य हो गया। उसने पृथ्वी में सिर रखकर योगिराज को प्रणाम करके उनकी स्तुति की। भस्म के प्रभाव से वह शिवलोक को प्राप्त हुआ। यह केवल भगवान की भस्म प्रसाद का माहात्म्य है।

जो शैव हैं, जिन्होंने शिव दीक्षा ग्रहण की है उनके लिये तो भगवान शिव का सभी प्रकार का प्रसाद ग्राह्य है, उन्हें कोई सोचना नहीं है। ग्राह्य, अग्राह्य का विधान केवल जिन्होंने शिव दीक्षा नहीं ली है उनके लिये है।

किसी भी शिवमूर्ति का प्रसाद यदि वह आकार बनी हुई मूर्ति है, ग्राह्य है। केवल लिंग विग्रहों में से ही कुछ के प्रसाद में चण्ड का भाग होता है। दूसरी बात यह है कि किसी भी लिंग विग्रह का वह प्रसाद जिसका कि लिंग मूर्ति से स्पर्श न हुआ हो, अलग रखकर जो निवेदन किया गया हो वह ग्राह्य है। लिंग के ऊपर चढ़ा हुआ भी प्रसाद शालिग्राम की शिला से स्पर्श करा देने पर ग्राह्य हो जाता है।

यदि शालिग्राम शिला से स्पर्श न कराया जावे तो भी लिंग के ऊपर चढ़ा फल, पत्र, पुष्प, जल, दुग्ध तथा नैवेद्य ही अग्राह्य होगा सो भी कुछ विशेष लिंगों का ही, शेष वस्तुएँ उनकी भी पवित्र तथा ग्राह्य हैं।

जहाँ पर शालिग्राम की उत्पत्ति होती है वहाँ से उत्पन्न लिंग पारद, पाषाण, चाँदी या सोने से बने लिंग, नर्वदा से निकले वाणलिंग, ज्योति लिंग देवता तथा सिद्धों से प्रतिष्ठित लिंग, केशर का लिंग, स्पटिक लिंग, रत्न निर्मित लिंग, किसी भी धातु से निर्मित लिंग, जिनकी उपासना से किसी ने सिद्धि प्राप्त की हो ऐसे लिंग और स्वत: प्रकट लिंग, इन समस्त प्रकार के लिंगों के प्रसाद में चण्ड का अधिकार नहीं है, अत: उनके लिंग पर चढ़े प्रसाद भी ग्राह्य है।

मिट्टी, लकड़ी आदि जो वस्तुएँ उपरोक्त वर्णन में नहीं आई हैं उनसे निर्मित शिवलिंग को वह प्रसाद जो कि फल-पुष्पादि हो तथा लिंग से स्पर्श हो चुका हो चण्ड का भाग अग्राह्य है। यदि शालिग्राम शिला से स्पर्श न कराया जावे, ऐसे प्रसाद को नदी, तालाब आदि में या किसी जलाशय में छोड़कर चण्ड के ही अर्पण कर देना चाहिए।

चण्ड का भाग तथा अपवित्र दशा में सभी प्रकार का शिव प्रसाद अग्राह्य है। यदि भूल से अपवित्र दशा में ले लें अथवा भूल से चण्ड का भाग प्रसाद ग्रहण कर लें तो प्रायश्चित के लिये जो वस्त्र पहन रखे हैं, उन सबके साथ स्नान करना चाहिए।

जो प्रसाद ग्राह्य हैं, उनको अस्वीकार करना भगवत्प्रसाद का अपमान करना है। यह एक बहुत बड़ा पाप है। यदि ऐसा पाप भूल से हो जाय तो उपरोक्त प्रकार से स्नान करके इष्ट मंत्र का 108 बार जप करना चाहिए। कभी भी जानबूझकर ग्राह्य भगवत्प्रसाद को अस्वीकार करके उसका अपमान नहीं करना चाहिए।

शंकरजी के निर्माल्य जल, पत्र, पुष्प आदि को कभी भूलकर भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए। शिव निर्माल्य के उल्लंघन से पुण्य का, साधनों का, सिद्धियों का, तेज का, धन का, विद्या का तथा बल आदि का नाश होता है, शिव महिम्न विवरण में लिखा जा चुका है कि शिव-निर्माल्य के उल्लंघन से गंधर्व राज पुष्पदन्त की व्योम गमन शक्ति नष्ट हो गयी थी।

शिव निर्माल्य का उल्लंघन न हो इसलिये शास्त्रों में शंकरजी की अर्ध-प्रदक्षिणा की व्यवस्था की है। मन्दिर की प्रदक्षिणा करने के लिये पहले दाहिनी ओर से मन्दिर के पीछे वहाँ तक जाते हैं जहाँ से चढ़े हुए जल के बहने का मार्ग हो, फिर वहीं से लौट आते हैं। बायीं ओर से भी पुन: जाकर उस जल बहने के मार्ग से लौट आते हैं, इस प्रकार प्रदक्षिणा पूरी होती है। उद्देश्य इतना ही है कि उसमें चढ़ा निर्माल्य उल्लंघन न होने पावे।

निर्माल्य के सम्बन्ध में सभी आवश्यक बातें उद्धृत कर दी गईं। हमें मिथ्या भ्रम में पड़कर कभी भी भगवान के प्रसादका अपमान नहीं करना चाहिए। केवल त्याग उसी का ही करना चाहिए जो कि शास्त्र विहित हो।

(मानसमणि अक्टूबर 1968 से)।

❋ अद्भुत शिव ❋

(1) "सती के गहैया 'प्रेम' सती के छड़ैया जोगी,
काम के बचैया पूरे काम के नसैया तुम।
जग के मरैया, शिव जग के हरैया काल,
पशुपति-गहैया पाशुपति-चलैया तुम॥
औघड़-दिवैया दानी, औघड़ छनैया मस्त,
औघड़ कहैया खासे औघड़ नचैया तुम॥
सूल के धरैया रखवारी के करैया प्रभो!
लाज के रखैया भक्ति भक्तन दिवैया तुम॥"

(2) "दानि जो चारि पदारथ को,
त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर टीको।
भोरो भलो, भले भाय को भूखो,
भलोइ कियो सुमिरें तुलसी को॥
ता बिनु आस को दास भयो,
कबहू न मिट्यो लघु लालच जी को।
साध्यो कहा करि साधन तै,
जौ पै राधो नहीं पति पारवती को॥"

"जै शिव"

"महिमा श्री सर्वेश्वर शिव की, वेद पुराण बखानी है।
तीन लोक चौदह भुवनों में, शिव समान को दानी है॥"



(53) भस्मासुर भस्म हो गया

(यह प्रकरण (27) में वृकासुर की दुष्टता के शीर्षक से पृष्ठ 152 पर लिखा जा चुका है।)

कल्प भेद में ऐसी भी कथा है कि भगवान विष्णु उस असुर के सामने मोहिनी रूप में आये। उनके त्रिभुवन मनोहर रूप को देखकर असुर मार्ग में ही खड़ा रह गया। वह उन्हें एकटक घूरने लगा। पार्वती का स्मरण उसे नहीं रहा।

मोहिनी ने मुस्कराते हुए कहा—"ओह! आप हैं दानवेन्द्र! आप तो परम सुन्दर और विश्व के सबसे बड़े योद्धा हैं।"

असुर व्याकुल हो गया, मोहिनी के कटाक्ष से। वह ठीक बात भी नहीं कर पा रहा था। उसने कुछ कहना चाहा—तुम...

मोहिनी बीच में ही कटाक्षपूर्वक हँसते हुए कहा, "मैं तो स्वयं आपके पास आ रही थी। मैं आपको स्वीकार करूँगी, यदि आप अभी मेरे साथ वैसे ही नृत्य करें, जैसे मैं करती हूँ।"

असुर प्रफुल्ल हो गया। केवल नाँचने से उसे यह नारी मिल जावेगी! मोहिनी के साथ वह नृत्य करने लगा। नृत्य करते हुए मोहिनी हाथों की जो मुद्रा बनाती थी, असुर उसी का अनुकरण करता था। सहसा मोहिनी ने अपना दाहिनी हाथ अपने सिर पर रख दिया। नृत्य के आवेश में वृकासुर वरदान की बात भूल चुका था। उसने भी दाहिना हाथ अपने सिर पर रखा और फिर तो क्षण भर में उसकी देह की भस्म भी वायुमण्डल में लुप्त हो गयी। इस प्रकार शंकरजी आपत्ति से छूट गये।

(मानसमणि नवम्बर 1968 से)



(54) नर्मदा अवतार

इस ब्रह्म सृष्टि में पृथ्वी पर नर्वदा का अवतरण तीन बार हुआ है। प्रथम बार प्रथम कल्प पाद्मकल्प के प्रथम सतयुग में, द्वितीय बार दक्ष सावर्णि मन्वन्तर के प्रथम सतयुग में और तृतीय बार वर्तमान वैवस्वत के प्रथम सतयुग में। तीनों बार की अवतरण कथाएँ संक्षिप्त रूप में यहाँ दी जा रही हैं।

इस सृष्टि से पूर्व की सृष्टि में समुद्र के अधिदेवता पर ब्रह्माजी किसी कारण

रुष्ट हो गये और उन्होंने समुद्र को मानव-जन्म धारण का शाप दिया। फलतः पाद्म कल्प में समुद्र के देवता राजा पुरुकुत्य के रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न हुए।

एक बार पुरुकुत्स ने ऋषियों तथा देवताओं से पूछा, "भूलोक तथा दिव्य लोक में सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कौन सा है?"

देवताओं ने बताया, "रैवा ही सर्वश्रेष्ठ है। वे परम पावनी तथा शिव को प्रिय है, उनकी अन्य किसी से तुलना नहीं है।"

राजा बोला—"तब उन तीर्थोन्तमा रेवा को भूतल पर अवतीर्ण करने का उद्योग करना चाहिए।"

ऋषियों तथा देवताओं ने अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होंने कहा, "वे नित्य शिव सानिध्य में ही रहती हैं। शंकरजी भी उन्हें अपनी पुत्री मानते हैं। वे उन्हें त्याग नहीं सकते।"

लेकिन राजा पुरुकुत्स हताश होने वाले नहीं थे। उनका निश्चय अविचल था। विंध्य के शिखर पर जाकर उन्होंने स्वयं तपस्या प्रारम्भ की। पुरुकुत्स के दीर्घकालीन कठोर तप से सन्तुष्ट होकर भगवान शंकर प्रकट हुए। और राजा से वरदान माँगने को कहा।

पुरुकुत्स बोले, "परम तीर्थभूता नर्मदा का भूतल पर अवतरण आप करावें। उन रेवा के पृथ्वी पर अवतरण को छोड़कर मुझे और कुछ नहीं चाहिये।"

भगवान शिव ने पहले राजा को यह कार्य असम्भव प्राय बतलाया, किन्तु जब देखा कि नरेश दूसरा कोई वरदान नहीं चाहते तो उनकी निस्पृहता एवं लोक मंगल कामना से शंकरजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने नर्मदा को भूतल पर उतरने का आदेश दिया।

नर्मदाजी बोलीं, "भूतल पर कोई मुझे धारण करने वाला हो और आप सब कहीं मेरे समीप रहें, तब मैं उतर सकती हूँ।"

शंकरजी ने स्वीकार किया कि वे सर्वत्र नर्मदा की सन्निधि में रहेंगे। नर्मदा के किनारे स्थान-स्थान पर इसी से शिव-क्षेत्र है और नर्मदा का प्रत्येक पाषाण शिवलिंग है। पर्वतों को शिव ने नर्मदा को धारण करने की प्रेरणा दी। अतः विंध्याचल के पुत्र पर्यन्क पर्वत ने नर्मदा को धारण करना स्वीकार कर लिया ।

पर्यन्क पर्वत के मेकल नामक शिखर पर एक बाँस के झुरमुट के भीतर से नर्मदा प्रकट हुईं। इससे उनका नाम मेकलसुता पड़ गया। देवताओं ने आकर प्रार्थना की, "परम पावनी रेवा! आप हमारा स्पर्श करें, इससे हम सब पवित्र हो जायेंगे।"

नर्मदा ने उत्तर दिया, "मैं अभी तक कुमारी हूँ। अतः मैं किसी पुरुष का स्पर्श नहीं करूँगी। यदि कोई बलपूर्वक मेरा स्पर्श करेगा तो वह भस्म हो जायेगा। आप सब पहले मेरे उपयुक्त पुरुष का विधान करें।"

देवताओं ने बताया, "राजा पुरुकुत्स आपके उपयुक्त पुरुष हैं। वे समुद्र के अवतार हैं। नदियों के समुद्र ही नित्यपति हैं, क्योंकि वे साक्षात् भगवान नारायण के अंग से उत्पन्न उन्हीं के अंश हैं। अत: आप राजा पुरुकुत्स को वरण करें।"

रेवा ने राजा पुरुकुत्स को पतिरूप में स्वीकार किया। फिर राजा की आज्ञा से उन्होंने अपने जल का स्पर्श देकर देवताओं को पवित्र किया।

(2) दक्ष सावर्णि मनवन्तर में राजा हिरण्य तेजा ने नर्मदा के अवतरण के लिये चौदह हजार वर्ष तप किया। संतुष्ट होकर भगवान शंकरजी ने दर्शन दिया, इस कल्प में भी नर्मदा की अवतरण कथा पहले कल्प के समान ही है।

इस कल्प की कथा में इतना अन्तर है कि नर्मदाजी ने भूतल पर अवतीर्ण होते समय अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे द्युलोक तथा पृथ्वी का भी प्रलय कर देंगी। सहसा पर्यन्क पर्वत के शिखर पर भगवान शंकर के दिव्य लिंग का आविर्भाव हुआ। उस लिंग से हुँकार पूर्वक ध्वनि निकली-"रेवा! मर्यादा में तुम्हें रहना चाहिये।"

उस ध्वनि को सुनकर नर्मदाजी सुकुचित हो गयीं और अत्यन्त लघुरूप में उस लिंग को स्नान कराती हुई पृथ्वी पर आविभूर्त हो गईं। इस कल्प में तथा आगे भी जब वे अवतीर्ण हुईं, उनके विवाह की बात नहीं उठी। क्योंकि उनका विवाह तो प्रथम कल्प में ही हो चुका था।

(3) इस वैवस्वत मन्वन्तर में राजा पुरुरवा ने नर्मदा को पृथ्वी पर लाने के लिये तपस्या की। यह स्मरण करने योग्य है कि पुरुरवा ने ही प्रथम बार अरणि-मंथन करके अग्निदेव को प्रकट किया था और उन्हें अपना पुत्र माना था। वैदिक यज्ञ इस मन्वन्तर में पुरुरवा से ही प्रारम्भ हुआ। उससे पहले लोग ध्यान तथा तप करते थे।

पुरुरवा ने तपस्या करके शंकरजी को प्रसन्न किया और नर्मदा के धरातल पर उतरने का वरदान माँगा। इस कल्प में बिन्ध्य के पुत्र पर्यन्क पर्वत का नाम अमर कण्टक पड़ गया था, क्योंकि असुर जो देवताओं को पीड़ा देते थे, इसी पर्वत के वनों में रहने लगे थे। जब भगवान शंकर के बाण से जलकर त्रिपुर इस पर्वत पर गिरा तो उसकी ज्वाला में असुर भस्म हो गये।

नर्मदा के उतरने की कथा, द्वितीय कल्प के समान है। इस बार भी रेवा ने उतरते समय प्रलयंकारी रूप धारण किया था, किन्तु शंकरजी ने उन्हें मर्यादा में रहने का आदेश दे दिया। इससे वे संकुचित होकर ही भूतल पर प्रकट हुईं।

(मानसमणि नवम्बन 1968 से)



(55) रावण ने कैलाश उठाया

महर्षि पुलस्त्य का पौत्र तथा ऋषी विश्रवा का पुत्र दशग्रीव प्रारम्भ से शिवभक्त नहीं था। वह सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का उपासक था। ब्रह्मा के वरदान से ही वह मनुष्य एवं बंदरों को छोड़कर शेष सभी प्राणियों से अवध्य हुआ था ।

अपने बड़े भाई कुबेर को युद्ध में पराजित करके उसने उनसे पुष्पक विमान छीन लिया था। एक दिन प्रहस्तादि मंत्रियों के साथ उसी पुष्पक विमान में बैठकर वह हिमालय के ऊपर से जा रहा था, कैलाश पर्वत के पास पहुँचकर विमान की गति रुक गयी। रावण चकित हुआ कि विमान क्यों रुका।

इसी समय कैलाश पर वानर मुख नाटेशरीर वाले, त्रिशूलधारी नन्दीश्वर दिखाई पड़े, उन्होंने कहा, "पौलस्त्य! इस समय भगवान शिव देवी के साथ पर्वत पर विराजमान हैं अत: कोई पक्षी, देवता, असुर इस पर्वत का आकाश मार्ग से भी उल्लंघन नहीं कर सकता। तुम दूसरे मार्ग से जाओ।

"तू बानर मुख मुझे उपदेश करता है" दशग्रीव ने नन्दीश्वर का उपहास किया और बोला, "मैं देखता हूँ कि शिव किस बल पर इतना असंक रहता है। इसे जानना चाहिए कि अब त्रिलोकी में केवल दशग्रीव ही असंक रह सकता है।"

उपहास से चिढ़कर नन्दीश्वर ने शाप दिया, "तू मेरे मुख का उपहास करता है, अत: ऐसे मुख वाले ही तेरे वंश का नाश करेंगे।"

शाप सुनकर रावण चिढ़ गया, वह विमान से उतर कर गर्जना करके बोला, "मैं तुझे और तेरे स्वामी शिव को भी अभी पर्वत समेत फेंके देता हूँ।"

रावण ने बलपूर्वक कैलाश पर्वत को उखाड़ लिया। उसने पर्वत मूल में अपनी भुजाएँ डाल दीं। और उसे उठाने लगा। सम्पूर्ण पर्वत वृक्षों साथ काँपने लगा। पक्षी कोलाहल करते उड़ने लगे। पशु क्रन्दन कर उठे। वट वृक्ष में भगवान शिव के वामांग में विराजमान गिरिजा ने डरकर अपने आराध्य के कण्ठ में भुजाएँ डाल दीं।"

भगवान महेश्वर के अधरों पर मन्दस्मित आया, वे एक तुच्छ प्राणी के औधत्य पर भला रोष क्या करते। केवल अपने बाम पद का अँगूठा तनिक दबा दिया उन्होंने। पर्वत फिर स्थिर हो गया, पशु-पक्षी आश्वस्त हो गये, किन्तु पर्वत के नीचे रावण की बीसों भुजाएँ पिस उठीं। वह उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगा, उसे असह्य पीड़ा हो रही थी, किन्तु अब पर्वत तनिक हिलने का नाम भी नहीं लेता था।

रावण पर्वत के नीचे सौ वर्ष दबा चिल्लाता रहा। अन्त में प्रहस्त के समझाने से उसने भगवान शंकर की स्तुति प्रारम्भ की। उसकी क्रन्दन भरी स्तुति सुनकर जगदम्बा को दया आ गयी। उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की दसानन की भुजाएँ मुक्त करने

के लिये। आशुतोष ने अंगुष्ठ उठा लिया। दशग्रीव ने भुजाएँ पर्वत मूल से निकाल लीं।

शिव महेश्वर हैं। मैं उन जगदम्बा को प्रसन्न करूँगा। महाप्राण दशशीश ने पर्वत के नीचे कुचली भुजाओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह भगवानं शंकरजी को प्रसन्न करने के लिये मानसरोवर के पर्श्व में खड़ा हो गया और ताण्डवनृत्य करते हुए उसने शिवस्तुति प्रारम्भ की।

"जटा कटाह सम्भ्रमन श्रमन्निलिभ्य निर्झरी,
विलोल बीचि बल्लरी विराजमान मूर्धनि।
धग् धग् धग् ज्वलल्ललातपट्ट पावके,
किशोर चन्द्र शेखरे रति प्रतिक्षणं मम॥"

दशानन के ताण्डव नृत्य में होते पदाघात से वहाँ एक सुविशाल सरोवर बन गया, जिसे अब राक्षस ताल कहा जाता है।

दशग्रीव की स्तुति से सदाशिव प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "पौलस्त्य! इस पर्वत के नीचे दबे हुए तुम देर तक रोते रहे हो और लोगों को रुदन कराने वाले तुम्हारे कर्म हैं, अत: अब से तुम्हारा नाम '**रावण**' हुआ। तुम अब मुझसे अभीष्ट वरदान माँगकर यहाँ से प्रस्थान करो।

रावण ने माँगा, "महेश्वर! अब मेरे किसी भी कर्म से मेरी शक्ति और तेज का क्षय न हो। कोई भी तपस्या, धर्म आदि के कारण मुझे शाप दे तो वह मेरा स्पर्श न करे। आप मुझ पर प्रसन्न रहें और आपके श्रीचरणों में मेरी स्थिर भक्ति सदा बनी रहे।

'एवमस्तु' शंकर ने वरदान दे दिया। उन उमा-महेश्वर के श्रीचरणों में प्रणाम करके दशग्रीव लंका लौट आया। लंका में उसने भगवान शिव के रत्नलिंग की स्थापना की और उसका पूजन करने लगा। अपनी यात्रा में भी वह रत्नलिंग सदैव साथ रखता था और नियम पूर्वक नित्य उस लिंग की पूजा किया करता था। इसी प्रकार वह नर्मदा तट पर शिवार्चन कर रहा था, जब सहस्त्रवाहु के रोकने से रेवा की धारा रुकी थी और रावण की पूजा के पुष्प बह गये थे, लेकिन युद्ध में रावण सहस्त्रवाहु से पराजित हो गया। महर्षि पुलस्त्य ने वहाँ सहस्त्रवाहु के बन्दीगृह से उसे मुक्त कराया था। *(मानसमणि दिसम्बर 1968 से)*

❋ भारत शिव का रूप है ❋

दोहा— "भारत शिव का रूप है, समझो सोच विचार।
सेवा से सब सुख मिले, कर देखो संसार॥1॥
भारत शिव का रूप है, केवल देव सुरेश।
सबकी मानस कामना, पूरी करें महेश॥2॥

भारत शिव का रूप है, कोई जानों ताहि।
क्या राजा क्या रंक सब सेवा की मन चाहि॥3॥
भारत शिव का रूप है, जो देखो चित लाय।
शिव समान कोई नहीं, सबकी करै सहाय॥4॥
भारत शिव का रूप है, दयावन्त दातार।
काम सुखद कल्याण का शुभदायक प्रतिवार॥5॥
"जय शिव"



(56) जब शंकरजी को काशी त्यागना पड़ा

पाद्मकला में मनु के वंश में दिवोदास नाम के एक नरेश हो गये हैं। इनका एक नाम रिपुंञ्जय भी था। वे परम धर्मज्ञ, गौ ब्राह्मण भक्त एवं शिव भक्त थे। संसार के भागों से विरक्त होकर वे वन में तप करने चले गये।

राज्य में शासक न होने से उत्पात होने लगे। दस्यु उत्पात मचाने लगे। धर्मभ्रष्ट हो गया और फलत: प्रजा अकाल, महामारी आदि से पीड़ित होने लगी। सतयुग में ही सृष्टि में यह विपर्यय देखकर ब्रह्माजी को चिन्ता हुई। वे दिवोदास के पास वाराणसी क्षेत्र में आये। और राजा से उन्होंने शासन करने को कहा।

दिवोदास बोले—"आप लोक पितामह हैं, आपकी आज्ञा मानना मेरा कर्त्तव्य है। क्षत्रिय का धर्म भी प्रजा की रक्षा करना है, किन्तु अभी देवता और नाग दोनों पृथ्वी पर रहते हैं और स्वच्छन्द व्यवहार करते हैं। वे पूज्य हैं, उन पर शासन किया नहीं जा सकता और उनके कारण मनुष्य भी मर्यादा में नहीं रह पाते, अत: यदि आप यह नियम कर दें कि देवता स्वर्ग में तथा नाग निम्न लोकों में ही रहेंगे, तो मैं शासन कार्य कर सकता हूँ।"

ब्रह्माजी ने दिवोदास की बात स्वीकार कर ली। फलत: देवताओं को पृथ्वी छोड़ देनी पड़ी। नाग पाताल में चले गये। भगवान शिव को भी विवश होकर आनन्द वन = काशी छोड़ना पड़ा, वे अपने गणों के साथ मन्दराचल पर चले गये।

यह सब हुआ किन्तु देवताओं को तथा शंकरजी को भी काशी छोड़ने का बहुत दु:ख हुआ। देवता युक्ति सोचने लगे कि वे दिवोदास को पदच्युत कैसे करें जिससे कर्मभूमि पृथ्वी पर विशेषत: अविभुक्त क्षेत्र वाराणसी में रहने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हो।

देवताओं की प्रेरणा से अग्निदेव ने पृथ्वी से अपना अंश खींच लिया, अग्नि के अभाव में प्रजा व्याकुल हो गयी। लेकिन धर्मात्मा दिवोदास ने प्रजा को धैर्य दिया और वे स्वयं तप: प्रभाव से अग्निदेव का कार्य सम्पन्न करने लगे। दिवोदास ने

सोचा—"आज अग्नि गये, कल सूर्य-चन्द्र या वरुण यही कार्य करेंगे। देवताओं से सम्बन्ध न रखना ही उत्तम है।" अतएव सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, वायु देवताओं का कार्य स्वयं दिवोदास ही अपने तपोबल से सम्पन्न करने लगे। देवताओं का रहा-सहा सम्बन्ध भी पृथ्वी से छूट गया। लेकिन दिवोदास में गर्व नहीं आया। देवताओं को यज्ञ का भाग बराबर मिलता रहा। उनके राज्य में कई अधर्म अन्याय की छाया भी नहीं रह गयी। समस्त प्रजा धर्मपरायण, संयमी तथा राजा की अनुव्रत थी। दिवोदास के राज्य में दिव स्वर्ग पृथ्वी का दास = उपजीवी मात्र रह गया।

देवताओं का जब दिवोदास पर कोई वश नहीं चला तो वे मिलकर ब्रह्मा तथा नारायण के साथ शंकरजी के पास गये। शंकरजी स्वयं भी काशी छूटने से खिन्न थे। अत: उन्होंने 64 (चौंसठ) योनिनियों को ।काशी भेजा कि वे किसी प्रकार दिवोदास को मार्गभ्रष्ट करें तो उसे राज्यच्युत किया जा सके। योगिनियाँ नाना प्रकार के मानवी वेश में वाराणसी आ गयीं। उन्होंने लोगों को उल्टे-सीधे बहुत से उपदेश दिये। लोग उनका सम्मान करते थे। उनकी बात सुनकर क्रोध भी नहीं करते थे, किन्तु शास्त्र मर्यादा विरुद्ध उनकी बात मानते भी नहीं थे। सब उपाय करके योगिनियाँ थक गयीं, उन्हें सफलता नहीं मिली तो वे लज्जा के कारण शंकरजी के समीप भी नहीं गयीं। वाराणसी में ही वे निवास करने लगीं।

योगिनियाँ नहीं लौटीं तो शंकरजी ने सूर्य को भेजा, वे भी मानव बनकर काशी आये और योगिनियों के समान विफल मनोरथ होकर काशी में द्वादस रूप से निवास करने लगे। इसी क्रम से शिवजी ने ब्रह्माजी को, 35 पेंतीस गणों को तथा गणेश जी को वाराणसी भेजा। इनमें से कोई सफल नहीं हुआ और काशी के विभिन्न स्थानों पर नरेश से छिपकर रहने लगे।

अन्त में शंकरजी ने विष्णु भगवान को भेजा। विष्णु भगवान ने आकर गंगा-वरुण के संगम पर स्नान किया और वहाँ आदि केशव श्रीविग्रह के रूप में अपना स्थिर निवास बनाया, फिर श्रीनारायण ब्राह्मण के वेष में राजा दिवोदास से मिले।

श्रीनारायण ने राजा दिवोदास को समझाया—"यह लोकनश्वर हैं, शरीर नित्य नहीं रह सकता। शरीर को बनाये रखने की इच्छा भी मोह होने से अधर्म है। क्षत्रिय धर्म का पालन तुमने कर लिया। जब इच्छा करते ही तुम भगवान शिव के परम धाम को पा सकते हो तो देह के मोह में क्यों पड़े हो?"

महाराज दिवोदास धर्मात्मा थे, शुद्ध चित्त थे। भगवान नारायण के उपदेश से उन्हें आत्म-ज्ञान हो गया। देह में उन्हें पहले भी आसक्ति नहीं थी। पुत्र को उन्होंने राज्य दे दिया और सात दिन तक दान करते रहे। सातवें दिन गंगा स्नान करके योग के द्वारा उन्होंने देह त्याग कर दिया। इस प्रकार उस महापुरुष ने मोक्ष प्राप्त किया।

दिवोदास के निर्वाण प्राप्त करने पर भगवान विष्णु ने गरुण को शंकर जी के

पास भेजा। भगवान शंकर पार्वती तथा गणों के साथ काशी आये। अपनी नित्य पुरी में आकर उन आनन्दकंद को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सभी देवता शंकरजी के साथ काशी आये। ब्रह्मा के वरदान की मर्यादा रक्षा के लिये शंकर जी ने नियम बनाया—"वाराणसी पृथ्वी से पृथक मानी जायेगी, देवता यहाँ श्रीविग्रह रूप में रह सकते थे। और प्रत्यक्ष निवास भी कर सकते हैं। शेष धरा पर वे केवल श्री विग्रहरूप में रही रहेंगे। *(मानसमणि दिसम्बर 1968 से)*

❃ आरती शिव की ❃

"हरि कर दीपक, बजावैं शंख सुरपति,
गनपति झाँझ, भैरों झालर झरत हैं।
नारद के कर वीन, शारदा जपत जस,
चारि मुख चारि वेद विधि उच्चरत हैं।
षटमुख रटत सहस्त्रमुख शिव-शिव,
सनक सनंदनादि पाँयन परत हैं।
'बालकृष्ण' तीन लोक तीस और तीन कोटि,
ऐसे शिव शंकर की आरती करत है। *(बालकृष्ण)*

जै शिव शंकर

दोहा—"इनके दर्शन मात्र से, नासत पाप पहार।
निसिदिन सुमिरन जो करै, हो जाये उद्धार॥"



(57) शिव और तन्त्र

श्लोक— "मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वाः मिथ्याप्रयुक्तो नतमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥"

"मन्त्र = वैदिक का उच्चारण स्वर से या वर्ण से हीन होने पर अथवा विपरीत ढंग से प्रयोग करने पर उद्देश्य सिद्ध करने वाला नहीं कहा जाता। वह वाणी रूप वज्र यज्ञकर्ता का ही नाश करता है। जैसे इन्द्र का शत्रु = वृत्रासुर स्वर दोष होने से मारा गया।"

आगम और निगम ये दोनों ही अनादि माने जाते हैं, दोनों ही सनातन धर्मानुयायियों के लिये प्रामाण्य हैं। पुराणों में दोनों का एक साथ वर्णन प्रमाण रूप से आया है। निगम शब्द का अर्थ वेद तो सर्वमान्य है पर आगम में क्या ग्रहण करना चाहिए, इसमें मतैक्य नहीं है। कुछ लोग केवल तन्त्र ग्रन्थ ग्रहण करना चाहते हैं और कुछ लोग स्मृति पुराणादि को आगम मानते हैं। वेदों के अतिरिक्त धर्मग्रन्थ, स्मृति,

पुराण, उपपुराण, सात्विक तंत्रादि ग्रहण करने चाहिए।

वैदिक मन्त्र या वेद और उसके अंग प्रधानतः यज्ञ यागादि और आध्यात्मिक विद्या का निरूपण करते हैं। यज्ञ भी स्वर्गदाता होने के कारण परलोक से ही अधिक सम्बन्धित हैं। थोड़े में कहें तो कह सकते हैं कि निगम में परलोक और प्राप्ति का प्रतिपादन है, पर केवल परलोक से ही तो काम नहीं चलता। इह लौकिक प्राणी को तो इस लोक में भी उन्नति का मार्ग चाहिए। शास्त्र अधूरे ही रह जावें, यदि उनमें परलोक का ही प्रतिपादन हो, इहलोक का न हो। इहलोक में सुख-समृद्धि आदि की प्राप्ति करते हुए परलोक का प्रतिपादन करने के लिये आगम का प्राकट्य है।

पीड़ित और पराधीन होने के कारण युगों से हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ दुर्बल होती गयीं। हमने अपने गम्भीर ग्रन्थों का अन्वेषण छोड़ दिया। जब हाथ से लिखने का युग था तो विधर्मियों ने हमारे ग्रन्थों में बहुत अधिक मिलावट की, उनका कुछ और ही अर्थ किया। उस मिलावट और अनर्थ के फलस्वरूप या तो ग्रन्थों से हमारी अरुचि हो गयी, या हम उनके ठीक अर्थ से वंचित हो गये। तन्त्र ग्रन्थों में जो मिलावट हुई और उनके जो अर्थ हुए वे वासना के वश हुए नर पशुओं के अनुकूल थे। शेष समाज ने ऐसा अर्थ होते देख उन ग्रन्थों से ही घृणा की। फलतः तन्त्रग्रन्थ हमारे लिये अप्रसिद्ध हो गये ।

लोग समझते हैं कि तन्त्रों में भ्रष्टाचार और अभिचार मन्त्र ही हैं, पर यह तो तन्त्रों में हुई मिलावट और उसके अनर्थ का परिणाम है। इसके द्वारा तन्त्रों से उदासीन होकर हम अपने पूर्वजों के ज्ञान के आधे भग से वंचित हो गये। पारलौकिक ज्ञान की भाँति भारत का आधिभौतिक ज्ञान भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। आज का पाश्चात विज्ञान उसके सामने वैसे ही तुच्छ है जैसे भारतीय दर्शन शास्त्र के सामने पाश्चात दर्शन। पर हमारा यह विज्ञान तन्त्रों में है जिसकी हमने उपेक्षा कर दी। हमें तन्त्रों के वास्तविक अर्थ को जानना होगाा और उसकी मिलावटों को पृथक करना होगा, तब कहीं हम अपने प्राचीन विज्ञान को प्राप्त कर सेंगे।

अर्जुन के दिव्यास्त्र, सुश्रुत का कायाकल्प, ऊषा का आकर्षण, मृतकों का पुनरोत्थान, शुक्राचार्य की संजीवनी, योगियों के आकाश गमनादि, यज्ञकुण्ड से कृत्या उत्पन्न कर शत्रु का नाश, इच्छाचारी व्योम नगरों का निर्माण, भौम के जल, अग्नि और वायु के दुर्ग, चाणक्य की वे औषधियाँ-जिनके लगाने से मनुष्य बिना थके सौ, दो सौ कोस चल कर सके, यह सब पुराणों की गप्प नहीं। यह सब हमारे पूर्वजों का महान भौतिक विज्ञान है। इनका बीज तन्त्र ग्रन्थों में निहित है। चेष्टा करके वहीं से इसे पाया जा सकता है।

पारलौकिक लाभ के लिये भी आगम शास्त्र अलौकिक हैं। आज का युग ऐसा नहीं कि हम निगमों से लाभ उठा सकें, वैदिक मंत्र तनिक से स्वर या मात्रा के दोष से उद्देश्यसिद्धि तो दूर रही प्रयोक्ता की ही हानि करते हैं, अब वह ज्ञानगान का युग

बीत गया। अन्वेषण करने पर भारत में अधिक से अधिक दो-चार ही सविधि और सस्वर वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करने वाले मिलेंगे। ऐसी दशा में हम सब वैदिक मन्त्रों से लाभ ही कैसे उठा सकते हैं। इसके साथ वैदिक अनुष्ठानों में दीर्घकाल और बहुव्यय की भी आवश्यकता है जो हमारी आज की स्थिति में सम्भव नहीं।

जगज्जननी दयामयी माँ श्री उमा जानती थीं कि एक ऐसा समय भी आयेगा जब लोग बुद्धि, बल, विद्या और धन से हीन हो जायेंगे, जो वेदमंत्रों का ठीक उच्चारण न कर सकेंगे। उनकी नन्हीं आयु तथा दरिद्रता में वैदिक अनुष्ठान असम्भव होंगे। अतः प्राणियों पर कृपा करके उन्होंने शंकरजी से उन वैदिक मंत्रों के समान फल देने वाले सरल तथा सर्व सुगम साधनों का निर्माण करने का आग्रह किया। प्रायः तन्त्रग्रन्थ इस उमा-महेश्वर सम्वाद के रूप में ही निर्मित हुए। इसी आगम शास्त्रों के सिद्धान्तों के आधार पर वेदों की अनुकूलता रखते हुए ऋषियों ने स्मृतियों की तथा वेदव्यासजी ने पुराणों की रचना की।

तन्त्रों का महत्व यह है कि उसमें थोड़ी बहुत विधि भंग होने से कोई दोष विशेष नहीं आता। मनुष्य मात्र उसके अधिकारी हैं। वेदों के बड़े-बड़े मंत्रों की शक्ति शंकरजी ने कुछ अक्षरों में ही रख दी है, जो फल वेदों के बड़े-बड़े अनुष्ठानों से नहीं होता वह तन्त्रों के सरल प्रयोगों से हो जाता है। समय, व्यय, श्रम और अध्ययन सब बहुत कम ही लगते हैं। इसके साथ अज्ञानवश हुई भूल के घोर फल से भी रक्षित रहते हैं।

तन्त्र, मन्त्र, यामल, स्वर विज्ञान, योग आदि ग्रन्थों की रचना पार्वतीजी के प्रश्नों और शंकरजी के उत्तर से हुई है। मन्त्र और यन्त्र दूसरे शब्दों में शब्द और रेखा विज्ञान आज के वैज्ञानिकों को की कल्पना से भी अभी बाहर हैं, पर भगवान शंकर ने ध्वनि विज्ञान के आधार पर मंत्रों का ऐसा निर्माण किया है कि उनमें आश्चर्यजनक फल देखे जाते हैं। साबर मन्त्र तो अपनी शक्ति के विषय में परम प्रसिद्ध है, इनमें न कोई विधि न विधान, मन्त्र सिद्धि भी नहीं करना पड़ता। ऊपर से देखने पर तो ये बढ़ेंगे, निरर्थक, अक्षर समूह से लगते हैं, पर इनका प्रभाव केवल उच्चारण मात्र से ही प्रत्यक्ष हो जाता है। ऐसे ही यन्त्र भी हैं। किसी विशेष वस्तु पर विधिपूर्वक कुछ रेखाएँ और अक्षरादि अंकित कर दीजिये और उपयोग करके देखिये उसका महान प्रभाव।

केवल आधि भौतिक ही नहीं, पारलौकिक फल भी तन्त्रों से प्राप्त हो सकता है। हम पहले कह चुके हैं कि वैदिक यज्ञादि का हमारे पास साधन ही नहीं। पर वेदों की क्रियाएँ और उनकी विधियाँ जो फल देती हैं, वे तन्त्रों की विधियों से भी प्राप्त हो सकती हैं। भगवान शिव ने अल्पज्ञ लोगों के कल्याणार्थ तन्त्रों में सन्ध्या हवन आदि तथा जन्म से लेकर मुण्डन, विवाह, प्रभृति, मरण संस्कार तक जितने संस्कार होते हैं, सबकी सरल विधियाँ निर्मित की हैं। साथ ही वेदों के राजसूय, अश्वमेध

आदि के महान फल को प्राप्त करने के लिये भी सरल अनुष्ठान हैं।

भगवान शंकर की अमर देन तंत्रों को भूलकर ही हम अपने महान ज्ञान को भूल गये हैं। लोक और परलोक दोनों दिशाओं में उन्नति करने के लिये अपने पूर्वजों के विशाल ज्ञातव्य को प्राप्त करने के लिये हमें साधन श्रम करना होगा। तंत्रों का निष्पक्ष तथा भाष्यों को छोड़कर स्वतंत्र अन्वेषण करना होगा। तभी हम शिव के मंगलमय प्रसाद को ग्रहण कर सकेंगे। *(मानसमणि जनवरी 1969 से)*



(58) ज्योतिर्लिङ्ग

श्लोक— "दुग्धैमध्वाज्ययुन्क्तैर्दधिसित सहितैः स्नापितं नैव लिंगं,
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितै पूजितं न प्रसूनैः।
धूपैः कंर्पूरदीपैर्विधरसयुतैर्नैव भक्ष्यो प हारैः,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव, भो श्री महादेव शम्भो ॥"

"हे कल्याणमय शंकर जी मैंने कभी आपके लिंग विग्रह को दूध, मधु, घृत, दधि और शक्कर के पंचामृत से स्नान नहीं कराया, न कभी चन्दनादि लगाया, न धतूरे आदि के पुष्पों से पूजन किया और न कभी धूप, दीप, कपूर तथा विधिपूर्वक नैवेद्य आदि से उपहार ही चढ़ाया, पर आप कल्याणमय हैं अतः कल्याणदाता प्रभो प्रसन्न होकर मेरे अपराधों को क्षमा करें।"

भगवान शंकर के यों तो दिव्य लिंग विग्रह सम्पूर्ण पृथ्वी में हैं। इनकी संख्या और उनका वर्णन करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं, पर द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग प्रधान माने जाते हैं। ये शिवभक्तों तथा प्रत्येक सनातन धर्मी के लिये अत्यन्त मान्य हैं। इनकी कहाँ-कहाँ स्थिति है औन इनके प्रादुर्भाव की कथा हम यहाँ संक्षिप्त रूप से देंगे—

शिवपुराण के अनुसार ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं—

(1) सौराष्ट्र में सोमनाथ (2) श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन (3) उज्जैन में महाकाल (4) ओंकार या परमेश्वर नर्मदा जी के किनारे (5) हिमालय प्रदेश में केदार (6) डाकिनी में भीमशंकर (6) काशी में विश्वेश्वर (7) गौतमी तट पर त्रम्बक (9) चिताभूमि में वैद्यनाथ (10) दारुकावन में नागेश (11) सेतुबन्ध पर रामेश्वर और (12) कैलाश पर घुश्मेश।

(1) सोमनाथ—यह वही काठियावाड़ का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसे महमूद गजनवी ने लूटा था। फिर इसकी भीमसेन ने पुनः प्रतिष्ठा करायी। काठियावाड़ के प्रभास क्षेत्र में यह लिंग है। प्रजापति दक्ष ने अपनी सत्ताईस कन्याओं का विवाह चन्द्रमा के साथ किया था। चन्द्रमा केवल रोहिणी को चाहते और दूसरों की उपेक्षा

करते थे, शेष कन्याओं ने पिता से शिकायत की। दक्ष ने चन्द्रमा को क्षय होने का शाप दे दिया। देवताओं को इससे बड़ा दु:ख हुआ। अंत में ब्रह्माजी के आदेश से शशि प्रभास में छ: महीने तक मृत्युंजय का जप करते रहे। दस करोड़ मन्त्र जप हो जाने पर भगवान शंकरजी प्रकट हुए। प्रभु ने चन्द्रमा को वरदान दिया कि वह कृष्णपक्ष में शाप के अनुसार एक-एक कला क्षीण होने पर अमावस्या को क्षय हो जाने पर भी शुक्ल पक्ष में एक-एक कला बढ़ाकर पूर्णिमा को पूर्ण हो जावेंगे। चन्द्रमा के प्रार्थना करने पर वहीं ज्योतिर्लिङ्ग के रूप से प्रभु ने वास किया।

(2) मल्लिकार्जुन—मद्रास प्रान्त में कृष्णानदी के तट पर श्री शैल पर यह लिंग है। एक बार कुमार कार्तिक और गणेश जी में पथम विवाह करने के लिये झगड़ा होने लगा। माता-पिता ने निर्णय किया कि जो पहले पृथ्वी प्रदक्षिणा कर आये उसी का पहले विवाह हो। कुमार कार्तिक तो प्रदक्षिणा करने चले, गणेशजी ने माता-पिता को ही पृथ्वी और परमेश्वर का रूप मानकर उनकी एक के बदले सात प्रदक्षिणा कर डालीं, पूजन किया सो अलग-

"पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्ति च करोति य:।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्॥" *(रु०सं०खं० 4, अ० 19)*

के अनुसार पृथ्वी प्रदक्षिणा के फल को पाने के अधिकारी बन बये। फलत: गणेश जी का विवाह हो गया। कार्तिक जी ने लौटने पर देखा कि उनके लौटने से पूर्व गणेशजी का ऋद्धि और सिद्धि दो पत्नियों से विवाह हो गया है और उनसे क्रमश: लाभ और क्षेम दो पुत्र भी हो चुके हैं। कुमार रूठकर कोंच पर्वत पर चले गये। शंकर जी ने नारदजी को मनाने भेजा, पर वे नहीं आये। पुत्र वियोग से दु:खी उमा-महेश्वर उनको मनाने स्वयं गये पर इन लोगों के आने का समाचार पाकर कुमार और तीन योजन दूर जाकर डेरा डाला, तभी से कौंच पर्वत पर पहुँचकर श्री शंकरजी ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हुए तब से श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग नाम से प्रख्यात है।

(3) श्रीमहाकालेश्वर—मालवा में शिप्रा नदी के तट पर उज्जयिनी में यह लिंग है। इसके सम्बन्ध में दो कथाएँ हैं। उज्जयिनी का राजा चन्द्रसेन शंकरजी का बड़ा भक्त था, वह एक दिन शंकरजी की विधिवत पूजा कर रहा था। एक गोप स्त्री अपने पाँच वर्ष के बच्चे श्रीकर के साथ उधर से निकली। बच्चे को पूर्व संस्कार से राजा की पूजा देखकर स्वयं भी शंकरजी की पूजा करने की इच्छा हुई। मार्ग में से एक पत्थर लाकर घर में वह पुष्पादि से उसकी पूजा करने लगा। लड़का पूजा में तन्मय था, माता भोजन को बुलाने लगी तो गया नहीं। बच्चे को इतना दु:ख हुआ कि वह शंकरजी को पुकारते हुए शोक से मूर्छित हो गया। आशुतोष प्रभु प्रसन्न होकर वहीं पर ज्योतिर्लिङ्ग रूप में प्रकट हुए। मूर्छा टूटने पर लड़के ने अपने सामने दिव्य मूर्ति तथा विशाल मणिमय मन्दिर पाया। बाबा नन्दजी इसी बालक श्रीकर की

आठवीं पीढ़ी में हुए थे।

दूसरी कथा यों है कि इसी उज्जयिनी में एक परम शिवभक्त ब्राह्मण रहता था। एक दूषण नाम का दैत्य जो कि ब्रह्माजी के वरदान से शक्तिशाली हो गया था, उस ब्राह्मण के वध के लिये आया, उसे दैत्य के आते ही भक्तवत्सल घोर हुँकार के साथ प्रकट हुए। यद्यपि शंकरजी साकार रूप से उस दैत्य का बध करके अन्तर्हित हो गये पर ज्योतिर्लिङ्ग रूप से वहीं स्थित हुए।

(4) ओङ्कारेश्वर या परमेश्वर=अमलेश्वर—मालवा प्रान्त में नर्मदा तट पर उज्जैन से 28 मील और खण्डवा से 37 मील पर नर्मदा जी के एक किनारे ओंकार और दूसरे किनारे पर परमेश्वर जिसे अमलेश्वर भी कहते हैं स्थित हैं, दोनों की गणना एक में ही होती है। एक बार विंध्याचल ने पार्थिव पूजा द्वारा शंकरजी की छः महीने तक बड़े प्रेम से पूजा की, उस पर प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए। गिरवर को उनका अभीष्ट वरदान मिला। इसी समय वहाँ देवता और ऋषीगण भी आ गये। उनकी प्रार्थना पर प्रभु ने अपने विग्रह के दो भाग किये, एक में प्रणव रूप से विराजे और दूसरे में पार्थिव रूपसे। इसी से उनका नाम ओंकार और अमलेश्वर या परमेश्वर हो गया। (वहाँ नर्मदा नदी की दो धाराएँ होकर बीच में एक टापू सा बन गया है जिसे मान्धाता पर्वत या शिवपुरी कीते हैं, एक धारा पर्वत के उत्तर की ओर बहती है और दूसरी दक्षिण की ओर बहने वाली धारा प्रमुख धारा समझी जाती है, इसी मान्धाता पर्वत पर ओंकारेश्वर अवस्थित हैं प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भागवत् भक्त हो गये हैं तथा जो स्वयं बड़े तपस्वी एवं यज्ञों के कर्त्ता थे, इस स्थान पर घोर तपस्या करके शंकरजी को प्रसन्न किया था, इसी से इसका नाम मान्धाता पर्वत पड़ गया, अमलेश्वर का मन्दिर नर्मदा जी के दक्षिण किनारे की बस्ती में है। ओंकारेश्वर लिंग गढ़ा हुआ नहीं है प्राकृतिक रूप में है, इसके चारों ओर हमेशा जल भरा रहता है इस लिंग की विशालता यह भी है कि वह मन्दिर के गुम्बज के नीचे नहीं है और शिखर पर महाकालेश्वर की मूर्ति है, मालूम होता है ओंकार जी की जलहरी का सम्बन्ध नीचे नर्मदा जी से किसी छिद्र के द्वारा है क्योंकि पुजारी अपना हाथ जलहरी के ऊपर लगाये रहते हैं जो लोग कुछ चढ़ाते हैं उसे तुरंत ले लेते हैं अन्यथा वह कदाचित सीधा नर्मदा में जा पहुँचे। (कल्याण शिवांक पृष्ठ सं० 197 अंक 1 भाग से)

(5) श्रीकेदारनाथ—उत्तराखण्ड में प्रसिद्ध धाम केदारनाथ का यह लिंग है। ऋषी रूप में अवतरित भगवान नर-नारायण की तपस्या से प्रसन्न होकर शंकरजी इस केदार श्रंग पर प्रकट हुए और उनकी प्रार्थना पर ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में सदा के लिये स्थित हो गये।

(केदारेश्वर की बड़ी महिमा है, उत्तराखण्ड में बदरीनाथ और केदारनाथ ये दो प्रधान तीर्थ हैं, दोनों के दर्शनों का बड़ा माहात्म्य है, केदारनाथ के सम्बन्ध में लिखा

है कि जो व्यक्ति केदारेश्वर के दर्शन किए बिना बद्रीनाथ की यात्रा करता है, उसकी यात्रा निष्फल मानी जाती है—

"अकृत्वा दर्शनं वैरय केदारस्याधनासिनः।
यो गच्छेद् बदरीतस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत॥ *(केदार खंड)*

केदारेश्वर सहित नर नारायण मूर्ति के दर्शन का फल समान पापों के नाशपूर्वक जीवन्मुक्ति की प्राप्ति बतलाया गया है।

"तस्यैव रूपंदृष्ट्वा च सर्व पापै प्रमुच्यते।
जीवन्मुक्तो भवेत सोऽपि योगेतो बदरी बने॥
दृष्टा रूपं नरस्यैततथानारायणस्य च।
केदारेश्वर नामश्च मुक्तिभागी न संशयः॥" *(शिवांक से)*

(6) श्रीभीमशंकर—सम्भवतः यहाँ कोई डाकिनी ग्राम होगा। पूना के उत्तर 43 मील पर भीमा नदी पर उद्‌गम स्थान सह्याद्रि पर्वत पर यह लिंग है। इसे कोई आसाम में गोहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर बताते हैं और कोई नैनीताल के उज्जन नामक स्थान के विशाल मन्दिर के शिवलिंग को ही बताते हैं। स्थान का ठीक निर्णय करना तो किसी अन्वेषक के ही अनुरूप है। काम रूप के राजा कामेश्वर बड़े शिवभक्त थे, वे एक दिन शिव पूजा कर रहे थे, इसी समय वहाँ भीम नाम का एक भयंकर राक्षस आ गया। उसने राजा को शिव पूजा से शंकरजी की निंदा करके रोका। न मानने पर तलवार का आघात किया। तलवार राजा को न लगकर शिवलिंग पर पड़ी। लिंग से उसी समय प्रकट होकर शंकर जी ने उस राक्षस का बध किया। राजा की प्रार्थना पर वहीं ज्योतिर्लिङ्ग रूप से अवस्थित हुए।

(7) श्रीविश्वेश्वर—काशी का प्रसिद्ध विश्वनाथ लिंग विग्रह। अपनी इस दिव्य एवं नित्य पुरी में विश्वनाथ स्वयं ज्योतिर्लिङ्ग रूप से विराजते हैं। अगस्त्यजी ने, वशिष्ठजी ने तथा विश्वामित्र जी ने इस विग्रह की बहुत आराधना की है। औरंगजेब के आक्रमण करने पर पुजारियों ने ज्योतिर्लिङ्ग को ज्ञान वाणी के कुएँ में छोड़ दिया था, वह अब भी उसी में बतलाया जाता है। नवीन विश्वनाथ मन्दिर की स्थापना आद्य शंकराचार्यजी ने की थी। पुराने मन्दिर के स्थान पर मस्जिद है।

(8) श्रीत्रिम्बकेश्वर—बम्बई के नासिक जिले में पंचवटी के पास गोदावरी जिसका एक नाम गौतमी नदी भी है, उसी के तट पर यह लिंग है ठीक गोदावरी के उद्‌गम पर। स्त्रियाँ और सन्ध्योपासनादि रहित द्विजाती भी मूर्ति के दर्शन नहीं कर पाते। वे दूर से मुकुट मात्र के दर्शन कर सकते हैं। गौतम ऋषि ने घोर तपस्या करके गोदावरी नदी को भगवान शंकरजी से प्राप्त किया था। उसी समय पृथ्वी पर आने के पूर्व गोदावरी ने शंकरजी से सदा अपने समीप रहने की प्रार्थना की। ऋषि भी यही चाहते थे। भोले भगवान प्रसन्न होकर वहीं ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में रहने लगे। (मन्दिर के अन्दर एक छोटे से गढ्ढे में तीन छोटे-छोटे लिंग हैं जो ब्रह्मा, विष्णु

और शिव इन तीनों देवों के प्रतीक माने जाते हैं। त्रिमूर्ति के ऊपर ब्रह्मगिरि से निकली हुई गोदावरी की धारा अविछिन्न रूप से पड़ती है। शिवपुराण के अनुसार त्रयम्बकेश्वर के दर्शन एवं पूजन करने वाले को इस लोक और परलोक में सदा आनन्द रहता है। ब्रह्मगिरि पर्वत के जाने के लिये चौड़ी-चौड़ी सात सौ सीढ़ियाँ बनी हैं इन सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद 'रामकुण्ड' और 'लक्ष्मकुण्ड' मिलते हैं और शिविर के ऊपर पहुँचने पर गोमुखी से निकली हुई भगवती गोदावरी के दर्शन होते हैं।) (शिवांक कल्याण से सं० 1990 से)

(9) वैद्यनाथ—उड़ीसा प्रान्त का प्रसिद्ध स्थान है, वैद्यनाथ धाम अत्यन्त सुप्रसिद्ध है, कोई लोग हैदराबाद के परली ग्राम के लिंग को वैद्यनाथ कहते हैं, यह दूसरा लिंग निजाम राज्य में एक पहाड़ी पर है। जिससे एक नदी निकलती है। राक्षसराज रावण कैलाश के प्रसिद्ध लिंग की आराधना अपने सिर चढ़ा कर कर रहा था। अपने नौ सिर चढ़ा चुकने के पश्चात् जब दसवाँ सिर भी काटने को उद्यत हुआ तो भगवान शंकर ने प्रकट होकर रोक दिया। रावण के सिर ज्यों के त्यों हो गये, उसे अभीष्ट वरदान भी मिला। उसने कैलाश के उस लिंग को लंका में ले जाकर स्थापित करने की अभिलाषा प्रकट की। शंकरजी ने कहा, "इसे तुम ले तो जाओ, पर ध्यान रहे कि मार्ग में कहीं भूमि पर मत रखना। भूमि पर रखने के बाद यह पुनः तुमसे नहीं उठेगा।" रावण लिंग को लेकर चला। वह दिव्यलिंग आर्यावर्त से बाहर जावे ऐसा प्रभु नहीं चाहते थे। अपनी परम प्रिय चिता भूमि में पहुँचने पर तो वहीं रहने का उन्होंने निश्चय कर लिया। भगवान की लीला रावण को वेग से लघुशंका लगी। एक अहीर भी समीप ही दीख पड़ा, रावण ने लिंग मूर्ति उसे दे दी और भूमि पर रखने को मना कर दिया। स्वयं लघुशंका को बैठ गया। अहीर के हाथ में मूर्ति भारी होने लगी, उधर रावण का मूत्र वेग समाप्त ही नहीं होता था। बड़ी देर हो गयी, बहुत पुकारने पर भी रावण न उठ सका। भार से पीड़ित होकर अहीर मूर्ति को पृथ्वी में रखकर चला गया। थोड़ी देर में रावण आया, उसने सम्पूर्ण बल लगाया, पर मूर्ति को उठा न सका, हताश होकर झुँझलाहट से मूर्ति में अपना अँगूठा गड़ा कर लंका चला गया। वह अंगूठे का गढ्ढा स्पष्ट है, रावण के जाने पर देवता और ऋषी वहाँ आये, उन्होंने वहीं विधिपूर्वक उस लिंग की स्थापना करके उसका नाम वैद्यनाथ रखा।

पुराणों की एक कथा के अनुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती ने अपना शरीर भस्म नहीं किया था। योग के द्वारा प्राणों का उत्सर्ग किया था। प्रिया के वियोग में प्रेमोन्मत्त होकर भगवान शंकर सती का शव गोद में लिये पृथ्वी पर इतस्ततः घूमते रहे। जब शिवजी उस शव को लिये बेसुध हो रहे थे, उसे छोड़ते ही न थे, तब उन्हें प्रकृतिस्थ करने के विचार से भगवान विष्णु ने चक्र से सती के शव को काटकर अलग करने की आज्ञा दी। चक्र ने शव के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वे टुकड़े

जहाँ-जहाँ गिरे वहीं आज प्रसिद्ध शक्तिपीठ हैं। शंकरजी को प्रेमोन्माद में शव के टुकड़े होने का भी पता न था। अंत में जब हृदय कटकर गिरा तो उन्हें ज्ञान हुआ। वहीं उन्होंने सती का दाह संस्कार किया। उस हृदय के गिरने के स्थान को ही चिताभूमि कहा जाता है। यह भूमि भगवान शंकर को अत्यन्त प्रिय है।

(10) श्रीनागेश—यह ज्योतिर्लिङ्ग भी तीन स्थानों पर माना जाता है। गौमती द्वारिका से बेट द्वारिका जाते समय एक मार्ग में मिलता है, दूसरा निजाम हैदराबाद के राज्य में औढ़ाग्राम में है। कुछ लोग अल्मोड़ा जिले के जागेश्वर के शिवलिंग को ही नागेश्वर कहते हैं। शिवपुराणादि के अनुसार औढ़ाग्राम वाला ही ज्योजिर्लिङ्ग होना चाहिए। इसकी कथा कुछ इस प्रकार है—

सुप्रिय नामी कोई एक वैश्य अपने साथियों के साथ समुद्र मार्ग से व्यापार के लिये जा रहा था। जब वह दारुक वन के समीप पहुँचता तो वहाँ के राक्षस राजा दारुक ने लूट लिया और साथियों के साथ कारागार में बन्द कर दिया। सुप्रिय भगवान शिव का अनन्य भक्त था। बन्दीगृह में भी वह शिव आराधना करने लगा। दारुक को पता लगा, सुनते ही वह आ गया। दारुक ने सुप्रिया को बहुत डाँटा और धमकाया, पर वह जब शिव पूजा से विरत नहीं हुआ तो अपने अनुचरों को उसका वध करने की राजा ने आज्ञा दे दी—

दुःखी होकर सुप्रिय भगवान शंकर को पुकारने लगा। भक्तवत्सल प्रभु उस बन्दीगृह में ही ज्योतिर्लिङ्ग से प्रकट हुए। इस ज्योतिर्लिङ्ग से पाशुपतास्त्र निकला। सुप्रिय ने पाशुपतास्त्र से दारुक को उसके अनुचरों के साथ मार डाला। स्वयं बंधन से मुक्त हो गया साथ ही भवबन्धन से भी उस ज्योतिर्लिङ्ग का नाम शंकरजी के आदेश के अनुसार नागेश पड़ा।

(इसके दर्शन का बड़ा महत्व है, कहा है कि जो आदरपूर्वक इसकी उत्पत्ति और माहात्म्य को सुनेगा वह समस्त ऐहिक सुखों को भोगता हुआ, अंत में परम पद को प्राप्त होगा।)

"ऐतद् यः श्रणुयान्नित्यं नागेशोद्भव सादरात्।
सर्वान् कामा.नियाद धीमान् महापातक नाशनम्॥" *(शिवपुराण)*

इस समय दो द्वारिकाएँ हैं एक द्वारिका तो स्थल से लगी हुई है। उसके समीपवर्ती एक खाड़ी में जिसे गौमती कहते हैं ज्वारभाटा आता है। यहाँ गौमती चक्र भी मिलते हैं, इसी से इसे 'गौमती द्वारिका' कहते हैं। दूसरी द्वारिका जो बेठ-द्वारिका कहलाती है गोमती द्वारिका से 20 मील हटकर एक द्वीप पर बसी हुई है। दोनों ही द्वारिकाएँ महाराज बड़ौदा के राज्य में हैं, किंतु सन् 1851 से गोमती द्वारिका का प्रबन्ध अंग्रेजों के हाथ में है। *(शिवांक से)*

(11) रामेश्वरम्—दक्षिण भारत में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम चन्द्रजी के कर-कमलों द्वारा इसकी स्थापना हुई थी। समुद्र का पुल बँध जाने के अनन्तर

भगवान राम ने लंका विजय के लिये यहाँ शंकर जी की स्थापना करके उनकी पूजा की थी।

इस लिंग स्थापना के विषय में पुराणों में एक आख्यान भी है। लंका विजय करके लौटते समय रघुनाथजी के मन में यह भाव उठा कि 'रावण प्रभृति जन्मना ब्राह्मण थे, अत: उनके वध से मुझे ब्रह्महत्या का पातक लगा।' मर्यादा पुरुषोत्तम ने पुष्पक को समुद्र पार अपने सेतु के समीप ही उतारा। वहाँ के समस्त समीप के ऋषि-मुनि बुलाए गये। रघुनाथ जी ने उनसे प्रायश्चित पूछा। ऋषियों ने निर्णय किया कि 'आपको शुभ मुहूर्त में शिवलिंग की स्थापना करके उसकी पूजा करनी चाहिये।' तुरन्त ही हनुमानजी को कैलाश से शिवलिंग लाने की आज्ञा हुई।

हनुमानजी कैलाश पर शिवलिंग लेने गये। वे शंकरजी से ही लिंग विग्रह लेना चाहते थे, पर वहाँ शंकरजी के दर्शन ही नहीं हुए। विवश होकर शंकर जी के दर्शन के लिये तपस्या करने लगे। तपस्या से संतुष्ट होकर शंकरजी ने दर्शन देकर उन्हें लिंग विग्रह प्रदान किया। इधर हनुमानजी के लौटने में देर हुई, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवार को अत्यन्त शुभ मुहूर्त में माता जानकी के कर-कमलों द्वारा बालू का ही शिवलिंग बनवाकर स्थापना कर दी गयी, क्योंकि निश्चित शुभ मुहूर्त बीतने को था हनुमानजी को लौटने पर यह सब देखकर बड़ा दु:ख हुआ। रघुनाथजी ने उन्हें कारण बताकर सान्त्वना दी, पर इसका प्रभाव न पड़ा। उनके आग्रह को दूर करने के लिये राघवेन्द्र ने कहा—"अच्छा तुम इस स्थापित लिंग को उखाड़ दो, उसके स्थान पर तुम्हारा लाया लिंग स्थापित हो जायेगा।"

हनुमान प्रसन्नता से खिल उठे, स्थापित लिंग उखाड़ने को झपटे, पर हाथ लगने से मालूम हुआ कि काम आसान नहीं है, बालू का लिंग, वज्र का बन गया है, अपना समूचा बल लगाया, पर सब व्यर्थ। आखिर उसे अपनी लम्बी पूँछ से लपेटा और फिर किलकारी मारकर जोर से खींचा, पृथ्वी डोल गई, पर लिंग टस से मस नहीं हुआ, उल्टे हनुमानजी धक्का खाकर एक कोस दूर मूर्छित होकर जा गिरे, उनके मुख आदि देह छिद्रों से रुधिर बहने लगा। श्रीरामजी आदि सभी व्याकुल हो गये। श्रीसीताजी उनके शरीर पर हाथ फेरती हुई रुदन करने लगीं, बहुत समय बाद उनकी मूर्छा दूर हुई, सम्मुखासीन भगवान पर दृष्टि जाने पर साक्षात परब्रह्म के रूप में उनके दर्शन हुए। रघुनाथ जी ने आन्जनेय को समझाया कि "मेरे द्वारा स्थापित लिंग को उखाड़ने की शक्ति किसी में नहीं। बिना सोचे-विचारे तुमने जो शिव-अपराध किया उसी का यह दण्ड मिला है।" अब कभी ऐसा मत करना।

पीछे भगवान श्री रामने हनुमानजी द्वारा लाये हुए शिवलिंग की महिमा स्वयं श्रीमुख से इस प्रकार वर्णन की है-

"स्वयं हरेण दत्तंतु हनुमन्नामकं शिवम्।
सस्पश्यन रामनाथं च कृतकृत्यो भवेन्नरः॥

योजनानां सहस्त्रेऽपि स्मृत्वा लिंग हनूमतः।
रामनाथेश्वरं चापि स्मृत्वा सायुज्यमाभ्रुयत्॥
ते नेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपस्चाकारि कृत्सन्नशः।
येन इष्टो महादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ॥"

अर्थात् स्वयं भगवान शिव के दिये हुए हनूमन्नामक लिंग का तथा रामनाथेश्वर का दर्शन कर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। हजार योजन की दूरी पर से भी हनुमदीश्वर तथा रामनाथेश्वर का स्मरण कर मनुष्य शिव सायुज्य को प्राप्त होता है। जिसने हनुमदीश्वर तथा राघवेश्वर महादेव का दर्शन कर लिया, अपने सारे यज्ञ और सारे तप कर लिये।

श्रीरामेश्वर जी का मन्दिर प्रायः 1000 फीट लम्बा 650 फीट चौड़ा और एक सौ पच्चीस फीट ऊँचा है। मन्दिर के अन्दर चौबीस कुएँ हैं। जो तीर्थ कहलाते हैं, इनके जल से स्नान करने का माहात्म्य है। भगवान ने अपने अमोघ वाणों द्वारा इन कूपों का निर्माण किया था, इन सब कुओं का जल मीठा है, किंतु मन्दिर के बाहर के कुओं का जल खारा है। भगवान ने इन कूपों में भिन्न-भिन्न तीर्थों का जल मँगाकर डाला था इनमें से कुछ के नाम ये हैं गंगा, यमुना, गया, शङ्ख, चक्र, कुमुद। रामेश्वर पर गंगोत्री से ले जाकर गंगाजल चढ़ाने का शास्त्रों में बड़ा महत्व है। भावुक भक्त ले जाकर चढ़ाते हैं।

(12) घुश्मेश—यह ज्योतिर्लिङ्ग पुराणों के अनुसार कैलाश पर स्थित दैत्यों के पुर में होना चाहिए, पृथ्वी पर इसका वर्णन नहीं मिलता। पर निजाम हैदराबाद के राज्य के वेरूलगांव के पास जो कि कैलाश दौलताबाद स्टेशन से 12 मील पर है वहाँ जो घृणेश्वर या घृसुणेश्वर नाम का शिवलिंग है उसे ही घुश्मेश ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं, यदि इसे ज्योतिर्लिङ्ग मान लें तो उसके प्रादुर्भाव की कथा के अनुसार कुछ भाग की पूजा को कैलाश मन्दिर के घुश्मेश का वास्तविक स्वरूप मानते हैं।

दक्षिण में देवगिरि नामक स्थान में एक सुधर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था उसकी पत्नी का नाम सुदेहा था। उसके कोई संतान न थी। ज्योतिषियों के बताए अनुसार सुदेहा से संतान की आशा भी न थी। अतः सुदेहा ने अपने पति से अपनी बहिन घुश्मा से विवाह करने का आग्रह किया। अधिक आग्रह करने पर सुधर्मा ने दूसरा विवाह कर लिया। घुश्मा बड़ी ही शिव भक्त थी। उसके पुत्र भी उत्पन्न हुआ। काल योग से सुदेहा अपनी बहिन घुश्मा से सौतिया डाह करने लगी। पुत्र जब बड़ा हुआ और पुत्र-वधू घर में आई तो सुदेहा का द्वेष चरम सीमा पर पहुँच गया। अंत में सोते समय सुदेहा ने उस लड़के का वध कर डाला और उसने शव को ले जाकर उसी सरोवर में छोड़ दिया, जिसमें घुश्मा पार्थिव शिवलिंगों का विसर्जन करती थी।

प्रातःकाल सारे घर में पुत्र के न मिलने तथा रक्त के कारण उसका वध संदेह होने से हाहाकार मच गया। पर घुश्मा अपनी शिवार्चा में तल्लीन थी, उसे कुछ पता

न था। नित्य की भाँति पूजा करके लिंग विसर्जन के लिये वह तालाब पर गयी। प्रभु की कृपा से उसका पुत्र जीवित होकर तालाब से निकल कर माता के चरण छूने लगा। इसी समय शंकरजी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। घुश्मा को सुदेहा का पाप ज्ञात हो गया। फिर भी उसने उसे क्षमा किया और सुदेहा के वध को उद्यत शंकरजी को शांत किया। वरदान माँगने का आग्रह करने पर घुश्मा ने शंकरजी से वहीं विराजने का वरदान माँगा। शंकरजी वहीं ज्योतिर्लिङ्ग रूप से विराजने लगे। और घुश्मेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस तालाब का नाम भी शिवालय हो गया।

(मानसमणि फरवरी 1969 एवं शिवांक संवत 1990 से)

"शिवेति द्वयक्षरं नामव्याहरिष्यन्ति येजनाः।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च मस्तिष्यति न चान्यथा॥"

जो लोग शिव इस दो अक्षर के नाम का उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।



(59) शिवोपासना

श्लोक— "आत्मा त्वं गिरिजामतिः सहचराः, प्राणाः शरीर गृहं,
पूजाते विषयोपभोग रचना निंद्रा समाधि स्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वां गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्त दखिलं शम्भो तवाराधनम्॥"

"आप आत्मा हैं, बुद्धि उमा हैं, प्राण आपके गण हैं, यह शरीर ही मन्दिर है, मैं जो विषयोपभोगादि करता हूँ, वही आपकी पूजा है, पैरों से जो भी चलता हूँ वह प्रदक्षिणा है, निंद्रा-समाधि है और जो भी बोलता हूँ वही आपकी स्तुति है, शंकरजी! मैं जो जो कर्म करता हूँ वह सब आपकी ही आराधना है।"

आत्मरूप से भगवान शंकर जी सबके हृदय में विराजमान हैं, भीतर उनकी प्रधानशक्ति ही जग रही है। समष्टि आत्मा या व्यापक आत्मा को ब्रह्म या शिव कहते हैं। उसकी शक्ति माया या उमा महाशक्ति हैं। यह सम्पूर्ण जड़ चेतन संसार शिवमय है। शिव सबके भीतर आत्मा हैं, सबके वही प्रकाशक तथा संचालक हैं, सबके बाहर, सबके आधारऔर सबसे परे भी हैं, साथ ही सब नाम रूपों में वही हैं। उमा उनकी शक्ति हैं, शक्ति के द्वारा ही शिव में इन नाम रूपों की कल्पना होती है। क्रियामात्र शिव की प्रेरणा है, शिव के लिये है, अतः शिव की पूजा है, हम जो भी करते हैं, आत्मा के सुख के लिये।

दोहा— शिव व्यापक सर्वत्र हैं, तेहि नामहिं रूप अनंत।
स्वयं नाम रूपहिं परे, लिंग (चिन्ह) शिवहिं भगवन्त॥

शिव व्यापक हैं, उनके अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं। वे स्वयं नाम रूपों

से परे हैं। अत: शिव के लिंग-चिन्ह भगवान की पूजा होती है। व्यापक और निर्गुण तत्व के चिन्ह की ही पूजा भी हो सकती है। आकार के द्वारा ही निराकार पूजित होता है। लिंग ब्रह्माण्ड का आकार है, ब्रह्माण्ड का स्वरूप है। यह निखिल ब्रह्माण्ड ही शिव का स्वरूप है।

चौ०—ब्रह्माण्डहिं थिर शक्ति आधारा। बिनु शक्ति नहिं कोई सहारा॥
शक्ति ही शिवरूप धारिका। पीठ योनि तेहि चिन्ह पारिका॥

वह ब्रह्माण्ड शक्ति के आधार पर स्थित है, शक्ति के बिना इसकी कोई स्थिति = सहारा ही नहीं है। शक्ति ही शिव के इस रूप की धारिका है। शक्ति का चिन्ह वह पीठ योनि की पारि है जिसके ऊपर लिंग स्थित रहता है।

चौ०—पूजा लिंग रहस्य है जेही। विश्वरूप पूजा शिव ये ही॥
पूजा दर्शन के यह माना। प्रतीक गूढ़तम ज्ञान महाना॥

लिंग की पूजा का रहस्य है, विश्व रूप हुए शक्तिमय शिव की पूजा। यह पूजा दर्शन के गूढ़तम महान ज्ञान की प्रतीक है।

अनादिकाल से शिव की पूजा होती आ रही है। वेदों के देवता भगवान शिव **"शिश्ने देवा"** लिंग द्वारा पूजित होने वाले देवता हैं। कोई समय था जब वैदिक सभ्यता सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई थी, उस समय निखिल संसार में शंकरजी की उपासना होती थी। ईसाई, मुसलमान आदि धर्म सनातन धर्म से ही निकले हैं। इनके आदि पूर्वल हिन्दू और शैव थे। मिश्र में तथा पूर्वी द्वीप समूहों में भूगर्भ से शिवलिंग तथा मन्दिर के अंश मिले हैं। आश्चर्य तो यह है कि अफ्रीका के सहरा जैसे प्रान्त तथा ग्रीस के साथ उस नई दुनियाँ अमेरिका में भी शिवलिंग मिले हैं। मुसलमानों के कावा में तो एक प्रसिद्ध शिवलिंग है ही।

भारत में भी जो सिक्के या प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं उनसे पता चलता है कि ईसा से एक-दो शताब्दी पूर्व शिवोपासना भारत में अत्यन्त प्रौढ़ दशा में प्रचलित थी। सिक्कों पर वृषभ, लिंग या शंकरजी की साकार मूर्तियाँ भी मिलती हैं। अधिकांश लोग उस समय शैव ही थे। साकार उपासना में सबसे प्राचीन उपासना लिंगोपासना ही ज्ञात होती है।

आज भी भारत में सर्वाधिक शंकरजी की उपासना व्याप्त है। ऐसा कोई ग्राम जहाँ हिन्दू रहते हों, सम्भवत: नहीं मिलेगा, जहाँ शंकरजी की कोई पिण्डी न हो। जहाँ भावुक भक्तों का 'हर हर महादेव' न गूँजता हो। नगर तथा तीर्थों में तो शिव मन्दिरों की संख्या ही नहीं की जा सकती।

चौ०—सबहिं सरल शिव पूजा होई। ताहि व्यापकता कारण सोई॥
शीघ्र प्रसन्न होयँ शिव शंकर। कछू नहीं जल चढ़ावें लिंग पर॥

शिव पूजा सबसे सरल है, यही उसकी व्यापकता का कारण है। शंकरजी बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं, उनकी पूजा के लिये कुछ न हो तो स्नान करके लिंग पर

एक लुटिया जल चढ़ा देने से भी पूजा हो जाती है।

चौ० — यदि दो बेल पत्र मिल जाहीं। एक दो पुष्प चुनय कर लाहीं॥
जल के बाद इनहिं चढ़ि ताहीं। फिर तो पूछना है क्या पाहीं॥

यदि दो बेलपत्र मिल जायँ और एक-दो पुष्प चुन लावें, जल के बाद यदि इनको भी शिवलिंग पर चढ़ा दें तो फिर पूछना ही क्या ? शिवलिंग की पूजा के लिये मन्दिर निर्माता को कोई विशेष प्रबन्ध नहीं करना पड़ता, पूजा न भी हो सके तो कोई विशेष दोष नहीं, पर दूसरे देवता के मन्दिर में तो यदि पूजा न हो तो अपराध होता है। पूजा भी वहाँ बड़ी लम्बी चौड़ी होती है, व्यय साध्य होती है। अत: स्वभावत: ही लोग शिव पूजा में प्रवृत्त होते हैं।

दोहा— यों शिव पूजा प्रेम से, जेती वस्तु दिव्य हो मूल।
तीन वस्तु प्रधान जल, विल्व पत्र धतूरे फूल॥

यों तो पूजा में प्रेम से मूलत: जितनी दिव्य वस्तुएँ हों वही श्रेष्ठ हैं जितनी विधि पूर्वक पूजा हो उतना ही अच्छा। पर शिव पूजा में तीन वस्तुएँ प्रधान होती हैं, जल, विल्व पत्र और धतूरे के पुष्प। यदि ये तीनों हो गयीं तो इतने से ही शंकरजी प्रसन्न हो जाते हैं। वैसे केवल जल चढ़ा देने से ही उनकी पूजा हो जाती है, किंतु यह तो साँग पूजा है।

पुरुष को चाहिये क्या ? धर्म, अर्थ और मोक्ष। काम की प्राप्ति तो अर्थ के अन्तर्गत ही है। जल पवित्रता के धर्म का द्योतक है। विश्वरूप शिवलिंग को जल चढ़ाकर हम विश्व को पवित्रता प्रदान करते हैं। और भगवान से अपने हृदय को पवित्र करने, धर्म का हृदय में प्रवेश होने की प्रार्थना करते हैं। त्रिदल विल्व पत्र त्रिगुणों का प्रतीक है, उसे चढ़ाना यह द्योतन करता है कि प्रभो! यह त्रिगुण आपकी ही शक्ति के खेल हैं, मैं उनको आपको ही समर्पित करता हूँ, आप मेरे त्रिगुणों को ग्रहण करके मुझे इनसे पार कर दीजिये। धतूरे का दूसरा नाम है = अर्क, और अर्क, सुवर्ण को भी कहते हैं अर्क पुष्प प्रभु की भेंट करके हम अर्क-समृद्धि की कामना करते हैं।

भगवान शंकर की पूजा में उपासक का चिन्ह है, भस्म और रुद्राक्ष। भस्म के द्वारा मस्तक पर त्रिपुण्ड तथा भुजाओं आदि पर भी वैसे ही त्रिपुण्ड किया जाता है। गोमय या खैर आदि पवित्र लकड़ियों की भस्म को अभिमंत्रित करके जल से भिगोकर त्रिपुण्ड लगाते हैं। रुद्राक्ष की मालाएँ बनाकर शिखा से कटि पर्यन्त ऊपर के सभी अंगों में धारण करना चाहिए। शिखा, मस्तक, कर्ण, कंठ, भुजा, बाहु, कलाई, उदर, कटि सब प्रान्तों में रुद्राक्ष की मालाएँ धारण की जाती हैं। रुद्राक्ष एक मुखी से लेकर चतुर्दशी मुखी तक होता है, इनमें से किसी प्रकार के रुद्राक्ष का धारण निषेध नहीं, यदि वह सुडौल तथा कीटादि के खाने दूषित न हो। रुद्राक्ष श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण इन चार वर्णों का होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमश:

अपने वर्ण का रुद्राक्ष का ही धारण करना चाहिये, बेर के बराबर मणियाँ उत्तम तथा उससे छोटी मध्यादि हैं।

अभिमंत्रित भस्म का बहुत बड़ा माहात्म्य है, शिव त्रिपुण्ड का स्पर्श होते ही पापी से पापी भी मुक्ति का भागी होता है। कौंच पर्वत पर तपस्या करते हुए एक योगी को दुर्जय नाम का दैत्य खाने आया। दैत्य ने जैसे ही उन तपस्वी को पकड़ा, उसका शरीर दिव्य हो गया। उन तपस्वी के शरीर में लगी भस्म के स्पर्श होते से दुर्जय के सारे पाप भस्म हो गये और उसको शिवलोक की प्राप्ति हुई।

रुद्राक्ष की उत्पत्ति शंकरजी के नेत्र के जल से हुई है। त्रिपुरासुर युद्ध में देवताओं की ओर से युद्ध करते हुए भगवान शंकर ने बहुत दिन तक पलक गिराया ही नहीं, नेत्र खुले रहने से उनमें जल भर आया, उस जल के पृथ्वी पर पड़ने से रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई, यह पवित्र, इसके धारण का महान पुण्य है।

सभी आराध्यों के व्रत तीन प्रकार के होते हैं, सामान्य, विशेष और प्रधान। सामान्य व्रत प्रायः सप्ताह में एक दिन होता है, विशेष पन्द्रह दिन में आता है तथा प्रधान वर्ष में एक बार। शंकरजी का सामान्य व्रत सोमवार है, विशेष व्रत प्रदोष और प्रधान व्रत महाशिवरात्रि। व्रतों के दिन उपवास और सविधि शिव पूजा का विधान है। दिन-रात्रि में सम्भव हो तो विधिपूर्वक जितने अभिषेक शास्त्रों में हैं वे सब करने चाहिए, तथा शक्तिभर दान करना चाहिये।

सोमवार भगवान शंकर को परम प्रिय दिन है, चन्द्रमा प्रभु के मुकुट के स्थान पर शोभित होते हैं। उस दिन का व्रत सामान्य व्रतों से बहुत अधिक फलदायी है, सोमवार व्रत करके जो दान दिया जाता है वह समस्त दुराग्रहों का नाश करने वाला होता है। प्रारब्ध से प्राप्त कष्ट तथा अकाल मृत्यु का नाश करके यह व्रत सुख एवं समृद्धि की वृद्धि करता है।

दोहा— चित्रवर्मा नाम के, राजा एक महान।
तेहि सुता सीमन्तिनी, सुन्दरि गुण की खान॥

चित्रवर्मा नाम के एक महान प्रसिद्ध राजा के एक परम सुन्दर और गुणवती कन्या का नाम सीमन्तिनी था।

चौ०— सुता ज्योतिषी नृपहिं दिखावा। तेहि कन्या भविष्य बतलावा॥
चौदह वर्ष अवस्था तेही। कन्या ये विधवा होइ जेही॥

राजा ने कन्या को ज्योतिषियों को दिखा उसका भविष्य पूछा, ज्योतिषियों ने बतलाया कि यह कन्या चौदह वर्ष की अवस्था में विधवा हो जायेगी।

चौ०— सीमन्तिनी दुक्ख सुन पाई। मैत्रेयी शरण वह जाई॥
दुक्ख सुना याज्ञबल्कहि नारी। तेहि कहा सोमव्रत शिवधारी॥

यह सुनि सीमन्तिनी को बड़ा दुःख हुआ। वह महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी की शरण में गई। उसका दुःख सुनकर मैत्रेयी ने उसे शंकरजी की आराधना

एवं सोमवार व्रत करने का आदेश दिया।

चौ०—सीमन्तिनी दृढ़ व्रत जोई। तेहि विवाह चित्रांगद होई॥
एक दिना यमुना में जाई। नोंका विहार किया चित लाई॥

सीमन्तिनी बड़ी दृढ़ता से व्रत में लग गयी। उसका विवाह राजा नल के नाती चित्रांगद से हुआ था। एक दिन चित्रांगद यमुनाजी में नौका विहार चित्त लगाकर करने लगा।

चौ०—सहसा आँधी जोर से आई। नाव तेहि जल डूबी जाई॥
राज्यहिं शोक महा अति छाई। शत्रु ने भी करी चढ़ाई॥

सहसा बड़े वेग से आँधी आ गयी और उनकी नाव पानी में डूब गई। राज्य में महान शोक छा गया और इसी समय शत्रु ने भी चढ़ाई कर दी।

दोहा—चित्रांगद के राज्य को, शत्रुन्ह जीत्यो जाय।
उसकी स्त्री सीमन्तिनी, बन्दी लई बनाय॥

चित्रांगद के राज्य को शत्रु ने जीत लिया और उसकी स्त्री सीमन्तिनी को बन्दी बना लिया।

कारागार में भी दुखिया सीमन्तिनी ने अपना व्रत नहीं छोड़ा, उसे भगवान शंकर पर पूर्ण विश्वास था। डूबकर यमुना में चित्रांगद मरा नहीं, नाग कन्याएँ उसे पाताल में ले गयीं। पत्नि के व्रत के प्रभाव से चित्रांगद के शरीर पर त्रिपुण्ड का चिन्ह हो गया। नाग राज ने इस चिन्ह को देखते ही बहुत स्वागत किया। वरदान माँगने को कहने पर चित्रांगद ने अपने नगर में शीघ्र पहुँचा देने की इच्छा प्रकट की। नागराज ने उसे एक अश्व, चिन्तामणि तथा सहस्त्र हस्तियों की शक्ति प्रदान की। नाग उसे पृथ्वी पर उसी यमुना किनारे तक पहुँचा गये। वे अपने नगर में आ गये।

चित्रांगद के भयंकर आक्रमण से सहने मे असमर्थ होकर शत्रु भाग गये। व्रत के प्रभाव से सीमन्तिनी को उसके पति मिले। खोया हुआ राज्य मिला, कारागार से मुक्त होने के साथ ही वह अपने दुरग्रह के प्रभाव से भी मुक्त हो गयी। उसके आनन्द तथा श्रद्धा का पारावार न रहा।

प्रदोष विशेष व्रत है, उसका पुण्य सोमवार व्रत से भी विशाल होता है, व्रत में अधिक से अधिक दान पुण्य करना चाहिए। भली प्रकार शंकरजी की पूजा-अर्चना करनी चाहिए। जीर्ण-शीर्ण विश्व को जीवन देने के लिये जब प्रभु उसे मिटाने लगते हैं तो उसे ही 'प्रदोष' कहते हैं। पूर्ण विश्राम से प्रथम, पक्ष पूर्ण से प्रथम—चतुर्दशी ही वह प्रदोष है। इस प्रदोष में प्रभु का प्रलय नृत्य होता है। इस प्रदोष व्रत से हम संसार चक्र का प्रदोष मनाते हैं। जीव प्रदोष व्रत से माया चक्र का नाश करके मुक्त हो जाता है। साथ ही यह व्रत स्मरण दिलाता है कि संसार के लिये, संसारासक्त के लिये प्रभु प्रलयंकर हैं, प्रभु के चरणों का आश्रय लेकर हम उसके काल-स्वरूप से त्राण पाते हैं।

(2) विदर्भ देश के राजा सत्यरथ बड़े ही शिव भक्त थे। शाल्व नरेश ने विदर्भ पर चढ़ाई कर दी। दैव योग से सत्यरथ युद्ध में हार गये, वे छिपकर वन में निकल गये। उनकी रानी ने भी समाचार पाकर वन का रास्ता लिया। रानी गर्भवती थीं, वन में ही उसे पुत्र हुआ। पुत्र होने के पश्चात् वह नदी में जलार्थ गई वहीं उसे एक मगर निगल गया। एक ब्राह्मणी उधर से आई। ब्राह्मणी की गोद में भी एक शिशु था। बिना नाल कटे बालक को देखकर उसे दया आई, पर कलंक लगने के भय से वह उसे साथ लेने में हिचकने लगी।

शंकरजी को अपने परमभक्त सत्यरथ के वंश की रक्षा करनी थी। प्रकट होकर उन्होंने ब्राह्मणी को बच्चे का पोषण करने का आदेश दिया। बच्चे को लेकर उसके माता-पिता को ढूढ़ती हुई वह महर्षि शाडिल्य के आश्रम पर पहुँची। महर्षि ने उसे बताया कि यह महाराज सत्य रथ का लड़का है, इसके माता-पिता का देहान्त हो चुका है। महर्षि ने उस लड़के का नाम 'धर्मगुप्त' रखा। ब्राह्मणी के लड़के का नाम 'शुचिव्रत' पड़ा। महर्षि ने ब्राह्मणी तथा बच्चों को बड़े होने पर 'प्रदोष व्रत' की दीक्षा दी। वे व्रत करने लगे। व्रत के प्रभाव से शुचिव्रत को खेलते समय एक स्वर्ण मुद्राओं से भरा कलश मिला। उस धन से ब्राह्मणी की जीविका सरल हो गयी। वह एक चक्रा नगर में आकर रहने लगी।

धर्मगुप्त पर मुग्ध होकर गन्धर्व कन्या अंशुमती ने उससे विवाह करना चाहा। ब्राह्मणी की अनुमति से धर्मगुप्त ने उसका पाणिग्रहण किया। गन्धर्वराज ने परिवर्ह में बहुत सा दहेज दिया, दास-दासी दिये। गन्धर्व राज की सहायता से धर्मगुप्त ने अपने पिता के राज्य को शत्रुओं पर चढ़ाई करके प्राप्त कर लिया। प्रदोष व्रत के प्रभाव से वन में उत्पन्न हुआ शिशु गंधर्व कन्या का पति तथा राजा हो गया। ब्राह्मणी राज-माता के समान रहने लगी। शुचिव्रत राज्य का प्रधानमंत्री बना।

(3) संक्षेप में शिवरात्रि व्रत की चर्चा भी कर देनी है। यह विश्व की रात्रि है-माया ही काल-रात्रि है। यह माया शिव की है। इससे विश्व की आराधना करके ही हम इस अन्धकार अज्ञानमयी रात्रि से बाहर आकर प्रकाश पा सकते हैं। भूल से भी जो इस महाशिवरात्रि को उपवास कर लेता है, शंकर जी पर जल तथा विल्व पत्र चढ़ा देता है वह चाहे जितना बड़ा पापी हो, उसे साक्षात् शिवलोक की प्राप्ति होती है। समस्त पापों का नाशक, समस्त कामनाओं का दाता और शिवलोक प्रदाता यह व्रत सर्वोत्तम व्रत है।

काशी में एक व्याध रहता था। उसका काम ही हिंसा करना था। शिवरात्रि के दिन प्रातः ही धनुष वाण लेकर मृगया के लिये वन में गया। बहुत से पशुओं का उसने वध किया। पर शिकार में उसे सन्ध्या हो गयी, वह घोर वन में था, रात्रि में भयंकर पशुओं का भय था। नगर लौटना सम्भव न देख कर वह एक सघन बेल के पेड़ पर चढ़ गया, उसी पर रात्रि बितानी थी।

दैवात उस बेल की जड़ में एक पुराना लिंग था। व्याध ठीक लिंग के ऊपर की डाली पर ही बैठा था। संयेग से ही आज उसका उपवास हो गया था, नींद के झोंके आने पर उसे शरीर से लगकर ओस से भीगे विल्व पत्र टूट कर उस शिवलिंग पर गिरते रहे। अनजान में ही व्याध से इस प्रकार शिव-रात्रि को उपवास के साथ शिवलिंग पर जल तथा विल्व पत्र भी चढ़ाये। इस अनजान के व्रत के महत्व से भी उसे शिव लोक की प्राप्ति हुई। तब जो जानबूझकर श्रद्धा से व्रत करेंगे उनका उद्धार तो सुनिश्चित ही है।

भगवान शंकर की उपासना का प्रधान अंग है, उनका प्रधान महामंत्र है— **"नमः शिवाय"**। यह मंत्र वेदों का प्राण है। इस मंत्र के जाप से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इस महात्म्य की चर्चा करके अब इस प्रसंग को विश्राम देंगे।

मथुरा के राजा दाशार्ह बड़े ही प्रतापशाली थे। प्रजा-पालक तथा बड़े धर्मात्मा थे। इनकी पत्नी कलावती शंकरजी की परम भक्त थी। श्रीगर्गाचार्य मुनि जी से पंचाक्षर शिवमंत्र की दीक्षा लेकर वह शंकरजी का व्रत कर रही थी। व्रत के दिन ही राजा दाशार्ह कामवासना से उसके समीप पहुँचे। रानी ने उन्हें समझा कर कहा कि व्रतकाल में काम सेवन वर्जित एवं दोषपूर्ण है, पर रानी की बात न मानकर वे उसकी ओर बढ़े। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, उसका स्पर्श करते ही उनका शरीर जलने लगा। इस प्रकार आगे बढ़ने में असमर्थ होने पर राजा के पूछने पर रानी ने पंचाक्षरी मंत्र का प्रभाव बतलाया।

महाराज इस घटना से प्रभावित हुए। वे भी गर्गमुनि के पास गये। मुनि की प्रार्थना करके उन्होंने पंचाक्षर शिव मंत्र की दीक्षा ली। दीक्षा मंत्र सुनते ही राजा के शरीर से बहुत से कौवे निकले। इन पक्षियों के पंख और पैर आदि अंग झुलस से गये थे, वे तड़पते हुए निकले, कुछ तो तुरंत ही मर गये और कुछ थोड़ी देर तड़फ कर आगे-पीछे मरे। कौओं के निकलने से राजा का शरीर दिव्य हो गया। श्री गर्गाचार्य जी ने बताया कि ये कौओं के रूप में राजा तुम्हारे पाप नष्ट हुए हैं। इन्हीं महाराज दाशार्ह के वंश में श्रीकृष्णचन्द्र जी का अवतार हुआ।

सच्ची श्रद्धा से शंकरजी की उपासना करने पर ऐसा लौकिक या पारलौकिक कोई फल नहीं जो न मिल सके। प्रभु तो आषुतोष हैं, वे तो संतुष्ट ही हैं, केवल श्रद्धा से हम उनकी शरण ग्रहण करें, बस इतना ही विलम्ब है। *(मानसमणि मार्च 1969 से)*

"इसलिये सब सोच समझकर हमने मन में ठानी है।
पढ़-पढ़ यही 'नजीर' सुनाए प्रेम-भक्ति की बानी है॥
दुःख दारिद्र हों दूर बाबा ऋद्धि सिद्धि से भर झोला।
घंटा हिलाकर गाल बजाया बम बम बम श्री बम भोला॥"



(60) कैलाशोपदेश

श्लोक— "जय जय जगदेकनाथ शम्भो प्रकृति मनोहर नित्य चित्स्वभावः।
अतिगत कलुष प्रपंच वाचामपि मनसा पदवी मतीततत्व॥

"हे जगत के एकमात्र स्वामी, मनोहर स्वभाव वाले, नित्य ज्ञान स्वरूप, कलुषित प्रपंच से परे, मन तथा वाणी की गति से बाहर स्थित शंकरजी! आपकी जय हो, जय हो।"

यह प्रकरण पुराणों में आये उस आध्यात्मिक उपदेशों का सारांश है जो कैलाश के शिखर पर माता पार्वतीजी को शंकर जी ने दिये हैं। भगवती उमा के संवाद से ही शंकरजी द्वारा समस्त विद्याओं की उत्पत्ति हुई है। वे सभी कैलाशोपदेश के अन्तर्गत ही आ जाती हैं, पर उन सबका उद्धारण देना मेरी शक्ति से परे है, यहाँ बहुत संक्षेप से कैलाशोपदेश के आध्यात्मिक अंश का सार देंगे। यह किसी एक ग्रन्थ से नहीं लिया गया। सभी बिखरे उपदेशों के आधार पर ही मैं इसे संग्रह करने चला हूँ, शैली मेरी हो सकती है पर बातें एक भी मेरी नहीं। सब शंकरजी के ही वचन हैं—

(सुदर्शन सिंह चक्र)

दोहा— सुरम्य शिखर कैलाश हिं, बट वृक्षहि छाया मांहि।
लखि प्रसन्न विश्वनाथहिं, मां पार्वती ढ़िंग जाहिं॥

कैलाश के सुरम्य शिखर पर वट-वृक्ष की छाया में मृगचर्म पर आसीन विश्वनाथ को प्रसन्न देखकर माता पार्वती प्रभु के समीप गयीं।

चौ०— प्रणाम तबहि माता प्रभु कीना। वाम भाग हँस आसन दीना॥
पूछन लगी उमा हर दासी। स्वामी जो प्रसन्न सुखरासी॥

माता पार्वती ने प्रभु को प्रणाम किया, प्रभु ने उन्हें देखकर हँसते हुए वाम भाग में आसन दिया। हर की दासी उमा उनसे पूछने लगीं, "स्वामी! आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो सुखरासी—

चौ०— यदि सुनने अधिकारिन होहीं। योग्य बतावन समझें मोहीं॥
तो प्रभु कृपा बताओ प्रानी। छूट चक्रजग रति पदमानी॥

यदि मैं सुनने की अधिकारिणी होऊँ, यदि आप बताने योग्य समझें तो कृपाकर यह बतावें कि प्राणी इस संसार के घोर चक्र से छूटकर कैसे आपके मंगलमय श्री चरणों की रति प्राप्त कर सकता है?

चौ०— आषुतोश बोले यो हँसकर। चिंता तुमहिं त्रयतापिन्ह कर॥
सोचत तिन्हहिं सदा उद्धारा। ठीक तो यही मातु आधारा॥

हँसकर आषुतोष बोले, "तुम्हें सर्वदा इन बेचारे त्रयतापग्रस्त जीवों की ही उद्धार की चिंता रहती है। तुम इन्हीं के उद्धार की बातें सोचा करती हो। ठीक भी है तुम इनकी माता हो न, यही आश्रय आधार है।

चौ०—पुत्र कष्ट माँ के उर छालत। तेहि हृदय व्याकुल कर डालत॥
जो तुम चाहो उसे न बताउँ। गोप्य न कुछ तुम्हरे मन भाऊ॥

माता का हृदय पुत्र के कष्ट से व्याकुल हो जाता है, तुम कुछ चाहो और मैं उसे न बताऊँ? तुम्हारे लिये मेरे समीप भला क्या गोप्य हो सकता है?

दोहा—त्राण पायँ जिव बन्धनहिं, कारण करो बिचार।
ममैइ अंध बंधन नहीं, निज अविद्या बंध विकार॥

"जीवों को बंधन से त्राण पाने के लिये, बंधन के कारण पर विचार करो। जीव मेरे अंश हैं, बंधन या अविद्या उन्हें छू भी नहीं सकती, पर वे स्वयं ही अविद्यावश इच्छानुसार होकर बंधन के विकार में पड़े हैं।

तुम देखती हो कि जव कार्य करने में इच्छानुसार स्वतंत्र नहीं। तुम्हारी शक्ति के बिना एक तृण भी नहीं हिल सकता। प्राणी चाहते कुछ है और होता कुछ है। वे कुछ भी करते नहीं, करती और कराती तो प्रकृति है। इस प्रकार निर्दोष होने पर भी जीव जो भावना करता है "मैंने किया", "मैंने नहीं किया" बस उसका यह अहंकार ही बन्धन का कारण है। यदि उसमें अहंकार न हो तो वह मुक्त ही है।"

"इस अहंकार का नाश कैसे हो? जीव कैसे समझे कि मैं कर्त्ता नहीं हूँ?" माता पार्वती के प्रश्न के उत्तर में प्रभु बोले, "अहंकार अनादि है। जीव के कर्मों के जो संस्कार चित्त पर अनादि काल से पड़े हैं उन्हीं के द्वारा इस अहंकार की स्थिति है। विचार करके जीव अपने को प्रकृति से परे जान सकता है, विचार करने पर वह अपने को अकर्ता भी जान सकता है, पर यह जानना और न जानना बराबर ही है। कार्यक्षेत्र में इस जानने से शरीर शक्ति और कर्त्तापन का नाश नहीं होता। कर्मों के जो संस्कार हैं वही जन्म के कारण हैं। जब तक ये संस्कार हैं जन्म होता ही रहेगा। अपने स्वरूप को जान लेने से इन संस्कारों का नाश हो जाता है, इनके नाश से फिर पुनरावृत्ति नहीं होती।

"यह तो पहेली हो गयी" उमा के यह कहने पर प्रभु ने स्पष्ट करना प्रारम्भ किया—

चौ०—जीव कर्म आसक्ति होती। पड़ते संस्कार उर ज्योती॥
कर्म न प्रवृत्ति तेहि पुन होई। यह अनादि क्रम चालहिं सोई॥

"जीव की कर्मों में आसक्ति होती है, और इस आसक्ति के संस्कार हृदय पर पड़ते हैं। इन संस्कारों से ही पुनः कर्मों में प्रवृत्ति होती है, यह क्रम अनादिकाल से चलता आ रहा है।

चौ०—आसक्ति कारण यह होवा। कर्महिं प्राप्त विषय सुख जोवा॥
सुख तो उसका निजहिं स्वरूपा। नहीं समझ ऐहि पर भव कूपा॥

जीव की कर्मों में आसक्ति का कारण यह है कि वह कर्मों से प्राप्त विषयों में

सुख मानता है। पर सुख तो उसका अपना स्वरूप है, इसे न जानते हुए ही भवकूप में पड़ा है।

चौ०—एकाग्रता विषय सन होहीं। उपलब्धि आतम उन सोहीं॥
वो ही कारण सुख मन कीन्हा। चंचल विषयन में मन दीन्हा॥

विषयों में जो एकाग्रता होती है, उस एकाग्रता में जो आत्मोपलब्धि होती है वही सुख का कारण है। भूल से इस सुख को विषयों में मानकर पुरुष उनके लिये प्रयत्न करता है इस प्रकार चंचल विषयों की प्राप्ति के लिये स्वयं भी चंचल मन को विषयों में लगा बैठता है।

चौ०—संस्कार चंचल आसक्ति। करहिं शरीर सूक्ष्महिं सृष्टि॥
तेहि प्रणित चैतन्यहिं होई। जाहि जीव कहते सब कोई॥

इस चंचलता तथा आसक्ति से जो संस्कार होते हैं वह सूक्ष्म शरीर की सृष्टि करते हैं। सूक्ष्म शरीर उस चैतन्य शक्ति से प्राणित होता है जिसे सब कोई 'जीव' कहते हैं।

दोहा—धर्ममान चंचल प्रकृति, विमुख स्वरूपहिं होय।
उर व्यापक प्रतिबिम्ब तहि, चेतन चिदाभास है सोय॥

चंचल प्रकृति का धर्म अपने में मानकर जीव स्वरूप से विमुख हो जाता है। हृदय में जो व्यापक चेतन प्रतिबिम्बित है वही चिदाभास अर्थात् कारण शरीर का प्रेरक है।

सत्व गुण में स्थित हृदय अखण्ड रूप से उस चेतन का अनुभव करता है, वह चेतन आनन्द स्वरूप है, अत: उसकी उपलब्धि से स्वत: इतना आनन्द मिलता है कि जीव फिर विषयों की ओर प्रवृत्त नहीं होता। चिदाभास का संयोग न मिलने से कारण शरीर और विषयों के संस्कार नष्ट हो जाते हैं। जीव का आवागमन चक्र समाप्त हो जाता है।

स्वयं प्रभु ने प्रसंग को और स्पष्ट किया—"कर्मों में आसक्ति ही उसमें अहंकार उत्पन्न करती है। आसक्ति का कारण है विषयों में सुख-बुद्धि। अपने भीतर अनंत आनंद होने पर भी रजोगुण और तमोगुण के विक्षेप और मल से उसकी प्राप्ति नहीं हो पाती। ये दोनों गुण चित्त को चंचल या मूर्छित रखते हैं। साधन के द्वारा जब चित्त शुद्ध हो जाता है, जब चित्त से ये दोनों गुण निकल जाते हैं तो केवल शुद्ध सत्वगुण रह जाता है। सत्वगुण आवरण होने पर भी प्रकाशक है। उसमें स्थित होने पर आत्मानंद का अनुभव होता है। सत्वगुण का सूक्ष्म अंश और प्रारब्धजन्य सूक्ष्म अहंकार तो शरीरान्त तक रहता है। पर साधन के द्वारा सत्व गुण में स्थिर रहकर जब साधक उससे भी ऊपरा उठ जाता है तो कारण, अहंकार और आवरणात्मक सतगुण की शक्ति नष्ट हो जाती है यहाँ जाकर वह मुक्त हो जाता है। कारण अहंकार के नष्ट

होने पर संचित कर्म उसके साथ ही नष्ट हो जाते हैं क्योंकि उसका वही आधार है। शरीर के साथ प्रारब्ध और प्रारब्ध का आधार अहंभाव भी समाप्त हो जाता है।

माता उमा कुछ पूछना चाहती थीं, सर्वज्ञ प्रभु स्वतः बोले—"तुम ठीक कहती हो कि साधनों की सीमा सत्वगुण तक ही है, सत्वगुण प्रधान साधन सत्वगुण को नष्ट नहीं कर सकते। साधन भी अहंकार का आधार लेकर ही होते हैं" अतएव वे अहंकार का नाश करने में असमर्थ हैं। पर साधन चित्त से रज और तम का नाश कर देते हैं, उनको पुनः चित्त में आने देने का अवसर नहीं देते। फल यह होता है कि चित्त को सत्वगुण में ही स्थिर रहना पड़ता है। प्रकृति वहाँ गति नहीं कर पाती। यदि प्रकृति को गतिहीन कर दिया जावे तो वह नष्ट हो जायेगी। चंचलता प्रकृति का धर्म है, चंचलता न रहने पर वह नष्ट हो जाती है। अतः जिस क्षण चित्त में से साधनों के द्वारा रजोगुण और तमोगुण पूर्णतया दूर कर दिये जाते हैं, उसी क्षण सत्व के स्थिर होने से प्रकृति का चांचल्य जाता रहता है। गतिनाश होते ही प्रकृति नष्ट होती है। इस प्रकार सत्वगुण स्वतः नष्ट हो जाता है, गुण और प्रकृति के साथ अहंकार का नाश होना नियमतः अनिवार्य है।"

ज्ञानधन प्रभु कहते ही जा रहे थे "इसी को कोई मेरे व्यापक ज्ञान स्वरूप का आकर्षण कहते हैं। सत्वगुण में पूर्ण स्थिर होते ही मेरा आकर्षण जीव को खींच लेता है, वह आकर्षण सर्वदा है पर रज और तम की अशुद्धि से प्राणी उससे वंचित है। जिस क्षण इन दोनों गुणों से वह परे होता है, उसी क्षण वह इस आकर्षण के द्वारा सत्वगुण से भी परे हो जाता है। इसी आकर्षण के कारण भक्त लोग मुझे 'कृष्ण' कहते हैं। सत्वगुण से परे होना साधन साध्य नहीं, कृपा साध्य है। पर मेरी यह कृपा सदैव ही धारा-प्रवाह रूप से जगत को प्राप्त है। आकर्षण, कृपा या नियमतः प्रकृति का नाश चाहे जो भी कहा जावे ठीक है। ज्ञान-समकाल मुक्ति इसी को कहते हैं। रज और तम का पूर्ण नाश होते ही सत्व में प्रकाशित आत्मा का बोध होता है और साथ ही सबके नाश से त्रिगुणातीत मुक्तावस्था की प्राप्ति भी।"

उमा पूछने लगीं, "प्रकृति जब त्रिगुणात्मिका है तो सत्वगुण में प्रकृति का स्थिर रहना कैसे सम्भव हो।" गंभीरता पूर्वक ज्ञान धन प्रभु बोले, "प्रकृति त्रिगुणात्मिका अवश्य है, पर चित्त तीनों गुणों का कार्य नहीं। अहंकार के सात्विक अंश से चित्त की उत्पत्ति होती है, राजस अंश से इन्द्रियों की और तामस अंश से स्थूल पृथ्वी आदि पंचम महाभूतों की। चित्त में विचार पूर्वक देखने पर रज और तम आगन्तुक ही ज्ञात होंगे। चित्त चंचल होता है। कामादि कामनाओं से मूढ़ होता है कार्याधिक्य या भ्रम से। एक भी रजोगुण या तमोगुण की अवस्था ऐसी नहीं जो निराधार चित्त में रह सके, पर चित्त शान्त होता है बिना किसी आधार के ही। इस शान्ति में सुख है। यही लक्षण हैं कि चित्त का स्वरूप सत्वगुण का है और दूसरे गुण उसमें आगन्तुक हैं।

धारा चलती ही गयी "जैसे जल का स्वभावतः मधुर गुण है, पर दूसरे विकारों

के आ जाने पर वह कटु, तित्त आदि हो जाता है। उपाय के द्वारा उन आगन्तुक विकारों को दूर करके जल को शुद्ध कर सकते हैं और उसे उसके स्वरूप में रख सकते हैं। ठीक इसी प्रकार चित्त का धर्म सत्वगुण है, उपाय द्वारा दूसरे आगन्तुक गुणों को दूर करके उसे अपने स्वरूप में स्थिर कर सकते हैं।

स्वयं ही प्रभु ने कहा, "तुम पूछोगी चित्त शुद्ध कैसे हो? इसके लिये अनेकों प्रकार के साधन बताये गये हैं। विषयों से वैराग्य और सत्व में स्थिरता के अभ्यास से ही चित्त शुद्धि होती है। वैराग्य होता है विचार से। विषयों में आनन्द नहीं, विषय दुःख प्रद, बन्धन प्रद, घृणित तथा निन्द्य हैं, इस प्रकार का विवेचनात्मक विचार वैराग्य का जनक है। सत्व में स्थिरता के लिये साधन होते हैं। ध्यान, योग, जप, निष्काम कर्म, पूजा-पाठ, कथा, कीर्तन, सेवा, सत्संग, तीर्थयात्रा और धर्माचरण ये सब साधन हैं। कोई साधन शीघ्र और कोई देर से सफलता देता है, कोरा विचार या कोरा साधन सफल नहीं होता। विचार अर्थ है यदि वैराग्य होने पर भी यदि साधन से चित्त स्थिर न हो। साधन से स्थिर चित्त वैराग्य न होने पर पुनः भ्रष्ट होगा। अतः साधन का अभ्यास और विचार से वैराग्य ये दोनों साथ ही होने चाहिये।"

तनिक रुककर प्रभु बोले, "जब तक शरीर है, तब तक विचार-वैराग्य पूर्वक अभ्यास होना चाहिये। जैसे शुद्ध किये हुए जल की यदि देख-रेख न रखकर उसको अरक्षित छोड़ दिया जाय तो वह पुनः दूषित हो जायेगा। उसमें फिर विकार आ जावेंगे। वैसे ही चित्त को भी पूर्ण सत्व में स्थिर करके निश्चिंत छोड़ देना ठीक नहीं। छोड़ देने पर उसमें पुनः रज और तम आ जावेंगे। आशरीरान्त चित्त की देख-रेख दूसरे शब्दों में विचार और साधनों का अभ्यास करना होगा।"

"क्या पूर्ण स्थिति में पहुँचे महापुरुषों के चित्त में भी विकार आ सकता है?" माता पार्वती के इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु बोले, "आ सकता है। पूर्ण स्थिति को प्राप्त होने पर भी चित्त में सत्वगुण तो रहता ही है, सात्विक अहंकार भी रहता है। प्रारब्ध भी विकारों का कारण होता है यदि चित्त की उपेक्षा कर दी जावे तो प्रकृति के चांचल्य से चित्त में रजोगुण और तमोगुण का वेग भी आ जाता है। यद्यपि तुरीय स्थिति में पहुँचने के कारण महापुरुष इच्छा होते ही सरलता से इन गुणों के आवेगों को दूर कर देते हैं, उन्हें प्रयत्न से साधन नहीं करना पड़ता। पर एक बार आवेगा उन्हें क्षुब्ध करके अशान्त तो बना ही देते हैं। इसी से स्वयं मैं भी साधनरत रहता हूँ। साधारण लोगों को इसी से शिक्षा लेनी चाहिए। कभी भी साधन का त्याग न करें। कुतूहल से भी विषयोत्तेजक स्थानों या चर्चाओं में न रहे। चंचल मन कब धोखा दे देगा, इसका कुछ पता नहीं।"

उमाजी ने स्वामी जी के चरणों में प्रणाम किया। दयामयी जननी की कृपा से संसार के आर्त प्राणियों को इस त्रय-ताप से त्राण पाने का मार्ग ज्ञात हुआ। स्वात्माराम प्रभु शंकर जी को इनमें स्वयं प्रवृत्ति तो हो ही नहीं सकती थी, पर माँ

अपने असहाय पुत्रों को कैसे भूल सकतीं। यह उन्हीं की कृपा का प्रसाद है।

(मानसमणि मई 1969 से)

हिन्दी के आदिकालीन कवियों में विद्यापति के शिव-भक्ति विषयक पद अत्यधिक प्रसिद्ध हैं उन्होंने अर्धनारीश्वर भगवान शिव का मनोहारी एवं सटीक वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में भगवान शिव को इस स्वरूप में देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो विधाता ने एक प्राण को दो रूपों में बाँट दिया है। पद इस प्रकार है—

"जय-जय शंकर जय त्रिपुरारि। जय अध पुरुष जयति अध नारि॥
आध धवल तन आधा गोरा। आध सहज कुच आध कटोरा॥
आध हड़माल आध गजमोती। आध पटोर आध भुँजडोरा॥
आध जोग आध भोग-विलासा। आध विधान आध नग बासा॥
आध चानन आध सिंदूर सोभा। आध विरूप आध जग लोभा॥
भने कवि रतन विधाता जाने। दुइ कए बाँटल एक पराने॥

(विद्यापति अमरकाव्य, शिवस्तुति पद संख्या 2)

'श्री अर्ध नारीश्वर भगवान की जय'



(61) शिव-विवाह की और कथा

ब्रह्मपुराण में वर्णित एक कथानुसार महाशक्ति ने पर्वतराज हिमालय के यहाँ पार्वती के रूप में जन्म लिया। जब पर्वतराज तनया उमा विवाह के योग्य हुईं तो हिमालय ने स्वयंम्बर करने के लिये सभी देवताओं को निमंत्रण भेज दिया। सभी देवता लोकपाल पार्वती को पाने की इच्छा से हिमालय के यहाँ पधारे। पर्वतराज ने सबका सत्कार किया।

देवताओं की उस स्वयम्वर सभा में लोक पितामह ब्रह्मा और भगवान विष्णु भी थे। दूसरे सब लोकपाल तो थे ही। उमा हाथों में कमलपुष्प की माला लेकर सखियों से घिरी उस सभा में आयीं। जैसे ही पार्वती जी की दृष्टि विष्णु पर गयी, भगवान विष्णु ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

अचानक भगवान शंकर पाँच शिखाधारी नन्हे शिशु बनकर पार्वती की गोद में आ गये। उमा ने एक क्षण को नेत्र बन्द किये। ध्यान के द्वारा उन्होंने शिशु को पहचान लिया। वे तो अपने आराध्य की कामना करती स्वयम्बर सभा में आयीं ही थीं, शिशु को उन्होंने हृदय से लगाया और स्वयम्बर सभा से लौट पड़ीं ।

पार्वती को लौटते देखकर कई देवताओं को क्रोध आया। उन्होंने अपने को अपमानित अनुभव किया। उनमें अनेक चिल्लाये-"यह शिशु कौन है? इसे मार दो।"

देवराज इन्द्र ने तो शिशु को मारने के लिये वज्र भी उठा लिया, किन्तु सहसा

उनका सारा शरीर जड़ के समान निष्क्रिय हो गया। यही अवस्था शस्त्र उठाने पर भगदेवता तथा कई औरों की हुई। देवताओं में भय व्याप्त हो गया।

"मूर्खो! शिशु के रूप में साक्षात ये देव देवेश्वर शिव हैं" ब्रह्माजी ने देवताओं को धिक्कारा, "न तुम इन परमेश्वर को पहचानते हो और न इनकी नित्यशक्ति जगदम्बा उमा को ही।"

ब्रह्माजी ने अब उठकर शंकरजी की स्तुति प्रारम्भ की। प्रसन्न होकर शिव ने शिशु रूप त्याग दिया। वे कर्पूर गौर, त्रिलोचन, चन्द्रशेखर रूप में प्रकट हो गये। उनकी कृपा से देवताओं का अंग स्तम्भन दूर हो गया। उमा ने वरमाला शंकरजी की ग्रीवा में डाल दी। धूमधाम से पर्वतराज ने अपनी पुत्री का विवाह उन आशुतोष से कर दिया। पार्वती को साथ लेकर शंकरजी कैलाश गये। और सभी अपने-अपने स्थानों को लौट गये। (मानसमणि जून 1969 से)

उदासीन सम्प्रदाय के संतों में आचार्य श्रीचन्द्रजी (जन्म संवत 1551 वि०) का स्थान अन्यतम है। उन्होंने भगवान शिव की आकर्षक झाँकी प्रस्तुत की है। वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि परमहंस भगवान शिव, उनके 'मानस' में निवास करें—

"श्री चंद गंगाधर गुन गावैं। हंसा देह सुदरसन पावैं॥
पिंगल जटा अमिय सुरधारा। विधि जेहि बलि मख माँझ पखारा॥
बाल वियाल धरहिं चल कुंडलि। त्रिनयन सूर चन्द्र पावक झलि॥
ग्यान कलेवर त्रय उपनीता। संजय ध्यान मदन कहुँ जीता॥
वामै गोद हँसात भवानी। सुर तैंतिस जोरे थित पानी॥
माँगहुँ यह वरु दुहुँकर जोरे। परम सु रहुमानस मोरे॥

(श्रीचन्द्र शब्द-सुधा पद सं0 3)

'जै शिव'

❑ ❖ ❑

(62) हरि हर पुत्र शास्ता देवता

स्थल पुराण के अनुसार हरि-हर मोहनी पुत्र है। उनके पिता शिव तथा माता मोहिनी=विष्णु का अंश होने से उनका आधा शरीर शिवात्मक तथा आधा शरीर विष्णुरूप है। आलिंगन करते समय शिव के रेत का एक कण मोहिनी के उरू=जंघा पर लग गया उससे अच्युत् पुत्र **"हरिहर"** प्रकट हुए थे।

दक्षिण भारत में इन 'हरि-हर' पुत्र की सर्वत्र बड़ी प्रसिद्धि है। 'हरि-हर' नामक प्रसिद्ध तीर्थ के अतिरिक्त भी 'हरि-हर' के मन्दिर दक्षिण में बहुत हैं। शास्ता देवता को मलावार देश में 'अय्यप' नाम से पुकारते हैं। उनके उपदेश रूप से

'अय्यप' गीता भी प्रसिद्ध हो चुकी है। इनकी स्तुति में एक विलक्षण चरित्र सुनने में आता है। उस स्तुति का कुछ अंश इस प्रकार है—

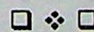
"माता च विष्णुश्च पिता शिवोमे,
ताभ्या महं जात इति प्रसिद्धम्।
अम्बेति गौरी महमाह्वयामि,
तात स्त्रियो मातर एव सर्वाः॥
विष्णोश्च मातुः किल धर्मपत्नीं,
कथं नु लक्ष्मी महमाह्वयामि।
आस्येऽङ्गलिं स्थाप्य विचिन्तयन्तं,
शास्तार मीडे सकलार्थ सिद्धये॥"

अर्थात्-उन शास्ता देवता की सकल अर्थ की सिद्धि के लिये मैं स्तुति करता हूँ जो मुख पर अँगुली रखकर अति गम्भीर होकर इस प्रकार विचार कर रहे हैं—मेरी माता श्री विष्णु हैं और पिता श्री शिवजी, क्योंकि शिव एवं विष्णु से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। यह प्रसिद्ध है। पार्वती देवी को मैं हे अम्ब! इस समेधन से बुला सकता हूँ। क्योंकि पिता की सभी धर्म पत्नियाँ माता ही हुआ करती हैं। परंतु विष्णु रूप माता धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी को मैं किस सम्बोधन से बुलाऊँ? अर्थात् लक्ष्मीजी के साथ मेरा क्या सम्बन्ध हुआ?

इन शास्ता देवी को दक्षिण-भारत में भक्त लोग ग्रामाधिष्ठाता क्षेत्रपाल के रूप में मानते हैं, और उनकी अनेक मान्यताएँ मानकर सफल होते हैं। हरिद्वार उत्तर प्रदेश (उत्तराखण्ड) में भी शास्ता भक्त किसी प्रभावशाली महात्मा की प्रेरणा से केरल के भक्तों ने एक लाख से भी अधिक रुपया खर्च करके एक भव्य मन्दिर बनवाया है जिसमें केरल का ही ब्राह्मण पुजारी विधिवत पूजा करता है। उत्तर भारतियों को हरिद्वार में इस मन्दिर का दर्शन अवश्य करना चाहिये। *(मानसमणि जून 1969 से)*

सवैया- "भाल में चंद विराज रह्यो, औ जटान में देवि धुनि लहरैं।
ह्राथ सुशोभित त्यों तिरसूल, गरे बिच नाग परे फहरैं॥
भोजन भाँग धतूरन को करि, नित्य मशानहिं में ठहरैं।
नंदी सवार उमायत शम्भु, 'रसीद' के हिये छटा छहरै॥"

(आधुनिक रसखान 'रसीद' छ०सं० 62)



(63) उपसंहार

श्लोक— "अजं शाश्वतं कारणं कारणानां,
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।

तुरीयं नमः पार माद्यन्तहीनं,
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनं॥"

अजन्मा, शास्वत, कारणों के भी मूल कारण, कल्याण स्वरूप, एकमात्र, प्रकाशकों के भी प्रकाशक, अज्ञान से परे, परमतत्व, आदि अंत से रहित, परम पावन और अद्वय तत्व शंकरजी की हम वन्दना करते हैं।"

दोहा—अनादि और अनंत के, चरितन का विस्तार॥
अंतन कोई पा सकै, कुछ मानव बुद्धि विचार॥

अनादि और अनन्त के देवता के चरित्रों का विस्तार कोई कितना भी कर ले पर अंत तो हो नहीं सकता क्योंकि मानव की तुच्छ बुद्धि का तो अंत है ही। वह कैसे कर पावै?

अब इन चरित्रों के कर्त्ता तत्व के श्रीचरणों की नख चन्द्रिकाओं की एक झाँकी लेकर उनके चिन्तन में चित्त को लगाइये।

चौ०—शिवही व्यापक तत्व महाना। निर्गुण निराकार भगवाना॥
मन वाणी से परे वह सोई। बोधक आत्म स्वरूपहिं होई॥

शिव ही व्यापक महान तत्व है। निर्गुण, निराकार भगवान मन एवं वाणी से परे हैं। ब्रह्म या आत्मा उनके उसी निर्गुण स्वरूप का बोधक है।

चौ०—शिवचरित्र शिव निर्गुण नांही। दया धाम कैलाशहिं ठाहीं॥
भव ही भव की सृष्टिकर्त्ता। पालन और तेहि संहरता॥

पर शिव कथा सार के शिव वे निर्गुण नहीं। वे तो हमारे दयाधाम कैलाशपति प्रभु हैं।

ब्रह्म और उसका वाचक '**ॐ**' यह दोनों ही संस्कृत व्याकरण के अनुसार नपुंसक हैं। इनके द्वारा सृष्टि हो नहीं सकती। नपुंसक चाहे तो भी स्त्री में आसक्त नहीं हो सकता और उसमें इच्छा होती भी नहीं। ब्रह्म-नपुंसक है, उसमें न तो इच्छा है न गुण। वह प्रकृति से परे, उससे असंसक्त है। इसी को शिव का निर्गुण स्वरूप कहते हैं। विश्व की उत्पत्ति आदि न तो उससे होती है और न उसकी सृष्टि में विश्व है ही। विश्व की उत्पत्ति स्थिति और नाश के कारण तो शंकर जी है। भव ही भव की सृष्टि करते हैं, शिव ही जगत के रक्षक एवं धारक हैं तथा वे हर ही उसका हरण भी करते हैं। फिर भी जगत से वे असंस्पृष्ट हैं। वे कारण हैं, पिता हैं पर निमित्त रूप से। यह जगत रूपी शिशु तो उनकी शक्ति के गर्भ से होता, उसकी गोद में पलता तथा वहीं लय भी होता है।

चौ०—जगतहि कार्य मातु आधारा। प्रेरक दूरिहि जगद्धारा॥
पिता शिशु को देखन हारे। स्पर्श नहीं भूतन्ह जग सारे॥

जगत और उसके कार्य के आधार माता शक्ति की गोद में उन्हीं जगदाधार की प्रेरणा से स्थित हैं। शिव तो दूर से केवल शिशु को देखने वाले पिता हैं, वे ऐसे पिता

हैं जो शिशु को छूना पसंद नहीं करते। जो भी करना हुआ वह उनकी दृष्टि मात्र से हर्षित शक्ति करती रहती है।

चौ०—कुछ न कर सकें शक्ति न होई। शक्तिहीन शिव शव सम जोई॥
स्वयं शक्ति भी कुछ नहीं कर सक। जब तक शक्तिमान नहिं प्रेरक॥

पर यदि शक्ति न हो तो शिव कुछ न कर सकें। शक्तिहीन शिव का स्वरूप तो शव-निष्चेष्ट है अर्थात शव समान है। शक्ति भी स्वयं तब तक कुछ नहीं कर सकती जब तक शक्तिमान का सानिध्य न हो, प्रेरणा न हो, वह तो शक्तिमान के ही अन्तर्गत है।

दोहा—शक्ति शक्ति मान से, रहै सदैव अभिन्न।
जैसे अग्नि उष्णता कहन सकै कोई भिन्न॥

शक्ति और शक्तिमान सदैव सदैव अभिन्न होते हैं जैसे अग्नि और उष्णता। शिव और उमा कालिदास जी के शब्दों में **"घागर्वाविषसंपृक्तौ"** शब्द और उसके अर्थ की भाँति अभिन्न या एकमूल है। शिव अपनी शक्ति के साथ अद्वैत हैं। लीला के लिये वे अपनी इस शक्ति को अपने से अभिव्यक्त करके संसार की उसके द्वारा रचनादि करते एवं उसके दृष्टा रहते हैं। सगुण रूप में उसी शक्ति के साथ क्रीड़ा करते हैं।

शक्ति जहाँ शक्तिमान में पूर्णतः लीन है, वहाँ शक्तिमान शक्ति के तिरोभाव से निर्गुण है। जब शक्ति का उसमें से प्रादुर्भाव होता है तो वह सगुण कहा जाता है। कल्पतरु की शक्ति से उसमें से जैसे याचक की अभीष्ट वस्तु निकलने पर भी कल्पतरु विकारी नहीं होता, वैसे ही मूल तत्व भी शक्ति के आविर्भाव तथा उसकी क्रीड़ा से विकारी नहीं होता। ब्रह्म और शिव केवल शक्ति के आविर्भाव-तिरोभाव को दृष्टि में रखकर उस एक ही तत्व को कहा जाता है। ब्रह्म का नपुंसकत्व या निर्गुणत्व शक्तिहीनता नहीं। शक्ति उसमें भी रहती है पर तिरोहित रहती है उपयोग में नहीं आती, व्यक्त नहीं होती। जैसे निमित्त न रहने पर कल्पतरु, कामधेनु या चिंतामणि की शक्ति उसमें अन्तर्हित रहती है। उस समय वे जड़ से प्रतीत होते हैं।

चौ०—शिवहिं शक्ति द्वय रूपहिं होई। उमा अरु माया बतावहिं सोई॥
विद्या अरु अविद्या कहहीं। सद्ग्रन्थनहिं यही उच्चरहीं॥

शिव की शक्ति के दो रूप हैं, एक उमा = पार्वती, दूसरी माया। एक विद्या, दूसरी अविद्या। यही सब महात्मा महापुरुष एवं सद्ग्रन्थों ने वर्णन किया है।

चौ०—विद्या करहिं जीव जग मुक्ति। चेष्टा करहिं उमा धरि युक्ति।
शिवचरणन पहुँचावत रहहीं। उत्सुक सदा मनहि तेहि लहहीं॥

विद्या या माता उमाजी को संसार से मुक्त करके सदा भगवान शिव के चरणों में पहुँचा देने की चेष्टा करती हैं, वे इसके लिये सदा अपने मन से उत्सुक रहती है।

चौ०—जीव आसरा विद्या पाहीं। शरण उमा चरनों की जाहीं॥
तेहि कृपा चरनन शिव जाहीं। आवागमन मिटहिं उन काहीं॥

विद्या के आश्रय से माता उमा के चरणों की शरण ग्रहण करके उनकी कृपा से ही जीव शिवजी के श्री चरणों तक पहुँचता है, फिर उसका संसार से आवागमन सदैव के लिये मिट जाता है। उस आनन्द घन तत्व को प्राप्त करने के लिये विद्या का आलम्बन लेना ही पड़ता है। उमा की शरण लिये बिना महेश्वर की प्राप्ति नहीं होगी।

चौ०—बन्धन हेतु जीव की माया। अविद्या से अज्ञानहि भाया॥
जा बस जीव परा भव मांही। जन्म-मरण चक्कर लग ताहीं॥

माया जीव के बन्धन का हेतु है। अविद्या-अज्ञान के द्वारा ही जीव इस विश्व में पड़ा हुआ है, उसी के वश में होकर सम्पूर्ण कष्टों तथा जन्म-मरण के चक्र का कारण अविद्या-माया स्पष्ट शब्दों में हमारा छल-कपट, आडम्बर और भ्रम है।

दोहा— ताते छूटन हेतु हम, ग्रहणहिं विद्या ज्ञान।
वह आश्रय माँ उमा, सत्यता उर मान॥

इससे छुटकारा पाने के लिये हमें सत्यता, और विद्या-ज्ञान का, भगवती माँ उमा का आश्रय ग्रहण करना होगा।

यह विश्व अविद्या का नहीं, विद्या का कार्य है। शिव की शक्ति के द्वारा ही इसका संचालन होता है। जग क्रीड़ा की सूत्रधार भगवती उमा हैं। अत: विश्व में तो ज्ञान ही ज्ञान है। संसार ज्ञान स्वरूप है। प्रत्येक वस्तु अपनी उत्पत्ति, स्थिति, विकार और नाश के द्वारा अपने मूल कारण का संकेत कर रही है। वह स्पष्ट बता रही है कि मेरा यह रूप जो तुम देख रहे हो वास्तविक नहीं। इस परिवर्तन में जो स्थिर है वही मेरा रूप है। मेरे इस वाह्य रूप से मोह करना तुम्हें कष्ट देगा। यही तुम्हारे कष्ट का कारण है क्योंकि यह रूप तो अस्थिर है, नश्वर है।

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का निर्माण माता उमा ने इसलिये किया है कि उस व्यक्त वस्तु के द्वारा हम मूल तत्व को प्राप्त कर सकें। अव्यक्त होने के कारण मूल तत्व को लक्षणों के अतिरिक्त लक्षित किया ही नहीं जा सकता। अत: विद्या के द्वारा इस सृष्टि की कल्पना अज्ञानी जीव को परम तत्व का ज्ञान प्रदान करने के लिये ही हुई है। यह जगत उमा की कल्पना है, विद्या का कार्य है। दार्शनिक इसे समष्टि के अभिमानी का भ्रम कहते हैं। जीव या व्यक्ति का अभिमानी इस दृश्य जगत को मिटा या दूर नहीं कर सकता। जगत या जगत के पदार्थों का दृश्य होना बंधन का कारण भी नहीं, वह तो उल्टे ज्ञान का साधन है। अब बंधन का कारण देखें-

चौ०—बन्धन का कारण ये माया। अविद्या या भ्रम हम अपनाया॥
सृष्टि उमा मुक्ति का कारण। माया सृष्टि बंधन धारण॥

बन्धन का कारण है माया, अविद्या या भ्रम जो हम पाले हुए हैं, जहाँ उमा की

सृष्टि मुक्ति का कारण है, वहाँ माया की सृष्टि बंधन को धारण किये हुए हैं।

चौ०—सृष्टि माया अहंता-ममता। मैं मेरी तू तेरी जमता॥
बाधाएँ ये ही हैं अविद्या। बंधन है पाई नहिं विद्या॥

माया की सृष्टि है अहंता-ममता। "मैं हूँ" "यह मेरा है" "यह तू है" और "यह तेरा है"। ये बाधाएँ ही अविद्या अतः बन्धन हैं, क्योंकि व्यक्ति ने विद्या ज्ञान नहीं पाया।

चौ०—राग द्वेष उत्पत्ति कारण। काम क्रोध आसक्ति धारण॥
सृष्टी उमा जगत में भर सक। जग वस्तु अदृश्य न कर सक॥

इन्हीं के कारण राग-द्वेष, आसक्ति तथा काम, क्रोध आदि विकार उत्पन्न होते हैं। हम उमा की सृष्टि जगत के पदार्थों को अदृश्य नहीं कर सकते। पर माया की सृष्टि उन पदार्थों में मेरा और तेरा का भाव छोड़ सकते हैं। अहं, मम, त्वं और के अपने पराये भाव ही बन्धन के कारण हैं।

चौ०—याही जाल में हम पड़ जावैं। शिक्षा ग्रहण न कुछ करि पावैं॥
लक्षित परिवर्तन नहिं पेखें। मूल तत्व होवत नहिं देखें॥

इनके जाल में पड़े होने के कारण हम जगत के पदार्थों के वास्तविक रूप को तथा उससे मिलने वाली शिक्षा को ग्रहण नहीं कर पाते। हमारी दृष्टि उन पदार्थों के परिवर्तन से लक्षित होने वाले मूल तत्व तक जाती ही नहीं। हम इन भावनाओं से पदार्थों से पदार्थों के वाह्य एवं व्यक्त नश्वर रूप को ही देखते तथा उसी से सम्बन्ध रखते हैं।

दोहा—राग-द्वेष कर नश्वरहिं, पावहिं कष्ट अपार।
आसक्ति इन में हि सदा, दें जीवन वारहि वार॥

नश्वर रूपों से राग-द्वेष करके, अपार कष्ट पाना ही रहा। नश्वर की आसक्ति फिर बार-बार नश्वर जीवन ही देगी। यह भाव व्यष्टि की सृष्टि, हमारी अपनी कृति है, इसे हमको ही त्यागना होगा। इसके त्याग की शक्ति हम में है।

वस्तुएँ, संसार के कार्य न तो हमारे हैं, न दूसरे के, ये समस्त पदार्थ भगवती माँ उमा के हैं, यह सब कार्य माँ की इच्छा से, उन्हीं की प्रेरणा से हो रहे हैं जिस दिन अहं और त्वं के ऊपर उठकर हम यह अनुभव कर सकेंगे, उसी दिन यह संसार का चक्र समाप्त हो जायेगा। ये पदार्थ और क्रियाएँ भ्रम तथा कष्ट के बदले हमें ज्ञान तथा आनन्द प्रदान करेंगी। उसी दिन संसार का रूप बदल जायेगा।

प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक घटना, प्रत्येक क्रिया हमें परम तत्व को लक्षित कराने लगेंगी। माता उमा की क्रीड़ा हमें विनोद तथा सुख प्रदान करेगी। आवश्यकता ही न रहेगी समष्टि के सृष्टि का अभाव करने की।

यद्यपि अहं और मम आदि व्यष्टि की सृष्टि हैं, हम स्वयं इनके कर्त्ता हैं। हम इनका नाश कर सकते हैं। पर अविद्या के ये संस्कार जन्म-जन्मान्तर से हममें दृढ़तम

हो चुके हैं। हमारी स्वाधीन शक्ति बहुत कुछ इससे पराजित हो चुकी है। इसी से चेष्टा करने पर भी हम इन भावनाओं का त्याग नहीं कर पाते। इच्छा न होने पर भी ये संस्कार हममें आ ही जाते हैं। घोर प्रयत्न, दीर्घकाल तक का किया हुआ कठोर साधन घन भी काम नहीं देता। पता नहीं हृदय के किस अज्ञात कोने में छिपा हुआ यह अहंकार ठीक मौके पर हम पर आक्रमण करता है। सारे उद्योग, समस्त तत्परताएँ, सम्पूर्ण साधन व्यर्थ हो जाते हैं। हमें अविद्या के सामने पराजित होना पड़ता है। माया की प्रबल लहरें हमे बहा ले जाती हैं। प्रथम जिन वस्तुओं या कार्यों में अहंकार का लेश भी नहीं जान पड़ता, उनमें ही पीछे से घोर आसक्ति हो जाती है। आरम्भ में जिसे निष्काम उद्योग समझते थे, उसमें ही स्वार्थ छिपा मिलता है। पुरुष द्वारा विषम स्थिति से निराश हो जाता है। उसे अपने और साधनों पर भी विश्वास नहीं रह जाता।

जन्म-जन्मान्तर से पड़े इन संस्कारों को दूर करने के लिये प्रबल और कठोर साधन तो लगेगा ही। दीर्घकाल के प्रबल साधन के बिना तो ये दूर होने से रहे। बीच-बीच में यदि ये प्रबल होते दीख पड़े तो निराश होने की कोई बात नहीं। उसे साफ होते भवन की उड़ती धूलि या बुझते दीपक की अन्तिम लहर समझ कर और भी उत्साहित होना चाहिए। ये शुभ लक्षण हैं, प्रबल साधन के द्वारा इन पर विजय पाने की बार-बार चेष्टा करनी चाहिये।

इतना सब होने पर भी प्रभु श्रीशंकर जी की कृपा के बिना कोई उद्योग सफल नहीं होता। उनकी कृपा के बिना माया पर विजय पाना सम्भव नहीं। माँ की शरण लेकर ही हम माया को दूर कर सकते हैं। उमा की सहायता के बिना अविद्या का नाश नहीं होता। हृदयान्धकार को दूर करने के लिये कैलाशपति के पद-नख चन्द्रिकाओं का ध्यान करना ही पड़ेगा।

माँ को पुकारो, प्रभु का ध्यान करो, उनके नाम का जप करो, उनके पवित्र चरितों का श्रवण और चिंतन करो। माया के बंधन को नाश करने के लिये इससे सुगम कोई साधन नहीं। प्रभु से प्रार्थना करो-वे सुनेंगे, तुम्हारे साधनों में बल देंगे और माया के बन्धनों को दूर करके तुम्हें अपने चरणों में स्वीकार करेंगे। अन्त में उस दयामय आषुतोष के चरणों में प्रार्थना है-

"आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं योवनम्,
प्रत्या यान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोय तरंग भंग चपला विद्युचलं जीवितम्,
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना॥"

"कर चरणकृतं वा कायजं कर्मजं वा, श्रवण नयनजंवा मानसं वाऽपराधम्।
विहितभवि हितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व, जय जय करूणाब्धेश्रीमहादेव शम्भो॥"

(मानसमणि जून, 1969)

(उपरोक्त 63 प्रकरण 6. 3 = 9 पूर्णांक श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र' द्वारा लिखित सतना से जो मानसमणि निकली है उन सन् 66 की 11, सन् 67 की 11, सन् 1968 की 12, और सन् 1969 की 5, कंल 39 प्रतियों में से संग्रह करके लिखे गये हैं सज्जन लाभ उठायें, मेरा इनमें कुछ नहीं, श्रममात्र है जो भगवती माँ उमा की कृपा द्वारा मिल रहा है) चौपाई, दोहा, छंद कुछ बीच-बीच में अवश्य **(शिव शरणं मम)** इनकी कृपा से लिखे हैं।



❃ वीरानवासी शिव ❃

(प्रस्तुत लेख का अभिप्राय दैव इच्छा की प्रबलता दर्शाना है। दैव इच्छा के अभाव में वांछित कार्य सम्पन्न होना सम्भव नहीं है। इसी भावना का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। 'कु० चक्षुप्रभाकृत' ऋषि जीवन सितम्बन 85 से)

कैलाशवासी भगवान शिव आक, धतूरा तथा विजया का सेवन करके ध्यानस्थ थे। शिव अर्धांगिनी माता पार्वती भी उनके पास ही थीं कि अचानक ठंडी हवा के साथ माहोट वर्षा होने लगी। दैवी पार्वती उस प्रकोप को सहन न कर सकीं और उन्हें अपने पितृगृह की शरण लेनी अर्थात् पर्वत की गुफा में चली गईं। जब भूत-भावन भगवान शिव की समाधि भंग हुई तो पार्वती को अपने समीप नहीं पाया, जब तक वर्षा भी समाप्त नहीं हुई थी, वह इधर-उधर देखते रहे और सोचा कि वर्षा समाप्त होने पर पता लगेगा। वर्षा और झंझावात समाप्त होने पर हिमालय तनया उनके समक्ष स्वयं उपस्थित हो गयीं और विनम्र होकर कहने लगीं-

"नाथ! आपको तो यह सब कुछ सहन योग्य है, मैं तो अधीर हो गव्हर शरण हो गई अत: प्रभु! आप यहाँ एक घर ही बनवा लें तो यह असुविधा तथा कष्ट सहन न करना पड़े।"

भगवान शिव को बड़े जोर की हँसी आई और हँसते हुए बोले—

"तुम ठहरीं राजपुत्री, यह झंझावात तुम कैसे सहन कर पाओगे?"

वीरानवासी तथा एकान्तवासी प्रभु इतना कह ही पाये थे कि नारदजी अपनी वीणा को झंकृत करते तथा हरि-कीर्तन करते हुए आ ही गये। भगवान शिव को देवर्षि का आना समय शुभ ही प्रतीत हुआ। उन्हें देखकर अभिवादनोपरान्त कुशल क्षेम पूछते हुए बोले—

"देवर्षि! पार्वती की बात सुनिये, तथा इनका कार्य सम्पादन कीजिये।

देवर्षि ठहरे त्रिकालदर्शी, बोले—"भगवन! पार्वतीजी कुछ कहना चाहती हैं, वह मैंने जान लिया, खैर देवगणों का आवाहन करें और 'शिव-निकेतन' निर्माण हेतु शुभ मुहूर्त दिखवा लें, कार्य हो ही जायेगा।"

शिवजी ने देवताओं का आवाहन किया, यह जानकर कि कैलाश पर भूत-भावन शिव बुलाते हैं तो सभी देव अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर आ पहुँचे। अपने स्मरणकर्ता स्मरारि, अनिकेतन, शिव के पास। भगवान ने सभी का स्वागत करके कुशल क्षेम पूछी तदोपरान्त नारदजी ने सभी देवों को सम्बोधन करके कहा—

"माता पार्वती अनिकेतन की पत्नी हैं आप सभी जानते हैं अब इन्हें कष्ट होता है। इनके कष्ट निवारणार्थ एक सुन्दर भवन का होना यहाँ आवश्यक है, अतः ब्रह्माजी सुन्दर मुहूर्त छाँटकर बनावें तो उस भवन की नींव जमे तथा विश्वकर्मा को विष्णु आदेश दें तो अनिकेतन शिव सनिकेतन हो जायँ। तदोपरान्त सभी देवगण मंगलाचरण के उच्चारण घोष के साथ गृह प्रवेश करावें।"

सभी देवताओं ने देवर्षि नारदजी का एकमत से अनुमोदन कर दिया। ब्रह्माजी ने शुभ मुहूर्त निकाल कर दिन और समय निश्चित कर दिया। विष्णु भगवान ने विश्वकर्मा को आदेश दे दिया कि एक अति सुन्दर भवन निर्माण करने का। देखते-देखते एक अति सुन्दर भवन का निर्माण हो गया। गृह प्रवेश के अवसर पर सभी देवगण उपस्थित थे। स्वस्तिवाचन चल रहाा था। पार्वती भी गृह प्रवेश की तैयारी उमंग के साथ कर रही थीं कि अनहोनी बलात हो ही गई, गृह प्रवेश से पूर्व ही यह क्या?

सभी अवाक और विस्मय की दृष्टि से देखते हैं कि भवन; भवन नहीं रहा। खण्डहर हो गया, तुरंत धड़ाम से सभी धाराशायी हो गया।

सभी को यह आश्चर्यप्रद घटना से आन्तरिक दुःख हुआ। सभी ने इस घटना का कारण खोजने का विचार विमर्श किया तो पता लगा कि, "इस घटना में शनिग्रह का हाथ है, जो इस समय यहाँ पर नहीं हैं। अतः शिवजी को चाहिये कि उन्हें प्रसन्न करें, उनसे अपनी वक्र दृष्टि हटाने का अनुराध वहीं जाकर करें।"

पार्वती ने पुनः वीरानवासी अनिकेतन शिव से अनुरोध किया कि, "महाराज! यदि भवन भाग्य में नहीं है तो एक घास फूँस की कुटी ही बनवा लो।"

शिव भोले भंडारी को पुनः हँसी आ गयी। वे अपने गणों को आदेश देकर कि, "एक झोंपड़ी ही बना लें।" चल दिये शनि देव को मनाने, चलने को हुए तो पार्वती ने उन्हें श्रंङ्ग और दिया की नकारात्मक उत्तर मिलते ही इसे बजा दें तो मैं समझ जाऊँगी कि शनिदेव की इच्छा नहीं है। ऐसा जान श्रृंगीनाद्य को लेकर अपने प्रिय वाहन नंदी पर सवार हो शिव-शनिदेव के यहाँ पहुँच गये।

शनि महाराज ने भोले भंडारी भगवान स्थाणु त्रयंवक शिव को देख अपना आसन छोड़ अगवानी की और आगमन का कारण पूछा।

"आपकी दृष्टि मुझ वैरागी के प्रति वक्र है, कृपया इसे सीधी कर लें तो एक झोंपड़ी ही पार्वती के लिये बन जाय, जिससे वह सुखी रह सके।" शिव बोले।

"देवाधिदेव! महादेव! न मेरी दृष्टि वक्र है न मैं इससे स्पर्धा रखता हूँ। आप कहते हैं तो मैं उधर देखूँगा भी नहीं। किन्तु आप ....।" शनि बोले।

"किन्तु शब्द तो लगा दिया और ठिठक गये सो क्या है शनि?" शंकरजी बोले।

"मुझे आप अपना ताण्डव नृत्य सभी अपने गणों के साथ मिलकर दिखा दें तो मुझे संतोष हो जाय। आप डमरू तो बजायेंगे ही साथ ही जो श्रंग हैं उसे भी उच्च स्वर से निनादित करें।" शनि बोले। **"हरि प्रेरित ... मति डोली।"**

आषुतोष शिव सब भूल गये। अपने इष्ट कार्य को और अपने गणों भूत वैताल, चण्डी, कपालिनी को उद्घोष करके बुला लिया और शिव का नृत्य ठन गया। श्रंग वाद्य बजने लगा उच्च स्वर से, और बहुत काल बीत गया, तब कहीं पार्वतीश्वर को पार्वती का ध्यान आया और तुरत ताण्डव बन्द करके चल दिये कैलाश को। वहाँ जाते ही देखते क्या हैं कि पार्वती ने उस सुंदर कुटी को आग के हवाले कर दिया और सब भस्मासात हो गया।

"पार्वती तुमने यह क्या कर दिया, अपने ही हाथों अपने घर को भस्म कर दिया?"

महाराज! आपने ही तो श्रृंग वाद्य को उच्च स्वर से बजाया था जिसे सुनते ही मैंने समझा कि शनि की दृष्टि कुपित है। वह रुष्ट हैं अत: ऐसा निकेतन न जाने कब धोखा दे जाय? अत: अब मैंने भी आपके साथ बिना घर के रहना स्वीकार कर लिया है, पार्वती अन्यमनस्क हो बोलीं।

भगवान शिव को तो वीरान में रहना था, उन्हें महल कब भाते, उनकी इच्छा अनिकेतन की सार्थक ही रही। जो सदैव भक्त भावना भगवान की माया है उसे पार्वती अब समझ पायीं। जो शिव सभी के लिये शिव हैं, वह भवन में कैसे शोभा पावेंगे?

"ऊँ शिव, शिव। ऊँ नमः शिवाय।"



❋ मानस में शिव महिमा ❋

विश्वनाथ शिव-शिव हैं, प्रत्यक्ष कल्याणकारी निखिल ब्रह्माण्डनायक। "कर्त्तुमकर्तुमन्यथाकर्त्तुम् समर्थ:"। संहिताएँ और उपनिषद उन्हीं का गान करते हैं। इतिहास पुराणों में उन्हीं की स्तुति की निबद्ध है। वे निष्कामी और सकामी सभी के ही आधार हैं।

भगवान सूर्यदेव प्रत्यक्ष देवता हैं। प्रात: भुवन-भास्कर वसुस्वरूप, मध्यान्ह में रुद्रास्वरूप तथा सायान्ह में आदित्य स्वरूप से तपते हैं, छान्दोग्योपनिषद में ऐसी चर्चा है।

रुद्र कल्याणकारी हैं। हम उनसे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधि भौतिक इन तीनों तापों की शान्ति हेतु प्रार्थना करते हैं—

"कस्य ते रुद्रमूलयार्कुहस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैवस्यामी नु मा वृषम चक्षमीक्षाः॥" *(भक्त 2 ।33 ।7)*

श्वेताश्वत रोपनिषद में लिखा है कि एक रुद्र के अतिरिक्त चराचर जगत में कुछ भी नहीं है—

"एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तर्स्थुयइमालोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा युवानानि गोपाः॥"

रुद्र 11 माने गये हैं। विभिन्न ग्रन्थों में उनके विभिन्न नाम आये हैं—

(1) "मृगव्याघश्च सर्पश्च निर्कतिश्चः महायशा।
अजैक पादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतपः॥
दहनोऽथेश्वश्चैव कपाली च महाद्युतिः।
स्थार्बुभवश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः॥"

(श्रीमहाभारत आदि0 66 ।2 ।3)

(2) "हरश्च बहुरूपश्च त्रयम्बकश्चापराजितः।
वृषा कपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा॥
मृगव्याघश्च शर्वश्च कपाली च विशांपते।
एकादशैते कथिता रुद्रास्विभुवनेश्वराः॥"

(हरिवंश 1 ।3 ।3 ।51-52)

(3) "मन्युर्महिनसो महाच्छिव ऋतध्वजः।
उग्ररेता भवःकालो वामदेवों घ्नतव्रता॥" *(भागवत 3 ।12 ।12)*

(4) "अजेकपादहिर्बुध्न्य विरूपाक्षोरथ रैवतः।
हरश्च बहुरूपश्च त्रयम्बकश्च सुरेश्वरः॥
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः।
एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः॥"

(मत्स्यपुराण 5 ।29 ।30)

(5) "कपाली पिंगलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजकः शाशनः शस्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा॥"

(स्कन्दपुराण कुमारिका अध्याय 3)

इस प्रसंग पर यह स्मरर्णह है कि श्री विष्णु पुराण के प्रथम अंश के आठों अध्याय में रुद्रीत्पत्ति पर केवल 8 ही नामों का स्मरण किया गया है। श्रीकृष्ण भगवान ने गीता 10 ।23 में स्वीकार किया है।" **रुद्राणां शङ्करश्चास्मि**

रुद्रों में मैं शंकर हूँ। शंकर अर्थात् मंगलकारी, कल्याणकारी। शंकर त्रिशूल पाणि मंगल देते हैं। कल्याण के इच्छुक जन उन्हीं की आराधना करते हैं। इन्हीं

मंगलकारी भगवान की परम-पावन महिमा गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्री रामचरित मानस में स्थान-स्थान पर प्रत्येक काण्ड में गाई है, उनसे मंगल की याचना की है, काण्डात्मक विवरण-

(1) बालकाण्ड—मंगलाचरण का दूसरा श्लोक-

"भवानी शंकरौ बन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पस्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरं॥"

जगज्जननी उमा श्रद्धा हैं। गजा जिनधारी पंचानन शिव विश्वास रूप हैं। उनका दाम्पत्य संबंध कितना दिव्य है। पुरुष पत्नी के प्रति विश्वास करे, पत्नी पुरुष पर श्रद्धा रखे तो विश्व की एक भारी समस्या पति-पत्नी का कलह समूल नष्ट हो जाये। फिर तो सर्वत्र आनंद की गंगा बह उठे। उपनिषद् स्तवन कर रहे हैं-

"रुद्रो नर उमानारी तस्यै नमोनमः। मंगलाचरण का दूसरा सोरठा है-

"कुंद इन्दु समदेह, उमा रमन करुनायतन।
जाहि दीन परनेह, करहु कृपामर्दन मयन॥"

गोस्वामी जी आर्त होकर दीन गरीब की दोहाई देकर कृपा की याचना कर रहे हैं। आगे नाना चौपाइयों से उन्होंने कैलाशपति की स्तुति की है मानस प्रसंग उपस्थित करने से पूर्व भी वे चिताभस्मधारी का स्मरण कर रहे हैं-

"जस मानस जेहि विधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अवसोइ कहहुँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु॥"

यही नहीं आगे वे पुनः भवानी शंकर का स्मरण कर रहे हैं-

"मति अनुहारि सुवारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी शंकरहिं, कह कवि कथा सुहाइ॥"

यहाँ तक गोस्वामी जी का आत्म निवेदन हुआ। अब वे उमा-रमण का चरित्र गा रहे हैं। याज्ञवल्क्य, भरद्वाज संवादानान्तार सती चरित्र प्रस्तुत किया। पार्वती का अवतार तथा तपस्या और फिर मार दहन हुआ। महामंगलप्रद शिव-पार्वती की विवाह की कथा गायी। अन्त में महामाया ने चन्द्रमौलि से रामावतार विषयक जैसी-जैसी अपनी शंकाएँ प्रस्तुत कीं, गोस्वामी जी ने यथोचित रूप से लिखीं। श्रीराम कथा वर्णन करने से पूर्व शिवाशिवचरित का गायन भद्र तथा शुभ्र ही समझा गया है। शम्भु की महिमा सर्वत्र ही गरिमा लाई है। देवर्षि नारद की उक्ति कितनी पवित्र है-

"वरदायक प्रनतारित भंजन। कृपासिंधु सेवक जन रंजन।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे॥
दुराराध्य पै अहहिं महेशू। आषुतोष पुनि किये कलेशू॥"

उनका स्वरूप वरेण्य है-

"चिदानन्त सुखधाम शिव, विगत मोहमद काम।
विचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकल लोक अभिराम॥"

पुष्प वाटिका का प्रसंग चल रहा है। श्रीरामजी की दिव्य छटा देख भगवती जानकी उनको पति रूप से प्राप्त करने हेतु गजबदन षटाानन माता का आशीर्वाद चाहती हैं। आदि शक्ति के प्रति कवि की भी यही अर्चना है। श्रीराम शिव धनु भंजन करने जा रहे हैं। जनकपुर वासियों ने पितरों तथा देवताओं का स्मरण कर गणेश गोसाईं की वंदना की—

"तौ सिव धनु मृनाल की नाई। तोरहु राम गनेस गोसाई॥"

आगे मिथलेश किशोरी भी शिवधनु की गरुता हरने के लिये महेश भवानी तथा गननायक वरदायक देवा हरस्य से प्रसन्न होने के लिये याचना करती हैं—

"....। होहु प्रसन्न महेश भवानी।
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥
गननायक वर दायक देवा। आजु लगे कीन्हिं तुअ सेवा॥
वार स्वार विनती सुन मेरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥"

मिथिलेश की पाती पाकर कौशल नरेश विवाह सजाकर जा रहे हैं। रथ पर चढ़ने से पूर्व उन्होंने हर गुरु गौरी गनेसु का स्मरण किया—

"तेहि रथ रुचिर वशिष्ठ कहुँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आप चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुरु गौरि गनेसु॥"

व्याह की भव्यता देखकर जनकपुर वासिायें ने श्रीराम-सीता तथा मिथिलेश कौशलेश की प्रशंसा की—

"इन्ह सम काहुन शिव अवराधे। काहुन इन समान फल लाधे॥"

जनकपुर की स्त्रियाँ चारों भाइयों की सुन्दरता पर मुग्ध हो त्रिपुरारी से प्रार्थना करती हैं कि इसी नगर में चारों भाइयों का विवाह हो—

"कहहिं परस्पर नारि, वारि विलोचन पुलक तन।
सखि सब करब पुरारि, पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥"

बरात लौट आई, कौशल्यादि रानियों ने आनन्द से गनेश पुरारि की अर्चना की—

"दिये दान विप्रन विपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥"

पुरप्रवेश के पहले गजराज, शम्भु, गिरिजा का पूजन कौशल नरेश ने किया—

"....पुरप्रवेश रघुकुलमनि कीन्हा। सुमिरि संभु गिरिजा गन राजा।

कौशल्यानन्दन घन श्रीराम सोने के पूर्व कपाली का स्मरण कर रहे हैं—

"राम प्रतोषी मातु सब, कहि विनीत मृदु बैंन।
सुमिरि संभु गुरु विप्र पद, किये नीद वस नैंन॥"

(2) अयोध्या काण्ड-काण्ड के प्रारम्भ में ही मंगलाचरण का प्रथम श्लोक-

"यस्याङ्के च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके,
भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा,
सर्वः सर्वगतः शिवः शशि निभः श्री शंकरः पातुमाम्॥"

अयोध्याकाण्ड समस्यात्मक स्थल है, बड़ी-बड़ी दुःखद घटनाएँ घटी हैं। सभी रो रहे हैं, पुरवासी, परिजन, गुरुजन, राजपरिवार, महारानियाँ, चारों भइया। यहीं कौशलेन्द्र अजनन्दन का देहावसान हो रहा है। भरत पर लांछन लग रहे हैं, उनके चरित पर शंका कर रहे हैं, निषादराज गुह और लखन लाल जी तो पूरी तरह से निबटने के लिये तैयार हो गये। श्रीरामजी कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे-**"कारन कवन भरत आगानू।"**

ऐसी-ऐसी रोमांचकारी घटनाओं का यथावत् शुभप्रद वर्णन करने की क्षमता पाने के लिये गोस्वामी जी भूतभावन शंकर से कहते हैं, "पातुमाम्" रक्षा करो। वे ही चन्द्रशेखर जिनने सबको अपने में आश्रय दिया, उमा को, भागीरथी को, शशांक को और हलाहल विष को भी। इतना अलम् ही नहीं भयंकर जहरीली पन्नगराज भी उनकी शोभा बढ़ाने लगे। वे ही विश्वमूर्ति अवधपुरी की तथा कवि की रक्षा करें।

महेश तो सबकी कामना पूरी करते हैं-

"सबके उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु॥"

काकुत्स्य कुल भूषण राजा दशरथजी अपने जीवन में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द शिव की कृपा से ही समझ रहे हैं। वे कहते हैं गुरु वशिष्ठ से-**"प्रभु प्रसाद सिव सबइ निवाही॥"**

राम वनवासी हो गये। शेषावतार लक्ष्मण तथा भूमिजा के साथ गंगा पार किया। बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उन्होंने पार्थिव पूजन किया-**"तव मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥"**

त्रिवेणी के पुनीत तट पर पहुँच कर प्रभु ने आह्निक क्रियाएँ भलीभाँति सम्पादित कीं-शिवार्चन किया-**"मुदित नहाय कीन्ह शिव सेवा। पूजि जथा विधि तीरथ देवा॥"**

श्रीराम लक्ष्मण महामाया के साथ विपिनचारी हो गये। राउ दशरथ सुरपुरवासी हुए। माताएँ बिलख रही हैं। सारी अयोध्या अनाथ हो गयी। दोनों भैया भरत और शत्रुघ्न ननिहाल में हैं पर-**"देखहिं रात भयानक सपना।"** तरह-तरह के दुःस्वप्न दुःशकुन नित्यप्रति देख रहे हैं, शान्ति के लिये शिवाभिषेक करते हैं-**"....शिव अभिषेक करहिं विधि नाना। माँगहिं हृदय महेश मनाई। कुशल मातु पितु परिजन भाई॥"**

शुभाशुभ कर्म के नियामक शंकरजी हैं, सबके अपने-अपने कर्म का फल उन्हीं से मिलता है। वे ही दण्डाधिकारी हैं, विविध शपथ कर भरत कहते हैं—"**तिन्ह की गति मोहिं शंकर देऊ॥**"

दुःस्वप्न की शान्ति के लिये रुद्राभिषेक से बढ़कर क्या हो सकता है, प्रभु भी उसी का आश्रय ले रहे हैं—

"**अस कहि बन्धु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥**"

शारंगपाणि श्रीराम के तो दूसरी गति ही नहीं पुरारि के अतिरिक्त। वे परम शैव हैं, अपने कथन के प्रमाण में शिव को ही साक्षी देते हैं। शिव सर्वज्ञ व्यापक हैं, अष्टमूर्ति हैं—"**कहहुँ सुभाव सत्यशिव साक्षी॥**"

शिव अष्टपूर्ति का प्रमाण—

"**सूर्योऽग्निः रवं मरुग्दावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः।**
कंकुः कालो धर्मेति ह्येते देहस्य साक्षिणः। *(श्रीमद्भागवत 6/1/42)*

मनोरथ की पूर्ति के लिये कामारि ही एक आश्रय है-सभी शिवार्चन कर रहे हैं—

"**करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी॥**"

(3) अरण्यकाण्ड—यहाँ गोस्वामी जी पुनः मंगलाचरण में वंदना कर रहे हैं-

"**मूलं धर्म तरो विवेक जलधे पूर्णेन्दुमानन्ददं,**
वैराग्याम्बुज भास्करं ह्यघघन ध्वान्तापहं तापहम्॥
मोहाम्भोधर पूगपाटनविधौ स्वसम्भवं शंकरं,
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंक शमनं श्रीराम भूपप्रियम्॥"

इस काण्ड से आगे गोस्वामीजी भगवान शंकर का सच्चिदानंद घन मयध्यान कर रहे हैं वे धर्म विवेक, आनन्द और वैराग्य के प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। अघ, ताप और मोह के छेदन में वे दक्ष हैं। राजाराम उनके आराध्य हैं। वे सबके कलंक लांछन को निर्मूल भस्मसात करते हैं। कवि सौम्य रूप से यहाँ शिव की वंदना कर रहे हैं। आषुतोष का जो ध्यान यहाँ प्रस्तुत हुआ है, वह काण्ड की कथा का उद्‌घाटन कर रहा है। कौशलेश धर्म पर आरुढ़ हैं। वे वैराग्य मूर्ति हैं। मारीच का आर्त नाद सुनकर जनकतनया ने अपनी रक्षा से सौमित्र को हटाकर कलंक ही लगवाया। रावण का तो धर्म, विवेक, आनन्द, एक साथ ही भस्म हो गया।

(4) किष्किंधा काण्ड—आरम्भ में दो सोरठों द्वारा गोस्वामीजी ने काशी तथा शंकर को स्मरण किया—

"**मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानि कर।**
जहँ बस सम्भु भवानि, सो काशी सेइअ कस न॥
जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मति मन्द, को कृपाल शंकर सरिस॥"

काशी में तीन विशेषताएँ हैं—(1) मुक्ति देती है, (2) ज्ञान का प्रकाश दिखाकर पापपुञ्ज क्षार-क्षार करती है, (3) हर-गौरी का निवास है। विश्व से वाराणसी में ज्योतिर्लिङ्ग रूप से रहते हैं। फिर शशांक भूषण तो बड़े दयालु हैं। उन्होंने अमरों की रक्षा की। भयंकर हलाहल भी पी लिया। वे ही अशरण-शरण एकमात्र ध्येय तथा पूज्य हैं।

(5) सुन्दरकाण्ड—इस काण्ड में रुद्रावतारी हनुमान का स्मरण बड़ी श्रद्धा से किया है-श्री शिवपुराण के शतरुद्र संहिता, अध्याय 20 में श्री हनुमदावतार वर्णन है। श्रीवाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड अध्याय 50 में यह वर्णन है कि जब दशानन से मारुति नंन्दन का प्रथम साक्षात्कार हुआ तब रावण को नन्दीश्वर की सुधि आ गयी—

"किमेष भगवान्नदी भवेत् साक्षादिहागतः" लंका दहन पर तो रावण को कहना पड़ा—

"तुष्ट पिनाकी दशभि शिरोभि तुष्टो न चैकादशमो हि रुद्रः।
अतो हनुमान् दहतीति कोपात् पङ्तेर्हि भेदो न पुनः शिवाय॥"

(हनुमानाष्टक 6 ।27)

उनके पावन उदात्त चरित्रों से सम्पूर्ण काण्ड ओत-प्रेत है। विश्वनाथ ने हनुमदावतार से जानकी तथा भगवान श्री राघवेन्द्र सरकार दोनों के दुःख मोचन में दिव्य, अलौकिक सहायता की। श्रीशिव की सुन्दर कथा से गुम्फित यह सुन्दरकाण्ड अपना नाम सार्थक कर रहा है।

(6) लंकाकाण्ड—"वाराणस्यां तु विश्वेश" का गान गाकर **"सेतुबन्धे तु रामेश"** का प्रसंग आया। कवि ने मुक्त कंठ से उद्घोष किया—

"शंङ्खेन्द्वाभामतीव सुन्दर तनु शार्दूलचर्माम्बरं,
काल व्याल कराल भूषणधरं गङ्गा शशाङ्क प्रियम्।
काशीशं कलि कल्म षौघ शमनं कल्याण कल्पद्रुमं,
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुण निधिं कन्दर्पहं शंकरम्॥"

पशुपति तो ऐसे हैं हीं। सारा संसार उन्हीं से ओतप्रोत है। उन्हीं में समाया है, कितना सौम्यस्वरूप है, सभी कल्याण के दाता। वे कामधेनु हैं न। आगे प्रभु कह रहे हैं, **"करिहौं यहाँ सम्भुथापना।"**

और ज्योतिर्लिङ्ग रामेश्वर बाण प्रतिष्ठा होती है। विदेश में शिवपूजा के प्रचार का श्रीगणेश होता—**"लिंग थापि विधिवत करि पूजा"** प्रभु शिवार्चन की विधि पूजा का फल तथा हरि हर स्वरूप की एकता प्रतिपादित करते हैं। शत्रु का नाश, अभीष्ट की प्राप्ति में, चन्द्रशेखर की कृपा परमावश्यक है धन्य ओढ़रदानी।

(7) उत्तरकाण्ड—यह रामचरितमानस का अन्तिम भाग है। सब अभीष्ट

सिद्ध हो गया। अवधवासियों की लालसा नयनगोचर हो रही है, गोस्वामीजी प्रार्थना कर रहे हैं—

"कुन्द इन्दु दर गौर सुन्दरम् अम्बिका पतिमभीष्ट सिद्धिदम्।
कारुणीक कलकंन्ज लोचनम् नौमि शंकर मनंग मोचनम्॥"

महा कारुणिक को नमस्कार है त्रयम्बक त्रिलोचन मृत्युन्जय नमस्ते-नमस्ते। गोस्वामी जी ने अपने आपको समर्पित कर दिया श्री चरणों पर। त्रिलोचन उनसे भला क्या अज्ञात है। यह है पूर्ण समर्पण।

बहुत आगे कागभुसुण्डि द्वारा महाकाल ज्योतिर्लिङ्ग (उज्जयिन्या महाकालम) का उल्लेख हुआ है विप्रावमान से दुःखित हो गये महारुद्र, तुष्टि के लिये—**"नमामीशमीशानादि"** का गायन हुआ और आषुतोष ने अपना कोप संवरण किया।

यह रहा काण्डात्मक शिव स्मरण। सकामी, निष्कामी, आर्त, ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी सभी ने उनके द्वार खटखटाये। भव की कृपा से भवतापों से मुक्ति पायी। देवर्षि के लिये भी रमानिवास ने यही निर्देश किया था—**"जपहु जाइ शंकर सत नामा।"**

उन जलधारा प्रिय शिव को कोटि कोटि नमन।

(मानसमणि अप्रैल 1967 से ले० श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र)

❋ शंकर की कृपा ❋

"जिनके दिगम्बर विराजता है अद्वितीय,
भूषित-विभूति-वर्ण सुन्दर कपूर से।
बायीं ओर जिनके हैं गिरिजा विराजमान,
काल कूट पीते फल खाते जो धतूर से॥
अंग-अंग लिपटे भुजंग जटाजूट मध्य,
गंग की तरंगें लहरातीं अति दूर से।
ऐसे शिवशंकर-कृपा की एक कोर मुझे,
कोटि गुना कीमती है कोटि 'कोहेनूर' से॥
(जै श्री शिव शंकर)

□ ❖ □

❋ भगवान शिव का भजन व्यर्थ नहीं जायगा ❋

(जगद्गुरु भगवान श्री शंकराचार्य का मंगलमय उपदेश)

भगवान में विश्वास की बहुत आवश्यकता है। आजकल तर्क-वितर्क के कारण लोगों का भगवान शिव में विश्वास नहीं रह गया है। रही बात प्रत्यक्ष-वादियों

की जो यह कहते हैं कि हम तो अंधविश्वास नहीं करते। प्रत्यक्ष को ही मानते हैं। उनसे पूछा जाय कि क्या पहले पुत्र को खिलाकर कोई विवाह करता है या पहले मुनाफा मिल जाय फिर रोजगार करेंगे, ऐसा कोई कहता है ।

संसार का सब काम विश्वास पर ही चलता है। पहले यह विश्वास हो जाता है कि मुनाफा होगा, तभी से लोग रोजगार करते हैं। विवाह करने से पुत्र उत्पन्न होगा, इसी आशा पर तो विवाह करते हैं। विवाह करने पर भी गर्भाधान संस्कार के बाद नौ मास तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। स्कूल में जाते हो तो अध्यापक ए, बी, सी, डी या क ख ग जो भी वैसा वह बतलाता है, वैसा ही मान लेते हो। वहाँ पर क्यों नहीं तर्क-वितर्क करते कि हम इसे नहीं मानते। क्या प्रमाण है कि यह ए बी सी डी है। उस समय तो मास्टर का वाक्य ही प्रमाण रहता है। तो यह अंध विश्वास नहीं तो और क्या है। मास्टर की बात में अंधविश्वास नहीं करते तो पंडित कैसे बनते? यह अंध विश्वास का ही फल है कि आज कमाने लायक हो गये, तो जिस बात में अधविश्वास किया उसमें सफल हुए परंतु जिस स्कूल में अभी नाम भी नहीं लिखाया उसकी बात ही क्या? पहले तो विश्वास ही करना पड़ता है, कार्य की सिद्धि तो बाद में होती है।

परमात्मा पर विश्वास तो तभी तक करना है जब तक भगवान का साक्षात्कार नहीं हो जाता, भगवान का साक्षात्कार जब हो गया तब तो देह-गेह विसरण हो ही जायेगा, फिर तो विश्वास करने की कोई बात ही नहीं होगी। शास्त्र और गुरु सद्गुरु में विश्वास करना चाहिए। सद्गुरुओं के बताये हुए मार्ग पर विश्वास करके चलोगे, तभी ईश्वर मिलेगा। यदि प्रमादवश वेद शास्त्र में अविश्वास कर लिया तो भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आप यदि स्वतंत्र होना चाहते हो तो परम स्वतंत्र परमात्मा शिव की आराधना करो, उपनिषद का ववाक्य है **"सोऽक्षर परमं स्वराट।"** वह जो अक्षर ब्रह्म है वही परम स्वतंत्र है।

"ए्को देवा सर्व भूतेषु गुढ़ः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणस्च॥"

अर्थात् एक ही परमात्मा है जो सब प्राणियों में गूढ़ अर्थात् छिपा हुआ है जैसे तिल में तेल, दुग्ध में घृत, जब तक दुग्ध में घृत छिपा हुआ है तब तक इससे घृत का काम नहीं ले सकते। दुग्ध में कोई पूड़ी बनाकर नहीं खा सकता, यद्यपि घृत उसी दुग्ध में है। जब तक उसका मंथन करके घृत बाहर न निकाला जाय तब तक दुग्ध में घृत होते हुए भी वह हमारे किसी काम का नहीं। उससे हमारा कल्याण नहीं हो सकता। जब तक उसको प्रकट कर लिया जाय। अनुभव घृत का तभी होगा, जब उसका मंथन करोगे, उसी तरह परमात्मा का अनुभव भी तभी होगा जब उनकी

उपासना करोगे। केवल यही सोच लेने से कि दुग्ध में तो घृत है ही, घृत को प्राप्त नहीं कर सकते।

भगवान को सर्वव्यापक मान लेने मात्र से कोई लाभ नहीं, उनको प्राप्त करना है तो उनका मंथन करो, ध्यान, पूजा पाठ करो।

"सर्व भूतान्तरात्मा" परमात्मा सबका अन्तरात्मा है, वह सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है, परमात्मा का उद्घाटन हृदय में ही होता है।

"कर्माध्यक्ष सर्व भूताधिवास" परमात्मा समस्त भूत प्राणियों के कर्मों का अध्यक्ष है, अर्थात् वह सबके शुभाशुभ कर्मों का हिसाब रखता है। अनन्त जीव हैं, उनके अनंत कर्म हैं। उन सबके कर्मों का हिसाब रखना परमात्मा का ही काम है, और वह सम्पूर्ण प्राणों का आश्रम है अर्थात् सभी प्राणी परमात्मा में ही वास करते हैं, परमात्मा से अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

'साक्षी' = वह सबके शुभाशुभ कर्मों का साक्षी है, चेता भगवान चैतन्य हैं तथा वह निर्गुण स्वरूप हैं केवलो निर्गुणश्च, निर्गुण का अर्थ है सम्पूर्ण गुणों से भरा हुआ है पर वह गुणों के अधीन नहीं है।

परमात्मा तो सर्व व्यापक है, परन्तु बिना प्रक्रिया के ज्ञान से काम करे, जीव अल्पज्ञ है, वह अपने भेद को नहीं जानता। जिस क्लाश में जो पढ़ता है वह उस क्लाश की बातों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, जब वह आगे की क्लाश में आता है तब पिछली क्लाश की बातों को समझता है, आगे क्लाश में जाकर ही पिछली बातों का पता लग सकता है।

संसार तो प्रेम का पात्र है ही नहीं। प्रेम तो परमात्मा से ही करना चाहिए। संसार में ऐसी भावना रखे जैसे मदारी का रुपया, मदारी के बनाए हुए रुपयों में सत्यता नहीं होती, यदि वह सत्य होता तो दो-चार पैसे के लिये आपके सामने हाथ क्यों फैलाता। इस प्रकार यह सारा जगत मदारी के रुपये के समान मिथ्या है, इसमें सत्यता नहीं, सत्यता तो परमात्मा में ही है। इसलिये संसार में फँसकर सत वस्तु अर्थात् भगवान को प्राप्त करने का प्रयत्न करो। परन्तु भगवान को पाने के लिये पहले दीन बनो, इस दीनता के साथ विश्वास भी होना चाहिए।

भगवान पर विश्वास करके निरंतर उसकी उपासना में लगे रहे तो एक दिन भगवान करुणानिधान, दयामय, भक्तवत्सल अवश्य अपनायेंगे। परन्तु धैर्य रखकर उपासना में तत्पर रहने की आवश्यकता है। ऐसा नहीं कि 10-20 दिन या दो-चार महीने कुछ जप किया, फिर छोड़ दिया। भगवान का भजन व्यर्थ नहीं जायेगा, उपासना का बीज पड़ गया तो वह कभी न कभी अवश्य उपजेगा और फल भी लगेगा। न जाने कितने जन्म-जन्मान्तरों के पाप इकट्ठे हैं। यही हमें भगवान के पास पहुँचने में प्रति बन्धक हैं। भगवान का भजन करते-करते जब बुद्धि शुद्ध हो जायेगी

तो परमात्मा का अनुभव होने लगेगा।

इस मानव तन को देवता ललचाते हैं, केवल भारतभूमि ही कर्मभूमि है बाकी सब भोग भूमि, स्वर्ग भी भोगभूमि है, मानव यहाँ साधन कर्म करके भगवान को प्राप्त कर सकता है, इन मानव तन को **"सुददुर्लभ सद्ग्रन्थन्ह गावा"** उनके लिये दुर्लभ है, जैसे एक राजा ने अपने राज्य में घोषणा दान की कर दी। सुनकर तमाम भीड़ इकट्ठी हो गई, पर दान में दो ही वस्तुएँ रखी गईं, लोहा एवं चाँदी। तो लोग चाँदी पर झपट पड़े, ले गये, वह समाप्त हो गई तो बहुतों को लोहा पर ही संतोष करना पड़ा। जब लोहे लेने वाले जाने लगे तो राजा ने उन्हें बुलाया, उन्होंने सोचा कि चाँदी वाले तो बुलाए नहीं, हम क्यों बुलाये जा रहे हैं? राजा के पास पारसमणि थी तो उन लोहा लेने वालों के लोहा से पारस का स्पर्श करा दिया, तुरंत सब सोना हो गया, अब चाँदी वालों को इससे बड़ा दुःख पहुँचा। अतः कहने का भाव यह है कि मनुष्य को सद्गुरु रूपी पारस के मिलते ही वह पद मिल जाता है जो स्वर्ग आदि से बहुत आगे है स्वर्ग आदि उसके लिये तुच्छ है अतः मनुष्य अल्पज्ञ होते हुए भी लोहे के समान, देवता चाँदी के समान, चाँदी को पारस से स्पर्श कितना भी करायें सोना नहीं होगी। अतः देवता चाँदी होते मदद तो मनुष्य की करते हैं परंतु अभीष्ट पद तक नहीं पहुँचा सकते। यह मानव ही सद्गुरु के वचनों पर विश्वास करके भजन के द्वारा ही परम पदको प्राप्त कर सकता है। *(श्री शंकराचार्य उपदेशामृत मई-जून 1963 से)*

❋ शिव ❋

(मानव की दशों इन्द्रियाँ एवं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीवात्मा का साफल्य शिव चरणों में लीन होना)

दोहा—मानस तन की जागीर, सदपयोग करे तहरीर।
तेहि मिटावे शिवही पीर, पहुँच भव सिंधु तीर॥

श्लोक— "सर्वगं सर्व कर्तारं सर्वं सर्वाव भासकम्।
सर्वावलम्बनं शान्तं शिवं पूर्ण भजाम्यहम्॥
बिना यस्य कृपां नैव जीवानां मोक्ष सम्भवः।
कथं तं शङ्करं त्यक्त्वा देहं मोहमयं भजे॥"

(1) हे मेरी प्यारी वाणी! क्या अब भी बनी रहेगी अयानी? अब तो हे सुभगे! बन जा सयानी! त्याग दे विषय-भोगों की विषमयी कहानी।

गाना आरम्भ कर दे शिव की सुधामयी कथा सुहानी। जब तक तू जगत के गीत गाती रहेगी तब तक तुझे स्वप्न में भी शान्ति नहीं मिलेगी! पंच्च फैसला करना छोड़ दे, तर्क, वितर्क करती हुई बाल की खाल कब तक खींचा करेगी? जितना

बकवाद करेगी, उतनी ही दुःखी होगी, सुखी कभी नहीं होगी। सुखी तो शिव का गान करने से ही होगी। बेकन, स्पेन्सर की फिलॉसफी पढ़ने से विक्षेप के सिवाय अन्य कुछ हाथ नहीं लगेगा, कल्याण तो शिव-ग्रन्थों के अध्ययन करने से ही होगा।

क्या तूने नहीं पढ़ा है कि देवर्षि नारद वेद-वेदाङ्ग, इतिहास-पुराण आदि बहुत से ग्रन्थ पढ़ चुके थे, और समस्त विद्याओं में कुशल थे, फिर भी उनको लेशमात्र भी शान्ति प्राप्त न हुई! उल्टे अशान्ति बढ़ गई। जब उन्होंने भगवान सनत्कुमार से शिव-तत्व का उपदेश लेकर भूमारूप शिव को भजा, तभी उनको शान्ति प्राप्त हुई।

इसलिये हे वाणी! अब अन्य सब कथाएँ छोड़कर शिव-कथा पढ़ने का अभ्यास कर। सब मन्त्रों का त्याग करके शिव-मन्त्र का निरंतर प्रेम-पूर्वक आदर-सत्कार सहित जप किया कर। शिव-भक्तों के पावन चरित्र पढ़ाकर। सब प्रकार के गीतों को तिलांजलि देकर शिव के ही गीत गाया कर। यही कल्याण का मार्ग है, इसके सिवा अन्य कल्याण का मार्ग नहीं है।

जो शिव को भजते हैं, वे निश्चय शिव को ही प्राप्त होते हैं और जो शवरूप संसार को भजते हैं, वे अन्ध कूप संसार में करोड़ों जन्मों तक पड़े हुए अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। इसमें श्रुति, स्मृति, युक्ति और विद्वानों का अनुभव प्रमाण है। इसलिये हे वाणी! विषय-भोगों का नाम लेना तज दे और कल्याण रूप शिव को भज ले। शिव का नाम लेने में खर्च कुछ नहीं है, परिश्रम भी कुछ नहीं है, सहायता की भी आवश्यकता नहीं है, विशेष बुद्धि भी नहीं चाहिये, जीभ हिलाने का काम है। चिल्लाकर जप, धीरे-धीरे जप, बहुत ही धीरे जप, अथवा जीभ भी मत हिला, भीतर ही भीतर जप। सब प्रकार से सुलभ है, लाभ अक्षय है, सब दुःख दूर हो जायेंगे, समस्त चिंताएँ कर्पूर हो जायेंगी। अद्भुत आनन्द आयेगा, देह तक की भी सुधि ना रहेगी, आनन्द सागर में मग्न हो जायेगी। इसलिये हे वाणी! शिव-शिव कहती हुई शिव में ही लीन हो जा।

किसी कवि ने इसके लिये बड़ा सुन्दर सवैया लिख है-जिभ्या के विषय में-

सवैया— **"भारती जुक्त भली विधि भाषत, देह के गेह के द्वार थली तू।**
पैं जगदीश जपे बिनु सालग, नाहक नांगिन सी निकली तू॥
ना उथली शिव नाम को लेन, न क्यों रसना बिजली ते जली तू।
शिव गुणावली गाये बिना, गुणहीन गँवारिन क्यों न गली तू॥"

(2) हे प्यारे हाथ! अब तक तू लम्बे चौड़े हाथ मारता रहा, पर कुछ भी तेरे हाथ न आया। कोयलों की दलाली में हाथ काले ही हुऐ, अन्य कुछ स्वार्थ सिद्ध न हुआ। अब तू किसी को हाथ मत जोड़, अपने प्यारे शिव पै ही सब छोड़, उन्हीं को ही हाथ जोड़, और सबसे नाता तोड़, सब कलिमलिताओं को मरोड़, किसी के सामने हाथ मत फैला, शिव के सामने ही फैला, भरपूर कर देंगे तेरा थैला, किसी का पूजन

मत कर, शिव का ही पूजन कर। बहुत चित्र खींच चुका, मिला कुछ नहीं, हाथ ही मलने पड़े, शिव का चित्र खींचता तो लोक-परलोक दोनों सुधर जाते।

रेखागणित देखकर अब तक रेखाएँ ही खींचता रहा, उस बिन्दु को तूने आज तक नहीं जाना, जिस पर वस्तुत: प्रकाल की नोंक टिकती है, उस बिन्दु में से श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य ये तीन रेखाएँ निकलती हैं, जिस शिवरूप बिन्दु में से समस्त रेखाएँ प्रकट होती हैं, उन्हीं शाश्वत शिव की प्रतिमा बनाकर अब तू पूज, तभी तेरा कल्याण होना सम्भव है, नहीं तो संसार-चक्र में घूमता हुआ बारम्बार यमराज का ग्रास ही होता रहेगा। शान्ति कभी नहीं पायेगा, शान्ति तो शिवलिंग के पूजन से ही होगी।

शैव-तन्त्रों में स्थल-स्थल पर मणि, सुवर्णादि का शिव-लिङ्ग बनाने का आदेश है, फिर भी मिट्टी के लिङ्ग का ही सबसे अधिक महात्म्य है, इसलिये मृणमय लिङ्ग ही तुझे बनाना चाहिए। जिस अलौकिक मिट्टी से ब्रह्मा से लेकर स्थावर जंगम सभी आकृतियाँ कल्पना मात्र से बनायी गई हैं, शैवलोग उसी अद्‌भुत मिट्टी के बने हुए शिवलिंग का पूजन करते हैं जिस सत्य रूप त्रिकाल वाधित शिव रूप मृत्तिका में से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड शरावों के समान बने हुए हैं, जिस मृत्तिका का **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"** इत्यादि श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, उसी मृत्तिका का शिव-लिङ्ग बनाकर **'शिव-शिव-शिव'** करता हुआ, शिव का आलिंगन करता हुआ शिव में ही लीन होजा।

(3) हे प्यारे पैर! तेरी अन्य कहूँ ना खैर! बहुत पैर फैलाये, अब तो मत फैला, बहुत उछला, कूदा, फाँदाँ, घूमा, दौड़ा। अब उछलना, कूदना, फाँदना और घूमना छोड़ दे, और इनको शिव की ओर मोड़ दे। दौड़ धूप करने में सिवा हानि के लाभ कुछ भी नहीं है, चलना-फिरना क्या है? पैर तोड़ना ही है। वे ही अधिकारी धन्य हैं जो कैलाश मन्दिर में जा पहुँचे हैं। वे ही सुकृति प्रशंसनीय हैं जो कैलाश पावन मन्दिर में शिव के साथ निवास करते हैं। बाबा तुलसीदास भी मानस में यही कह रहे हैं **"चरन शिवहिं तीरथ चलि जाहाँ"**। उन्हीं का जन्म सफल है, जिनका घर कैलाश है, जो स्वयं प्रकाश हैं, स्वयं ज्योति हैं और स्वयं सिद्ध हैं, जिन्होंने उस धाम को नहीं देखा, नहीं सुना और जो वहाँ जाने का यत्न भी नहीं करते, उनका जन्म निष्फल है, भार रूप है, माता को उन्होंने व्यर्थ ही कष्ट दिया है।

मनुष्य जन्म का यही लाभ है कि, कैलाश की यात्रा करे, वहाँ की सैर करे, कैलाशवासी के दर्शन करे। वेद-वेदान्तों का कथन है कि रुद्र नामक परमात्मा सदा ही कैलाश में अर्थात् अखण्ड एकरस आत्मा में विलास करते हैं, उनके भक्त भी सदा ही उसी कैवल्य को प्राप्त होकर स्वयं प्रकाश हो जाते हैं। इस प्रकार सदाँ ही कैवल्य का विलास बना रहने से सकल जगत को सुख देने वाले शम्भु का वासस्थान, सदा ही कैलाश के समान स्वयं प्रकाशमान बना रहता है और अनन्त कोटि भक्तों

की भीड़ हो जाने पर भी वहाँ का कैवल्य नष्ट नहीं होता।

हे पैर ! यदि तू सदाँ के लिये सुखी एवं स्वतंत्र होना चाहता है, तो उसी कैलाश की यात्रा कर, उस स्थल पर पैर धर और अपने कष्टों को हर। वहाँ ही जा पहुँच और "शिव-शिव-शिव" कहता हुआ वहीं सर्वदा के लिये ठहर जा। वहाँ ठहरने से ही तेरा चलना समाप्त होगा।" कोस का चलना भी बुरा है, यह विद्वानों का वचन है, जब तक चलता रहेगा। पैर थकाता और दबवाता ही रहेगा, इसलिये पैर थकना और दबवाना अब छोड़ दे और कैलाश को ही अपना नित्य घर बना ले, वहीं पैर फैलाकर सदा के लिये सो जा।

(4) हे भाई कान ! अब तो छोड़ दे अज्ञान, बन जा सुजान, सद्गुरु की आज्ञा मान। सुदुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर भी और संत-महात्माओं का संग करके भी यदि तू विषय भोगों की मर-कथा ही सुनता रहा और शिव-पार्वती की अमर-कथा नहीं सुनी, तब तो तू बहरा ही अच्छा था। संसारियों की दन्त कथा सुनकर संसार अन्ध कूप में तो नहीं पड़ता। वृद्ध पुरुषों का कथन है कि—बाबा गुसाईं का वचन है—**"जिन्ह हर कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रन्ध्र अहि भवन समाना ॥"** जिस कान ने शिव की अमर कथा नहीं सुनी, वह कान भूत-प्रेतों का मकान है, या सर्पों का भवन और जो कान शिवजी की अमर-कथा सुनता है वह कान देवताओं के रहने का दिव्य स्थान है।

अमर कथा सुनने-सुनाने के लिये ही अद्वितीय एक ही शिव अपनी माया से शिव और पार्वती दो रूप धारण करके उत्तराखण्ड में अमर कथा कहते और सुनते रहते हैं, यही उनकी क्रीड़ा है। वहीं चलकर शिव की अमर कथा सुन, उसे सुनकर तू भी अमर हो जायेगा। यदि तू कहे कि वहाँ तो कोई जा नहीं सकता, जो कोई वहाँ जाता है, उसे शिवजी शाप देकर पुरुष से स्त्री बना देते हैं। तो यह बात नहीं है, अनधिकारी पुरुष ही शिवजी के शाप से स्त्री हो जाता है, अधिकारी पुरुष को शिवजी शाप नहीं देते, वह तो अमर ही हो जाता है, यह बात शुकदेवजी के दृष्टान्त से सिद्ध है।

अमरकथा सिंहनी के दूध के समान है। जैसे सिंहनी का दूध सुवर्ण के पात्र में ही ठहरता है, अन्य पात्र को फोड़कर निकल जाता है, इसी प्रकार अनधिकारी पुरुष के हृदय में अमर कथा नहीं ठहरती, फोड़ कर निकल जाती है। भाव यह है कि विषयासक्त पुरुष शिव-तत्व को नहीं समरू सकते, उसको शिव तत्व शून्य और नीरस जँचता है। इसलिये शिवतत्व को न समझने से वह भोगों को ही रस रूप जानकर उनमें ही आसक्त होता है, भोगों में आसक्त होने से उसे भिन्नता ही रुचती है और भेद-बुद्धि होने से वह भयरूप संसार को ही प्राप्त होता है।

भोगों में आसक्त होना, भेद देखना और जन्म-मरण रूप भय को प्राप्त होना,

यही पुरुष का स्त्री बन जाना है। विषयासक्त, भेददर्शी ही स्त्री है, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष। और विरक्त अभेददर्शी ही पुरुष है, चाहे स्त्री हो और चाहे पुरुष, इसलिये विषयासक्त पुरुष को अमर कथा सुनने का अधिकार नहीं है, विरक्त बहिन-भाइयों को ही अमर-कथा सुनने का अधिकार है। विरक्त बहिन-भाई तो शिव-पार्वती के क्रीड़ा-स्थान में शुकदेवजी के समान ही निःशंकर होकर चले ही जाते हैं और अमर कथा सुनकर अमर हो जाते हैं।

संसारियों को वहाँ जाने से डर लगता है वे अमर कथा के अधिकारी भी नहीं हैं, इसलिये पूर्व आचार्यों ने कहा है कि अभय में भय देखने वालों को निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति असम्भव है।

हे कान! भय मत मान! भवानी शंकर के क्रीड़ा स्थान में जाकर ही कर अमर कथा का पान। यदि ऐसा नहीं कर सकता, तो शुकदेवजी की कही हुई अमर कथा में मन लगाकर 'शिव-शिव-शिव' सुनता हुआ, ताल, स्वर और सरगम को लाँघकर 'सम' हो जा।

श्रीकृष्ण कथा और श्री शिव कथा में भेद नहीं है, शिव ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही शिव हैं। इनमें रंचक भी संदेह नहीं है। शिव के ही श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री विष्णु आदि अनेकों नाम हैं। उन सभी नामों में कान से रुचि लगाकर सुनने से भगवान श्री शंकरजी का ही स्मरण होता है।

(5) हे मेरी बहिन खाल! कोमल तोशक गद्दों पर सो-सोकर फूलकर क्यों हुई जाती है पखाल? स्पर्श के आधार, अधिष्ठान, अवधि शिव की कर तू सँभाल। चाहे कितने कोमल गद्दों पर शयन कर, चाहे जितने रेशमी वस्त्र धारण कर, चाहे जितने रत्नजटित आभूषणों से अलंकृत हो, रहेगी तू चमड़ी ही, सुवर्ण की तो हो नहीं जायेगी, फिर कोमल से राग और कठिन से दोष क्यों करती है? जब तक तू राग-द्वेष करती रहेगी, तब तक शीतोष्ण आदि अनेक प्रकार के कष्ट सहती ही रहेगी। सर्प कोमल हैं, फिर भी उसका कोई स्पर्श नहीं करता। सर्प का स्पर्श तो एक बार ही मारता है, संसार की कोमल वस्तु के स्पर्श में राग करने वाला तो करोड़ों जन्म तक मरता ही रहता है। भगवान का गीता में बचन है कि संस्पर्श से सम्बन्ध से उत्पन्न हुए जितने भोग हैं, वे सब दुःख देने वाले और आदि-अनन्त वाले हैं, उनमें विद्वान रमण नहीं करते।

इसलिये हे खाल! यदि तुझे पहनने, ओढ़ने में प्रेम हो तो ज्ञानाग्नि की भस्म शरीर में लपेट ले, श्रद्धा-भक्ति, वैराग्य तीन रेखाओं का तिलक माथे पर लगा ले। इनके सिवा समस्त स्पर्श की इच्छा का त्याग करके समदृष्टि रूप रुद्राक्ष माला गले में डाल ले, सो हे बहिन! अपने कारण रूप शिव की खोज कर और उन्हीं का स्पर्श कर। शिव का स्पर्श करने से तू इतनी कोमल और चिकनी हो जायेगी कि पुण्य-पाप

रूप कर्म का जल तेरे ऊपर ठहर न सकेगा और इतनी कठिन हो जायेगी कि जन्म-मरण रूप संसार तुझमें प्रवेश नहीं कर सकेगा। जैसे पत्थर से लग कर मिट्टी का ढेला बिखर जाता है, इसी प्रकार जन्म-कर्म रूप ढ़ेला तुझ शिव रूप ठोस पत्थर से लगकर चूर-चूर हो जायेगा।

शिव का स्पर्श करने से तुझे ऐसा सुख होगा कि उसका वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। फिर तू दमड़ी की चमड़ी नहीं रहेगी, किन्तु पावन से भी पावन और अमूल्य रसाइन हो जायेगी। भगवान का गीता में वचन है कि जो बाहर के स्पर्श में मन न लगाने वाला आत्मा के सुख को प्राप्त कर लेता है, वह ब्रह्म के योग से युक्त मन वाला अक्षय सुख को भोगता है। हे प्यारी खाल! यदिअक्षय सुख भोगना चाहती है, तो कोमल, कठिन, शीतोष्ण आदि द्वन्दों को मायामय जानकर परम सुखरूप शिव का **'शिव-शिव-शिव'** कहती हुई स्पर्श करके अस्पर्श रूप शिव में लीन होकर स्पर्शातीत हो जा।

(6) हे दिव्य दृष्टि वाली आँख! इस मिथ्या दृश्य को आँख फाड़-फाड़ कर कब तक देखती रहेगी? जहाँ देखेगी, वहीं सृष्टि दिखाई पड़ेगी, अन्त कभी नहीं आवेगा। जहाँ दृष्टि रोकी कि सृष्टि समाप्त हुई। **'जहाँ दृष्टि ...'** यह वेद-वेताओं का वचन प्रमाण रूप है। समस्त पदार्थों में लाल रंग अग्नि का है, श्वेत रंग जल का है और काला रंग पृथ्वी का है, इसलिये समस्त पदार्थ अग्नि, जल और पृथ्वी रूप हैं, इन तीनों के सिवा जगत कहीं नहीं है, क्योंकि वाणी मात्र से कहने में आता है, वस्तु रूप नहीं है।

जैसे सब पदार्थ अग्नि आदि में कल्पित हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि सदाशिव रूप परमात्मा में कल्पित हैं, इसलिये अग्नि आदि मिथ्या हैं, और एक अद्वितीय शिव ही सत्य हैं। इसलिये तत्व-वेत्ता इस जगत की श्मशान से उपमा देते हैं और शिव को श्मशान वासी कहते हैं। जहाँ मृतक रहते हैं उस स्थान का नाम श्मशान है। इस श्मशान रूप जगत को शिव ने अपनी सत्ता से व्याप्त कर रखा है, इसलिये यहाँ के मुर्दे चेतन दिखाई देते हैं। जो आँख इस श्मशान रूप जगत में भी जीते जागते शिव को देखती है, वही सच्ची आँख है, और जो आँख श्मशान को चेतन करने वाले शिव को नहीं देखती, किंतु जगत रूप श्मशान को ही देखती है, वह आँख अन्धी आँख है, अथवा मोर के पंख की आँख के समान निरर्थक है।

श्रुति कहती है कि ईश्वर के देखने से जगत बना है और श्रुति यह भी कहती है कि आत्मा आँख में दिखाई देता है। इन दोनों श्रुतियों से सिद्ध है कि जगत ईश्वर की आँख में है और ईश्वर जगत की आँख में है। युक्ति भी है कि दर्पण में पड़ा हुआ मुख प्रतिबिम्ब मुख से भिन्न नहीं होता, किन्तु जल और तरंग के समान अभिन्न ही होता है। इसी प्रकार शिव से भिन्न जगत नहीं है और जगत से भिन्न शिव नहीं है,

फिर भी शिव की माया से मोहित पुरुषों को मायारूप दर्पण में पड़ा हुआ शिव का प्रतिबिम्ब जगत तो दिखाई देता है और बिम्ब रूप शिव दिखाई नहीं देते, यह आश्चर्य है।

जगत में शिव का दर्शन न होने से भेद दिखाई देता है, भेद दीखने से ही राग-द्वेष होता है, राग-द्वेष ही संसार रूप अनर्थ के कारण हैं। हे आँख! गुरु-शास्त्र के उपदेश से भेद देखना छोड़ दे, अनेक में भी एक शिव का ही दर्शन कर और पश्चात अनेक का देखना छोड़कर एक शिव का ही दर्शन कर। इसी में कल्याण है। भेद दृष्टि वाले होने से ही सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और मृत्यु समर्थ देव अब तक चक्र में हैं। इसलिये हे आँख! जगत देखना छोड़कर '**शिव-शिव-शिव**' देखती हुई अग्नि, सूर्य, चन्द्ररूप त्रिनेत्रधारी शिव के नेत्रों में सदा कि लिये प्रवेश कर जा।

(7) हे मेरी प्यारी रसभरी जीभ! तू सब रसों को जानने वाली है, इसलिये वेद-वेत्ता तुझे रसना और रसज्ञा नाम से पुकारते हैं। प्रत्यक्ष देखने में आया है कि रेवती बल्लभ वैद्य पचास द्रव्यों के बने हुए चूर्ण में से एक रत्ती चूर्ण चख कर पचासों चीजों को बता देते हैं, फिर तेरे रसज्ञा होने में क्या संदेह है? फिर भी हे बहिन! षटरस पहचान लेने से तत्वदर्शी पुरुष तुझे रसना या रसज्ञा नहीं कह सकते, वे तो तुझे तभी रसज्ञा कहेंगे, जब तू रसों के भी रस शिव को पहचान लेगी। श्रुति कहती है कि '**रसो वै सः**' अर्थात् रस तो शिवजी ही हैं, अन्य रस तो रसाभाव हैं, रस नहीं हैं किंतु रस के आभास यानी छाया हैं, भगवान गीता में कहते हैं कि "जलों में मैं रस हूँ" इसलिये शिव ही रस हैं, शिव के रस से ही सभी पदार्थ रसीले प्रतीत होते हैं।

शिव विमुख पुरुष रसों को देखकर या चखकर मोहित हो जाते हैं और शैव यानी शिवभक्त तो शिव के रस का ही अथवा शिव रस का ही सर्वत्र अनुभव करते हैं। सो हे बहिन जिभ्या—"**यथा नाम तथा गुणः**" इस लोकोक्ति के अनुसार अपना नाम सार्थक कर ले। ईश्वर ने तुझे दो शक्तियाँ प्रदान की हैं, रस को तू जान सकती है, शिव रूप तालुए से लगकर और उसका वर्णन भी कर सकती है। इसलिये हे बहिन! दिल्ली के दालमोंठ, आगरे का सोहन हलुआ, हापुड़ के पापड़ और मथुरा के पेड़े देखकर लार मत टपकाया कर और मुख बना-बना कर उनकी प्रशंसा मत किया कर, सब पदार्थों में शिव-रस ही चखा कर और शिव-रस का ही निरूपण किया कर। अन्त में खान में, पान में, शिव-रस का स्वाद लेती हुई "**शिव-शिव-शिव**" कहती हुई शिव-रस में मिलकर सर्वदा के लिये रस रूप होकर मौन हो जा।

(8) हे सुहानी नाक! सचमुच तू ही इस शरीर की नाक है, तुझसे ही इस शरीर की शोभा है, यदि तू न हो तो इस शरीर की सुन्दरता ही न रहे। तू शरीर ही की शोभा नहीं है किंतु चराचर प्राणियों को भी तू ही शोभा है, क्योंकि नाक वाला ही लोक में

शिष्ट समझा जाता है, जो नाक वाला नहीं होता उसकी लोक में प्रतिष्ठा ही बिगड़ जाती है, यदि तू नहीं होती तो मनुष्य भक्ष्याभक्ष्य चाहे जो कुछ खाने लगता। जैसे तेरी माँ पृथ्वी समस्त विश्व को भोजन-वसन देकर पालताी है, इसी प्रकार पृथ्वी की बेटी तू भी भक्ष्याभक्ष्य का ज्ञान कराके लोकों की रक्षा करती है।

प्रथम तू गंध द्वारा भोजन के गुण-अवगुण बताती है, पीछे जिभ्या भोजन का स्वाद बताती है, इसलिये तू जिभ्या से श्रेष्ठ है, इसी कारण महेश्वर ने तुझे ऊपर और प्रत्यक्ष रखा है जिभ्या को नीचे और गुप्त रखा है। जिह्वा से एक गुण तुझमें और भी अधिक है कि तू वस्तु का गुण दूर से ही बता देती है जबकि जिभ्या तो वस्तु से संसर्ग होने पर उसका गुण बताती है। सारांश यह है कि तू प्राणियों के बड़े काम की है और शिष्ट पुरुषों की शोभा और प्रतिष्ठा जो कुछ है, तू ही है। जिसके नाक नहीं, वह न शिष्ट है, न प्रतिष्ठित है। शिष्ट और प्रतिष्ठित पुरुष और स्त्रियों को उत्तम कर्म करते हुए अपनी नाक की रक्षा करनी चाहिए ।

यही बात दिखाने के लिये सुमित्रानन्दन रामानुज लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा की नाक काटकर सबको शिष्ट और प्रतिष्ठित होने की शिक्षा दी है। वे देवोक्त तुझे घ्राण और गन्धवहा नाम से पुकारते हैं, और मैंने तो एक विद्वान के मुख से ऐसा सुना है कि 'क' नाम सुख का है, अक नाम सुख के अभाव यानी दुःख का है और जहाँ अक यानी दुःख न हो, उसका नाम 'नाक' न अक। यही अर्थ रुचिकारी है, क्योंकि शिव में दुःख नहीं है इसलिये शिव ही नाक है। जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य होता है।

इसलिये शिव में से प्रकट हुई तू भी नाक ही है, इसी से सब तुझसे ही अपनी शोभा समझते हैं। हे सुभगे! नाक रूप शिव की शक्ति होकर तुझे गन्दी न होना चाहिए किन्तु सबमें तुझे शिव रूप पवित्र गन्ध ही सूँघनी चाहिए। इसलिए अब तू मायिक गन्धों का त्याग करके '**शिव-शिव-शिव**' सूँघती हुई शिव में ही लीन होकर अक्षय शोभन गन्ध सर्वदाके लिये हो जा।

(9) हे भाई मन! क्या तुझे मालूम नहीं है कि तू शिव ही का अंश है? शिव की अद्‌भुत शक्ति है? भगवान का गीता में बचन है कि **"इन्द्रियों में मैं मन ही हूँ"**। शिव का अंश होने से ही तू क्षणभरमें पाताल से सत्यलोक में पहुँच जाता है। वेद-वेक्ताओं का कथन है कि मनत्रिगुणमय और सत्वगुण की विशेषता वाला है, वेद-वेत्ताओं का यह कथन लोक दृष्टि से है, नहीं तो तू त्रिगुणमया होते हुए भी तीनों गुणों से अतीत है।

हे मन! तू जड़-चैतन्य मिश्रित है, जब तुझमें तमोगुण अधिक हो जाता है तब जड़ता अधिक हो जाती है और जब तुझमें सत्व गुण अधिक होता है तब जड़ता थोड़ी हो जाती है। तेरे जड़ भाग से मोहमय जगत भ्रम दिखाई देता है और उसी भाग से

विषयों का ग्रहण होता है, जिस पदार्थ को तू देखता है, उसी के आकार का हो जाता है। तमोगुणी पदार्थों का ध्यान करने से तू तमोगुणी, रजोगुणी पदार्थों का ध्यान करने से रजोगुणी और सत्वगुणी पदार्थों का ध्यान करने से सत्वगुणी हो जाता है। जब तू वृत्तिहीन, निरालम्ब, शान्त, स्थिर और निर्विषय होता है, तब निर्मल से भी निर्मल सुप्रशान्त महामौनी शिव-स्वरूप ही हो जाता है।

जब ऐसा है, तो हे मन! तू त्रिगुणमय कहाँ है? जब तू जगत का ध्यानकरता है तब जगन्मय हो जाता है। जगत में अनेक पदार्थ हैं, अनादि काल से तू जगत में घूम रहा है, अब तक तुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई, हो भी कहाँ से? कहीं ओस में स्नान हो सकता है या मरुस्थल से प्यास बुझ सकती है? न ओस में स्नान हो सकता है न मरुस्थल से प्यास बुझ सकती है। इसलिये हे मन! अनर्थकारी नीरस, नश्वर भोगों का ध्यान करना छोड़ दे। विषयों में सुख नहीं है, सुख और शान्ति, आनंद तो शिव में ही है। जिन महाशम्भु में करोड़ों ब्रह्माण्ड रुण्डमाला के समान लटक रहे हैं, उन्हीं सत्य अविनाशी, निरंजन एक महादेव का ध्यान कर। नाम-रूप को छोड़कर महेश्वर में ही रति कर, उन्हीं में प्रेम कर, उन्हीं में तृप्तिमान, उन्हीं में सन्तुष्ट हो। संसार असार है, हर का आराधन ही सार है। यदि शम्भु को न भजा, तो जन्म, यज्ञसूत्र, विद्या और कमण्डलु से क्या लाभ है? स्वप्न में जागते में शम्भु का ध्यान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और जीव माया से पार पा जाता है, इसलिये हे मन! **'शिव-शिव-शिव'** ऐसा ध्यानकरता हुआ शिव में लीन होकर 'अमन' हो जा।

(10) हे चित्त! तेरा स्वरूप चित्स्वरूप शिव ही है। जब से तू कल्याण स्वरूप शिव को भूल गया है तब से ही तू चित्त है, और चित्त होने से तू कभी चित्त और कभी पट्ट होता रहता है। जब तू सुषुप्ति में चित्स्वरूप शिव में लीनहो जाता है, तब शवरूप संसार भी लीन हो जाता है। केवल चित्स्वरूप शिव ही शेष रहते हैं। जब तू जाग जाता है, तब फिर संसार देखने लगता है, इससे सिद्ध होता है कि केवल शिव ही सत्य हैं और यह संसार स्वप्न के समान तेरा रचा हुआ होने से मिथ्या है, क्योंकि तेरे भाव में ही जगत का भाव है और तेरे अभाव में जगत का अभाव है। जब तक तू संसार का ध्यान करता रहेगा, तब तक तू जन्म-मरण संसार से छूट नहीं सकता, यह बात सम्यक सत्य है।

गीता में भगवान का वचन है कि विषयों का ध्यान करने से पुरुष का विषयों से संग होता है, संग से काम उत्पन्न होता है, काम से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से संमोह होता है, संमोह से स्मृति भ्रष्ट होती है, स्मृति भ्रष्ट होने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने से पुरुष नष्ट हो जाता है, यानी अन्धकार रूप संसार को प्राप्त होता हे। यह भगवान का वचन नित्यप्रति पढ़ता हुआ भी यदि तू विषयों का ही ध्यान करता रहा, तो तेरे समान मूर्ख कौन है?

भगवान का यह भी वचन है कि जब योगाभ्यास से चित्त निरुद्ध हो जाता है और आत्मा से आत्मा को देखकर आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है, तब योगी उस अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है, जो इन्द्रियों का आविषय है, और बुद्धि से ही ग्राह्य है, उस सुख को पाकर योगी तत्व से चलायमान नहीं होता, इससे अन्य सुख को सुख नहीं मानता और भारी दु:ख से भी चलायमान नहीं होता। यदि भगवान के इस वचन पर तूने विश्वास करके शिव का ध्यान न किया तो जन्म-जन्म पछताता ही रहेगा। इसलिये हे चित्त! क्षण भंगुर उत्तम मनुष्य शरीर पाकर प्रमाद मत कर और **'शिव-शिव-शिव'** ऐसा निरन्तर चिन्तन करता हुआ उपाधिरूप तकार को छोड़कार चित्त से चित् होकर चित्स्वरूप शिव में ही लीन हो जा।

(11) हे री बुद्धि! क्या तू यहाँ भेद कुछ नहीं है, जो भेद देखता है, वह बारम्बार मरता रहता है वासुदेव ही यह सब है **'सब क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ'** इत्यादि श्रुति स्मृतियाँ पढ़कर भी अपना स्त्री स्वभाव नहीं छोड़गी। भेद देखती हुई राग-द्वेष ही करती रहेगी? तू भिन्नता देखती है, इसी से वेद-वेत्ता वेश्या से तेरी उपमा देते हैं। जब तक तू भिन्नता देखेगी तब तक क्षणिक होने से व्यभिचारिणी ही कहलायेगी और जब तू भेद देखना छोड़ देगी, तब तू स्त्री से पुरुष बन जायेगी और तेरा नाम 'विज्ञान' हो जायेगा। शुद्ध बुद्धि को वृद्ध पुरुषों ने विज्ञान ही कहा है।

अरी सुबुद्धे! जैसे शिवरूप बोध में भेद नहीं है, इसी प्रकार शिवरूप तुझमें भी भेद नहीं है। जहाँ कहीं भेद दिखाई देता है, वहाँ श्रोत्रादि इन्द्रियों का भेद है। जब तू इन्द्रियों को अपनी सखी बना लेती है, तब तुझे भेद न होते हुए भी भेद दिखाई देने लगता है। जब तू श्रोत्रेन्द्रिय से मिल जाती है, तब रोचक, भयानक शब्द सुनने लगती है। जब तू स्पर्शेन्द्रिय से मेल कर लेती है, तब कोमल, कठिन, शीतोष्ण स्पर्श करने लगती है। जब तू नेन्द्रिय से तादात्म्य कर लेती है तब नीला, पीला, धोला-काला रूप कुरूप देखने लगती है, जब तू रसनेन्द्रिय से सम्बन्ध कर लेती है, तब मीठा, खट्टा, कड़वा, खारी, कसैला, चटपटा चखने लगता है, जब तू नासिका से संसर्ग कर लेती है तब सुगंध दुर्गन्ध सूँघने लगती है, और जब तू सुषुप्ति में शिव के साथ एकमेव हो जाती है तो श्रोत्रादि इन्द्रियों का किया हुआ शब्दादि भेद बिला जाता है, तब भेद सच्चा कहाँ है? भ्रम ही है।

इसलिये हे बहिन! अब तू सब कामनाएँ छोड़ दे, अपने आत्मा शिव में संतुष्ट होकर स्थिर हो जा। दु:ख में उद्विग्न मत हो, सुख की स्पृहा मत कर और राग-द्वेष से रहित हो जा। शुभा-शुभ किसी में स्नेह मत कर, स्नेह ही बंधन है, मत हर्ष कर, मत शोक कर। अपनी सहेली इन्द्रियों को वश में रख, उनकी चेरी = दासी मत बन। इन्द्रियों के वश हो जाना ही बंधन है और इन्द्रियों को वश में रखना ही मोक्ष है, इसलिये हे बहिन! अब तू अपनी सहेलियों को साथ लेकर—**'शिव-शिव-शिव'** ऐसा

अनुसन्धान करती हुई, बोधरूप शिव में लीन होकर अपना परिच्छिन्न भाव छोड़ दे, और अपरिच्छिन्न होकर सर्वत्र फैल जा।

(12) हे भाई अहंकार! तू शिव का प्रथम विकार है तूने ही चित्त और बुद्धि को धारण कर रखा है, इसलिये उन दोनों में तू प्रधान है तेरे देवता रुद्र हैं, चित्त के देवता वासुदेव हैं और बुद्धि के देवता ब्रह्मा हैं। यद्यपि तीनों देव स्वरूप से एक ही हैं और विशेष रूप से भी तीनों एक ही हैं, क्योंकि तीनों के शरीर शुद्ध सत्वमय हैं, फिर भी अहंकार के देवता होने से तीनों देवों में रुद्र को ब्रह्मवेत्ताओं ने श्रेष्ठ और ज्येष्ठ माना है। योगियों का अनुभव है कि प्रथम ब्रह्म ग्रन्थि का भेद होता है, फिर विष्णु ग्रन्थि का छेदन होता है और अंत में रुद्रग्रन्थि टूटती है। इससे सिद्ध होता है कि शिव तीनों देवों में प्रधान है, फिर भी मुझे इसमें आग्रह नहीं है, मेरे लिये और मेरी दृष्टि में तो सभी समान हैं, इस मेरे कहने से मेरा प्रयोजन इतना ही है कि तू अहंकार शिव का समीपवर्ती होकर शिव को क्यों भूलता है और मिथ्या संसार में क्यों भटकता है? देह का क्यों अभिमान करता है? शिव का ही क्यों नहीं अभिमान करता? जैसे मिट्टी के कार्य घटादि पदार्थ मिट्टी रूप ही हैं, लोहे के कार्य चाकू आदि लोहा रूप ही हैं और सुवर्ण कार्य कुण्डलादि सुवर्ण रूप ही हैं, इसी प्रकार शिव का कार्य तू शिव स्वरूप है, शिव से भिन्न नहीं। फिर तू अपने को शिव से भिन्न देह रूप क्यों समझता है? देहाभिमान करना छोड़ दे, देहाभिमान ही बन्धन है, देहाभिमान ही चिजड़ ग्रन्थि है, देहाभिमान ही अविद्या है।

सारांश यह है कि देहाभिमान ही जन्म-मरण आदि समस्त अनर्थों का कारण है। जो जिसको भजता है, उसी को प्राप्त होता है, यह सनातन मर्यादा है, यदि तू देह को भजता रहेगा तो बारम्बार ऊँच-नीच देहों को ही प्राप्त होता रहेगा। और मरता रहेगा और शिव को भजेगा तो शिव को ही प्राप्त होगा, तथा शिव को प्राप्त होकर सर्वदा के लिये अजर-अमर हो जायेगा। भाई! अन्धे के समान अब ठोकरें मत खा, देह को मत प्यार कर, शिव को प्यार कर, शिव को ध्येय बना, शिव का भजन कर और **'शिव-शिव-शिव'** भजता हुआ शिव में ही अपनी आहुति दे दे।

(13) हे प्यारे प्राण! तुझे वेद सबसे श्रेष्ठ और जेष्ठ बताता है और है भी ऐसा ही, क्योंकि तू ही अहंकारादि को संघट्ट करके इस संघात को चला रहा है। हिरण्यगर्भ भगवान की तू एक कला है। जैसे सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्ड को धारण कर रहे हैं, इसी प्रकार तू इस शरीर को धारण कर रहा है, अथवा यों कहना चाहिए कि तू एक ही अनेक होकर अनेक शरीरों को धारण कर रहा है। जब सब इन्द्रियाँ थककर सो जाती हैं तब तू अकेला ही जागता रहता है, खाये-पीये को पचाकर सब इन्द्रियों का पोषण करता है। बिना सोये सौ वर्ष तक काल भगबान से युद्ध किया करता है, इसलिये तू इस पिण्ड में और ब्रह्माण्ड में सबसे श्रेष्ठ है और तू इस शरीर का राजा

नहीं भी है, तो भी प्रधान या मंत्री तो है ही, इसमें संशय नहीं है।

कोई-कोई विद्वान तुझे जड़ बताते हैं, परन्तु तू जड़ नहीं है, चेतन ही है, विद्वानों ने जो तुझे जड़ बताया है, वह उनका कथन शिव का स्वरूप बनाने की अपेक्षा से है। जैसे सूर्य की छाया धूप सूर्य के समान उष्ण ही है, इसी प्रकार शिव का श्वाँस तू शिव के समान चेतन ही है। महतत्व शिव की ज्ञान शक्ति है और सूत्र रूप तू शिव की क्रिया शक्ति है परंतु ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भिन्न नहीं रहतीं, साथ ही साथ रहती हैं वेद कहता है कि ब्रह्म के लिये नमस्कार है। हे वायु! तुझको नमस्कार है, तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है, तुझे मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हूँ, सत्य कहता हूँ, ऋत कहता हूँ, इस श्रुति से भी तू चेतन है, ऐसा सिद्ध होता है इसलिये हे प्राण! अब तू संसारकी तरफ वहन करना छोड़ दे और शिव की तरफ बहन करता हुआ **'शिव-शिव-शिव'** श्वाँस प्रश्वांस में बोलता हुआ शिव में जाकर स्थिर हो जा।

(14) हे जीवाराम! छोड़ दे सब काम, हो जा आत्माराम, तभी बनेंगे तेरे सारे काम। **'सब तज हर भज'** यही वेद का सिद्धान्त है, जो देह को भजता है वह देह को प्राप्त होता है और जो शिव को भजता है वह शिव को प्राप्त होता है। देह को भजने से ही तू नौ मास तक काल कोठरी में बंद रह चुका है और अब सौ वर्ष की जेल भुगत रहा है। काल कोठरी में तुझे शिव के अनुग्रह से अपने जन्मों की स्मृति हो आयी थी और तूने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं इस काल कोठरी से निकल जाऊँ तो शिव का भजन करूँगा जिससे फिर काल कोठरी में न आऊँ। क्या तू इस प्रतिज्ञा को भूल गया! भाई जाऊँ तो शिव का भजन करूँगा जिससे फिर इस काल कोठरी में न आऊँ। क्या तू इस प्रतिज्ञा को भूल गया! भाई अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर। 'देहोऽहम्' 'देहोऽम्' भजना छोड़कर 'शिवोऽहम्' 'शिवोऽम्' भजना आरम्भ कर। तुझमें और शिव में भेद नहीं है, जगत में भी भेद नहीं है। समस्त जगत पंच महाभूतों का कार्य होने से एक ही है। जगत दृश्य है और जगत दृष्टा तू है। दृश्य और दृष्टा दोनों मिथ्या हैं क्योंकि परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। दृश्य दृष्टा की अपेक्षा रखता है यानी दृष्टा बिना सिद्ध नहीं होता, और दृष्टा दृश्य की अपेक्षा रखता है यानि दृश्य बिना दृष्टा असिद्ध है, इसलिये दृश्य और दृष्टा दोनों ही कल्पित होने से मिथ्या हैं।

जिनमें दृश्य और दृष्टा दोनों भासते हैं वही स्वयं ज्योति-निरपेक्ष शिव सत्य है उनके सिवा दृश्य और दृष्टा असत्य है, इसलिये भेद सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार युक्ति से शिव में भेद असिद्ध है और श्रुति से भी भेद सिद्ध नहीं होता। "यह तू है" "मैं ब्रह्म हूँ" "यह आत्मा ब्रह्म है" "प्रज्ञान ब्रह्म है" "सत्य, ज्ञान, अनंत ब्रह्म है।" सृष्टि से पहले एक अद्वितीय सत् ही था। ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, इथ्यादि श्रुतियाँ भी भेद का निवारण करती हैं, फिर भेद कैसा? फिर भी शिव की माया से मोहित बहिन-भाइयों को भेद दिखाई देता है, यह उनका दुर्भाग्य है। भेद ही बंधन

है, भेद ही जन्म-मरण रूप संसार है, भेद से ही कर्तृत्व-भोक्तृत्व है, भेद से ही जीवत्व है, भेद से ही राग-द्वेष हैं।

सारांश यह है कि भेद ही सब अनर्थों का मूल है। हे जीवात्मा! भेद दृष्टि त्याग दे, अनेक में भी एक अपने आत्मा शिव का ही दर्शन कर, ऐसा करने से माया का रचा हुआ भेद विलय हो जायेगा। जैसे सूर्य के सामने अँधेरा नहीं ठहर सकता, इस प्रकार शिव के सामने माया और माया का रचा हुआ भेद ठहर नहीं सकता। शिव एक है, प्रेम स्वरूप है, सबके अपने-आप हैं अत: देह-गेहादि सबसे प्रेम हटाकर शिव में ही प्रेम कर। जब तक तू अपना किंचित भी अभिमान करेगा, यानी अपने को कुछ भी मानेगा, तब तक तुझे शिव की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि **"प्रेम गली अति साँकरी तामें दोइ न समायँ"** ऐसा विद्वानों का कथन एवं अनुभव है। इसलिये हे जीवाराम! ब्रह्माण्ड, पिण्ड, सूक्ष्म, कारण सबको मूल अपने जीवत्व को भी शिव की भेंट करके—**'शिव-शिव-शिव'** ऐसा प्रेमपूर्वक अनुसन्धान करता हुआ प्रेम रूप शिव में लीन होकर शान्त हो जा।

इस प्रकार शिव ही सर्व और सर्वातीत सब विश्व के आधार और अधिष्ठान हैं, सबके पूजनीय और सबके आत्मा हैं इसलिये जैसे बनें वैसे चाहे जिस नाम रूप से शिव का भजन करना चाहिए, सबका सारांश ये है-

कुण्डली—"हर-हर जपिये मंत्र वर पढ़िये शिव सद्ग्रन्थ।
कीजै शंकर चिंतवन यह ही सच्चा पन्थ॥
यह ही सच्चा पंथ, सर्व में शम्भु निहारै।
अधिष्ठान शिव सत्य, विश्व अध्यस्त विचारै॥
भोला! भूला शम्भु तभी से फिरता दर-दर।
दर-दर अब मत घूम, प्रेम से भज ले हर-हर॥"

(कल्याण भाग 8 श्रावण 1990 संवत लेख स्वामीजी श्री भोले बाबा जी)

(जै शिव शंकर)

(पंचम सोपान पूर्ण हुआ)



श्रीशिव कथा सार का

षष्टम सोपान

❃ मंगलाचरण ❃

श्लोक (1)— "अग्निमूर्धा चक्षुर्षा चन्द्रसूर्यो दिशः
श्रोत्रे वागविवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्मयां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥" *(मुण्ड० 2/1/4)*

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर का शरीर कहलाता है, इस शरीर का वर्णन इस प्रकार होता है—

"अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ स्तोत्र हैं, वेद वाणी हैं, विश्व व्यापी वायु प्राणरूप से हृदय में है, पृथ्वी पादरूप है—वह सब भूतों का अन्तरात्मा है।"

श्लोक (2)— "विभूषणोद्भासि भुजङ्गभोगिवा गजाजिनालम्बि
दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथ्र वेन्दु शेखरं
न विश्वमूर्तेस्वधार्य ते वपुः ॥" *(कुमारसंभव 5)*

"वह शरीर भूषणों से भूषित भी है और सर्प शरीरों से वेष्टित भी। गज चर्म ओढ़े हुए हैं और सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रधारी भी हो सकता है। वह शरीर कपालपाणि भी है और चन्द्रमुकुट भी। जो विश्वमूर्ति ठहरा, उस शरीर का एक रूप से निश्चय को न कर सकता है?"

श्लोक (3)—"शिवोः गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम।
शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किंचन॥
शिव मुद्दिश्य यत्किंचिद् दन्तं जप्तं हुतं कृतम्।
तदनन्तफलं प्रोक्तं सर्वागमविनिश्चितम्॥
सजिह्वा या शिवं स्तोति तन्मनो ध्यायते शिवम्।
तौ कर्णौतत्कथालोलौ तौ हस्तौतस्य पूजकौ॥
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे।
तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा॥
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्म सु।
स निस्तरति ससारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥

भक्ति लेशयुतः शम्भोः स वन्द्यः सर्व देहिनाम्।"

(स्कन्दपु० ब्रह्मोत्तर खण्ड, अ० 4)

"(सूतजी कहते हैं-) भगवान शिव गुरु हैं, शिव देवता हैं, शिव ही प्राणियों के बन्धु हैं, शिव ही आत्मा और शिव ही जीव हैं। शिव से भिन्न दूसरा कुछ नहीं है। भगवान शिव के उद्देश्य सो जो कुछ भी दान, जप और होम किया जाता है, उसका फल अनन्त बताया गया है। यह समस्त शास्त्रों का निर्णय है। वही जिह्वा सफल है, जो भगवान शिव की स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो शिव के ध्यान में संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं, जो उनकी कथा सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं, और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजी की पूजा करते हैं। वे नेत्र भी धन्य हैं जो महादेव जी की पूजा का दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है, जो शिव के सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं जो भक्ति पूर्वक शिव के क्षेत्र में सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान शिव के कार्यों में लगी रहती हैं, वह संसार सागर से पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिसके हृदय में भगवान शिव की लेशमात्र भी भक्ति है, वह समस्त देह धारियों के लिये वन्दनीय है।"

❃ श्री शिव स्तुति ❃

"मख हन, मरदन मयन, नयनत्रय, बटतर अयन, रजत-परवत पर।
चरम-वसन, तन भसम, प्रमथगन, समधर-धरन गरल-गर-गरधर॥
हरन-व्यसन-जन, करन-अमल मन, भजमन! असरन-सरन अमर बार।
चढ़त वरद, वर-वरद प्रनत रत, हरत जगत-भय, जयजयजय हर॥"

कलियुग में 'शिव' नाम सब नामों से बढ़कर है—

"ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान रवि।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः॥" *(कूर्म पु० अ०18)*



❃ प्रणव की मार्मिकता और राम-नाम ❃

प्रणव अथवा ॐ ईश्वर का मुख्य वैदिक नाम है, जैसा कि पाताञ्जलि योग सूत्र के अन्तर्गत कहा गया है **"तस्य वाचकः प्रणवः"** ईश्वर की आराधना में इस प्रणव के जप और साथ ही इसके रूप में क्या है? इस सम्बन्ध में, माण्डूक्य उपनिषद् के प्रारम्भ में ही इस प्रकार संकेत किया है—

"ओमित्येदक्षर मिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यान भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।
यच्चान्यात्रिकालातीतं तद्प्योङ्कार एव॥

अर्थ—यह ॐ अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत भविष्य और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है इसलिये यह ॐकार ही है। इसके सिवाय अन्य त्रिकालातीत भी जो कुछ है, वह भी ॐकार ही है।

ॐ का अर्थ करने में वैयाकरण लोग ॐ को अ उ म् तीन अक्षरों की सन्धि से बना हुआ कहते हैं, यहाँ तक कि 'माण्डूक्य उपनिषद्' में भी ॐ की व्याख्या में अ, उ, म की संधि का ही आश्रय लिया गया है।

पर इस प्रकार व्याकरण के नियमानुसार अ उ म् तीन अक्षरों की संधि से बने हुए 'ओम्' शब्द को ही, प्रणव का वास्तविक रूप से एक प्रश्न उठ खड़ा होता है, वह यह कि अ उ म् यह अक्षर तो सारी वर्णमाला के अन्तर्गत केवल तीन अक्षर हैं, अन्य सारे वर्णमाला के अक्षर ही इन तीन अक्षरों से पृथक है, तब केवल अ उ म् तीन अक्षरों की संधि से बने हुए 'ओम' शब्द के सम्बन्ध में उपर्युक्त माण्डूक्य उपनिषद् की श्रुति के अनुसार यह कहना कि यह ओम् अक्षर ही सब कुछ है कैसे संगत माना जाय?

इस प्रश्न के सामने उपस्थित होते ही साथ ही एक और दूसरा प्रश्न उपास्थित हो जाता है-वह यह कि पहले वेद है अथवा व्याकरण? तात्पर्य यह कि वेद से व्याकरण की उत्पत्ति है। अथवा व्याकरण से वेद बना है? इसका तो स्पष्ट उत्तर यही होगा कि वेद पहले हैं-वेद से ही व्याकरण की उत्पत्ति हुई है, न कि व्याकरण से वेद बना हो। फिर प्रणव अथवा ॐ तो वेद का भी मूल है, तब उसे व्याकरण की एक संधि के नियम के आधीन कैसे माना जा सकता है।

फिर एक और भी बात विचारणीय और ध्यान देने योग्य है, वह यह कि उपर्युक्त माण्डूक्य उपनिषद् की श्रुति में ॐ को अक्षरों से बना हुआ शब्द न कहकर उसे स्वतः अक्षर कहा गया है और अक्षर कहते हुए भी, कई अक्षरों की योजना न कहकर स्पष्ट रूप से केवल एक अक्षर ही कहा गया है। ओमित्येत दक्षरमिदं में 'एतद्' शब्द एक वचन ही है। श्रीमद्भगवत गीता में भी ॐ को बिलकुल स्पष्ट रूप मे एक अक्षर ही कहा गया है।

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहर न्मामनुस्मरन्।" *(गीता अ० 8 श्लोक 13)*

अतएव ईश्वर के मुख्य वैदिक नाम प्रणव अथवा ॐ को व्याकरण के नियमानुसार अ उ म् तीन अक्षरों की सन्धि से बना हुआ शब्द मात्र मान लेना, यर्थाथ सिद्धान्त की दृष्टि से ठीक और संतोषजनक प्रतीत नहीं होता।

फिर भी प्रणव अथवा ॐ का अर्थ करने में अनुभवी विद्वान लोग उक्त प्रकार व्याकरण के नियमानुसार अ उ म् तीन अक्षरों की सन्धि का आश्रय लेते हैं, साथ ही उपनिषद भी इस बात को प्रमाणित करता है क्योंकि उपर्युक्त माण्डूक्य उपनिषद् में भी अ उ म् तीन अक्षरों को आगे रख कर ही ॐ की व्याख्या उपस्थित की गई

है तो इस बात को भी व्यर्थ या असंगत नहीं कहा जा सकता, अतएव इस कथन का भी कोई अपना स्थान और उसकी उपयोगिता है, और इस बात का भी अनुसंधान हमारे लिये उचित और आवश्यक है।

ऊपर कहा गया है कि वेद प्रथम और व्याकरण पीछे है, अर्थात् वेद से व्याकरण की उत्पत्ति है न कि व्याकरण से वेद बना हो, अत: समग्र वेद व्याकरण से ही परिपूर्ण है, व्याकरण ही वेद का आधार है, व्याकरण के नियमों को जानने वाला निश्चय ही वेद के यथार्थ अभिप्राय को समझता है।

साधना के क्रम में सूक्ष्म में जीव की चेतना के अति निकट, यहाँ तक कि व्यवहार में उस चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले, प्राण के द्वारा इस शब्द ब्रह्म अथवा दिव्य नाम का संयम होने से उसे 'प्रणव' शब्द से व्यक्त किया गया है, कारण कि वर्णमाला के अक्षरों से परे केवल ध्वन्यात्मक होने से वर्णमाला के अक्षरों द्वारा तो उसे सीधे व्यक्त नहीं किया जा सकता, अत: इस समस्या के उपस्थित होने पर महापुरुषों ने उस ध्वान्यात्मक शब्द ब्रह्म पर संयम करके उस ध्वनि के सूक्ष्म आकार का अनुसन्धान किया, क्योंकि शब्द अथवा ध्वनि का भी आकार होता है। इस प्रकार अनुमानत: उस ध्वनि के आकार के तद्रूप ही उस शब्द ब्रह्म प्रणव को लिखने में ॐ के रूप में व्यक्त किया गया।

तात्पर्य यह है कि जैसे धातु या पाषाण की मूर्ति स्वत: ईश्वर नहीं होती, पर इसमें ईश्वर के व्याप्त होने से, ईश्वर प्राप्ति की साधना में, उस प्रतीक या मूर्ति में ही उस सर्वव्यापी ईश्वर की भावना का विधान है। उसी प्रकार व्याकरण के नियमानुसार अ उ म तीन वर्णों की सन्धि से बना हुआ ओम शब्द स्वत: समग्र ब्रह्म अथवा परावाणी में अनुभव होने वाला शब्द ब्रह्म नहीं होकर वैखरी वाणी से प्रयोग के लिये उसका प्रतीकमात्र है। जिसके अर्थ भावना पूर्वक जप के द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर अन्तर्मुखी सूक्ष्म जप में प्रवेश होकर परावाणी में पहुँचने पर उस ध्वन्यात्मक शब्द ब्रह्म का भी प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है।

सारांश यह है कि ईश्वर के मुख्य वैदिक नाम 'प्रणव' के ध्वन्यात्मक रूप शब्द ब्रह्म का अनुभव तो परावाणी में प्रवेश होने पर ही सम्भव होता है, पर समाज के बीच उस शब्द ब्रह्म को व्यवहार में लाने के लिये, प्रतीक रूप से उसकी प्रतिष्ठा लिखने में 'ॐ' और बोलने में व्याकरण के नियमानुसार अ उ म् की सन्धि से बने हुए 'ओम्' के रूप में की गई है। यही है 'प्रणव' के 'ॐ', 'ओम्' और परावाणी में अनुभव होने वाले ध्वन्यात्मक शब्द ब्रह्म सार शब्द अथवा दिव्य नाम की एकता का मर्म।

अब भगवान के अनेक नामों में राम-नाम को वेदों का सार कहा गया है, ईश्वर के मुख्य वैदिक नाम 'प्रणव' के उक्त 'ॐ' और 'ओम्' दोनों ही प्रतीकात्मक,

व्यवहारिक साकार रूपों के अति निकट कहा जाता है। प्रथम लिखने में 'प्रणव' के प्रतीकात्मक सांकेतिक रूप 'ॐ' के साथ राम नाम की एकता एवं निकटता का निरीक्षण करें। राम-नाम के दोनों वर्ण र और म जब सन्धि में दूसरे वर्ण के ऊपर जाते हैं तो सूक्ष्म रूप में परिणित हो जाता है, जैसे कर्म, धर्म इत्यादि। इसके अतिरिक्त संस्कृत प्रयोग में और भी विशेषता यह है कि रेफ जब दूसरे वर्ण पर जाता है तो उसको दिव्य हो जाता है, तात्पर्य यह है कि र को अपने ऊपर धारण कर लेने से वह वृद्धि को प्राप्त होता है, जैसे कर्म, धर्म, कर्तव्य इत्यादि।

इसी प्रकार म जब दूसरे वर्णों के ऊपर जाता है तो सूक्ष्म होकर बिन्दु के रूप में परिणित हो जाता है। जैसे अर्थम् की जगह अर्थं और धर्मम् की जगह धर्मं 'पुस्तकम् की जगह पुस्तकं इत्यादि। इस प्रकार राम-नाम के र और म दोनों वर्णों का सूक्ष्म रूप एक साथ इस प्रकार होता है, और यही चिन्ह 'ॐ' में भी ऊपर उपस्थित रहता है, अतः राम-नाम के लिखने में ध्वन्यात्मक शब्द ब्रह्म 'प्रणव' के प्रतीक 'ॐ' के अति निकट होना बिलकुल स्पष्ट है। राम नाम के इस अनिवर्चनीय सूक्ष्म रूप को श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड नाम वन्दना प्रकरण के अन्तर्गत गुसाईं बाबा ने दोहों में इस प्रकार लक्षित किया है—

"एक छत्र एक मुकुट मनि, सब वरणन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, वरन विराजत दोउ॥"

अब बोलने में उसी परावाणी में प्राप्त ध्वन्यात्मक शब्द ब्रह्म प्रणव के प्रतीक व्याकरण के नियमानुसार अउम् की सन्धि से बने हुए 'ओम्' के साथ भी राम-नाम के ऐक्य अथवा अति निकटता का अवलोकन करें।

जिस प्रकार अकार और उकार की सन्धि होने से 'ओ' होता है जैसा कि 'ओम्' शब्द में ही स्पष्ट है, उसी प्रकार अ और (विसर्ग) (:) की सन्धि होने से भी 'ओ' ही होता है, जैसे 'रामः गच्छति' से 'रामोगच्छति'। अतएव जैसे अ उ म् की सन्धि से 'ओम्' बनता है, वैसे ही अः म् की सन्धि से भी 'ओम्' ही बनेगा। इस दृ़ष्टि से 'अ उ म्' और 'अ : म्' दोनों की सन्धि का परिणाम 'ओम्' ही होने से अउम् = अ : म्।

अब विसर्ग को हटाकर आगे के अक्षर के साथ सन्धि करनरे में विसर्ग का लोप होकर उसकी जगह 'हल रकार' अथवा रे र्फ हो जाता है, जैसे 'पुनः जन्म का पुनर्जन्म।' अतएव अ : म् = अ र् म्

अब बोलने में प्रधानता जिभ्या की होती है। और 'अ र भ' तीन अक्षरों में र के बोलने का स्थान मुख्य रूप से जिभ्या ही है, अतः बैखरी वाणी में र को प्रधानता देने की दृष्टि से बीच की जगह प्रथम कर देने से उन र् का र अ म्, पुनः यही र अ की सन्धि से 'राम' हो जाता है। व्यवहार में भी प्रधान के लिये प्रथम शब्द आया

करता है। श्रीरामचरित मानस में ही '**तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी॥**' स्पष्ट है। बोलचाल में भी जैसे अमुक विषय में सबने प्रथम स्थान=प्रधान स्थान अमुक सज्जन को मिला इत्यादि। इसी प्रकार यहाँ बैखरी वाणी में जिह्वा का प्राधान्य होने से 'अ र म्' से मुख्यतः जिह्वा से ही बोले जाने वाले अक्षर 'र' को प्रथम कर देने से व्याकरण के अनुसार उपर्युक्त क्रम से 'ओम्' ही 'राम' के रूप में परिवर्तित हो जाता है और इस उपर्युक्त क्रम को उलट देने से 'राम ही ओम्' हो जाता है।

इस प्रकार परावाणी में अनुभव होने वाले ध्वन्यात्मक शब्द ब्रह्म 'प्रणव' के लिखने में 'ॐ' और बोलने में 'ओम्' दोनों ही प्रतीकात्मक साकार रूपों के साथ राम-नाम की एकता अथवा अतिशय निकटता बराबर स्पष्ट हो जाती है।

अतएव साधना क्षेत्र में जो सुविधा 'ॐ' या 'ओम्' के द्वारा संभव होती है लगभग वह सारी सुविधा उसी प्रकार 'राम' नाम में भी संभव होती है। यहाँ तक कि रकार के बोलने का स्थान मुख्य रूप से बोलने की प्रधान इन्द्रिय जिभ्या ही होने से वैखरी वाणी में जप की साधना 'ओम्' की जगह 'राम' नाम के अभ्यास द्वारा करने से परावाणी के ध्वन्यात्मक शब्द ब्रह्म तक पहुँचने से अधिक स्वाभाविकता भी स्पष्ट है। जिस प्रकार प्रणव वेदों का सार है, तो राम भी वेदों के प्राण–"**विधि हरिहर मय वेद प्राण से।**" मानस में कहा है कि– 'प्रणव' में से 'र' निकलने पर 'पणव' = ढोल ही रहता है। 'ओम्' में से 'म' निकलने पर 'ओ' ही रहता है जो निरर्थक है अतः 'प्रणव' एवं 'ओम्' दोनों में 'राम' गुप्त है। बिना राम के 'प्रणव' व 'ओम' दोनों ही निरर्थक हैं।



❃ प्रणव के सूक्ष्म रूप = ॐकार और स्थूल रूप = पंचाक्षर मंत्र का स्ववचन और उनके जप की विधि ❃

'प्र' नाम है प्रकृति से उत्पन्न संसार रूपी महासागर का। 'प्रणव' इससे पार करने के लिये दूसरी (नव) नाव है। इसलिये इस ओंकार को 'प्रणव' की संज्ञा देते हैं। 'ॐकार' अपने जप करने वाले साधकों से कहता है' 'प्र–प्रपंच, न–नहीं है, वः–तुम लोगों के लिये।' अतः इस भाव को लेकर भी ज्ञानी पुरुष 'ओम्' को 'प्रणव' नाम से जानते हैं, इसका दूसरा भाव यों है–

'प्र–प्रकर्षेण, न–न्नयेत्, वः–युष्मान मोक्षम् इति वा प्रणवः।'

अर्थात् यह तुम सब उपासकों को बलपूर्वक मोक्ष तक पहुँचा देगा।' इस अभिप्राय से भी इसे ऋषी-मुनि 'प्रणव' कहते हैं।

अपना जप करने वाले योगियों के तथा अपने मंत्र की पूजा करने वाले उपासक के समस्त कर्मों का नाश करके यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है, इसलिये भी इसका नाम 'प्रणव' है। **'प्र = कर्मक्षय पूर्वक, नव = नूतन ज्ञान देने वाला।'** उन मायारहित महेश्वर को ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्ट रूप से नव अर्थात् शुद्ध स्वरूप हैं, इसलिये 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधक को नव अर्थात् नवीन = शिव स्वरूप कर देता है। इसलिये भी विद्वान पुरुष उसे 'प्रणव' के नाम से जानते हैं। अथवा प्रकृष्ट रूप से नव = दिव्य परमात्म ज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह 'प्रणव' है।

प्रणव के दो भेद बताये गये हैं-स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षर रूप जो **'ओम्'** है, उसे सूक्ष्म समझना चाहिए और **'नमः शिवाय'** इस पाँच अक्षर वाले मंत्र को स्थूल प्रणव समझना चाहिए। जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म हैं और जिसमें पाँचों अक्षर सुस्पष्ट रूप से व्यक्त हैं वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुष के लिये सूक्ष्म प्रणव के जप का विधान है। वही उसके लिये समस्त साधनों का सार है-यद्यपि जीवन्मुक्त के लिये किसी साधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह सिद्ध पुरुष है, तथापि दूसरों की दृष्टि में जब तक उसका शरीर रहता है, तब तक उसके द्वारा प्रणव जप की सहज साधना स्वत: होती रहती है। वह अपनी देह का विलय होने तक सूक्ष्म प्रणव मंत्र का जप और उसके अर्थभूत परमात्म-तत्व का अनुसन्धान करता रहता है, जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्म स्वरूप शिव को प्राप्त कर लेता है। सुनिश्चित है।

जो अर्थ का अनुसंधान न करके केवल मंत्र का जप कर लिया हो उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। जिसने छत्तीस करोड़ पंचाक्षर मंत्र का जप कर लिया हो उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। सूक्ष्म प्रणव के भी ह्रस्व और दीर्घ भेद से दो रूप जानने चाहिए, अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला इनसे युक्त जो प्रणव हैं उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं, वह योगियों के हृदय में ही स्थित होती है। मकार पर्यन्त जो 'ओम्' है वह अ उ म् इन तीनों तत्वों से युक्त है, इसीको ह्रस्व प्रणव कहते हैं। 'अ' शिव है 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनों की एकता है। वह त्रितत्व रूप है, ऐसा समझ कर ह्रस्व प्रणव का जप करना चाहिए। जो अपने समस्त पापों का क्षय करना चाहते हैं उनके लिये इस ह्रस्व 'ॐ' प्रणव का जप अत्यन्त आवश्यक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश में पाँच भूत तथा शब्द स्पर्शादि इसके

पाँच विषय-ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्यों की कामना के विषय हैं। इनकी आशा लेकर मन में जो कर्मों के अनुष्ठान में संलग्न होते हैं वे इस प्रकार के पुरुष प्रवृतमार्गी कहलाते हैं, तथा जो निष्काम भाव से शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे निवृत्तिमार्गी कहे गये हैं। प्रवृत पुरुषों को ह्रस्व प्रणव और निवृत्तों को दीर्घप्रणव का जप करना चाहिए। व्याहृतियों तथा अन्य मंत्रों की आदि में 'प्रणव' का उच्चारण करना चाहिए। 'प्रणव' का नौ करोड़ जप करने से मनुष्य शुद्ध होता है, फिर पुन: नौ करोड़ जप से पृथ्वी तत्व पर, फिर नौ करोड़ जप से जल तत्व पर, फिर नौ करोड़ जप से अग्नितत्व पर, फिर नौ करोड़ जप से वायु तत्व पर फिर नौ करोड़ जप करने से आकाश तत्प पर विजय पा लेता है, इसी प्रकार नौ-नौ करोड़ जप करके वह क्रमश: गंध, रस, रूप, स्पर्र्श और शब्द पर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़ जप करके अहंकार को भी जीत लेता है, इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणव का जप करके उत्कृष्ट बोध को प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योग का लाभ करता है। और जीवन्मुक्त हो जाता है।

(संक्षिप्त शिव पुराण से)

भगवान महादेव जी देवी पार्वती से कहते हैं कि षड़ाक्षर मंत्र का पूरा माहात्म्य करोड़ों वर्षों में भी कोई नहीं कह सकता। परंतु संक्षेप से हम सुनाते हैं। प्रलयकाल में स्थावर, जंगम, देव, असुर और नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं तुम भी (पार्वती) प्रकृति के रूप में लीन हो जाती हो। तब हम एकाकी रहते हैं। कोई दूसरा अविशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्ति द्वारा पालन किये हुए पंचाक्षर मंत्र में निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं, तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारण कर नारायण रूप से समुद्र में शयन करती है। उसके नाभिकमल से पंचमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करने की सामर्थ्य के लिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर उनके हित के लिये मैंने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों का उच्चारण किया। उन वर्णों को ब्रह्मा जी ने पाँच मुखों से ग्रहण किया ऑर वाच्य-वाचक भाव के द्वारा परमेश्वर को जाना।

यह पंचाक्षर मंत्र शिव का वाचक है। उन पाँच अक्षरों के त्रैलोक्यपूजित शिवजी वाच्य हैं। ब्रह्मा जी ने इस पंचाक्षर मंत्र का विधिपूर्वक दीर्घकाल तक जप कर सिद्धि प्राप्त की और तदनन्तर भगवान शिवजी को प्रसन्न करने के लिये मेरू पर्वत के मूजवान शिखर पर दिव्य हजार वर्षों तक तप किया, उनकी दृढ़ भक्ति देखकर शिव ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहित के लिये पंचाक्षर मंत्र के ऋषि, छन्द देवता, शक्ति, बीज, षडंन्यास, दिग्बन्ध और विनियोग का उपदेश किया, जो इस तालिका से उद्धृत किया जा रहा है-

बीज	शक्ति	स्वर	ऋषि	वर्ण	देवता	मुख	छन्द
प्रणव	पार्वती	उदात्त	ॐ	श्वेत	परमात्मा		गायत्री
,,	,,	,,	न	पीत	इन्द्र	पूर्व	,,
,,	,,	,,	मः	कृष्ण	रुद्र	दक्षिण	अनुष्टुप्
,,	,,	निषाद	शि	धूम्र	विष्णु	पश्चिम	त्रिष्टुप्
,,	,,	उदात्त	वा	वर्ण	ब्रह्मा	उत्तर	वृहती
,,	,,	स्वाति	य	रक्त	स्कन्द	ऊर्ध्व	विराट्

न्यास तीन प्रकार का है—उत्पत्ति, स्थिति और संहार—

1. उत्पत्ति न्यास ब्रह्मचारियों को करना चाहिए।
2. स्थिति न्यास गृहस्थ के करने योग्य है।
3. संहार न्यास के एकमात्र अधिकारी सन्यासी हैं।

इस प्रकारगुरु से प्राप्त पंचाक्षर मंत्र का जप करना चाहिये, क्योंकि सब यज्ञों में जप यज्ञ उत्तम है और सब यज्ञों में हिंसा होती है, किंतु जप यज्ञ हिंसा रहित है, गीता में स्वयं भगवान ने कहा है—**"जपोयज्ञोऽस्मि"** 'यज्ञों में जप यज्ञ मैं ही हूँ', यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रहादि भी भयभीत होकर जप करने वाले से दूरही रहते हैं। जप से पुरुष मृत्यु को भी जीत लेता है।

पुरश्चरण के समय मंत्र के वर्णों से चौगुना जप करे, रात को भोजन करें। सब प्रकार नियमों से रहे, आसन बाँध पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठकर एकाग्र चित्त हो मौन-भाव से जप करे और आदि अंत में पंचाक्षर जप पूर्वक प्राणायाम करे, अंत में 108 बीज = ॐ मंत्र का जप करें।

'ॐ' हृदयाय नमः, **'न'**-शिर से स्वाहा **'मः'**-शिखायै वषट् **'शिव'**-कवचाय हुं **'वा'**-नेत्राय वौषट् **'य'**-अस्त्राय फट्।

आचारहीन पुरुष का सब साधन निष्फल होता है। आचार ही परमधर्म है और परम तप है। आचार युक्त पुरुष को कहीं भी भय नहीं रहता। सदाचार के पालन करने से पुरुष ऋषी और देवता तक बन जाते हैं, मुख्यतः असत्य का त्याग करें, क्योंकि सत्य ही ब्रह्म है और असत्य ब्रह्म का दूषण है। असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य = चुगली, परस्त्री, पराया धन तथा हिंसा आदि को मन, बचन, कर्म से त्याग दे। दीर्घायु चाहने वाला पवित्र होकर गंगादि नदियों पर पंचाक्षर मंत्र का लक्ष जप करे। दूर्वा के अंकुर तिल और गुडूची = गिलोय का दस हजार हवन करे। अपमृत्यु निवारण के लिये शनिवार को अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करे और जप करे। व्याधि दूर करने के लिये एकाग्र चित्त हो एक लक्ष जप करे और नित्य आक की समिधा से

अष्टोन्तर शत हवन करे। उदर रोग के शान्त्यर्थ पाँच लाख मंत्र जप करके दस हजार हवन करे। नित्य सूर्य के सम्मुख पवित्र जल से अष्टोत्तर शतवार अभिमंत्रित करके पान करे। मोक्ष की इच्छा करने वाला निष्काम भाव से निरंता प्रेमपूर्वक जप करे। जप के प्रभाव से जानकर सदाचार परायण हो निरन्तर निष्काम जप करने से अवश्य कल्याण होगा।

इतिहासः—प्राचीन समय में एक बार बड़े तेजस्वी वत्स नामक मुनि भ्रमण करते हुए सूतजी के आश्रम में पहुँचे, सूतजी ने भक्ति से प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर मुनि की पूजा की और कुशल प्रश्न के अनन्तर सूत जी की प्रार्थना से चातुर्मास व्रत का अनुष्ठान करने के लिये वत्समुनि उनके यहाँ ठहर गये। सूतजी विनयपूर्वक उनकी सेवा करने लगे। महर्षि वत्स दैनिक कार्य से निवृत्त होकर रात्रि के समय अवकाश मिलने पर सूतजी को विचित्र कथाएँ सुनाया करते थे।

एक समय कथा के अन्त में सूतजी ने विस्मित होकर महर्षि वत्सजी से पूछा कि "हे भगवान्! आपका यह शरीर इतना सुकुमार है और आप अनेक विचित्र कथाएँ कहते हैं। हे तात! मुझे यह बतलाइये कि इतनी छोटी अवस्था में आपने ये घटनाएँ केसे देखीं? हे मुनीश्वर! यह आपकी तपस्या का प्रभाव है, अथवा किसी मंत्र का फल है?

वत्स मुनि हँसकर बोले—हे सूतजी! तुमने बहुत ठीक पूछा। यह मंत्र का ही प्रभाव है। मैं प्रतिदिन शिवजी के समीप उनके षडक्षर मंत्र का आठ हजार जप किया करता हूँ। इसी के प्रभाव से मेरी युवावस्था तीनों काल में एक सी रहती है और मुझे सदैव भूत-भविष्य का ज्ञान बना रहता है। मेरा जन्म हुए एक हजार वर्ष हो गये। हे महामते! सदाशिव की प्रसन्नता से मैंने जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की है, इसका वृत्तान्त मैं विस्तार से तुम्हें सुनाता हूँ।

एक बार वनों में भ्रमण करते-करते मैं महर्षि देवरात ऋषि के आश्रम पर पहुँचा। ऋषि के मृगावती नाम की एक रूप-गुण सम्पन्ना कन्या थी, उन्होंने शुभ मुहूर्त में बड़ी प्रसन्नता से मेरे साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। मैं मृगावती के साथ आनन्द से रहने लगा। परन्तु मेरे भाग्य में यह आनन्द अधिक काल के लिये नहीं बदा था।

एक दिन मृगावती अपनी सहेलियों के साथ वन में विचरण करने गई। घूमते-घूमते उसका पैर घास-फूँस से ढ़के एक भयंकर नाग के सिर पर पड़ गया, सर्प ने क्रोध में आकर मृगावती को काट लिया और वह तत्काल मर गयी। सखियों ने आकर यह दारुण वृत्तान्त मुझे सुनाया, मैं यह दुःखद वृत्तान्त सुनते ही हाहाकार करता घटना स्थल पर जा पहुँचा अपनी प्राणप्रिया को निर्जीव देखकर छाती पीट-पीट कर विलाप करने लगा, करुण स्वर से रोने लगा।

इस प्रकार हृदय विदारक विलाप करते-करते दु:खी होकर मैंने चिता बनाई। मृगावती के शव को रखकर मैंने आग लगा दी और स्वयं भी उस चिता पर चढ़ने लगा, इतने में ही कुछ मित्र इस दारुण वृतान्त को सुनकर वहाँ पहुँच गये और उन्होंने मुझे समझा बुझाकर आत्म हनन रूपी दुष्कर्म से रोक लिया एवं आश्रम में ले गये। आधी रात तक तो मैं किसी प्रकार विलाप करता आश्रम में पड़ा रहा, पर ज्यों ही मेरे समीपवर्ती लोग सो गये त्यों ही मैं कान्ता के वियोग में विलाप करता हुआ आश्रम को त्यागकर निर्जन वन की ओर निकल पड़ा। लेकिन वे मुझे फिर पकड़ लाये, मैं मौका पाकर कई बार निकला पर वे ढूँढ़कर पकड़ लाते, और अंतिम बार मुझे फटकारते हुए उन्होंने कहा—हे कामिन! तुमको धिक्कार है, ब्रह्मर्षि होकर तुम स्त्री के लिये इस तरह रोते हो? हम, तुम संसार के सब प्राणी तो भूमि में उत्पन्न हुए हैं वे सब मरेंगे। इनके लिये विलाप करने से क्या लाभ? किसी के साथ बहुत दिन तक वास नहीं होता, दूसरों की कौन कहे अपने शरीर का भी अधिक दिन तक साथ नहीं रहता। खोई हुई वस्तु, बीती हुई बात, अथवा मरे हुए प्राणी के लिये जो पुरुष सोच करता है, वह इस लोक और परलोक में दु:ख का पात्र होता है।

आश्रम में आने पर मेरा दु:ख कोप रूप में परिणित हो गया और मैंने आँखों के सामने आये हुए सभी सर्पों को मारने की प्रतिज्ञा की, अर्थात् सर्प जाति का विनाश करना ही मैंने अपने जीवन का एकमात्र कर्तव्य बना लिया, और अनेकों सर्पों को मार डाला, इस प्रकार असंख्य सर्पो को मारता हुआ मैं एक दिन एक सरोवर के समीप जा पहुँचा। वहाँ मुझे एक बूढ़ा, बनैला साँप दिखाई दिया उसको देखते ही मैंने मारने के लिये अपना डण्डा उठाया।

अपने सिर पर काल को सवार देखकर उस वृद्ध सर्प ने नम्रतापूर्वक कहा कि हे ब्राह्मण सत्तम! मैं यहाँ एकान्त में पड़ा अपना जीवन व्यतीत करता हूँ न किसी को कष्ट छति पहुँचाता हूँ फिर मुझे निरअपराधी को आप क्यों मारते हैं?

उसने मुझसे बहुत प्रार्थना की पर मैंने अपना डण्डा उस पर चला दिया। डण्डा लगते ही सर्प का शरीर तो न जाने कहाँ चला गया, और मुझे अपने सामने सूर्य के समान तेजस्वी एक महापुरुष दिखाई पड़ा, यह घटना देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, और मैं उस पुरुष को प्रणाम कर कहने लगा कि हे महापुरुष! मैंने कोपवश बहुत अनुचित कार्य किया है, कृपया मेरा अपराध क्षमा कीजिये। अब दया करके मुझे यह बतलाइये कि आप कौन हैं और आपने सर्प का शरीरा क्यों धारण किया था, किसी के शाप से ऐसा हुआ या यह आपकी एक लीला मात्र थी।

उस महापुरुष ने प्रसन्न मन से गम्भीर वाणी में उत्तर दिया कि हे मुने! मैं आपको अपना पूरा वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें।

इससे पूर्वजन्म में मैं चमत्कारपुर में निवास करता था, ईश्वर की दया से मैं परम तेजस्वी एवं धन-धान्य से समृद्ध था, उसी नगर में सिद्धेश्वर महादेव का विशाल मन्दिर था, एक दिन बड़े उत्साह के साथ उस शिवालय में उत्सव मनाया गया, नाना प्रकार के बाजे बजने की ध्वनि से सारा आकाश भर गया था। उस आवाज को सुनकर हजारों शैव तथा अन्य शिव-भक्त दूर-दूर से वहाँ आ पहुँचे, सब भक्त भगवान सिद्धेश्वर की वंदना कर उनके सामने बैठ जाते, और अनेक देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों की दया-धर्म सत्य आदि के उपदेश देने वाली विविध प्रकार की कथाएँ कहते-सुनते थे। भक्ति पूर्ण हृदय वाले कितने ही साधु जन, नृत्य, गान, बादन आदि में मग्न हो जाते, कुछ धनिक लोग दीन, अन्ध और दरिद्रों को धन देकर संतुष्ट करते थे।

उस समय जवानी के मद में चूर मैं भी अपने मित्रों के साथ तमाशा देखने की गरज से वहीं जा डटा। मैं अज्ञान से अंधा हो रहा था, मेरे हृदय में शिव की भक्ति तो थी नहीं, मैं केवल उस उत्सव में विघ्न डालकर आनन्द लूटना चाह रहा था। अन्त में मैंने जीभ लपलपाते हुए एक बड़े लम्बे भयंकर जल सर्प को उठाकर उन लोगों के बीच में फेंक दिया। साँप को देखते ही सब लोग डर के मारे इधर-उधर भाग गये। केवल एक सुप्रभ नामक महान तपस्वी परमात्मा के ध्यान में निमग्न, समाधि लगाये बैठे रहे, यहाँ से कमलासन पर विराजमान, अनिंद्य, अभेद्य, जरा-मरण से रहित वेद-नाथ महेश्वर के ध्यान में लीन थे। परमानन्द से उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। सारा शरीर रोमांचित था, इस स्थिति में उन महामुनि को कहाँ क्या हो रहा है, इसका लेश मात्र भी ज्ञान नहीं रह गया था।

सर्प को और कोई तो मिला नहीं, यही समाधिस्थ मुनि मिले, उसने इनके शरीर को भली-भाँति जकड़ लिया। इसी बीच में सर्वशास्त्र पारंगत, परम तपस्वी श्रीवर्धन नामक उनके शिष्य वहाँ आ पहुँचे। पूज्य गुरुदेव के शरीर को सर्प से जकड़ा हुआ और मुझे उनके समीप ही खड़ा देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया, उनकी आँखें लाल हो गयीं, होंठ फड़कने लगे, वे अत्यंत कठोर स्वर में कहने लगे कि, "यदि मैंने तीव्र तप किया हो, सच्चे हृदय से गुरु की शुश्रूषा की हो और निर्विकल्प-चित्त से भगवान महेश्वर का ध्यान किया हो तो यह ब्राह्मणाधम इसी समय सर्प योनि को प्राप्त हो जाय।" उन महातपस्वी का वचन अन्यथा कैसे हो सकता था ? शाप देते ही मैं तुरंत मनुष्य से सर्प बन गया ।

कुछ देर बाद सुप्रभ मुनि का ध्यान टूटा, उन्होंने अपने शरीर में लिपटे हुए एक भयंकर सर्प को और पास ही में सर्प के आकार में मुझे तथा अपने आस-पास भयभीत समुदाय को देखा। तुरन्त सब बातें उनकी समझ में आ गयीं। वे मेरी ओर

कृपा दृष्टि से देखते हुए श्रीवर्धन से बोले, "वत्स, तुमने इस दीन ब्राह्मण को शाप देकर तपस्वियों के योग्य कार्य नहीं किया। जो मान और अपमान को समान समझता है वही तपस्वी सिद्ध पद पा सकता है। तुमने बिना समझे-बूझे इस शाप को दे दिया, अत: अब इसके सब अपराध क्षमा करके इसे शाप से मुक्त कर दो।

परम सत्यवादी श्रीवर्धन ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा कि, "हे पूज्यपाद गुरुवर! अज्ञान से अथवा ज्ञान से मेरे मुख से जो निकल गया वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। जब हँसी में भी मेरे मुख से निकले हुए वचन झूँठे नहीं हुए हैं, तो शाप के निमित्त कहे गये वाक्य कैसे झूँठे हो सकते हैं। मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करके मुझे अनुग्रहीत करें।

महर्षि सुप्रभ ने कहा कि "मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। तुम्हें इस प्रकार उपदेश देना, इस समय के लिये नहीं, बल्कि इसलिये है कि भविष्य में तुम्हें कभी ऐसा करने का साहस न हो। गुरु का यह कर्त्तव्य है कि वह वयस्क शिष्य पर भी सदा शासन करता रहे, तुम तो अभी बालक हो, तुम्हें उपदेश देना तो मेरा परम कर्त्तव्य है, क्षमा से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, तपस्वियों के लिये क्षमा से बढ़कर कोई शस्त्र है ही नहीं। पापी के प्रति भी अपने मन में पाप-बुद्धि न आनी चाहिए, उपकार करने वाले के प्रति जो सज्जनता प्रकट करता है, उसमें क्या विशेषता है? जो मनुष्य अपकार करने वाले के साथ उपकार करता है, वास्तव में वही साधु है।

इस प्रकार अपने शिष्य को अनेक प्रकार के उपदेश देकर ऋषि मुझसे कहने लगे-"हे भाई! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दु:ख है। परंतु अब कोई उपाय नहीं है। इस सत्याश्रित का कथन त्रिकाल में भी अन्यथा नहीं हो सकता। अत: तुमको सर्पयोनि से मुक्त होने के लिये कुछ समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

तब मैंने बड़ी नम्रता से पूछा, "हे महाराज! मैं बड़ा अज्ञानी और दीन हूँ, मुझ पर कृपा कर बतलाइये कि इस शाप का अन्त कब होगा?"

महर्षि सुप्रभ ने कहा, "जो व्यक्ति शिवालय में एक घड़ी भर नृत्य, गीत आदि करता है उसके पुण्य का पारावार नहीं रहता और जो उत्सव में एक घड़ी भर भी विघ्न करता है उसके पाप का ठिकाना नहीं रहता। तुमने इस महोत्सव में विघन डालकर घोर पाप किया है, अब केवल बातों से काम नहीं चलेगा। मैं उपाय बताता हूँ, उसके करने से ही इस घोर पातक से छुटकारा मिल सकता है। वह उपाय है शिवषड अक्षर मंत्र का जप। शिवजी के '**ॐनम: शिवाय**' इस षडअक्षर मंत्र के जप करने से ब्रह्म-हत्या जनित पाप से मुक्ति मिल जाती है। षडाक्षर मंत्र का यदि दस बार जप

किया जाय तो एक दिन के सब पाप दूर हो जाते हैं। बीस बार के जप करने से सालभर के पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यदि तुम जल में बैठकर इसी मंत्र का जप करो तो धीरे-धीरे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायेंगे। कुछ दिनों के अनन्तर वत्स नामक एक ब्राह्मण आवेंगे, उनके डण्डे की चोट खाते ही तुम्हें इस योनि से मुक्ति मिल जायेगी।

महर्षि के उपदेश से मैं तभी से इस जलाशय में बैठा भक्तियुक्त चित्त से षड-अक्षर मंत्र का जप किया करता था। आज आपके प्रसाद से मुझे सर्प योनि से छुटकारा मिल गया, देखिये मुझे ले जाने को यह देव प्रेषित दिव्य विमान आ रहा है, अब मैं इस पर बैठ कर परम धाम चला जाऊँगा। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है, आप बतलाइये कि इस ऋण से मुक्त होने के लिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

वत्स ने कहा कि, यदि आप मेरा कुछ उपकार करना चाहते हैं तो मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरा यह दु:ख दूर हो जाय और शत्रु, व्याधि, दरिद्रता आदि भी मुझे कभी दु:ख न उठाना पड़े।

उस दिव्य पुरुष ने कहा कि "हे मुने! शिवजी का षडाक्षर मंत्र प्राणियों के सब अशुभों को हरण करता है। आप उस मंत्र का यथाशक्ति दिन-रात जप कीजिये, इससे आपकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी। और आप सब पातकों से मुक्त होकर स्वर्ग, मोक्ष आदि जो कुछ चाहेंगे सब अनायास ही आपको मिल जायेगा परंतु हे ई :वर! यह मंत्र तभी सिद्ध और फलदायक होगा जब आप पूर्णरूप से हिंसा का परित्याग कर देंगे। इस प्रकार अहिंसामय उपदेश देकर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमान पर चढ़कर स्वर्गलोक को चला गया। उसके चले जाने पर मेरे मन में निष्कारण इतने सर्पों के मारने का बड़ा पश्चाताप हुआ, और निश्चय किया कि अब मैं हिंसा का सर्वथा परित्याग कर शिव दीक्षा ले महेश्वर की पूजा करूँगा।

उसी समय मैंने भक्ति युक्तचित्त से शिव दीक्षा लेकर मौन धारण कर दिन-रात सारा समय एक वृक्ष के नीचे बिताता हुआ भस्म रमाये षड अक्षर मंत्र का जप करता और दिचरने लगा। अंत में सिद्धेश्वर महादेव की शरण में पहुँचा अहर्निश उनकी आराधना और षडक्षर मंत्र का जप करने लगा।

इस तप के प्रभाव से मेरा यौवन सदा के लिये स्थायी हो गया, मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी कि जिससे मैं एक स्थान पर बैठे हुए ही दूसरे लोक का वृत्तान्त जान सकता हूँ, उसी तप के प्रभाव से मुझमें आकाश मार्ग से आने-जाने की शक्ति भी आ गई, इस प्रकार सूतजी के प्रश्नों का उत्तर देकर वत्सजी लोकलोकान्तर में भ्रमण करते हुए अंत में शिव-लोक को चले गये।



❀ हिन्दी साहित्य में शिव ❀

यद्यपि अभी तक संस्कृत की तरह हिन्दी में शिव-सम्बन्धी किसी महाकाव्य अथवा खण्डकाव्य की रचना नहीं हुई, तो भी हिन्दी में शिव-साहित्य का अभाव नहीं है। यों तो हिन्दी में शिव-विषयक रचना प्रायः सभी रसों में थोड़ी-बहुत हुई है, पर प्रधानतः हास्य, वीर, भयानक, रौद्र-इन चार रसों में अधिक हुई है, नौ रसों का सार यह है-

❀ श्रृंगार रस ❀

"कुन्दसम, इन्दुसम, गंग की तरंग सम,
हास्य के उमंग सम जस कीर्ति के समान।
शारद रसेन्द्र श्वेत, पंकज-चमेली सम,
मोती सम, हीरा सम, गज-दन्त अनुमान॥
केबड़ा कपूर सम विज्नू के विकास सम,
चन्दन सुवास सम, अमृत को रंग मान।
चाँदी हूँ सों उज्जर बदन शिव शंकर को,
लखि मोही पारवती अरघंग भई आन॥"

❀ वीर रस (दानवीर) ❀

"चाउर चढ़ाये चार, देत बेग फल चार,
दुःख दोष दूर करै गाल के बजाये ते।
'शारदरसेन्द्र' कोंन दानवीर शंकर सों,
मुकति देत सबही कूँ काशी में समाये ते॥
दीनन को कष्ट नष्ट करिबे मे हैं समर्थ,
इन्द्र कर देत नेंक सिर के नवाये ते।
वरदान दाता कोई, शिव सो दिखाता नहीं,
धनद बनाता है विपत्ति के सुनाये ते॥"

कर्मवीर-"उदध-मथत जो हलाहल कढ़ो कराल,
ताकी ज्वाला भाल महाकाल सी तपायमान।
'शारद रसेन्द्र' भये व्याकुल धरा-धरेन्द्र,
जरन त्रिलोक लाग्यो प्रलय सोभा समान॥
कर्मवीर तू ही शिव शम्भु बिन स्वार्थ धाय,
लील गये ताको लीलकंठ जानिये प्रमान।

तेरह (13) रतन और सब बाँट दिये ठौर ठौर,
दौर-दौर सुरासुर कीन्ह जासु गुण गान॥"

धर्मवीर— "सती कीन्ह सीता को सरूप बनबीच जाय,
रामलीन चीन्ह लौटि शंकर पै आई है।
शारद रसेन्द्र सो समुझि शिवशम्भु गये,
ता तन ते तिय भाव दीन्ह बिलगाई है॥
दक्षगेह यज्ञदेखि भई अपमानित सो,
हिमगिरि पहँ पारवती बनी जाई है।
तब धर्मवीर ईश लीन्हि अपनायी ताहि,
लोक सुखपाई बजी आनन्द बँधाई है॥"

दयावीर—भागीरथी भूपभारी तप गंगहेतु कीन्ह,
ब्रह्मा तब नीन्ह ताहि पर कौन रखवार।
'शारदरसेन्द' वह शंकर की शरन में आयो,
दयासिंधु कहि करन लाग्यो पुकार॥
प्रभु ह्वै प्रसन्न वेग रोकिवे को पैज कीन्ह,
महातीव्र धार जटाजूट में लयी सँभार।
पुनि कछु ताहि मैं से जल को दियो निकार,
तार तासु पितृ, मृत्युलोक से लिये उवार॥"

युद्धवीर—"त्रिपुरासुर दानव जो दुःख दानव, देवन वाहि पछार दयो।
तब शारद शंकर पाहिं पुकार परी सुनतै दुःखदार नश्यो॥
चढ़ि नादिया पै त्रिशूल लिये, अरिवृन्दन को ललकार दयो।
तिहुँ लोकन में उपकार कियो, रण रंग मचाइ संहार कियो॥"

❋ वीभत्स रस ❋

"सिर कंघी कभी नहीं भूल परी, चिता भस्म से बार लये लपटाय।
वयताल कपाल में हाल को रक्त, लिये खड़े हैं मुख लार बहाय॥
दसमाथ तहाँ निज माथ को होमत, गंध चिराइँधि सूँघी न जाय।
यह कैसे विभत्स से आप प्रसन्न ह्वै, देत अहो वर हे गिरि राय॥"

❋ भयानक रस ❋

"बड़ शीश जटान में सेस गुँथे, जहरीले करीले रहे फुँफकार।
न 'रसेन्द्र' तहाँ गम जान की है, बड़ी आफत जान की होत निहार॥
गिरनाथ के माथ में तीसरे नेत्र से ज्वाल जगै भय होत अपार।
पहरे में खबीस पचीसन हैं रहे, दंत हैं पीस भयानक मार॥"

❋ अद्‌भुत रस ❋

"गंग जटा जूट में भुजंग खूँट-खूँटन में, चन्द्र और तीनों नेत्र भभकत माथ में।
'शारद रसेन्द्र' कंठ नीलम रतन सम, आधे अंग पारवती रहत है साथ में॥
आप पंचानन तो सुवन षटानन हैं, दूजो पुत्र गज-तुण्ड मूँस बाग हाथ में।
बैल, सिंह, मोर बैठे वाहन हैं एक ठौर, गौर करो अद्‌भुत सरूप विश्वनाथ में॥"

❋ रौद्र रस ❋

"तीजो नेत्र ज्वाल-भाल धंधकत प्रलयसो,
कंठ में हलाहल हू भभकत क्रोध से।
'शारद रसेन्द्र' रौद्र रूप महादेव जी को,
त्रिभुवन छिन्न में सँहारत प्रबोध से ॥
बाधा ध्यान में करन कुसुम कमान लैके,
आयो कामदेव सर्व देव अनुरोध से।
छार भयो काम तबते अनंग पायो नाम,
कोंन कोनों धाम बचे शंकर विरोध से॥ "

❋ करुणा रस ❋

"रति धाय गिरी पग शंकर पै, पति कों कर छार महागति दीन्हीं।
अब काह करौं उनके बिना मैं, प्रभु की बड़ी शक्ति नहीं उन चीन्हीं॥
करुना सुनि कैं, करुनानिधि ने, करुना थल पै करुना अति कीन्हीं॥
वरदान दियो हरि-पूत बनैं वह, द्वापर में सोइ संगति लीन्हीं॥"

❋ हास्य रस ❋

(1) "बन कर बनरा विवाह हेतु विश्वनाथ,
लेकर बरात आये हिमगिरि दर में।
'शारदरसेन्द्र' द्वार चार की तैयारी माँहि,
डार दीन्ह मालिन हू माला बना गर में॥
वार-वार घूँघट उघार माँगे उपहार,
तब शंभु लीन्ह काढ़ कारौ नाग कर में ।
देखि विषधर डरकर हरबर नार,
मारत गुहार भागि जाय घँसी घर में॥"

(2) "एक समय पारवती लैंके धूनी की भभूती,
होरी होरी कहि जटा जूट पर दीन्हीं डार।

सो 'रसेन्द्र' नैंनन में नाग के परी तनक,
भड़क उठयो सो चन्द्रपर दीन्ह फन मार॥
चन्द्र ते चुयो अमी गिरयो सो बाघम्बर पै,
जीवित भयो सो लगो करन तहाँ चिंघार।
नंदी केरी नाथ विश्वनाथ रहे बाँधे हाथ,
भागत ही घसिटे हँसी तहाँ भई अपार॥"

❋ पार्वती वचन ❋

(3) "रोज-रोज भीख माँगिबो न भल भोलानाथ,
द्वार-द्वार बागत कपाल लीनेह कर में।
'शारदरसेन्द्र' शान सकति ना सिरावो स्वामी,
खेती कीजिये तो रहो गुजर बसर में॥
गणपति गौड़े खेत षटमुख खोदें खाद,
ससुरजू भैंरा चढ़ि ताकेंगे कगर में।
ऐहो हर एक हर आपुहू करैं तैयार,
जमको महिरव एक बैल बाँधो घर में॥"

❋ शिव के श्रीवचन पार्वती ❋

(4) "नहिं अंबरअंग न संग सखा, बहु भूतन के डर सों डरतो।
डरतो पुनि साँपन की सुसकारन, भाँग बटोरत ही मरतो॥
मरतो जिहि जानि न जन्म कथा, नर बाहन सों खरना चरतो।
हँसि पारवती कहि शंकर सों, हम ना वरतीं तुम्हैं को वरतो॥"

❋ पार्वती वचन शिव प्रति ❋

(5) "इन भूत पिरेत पिशाचन के डर से निसिवासर ही डरती।
दधि दूध न अन्न हूँ ढूढ़े मिलै नित भाँग भकोसत ही मरती।
नहिं अम्बर अंग दिगम्बर के तन माहिं भभूति मल्यो करतीं।
हँसि पावतीं कहैं शंकर सों, हम नावरती तुम्हें को वरती॥"

❋ शान्त रस ❋

"मूँसा पै न खटपट साँप, साँप पै न मोर, बैल पै न सिंह हेरै बैठे एक ठौर हैं।
'शारदरसेन्द्र' चन्द्र मन्द मन्द दीप्तमान गंग तीव्र धार भूलि बनी सिरमौर है॥
दायें षटमुख सेनापति हैं सचेत हेत, बाएँ गोद गनपति को विठाये गौर हैं।
सावधान शंकर हैं मानो शांत रूप भूप, हाथ में है मालागाथ में लगाये खौर है॥"

दोहा—"नौ रस शंकर के कवित्त, 'शारद' जो धर ध्यान।
पढ़ै सुनै ताकूँ सदा, जग में है कल्यान॥"

हिन्दी में शिव का रूप 'जटाजूट सहित, अंग में सर्पो को सिर पर गंगाजी को और ललाट पर चन्द्रमा को धारण किये हुए, दिगम्बर वेष, कभी-कभी मृगछाला पहने, बायें हाथमें डमरू और दाहिने में त्रिशूल लिये, सर्वांग में भस्म लेपन किये, नीलकण्ठ, कैलाशवासी = श्मशानवासी भी, प्रेत, भूत, पिशाच आदि गणों के साथ, वामांग में पार्वती और दाहिने में गणेश और कार्तिकेय के सहित तथा सामने हाथ जोड़े नंदी के सहित, प्राय: ऐसा ही चित्रित किया गया है। शिवजी का स्वभाव हिन्दी रचनाओं में प्राय: इस प्रकार वर्णन किया गया है कि वे पल में प्रसन्न और पल में अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं। जिस समय वे क्रुद्ध होते हैं उस समय वे अपना तृतीय नेत्र खोल देते हैं और उसकी ज्वाला से सारा संसार भस्म हो जाता है। यही उनकी प्रलयंकारी मूर्ति है। इसके साथ ही साथ शिवजी को औढ़रदानी, पूर्णयोगी और देवाधिदेव भी का गया है।

शिव-विषयक रचना सबसे अधिक जिस रस में पाई जाती है वह है हास्य रस। यदि हम कहें कि हिन्दी में हास्य रस की उत्पत्ति शिवजी ने ही की है तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। हास्य रस में कविता करने वाला शायद ही ऐसा कोई कवि जिसने शिव-विषयक दो-चार कवित्त न लिखे हों-शिवजी से ठठोली न की हो, देखिये महाकवि पद्माकर भोले बाबा के परिछन का कैसा सुन्दर चित्र खींचते हैं-

कवित्त—"हँसि-हँसि भजैं देखि दूलह दिगम्बर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाहन में।
कहैं 'पद्माकर' सु काहूँ सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखैं,हँसैं सोई तहाँ राह में॥
मगन भयेई हसैं नगन महेश ठाड़े,
औरैं हँसेऊ हँसैं हँसी के उछाह में।
सीस पर गंगा हँसै, भुजनि भुजंगा हँसैं,
हाँस ही कोदंगा भयो नंगा के विवाह में॥"

और भी देखिये-उस समय शंकरजी को हार पहिनाने मालिन आई—

कवित्त—"शंकर के ब्याह में उछाह भौ अनेक भाँति,
मालिनलै आई गूँथ फूलन के हरवा।
'शारद रसेन्द्र' दर्श पायो मन भयो हर्ष,
दिहिसि पिन्हाय तुर्त शंकर के गरवा।
हँसि-हँसि नैंन मटकाय रहे घूँघट ते,
भाँगति इनाम मोती हार सत लरवा।

डारि हाथ गरवा उठायो व्याल करवातौ,
मारत गोहरवा सो भागि चली घरवा॥"

कैसा सुन्दर पुरस्कार रहा, देखिये 'बचनेश जी' शंकरजी की ठनठन गोपाली का हाल कितनी सुंदरता से वर्णन करते हैं—

कवित्त—"माँगें कहा अम्बर तैं आप ही दिगम्बर हैं,
माँगें कहा भूषण कपाल-व्याल धारी तैं।
माँगौं कहा बाहन तिहारे एक बूढ़ो बैल,
माँगै कहा पाक विष-आक को अहारी तैं॥
माँगें कहा धाम है मसान को प्रवासी देव,
माँगें कहा तोसों धन विदित भिखारी तै॥
'बचनेश' नाथ हाथ जोरि यही माँगे हम,
हर है तो हर हर विपति हमारी तैं॥"

देखा-माँगने का ढंग? ऐसा बढ़िया तरीका कि जिससे देना ही पड़े।

शंकरजी बड़े कठोर शासक हें, क्या मजाल कोई चूँ तक भी कर सके। इसी शासन का नमूना भी 'बन्धु' कवि हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं-

सवैया—"सिंह न बैल से बोलै कछू, न भुजंगम मूषक ओर निहारे।
मोर रहै बनि मित्र भुजंग को, प्रेत-पिशाच है दीनता धारे॥
देख्यो दिगम्बर के घर में, हरि हकेड़ हूँ मिले दाँत निकारे।
और की 'बन्धु' है का गति, भंगड़ नंगा से हैं भगवान हू हारे॥"

हैं न ब्रिटिश गवर्नमेंट से भी कठोर? और भी देखिये, कविता कामिनी कान्तजी नाथूराय जी 'शंकर' शंकर से कैसी जबरदस्त ठिठोली कर रहे है—

सवैया—"शैल विशाल महीतल फोड़ि बढ़े, तिनको तुम तोड़ कढ़े हो।
लै लुढ़की जलधार धड़ाधड़ने, धर गोल-मटोल गढ़े हो॥
प्राण बिहीन कलेवर धार विराजि रहे न लिखे न पढ़े हो।
हे जड़ देव शिलासुत 'शङ्कर' भारत पै करि कोप चढ़े हो॥"

अच्छा अब जरा शिव-शिवा विनोद की बहार भी देख लीजिये। श्रीपार्वती जी कहती हैं—पूर्व में नं० 5 पर हास्य रस में सवैया लिखा जा चुका है 'हँसि पार्वती कहैं शंकर सों' हम वावरती तुम्हें को वरतो-इसे सुन, शंकर महाराज भला कब चुप रहने वाले थे, झट बोल उठे—

सवैया—"तज्रि रम्य मनोरम दर्शन को, इन आय पहारन मैं मरतो।
ससुरारि सबै जड़ लोग न एक, वृथा अपमान में को अरतो॥
चढ़ि सिंह लिये कर आयुध आचरती तुम को तब आचरतो।
हँसि शंकर शैल सुता से कहैं, हम ना वरते तुम्हैं को वरतो॥"

अब जरा उमा-कमला संवाद और देख लीजिये, पीछे दूसरे रस चखेंगे, कमला पूछती है, उमा उत्तर देती हैं–

कवित्त–"भिक्षुक तिहारो कहाँ? बलि मखशाला जहाँ,
सर्पन को संगी? कहूँ ह्वै है क्षीर सागर में।
परी बहुरंगी! बैल वारो कहाँ नाचत है?
कीन्हे तिरभंगी कहूँ ह्वै है ग्वाल-बालन में॥
चाँवर चबैया कहाँ? ह्वै है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ? पूतना के घर में।
सिंधु सुता आन मिली, तर्क सों वितर्क करी,
गिरिजा मुसकात जात झारी लिये कर में॥"

'रसखान' जी कहते हैं कि इनके स्वरूप का ध्यान करते ही सारे दु:ख द्वन्द्व मिट जाते हैं–

सवैया–"यह देखु धतूरे को पात चबात, औ गात में धूर रमावत है।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं, फन से सँपनी फहरावत है॥
गल खाल कपाल की माल विसाल, सो गाल बजावत आवत है।
'रसखानि' जोई चितवै चित दै, तिहि को दु:ख द्वन्द भगावत है॥"

'सेनापति' जी बेल पत्र से ही भोले बाबा को प्रसन्न होते देखते हैं, वे कहते हैं–

कवित्त–"सोहत उतंग जाको उतभंग ससि संग,
गंग गौरि अरधंग काम प्रतिकूल है।
देवन को मूल 'सेनापति' अनुकूलकरि,
चाम सारदूल कौ सदाकर त्रिशूल है॥
कहाँ भटकत अटकत क्यों न तामें मन,
जाते आठ सिद्धि नवनिद्धि रिद्धि तूल है।
लेत ही चढ़ाइबे को जाके एक बेलपात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है॥"

तुलसीदास जी, क्योंकि–

"औढ़र दानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे॥
सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई॥"

(रामचरितमानस)

रीतिकाल कवियों में सेनापति का अपना विशिष्ट स्थान है। उन्होंने उपरोक्त कवित्त में भगवान शिव के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि भक्त के द्वारा शिवजी पर चढ़ाने के लिये एक बेलपत्र हाथ में लेते ही वे उसे चार फल=अर्थ, धर्म,

काम, मोक्ष अग्रिम रूप में देने के लिये तैयार हो जाते हैं।

आधुनिक काल के कवियों में श्री बालकृष्ण द्वारा रचित शिवजी की स्तुति अत्यन्त लोकप्रिय है। उनके द्वारा प्रस्तुत शिवजी की आरती का मनोहारी दृश्य दृष्टव्य है—

कवित्त—"हरि कर दीपक बजावैं शंख सुरपति,
गणपति झाँझ भैरों झालरझरत हैं।
नारद के करबीन, शारदा जपत जस,
चार मुख चार वेद विधि उच्चरत हैं॥
षटमुख रटत सहस्त्रमुख 'शिव-शिव',
सनक सनकादि पाँयन परत है।
'बालकृष्ण' तीन लोक तीस और तीन कोटि,
ऐते शिव शंकर की आरती करत हैं॥"

श्री देवीदासजी ने भोले बाबा को राजनीतिज्ञ बताकर बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

राजनीतिज्ञ शंकर—"मूँसे पर साँप राखै, साँप पर मोर राखै,
बैल पर सिंह राखै, वाकै कहा भीति है।
पूतनि कों भूत राखै, भूत कों विभूत राखै,
छमुख कों गजमुख यहै बड़ी नीति है॥
काम पर बाम राखै, विष को पियूष राखै,
आग पर पानी राखै सोई जग जीति है।
'देवीदास' देखौ ज्ञानी, शंकर की सावधानी,
सब विधि लायक पै राखैं राजनीति है॥"

❃ भगवान शंकर ❃

'शंकर' का अर्थ है कल्याण करने वाला। अतः भगवान शंकर का काम केवल दूसरों का कल्याण करना है, जैसे संसार में लोग अन्न-क्षेत्र खोलते हैं, ऐसे ही भगवान शंकर ने काशी में मुक्ति का क्षेत्र खोल रखा है, गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

"मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस सम्भु भवानि, सो काशी सेइअ कस न॥"

शास्त्र में भी आता है-'काशी मरणान्मुक्तिः'। काशी को वाराणसी भी कहते हैं। 'वरुणा' और 'असी' दोनों नदियाँ यहाँ आकर गंगाजी में मिलती हैं, उनके बीच का क्षेत्र 'वाराणसी' कहलाता है। इस क्षेत्र में मरने वालों की मुक्ति हो जाती है। यहाँ

शंका होतीं कि काशी में मरने वाले के पापों का क्या होता है? इसका समाधान है कि काशी में मरने वाले पापी को पहले 'भैरवी यातना' भुगतनी पड़ती है, फिर उसकी मुक्ति हो जाती है। भैरवी यातना बड़ी कठोर यातना है जो थोड़े समय में सब पापों का नाश कर देती है। काशी केदार खण्ड में मरने वाले को तो भैरवी यातना भी नहीं भोगनी पड़ती। सालगरामजी ने कहा है—

कवित्त—जग में जिते जड़ जीव जाकी अन्त समय,
जम के जबर जोधा खबर लिये करें।
काशी पति विश्वनाथ वाराणसी वासिनी की,
फाँसी यम नाशन को शासन दिये करें॥
मेरी प्रजा ह्वैकें किमि पेहैं काल दण्ड त्रास,
'सालग' यही विचार हमेश हिये करें।
तारक की भनक पिनाकी यातें प्रानिन के,
प्रान के प्रयान समय कान में किये करें॥"

काशी में मरने वालों के दायें कान में भगवान शंकर तारक मंत्र 'राम' नाम सुनाते हैं जिसको सुनने से उसकी मुक्ति हो जाती है। अध्यात्म रामायण में शंकरजी कहते हैं—

"अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमुर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम नाम॥"

(युद्ध का० 15 |62)

हे प्रभो! आपके नामोच्चारण से कृतार्थ होकर मैं दिर-रात पार्वती के साथ काशी में रहता हूँ और वहाँ मरणासन्न मनुष्यों को उनके मोक्ष के लिये आपके तारक मंत्र 'राम' नाम का उपदेश देता हूँ गोस्वामीजी कहते हैं-"महामंत्र जोइ जपत महेशू। काशी मुकति हेतु उपदेसू॥"

भगवान शंकरजी का 'राम' नाम पर बहुत स्नेह है। एक बार कुछ लोग एक मुरदे को श्मशान में ले जा रहे थे और 'राम नाम सत्य है' ऐसा बोल रहे थे। शंकरजी ने राम-नाम सुना तो वे भी उनके साथ हो लिये। जैसे पैसों की बात सुनकर लोभी आदमी उधर खिंच जाता है, ऐसे ही राम-नाम सुनकर शंकरजी का मन भी उन लोगों की ओर खिंच गया। अब लोगों ने मुरदे को श्मशानमें ले जाकर जला दिया और वहाँ से लौटने लगे। शंकरजी ने देखा तो विचार किया बात क्या है? अब कोई भी आदमी राम-नाम नहीं ले रहा है। उनके मन में आया कि उस मुरदे में ही कोई करामात थी, जिसके कारण ये सब लोग राम-नाम ले रहे थे। अतः उसी के पास जाना चाहिये।

शंकरजी ने श्मशान में जाकर देखा कि वह तो जल कर 'राख' हो गया है। अत: शंकरजी ने उस मुर्दे की राख अपने शरीर में लगा ली और वहीं रहने लगे। राख और मशान दोनों के पहले अक्षर लेने से 'राम' हो जाता है। एक कवि ने कहा है—

कवित्त—"रुचि रकार बिन तजदी सती सी नारी,
कीन्हीं नहिं रति रुद्र पायके कलेश को।
गिरिजा भई है पुनि तप ते अपर्णातबे,
कीन्हीं अर्धंगाप्यारी लागी गिरिजेश को॥
विष्णुपदी गंगा तउ धूर्जटी धरिन शीश,
भागीरथी भई तब धारी है अशेष को ।
बार-बार करत रकार व मकार ध्वनि,
पूरण है प्यार 'राम-नाम' पै महेश को॥"

सती के नाम में 'र' कार अथवा 'म' कार नहीं है, इसलिये शंकरजी ने सती का त्याग कर दिया। जब सती ने हिमाचल के यहाँ जन्म लिया तब उनका नाम 'गिरिजा'='पार्वती' हो गया। इतने पर भी शंकर जी मुझे स्वीकार करेंगे या नहीं—ऐसा सोचकर पार्वती तपस्या करने लगीं, जब उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये तब उनका नाम 'अर्पणा' हो गया। गिरिजा और अर्पणा-दोनों में 'र' कार आ गया तो शंकरजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पार्वती जी को अपनी अर्धाङ्गिनी बना लिया। इसी तरह शंकरजी ने गंगा को स्वीकार नहीं किया। परन्तु जब गंगा का नाम 'भागीरथी' पड़ गया, तब शंकर ने उसको अपनी जटा में धारण कर लिया। अत: भगवान शंकर का राम-नाम में विशेष प्रेम है। वे दिन राम राम-नाम का जप करते रहते हैं—**"तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।**
सादर जपहु अनँग आराती॥" *(मानस 2।108।4)*

शंकर की प्रसन्नता के लिये साधक प्रतिदिन आधी रात को = ग्यारह से दो के बीच ईशान कोण=उत्तर-पूर्व की तरफ मुख करके '**ॐ नमः शिवाय**' मंत्र की एक सौ बीस माला जप करें। यदि गंगाजी का तट हो तो अपने चरण उनके बहते हुए जल में डालकर जप करना उत्तम है। इस तरह छः मास करने से भगवान शंकर प्रसन्न हो जाते हैं और साधक को दर्शन, मुक्ति एवं ज्ञान दे देते हैं। यह 'भगवान शंकरजी' का प्रकरण श्रीस्वामी राम सुखदास महाराज का, इसके बीच में लिख दिया गया है।

श्री अवन्त बिहारी माथुर 'अवन्त' ने 'शिव महिमा' का बखान इस प्रकार किया है—

कवित्त—"सैन चतुरंगिणी कहा है भूत प्रेतन की,
सैन बहु रंग आगे, बजत मृदंग है।
भंग-चंग कोऊ, नंग कोऊ, पंग कोऊ,
और लंग कोऊ करत अजीब करि ढंग है॥
नाचत बजावत और गावत उमंग संग,
देखि-देखि दंग होत रंग भदरंग हैं।
भंग की तरंग में अनंग अरि बैठ्यो नंग,
संग में भवानी, अंग-अंग में भुजंग है॥"

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी में शिवजी का स्वभाव 'औढ़रदानी' माना गया है, देखिये तुलसीदास जी इनके महान दानीपन का ब्याज स्तुति में कैसा सुन्दर चित्रण करते हैं, ब्रह्माजी उमा से कहते हैं—

"वावरो राखरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई मानी॥
निज घर की बर बात विलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिव की दई सम्पदा देखत श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि सुख की नैसुक नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी॥
दुःख दीनता दुःखी इनके दुःख जातकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रशंसा विनय व्यंगजुत सुनि विधि की वर बानी।
'तुलसी' मुदित महेश मनहिं मन जगत-मातु मुसकानी॥"
"देव बड़े दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दुःख दूरि सबन के जिन-जिन कर जोरे॥

इसलिये सबको छोड़कर केवइ इन्हीं की पूजा करनी चाहिए क्योंकि ये आजमाये हुये हैं।

अब एक भयानक रस का उदाहरण भी गोस्वामीजी का रामचरितमानस में देख लीजिये—

"तन-छार व्याल कपाल भूषन, नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिशाच जोगिन, निकर मुख रजनीचरा॥
जो जियत फिरहिं बरात देखत, पुण्य बड़ तेहि कर सही।
देखहिं सो उमा विवाह घर-घर, बात असि लखिन कही॥"

शिवजी का रौद्र रस तो अति ही प्रसिद्ध है, इस रस का वर्णन, युद्धों में योगिनी,

प्रेत, पिशाच आदि को संग लिये हुए शंकर प्रलयकाल का रूप धारण करते हैं, तब आता है। शिवजी का तीसरा नेत्र इस रस की रौद्रता को सिद्ध करने में बड़ा सहायक होता है, क्योंकि वह पूर्ण रौद्रता ला देता है, यथा—

चौ०— "सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रय लोका॥
तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भये असुर सुखारी॥
समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भये अकंटक साधक जोगी॥"

तुलसीदास ने शिव का दानीपन देख अपने को केवल शिवजी पर ही निर्भर कर दिया, वे इनको छोड़कर दूसरी जगह माँगने के लिये जाना ही नहीं चाहते यथा—(1) **"को जाँचिये संभु तजि आना।"** (2) **दानी सम संकर सम नाहीं॥** (3) **जाँचिये गिरिजापति काशी। जासु भवन अनमादिक रासी॥**

श्रीरामचन्द्र मिश्र मोहन शिव भगवान के ताण्डव नृत्य का कैसा अनौखा चित्रण करते हैं—

"भूतनाथ! यह नृत्य तुम्हें आता है स्मृति में।
जिसकी उपमा मिली नहीं अब तक संसृत में॥
दक्ष सुता अपमान देखि होते निज पति का।
सती सती हो, दिया प्रखर परिचय निज रति का॥
टूटी गहन समाधि, खुले दृग, तोड़ा आसन।
छोड़ा चर्म त्रिशूल विशाल पिनाक शरासन॥
दौड़े संभ्रम सहित कँपी अचला जोरों से।
लगे परस्पर टकराने भूधर शिखरों से॥
डोले फण शत शेषनाग के अधो-भुवन में।
एक दूसरे से उलझीं शाखायें बन में॥
फैली श्यामल जटा व्योम में प्रलय जलद सी।
डमरू डिम-डिम सुनी गई थी गाज निनद सी॥
गिरीं तारकायें थीं सित गंगा-शीकर की।
श्वेत तड़ित-द्युति मिली कान्ति से थी शशधर की॥
गिरे फणी फुफकार मार बन्धन से नभ के।
विश्व-दृव्य तव नयन हुतासन दीखे भभके॥
हुआ विश्व विस्मित चिन्ता को लगी न देरी।
आते, रवि ने एक चक्र रथ की गति फेरी॥
पवन हुए निःस्पन्द भीति अन्तर में छायी।
लगी सृष्टि मिटने धाता की बनी बनायी॥

हाहाकार मचा सुर-मानव-दानव पुर में।
जीवन आशा रही कहीं न किसी के उर में॥
भय ने पाई विजय किसी में रहा न साहस।
जो समीप जा करे प्रणत हो तुम्हें दयावश॥
प्रलयंकर उस भीषण तम तेरे नर्तन से।
लगा नाश ही नाश दीखने परिवर्तन से॥
देवों ने मिल किया विचार चलें सब मिलकर।
होंगे स्तुति से सन्तोषित अवश्य ही शंकर॥
हरि-वनमाला मिली धरा से झट तदनन्तर।
मिले इन्द्र-शिर सुमन रेणु, रज, रहा न अन्तर॥
कितने विकसित कर-सरोज बदले कलियों में।
आशुतोष! तुमने रोकी गति भ्रू बलियों में॥
रोका अपना बेग सम्हाला सारा साधन।
देखा अपना रूप और आयति का बन्धन॥

❋ स्तुति—गुरुदेव शास्त्री ❋

सवैया (1)—अष्ट विभूति विभूषित होकर, काहे को अंग में भूति रमाई।
थी करनी गिरिजा गृहणी फिर काहे मनोज की देह जलाई॥
भोले कहो तो दिगम्बर होकर कैसे पिनाक से प्रीति बढ़ाई।
मुण्ड की माल अपूत गले धर क्यों पुनि सीस पै गंग चढ़ाई॥1॥
(2)—होके असंग भुजंग को संगम मंगल अंग अमंगल धूली।
त्याग सुधा विष पान कियो अरु भंग धतूर चवावत फूली॥
भक्त के तीनहु शूल समूल हरो हर! क्यों फिर आप त्रिशूली।
माँगहु भीख महेश्वर होकर, क्यों मति भोले जी! आपकी भूली॥2।
(3)—नाम त्रिलोचन, हो समलोचन, है भवनाम, करो भवहानी।
नाम है शूली, न शूल है एक हू, नाम असंग है, संग भवानी॥
नाम है कामहा, काम प्रपूर रहो, नाम के हो हर, काम के दानी।
नाम के और हो, कामके और हो, भोले! तुम्हारी विचित्र कहानी॥3॥
(4)—शंकर नाम, भयंकर दुष्ट को, नाम के भीम, तथा भयहारी।
नाम के शर्व, सभी जग पालक, हो पुर रक्षक, नाम पुरारी॥
नाम पशूपति, हो परषोत्तम, रुद्र हो, दुःखित वाष्प निवारी।
अष्ट स्वरूप, अनष्ट स्वरूप हो, भोले! विचित्र है बात तुम्हारी॥"

"क्रतुकर! शम्भो, क्रतुकिर! अगजामित्र! प्रभो! गजामित्र!
योगि ज्जयतु वियोगिन! कर! पालक! हर! विचित्र वैचित्र्य!॥



❃ जय-जय हे अवढ़र दानी ❃

पदः—जैसे तुम उदार परमेश्वर, तैसी शिवा भवानी॥टेक॥
तुम घट-घटवासी अविनाशी व्यापक अंतरजामी।
शुद्ध सच्चिदाानन्द अनामय अमल अकाम अनामी॥
अविदित गति अनवद्य अगोचर अगुन अनीह अमानी॥1॥
जय-जय हे अवढ़रदानी॥
अगम प्रमानि तुमहिं निगमागम नेति-नेति करि हारे।
सोई तुम भक्तन हित कारन, रूप अनेकन धारे॥
किये अनुग्रह भाजन प्रभु ने सकल चराचर स्वामी॥2॥
जय-जय हे अवढ़रदानी॥
परखि प्रीति परवत तनया कों आधे अंग बिठायो।
आधो पुरुष अरध नारी को अद्‌भुत रूप बनायो।
दंपति की यह एक रूपता तुमते जग ने जानी॥3॥
जय-जय हे अवढ़रदानी॥
आक, धतूरपात श्री फल पै तुम रीझत त्रिपुरारी।
चाउर चारि चढ़ाइ पदारथ चारि चहत नर-नारी॥
आशुतोष! तुम बिनु त्रिभुवन में को अति कृपानिधानी॥4॥
जय-जय हे अवढ़रदानी॥
जाके पद रज के प्रसाद से सुर सुरपति सुखभोगी।
सोइ सरवश्व अरपि औरन कूँ फिरै अकिंचन जोगी॥
परहित जाचत कर कपाल लै, डारत भीख भवानी॥5॥
जय-जय हे अवढ़रदानी॥
तुम बिन प्रेत पिशाचन हू कों को मानत निज प्यारे।
बैर बिहाइ मोर अहिमूषक निवसत सदनतिहारे॥
वृषभ सिंह संग-संग रह पीवत एक घाट पै पानी॥6॥
जय-जय हे अवढ़रदानी॥
विष, विषधर दो पाकर दूषन भूषन कोंन बनावै।
कोंन आपु हलाहल पीकैं औरहि सुधा पियावै॥

तुम बिन काके कंठ कृपा की लखियत नील निशानी ॥7॥
जय-जय हे अवढ़रदानी ॥
काशी बीच मुक्ति मुक्तामनि कोंन लुटावत डोलै।
को पशुपति बिनु बंध पशुन को पाश कृपा कर खोले ॥
श्रवन सुनाइ कोंन तारक मनु तारत अगनित प्रानी ॥8॥
जय-जय हे अवढ़रदानी ॥
जेहि मारत जग तेहि अहिगन को प्यार करत तुम स्वामी।
लीजै शरन महेश कृपा करि चरन नमामि नामी ॥
तुम बिन को अपनावत मोसम कुटिल अधम अभिमानी ॥9॥
जय-जय हे अवढ़रदानी ॥
दोहा— "सुमिरन ऐसा कीजिये, खरे निशाने चोट।
मन शंकर में लीन हो, हलै न जिह्वा होठ ॥"

❃ हिन्दी कविता में शिवाष्टक ❃

"आदि अनादि अनंत अखण्ड अभेद अखेद सुवेद बतावैं।
अलख अगोचर रूप महेश को, जोगी-जती-मुनि ध्यान न पावैं।
आगम निगम पुरान सवै, इतिहास सदा जिनके गुन गावैं।
बड़-भागि नर नारि सोई, जो साम्ब सदा शिव कूँ नित ध्यावैं ॥1॥
सृजन सुपालन-लय लीला हित जो विधि हरि-हर रूप बनावैं।
एकहि आप विचित्र अनेक सुवेष बनाइकैं लीला रचावैं ॥
सुन्दर सृष्टि सुपालन करि जग पुनि बन काल जु खाय पचावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई, जो साम्ब सदा शिव कूँ नित ध्यावैं ॥2॥
अगुन अनीह, अनामय, अज़, अविकार सहज निजरूप धरावैं।
परम सुरम्य बसन आभूषन सजि मुनि-मोहन रूप करावैं ॥
ललित ललाट बाल-विधु बिलसै रतननहार उर पै लहरावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई जो साम्ब सदाशिव कूँ नित ध्यावैं ॥3॥
अंग विभूति रमाइ मशान की विषमय भुजगनि कूँ लपटावैं।
नर-कपाल कर, कुण्डमाल गल, भालु चरम सब अंग जड़ावैं ॥
घोर दिगम्बर, लोचन तीन, भयानक देखि कैं सब थर्रावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई, जो साम्ब सदा शिवकूँ निज ध्यावैं ॥4॥
सुनतहिं दीन की दीन पुकार, दयानिधि आपु उवारन धावैं।
पहुँच तहाँ अविलम्ब सदारून मृत्य को मरम विदारि भगावैं ॥

मुनि-म्रकण्ड-सुत की गाथा सुचि अजहु विज्ञजन गाइ सुनावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई, जो सांम्ब सदाशिव कूँ नित ध्यावै॥5॥

चाउर चारि जो फूल धतूर के बेल के पात औ पानि चढ़ावैं॥
गाल बजाइकैं बोले जो 'हर-हर महादेव' धुनि जोर लगावैं॥
तिनहिं महाफल देयँ सदा-शिव सहजहिं भुक्ति मुक्ति सो पावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, सांम्ब सदा शिव कूँ नित ध्यावैं॥6॥

विनसि दोष दुःख दुरित दैन्य दारिद्रय नित्य सुख शान्ति मिलावैं।
आशुतोष! हर पापताप सब निरमल बुद्धि-चित्त विकसावैं॥
असरन-सरन काटि भव बंधन, भव निज भवन भव्य बुलवावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो साम्ब सदा शिव कूँ नित ध्यावैं॥7॥

औढ़रदानी, उदार अपार, जु नैंकसी सेवाते ढुरि जावैं।
दमन अशान्ति, समन सब संकट विरह-विचार जनहिं अपनावैं।
ऐसे कृपालु, कृपामय देव के, क्यों न सरन अबही चलि जावैं।
बड़ भागी नर-नारि सोई जो, साम्ब सदाशिव कूँ नित ध्यावै॥8॥

(आशुतोष अवढ़रदानी की जय-जय-जय)

पं० श्री बुद्धिसागर जी मिश्र 'पंचानन' ने शिवांक कल्याण में बम्- बम् पर पाँच कवित्तों में बड़ा सुन्दर शिवकजी का चित्रण किया है जो इस प्रकार है-

(1) कवित्त—"नटराज राज नृत्य अवसान होते होते
शब्द ब्रह्म व्यक्त की प्रतीक सूत्रजाल हैं।
अकथ अगोचर अनामय अनीह अज,
जाने जाते स्वेच्छा से ही प्रिय चन्द्रभाल हैं॥
अहह! असीम तुष्टि की समष्टि सत्य नित्य,
बन जाते आशुतोष रूप भक्तमाल हैं।
'पंचानन' पातकी तू शंकर शरण हो जा,
फिर देख भाग्य तेरे कितने विशाल हैं॥"

(2) कवित्त—"सूर्य एक ही है किंतु पात्र-पात्र में विभिन्न,
जिस भाँति प्रतिबिम्ब दीखते अनेक हैं।
विश्व वृक्ष अग्र-मध्य-मूल विधि-विष्णु-शिव,
नाम रूप भिन्न भक्त त्राण स्वच्छ टेक हैं॥
'पुल्लिंग' सर्वमीशानं स्त्रीलिंग भगवत्सुमा,
वेदवाक्य सत्य हैं सतत सविवेक हैं।

हर हर हर हर, हरि हरि हरि भज,
दो नहीं हैं, एक ही हैं, एक ही है, एक है॥"

(3) कवित्त—'रुद्र रुद्र रुद्र नाम जपने से नित्य-नित्य,
पातक-समूह आशु होते छार-छार हैं।
बेधा-विष्णु वाणी-रमा, रुद्र-उमा रूप ही हैं,
परम शरण्य पूज्य दया के अगार हैं॥
सर्वगत अव्यय अव्यक्त सूक्ष्मतम ईश,
भक्त-वात्सल्य वश लेते अवतार हैं।
'पंचानन' तू भी शिव-शिव-शिव-शिव रट,
तेरे तुल्य अधम के वे ही तो आधार हैं॥"

(4) कवित्त—"उफ! कोटि-कोटि, मेरु मन्दर हिमालय भी,
निज पाप पुन्ज के मुकाबले में धूल है।
यह इतराना, कहाँ है ठिकाना जरा,
सोचना न भ्रान्तिग्रस्त कहाँ तेरे मूल हैं॥
अरे दुष्ट! होश कर, भवसिन्धु भारी यह,
आँखें खोल देख अब कहाँ पर कूल है।
'पंचानन' पातकी सँभलजा, न देर कर,
सत्य 'भगवान' ये प्रपंच सब भूल हैं॥"

(5) कवित्त— "यद्यपि न चारा कुछ चाहता सहारा यह,
रसना बेचारी बम्-बम्-बम् रटती।
पैर, चल चलकर वैद्यनाथ धाम जाते,
आँखें, दिव्य मूर्ति पर उनके ही डटतीं॥
हाथ, बिल्व-दल जल, षोडसोपचार युत,
पूजन निरत होते, पापराशि कटतीं।
मत्था टेक पाता व्योमकेश के चरण पर,
भक्ति भावना के साथ, भ्रान्ति भीति हटतीं॥"



❋ श्री शिव-भक्ति का फल ❋

कवित्त—"कोऊ शत्रु सामने न आवै, न सतावै कोऊ,
जतन बिना विपत्ति सारी भारी भगि जाय।
जाचे बिना रिद्धि-सिद्धि द्वार पर ठाड़ी रहैं,
आपै आप आय कैं रमा हू प्रेम पगि जाय॥

हाथी-रथ-घोड़न की, सवारी अधिकरी रहैं,
नाती और पोतन ते पूरो भाग जगि जाय॥
काहू बात की कमी रहै कहूँ न, 'विष्णु',
कवि जो पै साँची लगन दिगम्बर ते लगि जाय॥"

दोहा— "तारक देव महेश हैं, सबका तारनहार।
तम सत रज के रूप में, व्यापित है संसार॥"

हिन्दी में श्री शिवाष्टक में श्री शिवजी के 108 नामों का वर्णन विनायक राम जी ने किया है—

(1) जय महेश[1] जगबन्धु[2] नित्य[3] त्रिभुवन[4]-अभयंकर।
जयराम[5] प्रिय शर्व[6] सर्वदा जय शिव[7] शंकर[8]॥
व्योमकेश[9] सर्वेश[10] त्रिपुर[11] दनुजेश विनासन।
जय मंगलमय[12] मूर्ति शम्भु[13] जय भवभयनाशन[14]॥1॥

(2) जय-जय चन्द्र ललाम[15] कुण्डली कुण्डल[16] धारी।
जय प्रमथादिक[17] भूत-प्रेत-गुह्यक सुखकारी॥
प्रालेयाचल[18] नन्दिनीश मुदमंगल दाता[19]।
जय गणेश[20] शिखिवाहन पितु जय निजजन[21] त्राता॥2॥

(3) परम रम्य-कैलाश[22] बिहारी वृषभ[23] ध्वज जय।
कृत्तिवास[24] जयनीलकण्ठ[25] जय-जय मृत्युंजय[26]॥
शुद्ध[27] सच्चिदानन्द[28] सदाशिव[29] शक्तिनाथ[30] जय।
जय भैरव[31] दशकण्ठवरद[32] जय-जय तेजोमय[33]॥3॥

(4) सर्वदेव[34] अधिदेव निरञ्जन[35] जयमदनान्तक।
निराधार[37] निष्पाप[38] निरंकुश जय[39] शमनान्तक[40]॥
निर्गुण[41] निर्भेद[42] निष्कलंक[43] निष्काम[44] त्रिलोचन[45]।
काल-काल[46] कर्पूरगौर[47] भवभय मोचन[48]॥4॥

(5) पंञ्चानन[49] फणिराजविभूषण[50] जय गंगाधर[51]।
जय कमलासन[52] श्रीपति पूजित, जय गुण सागर[53]॥
डमरूनाद प्रिय[54] भृङ्गी प्रिय[55] आनंदरासि[56] हर[57]।
भक्तप्रिय[58] शवभस्मप्रिय[59] रजनीश कलाधर[60]॥5॥

(6) महाकाल[61] श्री सोमनाथ[62] नागेश[63] जटाधर[64]।
वैद्यनाथ[65] केदार[66] सनातन[67] ईश[68] दयापर[69]।
विश्वेश्वर[70] रामेश्वर[71] सर्वेश्वर[72] काशीश्वर[73]।
वाणेश्वर[74] श्रीवामदेव[75] पशुपति[76] नन्दीश्वर[77]॥

(7) अन्धकरिपु[78] शितिकण्ठ[79] पिनाकी[80] जय गिरीशजय[81]।
शूलपाणि[82] मृड[83] महादेव[84] जय-जय करुणामय[85] ॥
निष्प्रपच्च[86] निर्द्वन्द्व[87] कपाली[88] निर्मल[89] निर्मम[90]।
ज्ञानरूप[91] वेदान्त सार[92] कैवल्यद[93] अनुपम[94] ॥7॥

(8) पारिजात वरमाल विभूषित धनदमित्रवर[96]।
अष्टसिद्धि[97] नवनिधि पारिसेवित भर्ग[98] महेश्वर[99] ॥
खण्ड[100] परशु ईशान[101] चन्द्रशेखर[102] प्रसन्नमन[103]=(निर्धनधन)।
उग्र[104] रुद्र[105] श्रीकण्ठ[107] नीललोहित शुभदर्शन[108] ॥8॥

तुलसीदास जी का शंकर स्तवन–

"भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंग वर॥
मुण्ड माल, विधुबालभाल, डमरू कपाल कर।
विबुध वृन्द-नवकुमद चंद, सुख कंद सूल हर॥
त्रिपुरारी, त्रिलोचन, दिग्वसन, विष-भोजन भव-भय हरण।
कह तुलसी दासु सेवत सुलभ, शिव शिव शिव शंकर शरन॥"

एक अन्य कवि का शंकर स्तवन–

"गरल-असन दिगवसन, व्यसन भंजन जन रंजन।
कुन्द इंदु कर्पूर गौर-सच्चिदानन्द घन॥
विकट वेष उर शेष, सीस सुर-सरित सहज शुचि।
शिव अकाम अभिराम नित राम-नाम रुचि॥
कंदर्प दर्प दुर्गम दमन, उमा रमन गुन भवन हर।
त्रिपुरारी, त्रिलोचन, त्रिगुन पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदस वर॥"

दोहा– "हर रस माते जे रहहिं, तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति मिले, तृन सम जानत साध॥"

श्रीपद्मनाथ जी आशुतोष भोलेनाथ से प्रार्थना कर रहे हैं–

कीजिये सनाथ नाथ मुझसे अनाथ को

कवित्त (1)– "ईश्वर अनेक पर महेश्वर हो तुमहिं नाथ,
देव हैं अनेक एक तुम ही महादेव हो।
होकर के एक कभी धरते अनेक रूप,
सृष्टि-कार्य साधनहित बनते त्रिदेव हो॥
नेति-नेति कह कर गुण गावैं नित निगमागम,
विष्णु और विधि भी न पायो तव भेद हो।
मुझसे अधीर-दीन हीन शठ सेवक के,
तात-मात स्वामी, सर्वेश्वर देव देव हो॥"

कवित्त (2)—"दीनबन्धु आशुतोष प्रणतपाल चन्द्रमौलि,
तुम ही अवलम्ब सदा मुझसे अनाथ को।
दीन-हीन निर्धन अनाथ ही तुमहिं 'प्रिय'
बिगड़ी बना दो नाथ मुझसे अनाथ को।
संकटों का मेला, सदा झंझटों को झेला,
रहा सर्वदा अकेला कोई साथी नहीं साथ को।
'पद्मनाथ' विश्वनाथ मेरे प्रभु मेरे नाथ,
कीजिये सनाथ नाथ मुझसे अनाथ को॥"

कुछ अन्य विद्वान कवियों के हिन्दी में कवित्त—

कवित्त (1)—"तीन मुख अग्नि, नैंन तीसरे में भ्राजमान,
पाँच मुख आपु चारि मुख के कुमार हैं।
सुत षटमुख गजमुख महामान्य दोऊ,
दसमुख दास और सहस मुख हार है॥
शशि सु ललाट, शशि मुखी शिवा गोद लसै,
हिममुखी हैमवती गंगा जटा द्वार है॥
कपि मुख वरदा जु एक वरदाई सेवे,
क्यों न सदा सुखी वन्दौं शंकर उदार है॥

कवित्त (2)—"काशी के वसैया, पर काशी के दिवैया नाथ,
भंग के छनैया अरु गंग के धरैया तुम।
वेष के अमंगल हो जंगल के वासी प्रभु,
तो हू महामंगल हो मंगल करैया तुम॥
कोतिक उधारे केते तारे भव सागर तें,
कोतिक सम्हारे ऐसे विपद हरैया तुम।
ऐहो त्रिपुरारी, अघहारी, सुखकारी शिव,
'प्रेम' परयो द्वारे मेरी लाज के रखैया तुम॥"

श्री देवर्षि नारदजी का मैना को उपदेश—

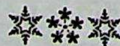
कवित्त— "वावरी तू बावरो बतावै शिव शंकर को,
किंकर है जाके देव सेवत सुरेश हैं।
महिमा बखानें नेति-नेति कर मानैं,
भेद वेद हू न जानें, गुन गावत रमेश हैं॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप,
पतिभाव तिनहीं ये ताते धरत हमेश हैं।

सबके सुपासी आपु रहत उदासी,
भुक्ति-मुक्ति जहाँ दासी ऐसे मालिक महेश हैं॥"
सवैया—भाल में जाके कलाधर हैं, सोइ साहेब ताप हमारो हरैगो।
अंग में जाके विभूति भरी रहै, मौन में सम्पति भूरि भरैगो॥
घातक हैं जो मनोभव को, मन पातक वाही के जारे जरैगो।
दास जो शीश पै गंग धरै है, बाकी कृपा कहु को न तेरैगो॥"
"अज अनादि अखिलेश अगोचर अगुन सगुन त्रिपुरारी।
जो मैं सो तू सो मैं यह श्रुति संत पुकारी॥
मुख ते कहत 'शिवोहं' सबही पै हिय भरेद न टारी।
'नारायन' तब अर्धांगिनी की है लीला अति भारी॥"
"सत्य सनातन साधन से जन जो अति पातकहीन हुआ।
और महागुण सागर का जिसका मन मंजुल भी न हुआ॥
पाकर के वरदान अहो, जग में नहिं दुर्बल दीन हुआ।
है कवि 'पुष्कर' धन्य वही पग में शिव के लवलीन हुआ॥
जय शिव शंकर भोले नाथ



❋ प्रार्थना मय भजन ❋

(1) "भज मन शंकर भोले नाथ, डमरू मधुर बजाने वाले। टेक।
पूर्ण ब्रह्म सदा अविनाशी, शीष जटा जल गंग विलासी।
मुक्ति हेतु बसाई काशी, विजिया भोग लगाने वाले॥1॥ भज मन....
अंग विभूति गले मुण्ड माला, कर त्रिशूल ओढ़े मृग छाला।
भोले ऐसे दीन दयाला—बिगड़े काज बनाने वाले॥2॥ भज मन....
सकल मनोरथ पूरणकारी, भाविउ भेंट सकैं त्रिपुरारी।
गिरिजा पति कैलाश बिहारी—प्रभु महादेव कहाने वाले॥3॥ भज मन....
जो नित गान प्रभु का गावैं, सब सुख भोग परम पद पावैं।
सेवक निशिदिन सीस नवावै—आवागमन मिटाने वाले॥4॥
भजमन शंकर भोले नाथ, डमरू मधुर बजाने वाले॥"



(2) "दर्शन देना प्रभु महाराज भोला नाथ कहाने वाले।टेक।
जिनकी जटा में सोहे गंग, बाएँ पारवती अरधंग।

रहते भूत-प्रेत गन संग—लीला अमित दिखाने वाले॥1॥ दर्शन देना....
सुन्दर गौर मनोहर अंग, निरखें हावैं ढंग अनंग।
निशिदिन रहत सदाशिव नंग—डम्-डम् डमरू बजाने वाले॥2॥
दर्शन देना....
ओढे कटि केहरि की छाल, कीन्हे निज तन भूषन व्याल।
हैं वो महाकाल के काल-मुण्ड माल पहरने वाले॥3॥ दर्शन देना....
जाके बाल-चन्द्रमा भाल, देवैं ताप-त्रासहू टाल।
पल में करते दीन निहाल-भक्त भ्रम जाल नशाने वाले॥4॥
दर्शन देना प्रभु महाराज भोला नाथ कहाने वाले॥"

कवित्त (1)—"काहे को विसारै मूढ़ डोलत महेश पद,
परम पवित्र क्षोभ लोभ के हरैया हैं।
माया की मीरोरिन के, मोहझक झोरिन के,
काम की करोरिन के पल में बरैया हैं॥
आठों याम रक्षण करैया साधु सन्तन के,
संकट कटैया उर धीर के धरैया हैं।
धर्म के बढ़ैया, शुद्ध बुद्धि उपजैया,
निजरूप दर्शैया भवसिंधु के तरैया हैं॥"

कवित्त (2)—"शिव के कहे से अराम मिलै सबहि को,
शिव के कहे से होता उद्धार है।
शिव के कहे से दुःख अरु दारिद्र मिटै,
शिव के भजे ते होत भवसिंध पार है॥
शिव के कहे ते सुख अरु सम्पदा मिलत,
शिव के कहे से होता बेड़ा पार है।
सब ही कहें शिवा-शिव, शिव ही है जग सार,
महिमा विचित्र लीला शिव की अपार है॥"

सवैया—"जन्म-मरण के चक्र घोर का तब तक कभी न होगा अंत।
जब तक मानव नहीं भजैगा, श्रद्धायुत मन से भगवन्त॥
दुःख योनि भोगों का मोह छुड़ा कर भजन बनाता संत।
पा जाता फिर इससे मानव सुखमय नित पर धाम अनंत॥"

शेर—बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहै।
मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहै॥शिव शंकर॥



❋ अर्धनारीश्वर भगवान सदाशिव ❋

भगवान शिव के अनेक रूपों में उनका अर्धनारीश्वर रूप ही सम्भवत: सर्वोत्तम है। अवश्य ही पहले पहल देखने में विचित्र एवं अस्वाभाविक सा नजर आता है, परंतु अधिक ध्यान पूर्वक देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानों इसके अन्दर मानव जाति का एक महान आदर्श छिपा हुआ है। इलोरा के एक गुहा मन्दिर में भगवान शिव के इस अर्ध-नारीश्वर रूप की एक बड़ी भव्य मूर्ति है। उसे देखने से यह पता लगता है कि इसके निर्माण कर्ता ने उस आध्यात्मिक भाव को भली भाँति हृदयंगम किया होगा जो इसके पीछे छिपा हुआ है। मूर्ति के अन्दर नर एवं नारी रूप का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। उसके दोनों अंगों का इस सुन्दरता के साथ मेल हुआ है कि यह देखते ही बनता है।

सत्, चित् और आनन्द-ईश्वर के इन तीन रूपों में आनन्द रूप, जिसका दूसरा नाम साम्यावस्था अथवा अक्षुब्ध भाव है, भगवान शिव का है। मनुष्य भी ईश्वर से ही उत्पन्न उसी का अंश है, अत: उसके अन्दर भी ये तीनों रूप विद्यमान हैं। इनमें से स्थूल शरीर उसका संदश है तथा वाह्य चेतना चिदंश है, और जब ये दोनों मिलकर परमात्मा के स्वरूप की पूर्ति उपलब्धि कराते हैं, तब जाकर उसके आनंदाश की अभिव्यक्ति होती है, इस प्रकार मनुष्य के अन्दर भी सत् और चित् के पूर्ण अविसंवाद से आनन्द की उत्पत्ति होती है।

एक दूसरी ही दृष्टि से विचार करने पर यह समझ में आता है कि ईश्वर का सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चितत्स्वरूप पितृस्वरूप है। उसका तीसरा आनन्द रूप वह स्वरूप है जिसमें मातृ-भाव और पितृ-भाव दोनों का पूर्ण रूपेण सामंजस्य हो जाता है, अथवा यों कहिये कि शिव और शक्ति मिलकर दोनों अर्ध-नारीश्वर रूप में हमारे सामने आते हैं। उसी में हमें सत् और चित् इन दो रूपों के साथ-साथ उनके तीसरे आनन्द रूप के भी दर्शन होते हैं। बाइबल के सर्ग सम्बन्धी अध्याय (General) में लिखा है कि **"ईश्वर ने मनुष्य के रूप में अपनी ही प्रति कृति बनाई, उन्होंने उसकी पुरुष और स्त्री के रूप में सृष्टि की।"** (God created man in this own image, male and female created own them.) स्त्री और पुरुष दोनों ही ईश्वर की प्रतिकृति हैं, स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परंतु 'आनंद' के दर्शन तब होते हैं, जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि इस पूर्ण एकता का स्वरूप क्या है? साधारणतया लोग शिव को 'योगीश्वर' कहते हैं परन्तु वास्तव में वो गृहस्थों के ईश्वर हैं, विवाहित दम्पत्ति के उपास्य देवता हैं। विवाहित स्त्रियाँ जो उन्हें पूजती हैं, इसमें अवश्य ही

कुछ तत्व है। बात यह है कि शिवजी स्त्री और पुरुष की पूर्ण एकता की अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण वे उन्हें पूजती हैं। हमें किसी भी वस्तु को, उसके गुण-दोष का विचार करते हुए उसके यथार्थ स्वरूप में देखना चाहिए और उसी रूप में उसके महत्व को समझना चाहिए। हमें परस्पर विरोधी द्वन्द्वों की विषमता को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि यही तो वास्तविक योग है। कहा भी है—**"समत्वं योग उच्यते"** अर्थात् समता का नाम ही योग है। स्थूल जगत की सभी सारी विषमताओं से घिरे रहने पर भी अपनी चित्त-वृत्ति को शान्त एवं स्थिर बनाये रखना ही योग का स्वरूप है। भगवान शिव अपने पारिवारिक सम्बन्धों से हमें इसी योग की शिक्षा देते हैं।

देखिये न, बाह्य दृष्टि से आपका परिवार विषमता का जीता-जागता नमूना है। सबके जुदे-जुदे रास्ते हैं, किसी का किसी के साथ मेल नहीं। आप बैल पर चढ़ते हैं तो भगवती भवानी में सिंह वाहिनी हैं। दोनों का कैसा जोड़ मिला है? आप भुजंग भूषण हैं तो श्रीस्वामी कार्तिकेय को मोर की सवारी पसंद है और उधर लम्बोदर गणेशजी महाराज को चूहे पर चढ़ने में ही सुभीता सूझता है। आपने गंगाजी को सिर पर चढ़ा रखा है, जिससे पार्वती को दिन-रात सौतिया डाह हुआ करता होगा।

इस प्रकार आपकी गृहस्थी क्या है, मानों झंझट की पिटारी है, मानसिक शान्ति और पारिवारिक सुख के लिये कैसा सुन्दर साज जुटा है? परन्तु भगवान शिव तो प्रेम और शान्ति के अथाह समुद्र एवं सच्चे योगी ठहरे। उनके मंगलकय शासन में सभी प्राणी अपना स्वाभाविक बैर-भाव भुलाकर आपस में तथा संसार के अन्य सब जीवों के साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसी के साथ द्वेष नहीं, वे तो आनन्द स्वरूप ही हैं। जो कोई उनके सम्पर्क में आता है वह भी आनन्दरूप बन जाता है।

उनके चारों ओर आनन्द के ही परमाणु फैले हुए हैं। यही महेश्वर का सबसे महान गुण है और इसलिये ही आप **'शिव'**=कल्याण रूप एवं **'शंकर'**=आनन्ददाता कहलाते हैं। सारे विरोधों का सामंजस्य कर उस शान्ति की उपलब्धि करनी चाहिए जो बुद्धि से परे की वस्तु है, यही अमूल्य शिक्षा हमें शिवजी के चरित्र से मिलती है।

हम क्षुद्र जीवों को गृहस्थाश्रम में रहकर ही भगवान शिव की इस शिक्षा को अमल में लाना चाहिए। हम में से प्रत्येक को चाहिए कि वह पार्वती जैसी योग्य पत्नी वरण कर स्वामी कार्तिकेय और गणेश जैसी विरुद्ध स्वभाव वाली संतति का प्रेमपूर्वक लालन-पालन करे। अपनी धर्म-पत्नी के साथ पूर्ण एकात्मकता अनुभव कर उसकी आत्मा में अपनी आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्द रूप शिव की

उपलब्धि कर सकता है। वास्तविक योग का स्वरूप यही है। जिसकी सिद्धि संसार में रहकर ही हो सकती है।

यह बिलकुल सीधी सी बात है कि किसी जंगल में अथवा हिमालय की चोटी पर रहकर कोई भी समता का व्यवहार कर सकता है, परन्तु अपने दैनिक जीवन में, नाना प्रकार की झंझटों का सामना करते हुए भी जो अक्षुब्ध रह सकता है, वही शिव का सच्चा भक्त है।

यही सच्ची समता, जो सत् और चित् के पूर्ण संयोग से उत्पन्न होती है। अर्धनारीश्वर के विग्रह में अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष प्रकृति के संयोग द्वारा माया-द्वन्द्वमय जगत के आवरण को भेदकर आनन्दरूप पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। तब सारे विरोध परस्पर मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ न पुरुष है, न प्रकृति, न स्त्री है—केवल एक अद्वितीय वस्तु—

"एक मेवाद्वितीयम्" ही शेष रह जाता है। वही अनन्त आनन्द की मूर्ति अर्धनारीश्वर शिव है। **'हरि-हर संकर, नमो-नमो।'**

"अहि सायी, अहि अंग विभूषन, अमित दान, बल-विषहारी।
नीलकंठ, वर नील कलेवर; प्रेम परस्पर कृतहारी॥
चन्द्रचूड़, सिखि-चन्द्र-सरोरुह; जमुना प्रिय गंगाधारी।
सुरभि-रेनु तन, भस्म विभूषित, वृष-वाहन, बन वृष चारी॥
अज-अनीह-अविरुद्ध एकरस है, यहै अधिक ये अवतारी।
'सूरदास' सम, रूपनामगुन, अंतर अनुचर-अनुसारी॥"



(1) श्री शिवतत्व

(अनंतश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्री जी महाराज)

शिव ही समस्त प्राणियों के अंतिम विश्राम के स्थान हैं—**"विश्रामस्थानमेकम्"**। 'शीङ्स्वप्ने' धातु से 'शिव' शब्द की सिद्धि है। **'शेरते प्राणिनोयत्र स शिवः'**—अनंत पाप-तापों से उद्विग्न होकर विश्राम के लिये प्राणी जहाँ शयन करे, बस उसी सर्वाधिष्ठान, सर्वाश्रय को 'शिव' कहा जाता है, वैसे तो 'शातंशिवंचतुर्थ मद्वैतं मन्यते' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओं से रहित, सर्वदृश्य विवर्जित, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दघन परब्रह्म ही शिवतत्व है, फिर भी वही परम तत्व अपनी दिव्य शक्तियों से युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्डों का उत्पादन, पालन एवं संहार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि संज्ञाओं को धारण करते हैं।

वास्तव में तो जैसे किसान ही क्षेत्र में बीज बोकर अंकुरादि रूप में उत्पादक होता है, वहीं सिंचन आदि द्वारा पालक और अंत में वही काटने वाला होता है, वैसे ही एक ही अनन्त-अचिन्त्य, शक्ति सम्पन्न भगवान विश्व के उत्पादक, पालक और संहारक होते हैं। **"सर्व भूतेषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।**
तासां ब्रह्म महद्यो निरहं बीजप्रदः पिता॥" *(गीता 14/4)*

भगवान श्रीकृष्णजी का गीता में कहना है कि समस्त भूतों में जितनी भी मूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं उन सबकी महद्‌ब्रह्म=(प्रकृति)—योनि (माता) है और बीज प्रदान करने वाला पिता मैं हूँ। 'पिताऽहमस्यजगतः' में ही समस्त जगत का पिता-उत्पादक हूँ। **"मम योनिर्महद्‌ब्रह्म तस्मिनगर्भं दधाम्यहम्।**
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।" *(गीता 14/3)*

अर्थात् प्रकृति रूप योनि में जब मैं गर्भाधान करता हूँ तब उससे समस्त विश्व की उत्पत्ति होती है। इस तरह ब्रह्माण्डोत्मादक ब्रह्मा भी परमेश्वर ही है अतएव-
"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, ये न जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।"

इस श्रुति से जो ब्रह्म का लक्षण कहा गया है उससे विश्व के उत्पादक, पालक और संहारक को परमेश्वर समझना चाहिए। यदि ये तीनों पृथक-पृथक हों, तब तो कोई भी परमेश्वर सिद्ध न हो सकेगा। क्योंकि निरतिशय ऐश्वर्य और सर्वज्ञ-गुण सम्पन्न को परमेश्वर कहा जाता है। यदि ये तीनों ही सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर हैं तो यह प्रश्न होगा कि ये तीनों मिलकर सलाह से कार्य करते हैं या स्वतंत्रता से अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार? यदि सलाह से ही करते हैं, यह माना जाय, तब तो इनमें परमेश्वर कोई भी न हुआ। किन्तु इन तीनों की परिषद् या पंचायत ही परमेश्वर है क्योंकि अकेले कोई भी कार्य करने में स्वतंत्र नहीं है।

यदि तीनों की इच्छा समान ही होती है, और तीनों की इच्छानुसार ही उनकी शक्तियाँ कार्य में प्रवृत्त होती हैं, तब भी तीन का मानना ही व्यर्थ है, फिर तो एक से भी वह सब कार्य सम्पन्न भी हो सकता है, यदि द्वितीय पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् स्वतंत्रता से भी तीनों कार्य कर सकते हैं, तब भी इनमें कोई परमेश्वर नहीं। सिद्ध होगा क्योंकि स्वतंत्रता से यदि इच्छा उत्पन्न होगी तो सम्भव है कि जिस समय एक को जगत्पासन की रुचि हुई, उसी समय दूसरे को संहार की रुचि इच्छा उत्पन्न हो, अब यहाँ जिसकी इच्छा सफल होगी, उसी का निरंकुश ऐश्वर्य समझा जायेगा। जिसका मनोरथ भग्न हुआ, उसकी ईश्वरता और औपचारिक ही रहेगी। एक विषय में विरुद्ध दो प्रकार की इच्छाओं का सफल होना असम्भव ही है। इस तरह अनेक ईश्वर का होना किसी के भी मतों में कथमपि सम्भव नहीं। अतः एकेश्वरवाद ही

सबको मानना पड़ता है। इसलिये महानुभावों ने एक ही में अवस्था भेद से उत्पादकत्व, पालकत्व औरं संहारकत्व माना है।

"निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि।
स्मितमेतस्म चराचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः॥"

भगवान के निःश्वास से ही वेदों का प्रादुर्भाव हो जाता है, वीक्षण = देखने से आकाशादि—अपंचीकृत पंच्च महाभूत की सृष्टि होती है। स्मित = मन्दहास, मुस्कराहट से भौतिक, अनन्त ब्रह्माण्ड बन जाते हैं और सुप्ति से ही निखिल ब्रह्माण्ड का प्रलय हो जाता है। इस दृष्टि से एक ब्रह्माण्ड से उत्पादक, पालक संहारक ब्रह्मा, विष्णु और शिव में किंचित मात्र भी भेद नहीं है। जैसे एक हीं गगनस्थ सूर्य अनन्त घटोदकों और तड़ागोदकों में प्रतिबिम्बित होता है, वैसे ही एक ही अखण्ड, अनन्त, निर्विकार, चिदानन्द परमात्म-तत्व अनन्त अन्तःकरणों और माया भेदों में प्रतिबिम्बित होते हैं। अन्तःकरणगत प्रतिबिम्बित जीव कहलाते हैं।

मायागत प्रतिबिम्ब ही ईश्वर कहलाते हैं। जैसे अन्तःकरण के स्वच्छत्वादि तारतम्य से जीवों में काल्पनिक भेद होता है वैसे ही माया की उत्पादकत्व, पालकत्व एवं संहारकत्व शक्ति के भेद से ब्रह्मा विष्णु, रुद्र में काल्पनिक भेद होता है। अनन्त ब्रह्माण्ड की कल्पना में अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पादिनी शक्तियाँ भी अनन्त हैं। उन एक-एक शक्तियों, अनन्त अन्तःकरण और उत्पादकत्व, पालकत्व, संहारकत्व शक्ति से युक्त माया है। इस तरह एक-एक शक्ति से ब्रह्माण्ड और उसके अन्तर्गत अनन्त जीव एवं उत्पादक, पालक, संहारक, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र व्यक्त होते हैं। परंतु इन सभी प्रतिबिम्बों का मूलभूत जो बिम्ब है वह तो सर्वथा एक ही है। वही विष्णु भक्तों को विष्णुरूप से राम भक्तों को रामरूपसे, शिव-भक्तों को शिवरूप से दृष्टिगोचर होता है।

जैसे एक ही गगनस्थ सूर्य नीले चश्मे से नीला, पीले से पीला दिखाई देता है, वैसे ही विष्णु भावना से भावित-अन्तःकरण विष्णुभक्त उसी परम-तत्व को विष्णु कहते हैं, शिव भावना से भावित मनस्क उसी परम तत्व को शिव कहते हैं और वही श्रीकृष्ण, राम आदि रूप में उपलब्ध होता है। वही गगनस्थ सूर्य स्थानीय परमतत्व '**शिव-स्कन्दादि**' पुराण का '**शिव**' है वही '**विष्णु पुराण**' का '**विष्णु**' '**रामायण**' का '**राम**' '**भागवत**' का '**श्रीकृष्ण**' आदि सद्ग्रन्थों में शिव, विष्णु राम कृष्ण रूप से पाया गया है। भक्त की भावनानुसार ही उस परम तत्व की ही विशुद्ध-सत्वमयी दिव्य शक्ति के योग से मधुर मनोहर मूर्ति भी व्यक्त होती है, इस तरह मूलतः शिव एवं विष्णु एक ही हैं। फिर भी उनके अपररूप में सत्व के योग से विष्णु को सात्विक और तम के योग से रुद्र को तामस कहा जाता है।

वस्तुतः सत्वनियन्ता विष्णु और तम नियन्ता रुद्र हैं। तम ही मृत्यु है, काल है। अतः उसे नियन्ता महामृत्युञ्जय महाकालेश्वर भगवान रुद्र हैं। दूसरी दृष्टि से भी ज़ैसे तम प्रधान सुषुप्ति से ही जाग्रत स्वप्न की सृष्टि होती है, वैसे ही तम-प्रधान प्रलयावस्था से ही सर्वप्रपंच्च की दृष्टि होती है। जब सृष्टि काल के उपद्रवों से जीव व्याकुल हो जाता है, तब उसको दीर्घ सुषुप्ति में विश्राम के लिये भगवान शिव सर्व संहार करके प्रलयावस्था व्यक्त करते हैं।

यह संहार भी भगवान की कृपा ही है, जैसे दुश्चिकित्सा व्रण से व्याकुल व्यक्ति को देखकर चिकित्सक करुणा से ही व्रण-छेदन के लिये तीक्ष्ण-शस्त्र को ग्रहण करता है वैसे ही दुर्निवार्य पाप-ताप के बढ़ जाने पर करुणा से ही भगवान विश्व का संहार करते हैं-

"जिमि सिसुतन ब्रन होइ गोसाई। मातु चिराव कठिन की नाई॥

(रा०च०मा० उत्तर 74 /8)

कार्यावस्था से कारणावस्था का महत्व स्पष्ट ही है। तमः प्रधानावस्था है उसी से उत्पादनावस्था और पालनावस्था व्यक्त होती है। अंत में फिर भी सबको प्रलयावस्था में जाना पड़ता है।

"भूत ग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।" अर्थात् यह समस्त भूत ग्राम अनन्त काल से उत्पन्न हो-होकर पुनः-पुनः प्रलयावस्था को प्राप्त होता है। कारण से ही सबकी उत्पत्ति और उसी में पालन और पुनः उसी में सबका संहार होता है। निःस्तब्ध समुद्र से ही तरंग की उत्पत्ति, उसी में उसका पालन, अन्त में फिर भी उसी में संहार होता है। उत्पादनावस्था के नियामक ब्रह्मा, पालनावस्था के नियामक विष्णु और संहारावस्था एवं कारणावस्था के नियामक शिव हैं, पहले भी कारणावस्था रहती है, अंत में भी वही रहती है, इस तरह प्रथम भी शिव ही, अंत में भी शिव ही तत्व अवशिष्ट रहता है।

"अहमेवासमेवाग्रे नानद्यत्स्दसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥"

तत्वज्ञ लोग उसी में आत्मभाव करते हैं, जो चराचर प्रपंच की उत्पत्ति के पहले होता है। उसकी महिमा और वीर्यवन्ता प्रसिद्ध ही है। अतः वही मुख्य निरुपचरित ईश्वर या महेश्वर होता है। अतः शिवजी ही केवल 'ईश्वर' शब्द से कहे जाते हैं—

"ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः सर्व भूतानाम्।"
"महेश्वर स्त्रयम्बक एवना परः॥"
"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति॥"

अर्थात् ईशान ही सर्व विद्याओं एवं भूतों के ईश्वर हैं, वही महेश्वर हैं, वही समस्त प्राणियों के हृदय में रहते हैं। हृदय में ही सुषुप्ति होती है, वही कारणावस्था

के अधिपति का होना युक्त भी है। कहीं उपनिषदों में एकादश प्राणों को 'रुद्र' कहा गया है, वे निकलने पर प्राणियों को रुलाते हैं, इसलिये रुद्र कहे जाते हैं। अतः दस इन्द्रियाँ और मन ही एकादश रुद्र है। परंतु यह आध्यात्मिक रुद्र है। आधि दैविक एवं सर्गोपयाधि विनिर्मुक्त रुद्र इनसे पृथक हैं, जैसे विष्णुपाद के अधिष्ठाता हैं वैसे ही रुद्र अहंकार के अधिष्ठाता हैं–**"एकोरुद्रोनद्वितीयोऽव-तत्व"**

अर्थात् एक रुद्र ही तत्व था, द्वित्व संख्या पूसर्थ कोई दूसरा तत्व ही न था। इन श्रुतियों से प्रोक्त रुद्र को महाकारण या कार्य कारणातीत शुद्ध ब्रह्म ही है। यह भी '**रोदनात् रुद्र**' है, प्रलयकाल में सबको रुलाने वाला यही है।

"यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उमे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्यो पसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥" *(कठोपनिषद् 2।25)*

अर्थात् ब्रह्मक्षत्रोपलक्षित समस्त प्रपंच्च जिसका ओदन = भात है, मृत्यु जिसका उपसेचन = दूध, दही, दाल या कढ़ी है। उसे कौन कैसे, कहाँ जाने ? जैसे प्राणी कढ़ी-भात मिलाकर खा लेता है, बस, विश्व संहारक काल और समस्त प्रपंच्च को मिलाकर खाने वाला परमात्मा मृत्यु का भी मृत्यु है, अतः महामृत्युञ्जय भी वही है, काल का भी काल है, अतः काल काल या महाकालेश्वर है। यदि कोई भी बच जाय, तब तो उसकी सर्व संहारकता में बाधा उपस्थित होती है, अतएव '**योऽहं**' वही एक ब्रह्म है। इसलिये विष्णु भी वही है, यदि वे शिव या रुद्र से पृथक होंगे, तब महामृत्युंजय, महाकालेश्वर, सर्वसंहारक से संहृत हो जायेंगे, अन्यथा एक को छोड़कर सर्व की संहारकता ही शिव में समझी जायेगी। सर्वसंहर्ता के सामदे दूसरी जो भी चीज उपस्थित होगी, वह उसका अवश्य संहार करेगा। अतः यदि कोई बचेगा तो उसका आत्मा ही बचेगा, क्योंकि अपने में संहार्य-संहारक भाव नहीं बनता। इसलिये शिव की आत्मा विष्णु और विष्णु की आत्मा शिव है। वहाँ भिन्नता है ही नहीं, जिससे परसमवेतक्रिया शालित्वरूप कर्मत्व योग हो। सर्व संहारक में ही निरतिशय प्राबल्य एवं परमेश्वरत्व सर्वोत्कृष्टत्व सिद्ध होता है। शेष जो भी उससे भिन्न अवशिष्ट होते हैं, उन सबका संहार हो जाता है, अतः उसका अनीश्वरत्व निकृष्टत्व, विधेयत्व, तद्रशवर्तित्व सुतरां सिद्ध होता है।

जो परमेश्वर भक्तों, प्रेमियों और ज्ञानियों के निरतिशय, निरूपाधिक परमप्रेम के आस्पद् होते हैं और परमानंद रस रूप होते हैं, वही अभक्तों के लिये प्रचण्ड मृत्युरूप होकर उपलब्ध होते हैं। और उनसे सब भयभीत होते हैं। संहारक और शासक से सबको भय होना स्वाभाविक है इसलिये कहा गया है कि **"महद्भयं वज्र मुद्यतम्"** अर्थात् परमेश्वर अतः बज्र के समान महाभयानक है। उसी के भय से सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, इन्द्र नियम से अपने-अपने काम में लगे हैं। उसी के भय से मृत्यु भी दौड़ रही है–

"भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्चामृत्युर्धावति पञ्चमः॥" *(तैतरीय० 2।8।1)*

यही प्रचण्ड कोप रूप भी है, कोप का कार्य मृत्यु है, फिर जो मृत्यु का भी मृत्यु है उसकी कोपरूपता में क्या संदेह है? सर्वसंहारक प्रचण्ड उग्र शासक परमात्मा ही ईश्वर, ईशान, भीम, उग्र, रुद्र, चण्ड एवं चण्डिका आदि शब्दों से व्यवहृत होता है। वेदान्त की दृष्टि से अज्ञानी लोग सर्वविधि भेद शून्य स्वप्रकाश अद्वैत ब्रह्म से डरते हैं—

"योगिनो विभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः।" *(अद्वैत-प्रकरण (माण्डू० 39)*

जैसे नीम के कीड़े को सिता = शर्करा से उद्वेग होता है, वैसे ही सप्रपंच्च द्वैत सुख के कीट अज्ञानियों को निष्प्रपंच्य अद्वैत सुख से भय होता है, क्योंकि उनके अभिलसित वादित्र, नृत्य गीतादि द्वैत सुख का वहाँ अत्यन्ताभाव होता है। परंतु ज्ञानियों के लिये तो वही परमानन्द रस रूप है। इस तरह अज्ञानियों को उद्वेजक होते हुए भी वह तत्व-ज्ञानियों को परम रसामृतरूप होकर प्रकट होता है।

विवेकियों की दृष्टि में प्रमाद ही मृत्यु है—

'प्रमादं वैमृत्युमहं ब्रवीमि।' *(सनत्युव)*

उन समस्त प्रमादों की जड़ मोह या अज्ञान ही है और उसका अंत करने वाला ब्रह्मकारा चरम वृत्ति पर आरूढ़ शुद्ध ब्रह्म ही है। इस तरह मृत्यु रूप अज्ञान के नाशक होने से सर्वसंहारक महामृत्युंजय महाकालेश्वर परमतत्व शिव ही हैं। वे ही लीलया दिव्यमंगलमयी मूर्ति धारण करते हैं, भक्तों की अपनी उपासना में चावपूर्वक प्रवृत्ति देख, कुतूहलवशात् स्वयं भी भक्तिरस का आश्वादन करने के लिये अपने आपको उपास्य-उपासक दो रूपों में व्यक्त करते हैं। बाल रामचन्द्र, बालमुकुन्द रूप से निजहस्ताक्षरबिन्द के अगुंष्ठ को मुखारबिन्द में विनिवेशित कर चरणारबिन्द मकरन्द-लुब्ध भावुक मनोमिलिन्दों के लोकोत्तर सौभाग्य को समझकर स्वयं भी भक्त होकर श्रीशिव की उपासना करते हैं और शिवजी के रूप से विष्णु रूप की उपासना करते हैं। शिव के हृदय में राम, राम के हृदय में शिव हैं। इस तरह **'सेवक स्वामि सखा सिय पिय के।'** शिव सर्वाराध्य पर दैवत हैं।

श्रीकृष्णजी ने उपमन्यु महर्षि से दीक्षित होकर भगवान अम्बा सहित श्रीशिव की आराधना करके दिव्य वर प्राप्त किया था। धर्मराज युधिष्ठिर ने जब भीष्मजी से शिवत्तत्व के सम्बन्ध में प्रश्न किया, तब उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट करके कहा कि 'श्रीकृष्ण उनकी कृपा के पात्र हैं, उनकी महिमा को जानते हैं और वही कुछ वर्णन भी कर सकते हैं। युधिष्ठिर के प्रश्न से श्रीकृष्ण ने शान्त समाहित होकर यही कहा कि 'भगवान शिव की महिमा तो अनन्त है, तथापि उन्हीं की कृपा से उनकी

महिमा को अति संक्षेप में कहता हूँ, यह कहकर उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा से शिव महिमा का बखान किया।

भगवान विष्णु ने तो अपने नेत्र कमल से भगवान शिव की पूजा की है, उसी भक्त्युद्रेक से उन्हें सुदर्शन चक्र मिला है। शिव-विष्णु का तो परस्पर में ऐसा उपास्योपासक सम्बन्ध है कि जो अन्यत्र हो ही नहीं सकता। तम काला होता है और सत्य शुक्ल, इस दृष्टि से सत्वोपाधिक विष्णु को शुक्लवर्ण होना था और तम उपाधिक रुद्र को कृष्ण वर्ण होना था और सम्भवतः है भी वे वैसे ही, परंतु परस्पर एक दूसरे की ध्यानजनित तन्मयता से दोनों के ही स्वरूप में परिवर्तन हो गया अर्थात् विष्णु कृष्ण वर्ण और रुद्र शुक्ल वर्ण हो गये। मुरली रूप से कृष्ण के अधरामृत का अधिकार शिव को ही हुआ।

श्रीकृष्ण अपने अमृतमय मुखचन्द्र पर, सुमधुर अधर पल्लव पर पधराकर अपनी कोमलांगुलियों से उनके पाद संवाहन करते, अधरामृत का भोग धरते और कुण्डल से नीराजन करते हैं। श्रीराधा रूप से श्री शिवका प्राकट्य होता है तो कृष्ण रूप से विष्णु का, काली रूप से विष्णु का तो शंकर रूप से शिव का। इस तरह ये दोनों उभय-उभयात्मा उभय, उभय भावात्मा हैं।

श्री शिव का सगुण स्वरूप भी इतना अद्भुत मनोहर, मधुर और मोहक है कि उन पर सभी मोहित हैं। भगवान की तेजोमयी दिव्य, मधुर, मनोहर विशुद्ध सत्वमयी, मंगलमयी मूर्ति को देखकर स्फटिक, शंख, कुन्द, दुग्ध, कर्पूर खण्ड, श्वेताग्नि चन्द्रमा सभी लज्जित होते हैं। अनन्त कोटिचन्द्र सागर के मंथन से समुद्धुत, अद्भुत, अमृतमय, निष्कलंक पूर्ण चन्द्र भी उनके मनोहर मुखचन्द्र की आभा से लज्जित हो उठता है। मनोहर चिनयन, बालचन्द्र एवं जटा मुकुट पर दुग्ध धवल, स्वच्छाकृति, गंगा की धारा हठात मन को मोह लेती है। हस्ति-शुण्ड के समान विशाल, भूति-भूषित, सुडौल, गोल, तेजोमय, अंगद-कंकण शोभित भुजा, मुक्ता-मोतियों के हार, नागेन्द्र हार, व्याघ्र चर्म, मनोहर चरणारविन्द और उनमें सुशोभित नखमणि चन्द्रिकाएँ भावुकों को अपार आनन्द प्रदान करती हैं। हिमाद्रि के समान धवलवर्ण स्वच्छ नन्दीगण पर विराजमान सदा-शक्ति रूपा श्री उमा के संग श्री शिव ठीक वैसे ही शोभित होते हैं, जैसे धर्म-तत्व के ऊपर ब्रह्म-विद्या सहित ब्रह्म विराजमान हों, किंवा माधुर्याधिष्ठात्री महाशक्ति के साथ मूर्तिमान होकर परमानन्द रसामृत सिंधु विराजमान हों।

भगवान शिव की ऐसी सर्वमनोहारिता है कि सभी उनके उपासक हैं। कालकूट विष और शेषनाग को गले में धारण करने से भगवान की मृत्युन्जयरूपता स्पष्ट है। जटामुकुट में श्रीगंगा को धारण कर विश्व-मुक्ति-मूल को स्वाधीन कर लिया। अग्निमय तृतीय नेत्र के समीप में ही चन्द्रकला को धारण कर अपने

संहारकत्व-पोषकत्व रूप विरुद्ध धर्माश्रय को दिखलाया। सर्व लोकाधिपति होकर भी विभूति और व्याघ्रचर्म को ही अपना भूषण वसन बनाकर संसार में वैराग्य को ही सर्वापेक्षया श्रेष्ठ बतलाया। आपका वाहन नन्दी, तो उमा का वाहन सिंह, गजपति का वाहन मूषक तो स्वामी कार्तिकेय का वाहन मयूर है। मूर्तिमान त्रिशूल और भैरवादि गण आपकी सेवा में सदा संलग्न हैं। ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्णादि भी उनकी उपासना करते हैं। नर, नाग, गन्धर्व, किन्नर, सुर, इन्द्र, वृहस्पति, प्रजापति, प्रभृति भी शिव की उपासना में तल्लीन हैं।

इधर तापस से तामस असुर हैं, दैत्य, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच, बैताल, डाकिनी, शाकिनी, वृश्चिक, सर्प, सिंह सभी आपकी सेवा में तत्पर हैं, वस्तुतः परमेश्वर का लक्षण भी यही है कि उसे सभी पूजें।

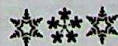
भगवान सदाशिव का भक्त भगवान से एक ही बार प्रणाम करने से अपने को मुक्त मानता है, भगवान भी 'महादेव' ऐसे उच्चारण करने वाले के प्रति ऐसे दौड़ते हैं, जैसे वत्सल गौ अपने बछड़े के प्रति-

"महादेव महादेव महादेवेति वादिनम्।
वत्सं गौरिव गौरीशोधावन्त मनुधावति॥"

जो पुरुष तीन बार 'महादेव, महादेव, महादेव' इस तरह नाम उच्चारण करता है, भगवान एक नाम से मुक्ति देकर शेष दो नाम से सदा के लिये उसके ऋषी हो जाते हैं। **"महादेव, महादेव, महादेवेति यो वदेत। एकेन मुक्ति माप्नोति द्वाभ्यां शम्भू ऋणी भवेत।"** और ठीक ही है यह **"नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं"** का आशय है।

साधक भगवान शिव की जप, तप, ध्यान, पूजा, यश श्रवण आदि जिन्ह किन्हीं साधनों से उपासना करता है उसी मार्ग से वे उपासना को ही सफल बनाते हुए सभी प्रकार की सिद्धियों तथा परा-सिद्धि रूप अपने आपको भी प्रदान कर उसे सभी प्रकार कृतकृत्य एवं सुखी कर देते हैं। अतः शिवोपासना ही सर्वोत्तम, धर्म, कर्म एवं साधना है।

(जय शिव शंकर)



(2) शिव-तत्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्री जयदयाल जी गोयन्द्रका)

श्लोक—"शान्तं पद्मासनस्थं शशधर मुकटं पंच वक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलंबज्रं च खंगं परशुभयप्रदम् दक्ष भागे वहन्तम्।

नागं पाशं च घण्टां प्रलय हुतबहं सांकुशं वाम भागे
नानालंकारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥"

शिव-तत्व बहुत ही गहन है। श्रुति, स्मृति पुराण इतिहास आदि में सृष्टि की उत्पत्ति का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन मिलता है, इस पर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियों के पृथक-पृथक मत होने के कारण इनके वर्णन में भेद होना सम्भव है, परंतु पुराण तो सभी महर्षि वेद व्यास के रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टि की उत्पत्ति के वर्णन में विभिन्नता ही पाई जाती है। शैव पुराणों में शिव से, वैष्णव पुराणों में विष्णु, कृष्ण या राम से और शाक्त पुराणों में देवी से सृष्टि की उत्पत्ति बतलाई गई है। इसका क्या कारण है? एक ही पुरुष द्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणों में एक ही खास विषय में इतना भेद क्यों? सृष्टि के विषय में ही नहीं, इतिहासों और कथाओं में भी पुराणों में कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है। इसका क्या हेतु है?

इस प्रश्न पर मूल तत्व की ओर लक्ष्य रख कर गम्भीरता के साथ विचार करने पर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास पुराणों के वर्णन में एक योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रों के रचियता ऋषियों के कथन में भेद रहने पर भी वस्तुत: मूल सिद्धान्तों में कोई खास भेद नहीं है, क्योंकि प्राय: सभी कोई नाम-रूप बदल कर आदि में प्रकृति-पुरुष से ही सृष्टि की उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णन में भेद होने के कई कारण हैं-

(1) मूल तत्व एक होने पर भी प्रत्येक महासर्ग के आदि में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम सदा एक सा नहीं रहता। क्योंकि वेदाशस्त्र और पुराणों में भिन्न-भिन्न महासर्गों का वर्णन है, इससे वर्णन में भेद होना स्वाभाविक है।

(2) महासर्ग और सर्ग के आदि में भी उत्पत्ति-क्रम में भेद रहता है। ग्रन्थों में कहीं महासर्ग का वर्णन है तो कहीं सर्ग का, इससे भी भेद हो जाता है।

(3) प्रत्येक सर्ग के आदि में भी सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम सदा एक सा नहीं रहता, यह भी भेद होने का एक कारण है।

(4) सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार के क्रम का रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्विजय है, इसे समझने के लिये नाना प्रकार के रूपकों से उदाहरण वाक्यों द्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति आदि का रहस्य बतलाने की चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्य को न समझने के कारण भी एक दूसरे ग्रन्थ के वर्णन में विशेष भेद प्रतीत होता है।

ये तो सृष्टि की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में वेद-शास्त्रों में भेद होने का कारण है, पर पुराणों के सम्बन्ध में सब पुराणों की रचना वेदव्यास जी ने की उन्होंने देखा

कि वेद शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्म के अनेक नामों का वर्णन होने से वास्तविक रहस्य को न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धि की विचित्रता के कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम रूप वाले एक ही परमात्मा को अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरों का विस्तार होने से असली तत्व का लक्ष्य छूट गया है। इस अवस्था में उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्य की ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्ग पर लाने के लिये एवं श्रुति, स्मृति आदि का रहस्य स्त्री, शूद्रादि अल्प बुद्धि वाले मनुष्यों को समझाने के लिये, उन सबके परमहित के उद्देश्य से पुराणों की रचना की जिनमें इस प्रकार के वर्णन और उपदेश किये हैं जिनके प्रभाव से परमेश्वर के नाना प्रकार के नाम और रूपों को देखकर भी मनुष्य प्रमाद, क्षोभ और मोह के वशीभूत हो सन्मार्ग का त्याग करके मार्गान्तर में नहीं जा सकते। वे किसी भी नामरूप से परमेश्वर की उपासना करते हुए ही सन्मार्ग पर आरूढ़ रह सकते हैं, उन्होंने सबके लिये परमधाम पहुँचने का मार्ग सरल कर दिया। पुराणों में यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान के जिस नाम रूप का उपासक हो, वह उसी को सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, विज्ञानाानन्द घन परमात्मा माने और उसी को सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में प्रकट होकर क्रिया करने वाला समझे। उपासक के लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेव से बढ़कर और कोई है ही नहीं। सब उसी का लीला विस्तार या विभूति है।

वास्तव में बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही है। उन्हीं के किसी अंश में प्रकृति है। उस प्रकृति को ही लोग माया, शक्ति आदि नामों से पुकारते हैं, वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि-अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि-सान्त मानते हैं, कोई उसका ब्रह्म की शक्ति को ब्रह्म से अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं, कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः माया के सम्बन्ध में जो भी कहा जाता है, माया उससे भी विलक्षण है। क्योंकि उसे न असत ही कहा जा सकता है न सत् ही। असत तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसी का विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड़ दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होने से उसकी नित्य सम-स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होने के उत्तरकाल में उसका या उसके सम्बन्ध का अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानी का भाव ही असली भाव है, इसलिये उसको अनिवर्चनीय समझना चाहिए।

विज्ञानानंदघन परमात्मा के वेदों में दो स्वरूप भाव हैं, इसलिये उसको

अनिवर्चनीय समझना चाहिए। ब्रह्म कहा गया है और जिस अंश में प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है उस प्रकृति सहित ब्रह्म के अंश को सगुण कहते हैं। सगुण ब्रह्म के भी दो भेद माने गये हैं-एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार, सगुण ब्रह्म को ही महेश्वर, परमेश्वर आदि नामों से पुकारा जाता है, वही सर्वव्यापी, निराकार, सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश-इन तीनों रूपों में प्रकट होकर सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इस प्रकार पाँच रूपों में विभक्त से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्मा को ही शिव के उपासक सदा-शिव, विष्णु के उपासक महाविष्णु और शक्ति के उपासक, महाशक्ति आदि नामों से पुकारते हैं। और पाँचों को ही शिव का रूप बतलाते हैं, भगवान विष्णु के प्रति भगवान महेश्वर कहते हैं—

(1) "त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्म विष्णु हराख्यहा।
सर्गरक्षालय गुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शतान वै।
तथा ममागुणास्यापि संयोगाद् बन्धनं नहि॥
यथैकस्या मृदो भेदोनाग्नि पात्रे न वस्तुतः।
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः॥
एवं ज्ञात्वा भवदभ्यां च न दृश्यं भेद कारणम्।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयंयो भविष्यति।
एकं रूपं नभेदोऽस्ति भेदे च वधनं भवेत॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम्।
मूलभूत सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥

(शिव० ज्ञान 04 141-44, 48-51)

"हे विष्णो! हे हरे! मैं स्वभाव से निर्गुण होता हुआ भी संसार की रचना, स्थिति एवं प्रलय के लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-इन तीन रूपों में विभक्त हो रहा हूँ, जिस प्रकार जलादि के संसर्ग से अर्थात् उनमें प्रतिबिम्ब पड़ने से सूर्य आदि ज्योतियों में कोई स्पर्शता नहीं आती, उसी प्रकार मुझ निर्गुण का भी गुणों के संयोग से बन्धन नहीं होता। मिट्टी के नाना प्रकार के पात्रों में केवल नाम और आकार का ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है-एक मिट्टी ही है। समुद्र के भी फेन, बुदबुदे तरंगादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आप लोगों को भेद का कोई कारण न देखना चाहिए। वस्तुतः मात्र दृश्य पदार्थ शिव रूप ही है, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्र-मूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एक रूप ही हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धन का कारण है।

फिर भी यहाँ मेरा यह शिव रूप नित्य सनातन एवं सबका मूल स्वरूप कहा गया है। यही **सत्य ज्ञान एवं अनन्त रूप** गुणातीत पर ब्रह्म है।"

साक्षात महेश्वर के इन बचनों से उनका **"सत्यं, ज्ञान मनन्तं ब्रह्म"** नित्य विज्ञानानन्द घन, निर्गुण रूप, सर्वव्यापी, सगुण, निराकार रूप और ब्रह्मा, विष्णु रुद्र रूप ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पञ्च वक्त्र हैं।

(2) इसी प्रकार विष्णु के उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्म को महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को वासुदेव तथा सृष्टि पालन और संहार करने वाले रूपों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं–

"अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैक रूप रूपाय विष्णवे सर्व जिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्ग स्थित्यन्त कारिणे॥
एकानेक स्वरूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्त व्यक्तभूताय विष्णवे मुक्ति हेतवे॥
सर्ग स्थिति विनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयां समणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोन्तमम्॥ *(विष्णु 1/2/1-5)*

"निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव आदि नामों से प्रसिद्ध, संसार तारक, विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय के कारण, एक और अनेक स्वरूप वाले, स्थूल, सूक्ष्म-उभयात्मक व्यक्ताव्यक्त स्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान विष्णु को मेरा बारम्बार नमस्कार है। इस संसार की उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी मूल कारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान वासुदेव परमात्मा को मेरा नमस्कार है। विश्वाधार सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतों के अन्दर रहने वाले, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान को मेरा प्रणाम हे।

यहाँ अव्यक्त से निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्मा का निर्गुणस्वरूप समझना चाहिये। व्यक्त से सगुण स्वरूप समझना चाहिए। उस सगुण के भी स्थूल और सूक्ष्म-दो स्वरूप बतलाये गये हैं। वहाँ सूक्ष्म से सर्वव्यापी भगवान वासुदेव को समझना चाहिए, जो कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश के भी मूल कारण हैं, एवं सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म पुरुषोत्तम नाम से बतलाये गये हैं। तथा स्थूल रूप यहाँ संसार की

उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश के वाचक हैं जो कि हिरण्यगर्भ हरि और शंकर के नाम से कहे गये हैं, इन्हीं सब बचनों से श्रीविष्णु भगवान के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

(3) इसी प्रकार भगवती महाशक्ति की स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

"सृष्टि स्थिति विनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमपि नारायणि नमोऽस्तुते॥" *(मार्कण्डेय० 91।10)*

"ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप से सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और विनाश करने वाली हे सनातनी शक्ति ! हे गुणाश्रये ! हे गुणमयी नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार हो।"

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

"त्वमेव सर्वजननी मूल प्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टि विधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणास्वयं।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्यनित्या सनातनी॥
तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रह विग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमंगलमंगला॥"

(ब्रह्मवै० प्रकृति० 2।66।7-10)

"तुम्हीं विश्वजननी, मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि की उत्पत्ति के आद्या शक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो, परम तेजःस्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु शरीर धारण करती हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधारा एवं परात्पर हो। तुम सर्व बीज स्वरूप, सर्व पूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकार से मंगल करने वाली एवं सर्वमंगलों का भी मंगल हो।"

ऊपर के उद्धरण से महाशक्ति का विज्ञानानन्द घन के साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और विनाश के लिये, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में होना पाँच रूप सिद्ध होते हैं।

(4) इसी प्रकार ब्रह्माजी के बारे में कहा गया है—

"जय देवाति देवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने॥

एतत्रि भाव भावाय उत्पत्ति स्थिति कारकः।
रजोगुण गुणा विष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्। *(देवीपुराण अ० 83)*

"आपकी जय हो! उत्तम बुद्धि वाले, अव्यक्त-व्यक्त रूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक, ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप तीनों भावों से भावित होने वाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेव के लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुण से आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ रूप से चराचर संसार को उत्पन्न करते हैं तथा सत्वगुण युक्त होकर विष्णु रूप से पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्र रूप से सम्पूर्ण संसार का संहार करते हैं।"

उपर्युक्त बचनों से ब्रह्माजी के भी परात्पर सहित पाँचों रूपों का होना सिद्ध होता है। अव्यक्त से तो परात्पर परब्रह्म स्वरूप एवं कारण से सर्वव्यापी, निराकार सगुण रूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारक होने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप होना सिद्ध होता है।

(5) इसी तरह भगवान श्रीराम के प्रति भगवान शिव के वाक्य हैं–

"एकस्त्वं पुरषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृहणासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृ रूपस्त्वं पालने त्व प्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥"

(पद्म पु० पाता० 28।6-8)

"आप प्रकृति से अतीत साक्षात अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंश कला के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु रुद्र रूप से विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं, आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्व के परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसार की सृष्टि के समय आप ब्रह्मरूप से प्रकट होते हैं पालन के समय स्वप्रभामय विष्णु रूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलय के समय मुझ सर्व रुद्र का रूप धारण कर लेते हैं।" श्रीरामचरितमानस में भी श्री शंकर ने पार्वती से भगवान राम के सम्बन्ध में कहा है–

"अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवश सगुन सो होई॥
जो गुन रहित समुनसो कैसे। जलु हिम उपल विलग नहीं जैसे॥
राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥"

(6) इसी प्रकार भगवान कृष्ण के परब्रह्म परमात्मा होने का विविध ग्रन्थों में उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कथा है कि एक महासर्ग के आदि में भगवान श्रीकृष्ण के दिंव्य अंगों से भगवान नारायण और भगवान शिव तथा अन्यान्य सब देवी देवता प्रादुर्भूत हुए वहाँ श्री शिवजी ने भगवान श्रीकृष्णजी की स्तुति करते हुए कहा है–

"विश्वं विश्वश्वरेशं च विश्वेशं विश्व कारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारण कारणम्॥
विश्व रक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फल च तत्फल प्रदम्॥"

(ब्रह्म० 1/3/25-26)

"आप विश्व रूप हैं, विश्व के स्वामी हैं, नहीं-नहीं विश्व के स्वामियों के भी स्वामी हैं, विश्व के कारण हैं, कारण के भी कारण हैं, विश्व के आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्व रक्षक हैं, विश्व का संहार करने वाले हैं और नाना रूपों से विश्व में आविभूर्त होते हैं। आप फलों के बीज हैं, फलों के आधार हैं, फल स्वरूप हैं और फलदाता हैं।"

गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है–

"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्या व्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥" *(14/27)*
"गतिर्भर्ता प्रभुः साक्ष निवासः शरणं सुहृत।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजम व्ययम्॥" *(9/18)*
"तपप्यहमहं वर्षंनिगृह्वाभ्यु त्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चा हमर्जुन॥" *(9/19)*
"मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदास्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ *(7/7)*
"यो मामजमनादिं च वेन्ति लोक महेश्वरम्।
-असम्मूढ़ः स मर्त्येषु सर्व पापैः प्रमुच्यते॥" *(10/3)*

"हे अर्जुन! उस अविनाशी परब्रह्म और अमृत का तथा नित्य धर्म का एवं अखण्ड एक रस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ, अर्थात् उपर्युक्त, ब्रह्म, अमृत, व्यक्त और शाश्वत धर्म तथा एकान्तिक सुख-यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होने योग्य, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ का देखने वाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करने वाला, उत्पत्ति प्रलय रूप सबका आधार निधान (प्रलयकाल में सम्पूर्ण भूत सूक्ष्म रूप से जिसमें लय होते

हैं उनका नाम 'निधान' है) और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ तथा वर्षा को आकर्षण करता हूँ और बरषाता हूँ एवं हे अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत् सब कुछ मैं ही हूँ।"

"हे धनंजय! मेरे से सिवा किंचितमात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुँथा हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तव में जन्म रहित) अनादि (अनादि उसको कहते हैं जो आदि रहित होवै और सबका कारण होवे) तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।"

ऊपर के इन अवतरणों से यह सिद्ध हो गया कि भगवान श्री शिव, विष्णु, शक्ति, ब्रह्मा, राम, कृष्ण तत्वत: एक ही हैं। इस विवेचन पर दृष्टि डालकर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्मा को मानकर सच्चे सिद्धांत पर ही चल रहे हैं, नाम-रूप का भेद है, परन्तु वस्तु-तत्वों में कोई भेद नहीं, सबका लक्ष्यार्थ एक ही है, किसी भी नाम रूप से उस परमात्मा को लक्ष्य करके जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्मा की उपासना है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिव के उपर्युक्त तत्व को न जानने के कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान विष्णु की निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान शिव की निंदा करते हैं। कोई-कोई यदि निंदा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्राय: उदासीन से तो रहते ही हैं। परंतु इस प्रकार का व्यवहार वस्तुत: ज्ञान रहित समझा जाता है। यदि वह कहा जाय कि ऐसा न करने से एकनिष्ठ अनन्य उपासना में दोष आता है तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पति को ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पति के माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पति के अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओं की भी पति की आज्ञानुसार पति की प्रसन्नता के लिये यथोचति आदरभाव से मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है, और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पतिव्रत धर्म से जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यश को प्राप्त होती है। वास्तव में दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष बुद्धि में है अथवा व्यभिचार और शत्रुता में है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्तव्य है।

इसी प्रकार परमात्मा के किसी एक नाम रूप को अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्य भाव से भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवों की अपने इष्टदेव की आज्ञानुसार उसी स्वामी की प्रीति के लिये श्रद्धा और आदर के साथ योग्य सेवा करनी चाहिए। उपर्युक्त अवतरणों के अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानंदघन ब्रह्म

ही हैं तथा वास्तव में उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नाम रूप से द्वेष या उसकी निंदा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्म से ही वैसा करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णु ने या श्री ब्रह्मा ने एक दूसरे की न तो निंदा आदि की है और न निन्दा आदि करने के लिये किसी से कहा है, बल्कि निंदा आदि निषेध और तीनों को एक मानने की प्रशंसा की है। शिव पुराण में कहा गया है—

"एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्पर मनुव्रताः॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्य ञ्चति रिंच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः॥"

"ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरे से उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरे को धारण करते हैं, एक दूसरे के द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरे के अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णु की और कहीं महादेव की। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है, मानो वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है, वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है।"

(1) स्वयं भगवान शिव श्रीविष्णु भगवान से कहते हैं—

"मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव त्व दर्शने।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम्॥ *(शिव पु० ज्ञान० 4।61-62)*

"मेरे दर्शन का जो फल है वही आपके दर्शन का है। आप मेरे हृदय में निवास करते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ, जो हम दोनों में भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।"

(2) भगवान श्रीराम भगवान शिव से कहते हैं—

"ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढ़ा पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेक रुपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्त्रकम्॥
ये त्वद्भक्ता सदा संस्ते मद्भक्ता धर्म संयुक्ता।
मद्भक्ता अपि भूयस्या तव नतिङ्करा॥" *(पद्मपु० पाता० 28।21-23)*

"आप (शंकर) मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं। जो मनुष्य हमारे अन्दर भेद-भावना करते हैं, वे हजार कल्प पर्यन्त कुम्भीपाक नरकों में यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहते हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्ति से आपको भी प्रणाम करते हैं।"

(3) इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण भी भगवान शिव से कहते हैं—

"त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्र दिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत कल्पायुतं दिवि।
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्र बान्धव वांस्तथा॥
ज्ञानवान् युक्तिमान् साधुः शिवलिंङ्गा र्चनाद्भवेत्।
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
कोटि जन्मर्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥

(ब्रह्मवै0 प्र0 6 131 132 145, 47)

"मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जब तक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व रहेगा, तब तक काल सूत्र में = नरक में पचते रहेंगे। जो शिवलिंग का निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है वह दस हजार कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। शिवलिंग के अर्चन से मनुष्य को प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण कर शरीर छोड़ता है, वह करोड़ों जन्मों के संचित पापों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।"

(4) भगवान विष्णु श्रीमद्भागवत *(4 17 154)* में दक्ष प्रजापति के प्रति कहते हैं—

"त्रयाणामेक भावानां यो न पश्यति वै भिदास।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्ति मधिगच्छति॥"

"हे विप्र! हम तीनों एक रूप हैं और समस्त भूतों की आत्मा हैं, हमारे अन्दर जो भेद-भावना नहीं करता, निःसन्देह वह शान्ति = मोक्ष को प्राप्त होता है।"

(5) श्रीरामचरितमानस में भगवान रामजी ने कहा है—

"शंकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प मरि, घोर नरक महुँ बास॥

औरहु एक गुप्त मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
शंकर भजन बिना नर, भगति न पावहिं मोरि॥"

ऐसी अवस्था में जो मनुष्य दूसरे के इष्टदेव की निन्दा करता है या अपमान करता है वह वास्तव में अपने ही इष्टदेव का अपमान या निन्दा करता है।

'शिव' शब्द नित्य विज्ञानानन्द घन परमात्मा का वाचक है। यह उच्चारण में बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्ति प्रद है। 'शिव' शब्द की उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातु से हुई है जिसका तात्पर्य है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते हैं अखण्ड आनन्द को। अतएव 'शिव' शब्द का अर्थ आनन्द हुआ, जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्द को ही परम मंगल और परम कल्याण कहते हैं, इस आनन्द दाता, परम कल्याण रूप शिव को ही शंकर कहते हैं। 'शं' आनन्द को कहते हैं और 'कर' से करने वाला समझा जाता है, वही 'शंकर' है, ये सब लक्षण उस नित्य विज्ञानानंदघन परम ब्रह्म के ही हैं।

इस प्रकार रहस्य समझकर शिव की श्रद्धा भक्ति पूर्वक उपासना करने से उनकी कृपा से उनका तत्व समझ में आ जाता है। जो पुरुष शिव-तत्व को जान लेता है, उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। शिव-तत्व को हिमालय तनया भगवती पार्वती यथार्थ रूप से जानती थीं, इसलिये क्षद्मवेशी स्वयं शिव के बहकाने से भी वे अपने सिद्धान्त से तिलमात्र भी नहीं टलीं। उमा-शिव का यह संवाद बहुत ही उपदेश प्रद और रोचक है-

शिव-तत्वैकनिष्ठ पार्वती शिव-प्राप्ति के लिये घोर तप करने लगीं। उनकी कठोर तपस्या को देख सुनकर परम आश्चर्यान्वित हो ऋषीगण भी कहने लगे-अहो! इसको धन्य है इसकी तपस्या के सामने दूसरों की तपस्या कुछ भी नहीं है। पार्वती की इस तपस्या को देखने के लिये स्वयं भगवान शिव जटाधारी वृद्ध ब्राह्मण के वेष में तपोभूमि में आये और पार्वती के द्वारा फल-पुष्पादि से पूजित होकर उसके तप का उद्देश्य शिव से विवाह करना है, यह जानकर कहने लगे—

हे देवि! इतनी देर बातचीत करने से तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। मित्रता के नाते तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है। तुम्हारा शिव के साथ विवाह करने का संकल्प सर्वथा अनुचित है। तुम सोने को छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्याग कर कीचड़ पोतना चाहती हो। हाथी छोड़कर बैल पर मन चलाती हो। गंगाजल परित्याग कर कुएँ का जल पीने की इच्छा करती हो। सूर्य का प्रकाश छोड़कर खद्योत को और रेशमी वस्त्र त्यागकर चमड़ा पहनना चाहती हो। तुम्हारा यह कार्य तो देवताओं की संन्निधि का त्याग कर असुरों का साथ करने के समान है। उत्तमोत्तम देवों को छोड़कर शंकर पर अनुराग करना सर्वथा लोक विरुद्ध है।

'जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवन

कमनीय सौंदर्य और कहाँ जटाधारी, चिता भस्म लेपनकारी, श्मशानवासी, त्रिनेत्र, भूतपति महादेव। कहाँ तुम्हारे घर के देवता लोग और कहाँ शिव के पार्षद भूत-प्रेत। कहाँ तुम्हारे पिता के घर बजने वाले सुन्दर बाजों की ध्वनि और कहाँ उस महादेव के डमरू सिंगी और गाल बजाने की ध्वनि। न महादेव के मा-बाप का पता है न जाति का। दरिद्रता इतनी कि पहनने को कपड़ा तक नहीं, दिगम्बर रहते हैं, बैल की सवारी करते हैं और बाघ का चमड़ा ओढ़े रहते हैं। न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है! सदा अकेले रहने वाले, उत्कटविरागी, रुण्डमालाधारी महादेव के साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी?"

पार्वती और अधिक शिव निंदा न सह सकीं। वे तमक कर बोलीं-"बस बस बस रहने दो, मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती। मालूम होता है तुम शिव के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जाने। इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। तुम किसी धूर्त ब्रह्मचारी के रूप में यहाँ आये हो। शिव वस्तुत: निर्गुण हैं, करुणावश ही वे सगुण होते हैं, उन सगुण और निर्गुण उभयात्मक शिव की जाति कहाँ से होगी? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे? और उनकी उम्र का ही क्या परिमाण बाँधा जा सकता है? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अत: उनकी शक्ति का पता कौन लगा सकता है? वही अनादि, अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातन देव हैं। तुम कहते हो महादेव विद्याहीन हैं, अरे! ये सारी विद्याएँ आयी कहाँ से? वेद जिनके नि:स्वाँस हैं उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो? छि: छि:!! तुम मुझे शिव को छोड़कर किसी अन्य देवता का वरण करने को कहते हो। अरे! इन देवताओं को जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व प्राप्त ही कहाँ से हुआ? यह उन भोलेनाथ की ही कृपा का फल है।

इन्द्रादि देवता तो उनके दरवाजे पर ही स्तुति प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणों की आज्ञा के अन्दर घुसने का साहस नहीं कर सकते। तुम उन्हें अमंगल वेष कहते हो? अरे, उनको 'शिव'—यह मंगलमय नाम जिनके मुख में निरंतर रहता है, उनके दर्शन मात्र से सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या है? जिस चिता-भस्म की तुम निंदा करते हो, नृत्य के अंत में जब वह उनके श्रीअंगों से झड़ती है, उस समय देवगण उसे अपने मस्तक पर धारण करने को लालायित होते हैं। बस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्व को बिल्कुल नहीं जानते। जो मनुष्य इस प्रकार उनके दुर्गम तत्व को बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं उनके जन्म-जन्मान्तरों के संचित किये हुए पुण्य विलीन हो जाते हैं। तुम जैसे शिव-निंदक का सत्कार करने से पाप लगता है, बस अब मैं यहाँ से जाती हूँ। यह कह उमा वहाँ से चल दीं। ज्यों ही वे वहाँ से जाने लगीं, वटुं-वेषधारी शंकर ने उन्हें रोक लिया। वे अधिक देर तक पार्वती से छिपे न रह सके, पार्वती जिस रूप

का ध्यान करती थीं उसी रूप में उनके सामने प्रकट हो गये और बोले-"मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।"

पार्वती की इच्छा पूर्ण हुई, उन्हें साक्षात् शिव के दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, कुछ काल में शिव ने पार्वती का पाणिग्रहण कर लिया।

ऐसे भोलेनाथ भगवान शंकर को जो प्रेम से नहीं भजते, वास्तव में वे शिव के तत्व को जानते नहीं हैं, अतः उनका मनुष्य जन्म लेना ही व्यर्थ है, इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय, अतएव भगवान शिव के प्रेम और प्रभाव को समझकर उनके स्वरूप का निष्काम प्रेमभाव से निरन्तर चिन्तन होने के लिये प्राण पर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

पद

सत-चित-आनन्द शंकर के, जो जन गुण गन गाते हैं।
साम्ब सदा शिव हिय में धरि, प्रेम-भक्ति वो पाते हैं॥टेक॥
चरणार बिन्दु शिव चूमन को, भावना भक्ति ललचाती है।
हम उनके चरणों की शरण गहैं, नारदादि व्यास अपनाते हैं॥1॥सत०
वे सबके उर में बैठे हैं, भक्त अभक्त व्यवहार करै,
जो जैसा करैं आचरण जग वो वैसा ही फल पाते हैं॥2॥सत०
पर कोटि जन्म में पाप किये, गर फिर भी सम्मुख हो जावैं।
तब ही नाँसैं अघ पुंज सबहि, वे हर भक्त कहाते हैं॥3॥सत०
सुर नर मुनी ऋषी ज्ञानी, सुनि महिमा नहीं अघाते हैं।
आगम, निगम पुराण नेति कहि, कोउ पार न पाते हैं॥4॥सत०
वे शिव विज्ञानी, अवढ़रदानी, भक्तन के हितकारी हैं।
त्रिपुरनाश अरु काम दहन, ताण्डव नृत्य रचाते हैं॥5॥सत०
इनकी लीला और चरित्रन, जो गावैं सुनि हर्षाते हैं।
धन्य बनें सुफल होइ जीवन, फिर जग में नहीं वे आते हैं॥6॥सत०
(जय शिव शंकर)



(3) परम शिवतत्व

(लेखक—डा० पं० श्री हरदत्तजी शर्मा एम०ए०, पी०एच०डी०)

भगवान पशुपति की अभ्यर्चना के अंदर जो दार्शनिक तत्व भरा हुआ है, उससे साधारण जनता को विशेष परिचय नहीं है, तथा भगवान शंकर को **'पशुपति'**

किसलिये कहते हैं? इसका भी सर्वसाधारण को ज्ञान नहीं है। प्रस्तुत लेख में शैव-सिद्धान्त के अनुसार दार्शनिक तत्व का दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गई है-

शैवागम का सिद्धान्त यह है कि 'पशु' (जीव) को तत्व-ज्ञान द्वारा अर्थात् विद्या, क्रिया, योग और चर्या द्वारा अपने पाशों (बन्धनों) का छेदन करना चाहिये। इसी से 'पशुपति' (भगवान शंकर) की कृपा द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति होती है। शैवागम के अनुसार तीन 'पदार्थ' (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार 'पाद' या साधन (विद्या[1], क्रिया[2], योग[3] तथा चर्या[4] हैं।

गुरु से नियमपूर्वक मन्त्रोंपदेश लेने को 'दीक्षा' कहते हैं। यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर, विद्येश्वर आदि पशुओं के ज्ञान के बिना नहीं हो सकती। इसी ज्ञान से पशु, पाश तथा पाशुपति का ठीक-ठीक निर्णय होता है। अतः इस ज्ञान का प्रतिपादक प्रथम 'पाद' 'विद्या'[1] है। भिन्न-भिन्न अधिकारियों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की दीक्षा होती है। इन दीक्षाओं का प्रदर्शक दूसरा 'क्रिया'[2] नामक पाद है। किन्तु यम, नियम, नियमासन आदि अष्टांग योग के बिना अभीष्ट प्राप्ति नहीं हो सकती अतः तीसरे 'योग'[3] नामक पाद की आवश्यकता है। योग साधन के लिये भी अत्यावश्यक शास्त्र विहित कर्मों का अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मों का त्याग है, इन सब कर्मों का प्रतिपादक 'चर्या'[4] नामक चतुर्थ पाद है।

(1) पशुपति या पतिः—स्वयं सर्व प्रकार स्वतंत्र भगवान शंकर हं 'पति' नामक पदार्थ हैं। यद्यपि विद्येश्वर इत्यादि मुक्त जीव भी शिव-भाव को प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु यह सब स्वतंत्र नहीं होते, अपितु परमेश्वर के अधीन रहते हैं। इस पर यदि कोई कहे कि ईश्वर का अस्तित्व तो सिद्ध करो तो इसका उत्तर यह है कि इस संसार में मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि प्राणधारियों के शरीर-इन्द्रिय आदि के निर्माण में हमें एक अटल नियम दृष्टिगोचर होता है। यह नियम किसी जड़ से तो बनाया नहीं जा सकता, उसका बनाने वाला चेतन ही होना चाहिए और वह चेतन तत्व भी सर्व-सामर्थ्य युक्त होना चाहिए अन्यथा संसार की प्रत्येक वस्तु में लागू नियम नहीं बना सकता। वही सर्वसामर्थ्य युक्त चेतन परमेश्वर है-वही इस देह-इन्द्रिय इत्यादि कार्यों का कारण है।

इस पर यदि कोई कहे कि देह कार्य है और इसलिये कारण से उत्पन्न हुआ है, इसमें क्या प्रमाण है? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे घट, पट इत्यादि कार्य अवयवों से युक्त होते हैं, और विनाशशील हैं, उसी प्रकार देह भी है। हाँ इसका कर्त्ता ऐसा होना चाहिए जो निरवयव तथा नित्य हो, बस वही परमेश्वर है। अब यदि ये प्रश्न हो कि निरवयव और नित्य तो जीवात्मा को भी मानते हो, तो क्या जीवात्मा ही इस संसार का कर्त्ता है? इसका उत्तर यह है कि जीवात्मा अज्ञानी तथा परतन्त्र है, वह इस सृष्टि का कर्ता नहीं हो सकता। इसका कर्ता तो सब प्रकार से स्वतंत्र तथा

ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर ही हो सकता है, अन्य नहीं ।

यही ईश्वर सब जीवों को उनके कर्मानुसार शरीरादि साधन तथा विषयादि भोग प्रदान करता है। सब वस्तुओं का कर्ता होने के कारण ईश्वर को सर्वज्ञ भी मानना पड़ेगा। क्योंकि यदि ईश्वर अज्ञ या अल्पज्ञ हो तो वह सब वस्तुओं का उत्पादन कैसे कर सकता है? इस पर यदि कोई ऐसा कहे कि हम स्वतंत्र ईश्वर को जानने के लिये तैयार हैं, किन्तु ईश्वर को सशरीर होना पड़ेगा-घट-पटादि कार्यों के कर्त्ता कुम्हार, जुलाहा आदि सब हमने सशरीर ही देखे हैं, और यदि ईश्वर को शरीर-युक्त माना जाय तो उसे हम जैसे शरीरधारी प्राणियों के समान सुख-दु:ख आदि का भोक्ता, अल्प तथा परिमित शक्ति वाला भी मानना पड़ेगा। इसका उत्तर यह है कि देखिये, आत्मा स्वयं शरीर वाला न होकर भी (अर्थात् शरीर से भिन्न होकर भी) शरीर के अन्दर क्रिया उत्पन्न करता दिखाई देता है, इसलिये कर्त्ता को सशरीर होना ही पड़ेगा, यह नियम सर्वदा और सर्वत्र लागू नहीं हो सकता। फिर यदि ईश्वर को सशरीर मान भी लें तो भी उसका शरीर हम लोगों के शरीर जैसा नहीं हो सकता, किन्तु उसका शरीर निर्मल तथा कर्मादि बन्धनों से मुक्त होने के कारण 'शाक्त' (शक्ति स्वरूप) ही मानना पड़ेगा। अर्थात् ईश्वर का शरीर मन्त्रमय है, मन्त्र ही उसके अवयव हैं भगवान शंकर का शरीर जिससे अनुग्रह, तिरोभाव, उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयरूपी पाँचों कर्म होते हैं, हमारे शरीर से भिन्न हैं। अर्थात् भगवान का शरीर मलादि दोषों के न होने से शक्तिस्वरूप है। इस पर फिर कोई यदि प्रश्न करे कि भगवान के पाँच मुख, पन्द्रह आँखों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है तो फिर कैसे हमारे जैसा सोन्द्रिय शरीर नहीं है? इसका उत्तर यह है कि निराकार भगवान की उपासना असम्भव है, अतः भक्तों की सुविधा के लिये यह भगवान का साकार रूप मात्र है।

(2) 'पशु'—व्यापक जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ ही 'पशु' कहलाता है। यह चावार्क आदि नास्तिकों द्वारा निरूपित देह नहीं है। यदि देह को ही आत्मा मान बैठें, तो बाल्य, योवन, बुढ़ापा आदि अवस्थाओं में बदलता हुआ शरीर बाल्यावस्था की बात तरुणावस्था में कैसे स्मरण कर सकेगा और नैयायिकों के समान हमारे यहाँ जीवात्मा अनुमान से जाना जाता है, क्योंकि यदि अनुमान से जाना जाय तो इस अनुमान को करने से पहले जीवात्मा को जानने वाला दूसरा जीवात्मा होगा, दूसरे को तीसरा, तीसरे को चौथा-इस प्रकार अनवस्था दोष हो जायेगा। आत्मा तो देश तथा काल इन दोनों से अतीत और अपरिमित है। हम शैव लोग जीवात्मा को अद्वेतवादियों के समान एक मानने को भी तैयार नहीं हैं क्योंकि आत्मा एक हो तो भिन्न-भिन्न प्रकार के सुख-दु:ख आदि का अनुभव भिन्न-भिन्न देहों में स्थित उस एक ही आत्मा को क्यों कर होना ठीक नहीं है? जब आत्मा एक है और उसे यदि किसी विशेष समय पर सुख है तो उसे उस समय विशेष में प्रत्येक देह में सुख का ही अनुभव करना

चाहिए। इससे यह सिद्ध हुआ कि भिन्न-भिन्न प्रकार का अनुभव होने के कारण जीवात्मा अनेक तथा प्रत्येक देह में भिन्न हैं। हमारे इस मत में सांख्य योगियों से भेद केवल इतना है कि हमारे यहाँ जीवात्मा अकर्त्ता, असंग तथा उदासीन नहीं है, किंतु ज्ञान और क्रिया शक्ति वाला है। यदि ज्ञान, क्रिया शक्ति से रहित हो तो इन्द्रियों के कर्मों के द्वारा जीवात्मा को बंधन कैसा प्राप्त हो और मल तथा पाप इत्यादि के निवारण द्वारा उसकी मोक्ष की ओर प्रवृत्ति कैसे हो?

वह पशु तीन प्रकार का है (1) (अ) विज्ञानाकल, (2) (आ) प्रलयाकल तथा (3) (इ) सकल।

(अ) (1) जो परमात्मा के स्वरूप को पहचान कर जप, ध्यान तथा सन्यास द्वारा अथवा भोग द्वारा कर्मों का क्षय कर डालता है और जिसको देह, इन्द्रियादि का कोई बंधन नहीं रहता फिर किंतु केवल मलरूपी पाश (बंधन) रह जाता है उसे 'विज्ञाना कल' कहते हैं।

(आ) (2) जिस जीवात्मा के देह-इन्द्रियादि प्रलय काल में लीन हो जाती हैं (किंतु बीज रूप में रहते हैं) तथा जिसमें मल और कर्म रूपी दो पाश (बंध) रह जाते हैं वह 'प्रलयाकल' कहलाता है।

(इ) (3) जिस जीवात्मा में मल, माया तथा कर्म यह तीनों पाश (बंधन) रहते हैं उसे 'सकल' कहते हैं।

(अ) (1) 'विज्ञानाकल' के भी 'समाप्त कलुष' और 'असमाप्त कलुष'-ये दो भेद हैं, जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्म की तह मल पर जमती रहती है, इसी कारण उस मल का परिपालक (अर्थात् मल के ऊपर से रोध यानी रुकावट का हटना) नहीं होने पाता। किंतु जब कर्मों का त्याग हो जाता है तब वह न जमने के कारण मल का परिपाक हो जाता है और जीवात्मा 'समाप्त कलुष' कहलाने लगता है। ऐसे जीवात्मा को भगवान आठ प्रकार के 'विद्येश्वर' पद पर पहुँचा देते हैं, उनके नाम ये हैं-

(1) अनन्त, (2) सूक्ष्म, (3) शिवोत्तम, (4) एक नेत्र, (5) एक रुद्र, (6) त्रिमूर्ति, (7) श्रीकंठ तथा (8) शिखण्डी।

'असमाप्त कलुष' जीवात्मा को परमेश्वर मन्त्र स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीर से रहित, किन्तु मल रूपी पाश में बँधे हुए जीवात्मा ही मंत्र हैं और इनकी संख्या 7 करोड़ है, ये सब अन्य जीवात्माओं पर अपनी कृपा करते रहते हैं।

(आ) 'प्रलयकाल' भी दो प्रकार के होते हैं-'एक्व पाश द्वय' और -अपक्वपाश द्वय'। जिसके 'मल' तथा 'कर्म' रूपी दोनों पाशों का परिपाक हो गया हो वह 'एक्व पाशद्वय' जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। 'अपाक्वपाशद्वय' जीव नाना प्रकार के कर्मों को करते हुए नाना योनियों में घूमा करते हैं।

(इ) 'सकल' भी दो प्रकार के होते हैं 'पक्वलुष' और 'अपक्व कलुष'। जैसे-जैसे जीवात्मा के 'मल-कर्म' तथा 'माया' इन पाशों का परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते चले जाते हैं। तब ये एक कलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मंत्र रूपी जीव विशेषों के, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, अधिकारी यही 118 'मंत्रेश्वर' जीव हैं।

(3) पाश—पाश चार प्रकार के होते हैं—(अ) मल (आ) रोध (इ) कर्म तथा (ई) माया।

(अ) जो आत्मा की स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया शक्ति को ढ़क ले, वह मल (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूप का केवल आच्छादन ही नहीं करता, किन्तु जीवात्मा को जबरदस्ती दुष्कर्मों में प्रवृत्त करने वाला पाश भी यही है।

(आ) प्रत्येक वस्तु में जो सामर्थ्य है उसको 'शिव-शक्ति' कहते हैं-जैसे अग्नि में जलाने की शक्ति, अन्धकार में वस्तु को ढ़कने की शक्ति, जल में शीतल करने की शक्ति, तेज में प्रकाश करने की शक्ति इत्यादि। यह शक्ति जैसे पदार्थ में रहती है वैसा ही रूप धारण कर लेती है-अर्थात् अच्छे में अच्छा, और बुरे में बुरा। अतः पाश में रहती हुई यह शक्ति जब आत्मा के स्वरूप को ढ़क लेती है तब यह 'रोधशक्ति' कहलाती है।

(इ) फल की इच्छा से किये हुए धर्म या अधर्म रूपी कर्मों को ही 'कर्मपाश' कहते हैं।

(ई) जिस शक्ति में प्रलय के समय सब कुछ लीन हो जाता है, तथा सृष्टि के समय जिसमें से सब कुछ उत्पन्न होता है, वह 'माया पाश' है।

अतः इन पाशों में बँध हुआ पशु जब तत्व-ज्ञान द्वारा इन पाशें को छेद डालता है, तभी वह परम शिव-तत्व अर्थात् 'पति' को प्राप्त होता है।

पद

"अनुपम मौंका मिला रे मानव, क्यों तू इसको खोता है।
सर्वोपरि सुख शान्ति मिलै, 'शिव' के कृतज्ञनहिं होता है॥
बासनाएँ उठती ज्वाला को, विषयन घृत शान्ति चाहता है।
भौतिक वस्तु से सुक्ख चहै, धोखे में खा रहयो गोता है॥1॥
वह सुख है क्षण भंगुर जग में, वो शास्वत सुख नहीं होता।
इस सुख में ठहराव नहीं, भटकन अरु तपन पिरोता है॥2॥
धन, यौवन, उन्माद का सुख, ये निरी मृग मरीचिका है।
सुख वस्तु का लेश नहीं, विदा पलक छपकते होता है॥3॥
कितने हूँ यन्त करौ रोकने, ठहर न राह पकड़ लेते।

सुख के गर्भ दुःख पलतो, क्यों अघ सिर पर ढोता है॥4॥
अच्छी तरह समझ ले मानव, जड़ सम्बन्ध में सुख नहीं।
भजले रे विश्वनाथ 'प्रिय' जो सब पापों को धोता है॥5॥
सर्वोपरि सुख शान्ति मिलै, 'शिव' के कृतज्ञ नहीं होता है॥"
दोहा—(1) "नैनन की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय।
पलकन की चिकु डाारि कै, शिव कू लेइ रिझाय॥
संसार भ्रम घर—(2) एक एक कर जा रहे, सब निज पर अरि यार।
फिरा भी समझें हम अमर, हृद भ्रम घर संसार॥



(4) शिव तत्व

(लेखक श्री भीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी०ए०एल० एल० बी० एस०सी०एम०आर० इ०इ०, एम० आइ० इ०)

देवाधिदेव महादेव के विषय में सम्यक रूप से आलोचना करना किसी के लिये भी सम्भव नहीं है, यही सब शास्त्रों का सिद्धान्त है। पूर्ण का वर्णन ही क्या किया जा सकता है? हम भी गन्धर्व राज पुष्पदंत के शब्दों में सर्वप्रथम यही कहते हैं—

"महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी,
स्तुति ब्रह्मा दीनामपि तदव सन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमति परिणामावधि गृणन्।
ममाप्येष स्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः॥"

"हे शिव! मुझ जैसे अज्ञ पुरुष से तुम्हारी महिमा यदि पूर्ण रूपेण व्यक्त करके नहीं कही गई है तो मैं यह कहूँ कि ब्रह्मादि भी तुम्हारी महिमा को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सके हैं, मेरी तो विसात ही क्या है? किन्तु अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हारा विषय कहने में यदि दोष न होता हो तो मैं भी यथासाध्य तुम्हारे गुणों का वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार करता हूँ, इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए" मेरी प्रार्थना है—

"आमि शिखि नाइ किछु बूझि नाइ किछु, दाओ हे शिखाये बुझाये॥"

"अर्थात् न तो मैंने कुछ सीखा है औन न मैं कुछ समझता ही हूँ। तुम्हीं सिखा दो, समझा दो।" मेरी इच्छा होती है कि माता पार्वती ने ब्रह्मचारी वेषधारी शंकर के निकट शिव की जो व्याख्या की है उसे ज्ञातव्य समझ कर नीचे उद्धृत करूँ—

"स आदिः सर्व जगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः।
सर्वं जगद्धयस्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः॥

गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्विभर्न्ति सः।
अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव स तत्पतिः॥
श्मशान ञ्चापि संसारस्त द्वासी कृपयार्थिनाम्।
भूतयः कथिता भूतिस्तां विभर्न्ति स भूति भृत्॥
वृषो धर्म इति प्रोक्तस्त मारुढ़स्ततो वृषी।
सर्वाश्च दोषाः क्रोधाद्यास्तान् विभर्त्ति जगन्मयः॥
नाना विधान् कर्म योगाज्जटारूपान्! विभर्ति सः।
वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरः त्रिगुणं वपुः।
भस्मी करोति तद्देवस्त्रिपुरघ्रस्ततः स्मृतः।
एवं विधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः॥"

'वे समस्त जगत के आदि हैं, सुतरां उनके वंश का वृत्तान्त कौन जान सकता है? समस्त जगत उनका स्वरूप है, इसलिये वे विवस्त्र हैं। वे त्रिगुणात्मक शूल धारण करते हैं, इसलिये उन्हें शूली कहते हैं। भूत सर्वथा संसार में बद्ध नहीं हैं बल्कि पूर्णतया मुक्त हैं, इसलिये वे मुक्त भूतगणों के अधिपति हैं। यह संसार ही श्मशान क्षेत्र है, वे प्रार्थियों के प्रति कृपावशतः इस श्मशान में वास करते हैं। उनकी विभूति ही सबको प्राकृत विभूति = ऐश्वर्य प्रदान करती है, इसलिये वे इस विभूति को अपने शरीर पर धारण करते हैं। धर्म ही वृष है और उस पर आरूढ़ होने के कारण यह 'वृषवाहन' कहलाते हैं। क्रोधादि दोष समूह ही सर्प हैं, जगन्मय महेश्वर इन सबको वशीभूत कर भूषण के रूप में धारण करते हैं। विविध कर्म कलाप ही जटा हैं, वह इन सबको धारण करते हैं। वेदत्रयी उनके तीन नेत्र हैं। त्रिगुणमय शरीर ही त्रिपुर पद वाच्य है, इसको भस्मसात करने के कारण ही वह 'त्रिपुरघ्न' कहलाते हैं। जो सूक्ष्मदर्शी पुरुष इस प्रकार के महादेव को जानते हैं वे उन हर का भजन क्यों न करेंगे?

माँ पार्वती के द्वारा वर्णित शिव उन्हीं के निकट प्रकट होते हैं। हम इस रहस्य को क्या समझें? साधारण नेत्रों से देखते हैं तो मालूम होता है कि शिव सर्व शास्त्र के वर्णनातीत लक्ष्य हैं। कान्ट (Kant) के देश और काल (Time and Space) से अतीत (Ding an Sich) (वस्तुतप्त) हमारे शिव ही हैं। इसलिये वे महाकाल के नाम से विख्यात हें, दिगम्बर हैं—असभ्यवर्वरजातीय पुरुष अथवा राक्षस नहीं। भर्तृहरि ने भी उन्हें **'दिक्कालाधनवच्छिन्न'** (दिशा एवं काल आदि से अनवच्छिन्न) कहा है। श्रुति भी उन्हें **'अप्रमेय'** और **'अनाद्य'** कहती है—

"अप्रमेयमनाद्यञ्च ज्ञात्वा च परमं शिवम्" *(ब्रह्म बिन्दु0 14 15 12)*

इसी कारण वह **'स आदिः सर्वजगतां'** है और उनके पिता का कोई पता नहीं

बताया गया है। उन्हीं के विषय में यह कहा गया है-"**सर्व कार्य धर्म विलक्षणे ब्रह्मणि**" *(तैत्रि०उ०मा०)*

(He forms the very suprime unity of all contradictions) (Cordinel Nichdacauson cause) इसी कारण माता पार्वती ने कहा है-"**सर्पाञ्च दोषाः क्रोधाद्याः**" इत्यादि। उनका प्रभुत्व असमग्र नहीं है अर्थात् वे Devil या Satan अथवा God ही नहीं, वह तो '**शिवम द्वैतम्**' है। एकेश्वर, सर्वेश्वर हैं।

शिव भिक्षुक हैं, यह सुनकर जान पड़ता है, माता पार्वती सकुचा जाती हैं। परंतु मैं समझता हूँ कि वे हमारे मन की भिक्षा माँगते हैं। अहा! वह सर्वदा ही वंशी निनाद से अथवा डमरू ध्वनि से हमारे मन को भिक्षा रूप में हरण करते हैं। हम उनको नहीं चाहते तथापि वे हमारे मन को चाहते हैं। क्योंकि वे अपना मन भक्तों को देकर स्वयं भिक्षुक बन गये हैं। यही बात अन्यत्र भी देखने में आती है-

"इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मरातया।
मनोरथवती नाम भिक्षापात्रं समर्पिता॥" *(काशीखण्ड 30।102)*

तथा हम भी प्रार्थना करते हैं-"**लक्ष्मी पते निगमतत्व विदाश्रयाय किं देयमस्ति भवते जगदीश्वरम्।**
राधा गृहीत मनसो मनसोऽस्ति दैन्यं दन्तं मया मम मनः कृपया गृहणाति॥

अब उपर्युक्त वर्णन के विषय में कुछ विचार 'बोधसार' नामक ग्रन्थ से सर्वसाधारण के ज्ञानार्थ संक्षेप में कहे जाते हैं-

(1) दिगम्बरता विचार

"निरावरण विज्ञान स्वरूपो हि स्वयंहरः।
स्वैरं चरति संसारे तेनप्रोक्तो दिगम्बरः॥

जो कारण विद्या जीव को अपने ब्रह्मत्व की उपलब्धि नहीं करने देती, उस अविद्या का लेशमात्र भी परमात्मा शिव गुरु में स्वभावतः ही नहीं रह सकता, क्योंकि वे समष्टि, व्यष्टि देहमय रूप प्रपंच के विधि-निषेध से अतीत है। इसी कारण वे 'दिगम्बर' कहलाते हैं, उनकी इस दिगम्बरता को बेसमझ लोग नग्नता कह बैठते हैं।

(2) भस्मोद्धूलन विचार

"ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरते किल।
तेनैव भस्मना गाचमुद्धूलयति धूर्जटि॥"

देह संचलित चिदामास में 'मैं' बुद्धि के द्वारा जो कर्म होते हैं वे संचित, प्रारब्ध और क्रियामाण रूप में बंधन का कारण बनते हैं, वही सब कर्म निष्क्रिय ब्रह्मरूपता की प्राप्ति होने पर शरीरान्तर = पुनर्जन्म के उत्पादन में असमर्थ हो जाते हैं और इसलिये भस्म के सदृश अकिंचित्कर हो जाते हैं, यह बात गीता आदि शास्त्रों में प्रसिद्ध है, शिव के असुर विमर्दन प्रथा विश्वसंहारादि कर्म उसी प्रकार अकिंचित्कर

हैं। इसी कर्म के द्वारा आवृत होकर वह लोक दृष्टि में आविर्भूत होते हैं। इसी कारण वह मूढ़ जनों के निकट भस्मावृत तथा प्रतिपादित होते हैं।

"भासते भिन्नभावानामपि भेदो न भस्मनि।
स्वस्वभाव स्वभावेन भस्म भर्गस्य बल्लभम्॥"

"परस्पर भिन्न वस्तुएँ भी भस्मीभूत हो जाने पर एक रूप ही भासती हैं, इसी कारण भस्म सब वस्तुओं की एक रूपता का प्रतिपादक हैं। तुल्य स्वभाव वाले 'भर्ग' अर्थात् जगद्बीज भर्जक शिव के निकट आनंद दायक हैं॥"

(3) जटाजूट विचारः

विश्रामोऽयं मुनींद्राणां पुरातनवटो हरः।
वेदान्तसांख्य योगाख्यास्तिस्चस्तजटयः स्मृताः॥"

"यही हर अर्थात् अपरोक्ष परमात्मा पंचम्यादि भूमि का रूढ़ जीवन्मुक्तों के विश्राम स्थान पुरातन वटवृक्ष स्वरूप हैं। वेदान्त, सांख्य और योग यह तीन उस वट वृक्ष की जटा के रूप में शिरोभूषण हैं। शिव के जटाजूट का यही तात्पर्य है।"

(4) त्रिनेत्रता विचार

"आप्यायनस्तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत।
सोम सूर्याग्नि नयनस्त्रि नेत्रस्तेन शंकरः॥"

"शंकर चन्द्र के समान जगदानन्दक, सूर्य के समान अज्ञान तमोनाशक तथा अग्नि के समान रागादि दोषों के दहन कर्ता हैं। इसी कारण चन्द्र सूर्याग्नि नयन अथवा त्रिनेत्र कहकर उनका वर्णन किया जाता है।"

(5) भुजग-भूषणता विचार

"योगिनः पवनाहारास्तथा गिरिबिलेशयाः।
निज रूपे धृतास्तेन भुजङ्गा भरणो हरः॥"

"योगिजन सर्प के समान वायु भक्ष्जण कर प्राण धारण करते हैं तथा पर्वतीय गुहाओं में रहते हैं। 'विविक्तसेवी' एवं 'लध्वासी' होने के कारण वे शिव को इतने प्रिय हैं कि वे इन योगिजनों को अपने अंग का भूषण बनाए रखते हैं। इसी कारण शंकर 'भुजंगाभरण' के रूप में वर्णित होते हैं।

(6) त्रिशूल विचार

"शान्ति वैराग्य बोधाख्यैस्त्रिभिरग्रैस्तरस्विभिः।
त्रिगुण त्रिपुरं हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचनः॥"

'शान्ति अर्थात् उपरति, जो यम-नियमादि के अभ्यास, चित्त-निरोध तथा व्यवहार के संकोच द्वारा उत्पादित होती है। वैराग्य-अर्थात् दोष दर्शन के द्वारा रूप-रसादि सब विषयों के त्याग की इच्छा एवं भोग्य वस्तु के अभाव में बुद्धि की अदीनता। बोध-अर्थात् श्रवणादिजनित सत्य-मिथ्या विवेचन जिसके द्वारा चिदात्मा और अहंकार की एकता रूप ग्रन्थि का अनुदय और विनाश होता है—

ये तीनों उपाय अज्ञान और अज्ञान के कार्य को शीघ्र ही भेदन करने में समर्थ होने के कारण त्रिशूल के फलों के साथ सादृश्य को प्राप्त होते हैं। इसी त्रिशूल के द्वारा त्रिलोचन, सत्व , रज और तम इन तीन गुणों का तथा उनके कार्यरूप, स्थूल, सूक्ष्म और कारणात्मक देहत्रय का विनाश करते हैं। मिथ्यात्व का निश्चय करा उसमें अप्रतीति उत्पादन करते हैं।

(7) वृष वाहन विचार

"ब्रह्माद्या यत्र नारूढ़ास्तमारोहति शंकरः।
समाधिं धर्म मेधाख्यं तेनायं वृषवाहनः॥"

'जिस धर्म मेध नामक समाधि में ब्रह्मादि कोई स्थित नहीं हो सकते; शंकर उसी समाधि में आरूढ़ देखे जाते हैं इसी कारण शंकर 'वृषवाहन' कहलाते हैं।'

जिस प्रकार मन ही ब्रह्म है, ऐसा समझ कर मन में ब्रह्म बुद्धि करके उपासना की जाती है। जिस प्रकार नन्दी वृष में धर्म मेध समाधि बुद्धि एवं शिव में ब्रह्मा भिन्न प्रत्यात्म गुरु बुद्धि करके उपासना करनी चाहिए। समाधि द्वारा बुद्धि का साक्षात्कार हो जाने पर निरोध समाधि द्वारा चैतन्यमात्राधिगम होने से वह बुद्धि जब प्रथकत्व विषयक प्रज्ञा बनती है तब उसे 'विवेक ख्याति' कहते हैं। इस प्रकार की विवेक ख्याति से सर्वज्ञता सिद्धि के प्रति भी आसक्ति रहित हो जाता है, तब विवेक ख्याति पूर्णता को प्राप्त होती है। इस प्रकार की समाधि को 'धर्म मेघ' कहते हैं। मेध जिस प्रकार बारिश वर्षण करते हैं यह समाधि भी उसी प्रकार परमधर्म का वर्षण करती है, उस अवस्था में साधक बिना प्रयत्न के ही कृतकृत्य हो जाता है।

(8) श्मशान विचार

'नित्यं क्रीड़ति यत्रायं स्वयं संसार भैरवः।
तत्र श्मशाने संसारे शिवः सर्वत्र दृश्यते॥"

"स्वतः सिद्ध प्रत्यगात्मस्वरूप, ज्ञानिजन प्रत्यक्ष शंकर सर्वजगत के लय के अधिष्ठान है। इसी कारण वे सब के भय का कारण बन संसार में नित्य क्रीड़ा करते हैं। इस श्मशानवत् अमंगल रूप संसार में सर्वदा और सब पदार्थों में यह ज्ञानिजनों को दृष्टिगोचर होते हैं। उपासना के लिये श्मशान में संसार दृष्टि करनी चाहिए।

(9) गण विचार

"आनन्द सागरः शम्भुस्तच्छक्तिर्द्रव उच्यते।
शीकरा इव सामुद्रास्तदानन्दकणा गणाः॥"

"शम्भु चतुर्विध (विद्यानन्द चार प्रकार का होता है—(1) दुःखाभाव या दुःखनाश, (2) सर्वकामावाप्ती (3) कृतकृत्यता तथा (4) प्राप्त प्रातव्यता) विद्यानन्द के समुद्र के समान है। मुनिगण शक्ति को या इस आनन्द समुद्र के समस्त

छुद्र अंशों को अर्थात् विविध प्रकार के विद्यानन्द को, शिव के सानिध्य और अन्तरंगता के कारण, गण या सेवक समझना चाहिए। अर्थात् उपासना के लिये गणों की विद्यानन्दरूपता का चिन्तन करना चाहिए।

"जगद्विलक्षणं स्वामी स्वरूपा कृति लक्षणैः।
जगद्विलक्षणा एव गणास्तस्य किम् अदभुतम्॥"

जब स्वामी स्वयं ही स्वरूप, आकृति और लक्षण से सृष्टि से विलक्षण हैं तब उनको गण या सेवकगण अद्‌भुत स्वभाव वाले हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है? भावार्थ यह है कि सच्चिदानन्द स्वरूप शिव असत्, जड़ और दुःख रूप जगत-प्रपंच्च के विपरीत स्वभाव वाले होने के कारण, उनके गण = सेवक विद्यानन्दादि भी विषयानन्द से विपरीत स्वभाव वाले अवश्य होंगे।

इस प्रकार शिव के साधारण, प्रचलित तथा ध्यान में वर्णित समस्त विषय शास्त्रों में विवेचित हुए हैं। कोई ऐसा विचार कर सकते हैं कि यदि तत्वतः शिव परमात्मा के स्वरूप हैं तो उनका इस प्रचलित भाव में ध्यान क्यों किया जाता है? बात यह है कि अधिकारि भेद से कार्य-कारण भेद होता है। परन्तु—

"नृणामेको गम्यस्त्वमसि पय सामर्णव इव॥"

अर्थात् जिस प्रकार से नाना प्रकार के नदी-नाले नाना मार्ग से समुद्र में ही जाते हैं, उसी प्रकार भक्त चाहे जिस भाव से भक्ति करे, भगवान शिव-तुम्हीं उनके गन्तव्य स्थान हो। कोई भी मार्ग तुमसे विपरीत नहीं है, तथा कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें तुम शिव-स्वरूप से विद्यमान न हो।

"त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्वृंहुतवहस्त्व
मापस्त्वं व्योमत्वयु धरणिरात्मा त्वमिति च॥"
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं।
न विघ्नस्तत तत्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि॥"

अतएव उनका प्रचलित भाव से विचार करने में ही क्या दोष है? वे भाव-मय हैं, भाव ही देखते हैं। वे अमूर्त हैं, भक्त के लिये मूर्ति धारण करते हैं। यही देखता हूँ—

"सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिञ्च सर्वेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्ध रूपमु द्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥
चिन्मयरव्याद्वितीयस्य निष्कलस्या शरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना॥"

"साकार का अवलम्बन करके ही निर्गुण निराकार ब्रह्म की भावना की जाती है। साकार के बिना निराकार में स्थिति लाभ नहीं होता। सब कुछ साकार ही दृष्टिगोचर होता है, परंतु अभ्यास के द्वारा निराकार की उपलब्धि होती है, तथा उसमें

स्थिति प्राप्त की जाती है। भगवान चिन्मय, अद्वितीय, कला रहित तथा रूपरहित होते हुए भी उपासक को कृतार्थ करने के लिये उसके ध्येय रूप में उपस्थित होते हैं।

"**ब्रह्मणो रूपकल्पना-कर्त्तारि षष्ठी।**" इसी को स्पष्ट करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

"सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः।
सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृतिः॥" *(अग०सं०तृ०)*

"जो सर्वेश्वर, सर्वमय, सब भूतों के हित में लगे रहने वाले हैं, वही सबके उपकार के लिये निराकार होते हुए भी साकार हुए हैं। यहाँ साकार रूप मनुष्य की कल्पना नहीं है, माया ही अपनी शक्ति से रूप धारण करती है।

भगवान श्रीकृष्ण जी द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने से गीता के 16वें अध्याय में वर्णित दैवी दम्पत्ति के लिये भगवान से आत्म-निदेवन करने पर तथा 12वें अध्याय में कहे हुए भक्त के लक्षणों से युक्त होने पर आशुतोष शंकर साधक के निकट आविर्भूत होते हैं। ऐसा करने से ही शिव का रूप है या नहीं, पुराण सत्य है या असत्य, इत्यादि नाना प्रकार के संदेह दूर होते हैं। केवल पुस्तक पढ़ने से पुस्तक की विद्या के आगे कोई नहीं जा सकता। सद्गुरू के शरणागत हो अपने चरित्र को सुधार तथा भगवान शंकर की कृपा प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ समझकर कार्य करने से शिव दया करते हैं। तब—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिशिछद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे॥"

सवैया—"गौ शरीर में गौरि विराजत मोर जटा सिर सोहत जाके।
नागन को उपवीत लसै, कहि 'प्रियदास' शशि भाल में वाके॥
दान करै पल में फल चारि, और टारत अंक लिखे विधिनाके।
शंकर नाम निःशंकर सदाही, भरोसे रहैं निशिवासर ताके॥"

(जै-जै शिव-शंकर)



(5) शिव-तत्व

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परिब्राजिकाचार्य श्री 108 स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज मण्डलेश्वर काशी)

वस्तुतः पक्षपात दृष्टि से विचार किया जाय तो समस्त प्राणियों के अन्तःकरण शिवतत्वकी ओर स्वभावतः ही खिंचे हुए हैं। अथवा यों कह सकते हैं कि शिव-तत्व का ही यह असाधारण स्वभाव है कि वह समग्र जीवों के अन्तःकरणों को अपनी ओर

खींचे रखता है। कारण—

"श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्" (अमरकोष) एवं **"शिवं च मोक्षे क्षेमे च महादेवे सुखे"** इत्यादि (विश्वकोष) के अनुसार

शिव, अद्वैत, कल्याण और आनन्द-ये सारे शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं। और यह अनुभव सिद्ध है कि कल्याण या आनन्द के लिये ही सारा संसार प्रवृत्त हो रहा है। अवश्य ही, पामर और विषयी जीवों की प्रवृत्ति का विषय अज्ञानवश निरवच्छिन्न कल्याण या आनन्द नहीं है, तथापि पुत्र, धनादि सम्बन्धी सुख को विषयी जन भी चाहते हैं। परन्तु इससे क्या! वे हैं तो आनन्द या सुख की खोज में। इस प्रकार सभी प्राणी सुख के ही गीत गाते हैं।—**"तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मान्ते धनसनय"** (छान्दोय) यह श्रुति भी यही बतलाती है कि वीणा की झंकार में जो संगीत निकलता है उसका लक्ष्य सर्वन्तर्यामी आनन्द ही है। समस्त वेद भी शिव रूप-आनन्द के ही गीत गाते हैं, उनमें अद्वैत शिव तत्व का ही प्रतिपादन है। यह बात **"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति, 'सर्वे वेदा यत्पदमामनान्ति'** इत्यादि श्रुतियों से और **'शास्त्रयोनित्वात्', 'तन्तु समन्वयात्' 'वेदेश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** इत्यादि स्मृतियों से भी सिद्ध है।

मुक्तिकोपनिषद में श्रीरामचन्द्रजी और श्री हनुमानजी का जो संवाद है, उससे भी यह निश्चय होता है कि सम्पूर्ण वेदों का प्रतिपाद्य विषय अद्वैत शिव-तत्व का ही है। उक्त संवाद इस प्रकार है-

अयोध्या नगरी में सुरम्य रत्नमण्डप के मध्य में लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न-तीनों भाइयों एवं भगवती सीता के सहित भगवान श्रीरामचन्द्र जी विराजमान हैं। पास ही सनकादि, वशिष्ठादि और शुक्रादि ऋषी मुनि अवस्थित हैं, और इधर-उधर अन्य अनेक भगवत जन भी बैठे स्तुति कर रहे हैं। उसी समय उन सबकी बुद्धि के साक्षी और स्वयं निर्विकार, स्वरूपध्याननिरत भगवान के समाधि विरत होने पर भक्ति एवं शुश्रूषा के साथ स्तुति करते हुए हनुमानजी ने कहा—

"हे रामजी! आप परमात्मा हैं, सच्चिदानन्द विग्रह हैं। हे रघुकुल श्रेष्ठ! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। भगवन्! मैं इस समय मुक्ति की कामना से आपके स्वरूप को तत्वतः जानना चाहता हूँ, जिससे मैं अनायास ही भव-बन्धन से मुक्त हो जाऊँ। अतः कृपाकर मेरी मुक्ति के लिये ब्रह्मज्ञान का उपदेश कीजिये।

भगवान श्रीरामचन्द्रजी बोले-हे महाबाहो! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं उसे तत्वतः बतलाता हूँ, तुम ध्यान पूर्वक प्रणाम करो। देखो! मैं वेदान्त में सुप्रतिष्ठित हूँ तुम उसी वेदान्त का आश्रय ग्रहण करो।

हनुमान—हे रघुकुल सूर्य! वेदान्त किसे कहते हैं और वह कहाँ है?

श्रीराम—हे हनुमान! सुनो, मैं तुम्हें वेदान्त की स्थिति बतलाता हूँ। जिस प्रकार बिना प्रयत्न के ही श्वाँस-प्रश्वाँस निकलते हैं, उसी प्रकार मुझ विष्णु से श्वाँस-प्रश्वाँस रूप महाविस्तार वाले ये वेद उत्पन्न हुए हैं और जैसे तिलों में तेल रहता है वैसे ही इन वेदों के अन्तर्गत वेदान्त स्थित है।

हनुमान—भगवन्! वेद कितने प्रकार के हैं और उनकी कितनी शाखाएँ हैं, उनके अन्तर्गत उपनिषद् कौन-कौन हैं, कृपया तत्व से बतलाइये।

श्रीराम—ऋक्, यजु, साम, अथर्व-ये चार वेद हैं, जिनकी अनेक शाखाएँ हैं। इसी प्रकार उपनिषद् भी अनेक हैं। ऋग्वेद की 21 शाखाएँ हैं, यजुर्वेद की 109, सामवेद की 1000 और अथर्ववेद की 50। एक-एक शाखा का एक-एक उपनिषद् है। उनकी एक ऋचा (मन्त्र) को भी यदि कोई मेरी भक्ति के साथ पाठ करता है तो वह मेरी मुनि दुर्लभ सायुज्य-पदवी को प्राप्त होता है ।

हनुमान—हे प्रभो! कोई-कोई मुनि श्रेष्ठ कहते हैं कि मुक्ति एक है। कोई सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य भेद से चार प्रकार की मुक्ति बतलाते हैं। कोई कहते हैं कि आपके नाम-भजन से मुक्ति मिलती है, कोई कहते हैं, काशी में मरकर तारक मन्त्र के उपदेश से, और इसी प्रकार कोई सांख्य योग से, कोई भक्तियोग से, और कोई वेदान्त-वाक्यों के अर्थ-विचार से मुक्ति का होना बतलाते हैं, हे भगवन्! ठीक बात क्या है? बतलावें।

श्रीराम—हे पवनकुमार! पारमार्थिक रूप कैवल्य मुक्ति एक ही है। हे तात! कोई दुराचारी से भी दुराचारी क्यों न हो, मेरे नाम स्मरण के प्रताप से वह सालोक्य मुक्ति को प्राप्त होता है, उसे लोकान्तर की प्राप्ति नहीं होती। काशी में ब्रह्म-नाल स्थान में मरा हुआ पुरुष मेरे तारक मन्त्र का उपदेश पाकर आवागमन रहित कैवल्य मुक्ति को प्राप्त होता है। काशी में कहीं भी मरे, महेश्वर उनके दाहिने कान में मेरे तारक मन्त्र का उपदेश दे देते हैं, जिससे वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर मेरी सादृश्य मुक्ति को पाता है, वही सालोक्य और सायुज्य मुक्ति कहलाती है। जो द्विज सदाचार निरत होकर नित्य अभेद भाव से मुझ सर्वात्मा में चित्त लगाता है, वह मेरे सामीप्य को प्राप्त होता है। यही सालोक्य, सारूप्य सामीप्य-मुक्ति कहलाती है। जो गुरुपदिष्ट मार्ग से मेरे अव्यय स्वरूप का सम्यक ध्यान करता है वह द्विज भ्रमर कीटवत मेरा सायुज्य लाभ करता है; यही ब्रह्मानन्दकरी कल्याणी सायुज्य मुक्ति है। यह चार प्रकार की मुक्ति है, जो मेरी उपासना से प्राप्त होती है।

हनुमान—भगवन्! कैवल्य मुक्ति कैसे प्राप्त होती है?

श्रीराम—मुमुक्षुओं की मुक्ति के लिये एक माण्डूक्योपनिषद् ही पर्याप्त है, यदि इसे पढ़ने से ज्ञान-सिद्धि न हो तो दसों उपनिषदों को पढ़ें, इससे अविलम्ब ज्ञान प्राप्त होकर मेरे धाम की प्राप्ति हो जाती है। और यदि दशोपनिषद के पढ़ने से भी

विज्ञान की दृढ़ता न हो तो बत्तीस उपनिषदों का विशेष रूप से अभ्यास कर मुक्ति को प्राप्त करे और यदि विशेष मुक्ति की आकांक्षा हो तो 108 उपनिषदों को पढ़ें।

इस संवाद को पढ़ने से यह निश्चय होता है कि समस्त उपनिषदों या चारों वेदों में वही ज्ञान बतलाया गया है जो सार रूप से माण्डूक्योपनिषद् में बतलाया गया है। अच्छा तो उस माण्डूक्य का निर्णय क्या है? माण्डूक्य का **"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्"** इस प्रकार उपक्रम और **"अमात्र श्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंच्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मात्मानं य एवं वेद य एवं वेद।"** यह उपसंहार है।

इस प्रकार इसमें आदि से लेकर अन्त तक प्रपंच्चोपशन (निर्गुण), अद्वैत (सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद शून्य) शिव-तत्व ही निर्णीत है। इसके सिवा इस संवाद में शिव और विष्णु का अभेद भी निश्चित हुआ है, क्योंकि श्री हनुमानजी ने श्रीराम जी से-

"त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्वतो राम मुक्तये"

इस प्रश्न के द्वारा उनका वास्तविक रूप पूछा था, जिसके उत्तर में भगवान ने समग्र वेदों की रहस्यभूता माण्डूक्योपनिषद में प्रतिपादित अद्वितीय शिव-तत्व को ही अपना स्वरूप बतलाया है। इधर कैवल्योपनिषद भी **"स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।**

स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्नि स चन्द्रमाः॥"

इस प्रकार शिव, विष्णु आदि का अभेद ही प्रतिपादित करती है। और माण्डूक्योपनिषद् में निर्गुण तुरीय ब्रह्म का प्रतिपादक शिव-पद दो बार आया है-एक बार **"नान्तः प्रज्ञम्"** इस मन्त्र में और फिर **"अमात्रश्चतुर्थः"** इस मंत्र में। इससे यह निश्चय होता है कि शिव-पद प्रायः अद्वितीय निर्गुण ब्रह्म का ही बोधक हैं और जब माण्डूक्योपनिषद् सब वेदों का सार है तब अन्य सब उपनिषद् भी उसी का समर्थन करेंगे और करते भी हैं। उदाहरणार्थ-

"यस्मिन सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनु पश्यतः॥" *(ईश०)*

"नतत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नोमनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव।
तद्विदितादथो अविता दधि॥" *(केन)*

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥" *(कठो०)*

"यन्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रममवर्णमचक्षुः श्रोत्रम्॥" *(मुण्डक०)*

"विद्वात्राम नामरूपाद्वि मुक्तः।" *(मुण्डक०)*

"यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनान्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेदि कुतश्चनेति।" *(तैत्तिरीय०)*
"आत्मावा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यस्किंच्यन मिषत्।" *(एतरेय०)*
"सदेव सौम्येदमग्र आसीदोकमेवा द्वितीयं।" *(छान्दोग्य०)*
"मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।" *(वृहदारण्यक०)*
"स एष नेति नेतीस्यात्मा।" *(वृहदारण्यक०)*

इसी प्रकार— "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥" *(भगवद्-गीता)*
"आत्मैव देवता सर्वा आत्मनि सर्वमवस्थितम्।
आत्मैव जन यत्येषां कर्म योगं शरीरिणाम्॥" *(मनुस्मृति)*
"भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माय याऽस्तो बुध्र आमजेतं भक्तूयैकयेशं गुरु देवतात्मा॥
अविद्य मानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्न मनोरथौ यथा॥"
(भागवत 11 /2 /37 /38)

आदि स्मृतियों और पुराणों में भी अद्वैत-शिवतत्व का ही प्रतिपादन है।

॥ इति शिवम्॥



कवित्त—"अष्ट गुरु जानी, जाके मुख वेद बानी,
शुभ भवन में भवानी सुसम्पति लहा करैं।
मुण्डन की माला, जाके चन्द्रमा ललाट सोहै,
दासन के दास जाके दारिद दहा करै॥
चारों द्वार बन्दी जाके द्वारपाल नन्दी रहैं,
कहत 'प्रियदास' हम नाहक हहा करैं॥
जगत रिसाय, यमराज को कहा बताय,
शंकर सहाय तो भयंकर कहा करै॥"



(6) वेदों में शिवतत्व

(श्री लाल बिहारी जी मिश्र)

शिव ही ब्रह्म है—श्वेताश्वतरोपनिषद के प्रारम्भ में ब्रह्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा उठाई गई है पूछा गया है कि जगत का कारण जो ब्रह्म है, वह कौन है?—'किं

कारणं ब्रह्म' *(1/1)*

श्रुति ने आगे चलकर इस ब्रह्म शब्द के स्थान पर 'रुद्र' और 'शिव' शब्द का प्रयोग किया है—

"एको हि रुद्रः।" *(3/2)* **"स .... शिवः"** *(3/11)*

समाधान में बताया गया है कि जगत का कारण स्वभाव आदि न होकर स्वयं भगवान शिव ही इसके अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं—

"एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्तुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठतिः संचुकोचान्तकाले संस्रज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥"

(3/2)

अर्थात् जो अपने शासन-शक्तियों के द्वारा लोकों पर शासन करते हैं वे रुद्र भगवान एक ही हैं। इसलिये विद्वानों ने जगत के कारण के रूप में किसी अन्य का आश्रयण नहीं किया है। वे प्रत्येक जीव के भीतर स्थित हैं, समस्त जीवों का निर्माण कर पालन करते हैं तथा प्रलय में सबको समेट भी लेते हैं।

इस तरह 'शिव' और 'रुद्र' ब्रह्म के पर्यायवाची शब्द ठहरते हैं। 'शिव' को रुद्र इसलिये कहा जाता है कि अपने उपासकों के सामने अपना रूप शीघ्र ही प्रकट कर देते हैं—

"कस्मादुच्यते रुद्र? "यस्मादृषिभि ..... द्रुत मस्य रूपभुव लभ्यते।"

(अथर्व शिर० उप० 4)

भगवान शिव को 'रुद्र' इसलिये भी कहते हैं—**'रुत् = दुःखम्, द्रावयति = नाशयतीति रुद्रः॥"**

*** तत्व एक है, नाम अनेक ***

शिव-तत्त्व तो एक ही है—**'एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म'** *(छा० उ० 6/2/1)*

उस अद्वय तत्व के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं—**'एकमेव सता नेह नानास्ति किंचन'** *(ब्र०उ० 4/4/19)*

किंतु उस अद्वय तत्व के नाम अनेक होते हैं—**'एकं सद् विप्रा बहुधावदन्ति'** *(ऋ० 1/164/46)*

अर्थात् उस अद्वय तत्व को विज्ञगण अनेक नामों से पुकारते हैं।

*** रूप भी अनेक ***

नाम की तरह उस अद्वय तत्व के रूप भी अनेक होते हैं ऋग्वेद ने **'पुरूरूपः** *(2/2/9)* लिखकर इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। दूसरी श्रुति ने उदाहरण देकर समझाया है कि एक ही भगवान अनेक रूप में कैसे आ जाते हैं—

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव।
एकस्तथा सर्वभूतारात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥"

(कठोपनिषद् 2/2/9)

जैसे कण-कण में अनुस्यूत अग्नि एक ही है, किंतु अनेक रूपों में हमारे सामने प्रकट होती है। वैसे भगवान शिव एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। लोक-कल्याण के लिये सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान आदि अनेक अवतार रूपों में वे प्रकट हुए हैं *(शि0पु0 रुद्र संहिता)*

❋ अनेक नाम रूप क्यों ? ❋

जिज्ञासा होती है कि शिव एक ही हैं, तब वे अनेक नामों और अनेक रूपों को क्यों ग्रहण करते हैं? इसके उत्तर में श्रुति ने कहा है–**"प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधाकृता"** *(रुद्रहृदय उ0 15)*

अर्थात् प्रयोजनवश भगवान शिव अपनी अनेक मूर्तियाँ बना लेते हैं-अब देखना है कि आखिर वह कौन सा प्रयोजन है जिसके लिये वह तत्व अनेक नामों और रूपों को ग्रहण करता है।

❋ विविधता का कारण लीला ❋

इसका समाधान ब्रह्म सूत्र से होता है। वहाँ बताया गया है कि लीला (क्रीड़ा) के अतिरिक्त इस सृष्टि-रूप विविधता का और कोई प्रयोजन नहीं है–**"लोकवत् तु लीला कैवल्यम्"** *(ब्रह्मसूत्र 2।1)*

अर्थात् वह अद्वय-तत्व जो सृष्टि के रूप में आता है, उसका प्रयोजन एकमात्र 'लीला' है। इसके अतिरिक्त सृष्टि का और कोई प्रयोजन नहीं है।

❋ आप्त काम की कामना व्याहत नहीं ❋

प्रश्न उठता है कि ईश्वर तो आप्तकाम है, अर्थात् उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण रहती हैं, फिर वे खेल की भी कामना कैसे कर सकते हैं? ईश्वर को 'आप्त काम' कहना और फिर उसमें किसी कामना का कहना तो व्याहत है, हम लोगों को तो तरह-तरह के अभावों से जूझना पड़ता है, जिनकी पूर्ति के लिये हम कामनाएँ किया करते हैं। ईश्वर को तो किसी वस्तु का अभाव तो है नहीं, फिर वे कामना किसकी करेंगे? यह जिज्ञासा महात्मा विदुर जी को भी व्यग्र करती थी, उन्होंने मैत्रेयजी से पूछा था-"ब्रह्मन्! भगवान तो शुद्ध बोध स्वरूप निर्विकार और निर्गुण हैं फिर उनके साथ लीला से ही गुण और क्रिया का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? बालकों में जो खेल की प्रवृत्ति होती है, वह कामना-प्रयुक्त होती है, किन्तु भगवान तो असंग हैं और नित्य तृप्त हैं फिर लीला के लिये संकल्प ही कैसे करेंगे?"

"ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्या विकारिणः।
लीलया चापियुज्येरत्रिर्गुणस्य गुणाः क्रियाः॥
क्रीड़ाया मुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषान्यतः।
स्वतस्तृप्तस्य चकथं निवृतस्य सदा न्यतः॥"

(भाग0 3।7।2-3)

❋ लीला स्वरूपभूत ❋

बात यह है कि ईश्वर प्रेम रूप है—**"तस्मात् प्रेमानन्दात्'** *(साम०उप०)* और प्रेम में क्रीड़ाएँ होती ही हैं, क्योंकि लीला प्रेम का स्वभाव है। प्रेम अपने प्रेमास्पद सब कुछ न्योछावर कर देना चाहता है। चाहता है कि वह अपने प्रिय को निरन्तर देखता ही रहे। वह कभी नहीं चाहता कि उसका प्रेमास्पद कभी उसकी आँखों की ओट में हो। प्रेम में इस तरह की अनगिनत लीलाएँ चला ही करती हैं।

❋ शिव ही लीला स्थली और खेलने वाले भी बन गये ❋

किन्तु जब ईश्वर एक है, अद्वितीय है, तब देखा-देखी और अर्पण का यह खेल किसके साथ खेले और कहाँ रह कर खेले? इसकी पूर्ति के लिये सन्मय, चिन्मय और आनन्दमय, प्रभु स्वयं स्थावर भी बन जाते हैं और जंगम भी। उनका स्थूल से स्थूल रूप है—ब्रह्माण्ड, जो क्रीड़ास्थली का काम देता है—**"विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।**

यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्॥" *(भाग० 2।1।24)*

अर्थात् यह ब्रह्मण्ड, जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य की समस्त वस्तुएँ दीख पड़ती हैं। भगवान का स्थूल से स्थूल शरीर है। प्राकृत होने के कारण प्रारम्भ में यह ब्रह्माण्ड निर्जीव था भगवान ने इसमें प्रवेश कर इसे जीवित कर दिया—**"जीवो जीवेन जीवयत्"** *(श्रीमद्भाग०)*। फिर वे विराट्-पुरुष के रूप में आये। उसके बाद दो पैरों वाले और चार पैरों वाले बहुत से शरीर बनाये और अंशरूप से उनमें प्रविष्ट हो गये—

"पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः।
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः आविशत॥" *(वृह० उ० 2।5।18)*

इस तरह क्रीडास्थली भी तैयार हो गयी और खेल में भाग लेने वालों की भीड़ भी इकट्ठी हो गयी। इन प्राणियों के जो अनन्त सिर, अनन्त आँखें और अनन्त पैर हैं, ये सब उन्हीं के ब्रह्माण्ड देह में हैं। इसी से प्रभु को—

"सहस्त्र शीर्षा सहस्त्राक्ष सहस्त्रपाद" कहा गया है।

"सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम्॥" *(श्वेत० उ० 3।14)*

भगवान शिव ने सब जगह आँखें, मुँह और पैर कर लिये—

"विश्वतश्च क्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहु रुत विंश्वत स्पात्॥"

(श्वेत० उ० 3।3)

इसलिये कि अपने प्रेमियों को हजार-हजार नेत्रों से निरन्तर निहारा करें, अपने प्रेमियों के अर्पित वस्तुओं का भोग लगा सकें, हजारों हाथों से उनका रक्षण कर सकें एवं उन्हें स्नेह से गले लगा सकें और जहाँ कहीं बुलाया जाय, वहाँ तत्काल पहुँच भी सकें। श्रुति कहती हैं—

"यो देवानां प्रभवश्चोत्रदवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु॥

अर्थात् जो रुद्र भगवान देवताओं की उत्पत्ति एवं वृद्धि के हेतु हैं, जो विश्व के नाथ और सर्वज्ञ हैं तथा जिन्होंने सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वे हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

इस तरह रुद्र भगवान क्रीड़ा स्थली का निर्माण कर एवं जीवों को प्रकट कर इनके शरीर रूपी नगर में, वाह्य जगत में बसकर लीला कर रहे हैं–

"नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते ब्रहिः॥" *(श्वेत0 3।18)*

❋ रुचि के अनुरूप-रूप ❋

प्रेम में रुचि का अत्यधिक महत्व है, लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है। रुचि के अनुरूप नाम और रूप न मिले तो उपासना में प्रगति नहीं हो पाती। रुचि के विपरीत उपासना से तुकाराम जैसे संत भी घबड़ाते हैं। संत तुकाराम की रुचि विट्ठल-रूप गोपाल कृष्ण पर थी। राम, कृष्ण, हरि नाम ही उन्हें रुचता था। इनके गुरुदेव ने स्वप्न में इन्हें इन्हीं नामों और रूपों की उपासना की दीक्षा दी। इससे संत तुकाराम को बहुत ही संतोष हुआ उन्होंने कहा है–

"गुरु ने मुझे कृपा सागर पाण्डुरंग ही जहाज दिया।" "गुरुदेव ने मुझे वही सरल मन्त्र बताया जो मुझे अतिप्रिय था, जिसमें कोई बखेड़ा नहीं।"

भक्त अपनी रुचि के अनुसार भगवान के नाम और रूप का वर्णन कर सकें, इसलिये वे अनन्त नामों और रूपों में आते हैं–**"चिन्मस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।**
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना॥" *(श्री रा0पू0उ0 1।7)*

अर्थात् ब्रह्म चिान्मय, अद्वितीय, प्राकृत शरीर से रहित है, फिर भी वह उपासकों के हित के लिये उनकी रुचि के अनुसार वरण करने के लिये भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है।

वही विराट्-पुरुष के रूप में आता है, विष्णु, दुर्गा, गणेश और सूर्य के रूप में आता है। **"ब्रह्मण्येवं हि पंच्यधा"** *(श्रीरा0पू0उ0 1।10)* पाँच ही नहीं, सम्पूर्ण व्यक्त और अव्यक्त के रूप में प्रभु ही तो आये हैं–

"उमारुद्रात्मिकाः सर्वा प्रजाः स्थावरजङ्गमाः।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम्॥" *(रुद्रहदयोपनिषद् 10)*

जिसकी रुचि उत्पत्ति नीलकंठ महादेव पर हो जाती है, वह ब्रह्म को इसी रूप में पाना चाहता है।

"तमादिमध्यान्त विहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम।
उमा सहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्॥"

(कैवल्योपनिषद 7)

यदि ब्रह्म की अभिव्यक्ति इस रूप में नहीं होती तो इस रुचि वाले व्यक्ति की आध्यात्मिक भूख कभी शान्त नहीं होती। बेचारे की पारमार्थिक उन्नति मारी जाती। जब वह शास्त्रों में देखता है कि हमारे उपास्य ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ देव हैं, परब्रह्म है, यही ब्रह्मा है, यही शिव हैं, यही इन्द्र हैं यही विष्णु हैं, यही प्राण, काल, अग्नि, चन्द्रमा हैं, जो कुछ स्थावर-जंगम है, सब हमारे ही प्रभु हैं, तब इस रुचि वाले उपासक को सब तरह से संतोष हो जाता है।

"स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥
स एव सर्वं यदभूतं यच्च भव्यं सनातनम्॥" *(कैवल्योपनिषद् ८-९)*

❋ यही अद्वय तत्व देवी के रूप में ❋

यदि इसी तरह किसी की रुचि जगदम्बा की ओर है तो उसके लिये परमात्मा देवी के रूप में आते हैं, वेद ऐसे उपासकों को बताता है कि सृष्टि के आदि में एकमात्र ये देवी ही थीं। इन्हीं देवी ने ब्रह्माण्ड पैदा किया, इन्हीं से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र उत्पन्न हुए—

"देवी ह्येकाग्र आसीत् सैव जगदण्डमसृजत...।
तस्या एव बह्मा अजीजनत। विष्णुस्त्री जनत्, रुद्वोऽनीजनत।
सर्वे मरुद्गणा अजीजनत। गन्धर्वाप्स रसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन् ...सर्वमजीजनत्॥" *(ब्रह्मचोपनिषद्)*। यदि परमात्मा स्वयं अपने मुख से कहे कि 'वत्स! मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही प्रकृति पुरुषात्मक जगत हूँ। शून्य और अशून्य मैं ही हूँ, मैं ही आनन्द हूँ और अनानन्द हूँ, मैं ही विज्ञान हूँ और अविज्ञान हूँ तो इन उपासकों को कितना आश्वासन प्राप्त होता है।

"अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति पुरुषात्मकं जगच्छून्यंचा शून्यं च।
अहमानन्दानानन्दौ। विज्ञानाविज्ञाने अहम्।" *(देव्युपनिषद्)*

❋ वही अद्वय रूप सूर्य के रूप में ❋

इसी तरह किसी का रुझान प्रत्यक्ष देवता सूर्य की ओर होवे, उसका हृदय इस ज्योतिर्मय देवता में रम गया। ऐसे उपासक के लिये यदि ब्रह्म आदित्य-रूप में न आते तो उसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति कैसे होती? और वह आदित्य पूर्ण ब्रह्म न हो, केवल देवता हो तो भी उपासक की रुचि को ठेस लग सकती है। अतः ब्रह्म आदित्य के रूप में आये। वेद ने सूर्य उपासक को आश्वासन दिया कि तुम जिसकी ओर झुके हो वह परब्रह्म परमात्मा है, वही अद्वय तत्व है, उसी से सबकी उत्पत्ति होती है।

"आदित्याद् वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्या ज्ञ्योतिर्जायते। आदित्याद् व्योम दिशो जायन्ते। आदित्या द्वेवा जायन्ते। आदित्या द्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डल तपति। असावादित्यो ब्रह्म।" *(सूर्योपनिषद)*

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिव-तत्व एक ही है, उसी के ब्रह्म, विष्णु, गणपति सूर्योपनिषद् दुर्गा, सूर्य आदि भिन्न-भिन्न ानाम और रूप हैं इस तथ्य की जानकारी न रहने से ही लोगों को भ्रम हो जाता है कि शैव ग्रन्थों में शिव की सर्वत्मकता बताई गई है, और वैष्णव ग्रन्थों में विष्णु की, जो परस्पर विरुद्ध है।

"शिव सर्वात्मक हैं, अतः सबका सम्मान करो।"



(7) शिव-तत्व

(लेखक—भारत धर्ममहामण्डल के एक महात्मा)

आब्रह्मादि पिपीलिकान्त अणु-परमाणु तक चित्सक्ता सर्वत्र परिव्याप्त होने के कारण जड़-एक कल्पना मात्र ही रह जाती है, वास्तव में जड़ कोई वस्तु नहीं, चैतन्य का ही सब ओर अस्तित्व है। यही पराभक्तियुक्त सर्वव्यापक ईश्वर ज्ञान का मौलिक विज्ञान है। हम सनातनी आस्तिक हैं और सब ओर ईश्वर की सत्ता को देखा करते हैं, समस्त जगत को वासुदेवमय देखते हैं, इसका यही रहस्य है, अब ईश्वर-तत्व के सम्बन्ध में विचार करना योग्य होगा—

सनातन वैदिक दर्शनों के विज्ञानानुसार और नाना उपनिषदों के ईश्वरतत्व सम्बन्धी रहस्य के अनुसार ईश्वर तत्व के विज्ञान के अनुशीलन की पहले आवश्यकता है। वैदिक विज्ञान के अनुसार ईश्वर-तत्व त्रिभावों के आधार पर तीन प्रकार से अनुभूत होता है। त्रिभावों में पहला ब्रह्मभाव है। जब सृष्टि नहीं रहती अथवा सृष्टि की गति जहाँ नहीं है, उस सृष्टि से अतीत-अद्वैत सत्ता रूपी निर्गुण भाव को ब्रह्म भाव कहते हैं।

दूसरा ईश्वर भाव है—जब ब्रह्म प्रकृति ब्रह्म से पृथक होकर सृष्टि विलास प्रकट करती है, और ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्वतंत्र रहकर उसका ईक्षण करते हैं, उस समय ब्रह्म केवल दृष्टा होते हैं और ब्रह्म प्रकृति दृश्य की सृष्टि, स्थिति, लय करने वाली रहती है। यही सगुणभाव ईश्वर भाव कहलाता है।

तीसरा विराट् भाव है-जब ब्रह्म प्रकृति के विलासरूपी अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमय सृष्टि-प्रपंच्च के साथ ईश्वरभाव सम्बन्ध बना रहता हो, तब जो स्थूल मूर्तिमान भाव दृष्टिगोचर होता है, वही विराट-भाव है। ज्ञानी भक्त अपनी ज्ञान दृष्टि

से इन्हीं तीनों भावों में श्री भगवान के दर्शन किया करते हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने भगवदवतार रूप से भक्त अर्जुन को इन्हीं तीनों भावों का उपदेश किया है, आत्मा की निर्लिप्तता के वर्णन के द्वारा ब्रह्म-भाव का, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ वर्णन के द्वारा ईश्वर भाव का और विराट्-मूर्ति का दर्शन कराकर विराट्भाव का अनुभव श्रीहरि ने पार्थ को कराया था। इन्हीं तीनों भावों में ईश्वर-भाव को मुख्य मानकर द्वेत प्रपंच्य की ओर अनुभव को अग्रसर करने से यही प्रतीति होगी कि ब्रह्म-प्रकृति जब स्वतंत्र होकर दृश्य-प्रपंच्च रूपी कार्य करने लगती है, जिसको परमात्मा देखते हैं, उस समय चिगुणमयी ब्रह्म-प्रकृति का त्रिगुणमय स्वरूप स्वतंत्र रूप से ज्ञानीभक्त के अनुभव में आने लगता है।

इसी अवस्था में सगुण ब्रह्म के इस मधुर विलास को चाहे युगल रूप, चाहे जगत्पिता, चाहे जगन्माता कह सकते हैं। सगुण ब्रह्म की मन, वाणी और बुद्धि से अगोचर यही अवस्था किसी शास्त्र में महाविष्णु, किसी शास्त्र में सदाशिव, किसी शास्त्र में गणपति, किसी शास्त्र मे सूर्यदेव और किसी शास्त्र में महादेवी के रूप में वर्णित है। पंच सगुण उपासना का यही रहस्य है।

त्रिभावमयी विश्व जननी महामायारूपिणी महादेवी ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और लय के लिये भगवान ब्रह्म, भगवान् विष्णु और भगवान शिव को प्रसव करती है जो त्रिमूर्ति कहलाते हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में यथाक्रम त्रिगुण के अधिदेव बनकर सृष्टि, स्थिति और लयकार्य अपनी शक्तियों के साथ सम्मिलित होकर किया करते हैं। ब्रह्माजी की शक्ति सावित्री, विष्णु की शक्ति लक्ष्मी और शिव की शक्ति पार्वती कहाती हैं। ये ही तीनों सशक्तिक देवता प्रत्येक ब्रह्माण्ड के ईश्वर कहलाते हैं। इन तीनों से ब्रह्माण्ड स्थिति कर्ता भगवान विष्णु के सृष्टि रक्षा के लिये और मुक्तिदाता भगवान शिव के जीव को ब्रह्म-भाव में लीन करने के लिये अवतार हुआ करते हैं उनकी शक्तियों के भी ऐसे ही अवतार होते हैं। अवतारों का प्राकट्य मनुष्य पिण्ड और अलौकिक पिण्ड धारण करके होता है। इन त्रिमूर्तियों के अधीन पुनः अनेक बड़े-बड़े पदधारी देवता अपने पद गौरव के अनुसार ईश्वरीय शक्तियों को धारण कर ईश्वर कहलाया करते हैं। इसी नियम के अनुसार भगवान यम धर्मराज को ही पृथ्वी के अनेक धर्मावलम्बी ईश्वर करके मानते हैं। और उनकी बुद्धि ईश्वर तत्व में वहीं तक पहुँचती है। सनातन धर्म के विज्ञानानुसार मन, वाणी और बुद्धि से अगोचर ईश्वरत्व का यही संक्षिप्त रहस्य है।

त्रिभावमयी विश्व जननी जो सृष्टि करती हैं उसमें दैवी सृष्टि प्रधान है। ऋषी, देवता और पितर ये सभी देवयोनि हैं, उन सबमें रुद्र की उत्पत्ति बहुत ही गम्भीर विज्ञानमूलक है। सृष्टि के आरम्भ में यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-इन तीन त्रिमूर्तियों का आविर्भाव एक ब्रह्माण्ड में एक साथ ही होता है। तथापि उस समय

ब्रह्मा जागते रहते, विष्णु योग निद्रा में निद्रित रहते और रुद्र दोनों के शरीर में व्याप्त रहते हैं। ब्रह्मा की सहायता के लिये विष्णु की योग निद्रा भंग होती है और अनन्तर रुद्र का प्राकट्य होता है। कोई किसी के पुत्र नहीं है। तीनों अपने-अपने अधिकारानुसार सगुण ब्रह्म हैं। आयु में ब्रह्मा की आयु सबसे कम, विष्णु की उनसे अधिक और रुद्र की उनसे भी अधिक है। दैव सृष्टि में देवसंघ के अधिपति भगवान विष्णु, पितृ संघ के अधिपति भगवान ब्रह्मा और ऋषी संघ के अधिपति भगवान रुद्र अथवा शिव हैं। भगवान ब्रह्मा इसी कारण आधिभौतिक शक्ति प्रदाता, भगवान विष्णु धर्म प्रदान और भगवान शिव ज्ञान प्रदाता है। इस कारण प्रत्येक ब्रह्माण्ड में आयु के विचार से तथा ज्ञान प्रदानत्व शक्ति के विचार से भगवान शिव का ही वृद्धत्व शास्त्रों में स्वीकार किया गया है।

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में यह हमारा मृत्युलोक एक चौदहवें हिस्से का एक चौथा हिस्सा है। भूभुर्वः आदि सात ऊर्ध्व लोक और अतल, वितल, सुतल आदि सात अधोलोक इस प्रकार चौदह लोक होते हैं। इन्हीं चौदह लोकों से भू-लोक के चार हिस्से हैं। वही पितृलोक, नरकलोक, प्रेतलोक और मृत्युलोक कहाते हैं।

इन सब में से केवल मृत्युलोक ही स्थूल लोक है, बाकी सब सूक्ष्म दैवी लोक हैं। इन सब दैव लोकों में ऋषी, देवता, पितर, गन्धर्व, किन्नर, असुर, राक्षस, भूत, प्रेत आदि नाना श्रेणी की देव योनियाँ वास करती हैं। असुरों की राजधानी सप्तम असुर लोक पाताल में है। देवराज की राजधानी स्वर्ग लोक में अमरावती है। और यम-धर्मराज की राजधानी पितृलोक में है। ब्रह्मलोक, विष्णु लोक और शिवलोक ये सब सप्तम उर्ध्वलोक के अन्तर्गत हैं।

यही सब दैवी श्रृंखला का रहस्य है। सब बड़े-बड़े पदाधिकारियों की आयु अलग-अलग है-प्रत्येक मन्वन्तर अर्थात् एक मनु की आयु का प्रमाण इस तरह से कहा गया है-कि एक चौकड़ी युग मनुष्य के 4320000 वर्षों का होता है। ऐसे 71 चौकड़ी युग का एक मन्वन्तर होता है, प्रत्येक मन्वन्तर में मनु पदधारी देवता बदल जाते हैं और साथ ही साथ दैवी श्रृंखला और अनेक देव पदधारी बदल जाते हैं-

शास्त्रों में प्रमाण है कि मनुष्य के 311040000000000 वर्षों में एक ब्रह्मा पदधारी देवता बदल जाते हैं मनुष्यों के 93312000000000000 वर्षों में एक विष्णु पदधारी बदल जाते हैं और मनुष्यों के 22394880000000000000000 वर्षों में एक शिवपदधारी बदल जाते हैं। अर्थात् भगवान शिव के ब्रह्मीभूत होने के साथ-साथ एक ब्रह्माण्ड का महाप्रलय हो जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि एक ब्रह्मा की आयु में अनेक मनु और अनेक इन्द्र बदल जाते हैं। एक विष्णु की आयु में अनेक ब्रह्मा पदधारी बदल जाते हैं। परन्तु शिव की आयु के साथ ब्रह्माण्ड की आयु लगी हुई है। शिव पदधारी अद्वितीय ही

हुआ करते हैं। इस विचार से भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड के त्रिमूर्ति रूप ईश्वरों में से शिव का ही वृद्धत्व सर्वशास्त्रसम्मत है।

अत: सगुण ईश्वरत्व के मन-वाणी से अगोचर ईश्वर पद के विचार से शिव-तत्व का चमत्कार कुछ अलौकिक ही है। वे ही पार्वती पति होने से उनका महादेवी आलिंङ्गित जो महादेव रूप का अनुभव है, वह सगुण ब्रह्म के अनुभव में बहुत ही मधुरता उत्पादक है। दूसरी ओर उनके लिंग का महत्व जो लिंग पुराण में वर्णित है, वह महत्व भगवान की विराट् मूर्ति का स्पष्ट द्योतक है। उनके चिन्मय अनादि अनन्त शिव-लिंग के चारों ओर जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड भासमान रहते हैं उस शिव लिंग का पता लगाते हुए ब्रह्माजी की तो बात ही क्या है, भगवान विष्णु भी थककर लिंग के आदि अन्त का पता नहीं लगा सके थे। ऐसा रहस्य लिंग पुराण में पाया जाता है।

सुतरां देशों दिशाओं की व्यापकता से अनंत और साव्या से अनन्त ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों से परिपूर्ण उनका स्थूल देह ही भगवान शिवजी का विराट रूप है, और वह विराट रूप ही शिव-लिंग का यथार्थ स्वरूप है और यही शिव-तत्व है ।

❋ श्री शिव और श्रीराम-नाम ❋

एक दिन पार्वतीजी ने महादेव जी से पूछा—"आप हरदम क्या जपते रहते हैं?" उत्तर में महादेव जी विष्णु सहस्त्रनाम कह गये। अंत में पार्वती ने कहा-"ये तो एक हजार नाम आपने कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्य के लिये असम्भव है, कोई एक नाम जो सहसत्रनामों के बराबर हो कहिये। इस पर महादेव जी ने कहा—**"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनाम ततुल्यं राम-नाम बरानेन॥"**

"राम-राम शुभ नाम रटि, सब रवन आनन्द धाम।
सहस नाम के तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम॥"

पुन: शिवजी श्री रामजी से कहते हैं—

"मुमूर्षोर्मणिकर्ण्या तु अर्धोदक निवासिनः।
अहं ददामि ते मंत्रंतारकं ब्रह्म दायकम्॥"

"अर्थात् मरने के समय मणि कर्णिका घाट पर गंगाजी में जिस मनुष्य का शरीर गंगाजल में पड़ा रहता है, उसको मैं आपका नाम तारक मन्त्र के रूप में देता हूँ, जिससे वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।"

(जय शिव जय श्री राम)



(8) शिव-तत्व

(लेखक—प्रो० पं० श्री सकलनारायण जी शर्मा)

जगत सृष्टा परमात्मा का नाम शिव है-

चौ०—"परमात्मा नाम जगत सृष्टा। शिव ही है सकल दृष्टा॥
"कल्याणप्रदः सब ही भर्ता। जो मन बुद्धि चितः आचरता॥

इसका अर्थ कल्याण करने वाला है। सारे ब्रह्माण्ड में यही सबसे अधिक सुख-शान्ति देने वाला है। इस कारण से ऋषि लोग उसे शिवतम कहते हैं।

"ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय चमयस्कराय च नमः शिवाय च शिव तराय च।"

"ॐ मी ढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव" *(यजुर्वेद)*

ईश्वर का एक नाम रुद्र है, क्योंकि दीन-दु:खियों के दु:ख पर आँसू बहाता है तथा पापियों को रुलाता है। उक्त शब्द में 'रुद्' धातु है जिसका अर्थ रोना है। वह मुक्ति का स्वामी है।

"अमृतस्वस्ये शानो यदन्ने नाति रोहति।"
"ज्ञात्वा देवं सर्वपाशा पह्यनिः क्षीणे क्लेशे जन्म-मृत्यु प्रहानिः॥"

(तैत०उप०)

कोई उसकी इच्छा में विघ्न उपस्थित नहीं कर सकता। वही उत्पन्न करता है, पालन करता है, तथा संहार में प्रवृत्त होता है।

"एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्यइमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनाँस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्यविश्वा भुवनानि गोपाः॥"

(तैत०उप०)

कर्मफल देने के लिये सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकार के दु:ख भोगता है। उससे सबका छुटकारा केवल प्रलय में होता है। वह माता-पिता के समान सबको सुला देता है। यह परमात्मा की बड़ी कृपा है। कोई-कोई इस भाव से भी उसे शिव-सुलाने वाला कहते हैं, उस समय किसी को तनिक कष्ट नहीं होता, वह सबके दु:खों को हर लेता है, दु:खों का हरण करने वाला है, जिनको इस करुणा का ज्ञान नहीं है, वे इस दु:ख मोचन कार्य को तमोगुण कहते हैं, उनकी बुद्धि के लिये एक कवि की उक्ति है—**"विदन्ति मूढ़ा न सुरूपमव्ययम्।"**

वह कर्पूर गौर है, सभी सत्व गुण उसी से प्रकट होते हैं, सत्व गुण स्वच्छ प्रकाशमय है। उसमें जो दोषराहित्य है, वही गौर वर्णता है। कुछ लोग कहते हैं कि दयालु परमात्मा के रंग-रूप हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विचित्र क्यों लिखे हुए हैं, विद्वान उनका यह तात्पर्य बताते हैं—

वह पापियों को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूल-पीड़ा देता है, इसी से वह त्रिशूल धारी है-लोहे के त्रिशूल से कोई प्रयोजन नहीं-

"शलत्रयं संवितरन् दुरात्मने त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे।"

(शैव सिद्धान्त सार)

प्रलय काल में उसके अतिरिक्त, दूसरा कोई नहीं रहता। ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, उसकी भस्म और रुण्ड-मुण्ड में वही व्यापक होता है, अतएव "चिताभस्मालेपी" और "रुण्ड-मुण्डधारी" कहलाता है न कि वह अघोरियों के समान चिता-निवासी है।

"कल्पान्तकाले प्रलुठस्तपाले समग्रलोके विपुल श्मशाने।
त्वमेक देवोऽसि तदावशिष्ट श्चिन्ताश्रयो भूतिधरः कपाली॥"

(शै०सि०सा०)

वह भूत भविष्यत्, वर्तमान-तीनों कालों की बातों को जानता है, इसी से त्रिनयन कहलाता है जो लोग समझते हैं कि उनके तीन आँखें हैं वे भूलते हैं।

वृष-शब्द का अर्थ धर्म है, वह धर्म रूढ़ है तथा धर्मात्माओं के हृदय में निवास करता है। इसी से वृष पर चढ़ने वाला प्रसिद्ध है, बैल से और कोई तात्पर्य नहीं-

"वृष ग्रहाणां वृषरक्षको विभो वृषं समास्थाय जगन्ति रक्षसि।" *(स्फुट)*

जगत में जो लूले, लंगड़े, काने, अन्धे अथवा ऊँची नाक वाले हैं, वे भी शिव की भक्ति करते हैं वे उन्हें अपना लेते हैं क्योंकि सब भूतों का प्राणियों का वही तो स्वामी है। जो उसे प्रेत-पति मानते हैं वे इस तत्व को नहीं जानते-

"अन्धाश्च काणा अधवाऽवटीटा भवन्तु खञ्वा उतवा सुरूपाः।
ये प्राणिनः पाद परागलुब्धा भूतेश्वरत्वाच्छरणं त्वमेव॥"

साँप को दो जीभ होती हैं। चुगुल खोर भी द्विजिह्व है। उन्हें भी वह गर्दन का हार बना लेता है। पिता अपने बुरे लड़कों को भी अपने में लिपटाये रखता है। सर्पमाला का यही भाव शास्त्र सम्मत है। पाप और विष में भेद नहीं। वह सबके दोषों को, बिषों को पी जाता है, क्षमा कर देता है। इसी से गरल-पान करने वाला समझा जाता है।

परमात्मा अपने को पुरुष और स्त्री दो रूपों में प्रकट करता है जिससे कि संसारिक जीवों को माता-पिता दोनों के सुख प्राप्त हों। उन दोनों का आपस में कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं होता। वे भाई-बहिन के समान परस्पर पवित्र रहते हैं। जगत के कल्याण के लिये वे दो रूपों में ध्यात् होते हैं-

"स्वस्ति नो रुद्रः पास्वंहसः 'गौरीर्मिमाय सालिलानि तक्षती।'" *(ऋग्वेद)*

शिवजी के लिये वेदों में '**त्र्यम्बकं**' शब्द व्यवहृत होता है। षटविंश ब्राह्मण में '**त्र्यम्बकं यजामहे**' की व्याखा के अवसर पर कहा है—'**स्त्री अम्बा त्वसा यस्य**' अर्थात् ईश्वर-शिवजी स्त्री-पुरुष दो रूपों में है, जैसे बहिन-भाई होते हैं। सायणाचार्य ने "'पृषोदरादि' के सहारे 'स्त्री' शब्द के सकार का लोप किया है। वेद में 'त्र्यम्बकं' का अर्थ त्रिलोचन नहीं बल्कि उमा सहाय शिव हैं।

लोग कहते हैं कि पार्वती जी की उत्पत्ति पर्वत और मेनका से हुई है। वैदिक कोष का नाम 'निघन्टु' है उसमें 'पर्वत' का अर्थ आकाश और मेनका का अर्थ बुद्धि लिखा हुआ है। पार्वतीजी आकाश में सब स्थलों में व्याप्त हैं और बुद्धि से जानी जाती हैं। यही उनकी उत्पत्ति का मतलब है।

श्री शंकराचार्य जी ने तलबकार उपनिषद की व्याख्या में 'उमा' शब्द का अर्थ ब्रह्म विद्या किया है। उनके मन में शिव-पार्वती दोनों ज्ञान-स्वरूप सिद्ध होते हैं। हमारी समझ में वे माता-पिता हैं। लड़कों के लिये माता-पिता की गोद से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। हम उसी के प्रार्थी हैं। यही परम पद है—'**तद्धाम परमंमम**'।

जो 'शिव' ये अक्षर उच्चारण करते हैं, उनके घर में सब मंगल होते हैं-

"**सुमंगलंतस्य गृहे विराजते शिवेति वर्णैर्भुवि योहि भाषते ॥**"

इस तरह शिवाष्टक, शिव तत्व वर्णन करके अर्थात् आठ महानुभावों के प्रकरणों का वर्णन लिख कर यह षष्टम सोपान विराम लेता है।

❋ जय-जय श्री शिव शंकर ❋

कवित्त—मारा है जलन्धर और त्रिपुर को संहाराजिन,
जारा है काम जाके शीष गंगधारा है।
धारा है अपार, जासु महिमा है तीन लोक,
भाल में है इन्दु जाके सुषमा को सारा है॥
दु:ख सब खाओ हलाहल जानि भक्तन के,
आधार हो तिनके ये वेद ने उचारा है।
अर्धांग सोहैं गिरिजेश, कृपालु ऐसे हैं महेश,
कहत 'प्रियदास' सोई मालिक हमारा है॥"

छठे दिन की कथा सम्पूर्ण



श्रीशिव कथा सार का

सप्तम सोपान

❃ मंगलाचरण ❃

श्लोक (1) – "आद्यन्त मङ्गलमजात समानभावमार्यं
तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबल पञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शङ्करमम्बि केशम्॥

(शिव0पु0 विद्येश्वर संहिता 1)

"जो आदि और अन्त में (तथा मध्य में भी) नित्य मंगलमय है, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले देवता = परमात्मा हैं जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल ही खेल में अनायास जगत की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभाव रूप पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान शंकर का मैं मन ही मन चिंतन करता हूँ।"

श्लोक (2) – "विश्वोद्भवस्थिति लयादिषु हेतु मेकं
गौरीपतिं विदिततत्व मनन्त कीर्तिम्।
मायाश्रयं विगत मायभ चिन्त्य रूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि॥"

(शिव0 पु0 रुद्र सं0 सृष्टि खंड 1)

"जो विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि के एकमात्र कारण हैं, गौरी-गिरिराजकुमारी उमा के पति हैं, तत्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्ति का कहीं अंत नहीं है, जो माया के आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं तथा जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन विमल बोध स्वरूप भगवान शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।"

श्लोक (3) – "वन्दे शिवं तं प्रकृतेर नादिं प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभो बदन्तर्व हिरास्थितो यः॥"

(शिव पु0 रुद्र0 सृष्टि खंड 2)

"मैं स्वभाव से ही उन अनादि, शान्त स्वरूप, एकमात्र पुरुषोत्तम शिव की वन्दना करता हूँ, जो अपनी माया से इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करके आकाश की भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित है।"

श्लोक (4) – "वन्देऽन्तरस्थं निजगूढ़ रूपं शिवं स्वतस्त्रष्टुमिदं विचष्टे।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सनिधौ चुम्बक लोह वन्तम्॥"

(शिव0पु0 रुद्र सं0 सृष्टि खंड 3)

जैसे लोहा चुम्बक से आकृष्ट होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत सदा सब ओर जिसके आसपास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपने से ही इस प्रपंच को रचने की विधि बताई थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है, उन भगवान शिव की मैं सादर वन्दना करता हूँ।

श्लोक (5) – "यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारो
ज्झितो यस्याहुः करुणाकटाक्ष विभवौ स्वर्गापवर्गामिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन
स्तस्मै शैल सुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्वन्तमस्तेज नेत॥"

(शिव पु0 कोटि रुद्र सं0 1)

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी माया से ही विराट-विश्व का आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) जिनके कृपा कटाक्ष के ही वैभव बताये जाते हैं, तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदय के भीतर अद्वितीय आत्मज्ञानानन्द स्वरूप में ही देखते हैं, उन तेजोमय भगवान शंकर को जिनका आधार शरीर शैलराज कुमारी पार्वती से सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है ।

श्लोक (6) – "कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञ वक्त्राम्बुजं
शशाङ्कलयोज्ज्वलं शमित घोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परम सौख्य सच्चिद्वपुर्धराधरसुता
भुजोद्वलयितं महोमङ्गलम्॥"

(शिव पु0 कोटि रुद्र सं0 2)

जिसकी कृपा पूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारबिन्दु मन्द मुस्कान की छटा से अत्यन्त मनोहर दिखाई देता है, जो चन्द्रमा की कला से परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापों को शान्त कर देने में समर्थ है, जिसका स्वरूव सच्चिन्मय एवं परमानन्द रूप से प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराज नन्दिनी श्री भगवती पार्वती जी के भुज-पाश से आवेष्टित हों, वह शिव नामक कोई अनिवर्चनीय तेजः पुंज्ज सब का मंगल करे।



(1) शिव-तत्व विचार

(लेखक श्री विनायक नारायण, साखरे महाराज)

किसी भी देवता का नाम सुनते ही उसका शास्त्र प्रतिपादित आकार याद आ जाता है। विष्णु शब्द के श्रवण से शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण की हुई श्याम-सुन्दर आकृति मन में उतर आती है। 'गणपति' शब्द के श्रवण से गज-बदन और विशाल उदर की आकृति ध्यान में आ जाती है, उसी प्रकार राम, शंकर आदि शब्दों के श्रवण से उनके आकार मन में आ जाते हैं—

दोहा— "जब जेहि देवन्ह नाम सुनि, मन में होत विचार।
उनकी छवि नैंनन्ह उतरि, तेहि तेहि बन आकार॥"

मनुष्य के विषय में भी यही बात है, परंतु थोड़ा सा विचार करने पर यह बात ध्यान में आ जायेगी कि केवल मन में आ जाने वाला अथवा दृष्टिगोचर होने वाला आकार ही वाच्य पदार्थ नहीं होता। उदाहरणार्थ-किसी पुरुष का पिता मरणोन्मुख दशा में है, उसका पुत्र परदेश में उनकी सूचना पाकर दर्शन के लिये आ रहा है, परंतु दूर्दैव से उसके दरवाजे पर आते-आते पिता की मृत्यु हो गयी। पुत्र ने यथाविधि पिता का देह संस्कार किया, तथापि वह शोक प्रकट करते हुए अपने मित्र से कहता है कि "मैं इतनी शीघ्रता से यहाँ पर आया, परंतु अभाग्यवश पिताजी से भेंट न हो सकी।" इन सब बातों से यही बात निश्चित होती है कि पिता के केवल स्थूल शरीर को ही वह पिता नहीं समझता था, बल्कि पितृ शरीर में जो चैतन्य जीव था, उसे ही वह पिता मानता था।

अब यह प्रश्न सहज ही उठता है कि '**जीव**' क्या चीज है? इसका निर्णय जीव की ही बुद्धि से होना प्रायः असम्भव है। हाथ-पैर आदि आँखों से दिखलाई पड़ते हैं, इसलिये उनका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा हो सकता है, परंतु 'जीव' पद का वाच्यार्थ इन्द्रियों के अगोचर होने के कारण उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होना सम्भव नहीं है। अदृश्य पदार्थों के जान लेने के लिये अर्थात् ज्ञान के लिये श्रुति की ही शरण लेनी पड़ती है कहा भी है—"**अदृष्टार्थे श्रुतिरेव बलीयसी।**"

मृत पुरुष की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी कौन हैं? इसका निर्णय सामान्य बुद्धि के मनुष्य से सही नहीं हो सकता, इसके लिये कायदा-कानून के जानकार न्यायाधीश की ही आवश्यकता होती है। और न्यायाधीश भी मनमाना निर्णय नहीं कर सकता, उसे भी कानून के अनुसार चलना पड़ेगा; क्योंकि उत्तराधिकार अदृश्य होने से उसकी गति को केवल कानून (शास्त्र) ही जान सकता है। इसी प्रकार जीव और जीवाधिपति शिव का यथार्थ स्वरूप बतलाने का एकमात्र अधिकार भी श्रुति माता को ही है।

जीव के स्वरूप के सम्बन्ध में महापुरुषों का यही कहना है कि स्थूल शरीर के भीतर सर्वस्थूल शरीर व्यापी अन्तःकरण बुद्धि तत्व है, यह अपंच्चीकृत पंच्च महाभूतों के सत्वगुण के अर्धभाग का कार्य है। वैसे ही प्रत्येक भू के तत्व गुण के अर्धभाग से श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सत्वगुण के ही कार्य हैं। वैसे ही प्रत्येक भूत के तत्वगुण के अर्धभाग से श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सत्वगुण के ही कार्य हैं। पंचमहाभूतों के रजोगुण के अर्धभाग से पंच्च प्राण और पंच्च कर्मेन्द्रियाँ हुई हैं। पच्च ज्ञान इन्द्रियाँ, पंच्च कर्मेन्द्रियाँ, पंच्च प्राण और अन्तःकरण इन सोलह पदार्थों के समुदाय को सूक्ष्म लिंग शरीर कहते हैं। इनमें पंच्च प्राण और पंच्च कर्मेन्द्रियाँ ज्ञान शून्य हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य पदार्थों का ज्ञान करा देती हैं, तथापि उनमें अन्तःकरण के ज्ञान स्त्रोत से ही ज्ञान शक्ति आती है। सूक्ष्म विचार से यही निश्चित होता है कि अन्तःकरण की ज्ञान-रूप वृत्ति ही ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाहर जाकर शब्दादि वाह्य स्थूल पदार्थों को विषय करती हैं अर्थात् उन पदार्थों का ज्ञान करा देती हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पंचमहाभूत जड़ हैं उनके सत्व गुण से उत्पन्न हुआ अंतःकरण भी जड़ होना चाहिए, ऐसे जड़ अन्तःकरण में ज्ञान कैसे हो सकता है? इसका समाधान यह है कि श्रुति वचनों से यह सिद्ध है कि जगत का कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म ज्ञान रूप ही है, ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति से उसकी निरतिशय व्यापकता सिद्ध होती है, अर्थात् ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें वह व्याप्त न हो।

उपर्युक्त स्थूल-सूक्ष्म संघातों में भी ब्रह्म व्याप्त है। जिस प्रकार बिजली के तारों में प्रकाश सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी वह चाहे जहाँ से प्रकट नहीं हो पड़ता, प्रत्युत जहाँ उसमें 'बल्व' जोड़ा जाता है वहीं प्रकट होता है, उसी प्रकार जितने अंश में ज्ञानरूप ब्रह्म के साथ अन्तःकरण का सम्बन्ध होता है, उतने ही अंश में उसके सामान्य ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। इसी को शास्त्रीय परिभाषा में 'आभास' कहते हैं, और अन्तःकरण रूप उपाधि में जो ब्रह्मांश होता है उस उसकी, प्रकाशकता के कारण 'साक्षी' निर्विकारिता के कारण 'कूटस्थ' व्यापकता के कारण 'आत्मा' और 'पारमार्थिक जीव' संज्ञाएँ प्राप्त हुई हैं। अर्थात् अन्तःकरण व्याप्त ब्रह्मांश कूटस्थ. अन्तःकरण. आभास = **'जीव'** है।

यह जीव 'जीव' पद का वाच्य है और वह केवल कूटस्थ जीव-पद का लक्ष्य है। वास्तव में कूटस्थ अपरिच्छिन्न, निर्विकार ब्रह्म ही है, परन्तु अन्तःकरण उपाधि के कारण उसे जीवत्व-धर्म प्राप्त हो जाने से अन्तःकरण के सर्वधर्म भ्रम से कूटस्थ में भासने लगते हैं। अर्थात् अन्तःकरण की परिच्छिन्नता, काम, संकल्प, सुख-दुःख, धर्माधर्म, श्रद्धा-अश्रद्धा आदि धर्म अन्तःकरण में अभिव्यक्त हुए आत्म प्रकाश में—जिसे ऊपर 'आभास' कहा गया है-भासते हैं, और आभास के अज्ञान से ही गुण ब्रह्म-रूप आत्मा में भासने लगते हैं।

दर्पण के दाग या मल के दोष प्रतिबिम्ब में दिखाई देते हैं, तथापि वे दोष होते हैं दर्पण में ही न कि प्रतिबिम्ब में। वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म संघातों के धर्म वास्तव में 'आभास' में न होते हुए भी 'आभास' उन धर्मों को अपने ही मानता है, यही जीव का 'जीवत्व' है और इसी का नाम संसार है।

जैसा कि लेख के प्रारम्भ में कह आये हैं 'देवदत्त' कहते ही देवदत्त के शरीर का स्थूल आकार दृष्टि के सामने आ जाता है। वैसे ही विष्णु, शंकर, गणपति आदि देवताओं के नामोच्चारण के साथ ही उनके आकार दृष्टि के सामने आ जाते हैं। विचार करने पर जिस प्रकार यह निश्चित होता है कि देवदत्त का स्थूल शरीर ही देवदत्त नहीं है उसका चैतन्य-विशिष्ट स्थूल-सूक्ष्म शरीर-संघात ही देवदत्त है, उसी प्रकार देवताओं के नाम सुनने से उनके जो-जो आकार मन में आ जाते हैं, केवल वे ही देवता नहीं हैं, बल्कि यह समझना चाहिए कि उनके आकार-विशिष्ट चैतन्य के ही 'शंकर', 'विष्णु' आदि नाम हैं। ऐसे ईश्वर के अनुग्रह से ही जीव को गुरु द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। अब ईश्वर के स्वरूप के विषय में शास्त्र क्या कहते हैं, इसका विचार करें-

संसार का अर्थ है जन्म-मरण का प्रवाह। इस प्रवाह में बहा जा रहा है। इस संसार के दुःख से मुक्त होने के उद्देश्य से ही वह जीवनभर कष्ट सहन करता है, परन्तु जब तक ईश्वर के अनुग्रह से वैराग्य उत्पन्न होकर श्रोत्रिय गुरू के उपदेश से जीव ब्रह्म के ऐक्य का ज्ञान निस्सन्दिग्ध भाव से हृदय में उदित नहीं होता, तब तक अन्य किसी भी उपाय से सांसारिक दुःख की सर्वथा निवृत्ति नहीं हो सकती। इस बात की घोषणा यह-

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युयेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" श्रुति कर रही है।

जिस ईश्वर के प्रसाद से वैराग्य आदि की प्राप्ति होकर जीव जन्म-मरण रूप संसार दुःख से निवृत्त हो जाता है और निरतिशय आनन्दरूप मोक्ष को प्राप्त करता है, उस ईश्वर के स्वरूप को अवश्य जान लेना चाहिए। जैसे ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि कूटस्थ, अन्तःकरण, आभास इन तीनों को मिलाकर 'जीव' कहते हैं, वैसे ही शास्त्रकारों ने, विद्वानों ने '**शुद्ध ब्रह्म + माया + आभास = ईश्वर**' इस प्रकार ईश्वर का स्वरूप स्थिर किया है। जिस प्रकार जीव के अन्तःकरण उपाधि में काम, क्रोध, सुख-दुःख, धर्माधर्म आदि रहते हैं, परन्तु भासते हैं कूटस्थ में, उसी प्रकार शास्त्र यह भी प्रतिपादित करता है कि ईश्वर स्वरूप की माया-उपाधि में अचिन्त्य ऐश्वर्य, दयालुत्व, भक्त पर अनुग्रह करना आदि जो अनन्त गुण हैं—वे सब अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म में भासमान होते हैं।

जीव और ईश्वर के स्वरूप में तीन-तीन ही पदार्थ हैं, तथापि जीव अन्तःकरणोपलक्षित अविद्या उपाधि के अधीन रहता है और ईश्वरानुग्रह से मुक्त होने

तक वह अपने को दीन-दु:खी मानता है। परन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में इसके विपरीत स्थिति है, अर्थात् ईश्वर स्वरूप की माया उपाधी ईश्वर के अधीन होने से ईश्वर नित्य मुक्त है।

"जीवेशावाभासेन करोति माया। माया चाविद्या च स्वयमेव भवति" माया अपने स्वरूप में आभास को लेकर जीव और ईश्वर (भेद) करती है। जीव भेद करते समय उसी माया की 'अविद्या' संज्ञा होती है।

यद्यपि जेल में जेलर और कैदी दोनों ही रहते हैं तथापि जेल-जेलर के अधीन रहता है और कैदी जेल के अधीन रहता है, जेल रूपी उपाधि दोनों की समान है तथापि कैदी का उपास्य जेलर है, वैसे ही जीव और ईश्वर की उपाधि अकेली माया होने पर भी माया ईश्वर के अधीन होने से माया विशिष्ट परमात्मा, अर्थात् कल्याणकारक शिव ही सर्व जीवों के उपास्य हैं। यही माया विशिष्ट परमात्मा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये शिव, विष्णु, गणेश राम कृष्ण आदि रूप धारण करते हैं। माया विशिष्ट ईश्वर शिव-पाद का वाच्य है और शुद्ध ब्रह्म शिव-पद का लक्ष्य है। ऐसा **"आनन्दरूपः सर्वार्थ साधकत्वेन हेतुना। सर्व सम्बन्ध वत्वेन सम्पूर्णः शिव संज्ञितः॥"** *(शिव-पुराण)*

भगवान व्यासजी ने वर्णन किया है जिसे ईश्वरानुग्रह से आचार्य-गुरु के द्वारा असन्दिग्ध भाव से ऐसा बोध होता है कि शिव-पद का लक्ष्य जो शुद्ध ब्रह्म-परमात्मा है वही मेरा आत्मा है, वह शरीर पात होने तक जीव-मुक्ति का सुख-लाभ करता है और देहपात के अनन्तर विदेह-कैवल्य पद को प्राप्त होता है।

कुछ वे समझ लोग यह कुशंका करते हैं कि मंगल स्वरूप भगवान शिव जो सर्व ऐश्वर्य का परित्याग कर दरिद्र के समान रहते हैं, श्मशान में वास करते हैं, और शरीर में भस्म रमाकर व्याघ्र-चर्म परिधान करते हैं, यह सब क्यों? इसका रहस्य, सूत्र भाष्य की 'रत्न प्रभा' टीका में श्रीरामानन्द स्वामीजी ने निम्नलिखित श्लोक में खोला है—

"श्री गौर्या सकलार्थदं निजपदाम्भोजेन मुक्ति प्रदं,
प्रोढ़ं विघ्नवनं हरन्त मनघं श्रीदुष्ढ़ितुण्डासिना।
वन्दे चर्मकपालि कोप करणौ वैंराग्य सौख्यात्परं,
नास्तीति प्रदिशन्तमन्त विधुरं श्री काशिकेशं शिवम्॥"

श्री पार्वती जी के समस्त अर्थों के प्रदाता, अपने चरण कमल से मुक्ति के प्रदाता, श्री गज की शुन्डरूपी तलवार से बढ़े हुए विघ्न समूह तथा पाप को हरण करने वाले, चर्म निर्मित खप्पर के कोप करने से वैराग्यरूपी सुख प्रदान करने वाले शंकर जी को प्रणाम करता हूँ। अंतिम प्रमाण के प्रदाता श्रीकाशी पुरी के स्वामी शिव

के अतिरिक्त कोई नहीं है। इसका सार यही है कि इस वृत्ति को धारण कर श्री शंकर ने यही सूचित किया है कि वैराग्य सुख से बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यही सिद्ध हुआ है कि शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा ही 'शिवपद' का लक्ष्य है और माया विशिष्ट परमात्मा 'शिव पद' का वाच्य है। वाच्यार्थ की उपेक्षा लक्ष्यार्थ श्रेष्ठ होता है, यही नियम है। शिव पुराण में व्यासजी ने देवताओं में शिव को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। यह सर्वश्रेष्ठत्व वहाँ शिव पद के लक्ष्यार्थ की दृष्टि से है।

इसी प्रकार विष्णु पुराण में अन्य देवताओं की अपेक्षा विष्णु भगवान की जो श्रेष्ठता वर्णन की गयी है वह भी लक्ष्यार्थ की दृष्टि से ही है। और इसी दृष्टि से गणपति, राम, कृष्ण आदि देवताओं की श्रेष्ठता का वर्णन है। जिस पुराण में जिस देवता की सर्वश्रेष्ठता का वर्णन किया गया है वह लक्ष्यार्थ की दृष्टि से ही है और उसमें जो अन्य देवताओं की निकृष्टता का वर्णन किया गया है, वह वाच्यार्थ की दृष्टि से है। जिसे इसका यथार्थ ज्ञान होता है, उसे पुराण के वाक्यों में परस्पर विरोध नहीं प्रतीत हो सकता, और न वह अन्य देवताओं के उपासकों से विरोध ही कर सकता है।

❃ शिव-नामामृत ❃

"शिव नाम तरीं प्राप्य संसाराब्धितरन्ति ते।
संसार मूलपापानि तानि नश्यन्त्य संशयम्॥
संसार मूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिव-नाम कुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितै।
पापदावाग्नितप्तानां शान्ति स्तेन विना नहि॥
शिवेति नाम पीयूषवर्षाधारा परिप्लुताः।
संसार दवमध्येऽपि नशोचन्ति कदाचन॥
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्।
तद्विधानां तु सहसा मुक्ति र्भवति सर्वथा॥"

(शिव०पु०वि० 23 ।29-33)

"जो शिव-नाम रूपी नौका पर आरूढ़ हो संसार रूपी समुद्र को पार करते हैं, उनके जन्म-मरण रूपी संसार के मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसार के मूलभूत पातक रूपी पादपों का शिव-नाम रूपी कुठार से निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पाप रूपी दावानल से पीड़ित हैं, उन्हें शिवनाम रूपी अमृत का पान करना चाहिए। पापों के दावानल से दग्ध होने वाले लोगों को उस

शिव-नामामृत के बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिव-नाम रूपी सुधा की वृष्टि जनित धारा में गोते लगा रहे हैं, वे संसार रूपी दावानल के बीच में खड़े होने पर भी कदापि शोक के भागी नहीं होते। जिन महात्माओं के मन में शिव-नाम के प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगों की सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है।"

कवित्त—शम्भु बैठे हैं विशाला, भंग पीवें सो निराला,
नित रहें मतवाला, अहि अंग पै चढ़ाये हैं।
गले सोहै मुण्डमाला, कर डमरू विशाला,
अरू ओढ़े मृग छाला भस्म अंग में लगाये हैं॥
संग सुरभी सुतशाला करैं जग प्रतिपाला,
मृत्यु हरैं अकाला शीश जटायें बढ़ाये हैं॥
कहैं 'प्रियदास' मोहि तुम्हारी ही है आश,
अब गिरिजा पति कैलाश शरण तुम्हारी में आये हैं॥"



(2) शिव-तत्व विचार

(लेखक श्री ज्वाला प्रसाद जी कानोडिया)

श्लोक—"वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शंकरम्।"

वेद, शास्त्रों में शिव, शंकर, रुद्र, महेश्वर, विश्वनाथ, महादेव इत्यादि नामों से भी अनेक स्थलों में वर्णित है, अतएव भगवान के कभी किसी नाम रूप पर, कभी किसी दूसरे नाम रूप पर विचार प्रकट करना युक्ति युक्त ही है। वही लेखनी, वही वाणी और वही मन सार्थक है जो विश्वपति के गुण-महिमा रहस्य का प्रकाश करे। श्रीमद्भागवत में भी कहा है—

"मृषा गिरस्ता ह्यसती रसत् कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं तद्देव पुण्यं भगवद् गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णव शोषणं नृणां यदुत्तमश्लोक यशोऽनुगीयते॥"

"जिस कथा में भगवान आधोक्षज की चर्चा नहीं है, वह असत और मिथ्या है। जिस कथा में भगवान के गुणगण वर्णन का प्रसंग है, वही सत्य, मंगलदायिनी और पुण्यमयी है। जो उत्तम श्लोक भगवान के यश से पूर्ण हो वही परम रमणीय और पल-पल पर नित्य नवीन है, वही महान् उत्सव स्वरूप है और वही मनुष्यों के शोक सागर को सुखाने वाला है।"

जगत में जिस प्रकार खान-पान रहन-सहन, वेष-भूषा में सब मनुष्यों को एक

सी रुचि नहीं होती, वैसे ही भगवान उपासना में भी सबकी एक सी रुचि होना सम्भव नहीं है। यह अवश्य है कि युक्त और वैध आहार-विहार चाहे भिन्न-भिन्न प्रकार के क्यों न हों, उसका परिणाम रक्षा आदि समान ही होता है, परन्तु उसी के अयुक्त और अवैध होने पर फल में समानता नहीं रहती, वैसे ही उपासना में नाम-रूप का भेद होने पर भी युक्त और वैध उपासना का परिणाम सर्वत्र एक ही होता है, अवैध, अयुक्त उपासना होने से ही फल में भेद हो जाता है।

प्राचीन आर्य ऋषियों ने सच्चिदानन्द घन परमात्मा के अनेक नामों और रूपों के भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार की उपासना की विधि शास्त्रों में बतलाई है। इन सब विभिन्न उपासना के भेद के मूल में भाव, उद्देश्य हेतु सब युक्तियुक्त रखे गये हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि जन साधारण अपने-अपने भाव, उद्देश्य और रुचि के अनुसार नाम-रूप की उपासना को पसंद करते हैं। सकाम उद्देश्य के अतिरिक्त यदि निष्काम भाव से भक्ति श्रद्धा से युक्त होकर भगवान के किसी भी नाम-रूप की उपासना की जाय तो परिणाम सबका कल्याण ही है। पुष्पदन्त भक्त ने कहा है—

"त्रयी साख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पश्यषिति च।
रुचीना वैचित्र्याहजुकुटिल नाना पथ जुषाम्
नृणा मेको गम्यस्त्वमसि पय सामर्णव इन॥" *(महिम्नस्तोत्र 7)*

"तीनों वेद (वेद विहित मार्ग), सांख्य (कपिलमतानुसार मार्ग), योग (पतंजलि ऋषि निर्दिष्ट मार्ग), पाशुपत शास्त्र (शैवमत), वैष्णव (वैष्णव मत) इत्यादि अनेक विभिन्न मार्ग हैं इनमें से किसी के मत से कोई मार्ग श्रेष्ठ और हितकर है तो किसी के मत से कोई मार्ग। परंतु मनुष्यों के रुचि वैचित्र्य के कारण अर्थात् रुचि भेद से सरल और कुटिल अर्थात् कठिन प्रतीत होने वाले नाना मार्गों से चलने वाले भक्त उसी एक देवादि देव महादेव को प्राप्त होते हैं, जैसे अनेक नदियों का जल भिन्न-भिन्न मार्गों से सीधा या टेढ़ा घूम-फिर कर अन्त में एक समुद्र में ही जाकर शान्त होता है।

जब हम तात्विक दृष्टि से शिव-नाम रूप को विचारते हैं तो यही समझ में आता है कि यह उपासंना अखिल भुवनपति महेश्वर की ही है जो सारे जगत के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं, जो सारे जगत में अव्यक्त रूप से व्याप्त है और जिनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, उपनिषदों में कहा है—

"एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँलोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांतिष्ठति सञ्चुकोचान्त काले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥"

"रुद्र एक है, उन्होंने (जानने वालों ने) दूसरा हीं ठहराया है, जो अपनी शक्तियों से सब लोकों पर शासन करता है, जो सब लोगों के पीछे वर्तमान है, अर्थात् सब में

वर्तमान है और सारे भुवनों को रचकर रक्षण करता है तथा अन्तकाल में समेट लेता है।"

"सर्वान नशिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात सर्वगतः शिवः॥"
महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैव प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिख्ययः॥"

"जिनके सर्वत्र मुख, सिर और ग्रीवा हैं, जो सम्पूर्ण जीवों के हृदय में विराजमान हैं, सर्वव्यापी तथा सबके अन्दर रमे हुए हैं वही भगवान शिव हैं। वह शिव भगवान पुरुष हैं, महान पभु हैं, सत्य के प्रवर्तक अर्थात् आस्तिक के आधार हैं। अविनाशी शिव की कृपा से सर्वत्र उनके पवित्र स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है।" यद्यपि शास्त्रों में कहीं-कहीं शिव को संहारकर्त्ता कहा है, वह भी ठीक ही है, क्योंकि एक ही अखिल भुवनपति महेश्वर तीन रूप से उत्पत्ति, पालन और संहारकर्ता बनते हैं। जैसे श्रीमद् भगवतगीता में कहा है–

"अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्जेयं ग्रसिष्णु प्रभ विष्णु च॥"

"वह परमात्मा विभाग रहित एक रूप से (आकाश के सदृश) परिपूर्ण हुआ भी चराचर सम्पूर्ण भूतों में पृथक-पृथक के सदृश प्रतीत होता है और वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूप से धारण पोषण करने वाला, रुद्र रूप से संहार करने वाला और ब्रह्मा रूप से उत्पन्न करने वाला है।"

यहाँ कार्य भेद से एक ही परमात्मा के तीन नामों का वर्णन है। श्रुति में भी कहा है–

"सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।"

"यह सब ब्रह्म है, क्योंकि उससे उत्पन्न हुआ है, उसी में लीन होता है और उसी में स्थित है; अतएव शान्त होकर उसी के ध्यान में स्थित होना चाहिए।"

यहाँ भी एक ही परमात्मा को भिन्न-भिन्न कार्यों का कर्त्ता बतलाया है। जगत्पति परमात्मा तीन नहीं है, एक ही है, एक ही के कार्यभेद से नाम-रूपों का भेद पाया जाता है। जो लोग शिव को केवल संहारकर्त्ता मानकर उपासते हैं, वे लोग शिव के एक ही अंग की उपासना करते हैं, उनकी उपासना पूर्ण उपासना नहीं समझी जायेगी। उच्चकोटि का साधक या भक्त अपने इष्टदेव को किसी भी अंश में खर्व नहीं कर सकता। उसके इष्ट देव से ऊँचा और कुछ नहीं है। उसमें अपूर्णता किसी भी अंश में नहीं है। अपरिमित, अपरिच्छिन्न, शक्ति वाला ही सर्वकाल और सर्वदेशव्यापी होता है। उपर्युक्त वर्णन से शिव के साकार में कुछ भी विरोध नहीं आता।

विष्णु भगवान के जिस प्रकार दो रूपों का वर्णन पाया जाता है–एक अव्यक्त (व्यापक) और दूसरा व्यक्त (साकार), उसी प्रकार भगवान शिव के भी दो रूप हैं–एक अव्यक्त (सर्वव्यापक) और दूसरा साकार (कैलाशपुरी निवासी)। साकार शिव की अनेक लीलाओं और चरित्रों का वर्णन पुराणों में मिलता है। शिव का शिव की जिस रूप से उपासना करता है, सच्ची भक्ति और श्रद्धा होने से उसी रूप में उनका दर्शन भी पाता है।

भगवान शिव विरक्त और त्यागी हैं, श्मशान उनका निवास स्थान है, भस्म उनका अंगराग है, पिशाच उनके सहचर हैं, वह मुण्डमाल को धारण करने वाले हैं–

"श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचराश्रिता भस्मा लेपः स्त्रमपि नृकरोटीपरिकरः॥"

ऐसे प्रभु जिनके उपास्यदेव हैं वह भक्त कभी विषय भोगाभिलाषी नहीं हो सकते। विरक्त की उपासना विरक्त होने से ही बनती है, शिव का वस्त्र है पशु चर्म, भूषण है रुद्राक्ष और सर्प, केश प्रसाधन के स्थान में है जटा, अबलम्बन भिक्षा, वाहन वृषभ.तथा आक-धतूरा आदि गंधहीन पुष्पों से उनकी पूजा होती है, ये सभी वैराग्य के लक्षण हैं। ऐसे त्यागमूर्ति भगवान की उपासना वैराग्यवान ही करते हैं, क्योंकि जब स्वयं प्रभु वैराग्य की मूर्ति बनकर वैराग्य की शिक्षा दे रहे हैं, तब विषय-भोग सम्प्रदायुक्त होकर उनकी सेवा कभी शोभा नहीं देती। शिव प्रेमी क्या मनोरथ करता है–

"स्फुरत्स्फार ज्योतिश्नाधवलित तले कृपि पुलिने
सुखा सीनाः शान्त ध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्त वचसा
कदा श्यामानन्दोद्भत बहुल वाष्पायलुतदृशः॥"

"जहाँ शुभ्र ज्योत्स्ना फैली हुई है, निर्मल स्थान हो, ऐसे गंगातट पर सुख से बैठे रहें। जब सब ध्वनि शान्त हो जाय, तब रात्रि में आर्त स्वर से 'शिव-शिव' कहते हुए संसार के दुःख से व्याकुल हों, और आनन्द के आँसुओं से नेत्रपूर्ण हो रहे हों। ऐसी अवस्था हमारी कब होगी?"

"महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरि
द्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यं व्रतमिदं
क्रियद्वा वक्ष्यामोवटविटप एवास्तु दयिता॥"

"महादेव ही एक देव हों, गंगा ही नदी हो, एक कन्दरा ही घर हो, दिशा ही वस्त्र हो, काल ही मित्र हो, किसी से दीनता न करना ही व्रत हो और कहाँ तक कहें, वट वृक्ष ही हमारी बल्लभा हो।" इत्यादि शिव भक्तों के भावों के नमूने हैं। शिव का वर्णन

श्वेत है, जो वर्णनहीन शुक्र ब्रह्म का प्रतिपादक हैं।

शिव के त्रिनेत्र त्रिकाल अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान के ज्ञान या सर्वत्रता के प्रतिपादक हैं। शिव का त्रिशूल आधिदैविक, अधिभौतिक, आध्यात्मिक तीन प्रकार के शूलों से बचाने वाला है। शिव का मुण्डमाला धारण मृत्यु को स्मरण कराने वाला है, जिससे संसार में आसक्ति नहीं रह जाती। शिव का विषपान-विषय भोग ही विष है। विषयभोगाभिलाषी विष जर्जित समझे जाते हैं। वे लोग त्याग-वैराग्य की महिमा को नहीं जानते। संसार भोग ही उनका चरम लक्ष्य है, परंतु विचार मान ज्ञानी भोग विलास से उदासीन रहते हैं और त्याग-वैराग्य ही उनका लक्ष्य होता है। कहा भी है-

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सानिशा पश्यते मुने॥" *(गीता 2/69)*

इस प्रकार से शिव विषय भोग रूपी विष को पान करने वाले हैं, अर्थात् इस विष से छुड़ाने वाले हैं। इस प्रकार शिव भगवान के सब ही साकार रूप अत्यंत भावपूर्ण और शिक्षाप्रद हैं, अतः 'शिव' शब्द कल्याण वाचक, मंगलवाचक है। शिव का नाम 'आशुतोष' अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होने वाला भी है।



(3) शिव-तत्व-एक दृष्टि

(लेखक—श्री दण्डी स्वामी विपिन चन्द्रानन्द सरस्वती जी 'जज स्वामी')

'सत्यं शिवं सुन्दरम्'—शंकरजी का यह सुन्दर नाम ब्रह्म के स्वरूप, लक्षण सत्यम्, ज्ञान्, आनन्दम्, ब्रह्म का ही प्रतीक है। माण्डूक्योपनिषद् मंत्र 7 में स्पष्ट रूप से लिखा है—**'शिवम द्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते।'**

'चतुर्थम्'-तुरीय अमात्र ब्रह्म का वाचक है।

'ब्रह्म' निर्गुण निराकार है, एवं माया ही उपाधि से सगुण-निराकार तथा सगुण-साकार स्वरूप में भी उपलब्ध होता है। भगवान शिव का लिंग रूप निराकार तथा मूर्ति रूप साकार का बोधक है और वास्तव में दोनों रूप ही ब्रह्म से अभिन्न हैं।

सनातन धर्म में आदि देव विष्णु, ब्रह्मा और महेश हैं, जिनमें विष्णु की ख्याति सत्व गुण प्रधान है, ब्रह्मा की ख्याति रजोगुण प्रधान है, एवं शंकर जी की ख्याति तमोगुण प्रधान है। तमोगुण की भ्रांतिवशात् बहुत कुचर्चा है, तनिक विचार कर देखा जाय तो तमोगुण अन्य गुणों का अधिष्ठान सिद्ध होता है। उस आधार के बिना प्रकाशक सत्वगुण और क्रियात्मक रजोगुण अपने काम में वैसे ही स्थिर और सफल नहीं हो सकते, जैसे बिना तमोगुणी निद्रा एवं विश्राम हुए, जाग्रत और स्वप्न

अपने-अपने काम में असफल रहेंगे और अन्धकार के बिना प्रकाश तत्व तथा स्थिर स्थिति के बिना चलन क्रिया का अनुभव नहीं होगा।

उपासक की दृष्टि से शंकरजी को तमोगुण के देवता बताने का तात्पर्य यह है कि वे इतने दयालु एवं औघड़ दानी हैं कि जिस दोष एवं अपवित्रता से साधारणतया घृण की जाती है, वे उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते हैं, और भक्त की थोड़ी सी सेवा-भाव से ही रीझकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्रदान कर देते हैं, वे स्वयं इतने विरक्त हैं कि समस्त दृश्यमान वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं। इसी स्वभाव के कारण उन्होंने समुद्र मंथन के समय निकले हुए 'हलाहल विष' का पान किया एवं अन्य रत्नों से किसी की प्राप्ति की अभिलाषा नहीं की। इन्हीं गुणों के कारण उन्होंने रावण तथा भस्मासुर आदि को भी बिना विचारे अनेक वरदान दे दिये।

एक कथा आती है। एक चोर था। वह किसी मन्दिर में घन्टा चुराने गया। घन्टे पर हाथ न पहुँच पाने के कारण वह शिव-लिंग पर ही चढ़ गया। शंकर जी ने माना कि और लोग तो हम पर थोड़ी-थोड़ी वस्तुएँ चढ़ाते हैं, परन्तु इसने तो स्वयं को ही चढ़ा दिया। अत: प्रकट हो गये और चोर का कल्याण किया। अपनी ऐसी ही महानता के कारण शंकरजी 'महादेव' कहलाते हैं, जबकि अन्य देवता केवल देव कहलाते हैं।

भगवान शंकर जी ज्ञान, योग, वैराग्य, भक्ति के भण्डार ही नहीं, अपितु आगम, तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, नृत्य, वाद्य, संगीत, व्याकरण आदि समस्त कलाओं और विद्याओं के आचार्य भी हैं, उनका वास्तविक स्वरूप अत्यन्त सौम्य एवं शान्तिदायक है-**"कर्पूर गौरं करुणावतारं।"**

उनके क्रोध की लीला जगत के कल्याण के लिये ही समय-समय पर प्रकट होती है। जैसे-कामदेव का संहार एवं प्रलय और महाप्रलय। इसलिये शंकरजी का रूप भी विरुद्ध धर्माश्रय है। एक ओर जहाँ सिर पर पतित पावनी गंगाजी एवं शीतल चन्द्रमा है, वहीं दूसरी ओर उनके गले में भयंकर सर्प एवं हाथों में त्रिशूल तथा ब्रह्म रूपी डमरू भी है। पार्वती जी के विवाह के अवसर पर बारात में शंकरजी के भयानक एवं सौम्य दोनों ही रूपों के दर्शन हुए हैं।

शास्त्रों में जहाँ कहीं भी 'ईश्वर' अथवा 'ईश' शब्द बिना किसी विशेषण के आया है, उसका अर्थ 'शंकर' ही लगाया जाता है। कहा जाता है कि जब शंकरजी और पार्वतीजी का पाणिग्रहण संस्कार हुआ, तब शाखा उच्चारण के समय पूछे जाने पर वर का नाम शिव बताया गया पर इनके पिता का नाम पूछने पर सब चुप हो गये। कुछ समय सोचने के पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा कि इनका पिता मैं 'ब्रह्मा' हूँ, और पितामह का नाम पूछने पर ब्रह्माजी ने 'विष्णु' बताया। तदनन्तर प्रपितामह का नाम

पूछा गया। उत्तर देने में सारी सभा अत्यन्त मौन रही। अन्त में मौन भंग करते हुए शंकरजी स्वयं बोले कि सबके प्रपितामह तो हम ही हैं।"

रुद्रहृदय-उपनिषद् में लिखा है कि विष्णु कार्य, ब्रह्मा क्रिया एवं महेश्वर कारण हैं, वास्तव में तीनों एक ही हैं—**"कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः। प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधाकृत॥"**

भगवान शिव की एक मनोरम कथा-एक समय दक्षिण में मीनाक्षी पुरम के राजा के दरबार में सोमदत्त नामक एक निपुण गायक था। जिसे राजा बड़े सम्मान तथा विपुल वैभव से रखते थे, इससे अन्य गायकों को ईर्ष्या होती थी। किसी अन्य प्रदेश का एक प्रसिद्ध गायक इस उद्देश्य से मीनाक्षी पुरम आया कि सोमदत्त को प्रतियोगिता में पराजित करके स्वयं राज दरबारी बन जायँ, अतः वह राजा से मिला। राजा ने अगले दिन का समय प्रतियोगिता के लिये निश्चित किया और घोषझा की कि ये योग्यता में विजयी गायक को-'राजदरबारी पद' और दूसरे को दण्ड प्रदान किया जायेगा। आगन्तुक गायक की कला की निपुणता की अधिक प्रसिद्धि थी। अतः सोमदत्त ने भगवान सोमेश्वर के मन्दिर में जाकर सारी रात जागरण एवं अनशन किया, तथा कातर स्वर से प्रार्थना की कि—"हे प्रभो! मेरी लाज और मेरा जीवन आप ही के हाथ है, दया कर इस विपत्ति से दास को बचाइये।"

अगले दिन प्रातः ही भगवान शंकर फटे-पुराने कपड़ों में एक भिखारी का रूप धारण कर आगन्तुक गायक के शिविर में पहुँचे और 'नारायण हरि' कहा। गायक ने भिखारी के पास सारंगी देखकर पूछा 'क्या तुम गाना-बजाना जानते हो?' भिखारी का 'हाँ' में उत्तर पाने पर उसने कहा 'अच्छा, कुछ सुनाओ'। भिखारी बने भगवान शिव ने ऐसा दिव्य गान सुनाया और अनुपम वाद्य बजाया जैसा उसने कभी सुना नहीं था। अतएव मन्त्र-मुग्ध भाव से उसने भिखारी से पूछा 'तुम कौन हो?' शंकरजी बोले-'मैं राजदरबारी सोमदत्त गायक का शिष्य हूँ।' यह सुनकर आगन्तुक गायक चकित हो गया। उसने अपने मन में सोचा कि जिसका शिष्य इतना निपुण है उसका गुरु स्वयं कैसा होगा?' अतः सोमदत्त को परास्त करना असंभव समझकर वह समय से पूर्व ही तुरंत अपने देश को भाग गया और सोमदत्त की रक्षा हो गयी। भोले भंडारी शिव इतने दयालु हैं कि अपने भक्त के लिये उसकी रक्षा के लिये अभक्त के सम्मुख भी भिखारी का वेष धारण करके नाचने-गाने का कार्य बिना संकोच किया। ऐसे दयालु की उपासना कितनी सरल है—

'मूर्ति मृंदा बिल्व दलेन पूजा अयत्न साध्यं बदनाब्ज वाद्यम्।
फलं च यद्यत् मनसोऽभिलाषो स्वरूप विश्वेश्वर एवदेवः॥'

अर्थात्-मिट्टी से ही मूर्ति बन जाती है, वेल के पत्ते से ही पूजा हो जाती है, तथा बिना मेहनत के ही मुँह बजा देने से बाजे का काम हो जाता है। फिर इस पूजा

में जो-जो मन की अभिलाषाएँ होती हैं सब पूरी हो जाती हैं।'

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' भोले भाले कल्याण स्वरूप श्री भगवान शंकर, जो भक्तों के लिये 'भोले' और दुष्टों के लिये 'भाले' हैं, हमारा कल्याण करें।

'ॐ शान्ति! शान्ति! शान्ति!'



(4) श्री शिव तत्व रहस्य

(लेखक श्री विज्ञानानन्द जी सरस्वती)

देवादि देव भगवान शिवजी महत्व अपूर्व है, इसलिये भारतीय वाङ्मय में शिव की महत्ता सर्वत्र वर्णित है। शिव साक्षात् ब्रह्म ही हैं। वह ब्रह्म अस्थूल अर्थात् अदृश्य तत्व होने के कारण किसी भी इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं होता है, अत: वह अदृष्ट है। उसे किसी भी व्यवहार में नहीं लाया जा सकता, इसलिये वह अव्यवहार्य है। जो ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह अग्राह्य है। उपलक्षण आदि से रहित होने के कारण अनुमान के द्वारा भी उसे नहीं जाना जा सकता है, अत: वह अचिन्त्य है। यही कारण है कि शब्दों से अव्यपदेश्य है, अर्थात् वाणी का विषय नहीं है। जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाओं से परे होने के कारण एकात्म प्रत्ययसार है। प्रपंच्च का उपशम, शान्त शिव और सजातीय, विजातीय एवं स्वगत-भेद शून्य केवल एक अद्वैत स्वरूप है। इस प्रकार आत्मा के विषय में तत्व-वेत्ता मनीषी मानते हैं। अत: वही आत्मा है और वही विशेष रूप से जानने योग्य वस्तु है।

'शेते जगदस्मिन्निति शिव:'—इस व्युत्पत्ति से भी शिव का जगत का अधिष्ठान होना सिद्ध होता है, वही परम तत्व शिव अपनी दिव्य शक्तियों से युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्ड का सर्जन, पालन तथा संहार करता है, और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि के रूपों को धारण करता है। इसलिये मुण्डक श्रुति में सविशेष और निर्विशेष ब्रह्म का पृथक-पृथक विशेषणों से कथन किया गया है, यथा—

"यन्तदद्रेश्य मग्राह्यमगोत्रम वर्णमचक्षु: श्रोत्रं तदपाणि पादम्॥" यहाँ उक्त कथन से निर्विशेष ब्रह्म का कथन किया है जो अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षु-श्रोत्रादि से रहित है, पर इससे अग्रिम वाक्य में जो कहा है कि—**"नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा:।"** *(मुण्डक0 1।1।6)*—यहाँ सविशेष ब्रह्म का कथन किया है, इसलिये ब्रह्म को नित्य, विभु, सर्वव्यापक, सूक्ष्म, अव्यय तथा सम्पूर्ण भूतों का कारण बताया गया है। धीर विवेकी पुरुष की उसे सब ओर देखते हैं। ब्रह्म एक ही है, पर माया विशिष्ट हो जाने पर वही

ईश्वर-संज्ञक भी बन जाता है। इसी हेतु से सविशेष और निर्विशेष ब्रह्म का कथन किया गया है।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का मूल तत्व अनेक नहीं, किंतु एक ही माना गया है। ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व की बात कही गई है जो इस प्रकार है–

"नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासी द्रजो नो व्योम परोयत्।" *(ऋग्वेद 10/129/1)* इस मंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व यह परिदृश्यमान जड़ चेतनात्मक जगत नहीं था, कुछ भी नहीं था, एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही विद्यमान था–**'एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म'**। इसी ब्रह्म तत्व से अखिल ब्रह्माण्ड का सर्जन हुआ। यह बात अन्य श्रुतियों में भी कही गयी है, यथा–**"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते. ...'**। *(तै0303/1)*। **"जन्माद्यस्ययत:"**। *(ब्रह्मसूत्र 1/1/2)* अर्थात् ये सब प्रत्यक्ष दीखने वाले प्राणि जगत जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं और अंत में जिसमें प्रवेश करते हैं वही ब्रह्म है।

शिव पुराण धर्म संहिता *(2/15-17)* में भी कहा है–

"इदंदृश्यं यदा नासीत् सदसदात्मकं च यत्।
तदा ब्रह्ममयं तेजो व्याप्तिरूपं च संततम्॥
न स्थूलं न च सूक्ष्मं च शीतं नोषणं तु पुत्रक।
आद्यान्त रहितं दिव्यं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥
योगिनो ऽन्तर हृष्टयया हि यद्ध्यायन्ति निरंतरं।
तद् रूपं सकलं ह्यासी ज्ञानविज्ञानं महत्॥"

"यह सम्पूर्ण परिदृश्यमान जगत ज़ब उत्पन्न नहीं हुआ था, उस काल में सत्-असत् कुछ भी नहीं था, प्रत्यत अव्यक्त रूप में ही था। उस समय निरन्तर व्यातिरूप ब्रह्ममय तेज उत्पन्न हुआ अर्थात् प्रकट हुआ–(ब्रह्माजी अपने मानस पुत्र नारद से कहते हैं कि) हे पुत्र! वह ब्रह्म तेज स्थूल, सूक्ष्म, शीत और उष्ण आदि कुछ नहीं था। वह सत्य रूप से ज्ञानरूप ही था और अनन्त था। समाधिनिष्ट योगीगण समाधि में स्थित होकर योगदृष्टि से यानी दिव्य दृष्टि के द्वारा उस तेज **'तच्छुभ्रंज्योतिषांज्योति:'** का नित्य ही अवलोकन अर्थात् साक्षात्कार किया करते हैं। वही ज्ञान-विज्ञान का देने वाला ब्रह्म तेज प्रकट हुआ।

उस ज्योति रूप ब्रह्मतत्व से इच्छा शक्ति रूपा ब्रह्म शक्ति माया या प्रकृति अव्यक्तावस्था से व्यक्त भाव को प्राप्त हुई। वह माया विशिष्ट चैतन्य स्वरूप ब्रह्म ही ईश्वर-संज्ञक हो जाता है। वह है निर्विशेष। निर्विशेष ब्रह्म ही माया विशिष्ट होकर सविशेष अर्थात् ईश्वर-संज्ञक हो जाता है। वह माया विशिष्ट ईश्वर ही शिव और शक्ति के रूप में विद्यमान हैं। वाह्य रूप में भी जो हम शिव का पूजन-अर्चनादि

करते हैं, उस शिव-लिङ्ग को भी वस्तुत: शिव-शक्ति के ही लिंग (चिन्ह) के रूप में पूजते हैं। इस शिव पुराण विद्येश्वर-संहिता श्लोक 107 में कहा है—

"शिव शक्त्योश्च चिन्हस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते।" अर्थात् ईश्वर और माया का मेल ही शिवलिंग के नाम से कहा जाता है। उसे ही उपासना के लिये परमेश्वर का प्रतीक माना जाता है, और शिवालयों में पूजन किया जाता है। अत: स्पष्ट है कि 'शिव' शब्द का अर्थ ब्रह्म और लिङ्ग शब्द का अर्थ चिन्ह या प्रतीक है। अर्थात् माया विशिष्ट परमेश्वर का ही लिङ्ग के रूप में पूजन होता है।

* लिङ्ग शब्द का अर्थ *

शिव पुराण विद्येश्वर संहिता में 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ इस प्रकार बतलाया गया है—**"लीनार्थगमकं चिन्हं लिङ्गमित्याभिधीयते। भंवृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद्भग: प्रकृति रुच्यते॥ मुख्यो भगस्तु प्रकृति र्भगवान शिव उच्यते॥"** लीन अर्थात् अव्यक्तावस्थापन्न वस्तु के गमक बतलाने वाले चिन्ह को लिङ्ग कहते हैं और भ-अभिवृद्धि को तथा ग-प्राप्त होने वाली वस्तु को भग कहते हैं, उस भग के अधिष्ठाता को भगवान शिव कहते हैं।"

शिवजी की स्थूल मूर्ति को शिव-लिङ्ग कहते हैं, ब्रह्माण्ड इनका लिङ्ग है अर्थात् ज्ञापक है। उस लिङ्ग का ब्रह्मा और विष्णु भी आदि-अन्त न पा सके, यह कथा शिव पुराण में इसलिये कही गई है कि शिव वस्तुत: **"सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म"** ही है। यही तात्पर्य बताना उसका अभिप्राय था। यजुर्वेद शतरुद्रीय अध्याय की इस विषय में पर्याप्त प्रसिद्धि है, अर्थात् अद्वयब्रह्म ही शिव रूप में विद्यमान हैं।

* 'बहुत्व में एकत्व का सिद्धान्त' *

वेद के कथनानुसार 'सत्' वस्तु एक ही है, अनके नहीं—

'इन्द्रं मित्रं वरुणं मग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा बदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु: ॥"

(ऋ0 1 /164 /46)

परंतु ज्ञानी लोग उसे अनेक नाम और रूपों में वर्णित करते हैं, उस एक तत्व को ही 'इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान, यम और वायु कहा जाता है।" अग्नि, इन्द्र, पूषा आदि अनेक नामों से सम्बोधित होने वाला परमेश्वर अनेक नहीं किन्तु एक ही है। तभी पुराणों में कहा है—**"एकं ब्रह्म त्रयो देवा ब्रह्मा विष्णु महेश्वरा:।"** एक ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर अर्थात् शिव के रूप में है।" अन्यत्र भी कहा है—

"स ब्रह्मा स शिव: सेन्द्र: सोऽक्षर: परम: स्वराट।
स एव विष्णु स प्राण: स कालोऽग्नि स चन्द्रमा॥" *(के0 उ0 1 /8)*

अर्थात् वह परब्रह्म परमात्मा ही है, वह शिव है, वह इन्द्र के सहित सम्पूर्ण देवरूप है, वह अविनाशी सर्वोत्कृष्ट और स्वयं प्रकाश है। वही विष्णु है, वह हिरण्यगर्भ रूप प्राण है, वह काल अग्नि और वही चन्द्रमा है। श्वेताश्वतर श्रुति में भी कहा है–

"सर्वान नशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाश्स्यः।
सर्वव्यापी स भगवांस्त स्मात सर्वगतः शिवः॥" *(श्वेता० 3/11)*

"उस परमात्मा के सभी ओर मुख, मस्तक तथा ग्रीवा हैं क्योंकि वह सम्पूर्ण भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है। वह भगवान सर्वव्यापक है। अतः सर्वगत और कल्याण स्वरूप है।" इसलिये उक्त प्रमाणों से यह तो स्पष्ट है कि वैदिक सिद्धान्त में एकत्व में बहुत्व और बहुत्व में एकत्व का सिद्धान्त सुप्रसिद्ध ही है ।

❋ 'भगवान शिव की महिमा' ❋

यजुर्वेद में भगवान शंकर की स्तुति की गई है, यथा–

"नमः शम्भवाय च मयोभवायच नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥" *(16/41)*

"शम्भु-कल्याणकारी, सुख प्रदान करने वाले, भगवान शिव को नमस्कार है। इस मंत्र में स्पष्ट ही शम्भु, शिव, शंकर आदि नामों से शिवजी की स्तुति की गयी है। ऐसी स्थिति में शिवजी ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार अथर्व वेद में भी शिवजी की स्तुति इस प्रकार से की गई है-

"मुखायते पशुपते यानि चक्षूंषिं ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः॥"
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाय आस्याय ते ददभ्यो गन्धायते नमः॥"

(अथर्व० 11/2/5-6)

"हे पाशुपते शिव! आपके मुख को, तीनों नेत्रों को, त्वचा को, रूप को, पृष्ठ देश को, अंगों को, उदर-पेट को, जिह्वा को और आस्यमण्डल आदि समस्त अंगों को नमस्कार है।" उक्त मंत्र में शंकर के वाह्य रूप को भी नमस्कार किया गया है, जिससे शिव की महिमा प्रकट होती है।

शिव वैदिक देवता हैं, शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी-ये पाँच देवता उपासना में प्रसिद्ध हैं, इन्हीं को पंच्चदेव कहते हैं, इसलिये भी शिव को महादेव कहते हैं। शिव का एक नाम 'आशुतोष' भी है-आशु = अर्थात् अति शीघ्र, तोष = यानी प्रसन्न होने वाले और उपासना से शीघ्र तथा अधिक सरलता से प्रसन्न होने के कारण उनका नाम आशुतोष उचित ही है, उनकी लीला कथाएँ अनन्त हैं। अंत में पुष्पदन्ताचार्य की इन पंक्तियों के साथ, इस निबन्ध को विराम दिया जाता है–

"असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे,
सुरतरू वर शाखा लेखनी पत्र मुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥" *(महिम्न स्तोत्र 32)*

"हे ईश! सर्व समर्थ, समुद्र रूपी पात्र = दवात में काले पर्वत के समान कज्जल = स्याही हो, और सुरतरूवर = कल्पवृक्ष की शाखा की लेखनी = कलम हो, तथा सम्पूर्ण पृथ्वी पत्र = कागज हो, इन सबको लेकर साक्षात् सरस्वती भी निरंतर लिखा करें, तब भी हे प्रभो! आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं, तो हम सरीखे छुद्रजन की क्या वसात है? आप अपरिमित गुण वाले हैं।"

"जय शिव शंकर"



(5) शिव तत्व—मीमांसा

(लेखक—अनंतश्री विभूषित श्रीमद् विष्णु स्वामी मतानुयायी श्री गोपाल वैष्णव पीठाधीश्वर 108 श्री विट्ठलेश जी महाराज)

श्लोक— "यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनसासन रताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं नो विद्धातु वाच्छित फलं त्रैलोक्य नाथो हरिः॥"

अखण्ड भूमंण्डल के ऊपर चतुर्दश भुवन पारंगत गोलोक धाम में विराजमान अखिल ब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्द, विग्रह, सर्व शक्तिमान, गुणातीत, निर्विकार चरचर नियन्ता सर्वेश्वर श्री गोपाल देव अद्वितीय परम तत्व हैं। उनकी प्रपंच्च लीला के निर्वाह करने के लिये स्वेच्छाशक्ति प्रकृति के सत्व, रज, तम-इन तीनों गुणों का चोला पहन कर गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु, महेश-संज्ञा से अवतरित हुए तीन देव प्रसिद्ध हैं, सृष्टि लीला के निमित्त ब्रह्मा, पालन लीला के लिये विष्णु और संहार लीला के लिये वे शिव रूप प्रकट हुए हैं। अवतारी पुरुषोत्तम परम पुरुष के अंशावतार-कलावतार-आवेशावतार आदि अनेक अवतार हुए हैं।

इस प्रकार एक ही परब्रह्म ने कीड़ार्थ ही अपने को त्रयी मूर्ति बनाकर प्रपंच्च लीला की है। उन्हीं के अधीन तीनों देव जगत का सृजन, पालन, संहार कते हैं। उनकी प्रेरणा के बिना कोई भी देव कुछ करने में समर्थ नहीं हो पाते। यह बात केनोपनिषद् में स्पष्ट वर्णित है। 'शिव' शब्द में 'इ' कार शक्ति का द्योतक है। शिव

और शक्ति का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है। शिव और शक्ति की अलग करके वैसे ही नहीं देखा जा सकता, जैसे स्वर के बिना व्यंजन का उच्चारण नहीं होता।

आशुतोष शिव की उपासना से वैभव की उपलब्धि होती है, ये सब कुछ देने में समर्थ हैं। भगवान शिव पूज्य देव हैं उनकी अर्चना '**अर्चयशिवम्**' इस शास्त्रीय विधि से सिद्ध है। शिवजी को अभिषेक अत्यन्त प्रिय है–"**अभिषेक प्रिय शिवः**"। रुद्री से अभिषिक्त शिवजी भक्तों की मन कामना पूर्ण कर देते हैं, जगत का उपकार करने के लिये भगवान शिव ने हलाहल विष का पान किया था, इसलिये देवों ने उन्हें 'महादेव' संज्ञा से विभूषित किया। उनकी पिशाचचर्या संसार में वैराग्य की शिक्षा के लिये है। वे हरि के अनन्य भक्त परम वैष्णव हैं। विभूतियों में उनकी गणना भी है–"**वैष्णवानां यथा शम्भुः**"। इसी प्रकार हरि भी अनन्य शैव हैं। वैष्णवाग्रणी शिव ने हरि चरणामृत रूपा गंगा को जटा जूट में बाँध ली तो वे गंगाधर कहलाये।

उनके तीन नेत्र हैं। सोम, सूर्य, अग्नि रूप तीन नेत्र होने से वे त्र्यम्बकेश्वर कहलाते हैं। हरि का ध्यान करने के लिये कैलाश पर्वत के शिखर पर योगमय पीठ के ऊपर आसीन होकर श्रीराम-नाम स्मरण करते हुए वे ध्यान मग्न रहते हैं, श्री शिवजी ने विष्णु सहस्त्रनाम का उपदेश पार्वती जी को दिया था। जिसका पाठ करने से बहुत से भक्त लाभान्वित हुए हैं। शिवजी गोपाल के अनन्य भक्त थे, उन्होंने पुत्रैषिणी गौरी को गोपाल की उपासना करने के लिये प्रेरित किया। तभी उन्हें कृष्ण के अंशावतार अग्रपूज्य श्री गणेश पुत्र रूप से प्राप्त हुए। ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणेश खण्ड में यह कथा है।

वे तन्त्र शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य एवं योग शास्त्र के प्रणेता भी माने गये हैं। उन्हें सभी विद्याओं का आद्या आचार्य कहा गया है–

"**ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः॥**"

जिज्ञासुओं के उपास्य भगवान शिव ज्ञानदाता भी हैं–"**ज्ञानं चेच्छे न्यहेश्वरात्।**" ब्रह्म कपाल से छुटकारा पाने के लिये सर्वत्र तीर्थों में भ्रमण करते हुए जिस आनन्द कानन, अति मुक्त तीर्थ वाराणसी नाम से प्रसिद्ध आदि केशव द्वारा निर्मित काशीपुरी में आकर वे कपाल से मुक्त हुए थे, वह क्षेत्र कपाल मोचन तीर्थ नाम से विख्यात है। काशी केशव की प्यारी पुरी थी, इसे हरि ने हर को दे दिया, और उसमें मरने वालों को तारक ब्रह्म का उपदेश देने को कहा। काशी में वे विश्वनाथ नाम से विराजमान है।

भोले नाथ महादेव की उपासना सर्वाभीष्टदायिनी मानी गयी है, उनकी निंदा करने वाले मायामूढ़ हैं। जीवों के स्वभावानुसार कर्म में अधिकार होता है। इसलिये कोई विष्णु की तो कोई शिव आदि देवों की उपासना करके वांच्छित फल पाते हैं। इसलिये किसी की भी निंदा नहीं करनी चाहिए। सभी देव माननीय होते हैं। शास्त्र

की भी आज्ञा है कि हरि एवं हर में भेद दृष्टि कभी नहीं करनी चाहिए।

"त्रयाणामेक भावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।"

सर्व भूतात्मा ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥" *(श्रीमद् भाग0 4 ।7 ।54)*

दक्ष को समझाते हुए भगवान शिव ने कहा कि हम ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों स्वरूपतः एक ही हैं, और हम ही सम्पूर्ण जीव रूप हैं, अतः जो हमने कुछ भी भेद नहीं देखता वही शान्ति प्राप्त करता है। राजन! मैं ही गुणमयी माया शक्ति के द्वारा त्रिमूर्ति धारण करके विश्व की सृष्टि तथा पालन एवं संहार करता हूँ। अतः भगवान शिव को दोष-दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। उनकी उपासना करके अनेकों महर्षि, राजर्षि, देवर्षि प्रभृति इष्ट सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं।

इसलिये परम कल्याण की इच्छा करने वालों को शिव-पूजन करना अभीष्ट है। उनकी आराधना नर्मदेश्वर-वाणलिङ्ग-पार्थिव पूजा आदि रूप से शास्त्रों में वर्णित है। वैदिक-तान्त्रिक-मिश्रित पूजा विधान द्वारा यथाधिकार शिवोपासना करनी चाहिए। रुद्री द्वारा अभिषेक करने से रोग-निवृत्ति, गृह-पीड़ा, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति आदि फल-श्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। पंच्चायतन पूजा में भी भगवान शिव का विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट है।

विल्व पत्र उन्हें अत्यन्त प्रिय है, प्रिय वस्तु निवेदित करने से आशुतोष प्रसन्न हो जाते हैं। द्वादश ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध ही है। उनका दर्शन-स्पर्श, पूजन, बन्दन, सेवन करने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। भगवान श्रीरामजी ने रामेश्वर ज्योतिर्लिंग की स्थापना कर भगवान शिव की आराधना की है। परमोपकारी सदाशिव को न भजना कृतघ्नता है। अतः वैष्णव हों अन्य मतावलम्बी, वे सभी के द्वारा पूजनीय है। उनकी पूजा पंचाक्षर शिव मन्त्र '**नमः शिवाय**' आदि सभी के लिये उपादेय है। किं बहुना, उनकी महिमा अपार है, उन्हें शतशः नमन है।

(जै शिव)



(6) शिव तत्व मीमांसा

(लेखक—राष्ट्रपति सम्मानित आचार्य श्रीआद्याचरण जी झा)

श्लोक— "नृन्ता वसाने नटराज राजो ननाद ढ़क्कां नव पञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धानेतद् विमर्शे शिव सूत्र जालम्॥"

महाप्रलय के अन्त में नटराजराज शिव ने अपने 'शब्द ब्रह्म' का नाद घोषित किया। जब सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्वतादि कुछ भी नहीं थे, उस समय आकाश से ऊपर अन्तरिक्ष में केवल [illegible] ध्वनि ही शब्द ब्रह्म "ॐ" कार स्वरूप

है। ये चौदह सूत्र प्रतीकात्मक अक्षर ब्रह्म हैं। यहीं से शब्द-ब्रह्म का आविर्भाव हुआ। इन चौदह प्रतिध्वनियों से चतुर्दश भुवनों का एवं चतुर्दश विद्याओं का विकास हुआ। यथा—

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द-तत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"

वाक्य पदीय की इस कारिका के अनुसार यही शब्द ब्रह्म जो शिव-तत्व से निकली है समग्र सृष्टि का कारण है।

शिव-तत्व की मीमांसा करने की पृष्ठभूमि में यह देखना अनिवार्य है कि आखिर यहाँ शिव-तत्व कैसे विश्व कल्याणकारी-अति रहस्यात्मक मूलउत्स है? यह शिव ही क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रादि के रूप में दृश्य हुआ, तथा इन्हीं की विकीर्ण सहस्त्र किरणें शिवजी की बिखरी हुई जटाएँ हैं। ये सूर्य रश्मियाँ ही सभी रस-तत्वों, जीव-जन्तुओं, प्राणियों एवं वृक्ष वनस्पतियों के संरक्षक-संवर्धक हैं। ये ही रश्मियाँ जल ग्रहण, जल वर्षण करती हैं।

फलतः ये सूर्य पर ब्रह्मस्वरूप शिव-तत्व से विकसित हैं—

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" सूर्य ही सबकी आत्मा है।

(यजुर्वेद 7 I42)

"सूर्यो वै ब्रह्म"—सूर्य ही ब्रह्म है *(उपनिषद्)*

"सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वम कल्पयत्" *(यजुर्वेद)* जैसे धाता—सृष्टि कर्ता ने सूर्य, चन्द्रमा की सृष्टि की। ये धाता वही परम शिव हैं, जहाँ से सृष्टि की रचना हुई। उसी परम शिव-तत्व के कार्य-विभाजन, प्रक्रिया में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश हैं। उसी अन्तरिक्ष में नित्य, शाश्वत, शब्द ब्रह्म 'ॐकार' विद्यमान है। वही वाक्-शक्ति है। यथा—

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥"

"अर्थात् लोक में कोई भी ज्ञान शब्द के बिना नहीं होता। सभी ज्ञान शब्दों में ही अन्तभूर्त होकर प्रकाशित या अभिव्यक्त होते हैं।

अब कुछ और गम्भीर, रहस्यपूर्ण वाक्-तत्व, शिवतत्व कुण्डलिनी तत्व की ओर बढ़ें-शब्द-शास्त्र का 'स्फोटवाद' और आगम शास्त्र का 'कुण्डलिनी रहस्य' दोनों एक ही तत्व की ओर इंगित करते हैं। यहाँ थोड़ा सा दोनों का विश्लेषण किया जा रहा है—

परा-पश्यन्ती-मध्यमा-बैखरी, ये वाक् के चार भेद हैं—यथा—

"परा वांग मूल चक्रस्था पश्यन्ति नाभि संस्थिता।
हृदिस्थामध्यमा ज्ञेया बैखरी कण्ठदेशगा॥

वैखर्या हि कृतो नादः परश्रवण गोचरः।
मध्यमायाः कृतो नादःस्फोट व्यंञ्चक उच्यते॥"

अर्थात् मूलाधार चक्रस्थित 'परा' वाक् है, उससे ऊपर 'नाभि' समीपस्थ ध्वनि 'पश्यन्ती' है। उससे ऊपर हृदय में स्थित 'मध्यमा' नाद ध्वनि है एवं बैखरी ध्वनि द्वारा ही वाणी-वाक् का लोगों में विस्तार होता है-आदान प्रदान होता है। इनमें 'परा' एवं 'पश्यन्ती' ये दोनों वाक् शक्ति योगियों द्वारा ही बोधगम्य है। 'मध्यमा' वाक को व्याकरण शास्त्र के अनुसार 'स्फोट' कहा गया है। **'स्फुटति अर्थः यस्मात् स स्फोटः'** अर्थात् जहाँ पहुँचकर अर्थ का ज्ञान सुस्पष्ट होता है। कोई भी शब्द या वाक्य मौन रूप से उच्चरित करें-वे आपको सुस्पष्ट श्रवणगोचर होंगे तथा उनके अर्थ का भी ज्ञान मध्यमा वाद के स्फोट से होगा ।

कण्ठ से निकलने वाली बैखरी ध्वनि तो परस्पर वाक्यों के आदान-प्रदान के लिये है। वे बैखरी शब्द अनित्य है। लेकिन मध्यमा नाद ध्वनि जो स्फोट नाद के नाम से ख्यात है वह नित्य है। यहाँ व्याकरण शब्द-शास्त्र के विशाल स्फोट वाद के विवरण में बजाकर केवल प्रसंग संगति के लिये इनका उल्लेख किया गया है।

अब आये कुण्डलिनी तत्व की प्रक्रिया पर। आगम शास्त्रानुसार-

"मूलाधारात कुण्डलिनी मुत्थाप्य सुषुम्ना मार्गेण हृदयस्थ जीवात्मना सह संयोज्य।

कण्ठस्थवैखरीं स्पृशन् मस्तकस्थिता धोमुखसहस्त्रारदले स्थितेन परमशिवेन संयोजयेत, येन ततोऽतक्षरणं जायते॥

(तन्त्रसार)

"अर्थात् नाभि के नीचे मूलाधार से सर्पिणी के आकार की कुण्डलिनी को योगबल से उठाकर उसे पीठ की रीढ़ के मध्य स्थित इला, पिंगला, सुषुम्ना-इन तीन नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से मस्तक-ब्रह्माण्ड में अधोमुख विकसित सहस्त्रदल कमल के बीच स्थित परमशिव = परब्रह्म में उस कुण्डलिनी को मिला दे। उसके मिलते ही वहाँ से अमृत-क्षरण होने लगेगा जो सृष्टि-तत्व के विकास का कारण है।"

इस तरह गम्भीरतम कुण्डलिनी तत्व एवं कठिनतम शब्द-ब्रह्म तत्व 'स्फोटवाद' दोनों के एक ही सिक्के के दो भाग, दो पहलू हैं।

अब प्रायः यह स्पष्ट हो जायेगा कि शरीरस्थ जीवात्मा परमात्मा संयोग इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना द्वारा जिस कुण्डलिनी से होता है, वही वाक्-तत्व परा, पश्यन्ती, मध्यमा द्वारा स्फुटित होकर शब्द शक्ति के रूप में परिणित हो सृष्टि का कारण बनता है। अतएव-

"शब्द ब्रह्माणि निष्णातः परमब्रह्माभिधीयते।"

शब्द ब्रह्म में निष्पात ही परब्रह्म को प्राप्त करता है, ऐसा सिद्धान्त है। वाक्य पदीय का कथन है–

"इद माद्यं पदं स्थानं सिद्धिसोपान पर्वणाम्।
इयं सा मोक्ष माणानाम जिह्म्या राजपद्धति॥"

"यही शब्द ब्रह्म आद्य-प्रथम स्थान सिद्धियों का सोपान है और यही वाक् शक्ति मोक्ष चाहने वालों के लिये सरलतम राज मार्ग है।"

शिव-तत्व मीमांसा के क्रम में उपर्युक्त संक्षिप्त विरण से यह स्पष्ट होता है कि "शिव तत्व" ही सृष्टि का कारण है। यही शिव ताण्डव नृत्य की चरम परिणिति है। ये सभी बातें तो रहस्यमय हैं हीं साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ आस्थारूपी मृणालतन्तु = (कमल के डंठल के मध्य का रेशा) के समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में जुड़े हैं।

यहाँ भगवत्-गीता के वांगमय तप की ओर भी दृष्टिपात अपेक्षित है—यथा—

"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ *(गीता 117।15)*

इस बचन में मधुरवाणी और सत्य तथा कल्याणकारी वाक्यों का प्रयोग ही सर्वोत्कृष्ट साधना या वांगमय तप कहा गया है। परम-तत्व और मधुरतम वाणी तो भगवान शिव का मंगलमय नाम ही है, जो उच्चारण करते ही समस्त पाप-तापों का शमन कर परम मंगल का विस्तार करती है—

"यद् द्वयक्षरं नाम गिरेरितं नृणां,
सकृत्प्रसंगादधमाशु हन्ति तत्॥" *(श्रीमद्भागवत 4।4।14)*

मात्र इसी शिवनाम के निरन्तर जप से परम-शान्ति, परम कल्याण और सभी साधनाओं की सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है। नाम-जप से सरल और शीघ्र अधिक से अधिक फल देने वाली साधना और कोई नहीं है। इससे परा-भक्ति की प्राप्ति पूर्वक पूर्णतम परम शिव का ज्ञान एवं साक्षात्कार कर भक्त सर्वथा कृतार्थ हो जाते हैं।

❁ शिव महिमा ❁

"ते धन्यास्ते महात्मान कृतकृत्यास्त एवहि।
द्वयक्षरं नाम येषां वैजिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरूदीरितमद्य वै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥
किंचिद्दलेन संतुष्ट पुष्पेणापि तथैव च।
तोये नापि च संतुष्टो महादेवो निरन्तरम्॥

पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः शिवो महाभाग्य करो नृणामिह॥
एको महान् ज्योतिरजः परेशः परावराणां परमो महात्मा।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः॥
निरंजनो, नित्य युत्तो, निराशो, निराधारो नित्यमुक्तः सदैव हि॥"

(स्क0 मा0 के0 अ0 27)

"जिसकी जिभ्या के अग्र भाग पर सदा भगवान शंकर का दो अक्षरों वाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नाम का उच्चारण किया है वे निश्चिय ही मनुष्य रूप में रुद्र हैं, इसमें संशय नहीं है। महादेव जी थोड़ा सा विल्व पत्र पाकर भी सदा संतुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करने से भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान शिव सदा सबके लिये कल्याण स्वरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जल से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिए। शिवजी इस जगत में मनुष्यों को महान् सौभाग्य प्रदान करने वाले हैं ये एक हैं, महान् हैं, ज्योति-स्वरूप हैं तथा अजन्मा परमेश्वर हैं। महात्मा शिव कार्य और कारण सबसे परे हैं। ये व्यवधान शून्य निर्गुण, निर्विकार, निर्वाध, निर्विकल्प, निरीह, निरंजन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधान तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।

(जय सदाशिव भोले नाथ)



❃ भगवान शंकर का प्रणव रूप ❃

(लेखक स्वामी श्री ज्योतिर्मयानन्द जी पुरी)

श्लोक— "नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणव लिङ्गिने।
नमः सृष्ट्यादि कर्त्रे च नमः पञ्चमुखायते॥"

वेदों में भगवान शंकर का विशेष वर्णन है। यजुर्वेद के प्रधान देव भगवान रुद्र हैं।

"नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।" *(यजुर्वेद 16।41)*

भक्तों को मोक्ष रूप सुख के दाता, कल्याण रूप कल्याणकारी शिव को नमस्कार है, इत्यादि। यर्जुवेद में 16वाँ अध्याय रुद्र की महिमा का गान करने के कारण ही 'रुद्राध्याय' के नाम से प्रसिद्ध है।

वेदों के अतिरिक्त अनेक स्मृतियों तथा इतिहास पुराणों में भी शंकर के स्वरूप का अति स्पष्ट वर्णन पाया जाता है और स्कन्द पुराण, लिंग पुराणादि में तो परमात्मा शिव का माहात्म्य तथा स्वरूप अति उत्तम रीति से वर्णित है, उनमें भगवान शंकर के अनेक रूपों तथा माहात्म्य का वर्णन है, परंतु भगवान शिव के प्रणव स्वरूप का वर्णन जैसा शिव पुराण में स्पष्ट तथा विस्तृत रूप से है, वैसा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता, इसलिये यहाँ उक्त पुराण में वर्णित भगवान शंकर के प्रणव स्वरूप तथा उसके माहात्म्य की कुछ आलोचना की जाती है।

एक समय भगवान शंकर सुरम्य कैलाश पर्वत के शिखर पर भगवती पार्वती सहित विराजमान थे, और दीक्षाविधि के क्रम से प्रणवादि महामन्त्रों का देवी से प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कर रहे थे, उस समय भगवती पार्वती पति को प्रसन्न देखकर कहने लगीं—"हे देव! आपने मुझे प्रणव सहित मन्त्र का उपदेश दिया है, इस कारण मैं सर्वप्रथम प्रणव-स्वरूप को जानना चाहती हूँ। हे शिव! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो इसका अवश्य वर्णन कीजिये।" इस प्रार्थना को सुनकर भगवान शंकर पार्वती से कहने लगे।

प्रणवार्थ का परिज्ञान ही मेरे स्वरूप का ज्ञान है। प्रणवस्वरूप मन्त्र सब विद्याओं का बीज है, वह वट बीज के सदृश अति सूक्ष्म तथा महान अर्थ वाला है, वह वेदों का आदि तथा सार है एवं मेरा स्वरूप है। तीन गुण से अतीत, सर्वज्ञ, सर्वस्त्रष्टा, सर्वप्रभु, सर्वगत, शिव-स्वरूप में ही मैं उस ओंकार में स्थित हूँ, तीन गुणों से न्यून-प्राधान्य योग से जगत में जो कुछ वस्तु है वह समष्टि और व्यष्टि रूप से प्रणवार्थ ही है। यह प्रणव सर्वार्थ का साधन है और अक्षर ब्रह्म है।

इस कारण इसी प्रणव से शिवजी सर्वप्रथम जगत का निर्माण करते हैं, जो शिव है वही प्रणव है। जो प्रणव है वही शिव है, क्योंकि वाच्य और वाचक में कोई भेद नहीं होता। इसलिये ब्रह्मर्षि लोग मुझे एकाक्षर ओंकार रूप ब्रह्म कहते हैं। मुमुक्ष को चाहिए कि वह प्रणव को ही सर्वकारण, निर्विकार, निर्णय, शिव स्वरूप समझे। *(कै0सं0अ0 3।19)* भगवान स्वामि कार्तिकेय ऋषी वामदेव से कहते हैं—

"हे वाम देव! आपके स्नेह से मैं आपके ज्ञान के लिये इस श्रुति का तात्पर्य वर्णन करता हूँ आप सुनो! शिव-शक्ति का योग ही परमात्मा है (और वह परमात्मा ही आकाशादि के रूप में परिणित होता है। जैसे उपदान कारण मृत्तिका अपने से अभिन्न घट रूप ग्रहण करती है, जैसे दुग्ध दही के आकर में बदल जाता है, अथवा जैसे रज्जुरूप उपादान अज्ञान के कारण सर्पादि आकार में परिणित हो जाता है, ऐसे ही ॐकार स्वरूप परब्रह्म पञ्चाकार में परिणित होता है।) परमात्मा की परा-शक्ति से चिच्छक्ति उत्पन्न होती है और चैतन्य शक्ति से आनन्द शक्ति, उससे इच्छा शक्ति, इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से पञ्चमी क्रिया शक्ति उत्पन्न हुई है और

इन्हीं शक्तियों से क्रमशः जगत की उत्पत्ति हुई है। चिदानन्द शक्ति से नाद और बिन्दु उत्पन्न हुए हैं, इच्छा शक्ति से 'मकार', ज्ञान शक्ति से 'उकार' और क्रिया शक्ति से 'अकार' स्वर उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार 'प्रणव' की सृष्टि हुई है और इस प्रणव से पञ्च ब्रह्म की तत्पश्चात् कलादि क्रम से आकाशादि की उत्पत्ति हुई है। (कै0 सं0 अ0 16।53-57)।

स्वामी कार्तिकेय ने जिस प्रकार परमात्मा की पञ्चशक्ति से प्रणव के अकारादि पञ्च वर्णों की उत्पत्ति बतलाई है, ऐसे ही स्वयं भगवान शंकर ने भी स्वीय पञ्चमुख से प्रणव की उत्पत्ति बताई है। भगवान शंकर ब्रह्मा-विष्णु से कहते हैं-

"ॐकार मेरे मुख से उत्पन्न होने के कारण मेरे ही स्वरूप का बोधक हैं, यह वाच्य है, मैं वाचक हूँ, यह मन्त्र मेरा आत्मा है, इसका स्मरण करने से मेरा ही स्मरण होता है, मेरे उत्तर की ओर के मुख से 'अकार' पश्चिम के मुख से 'उकार', दक्षिण के मुख से 'मकार' पूर्व के मुख से 'बिन्दु' और मध्य के मुख से 'नाद' उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार पाँचों मुखों से निर्गत हुए इन सबसे 'ॐ' यह एकाक्षर बना है। सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत, स्त्री-पुरुषादि भूत समुदाय एवं चारों वेद-सभी इसी मन्त्र से व्याप्त हैं और यह शिव-शक्ति का बोधक है।" (विद्येश्वर सं0 8।16।20)

इसी प्रसंग में भगवान शंकर ने प्रणव-मन्त्र से '**नमः शिवाय**' मन्त्र की भी उत्पत्ति बताई है, यथा-

"अस्मात पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत्।
अकारादि क्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम्॥"

(विद्येश्वर संहिता 8।16।21)

"अर्थात् इसी प्रणव से पञ्चाक्षर मन्त्र उत्पन्न हुआ है, अर्थात् अकार से नकार, उकार से मकार, मकार से शि, बिन्दु से वा और नाद से यकार उत्पन्न हुआ है।"

❋ "इसका नाम 'प्रणव' क्यों है?" ❋

"प्रो हि प्रकृति जातस्य संसारस्य महोदधे।
नवंनावान्तरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः॥" *(विद्ये0 सं0 अ0 17, श्लोक 4)*

"अर्थात् (प्र) प्रकृति से उत्पन्न हुए संसार सागर के लिये (नवम्) यह प्रणव नौका रूप है, इस कारण पण्डित लोग इसे 'प्रणव' कहते हैं।" अथवा-

"प्रः प्रपञ्चो हि नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः॥ *(विधे0 सं0अ0 17 श्लोक 5)*

"(प्र) प्रपञ्च (न) नहीं है (वः) तुममें, अर्थात् जिसको जपने से संसार नहीं रहता उसका नाम 'प्रणव' है। अथवा-

'(प्र) प्रकृष्ट रूप से (न) मोक्ष को ले जाता है (वः) जपने वाले तुम लोगों

को, इस कारण इस का नाम 'प्रणव' है। अथवा–

"स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च।
सर्व कर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम्॥"

(विधे0 सं0 अ0 17 का श्लोक 6)

"अर्थात् अपना पूजन कराने वाले को, उसके सर्व, कर्म, क्षय कर दिव्य ज्ञान देने से यहाँ 'प्रणव' कहलाता है। अथवा–

"तमेव माया रहिंतं नूतनं परिचक्षेते।"
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्ध स्वरूपकम्॥"

(विधे0 सं0 अ0 17 का श्लोक 7)

नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधा।

"अर्थात् माया रहित होने से प्रणव को 'नूतन' कहते हैं, यह महात्माओं को अत्यन्त नवीन शुद्ध रूप प्रदान करता है। नूतन करने वाला होने के कारण पण्डित लोग सभी इसे 'प्रणव' कहते हैं।

स्वयं शिवजी कहते हैं–**"ब्रह्मादि स्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु। प्राणः प्रणव एवायं तस्मात प्रणव ईरितः॥"** *(कै0 सं0 अ0 3 श्लोक 14)*

"अर्थात् ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों का यह प्रणव ही प्राण है। इससे इसको 'प्रणव' कहते हैं।

❋ 'हंस मन्त्र में प्रणव की प्राप्ति' ❋

प्राणी मात्र श्वाॅस-प्रश्वाॅस में हंस मन्त्र का उच्चारण करते हैं। इस मन्त्र में भी सदा प्रणव का ही जाप होता है, इस बात को भगवान कार्तिकेय स्वामी वामदेव के प्रति कहते हैं–

"प्रतिलोमात्येक हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम्।
तव स्नेहाद् वामदेव सावधान तया शृणु॥
व्यञ्जनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनात्।
ओमित्येव भवेत् स्थूलो वाचकः परमात्मनः॥"

(कै0सं0अ0 16 137-38)

"अर्थात् हे वामदेव! हंस मंत्र के प्रतिलोम (विपरीत) 'सोऽहं' मन्त्र से प्रणव की प्राप्ति के विषय में मैं तुम से कहता हूँ सावधान होकर सुनो। व्यञ्जन 'स' कार और 'ह' कार के वर्जन से 'ॐ' इस प्रकार परमात्मा का वाचक स्थूल अक्षर होता है।

❋ 'प्रणव तारक मन्त्र है' ❋

इस प्रणव मन्त्र को 'तारक' मन्त्र कहा जाता है क्योंकि इस मन्त्र द्वारा प्राणिमात्र

भव समुद्र से तर जाते हैं, भगवान शंकर कहते हैं—

"एनमेवहि देवेशि सर्वमन्त्र शिरोमणिम्।
काश्या महं प्रदास्यामि जीवानां मुक्ति हेतवो ॥"

(कै0सं0अ03 श्लोक 10)

अर्थात् हे देवि! सर्व मन्त्रों के शिरोमणि इस ओंकार को ही मैं काशी में प्राण त्याग करने वाले जीवों को मुक्ति हेतु देता हूँ।" स्वामी कार्तिकेय भी वामदेव कहते हैं—**"एनमेव महामन्त्रं जीवानां च तनुत्यजाम्।**
काश्यां संश्राव्य मरणे दन्ते मुक्तिं परां शिवः ॥" *(कै0सं0अ0 13 श्लोक 62)*

अर्थात् शिवजी काशी में शरीर त्याग करने वाले को मरते समय इसी महामन्त्र का उपदेश देकर मुक्त करते हैं।"

❋ 'प्रणव का विषय' ❋

भगवान शिवजी पार्वती के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—**"विषयःस्यामहं देवि जीव ब्रह्मैक्य भावनात्।"** *(के0सं0अ0 3 136)*

"अर्थात् जीव-ब्रह्म की एकभावना से मैं (शिव) ही इसका विषय हूँ।" स्वामी कार्तिकेय वामदेव से कहते हैं—

"दक्षिणं बाहु मुद्धृत्य शपथं प्रव्रवीमिते।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥
प्रणवार्थः शिवः साक्षात् प्राधान्येन प्रकीर्तिताः।
श्रुतिषु स्मृति शास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च ॥" *(के0सं0अ0 12 15-6)*

अर्थात् मैं दक्षिण भुजा उठाकर शपथ पूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है सत्य है, प्रणव प्रधानतया साक्षात शिव का ही वाचक कहा गया है। यही बात श्रुति, स्मृति, शास्त्र पुराण और आगमों में भी बतलाई गई है।"

'इसके अधिकारी'—"अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढ़म् ॥"

(कै0सं0अ0 3 135)

अर्थात् जिसे दृढ़ वैराग्य हो वही इसका अधिकारी है।"

"शमादि धर्मनिरतो वेदान्त ज्ञानपारगः।
अत्राधिकारी सप्रोक्तो यति र्विगतमत्सरः ॥" *(कै0सं0अ0 3 166)*

अर्थात् शम-दमादि धर्म में निरत, वेदान्त ज्ञान के पारगामी मात्सर्य रहित, यत्नशील उपासक ही इसके अधिकारी हैं।"

'सम्बन्ध'-"जीवात्मनो मया सार्धमैक्यस्य प्रणवस्य च।
वाच्च वाचक भावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः ॥" *(कै0सं0अं0 3 श्लोक 37)*

"अर्थात् प्रणव मेरी और जीवात्मा की एकता का वाचक है, अतः इस एकता

का प्रणव के साथ वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध है।"

"प्रणव का स्थान"-"आधारोमणिपूरश्च हृदयं तु तत परम्।
विशुद्धि राजा चततः शक्तिः शान्तिरितिक्रमात्॥"
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम्॥" *(के०सं० अ० 3।34-35)*

अर्थात् आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धचक्र, आज्ञा चक्र शक्ति और शान्ति-ये कला क्रम से प्रणव के स्थान हैं। हे देवि! शान्ति से जो अतीत है उसको 'परात्पर' कहते हैं।

❃ प्रणव की उपासना विधि ❃

श्लोक— "हृत्पुण्डरीकंविरजं विशोकं विशदं परम्।
अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम्॥
आधार शक्ति मारभ्य त्रितत्वान्तमयं पदम्।
विचिन्त्य मध्य तस्तस्य दहरं व्योम भावयेत्॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन मां त्वया सह।
चिन्तयेन्मध्य तस्तस्य नित्य मुद्युक्तमानसः॥

(के०सं०अ० 3।67-68, 89)

"अर्थात् उपासक, स्वच्छ, शोक रहित, उज्ज्वल, अष्टदल कमल के समान मकरन्द युक्त, कर्णिका से शोभायमान हृदय कमल के मध्य में आधार शक्ति से आरम्भ करके त्रितत्वमय उत्तम पद का ध्यान करके दहर व्योम की भावना करे। ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण कर तुम्हारे साथ मेरा दहराकाश के बीच में सदा उत्कंठा से चिंतन करें।

उपासना का फल—"एवं विधोपासकस्य मल्लोकगति मेव च।
मन्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्य फलं प्रिय॥"

"अर्थात् हे प्रिये! इस प्रकार उपासना करने वाले को मेरे लोक की गति प्राप्त होती है और मुझसे ज्ञान पाकर वह मेरे सायुज्य को प्राप्त हो जाता है।"

जप विधि—"ॐ अस्य श्री प्रणवमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, परमात्मा सदाशिवो देवता, अं बीजम्, उंशक्ति, मंकीलकम्, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास—"शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे, गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि परमात्मने देवतायै नमः। गुह्ये, अं बीजाय नमः। पादयो, उं शक्तये नमः। नाभौ मं कीलकायनमः। संर्वागे, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः॥"

करन्यासः—"अं अङ्गुष्ठायां नमः। उंतर्जनीभ्यां नमः। मंमध्यमाभ्यां नमः। अं अनामिकाभ्यां नमः। उं कनिष्ठि काम्यां नमः। मं करंतलकर

पृष्ठाभ्यां नमः।"

हृदयादिन्यास—"अं ब्रह्मेण हृदयाय नमः। उं विष्णवे शिरसे स्वाहा। मंरुद्राय शिखायै वष्ट। अं ब्रह्मणे कवचाय हुय्। उं विष्णवे नेत्र त्रयाय वौषट्। मं रुद्राय अस्त्राय फट्॥"

ध्यान—"ॐकारं निगमैकवेद्य मनिशं वेदान्त तत्वास्पदंचोत्पन्ति स्थिति नाश हेतुममलं विश्वस्य विश्वात्मकम्।

विश्वत्राण परायणं श्रुति शतैः सम्प्रोच्यमानं प्रभुं सत्यं ज्ञानमनन्तमूर्तिममलं शुद्धात्मकं तंभजे॥"

नमस्कार—"ॐकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।

कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥"

प्रणव जप का फल—महर्षि पतंजलि ने कहा है—**"ततः प्रत्यकचेतनाधिगमोऽप्यन्तरायामावश्च॥"**

"अर्थात प्रणव के जप से आत्म—स्वरूप की प्राप्ति तथा सारे विघ्नों का नाश होता है।"

भगवान शंकर ब्रह्मा-विष्णु से कहते हैं—**"तन्तम्मन्त्रेण तत्सिद्धिः सर्व सिद्धिरितो भवेत॥"** *(वि० सं० अ० 10।23)*

"अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिध्यति। सकला मन्त्रराजानः साक्षाद् भोगप्रदाः शुभाः॥"

अर्थात् उस मंत्र से वह सिद्धि होती है, किन्तु प्रणव मंत्र से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यह सकल मंत्रों का मूल है और भोग मोक्ष दोनों का देने वाला है।

वेद के आदि में तथा दोनों काल के संध्या वंदन में भी ॐ कार का प्रयोग करना चाहिए। नौ करोड़ जप करने से पुरुष शुद्ध हो जाता है, फिर नौ करोड़ जप करने से पृथ्वी तत्व का जप होता है, इसी प्रकार नौ-नौ करोड़ से क्रमशः जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्व का जप होता है। पश्चात नौ-नौ करोड़ से क्रमशः पंच्च तन्मात्राओं तथा अहंकार तत्व का जय होता है। नित्य सहस्त्र मंत्र जपने से पुरुष शुद्ध होता है, फिर इससे अधिक जप अत्यन्त ज्ञान की सिद्धि के लिये होता है। इस प्रकार 108 करोड़ जप करने से पुरुष प्रबुद्ध होकर शुद्ध योग को प्राप्त होता है और शुद्ध योग से निःसंदेह जीवनन्मुक्त हो जाता है। *(विधे० सं० अ० 17।18-25 तक)*

प्रणव रूप शिव का सदा जप और ध्यान करने वाला महायोगी समाधि में स्थित होकर शिवरूप हो जाता है।

'शिव एव न संशयः'



❋ सदाशिव तत्व ❋

(लेखक अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठाधीश्वर स्वामी श्री निश्लानंद सरस्वती जी महाराज)

"शान्तं शिवम् द्वैतम्" (माण्डूक्य 7)। परमात्मा तत्व सदा कल्याण रूप होने से 'सदाशिव' कहा जाता है। अचिन्त्य लीला शक्ति के द्वार से शिव-तत्व स्वयं ही जगत का निमित्त और उपादान कारण सिद्ध होता है। जगत रज्जु = सर्पादि तुल्य अतात्विक है। यही कारण है कि शिव-तत्व जगत का विवर्तोपादान निमित्त कारण कहा जाता है। उत्पत्ति, स्थिति, संहृति-निग्रह (उत्क्रमणादि के द्वारा जीवों का नियमन) और अनुग्रह रूप पञ्चकृत्यों का वह निर्वाहक है। पृथ्वी से उत्पत्ति, जल से स्थिति, तेज से संहृति, वायु से तिरोभाव (निग्रह) और आकाश से अनुग्रह लीला का परिज्ञान होता है। 'ब्रह्मा' (हिरण्यगर्भात्मकसूर्य) उत्पत्ति नामक कृत्य के निर्वाहक हैं। 'विष्णु' स्थिति नामक कृत्य के निर्वारहक हैं। 'रुद्र' संहार-नामक कृत्य के निर्वाहक हैं। शक्ति (सदाशिव) अनुग्रह नामक कृत्य के निर्वाहक हैं। पञ्चकृत्य के निर्वाहक पञ्चदेव रूप से सदाशिव-तत्व ही अभिव्यक्त है।

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—ये सदा शिव की पञ्चमूर्तियाँ हैं। ईशान मूर्ति (ऊर्ध्व) मध्य मुख तुल्य है। तत्पुरुष मूर्ति पश्चिममुख तुल्य है। अधोर मूर्ति दक्षिण मुख तुल्य है। वामदेव मूर्ति उत्तर मुख तुल्य है। सद्योजात मूर्ति पूर्वमुख तुल्य है। 'ईशान' क्षेत्रज्ञ को व्याप्त करने वाली मूर्ति है। 'तत्पुरुष' अव्यक्त को व्याप्त करके स्थित है। 'अघोर' बुद्धि (महत्व) को व्याप्त करके स्थित है। धर्मा धर्म, ज्ञानाज्ञान, रागा-राग और ऐश्वर्यानैश्वर्य-ये अष्ट बौद्ध प्रत्यय हैं। 'वामदेव' अहं को व्याप्त करके स्थित है। 'सद्योजात' मन को व्याप्त करके स्थित है, पुनः ईशानं आकाश, शब्द तन्मात्रा श्रवणेन्द्रिय और वागेन्द्रिय को व्याप्त करके स्थित है। 'तत्पुरुष' वायु स्पर्श तन्मात्रा, त्यागेन्द्रिय और हस्तेन्द्रिय को व्याप्त करके स्थित है। 'अघोर' अग्नितत्व, रूप तन्मात्रा नेत्रेन्द्रिय और पादेन्द्रिय को व्याप्त करके स्थित है। 'वामदेव' जल, रसतन्मात्रा रसनेन्द्रिय और पायु (उपस्थ) को व्याप्त करके स्थित है। 'सद्योजात' पृथ्वी, गन्ध तन्मात्रा, घ्राणेन्द्रिय तथा उपस्थ (गुदा) को व्याप्त करके स्थित है। इस प्रकार सांख्योक्त क्षेत्रज्ञ प्रकृति, महत्, अहं, मन, दशविध इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म स्थूल दशविध भूतरूप पच्चीस तत्वों को व्याप्त कर सदा-शिव भगवान प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार स्व प्रकाश सर्वाश्रय का नाम 'सदाशिव' है।

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव—ये सदाशिव की प्रसिद्ध अष्ट मूर्तियाँ हैं। शिव की 'शार्वी' मूर्ति पृथिवीमयी है। 'भावी' मूर्ति जलमयी

है। 'रौद्री' मूर्ति तेजोमयी है। 'औग्री' मूर्ति वायुमयी है। 'भैमी' मूर्ति आकाशमयी है। 'पशुपति' मूर्ति क्षेत्रज्ञ रूपा है। 'ईशान' मूर्ति सूर्य रूपिणी है। महादेव मूर्ति चन्द्रमयी है। सोम, सूर्य और अग्नि—ये तेज के ही प्रभेद हैं। शेष पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और आत्मा (क्षेत्रज्ञ पशुपति) ये पञ्चमूर्तियाँ हैं। इस प्रकार क्षेत्रज्ञ तथा पञ्चभूत रूप से सदाशिव तत्व की अभिव्यक्ति है।

"शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, भवाय जलमूर्त येनमः, रुद्राय अग्नि मूर्तये नमः, उग्राय वायुमूर्तये नमः, भीमाय आकाश मूर्तये नमः, पशुपतये यजमान मूर्तये नमः, महोदवाय सोम मूर्तये नमः, ईशानाय सूर्य मूर्तये नमः ॥"

"भूमिरापस्तथा तेजोवायुर्व्योम च चन्द्रमाः।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः ॥"

(नारायण पूर्वतापिन्युपनिषद)

"ॐमहादेवाय नमः, ॐ महेश्वराय नमः, ॐ शूलपाणिने नमः, ॐपिनाक धृषे नमः" आदि शिव के बहुत से अष्टाक्षर मंत्र हैं। ये अष्टमूर्ति और अष्ट विभागापन्न प्रणव के द्योतक हैं। अकार, उकार, प्रकार, विन्दु, नाद, शल्द, काल और कला से युक्त 'प्रणव' 'दीर्घ' प्रणव है। दीर्घ प्रणव के अकार, उकार, मकार, नाद, बिन्दु, कला, अनुसंधान और ध्यान—ये अष्ट प्रभेद भीमान्य हैं। इनमें 'अकार' सद्योजात है। 'उकार' वामदेव हैं। 'मकार' अघोर हैं। 'नाद' तत्पुरुष है। 'बिन्दु' ईशान है। 'कला' व्यापक है। 'अनुसंधान' नित्य है। 'ध्यान' ब्रह्म स्वरूप है। इस प्रकार सर्वव्यापक 'अष्टाक्षर' है।

"अकारोकारमकारनाद बिन्दु कलानुसंधानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति ॥" *(नारायणपूर्णतापिन्युपनिषद)*

मकार पर्यन्त जो प्रणव है वह अ, उ, म्-इन तत्वों से युक्त है, इसी को 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और 'म' कार इन दोनों की एकता है। इस प्रकार शिवात्म तत्व का अभिव्यंजक प्रणव त्रितत्वात्मक और अष्ट तत्वात्मक है। 'शिव-तत्व' शिव है। शिव में 'श' शयन और सुख वाचक है। सुख शयन सुषुप्ति अथवा समाधि है। सुषुप्ति और समाधि में दैहिक ताप का वारण और क्षालन होता है। 'इ' अभीष्टोपलब्धि रूप काम है। अभीष्टोपलब्धि से भौतिक ताप का वरण होता है। 'व' अमृत बीज, वरुण और विश्लेष है। वरुणादि अधिदेव है। उनके अनुग्रह से दैविक ताप का विश्लेष = वारण होता है। सर्वात्म स्वरूप शिव-तत्व विज्ञान से समाधि सिद्धि अभीष्टोपलब्धि और दैवानुग्रह की प्राप्ति सदा सम्भव है। इस प्रकार त्रिविध तापों की शान्ति शिवस्वरूप वास्तव वस्तु के परिशीलन से सहज सम्भव है। इसी प्रकार 'शकार' का अर्थ है नित्य सुख एवं आनन्द। इकार का अर्थ है पुरुष और वकार का अर्थ है अमृतस्वरूपा शक्ति। इन सबका सम्मिलित रूप

'शिव' है। अतः शिव को आत्म-स्वरूप जानकर उनकी अर्चना करें—

"शं नित्य सुखमानन्द मिकारः पुरुषः स्मृतः॥
वकारः शक्तिरमृतं मेलनं शिव उच्यते।
तस्मादेवं स्वमात्मानं शिवं कृत्वार्चयेच्छिवम्॥ *(शि०पु०विधे०सं० 18)।*

सदाशिव का 'शिव' यह स्वरूप परक नाम है, 'शंकर' यह स्वभाव परक नाम है। और 'प्रलयंकर' यह प्रभाव परक नाम है। जिस प्रकार सूर्य प्रकाश स्वरूप हैं, अतः प्रकाश विकीर्ण करना उनका स्वभाव है तथा तम और शैत्यका वारण उनका प्रभाव है उसी प्रकार विश्वेश्वर महादेव शिवस्वरूप है कल्याण स्वरूप होने से वे शंकर हैं, प्राणियों का सदा ही मंगल करते रहना उनका स्वभाव है, मंगलप्रद होने से वे अमंगलों के विध्वंशक प्रलयंकर हैं, अमंगल ध्वंश शिव का प्रभाव है।

सदाशिवतत्व के मुख्यतः तीन रूप हैं (1) कार्य ब्रह्म (2) कारण ब्रह्म और (4) कार्यकारणातीत परब्रह्म। मृद्घटादिन्तुष्यस्थूल-सूक्ष्मोपहित चित्पदारर्थ 'कार्य ब्रह्म' है। घटाद्युत्पादिनी शक्त्युपहित मृतुल्य मायोपहित चित्पदार्थ 'कारण ब्रह्म' है। केवल मृतुल्य चित्पदार्थ कार्य-कारणातीत परब्रह्म है।

जिस प्रकार तरंगमाला का उदयस्थान, निलय (निवास) स्थान और विलय स्थान जल है उसी प्रकार स्थावर जंगमात्मक जगत के उदयस्थान निलय स्थान और विलय स्थान शिव हैं यही कारण है कि शिव स्वयं लिंग हैं, उनका वह्निधूमवत गमक (अनुमापक) होने से स्थावर जङ्गमात्मक जगत भी लिङ्ग है।

"सूक्ष्मत्वात् कारणत्वाच्चलयनाद् नमनादपि।
लक्षणात परमेशस्त्र लिङ्गमित्य मिधीयतो।" *(योग शिखोपनिषद 2।10)*

"शिवएवस्वयं लिङ्ग लिङ्ग गमक मेवहि।
शिवेन गम्यते सर्वं शिवोनान्येनगम्यते॥
अतः सत्यचिदानन्दलक्षणः परमेश्वरः।
स्वयमेव सदालिङ्गं नलिङ्गतस्य विद्यते॥"

(सूत संहिता 4।27-28)

सदाशिव का सगुण साकार स्वरूप भी इतना अद्भुत है कि उस पर सभी मोहित होते हैं। मनोहर त्रिनयन, बालचन्द्र तथा जटामुकट और उस पर दुग्ध तुल्य स्वच्छ कृति गंगधारा मन को हठात् हरती है। वे त्रिदेह मुक्त होने से दिगम्बर है। ज्ञानाग्निदग्ध जगत जो कि अकिंचित्कर है उसी को लीलापूर्वक अंगराग बनाने वाले शिव भस्माङ्ग रागी हैं। सबके विश्रामस्थल शब्द ब्रह्म और परब्रह्म रूप शिव अक्षय्यवटतुल्य हैं। सांख्य, योग, वेदान्त तीन अद्भुत जटाएँ शिरोभूषण हैं, अग्नि, सूर्य, चन्द्र सदा शिव भगवान के त्रिनेत्र हैं। वैराग्य बोध, उपरतिरूप त्रिशूल को धारण करने वाले पशुपति वासनाक्षय, मनोनाश और अज्ञान विध्वंस कर जीवों का

उद्धार करते हैं। अहं का लय सुषुप्ति है। अहं का विस्मरण 'समाधि' है। अहं का बाध 'मुक्ति' है। सुषुप्ति, समाधि, मुक्ति रूप श्मशानों स्वप्रकाश सदा शिव का सदा निवास है। शान्ति, दान्ति, दुःखनिवृत्ति, सर्वकामावाप्ति, कृतकृत्यता, प्राप्त प्रातव्यता, ज्ञात-ज्ञातव्यता आदि शिवगण हैं। ऐसे सदाशिव की अर्चना पूजा अवश्यकीय है।

'जय सदा शिव'



❋ शिव तत्व और शक्ति तत्व अर्थात् साम्ब सदा शिव ❋

(लेखक—श्री सुन्दर लाल नाथालाल जोशी)

'शिव तत्व' अर्थात् विश्वमात्र का मूल तत्व परम प्रकाश। जिस प्रकार अग्नि तत्व विभु रूप से शमी, अरणि आदि पदार्थों में गुप्त है, उसी प्रकार शिव-तत्व भी चित्-स्वरूप में प्रकाशमय होते हुए भी विश्रमात्र में निगूढ़ है। यह निगूढ़ त्रिति-शक्ति अर्थात् एक दिव्य अप्रकट बल (Divine Petentraetial Energy) है जिस प्रकार उत्तर और अधर अरणि के मंथन के द्वारा गुप्त अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार शिव-तत्व के 'तपस्' के प्रभाव से उसमें मंथन शुरू होता है और आद्याशक्ति महाविस्फुलिंग के रूप में प्रकट होती है।

शिव-तत्व की तपःकला-आत्म परामर्श की वृत्ति-स्वरूपोन्मुखी वृत्ति के उद्भव को विमर्श अथवा शक्ति प्राकट्य कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहिये तो निगूढ़ अप्रकट बल (Potential Energy) क्रिया रूप में प्रकट बल रूप में शक्ति त्वेक रूप में प्रकट (Kinetic) होता है। शिव तत्व प्रकाश ज्ञान स्वरूप है। उसमें स्वरूप जानने की इच्छा होती है, आत्म परामर्श का संकल्प उद्भूत होता है। इस संकल्प के उद्भव के साथ 'तपस' तीव्र बनता है (सएक्षात) और विमर्श रूप में शक्ति स्फुरित होती है। शक्ति अर्थात इस सविता-जगत्र सविता का वरेण्य भर्ग। सविता ही शिव तत्व है, वरेण्य भर्ग ही सावित्री शक्ति तत्व है। शिव तत्व परिपूर्ण अग्नि है शक्ति उस अग्नि की प्रज्वलितास्था का एक महाविस्फुलिंग है अर्थात शिवचित है, शक्ति चैतन्य है शिव और शक्ति अविभक्तरूप से भजनीय है।

शिव शक्ति एक ही तत्व के दो महास्वरूप हैं। चित् के बिना चैतन्य नहीं, चैतन्य के बिना चिति अनुभव में नहीं आती। चिति प्रकाश-पराज्ञान, प्रकाश के बिना जगत के किसी पदार्थ की प्रतीति नहीं होती। चिति प्रकाश के बिना चैतन्य भी

क्रियाशील अवस्था में आ नहीं सकता। जैसे चिति के बिना चैतन्य नहीं, वैसे ही शिव के बिना शक्ति भी नहीं। ऐसा होने से चैतन्य के बिना, तपस्-ईक्षणा-आत्मपरामर्श अथवा विमर्श शक्ति के बिना, परम प्रकाश शिव, स्वयम्भू-ज्योति जिसका लिङ्ग अर्थात् चिन्ह है वह ज्योतिर्लिङ्ग रूपचिति, प्रकाश रूप शिव-अनुभव गम्य नहीं होता।

शिव के स्वरूप को समझने के लिये 'शक्ति' की उपासना अनिवार्य है और 'शिव' के सान्निध्य के बिना 'शक्ति' की उपासना भी नहीं फलती, साध्य नहीं बनती। इसलिये मन्त्रशास्त्र में भी साधकों ने 'शक्ति' की साधना के लिये 'शिवालय' में 'ज्ञाननिष्ठा' में साधन सिद्ध करने का आदेश किया है। तान्त्रिक भी इस परम रहस्य का ही अनुसरण करते हैं। शिव और शक्ति अविभक्त रूप में ही भजनीय हैं। साम्ब सदाशिव के रूप में ही चिन्तनीय हैं, अर्द्धनारी-नटेश्वर रूप में ही व्यवहरणीय हैं। साम्ब सदाशिव ही विश्व रूप में विराजते हैं, प्रकाश और विमर्श रूप में विलसित होते हैं।

विश्वमात्र चिन्मय है। चिति का प्रकटरूप चैतन्य है। चिति निष्कल स्वरूप में शिव-तत्व हैं, सकल स्वरूप में शक्ति रूप है। निष्कल रूप में निरूपाधिक चिति-तत्व सकलरूप में सोपाधिक चैतन्य रूप में भासित होता है। चिति-चैतन्य बनता है। शिवरूप-अध्यात्म शक्ति रूप अधिदैव बनकर विलास करता है। जगत् मात्र साम्ब सदाशिव की लीला है, अर्द्धनारी-नटेश्वर की नृत्य-कला है।

वस्तुतः चिति चैतन्य में अभेद है। शिव ही जीव है, जीव और शिव में अभेद है।

शिव-शक्ति की जय हो! साम्ब सदाशिव को नमस्कार हो। "ॐ नमः शिवाय शक्ति रूपाय"

धन्य-धन्य—"सत्य सनातन साधन से, जन जो अति पातक ही न हुआ।
और महागुण सागर का, जिसका मन मंजुल मीन हुआ॥
पाकर के वरदान अहो, जग में नहिं दुर्बल-दीन हुआ।
है कपि 'पुष्कर' धन्य वही, पग में शिव के लवलीन हुआ॥"



❋ शिव और शक्ति ❋

(लेख श्रीयुत् स्वामी रामदासजी)

शिव और शक्ति—ये परम शिव अर्थात् परम तत्व के दो रूप हैं। शिव कूटस्थ तत्व है और शक्ति परिणामिनी है। विविध वैचित्र्य पूर्ण संसार के रूप में अभिव्यक्त

शक्ति का आधार एवं अधिष्ठान शिव है। शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा है। शक्तिदृश्य, चल एवं नाम रूप के द्वारा व्यक्त सत्ता है। शक्ति नटी शिव के अनंत शान्त एवं गम्भीर वक्षःस्थल पर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का रूप धारण कर तथा उनके अन्दर सर्ग, स्थिति एवं संहार की त्रिविध लीला करती हुई नृत्य करती रहती है।

अब प्रश्न यह होता है कि परमात्मा के इन दोनों स्वरूपों के सर्वोच्च एवं व्यापक ज्ञान के द्वारा मुमुक्षु को मोक्ष एवं अक्षय सुख की प्राप्ति किस प्रकार होती है?

शिव का साक्षात्कार करना व्यष्टि भाव को लाँवकर ऊँचा उठना है। इस व्यष्टिभाव के अन्दर उपाधियुक्त एवं व्यवहारिक जीवन का ज्ञान रहता है, जो अज्ञान एवं दुःख का कारण है। शक्ति के चरणों में आत्म समर्पण करना ही शिव के साक्षात्कार का साधन माना गया है। यहाँ आत्म समर्पण का अर्थ है देहाभिमान अथवा अहं बुद्धि से सर्वथा ऊपर उठ जाना। जीवन के सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों ही रूपों में जो कुछ भी क्रियाएँ परिवर्तन एवं चेष्टाएँ होती हैं, सब शक्ति के ही कार्य हैं। और यह शक्ति वह ईश्वरीय तत्व है जो समस्त चराचर जगत में व्याप्त है तथा जो स्वयं जगत के रूप में अभिव्यक्त है। इस तत्व के समझने से यह अवस्था प्राप्त होती है।

आत्म समर्पण अर्थात् व्यष्टि बुद्धि को शिव के समष्टि तत्व में विलीन कर देने से जब आत्मा को परमात्मा के शिव तत्व का साक्षात्कार हो जाता है तब उसे परम शिव के पूर्ण स्वरूप की समग्ररूपेण उपलब्धि होती है जो शिव और शक्ति दोनों हैं और दोनों से परे भी है। तब जीव व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के तत्वों के ज्ञान तथा उनके संयोग में निरतिशय स्वतंत्रता का अनुभव करता है और अमृतत्व के आनन्द का उपभोग करता है।

इस परम तत्व-परम शिव के दुरारोह पद को प्राप्त करने के लिये साधक पूजा आराधना, यज्ञ, तप एवं उनके परिणाम स्वरूप दिव्य मूर्तियों के दर्शन यह सब कुछ करता है। मनुष्य की आकांक्षा एवं पुरषार्थ का यह चरम फल है। इस दुरारोह एवं अनिवर्चनीय पद पर आरूढ़ होकर भगवत् प्राप्त पुरुष अपने आत्मा के अन्दर सबके आत्मा को सबके शरीर को अपने शरीर में देखता है। वह उस परम तत्व के अन्दर अव्यक्त शिव एवं व्यक्त शक्ति दोनों को सर्वथा अभिन्न रूप में देखता है।

यह स्पष्ट है कि जीव के लिये पहली सीढ़ी शान्त, स्थिर, शिव तत्व के अगाध समुद्र में गहरा गोता लगाना तथा उसके अन्दर अपने को विलीन कर देना है। क्योंकि उस निर्लेप, निर्विकार सत्ता-शिव की वास्तविक एकता का अनुभव किये बिना प्रत्यक्ष में भिन्न एवं विरोधी प्रतीत होने वाले सारे पदार्थों की एकता एवं अभेद का बोध सम्भव नहीं है।

शिव और शक्ति एक दूसरे से उसी प्रकार अभिन्न है, जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका ताप तथा दूध और उसकी सफेदी। शिव की आराधना शक्ति की आराधना है और शक्ति की उपासना शिव की आराधना है। इन दो परस्पर विरोधी एवं प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होने वाले तत्त्वों, शिव और शक्ति की विषमता एवं विरोध का सामञ्जस्य ही परमात्म तत्व का रहस्य है। इस पहेली को समझना अथवा सुलझाना ऊँची से ऊँची बुद्धि वाले मनुष्य की भी शक्ति के बाहर है। इस रहस्य को समझना स्वयं रहस्यमय बन जाना है।

"जानत तुमहिं तुमहिं है जाई।"

(जै शिव शक्ति)



❃ मंगलमूर्ति भगवान सदाशिव ❃

(स्वामी श्री ओकारानन्द जी, सदस्य बदरी केदार मंदिर समिति)

श्लोक– "याते रुद्र शिवा तनूर धोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥"

(श्वेताश्वतरोपनिषद 3/5)

"हे रुद्र देव! आपकी जो भयानकता से शून्य तथा पुण्य कर्मों से प्रकाशित होने वाली कल्याणमयी सौम्य मूर्ति है, जिसका दर्शन करके मनुष्य परम आनन्द में मग्न हो जाता है। हे गिरि शन्त अर्थात् पर्वत पर निवास करते हुए समस्त लोकों को सुख पहुँचाने वाले परमेश्वर! उस परम शान्त मूर्ति से ही कृपा करके आप हम लोगों की ओर देखिये। आपकी कृपा दृष्टि पड़ते ही हम सर्वथा पवित्र होकर आपकी प्राप्ति के योग्य बन जायेंगे।"

सृष्टि के समस्त उद्योगों का उद्देश्य सुख की प्राप्ति है। भगवत्कृपा का अवलम्ब लेने वाले पुरुषार्थी एवं मनस्वी के लिये विजय प्राप्त करना सहज ही है। यदि मानव चतुर्विध पुरुषार्थ के लिये निष्ठापूर्वक प्रयत्नशील रहे तो उसे सुख की खोज करने की आवश्यकता नहीं है, सुख तो स्वयं उसका अनुगामी बन जायेगा। चतुर्विध पुरुषार्थ का प्रथम सोपान है 'धर्मसम्पादन'। भगवान सदाशिव धर्म की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, और उनके विधिवत पूजन से जीवन में कभी दुःख की अनुभूति नहीं होती–

"भव भक्तिपरा ये च भवप्रणत चेतसः।
भव संस्मरण ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥" *(शिव पुराण रु०सृ०खं०)*

"जो भगवान शिव की भक्ति में तत्पर हैं, जो मन से उन्हीं के शरणागत हैं, उन्हीं

का चिंतन करते हैं वे कभी दु:ख-भागी नहीं होते। श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास के अनेक स्वर्णिम पृष्ठ चन्द्रार्ध भूषण के अनादि, अनन्त, परमोपास्य, परात्पर शोक सन्ताप निवारक, परमैश्वर्यशाली होने के प्रमाण से भरे पड़े हैं। मंगल की आकांक्षा रखने वाले जनों को शिव की उपासना अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि वे अद्वितीय हैं–

"नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्व समा गतिः।
नास्ति शर्व समो दाने नास्ति सर्व समो रणे॥" *(महाभारत, अनु0 15/11)*

चतुविधि पुरषार्थ का अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' है। जिसकी कामना हेतु सिद्ध, योगी, विरक्त, सन्यासी, गृहस्थ नर-नारी सभी इसीलिये प्रयास करते रहते हैं कि कैसे हमें इस भव-बन्धन से छुटकारा मिले? जीवन भर का समस्त भौतिकवादी प्रयास बिना मोक्ष के निष्फल हो जाता है और–"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं" का अनवरत चक्र चलता ही रहता है। मानव जैसी श्रेष्ठ योनि को पाकर भी इस परम पुरुषार्थ की प्राप्ति (मोक्ष) के बिना जीवन नाना विध क्लेशों में स्वयं को आवृत कर लेता है। परम कष्टहारी वृषभ ध्वज की शरण आवागमन के इस चक्कर से छुटकारे का सरलतम उपाय है। शिवपुराण *(वा0सं0पृ0खं0 4/55)* में कहा गया है–

"ब्रह्मणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत् स्वयम्।
यो देवस्त महं बुद्धवा स्वात्म बुद्धि प्रसादतः॥
मुमुक्षुरस्मात् संसारत् प्रपद्ये शरणं शिवम्॥"

तात्पर्य यह है कि 'ब्रह्म का निर्माण कर उन्हें श्रुतियों के ज्ञान से समलंकृत करने वाले तथा स्वरूप विषयक बुद्धि को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर शिव को जानकर मैं इस घोर संकटमय संसार बंधन से मुक्त होने के लिये उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

मानव जब स्वयं काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की विषैली वृत्तियों से आवृत होकर अमानवीय कृत्य करने लगता हे तो वह परिवार, समाज और देश के लिये विषधर से भी भयंकर बन जाता है और इस असह्य बिष से बचने का कोई उपाय नहीं रह जाता। सागर मंथन का आख्यान इस बात की पुष्टि करता है कि देव तथा दानवों के समक्ष भी यही स्थिति पैदा हो गयी थी–**"भीता प्रजा दुद्रुबुरंग सेश्वराअरक्ष्यमाणाः शरणं सदा शिवम्॥"** *(श्रीमद्भाग0 8/7/19)*

इस असाध्य विष से बचने का कोई उपाय भी तो नहीं था, प्रजापतियों ने जब पिनाकपाणि से प्रार्थना की तब उन्होंने समीप में बैठी अपनी प्रिया सती से कहा–'देवि! बड़े खेद की बात है कि समुद्र मंथन में निकले कालकूट से प्रजा पर अकारण विपदा का पहाड़ टूट पड़ा है, ये बेचारे अपने प्राणों की रक्षा चाहते हैं। इस विषय परिस्थिति में मेरा कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ–

"ऐतावान् हि प्रभोरर्था यद् दीनपरिपालनम्" शक्ति सामर्थ्यवान जीवन तभी सफल है, जब वह दीन-दु:खियों की रक्षा का संबल करे।

"प्राणै स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गु रै।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्म मायया॥" *(श्रीमद्भाग 08 17 139)*

"सज्जन पुरुष अपने अनित्य देह की बलि देकर भी दूसरे के प्राणों की रक्षा करते हैं। कल्याणि! स्वनिर्मित मोहपाश में आबद्ध प्राणी माया से मोहित होकर परस्पर बैर की गाँठ बाँधे बैठे हैं। अत: देवि! मैं तत्काल इस विष का भक्षण करता हूँ, जिससे मेरी प्रजा का मंगल हो।"

गंगावतरण का आख्यान भगवान शंकर शेखर की लोकोपकारि महिमा का ही यशोगान है–

हिमालय की ज्येष्ठ कन्या हैमवती गंगा को मृत्युलोक में जाने का आदेश तो ब्रह्मा ने दे दिया, पर गंगा के स्वर्ग से गिरने का वेग एक समस्या बन कर रह गयी। ब्रह्मा ने स्पष्ट कहा–

"गङ्गायाः पतनं राजन् पृथिवी न सहिष्यते।' राजन! गंगा के गिरने का वेग पृथ्वी नहीं सहन कर सकेगी। केवल त्रिनेत्रधारी शंकर ही में इसके प्रचण्ड वेग को रोकने की क्षमता है।

भगवान शंकर की अनुकम्पा ने जिस धरा को गंगा जैसा उद्भुत उपहार प्रदान किया, उस औढ़रदानी की प्रशस्ति में जितना कुछ कहा जाय, अल्प ही होगा।

भगवान आशुतोष तो वस्तुत: बाल्मीकीय रामायण के मुख्य प्रतिपाद्य ही हैं। रामकथा के प्रथम वक्ता के रूप में बाल्मीकीय रामायण के अनेक सर्ग उनकी प्रशस्ति में भरे पड़े हैं। महर्षि बाल्मीकि अपने आराध्य के भी वन्दनीय आशुतोष का गुणगान करते अघाते नहीं।

चिरंतन, अनादि, विश्वदीप्ति, अनिवृतात्मा सदाशिव के विषय में यदि स्वयं युगावतार कृष्ण भी अपने श्रद्धा भाव व्यक्त करते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं-

'त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥"
पच्यन्ते काल सूत्रेण यावच्चन्द्र दिवाकरौ॥ *(ब्रह्मवैवर्त पु0 6 131)*

"देव! मेरा आप से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मा से भी अधिक प्यारे हैं। जो दुष्कर्मों में रत अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निंदा करते हैं, वे अनन्त काल तक नरक में पचते रहेंगे।" महाकवि कालिदास ने अपने 'रघुवंश' के सर्वप्रथम छन्द में शब्द और अर्थ की अविच्छेद्य एकता को उपमान बनाकर अपने आराध्य 'शिवा-शिव' का अद्भुत समन्वय चित्रित किया है-

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रति पन्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥" *(वा0 रघुवंश 1/1)*

अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक का मंगलाचरण भी कविकुल कालिदास के भगवान् देवाधिदेव महादेव के प्रति अपने श्रद्धा-सुमनों का मूर्तरूप है–

"या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधतः श्रुति विषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्॥
यामाहुः सर्वबीज प्रकृति रिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षामिः प्रपन्नतनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥"

"सृष्टिकर्त्ता प्रजापति की प्रथम सृष्टि अर्थात् जल मूर्ति (1) विधिपूर्वक दी गयी आहुतियों का वहन करने वाली अग्नि की (2) मूर्तितथा हवि प्रदान करने वाली यजमान मूर्ति (3), दिन रात इन दो समयों का निर्माण करने वाली सूर्य (4) चन्द्र मूर्ति (5) जो कान का विषय या देवता है और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, वह आकाश (6) मूर्ति, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों की बीजभूता धरित्री (7) देवी और जो समस्त प्राणियों का प्राण संचार करने वाली वायु मूर्ति (8) है-इन प्रत्यक्ष आठ मूर्तियों से व्याप्त भगवान सर्वेश्वर शिव आप सबकी रक्षा करें।

भूत भावन के अनन्त नाम और अनन्त विभूतियाँ हैं–

"मुण्डो विरूपो विक्रान्तो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः।
पिङ्गलाक्षो जनाध्यक्षो नील ग्रींवो निरामयः॥"

जैसे अनेक रूपों में उन्हें स्मरण किया जाता है, अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप भक्तजन अपने आराध्य का पूजन अर्चन वन्दन भी करते आ रहे हैं, जिस प्रकार विभिन्न स्थलों एवं दिशाओं से प्रवाहित होने पर भी प्रत्येक सरिता का विलीन स्थल सागर ही है, ठीक इसी भाँति सबके आश्रय भगवान सदाशिव ही हैं।

वायवीय संहिता के तीसरे अध्याय में ब्रह्मा एवं मुनिवरों के परस्पर परम तत्व विषयक चर्चा में ब्रह्मा ने कहा–

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं यस्य वै विद्वान न विभेति कृतश्च न॥
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्म विष्णुरुद्रेन्द्र पूर्वकम्।
सहभूतोन्द्रियैः सर्वै प्रथमं सम्प्रसूयते॥
कारणानां च यो धाताध्याता परम कारणम्।
न सम्प्रसूयतेऽन्यस्मात् कुतश्चन कदाचन॥"

(शि0पु0 वा0सं0 पू0 खं0 3/1-3)

"मुनिवरो! जिनका साक्षात्कार कर मन सहित वाणी तृप्त हो जाती है, जिनके आनन्दमय खाद्य का अनुभव करने वाला पुरुष सर्वदा निडर रहता है, जिनसे

भूतादिक, इन्द्रादिक, ब्रह्मादिक, विष्णु सहित यह समस्त जगत पहले प्रकट होता है, जो कारणों के भी कारण, स्त्रष्टा और ज्ञाता परम कारण हैं, जिनके सिवाय और किसी से कभी भी जगत की उत्पत्ति नहीं होती, वह केवल रुद्र ही हैं।

प्राणीमात्र के मंगल की कामना करने वाले भगवान मंगल महादेव की जितनी प्रशंसा की जाय कम है, कहाँ अद्भुत अक्षत, अविनाशी, अप्रमेय, अजन्मा, निर्मल, माया रहित, अतुल महिमा वाले महेश्वर सदा शिव परात्पर और कहाँ अल्पज्ञ प्राणी? मेरी कामना तो इतनी है कि मैं आपका सर्वदा जय गान करता रहूँ-

"जयाद्भुत जयक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय।
जयामेय जयामाय जया भव जयामल॥
अनंत कान्ति सम्पन्न जया सादृश्यविग्रह।
अतर्क्य महिमाधार जयानुकूल मङ्गल॥" *(शि० पु० वा० सं० 31।4-8)*

हे प्रभो! आप अद्भुत हैं आपकी जय हो। आप अक्षुद्र = महान हैं, आपकी जय हो। आप अविनाशी एवं अव्यय हैं, आपकी जय हो। हे अप्रमेय परमात्मन! आपकी जय हो। माया रहित महेश्वर! आपकी जय हो। हे अजन्मा शिव! आपकी जय हो। हे निर्मल शंकर! आपकी जय हो। आप अनन्त कान्ति से सम्पन्न हैं। आपके श्री विग्रह की कहीं तुलना नहीं है, आपकी जय हो। आप अतर्क्य महिमा के आधार हैं तथा शान्तिमय मंगल के निकेतन हैं, आपकी जय हो।"

शिव शंकर में भक्ति हो, प्रलयंकर की याद।
भीति भला यम की कहाँ, कहाँ विपत्ति विषाद॥"

"जय-जय-जय शिव"



❃ जगद्गुरु-तत्व ❃

(भा०ध०म० के एक साधु)

सत्-चित् और आनन्द के एककाधार में अद्वैतानुभव ही स्व-स्वरूप का अनुभव है। यह सृष्टि से अतीत जो स्व-स्वरूप का अनुभव है वह परम मन्त्रमय है वही महादेव सदाशिव का परममंगल मय शिव रूप है वही निर्गुण ब्रह्म पद है तीनों गुणों से अतीत, अद्वैत रूप में, सृष्टि से भी परे, परम मंगल के आधारभूत शिव का यही निर्पुण स्वानुभव है। इसके अतिरिक्त सदाशिव रूपी महादेवी-आलिंगित महादेव का जो स्वरूप है वही सगुण ब्रह्म का स्वरूप है, उसी रूप को ईश्वर कहते हैं तथा उसी रूप की वैष्णव महाविष्णु, सौरगण सूर्यदेव, शाक्तगण महादेवी, गणपत्यगण-गणपति और शैवगण महादेव नाम से अपने-अपने ढंग पर उपासना

करते हैं। सगुण रूप में गुणमयी ब्रह्म शक्ति ब्रह्म रूप से अलग होकर महादेव के साथ आलिंगित रहका जगत्प्रपंच की सृष्टि, स्थिति और लय करती है। महादेवी ब्रह्ममयी प्रकृति ही निर्गुण ब्रह्म को सगुण बनाने का कारण होती है।

सगुण पंच्चोपासना सम्बन्धी भागवत, देवी भागवत, शिव पुराणादि पंच्चोपासना के अलग-अलग पुराणों में निर्गुण ब्रह्म से सगुण ब्रह्म के स्वानुभव का जो रहस्य है वह रूपान्तर से इसी विचार को पुष्ट करता है। केवल शिवोपासना सम्बन्धी पुराणों में महादेव और महादेवी के संयोग और वियोग, विहार और लीला, जन्म और विवाह, आदि मधुर चरित्रों का वर्णन सबसे अधिक पाया जाता है। इसका कारण यह है कि शिव-चरित्र में जड़ और चेतन-इन दोनों राज्यों और प्रकृति तथा पुरुष सम्बन्धी दोनों वैभवों का विस्तार बहुत पाया जाता है। एक और शिव-ज्ञान प्रदाता होने से देवताओं के ही महादेव नहीं हैं वे ऋषियों के भी अधिनायक हैं। दूसरी ओर भगवान ब्रह्मा केवल निगम के प्रकाशक हैं, रचियता नहीं, क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं। परन्तु भगवान शिव आगम के प्रणेता हैं और निगम के स्मारक महर्षियों के नेता हैं। इस कारण उन्हें 'मुक्तिदाता' कहने में सुगमता होती है। योग शास्त्र के तो वे भगवान शिव आदि गुरु हैं। क्योंकि शिव-शक्ति का योग ही यथार्थ योग है। मंत्र योग में बहिः-प्रकृति तथा अन्तःप्रकृति नाम और रूप के योग से समाधि रूपी शिवत्व की प्राप्ति होती है।

हठयोग में प्राण-रूपी शिव और सूक्ष्म-शरीरावच्छिन्न प्रकृति के योग से समाधि रूपी शिव-स्वरूप की प्राप्ति होती है। लय योग में कुल कुण्डली रूपी शक्ति के जाग्रत होकर सहस्त्र कमल में स्थित सदा-शिव के साथ आलिंगित होने पर लय योग-समाधि का उदय होकर शिवत्व की प्राप्ति होती है। ज्ञानमय राजयोग तो स्वयं ही शिव स्वरूप है और उसका फल साक्षात शिवत्व की प्राप्ति है। इस कारण यह मानना पड़ेगा कि परम योगिराज शिव ही योग के प्रकाशक एवं प्रधान योगाचार्य हैं। विश्व जननी महामाया पार्वती रूप से उनकी सदा सेवा करती हैं, प्रकृति के यावत् ऐश्वर्यों का नगराज हिमालय पार्वती देवी का पित्रालय हो सकता है, इसमें संदेह ही क्या है? ऐसी महादेवी शिवा जिनकी अर्धांगिनी हैं, वही 'सदाशिव' कहला सकते हैं।

हिमालय दुहिता त्रिगुणमयी प्रकृति जिनको सदा आलिंगन किये रहती है उनका स्वरूप ही ब्रह्म का सगुण ध्यानगम्य स्वरूप हो सकता है इसमें कोई संदेह नहीं। महामाया महादेवी भक्त को विद्या रूपिणी होकर अपनी गोद में लेती हुई ब्रह्म में लय हो जाती हैं, ऐसी महामाया से युक्त 'सदाशिव' ही मुक्तिदाता हो सकते हैं और वही यथार्थ में **'जगद्गुरु'** कहा सकते हैं। यही कारण है कि शक्ति सहित शिव के रूप में ही गुरू का ध्यान करने की आज्ञा तन्त्रों में पाई जाती है। यही परमात्मा के

निर्गुण से सगुण हो जाने का मधुर रहस्य है और शिवजी की लिङ्ग पूजा वास्तव में श्री भगवान के विराट-स्वरूप की पूजा है, इस बात को लिंग-पुराण और शम्भु गीता आदि शास्त्र हाथ उठाकर जगत में उद्घोषित कर रहे हैं। इस प्रकार जो तत्व-ज्ञानी त्रिभाव तत्वयुक्त ब्रह्म, ईश और विराट का स्वानुभव प्राप्त कर सकते हैं, जो सगुण और निर्गुण ब्रह्म का रहस्य समझ सकते हैं, जो त्रिमूर्ति तत्व की उपासना करने में समर्थ होते हैं और जो सगुण पंच्चोपासना की उदारता और सगुण ब्रह्म के अवतार रूपी लीला विग्रह की मधुर लीला का यथार्थ रूप से आश्वादन कर सकते हैं, वे ही जगद्गुरु के साथ तादाम्य भाव से युक्त होकर गुरुपद वाच्य होते हैं।

(जै जगद्गुरू शिव)



❋ शिवालय का तत्व-रहस्य ❋

(श्री अशोकजी जोशी, एम०ए०, बी०एड०)

प्राय: प्रत्येक शिवालय में नन्दी, कूर्म (कच्छप), गणेश, हनुमान, जलधारा, नाग जैसे रहस्यमय प्रतीक देखे जाते हैं। देव-देवियों की आकृतियों में, उनके आसन, वाहन, प्रतीक लक्षणों में सूक्ष्म भाव एवं गूढ़ ज्ञान गम्य सांकेतिक सूत्र सूत्र संन्निहित रहते हैं।

शिवालय की ही चर्चा की जाय तो प्रत्येक शिव-मन्दिर में नन्दी के दर्शन सर्वप्रथम होते हैं। यह महादेव जी का वाहन है। यह सामान्य बैल नहीं है। यह ब्रह्मचर्य का प्रतीक है, शिव का वाहन जैसे नन्दी है वैसे ही हमारे आत्मा का वाहन शरीर-काया है। अत: शिव को आत्मा का एवं नन्दी को शरीर का प्रतीक समझा जा सकता है। जैसे नन्दी की दृष्टि सदा शिव की ओर रही है, वैसे ही हमारा शरीर आत्माभिमुख बने, शरीर का लक्ष्य आत्मा बने, यह संकेत समझना चाहिए।

शिव का अर्थ है कल्याण। सभी के कल्याण का भाव आत्मसात करे, सभी के मंगल की कामना करे तो जीव शिवमय बन जाता है। अपने आत्मा में ऐसे शिव-तत्व को प्रकट करने की साधना को ही शिव-पूजा या शिव दर्शन कह सकते हैं, और इसके लिये सर्वप्रथम आत्मा के वाहन शरीर को उपयुक्त बनाना होगा। शरीर नन्दी की तरह आत्मा विमुख बने, शिव भाव से ओत-प्रोत बने। इसके लिये तप एवं ब्रह्मचर्य की साधना करे, स्थिर एवं दृढ़ रहे, यही महत्वपूर्ण शिक्षा इस नन्दी के माध्यम से दी गई है।

नन्दी के बाद शिव की ओर आगे बढ़ने से कछुआ आता है। नन्दी यदि हमारे स्थूल शरीर के लिये प्रेरक मार्गदर्शक है, तो कछुआ सूक्ष्म शरीर का अर्थात् मन का

मार्गदर्शन करता है। हमारा मन कछुआ जैसा कवचधारी सुदृढ़ बनना चाहिए, जैसे कच्छप शिव की ओर गतिशील है, वैसे ही हमारा मन भी शिवमय बने, कल्याण का ही चिंतन करे, आत्मा के श्रेय हेतु यत्नशील रहे एवं संयमी तथा स्थितप्रज्ञ रहे।

अर्थात् मन की गति, विचारों का प्रवाह, इन्द्रियों के काम शिव-भाव युक्त आत्मा के लिये ही हुआ करें। यही शिक्षा देने के लिये कच्छप शिव की ओर सरकता बताया जाता है, कछुआ कभी नन्दी की ओर नहीं जाता। हमारा मन भी देहाभिमुख नहीं, आत्मभिमुख ही बना रहे। भौतिक नहीं आध्यात्मिक ही बना रहे। शिव तत्व का ही चिंतन करे।

नन्दी एवं कच्छप दोनों जब शिव की ओर बढ़ रहे हैं, अर्थात् शारीरिक कर्म एवं मानसिक चिंतन दोनों जब आत्मा की ओर बढ़ रहे हैं, तब इन दोनों की शिव रूप आत्मा को पाने की योग्यता है या नहीं, इसकी कसौटी करने के लिये शिव मन्दिर के द्वार पर दो द्वारपाल खड़े हैं-गणेश और हनुमान।

गणेश एवं हनुमान के दिव्य आदर्श यदि जीवन में नहीं आये तो शिव का या कल्याणमय आत्मा का साक्षात्कार भला कैसे हो सकेगा?

गणेश का आदर्श क्या है? बुद्धि एवं समृद्धि का सदुपयोग करना, यही इनका सिद्धान्त है, इसलिये आवश्यक गुण गणेश के हाथ में स्थित प्रतीकों द्वारा बताये जाते हैं। अंकुश-संयम, आत्मनियंत्रण का, कमल = पवित्रता, निरलेपता का, पुस्तक-उच्च उदार विचारधारा का एवं मोदक मधुर स्वभाव का प्रतीक हैं। वे मूषक जैसे तुच्छ रंग को भी चाहते, अपनाते हैं, ऐसे गुण रखने से ही आत्म-दर्शन शिवदर्शन की पात्रता प्रमाणित होती है।

हनुमान का आदर्श क्या है? विश्व हित के लिये तत्परता युक्त सेवा और संयम। ब्रह्मचर्यमय जीवन ही इनका मूल सिद्धान्त है, यही कारण है कि हनुमान सदैव राम जी के कार्यों में सहयोगी रहते हैं, अर्जुन के रथ पर विराजित रहे हैं, ऐसी तत्परता बरतने से ही विश्व-कल्याण मय शिवत्व या अपने आत्मदर्शन की पात्रता को प्राप्त कर सकता है।

गणेश हनुमान की परीक्षा में उत्तीर्ण होने से साधक को शिव-रूप आत्मा की प्राप्ति हो सकती है। किंतु इतनी महान विजय जिसको प्राप्त होती है उसमें अहंकार आ सकता है, मैं बड़ा हूँ, श्रेष्ठ हूँ, ऐसा अहंकार ही तो पग-पग पर आत्मा-परमात्मा के मिलन में बाधक बन जाता है। इसी बात का स्मरण देने के लिये मानो शिवालय के मन्दिर का प्रवेशद्वार सोपान भूमि से कुछ ऊँचा ही रखा जाता है, द्वार भी कुछ छोटा ही रहता है। अत: प्रकोष्ठ को पार करके निज मन्दिर के ऊँचे सोपान पर चरण रखते समय एवं अंतिम शिव द्वार में प्रवेश करते हुए अत्यन्त विनम्रता, सावधानी बरतनी पड़ती है, सिर भी झुकाना पड़ता है। साधक के अहंकार का तिमिर जब नष्ट हो जाता

है, तब भीतर-बाहर सर्वत्र शिव-तत्व के दर्शन होने लगते हैं, सभी कुछ मंगलमय लगने लगता है। आत्मज्ञान के सदृश पवित्र एवं प्रकाशमय और क्या हो सकता है?

भीतर में जब प्रवेश किया जाय तब कर्ममय स्थूल जगत एवं विचारमय सूक्ष्म जगत तो बाहर ही छूट जाता है। निज में जो कारण जगत की-आत्म स्वरूप की प्रतीति होती है वह अवर्णनीय है शिवत्व भाव में ओत-प्रोत कर देने वाली है। शिवालय के मंदिर में जो शिवलिंग है उसे आत्मलिंग ब्रह्मलिंग कहते हैं। यहाँ विश्व कल्याण निमग्न ब्रह्माकार-विश्वाकार परम आत्मा ही स्थित है, हिमालय सा शांत महान् श्मशान सा सुनसान शिवरूप आत्मा ही भयंकर शत्रुओं के बीच रह सकता है, कालरूप सर्प को गले लगा सकता है, मृत्यु को भी मित्र बना सकता है। कलातीत महाकाल कहला सकता है, ज्ञान वैराग्य को धारण कर सकता है।

भगवान शिव द्वारा धारण, कपाल, कमंडल आदि पदार्थ संतोषी, तपस्वी, अपरिग्रही जीवन साधना के प्रतीक हैं। चिताभस्म लेप-ज्ञानवैराग्य और विनाश शील विश्व में अविनाशी के वरण के सूत्र-संकेत हैं, डमरू निनाद आत्मानन्द निजानन्द की आनन्दानुभूति का प्रतीक है। काला नाग कालातीत चिर समाधि भाव का द्योतक है।

त्रिदल-विल्व पत्र, तीन नेत्र, त्रिपुण्ड, त्रिशूल आदि सत-रज-तम इन तीन गुणों को सम करने का संकेत देते हैं। त्रिकाय, त्रिलोचन और त्रिकाल से पर होने का निर्देश देते हैं। भीतरी भावावेशों को शांत करने के लिये साधक भृकुटी में ध्यान केन्द्रित किया करते हैं, इसी स्थान में त्रिकुटी, सहस्त्र चक्र, सहस्त्र दल कमल, अमृत कुम्भ, ब्रह्म कलश, आज्ञा चक्र, शिव पार्वती योग जैसे वर्णनों द्वारा सिद्धि सामर्थ्य की प्राप्ति की क्षमता होने की चर्चा योग शास्त्रों में की गई है। विवेक बुद्धि रूपी तृतीय नेत्र भविष्य दर्शन, अतीन्द्रिय शक्ति एवं काम दहन जैसी क्षमताओं का केन्द्र मानागया है। अ-उ-म् इन तीनों अक्षरों के समन्वित एकाक्षर 'ॐ' में भी यही भाव समायोजित है।

शिव पर अविरत टपकने वाली जलधारा जटाओं में स्थित गंगा का प्रतीक है, स्वर्ग की ऋतम्भरा प्रज्ञा-दिव्यबुद्धि गायत्री त्रिकाल संध्या जिसे ब्रह्मा, विष्णु महेश भी करते हैं उपासते हैं वह यही ज्ञान गंगा है।

शिवलिंग यदि शिवमय आत्मा है तो उनके साथ छाया की तरह अवस्थित पार्वती उस आत्मा की शक्ति हैं। शिवालय की जलधारा उत्तर दिशा की ओर बहती है, उत्तर में स्थित ध्रुवतारक उच्च स्थिर लक्ष्य का प्रतीक है, शिवमय कल्याणकामी आत्मा का ज्ञान-प्रवाह, चिंतन प्रवाह सदैव उच्च स्थिर लक्ष्य की ओर ही गति करता है।

शिव पर अविरत टपकने वाली जलधारा की तरह ही साधक पर भी

ब्रह्माण्डीय चेतना की अमृत-धारा प्रभु कृपा अविरत वरषती रहती है, ऐसा विश्वास करना चाहिए।

इस प्रकार शिवालय-स्थित इन प्रतीकों, चिन्हों के तत्व रहस्यों का चिन्तन कर भावना से ओत-प्रोत बने व्यक्तित्व को शिवमय बनाया जा सके, तो इसी में हमारे दर्शन, पूजन, उपासना आदि की यथार्थ सार्थकता है।

"ॐ नमः शिवाय"



❃ मृत्युञ्जय ❃

नश्वर शरीर का परिवर्तन मृत्यु है, परिवर्तन से छुटकारा पाना मृत्यु को जय करना है, किसी अक्षर पदार्थ में परिणत हो जाना इसका साधन है। इसी अक्षर पदार्थ को उपनिषद 'अनन्त आत्मा', 'परमाकाश', 'प्रत्यक चैतन्य' या 'सदाशिव' कहकर पुकारते हैं और यही ब्रह्म का सत्-स्वरूप है, श्रीमद्गीतामें कहा है-

"यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीत रागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥"

(भागवतगीताा 8/11)

"वेद के जानने वाले जिसको 'अक्षर' कहते हैं, ईश्वर-प्राप्ति का यज्ञ करने वाले वीतराग पुरुष जिसके अन्दर प्रवेश करते हैं, जिसको चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को तुम्हें संक्षेप से कहूँगा।"

उपनिषद् में इस प्रत्यक चेतन को 'ॐ' नाम से अभिहित किया गया है। यथा-

"सर्वे वेदा यत् पदमाामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि। ओमित्येतत॥

(कठ0उ0 1/2/15)

"सम्पूर्ण वेद जिसका प्रतिपादन करते हैं, जो समस्त धर्मों का लक्ष्य है और जिसको चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस पद को संक्षेप से कहूँगा, उसी को 'ॐ' कहते हैं।

यद्यपि वह आंशिक रूप से अनुभवगम्य है तथापि ससीम जीव उस असीम, अक्षर, पदार्थ का पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सकता। पाश्चात दार्शनिक पण्डित, हर्बर्ट स्पेंसर तथा उन लोगों ने जो अति-प्राकृतिक विषय को अज्ञेय सिद्ध करते हैं (Agnestics), जिस वस्तु को 'अविज्ञात' कहा है, उसका और इस उपनिषद्वेद्य वस्तु का स्वरूप बिलकुल एकसा प्रतीत होता है। कहा है-

"अचिन्त्य मव्यक मनन्तरूपं शिवं प्रशान्त ममृत वृह्योनिम्।
तमादिमध्यान्त विहीनमेकं विभुं चिदानन्दम रूपमद्भुतम्॥"

(कैवल्य0 उ0 1।6-7)

"अर्थात् वह ब्रह्म अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त रूप, सदाशिव, प्रशान्त, अविनश्वर विश्वपिता, अनादि मध्यान्त, निर्द्वन्द्व, अरूप, चिन्मय, आनन्द स्वरूप और आश्चर्यमय है और भी कहा है–

"यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम विजानताम्॥" *(केन0 उ0 2।3)*

"अर्थात् जिन लोगों की यह धारणा है कि ब्रह्म-बोधगम्य नहीं है वही उसको जानते हैं और जो उसे बोधगम्य समझते हैं वे भ्रम में हैं अर्थात् उसे नहीं जानते। ज्ञानवान पुरुष उसे 'अविज्ञात' कहते हैं और अज्ञानी 'विज्ञात' कहते हैं। इसी बात की निम्नलिखित श्लोक से पुष्टि होती है–

"नैव चिन्त्यं न चाचिन्त्यं न चिन्त्याचिन्त्यमेवतत्।
पक्षपात विनिर्मुक्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥"

"अर्थात् वह चिन्त्य भी नहीं है और अचिन्त्य भी नहीं है और न चिन्त्य एवं अचिन्त्य दोनों ही है। ऐसी धारणा होने पर ही पक्षपात रहित परमब्रह्म की प्राप्ति होती है।

यह प्रत्येक चेतन, सर्वान्तर्यामी आत्म बाह्य प्रपंच के अन्दर और उसकी आड़ में विराजमान है। जैसे-तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि और दूध में घी रहता है। तिल के प्रत्येक भाग में तेल है, परंतु उसका इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रत्येक चेतन वाह्य प्रपंच में सर्वत्र है, परंतु इन्द्रिय द्वारा उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। वही विश्व की वाह्य और आभ्यान्तर दिशा है और उसी के आधार पर वाह्य प्रपंच्य स्थिति है, वह वाणी से व्यक्त नहीं हो सकता, उसका व्यापित्व कल्पनातीत है। वह स्वयं 'परमानंदमय' है, बस उस आनंद की प्राप्ति हो जाने पर जीवात्मा परम सुखी हो जाता है।

जाग्रत अवस्था में हम लोगों के देह में शुद्ध अहंभाव का उदय होता है। यही भाव हम लोगों को ससीम बना देता है, इसका नाश कर देने से सर्वव्यापी असीम अहंभाव का उदय होता है। उपनिषद् कहते हैं कि ससीम अहं भाव के पर्दे के अन्दर सर्वव्यापी असीम अहंभाव विराजित है। जैसे अगाध समुद्र का जल ऊपर की तरंगों से आच्छादित रहता है, उसी प्रकार सर्वव्यापी, असीम अहंभाव ससीम अहंभाव से आवृत्त है। कहा भी है–**"ब्रह्मादि कीट पर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः।**
बुद्बुदादि विकारान्तस्तरङ्गः सागरे यथा॥" *(आत्मबोध उ0 14)*

"अर्थात जीवधारी क्षुद्रातिक्षुद्र कीट से लेकर ब्रह्मा तक मेरे (परम अहं के)

अन्दर काल्पित हैं, जैसे समुद्र के विकार बुद्‌बुद्‌ और लहर इत्यादि समुद्र में ही रहते हैं।"

क्षुद्र अहं भाव को दमन करने से हमारे अन्दर असीम अहंभाव का ज्ञान उत्पन्न होता है। अर्थात् सब प्रकार की चिन्ताओं से रहित होने पर ही हमारा चित्त स्थिर होता है; जैसे प्रशांत सागर का जल बाहरी तरंगों के तिरोधान होने पर ही ज्ञात होता है।"

"मनसा मन आलोक्य वृन्तिशून्यं यदा भवेत्।
ततः परं परब्रह्म दृश्यते च सुदुर्लभम्॥" *(योगाशिखा0 उ0 6 /62)*

"अर्थात् स्थिर चित्त से चंचल चित्त की ओर दृष्टि रखने से जब वृत्ति शून्य अवस्था को प्राप्त होती है, तब सुदुर्लभ परब्रह्म का दर्शन होता हे।"

हम ज्ञानेन्द्रियों से बाह्य जगत का अवलोकन करते हैं। परन्तु ये सब इन्द्रियाँ अर्थात् नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा इत्यादि तब तक कर्म नहीं कर सकतीं जब तक कि चित्त उनका अनुवर्ती न हो। उदाहरणार्थ, हम लोगों के नेत्र अच्छी तरह खुले हों और किसी वस्तु पर एकटक भी लगे हुए हों, परन्तु चित्त यदि किसी अन्य वस्तु की चिन्ता में निमग्न है, तो हम लोग उस वस्तु को कदापि नहीं देख सकेंगे। अन्यान्य इन्द्रियों की भी यही रीति है। इसलिये चित्त की वृत्ति रुक जाने से जिसे चित्त की एकाग्रावस्था कहते हैं, सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ कर्म से (बाह्य प्रपंच के ग्रहण से) अनायास ही विरत हो जाती हैं। साथ ही वाह्य प्रपंच के दृश्यों का अनुभव भी नहीं होता है। परिवर्तनशील वाह्य प्रपंच्च के तिरोधान से अपरिवर्तनीय प्रत्येक चैतन्य का प्रकाश होता है और उसमें स्थिर होना ही 'मृत्युञ्जय' की अवस्था है। उपनिषद् में कहा है–

"नित्य शुद्धो बुद्धमुक्त स्वभावः सत्यः सूक्ष्मः सन् विभुश्चा द्वितीयः।
अजन्दाब्धिर्यः परः सोऽहमस्मि प्रत्यग्धानुर्नात्र संशीतिरास्ति॥"

(मैत्रेय0 उ0 1 /11)

"अर्थात् मैं निःसन्देह वही परब्रह्म हूँ जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, प्रकृत, अदृश्य, सर्वान्तर्वर्ती, अद्वितीय, आनन्द सागर और इन्द्रियग्राह्य विषय समूह के अन्तराल में स्थित है।"

सीमाबद्ध अहंभाव शरीर के परिवर्तन का कारण है, क्योंकि यह चिन्ता स्त्रोत का परिचालक है और चित्त की गति शरीर रचना की अनुगामिनी है। एक कहावत भी है कि, **"जैसा रूप वैसा मन"**। उपनिषदों के अवलोकन से पता लगता है कि मृत्यु-समय के चिन्तन के कारण उसी चिन्ता के सदृश पुनर्जन्म होता है। कहा भी है–

"देहावसान समये चिन्ते यद्यद्विभावयेत।
तन्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम्॥" *(योगशिखा0 उ0 1 /31)*

'देहावसान के समय चित्त में जिस भावना का उदय होता है, उसी के अनुसार

प्राणी इस संसार में जन्म लेता है, और यही पुनर्जन्म का कारण है।" इसलिये पुनर्जन्म से छूटने का उपाय वाह्य चिंता के अभ्यास से विरत होना ही है।

प्रत्येक चैतन्य को उपलब्ध करने की भी यही रीति है। यदि हम चाहें तो निश्चय ही ऐसी अवस्था कर सकते हैं कि जिससे मृत्यु के समय हमारे चित्त में किसी प्रकार की चिन्ता का उदय न हो।

"अवासनं स्थिरं प्रोक्तं मनोध्यानं तदेव च।
तदेव केवली भानं शान्ततैव च तत् सदा॥" *(अन्नपूर्णा० उ० 1।29)*

"अर्थात् चित्त की शान्त अवस्था वासनाशून्यता का ही नाम है। भगवद् ध्यान, आत्मा की निःसीम अवस्था और अविराम शान्ति भी यही है।

हम लोगों की जीवन भर की विज्ञता केवल पार्थिव वस्तु विषयक ही होती है। मृत्यु के समय इस प्रकार की चिन्ता संसार में पुनर्जन्म का कारण होती है। अतः मुक्ति प्राप्त करने के लिये हमें बाह्य संसार के चित्त को हृदय पटल से सर्वथा हटा देना उचित है।

"नैवाहमिति निश्चित्य निदाधः! कृत कृत्यवान।
न भूतं न भविष्यज्ज चिन्तयामि कदाचन॥"

"हे निदाघ! मेरे अहंभाव का अस्तित्व ही नहीं है, यह विचार कर मैं कृतकृत्य हो गया हूँ और भूत-भविष्य की चिन्ता कभी नहीं करता।" (रिभ मुनि और उनके शिष्य निदाघ के बीच अन्नपूर्णोपनिषद अ० 5।67 में इस प्रकार के वार्तालाप का उल्लेख है) प्रत्यक चेतन में स्थिति को स्थाई रखने के उद्देश्य से हमें उस सर्वान्तः प्रवेशी आधार पर जो परमाकाश और प्रत्यक चैतन्य के नाम से प्रसिद्ध है, पूर्ण निर्भरता और विश्राम का अभ्यास करना चाहिए। कहा भी है—

"सर्वाधिष्ठान सन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि।
यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते॥" *(अन्नपूर्णा० उ० 2।27)*

"जो समस्त पदार्थों के आश्रय स्थल, निर्विकल्प, चिन्मय, सत्स्वरूप, आत्मा के अन्दर जीवन धारण करते हैं, वही जीवन मुक्त हैं।"

वाह्य जगत के त्याग के अभ्यास से चित्त शान्त होता है और इसी को चित्त का नाश कहते हैं। प्रत्यक चेतन में स्थित होना भी इसी का नाम है। वही परमानन्दस्थल है। जहाँ पहुँच जाने पर फिर पुनर्जन्म की आशंका नहीं रहती, और जिसे अमरत्व की प्राप्ति भी कहते हैं। उपनिषदों की घोषणा है कि सर्वव्यापी प्रत्यक चेतनरूप आत्मा की दृढ़ धारणा से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है।

"अशब्दमस्पर्शमरूपम व्ययं तथाऽरसं नित्यम गन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्यतन्मृत्यु मुखात् प्रमुच्यते॥"

(कठ० उ० 1।3।15)

"अर्थात् अशब्द, अस्पृश्य, अरूप, अव्यय, रसरहित, नित्य, अगन्धवत्, अनादि, अनन्त और वाहय प्रपंच के अन्दर अवस्थित, नित्य वस्तु को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से मुक्त होता है। इसी भाव में स्थित होने को 'मृत्युञ्जय' शिव रूप में अवस्थान होना कहते हैं और इसी भाव में स्थित होना ही हम लोगों का चरम उद्देश्य है। कहा भी है–

"अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न वा बन्धनं नैव मुक्तिर्न भीतिश्चिदानन्दरूपः शिवाऽहं शिवोऽहम्॥"

(श्री शंकराचार्य प्रणीत निर्वाणषटक 6)

"मैं (परम अहं) निराकार और निर्विकल्प स्वरूप हूँ, मैं सारी इन्द्रियों का प्रभु और सर्वव्यापी हूँ, मुझे न तो बंधन है, न उससे मुक्ति अपेक्षित है, और न किसी प्रकार का भय है। मैं चिन्मय, आनन्द स्वरूप शिव हूँ।"

"जय श्री मृत्युञ्जय शिव"



❋ शिव लिङ्गोपासना रहस्य ❋

(धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज)

श्लोक– "यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः।
अर्चयेथाः सदालिङ्गं तस्माच्छे तमो हिदः॥"

माहेश्वर लिङ्ग की अर्चा अनादिकाल से जगद्व्यापक है। पाश्चात देशों की प्रातः सभी जातियों में किसी न किसी रूप में लिङ्ग पूजा सर्वत्र रही है, मिश्र देश में तो हर और ईशः की उपासना उनके धर्म का प्रधान अंग था। वहाँ ओसिर नाम के देवता एथिओपिया के चक्र शैल से निकली हुई नील नदी के अधिष्ठाता माने जाते हैं। यहाँ कैलाश के चन्द्रगिरि से निकली गंगा और पश्चिमगामी सिंधुनद जिसका दूसरा नाम नील भी है, दोनों के ही स्वामी भगवान शंकर हैं। प्लुतार्क के लेखों से पता चलता है कि उस समय मिश्र में प्रचलित लिङ्गपूजा सारे पश्चिम में प्रचलित थी।

प्राचीन चीन और जापान के साहित्य में भी लिङ्गपूजा की गवाही मिली है और पुरानी मूर्तियों से यह भी अनुमान होता है कि अमेरिका के महाद्वीपों के प्राचीन निवासी भी लिङ्ग पूजा किया करते थे।

कर्नल टाड का कहना है कि मुहम्मद साहब के पहले 'लात' नामक अरब देवता की उपासना 'लिङ्ग' के रूप में हुआ करती थी और सोमनाथ के शिवलिङ्ग को भी पश्चिमी लोग 'लात' ही कहते थे। 'लात' की मूर्तियाँ दोनों जगह बहुत

विशाल और रत्नों से सुसज्जित थीं, यह एक ही पत्थर का लिंग था जो पचास पुरुष या पोरसा ऊँचा था। जिस मन्दिर में यह स्थापित था उसमें उस लिङ्ग को सँभालने के लिये ठोस सोने के छप्पन खंभे थे। महमूद गजनवी इसे घ्वंस करके सोना तो ले गया। कोलकार रिर्चडसन लिखता है कि 'लात' अल्लाह की सबसे बड़ी पुत्री का नाम था और उसका चिह्न या मूर्ति 'लिङ्ग' की तरह थी। जो हो, मुसलमानों ने 'लात' का ध्वंसावशेष भी न रखा, परन्तु मक्केश्वर तो अब तक लिङ्ग रूप में काबे में पधराये हुए हैं। इस मक्केश्वर लिंग की चर्चा भविष्य पुराण के ब्राह्म पर्व में आयी है। मक्केश्वर लिंग काले पत्थर का है इसे मुसलमान 'असवद' कहते हैं।

सभी धर्म शास्त्रों में शिव-पूजा को नित्यकर्म में रखा है और सन्ध्या की तरह जल ग्रहण के पूर्व का इसे आवश्यक कर्म बताया गया है।

❋ लिंग का प्रथम प्रादुर्भाव ❋

वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के पहले इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि के समय देवताओं की सृष्टि समाप्त हो गई अर्थात् सृष्टि जलमग्न हो गई और सब दिशाओं में अंधकार फैल गया तब भगवान विराट को ब्रह्माजी ने नारायण रूप से क्षीरसागर में शयन किये हुए देखा, तो उनकी माया से मोहित हो ब्रह्मा ने उन्हें जगाया और क्रुद्ध होकर कहा 'तू कौन है?' वह भी उठे और हँसकर बोले 'पुत्र स्वागत!' इस पर ब्रह्माजी और चिढ़े कि मैं तो सृष्टि का पितामह हूँ, मुझे तो पुत्र कहता है। विष्णु भगवान ने समझाया कि सृष्टि के कर्ता-हर्ता हमी हैं और हमने तुम्हें सृष्टि के लिये ही पैदा किया है। निदान दोनों में घोर वाद-विवाद हुआ और उस प्रलय समुद्र में बहुत काल तक घोर युद्ध होता रहा। अंत में दोनों का झगड़ा मिटाने के लिये उनके सामने प्रचण्ड अग्नि का एक महा स्तम्भ प्रकट हुआ जो ऊपर-नीचे से अनादि और अनन्त था। विष्णु ने उसे देखकर कहा कि हमारा तुम्हारा झगड़ा चुकाने को यह 'लिङ्ग' प्रकट हुआ है तुम इस ज्योतिर्लिङ्ग के ऊपर और हम नीचे का पता लगावें। विष्णु ने वाराह का और ब्रह्मा ने हंस का रूप धरकर महाभयानक वेग से दौड़ना और उड़ना आरम्भ किया, दोनों ने एक हजार वर्ष तक परिश्रम किया और थक गये, फिर वहीं लौट आये। लौटती वार ब्रह्मा ने एक केतकी का पत्ता गिरता हुआ देखा, ब्रह्मा के कहने से केतकी ने झूँठी गवाही दी कि ब्रह्मा लिंग के अग्र भाग का पता लगा आये, विष्णु ने इस मिथ्या को जान लिया और उन्होंने सत्य के प्रति पादनार्थ शिवस्तुति की। भगवान शंकर प्रकट हुए। उन्होंने, लिंग के विषय में मिथ्या साक्ष्य के अपराध में केतकी को शाप दिया कि अब से लिङ्गार्चन में केतकी का फूल न बरता जायेगा।

भगवान शंकर ने ब्रह्मा और विष्णु के विवाद को सृष्टि का यह परम रहस्य बतलाकर निबटाया कि त्रिमूर्ति की उत्पत्ति प्रत्येक ब्रह्माण्ड के लिये महेश्वर के

अंश से ही होती है, उसी की शक्ति से पितामह ब्रह्मा स्रष्टा, विष्णु पालक और रुद्र संहर्ता हैं, तीनों का अधिकार बराबर है, तीनों महेश्वर की माया के वशवर्ती होकर सृष्टि, संसार विधिवत करते रहते हैं।

तभी से ब्रह्मा का एक नाम हंस हुआ और भगवान विष्णु श्वेत वाराह रूप धरने से वर्तमान कल्प का श्वेत वाराह नाम पड़ा। प्रकृति प्रधान ही लिङ्ग है, इस लिङ्ग के ही विकास और विस्तार से विश्व की सृष्टि होती है, सारी सृष्टि लिङ्ग के ही अन्तर्गत है। लिङ्गमय है और अंत में लिङ्ग में ही सारी सृष्टि का लय भी होता है, इसी तरह का भाव स्कन्द पुराण के श्लोक से व्यक्त होता है—

"आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयः सर्वदेवानां लयना लिङ्गमुच्यते॥"

आकाश लिङ्ग है, पृथ्वी उसकी पीठिका है, सब देवताओं का आलय है, इसी में सबका लय होता है इसलिये इसे 'लिङ्ग' कहते हैं।

"सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥" *(गीता 14।4)*

भगवान ने स्वयं कहा है "समस्त प्राणियों में जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उन सबकी योनि अर्थात् उत्पन्न करने वाली माता प्रकृति है और बीज देने वाला शिव = लिङ्ग पिता मैं हूँ" अर्थात् मूल प्रकृति और परमात्मा ही उन माता पिता (योनि-लिङ्ग) रूप में उन-उन मूर्तियों (वस्तुओं) का उत्पादन करते हैं **'एकोऽहं बहुः स्याम प्रजायेय"** इत्यादि श्रुतियों के अनुसार एक ब्रह्म तत्व ही प्रजोत्पादन या बहुभवन के संकल्प मात्र से अनंत रूपों में विवर्तित हो जाता है। **'सोऽकामयत'** यह प्रजा की सिसृक्षा रूप संकल्प ही प्राथमिक आधि दैविक 'काम' है, इसी के द्वारा प्रकृति संसृष्ट होकर भगवान अनन्त ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करते या कराते हैं मानस में—**"सुनुरावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचित माया॥"**

यह काम भी भगवान का अंश है **"कामास्तु वासुदेवांश"** (भागवत) लोक में भी प्रेम, काम या इच्छा का मुख्य विषय आनन्द ही है। सुख में साक्षात कामना और उससे अन्य में सुख का साधन होने से इच्छा होती है, इसलिये आनन्द और तद्रूप आत्मा निरतिशय, निरूपाधिक पर प्रेम का आस्पद है। जैसे विषय के प्रभाव से कटु निम्ब में मिठास प्रतीत होती है, वैसे ही भ्रान्ति या मोह के प्रभाव से माँसमयी कान्ता में आनन्द का भान होता है। परंतु इसके अतिरिक्त शुद्ध आनन्द या आत्मा में जो प्रेम, आनन्द, कामना है, वह तो स्वाभाविक है, आत्मा का अंश ही है, इसलिये अद्वैत आत्मा ही निरूपाधिक प्रेम का आस्पद कहा जाता है परंतु वहाँ प्रेम और उसके आश्रय तथा विषय में भेद नहीं है। प्रेम, आनन्द, रस ये सभी आत्मा के ही स्वरूप हैं, रसरूप आनन्द से ही समस्त विश्व उत्पन्न होता है।

निराकार निर्विकार, व्यापक दृक या पुरुषतत्व का प्रतीक ही लिङ्ग है और अनन्त ब्रह्माण्डोत्पादिनी महाशक्ति प्रकृति ही योनि, अर्घा, या जल हरी है, न केवल पुरुष से सृष्टि हो सकती है न केवल प्रकृति से। पुरुष निर्विकार, कूटस्थ है, प्रकृति ज्ञानविहीन, जड़ है। अतः सृष्टि के लिये दृढ़, दृश्य, प्रकृति-पुरुष का सम्बन्ध अपेक्षित होता है। गीता में भी प्रकृति को परमात्मा की योनि कहा गया है—

"मम योनिर्महदब्रह्म तस्मिन गर्भदधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥" *(गीता 14 I3)*

भगवान कहते हैं—"महद्ब्रह्म-प्रकृति-मेरी योनि है, उसी में मैं गर्भाधान करता हूँ, तभी उससे महदादि क्रमेण समस्त प्रजा उत्पन्न होती है।" अतः बिना योनि-लिङ्ग सम्बन्ध के कहीं भी किसी की सृष्टि ही नहीं होती। हाँ यह बात अवश्य समझ लेनी चाहिए कि लोक प्रसिद्ध माँस चर्ममय ही लिङ्ग और योनि नहीं है, किंतु वह व्यापक भी है। उत्पत्ति का उपादान कारण पुरुष का चिन्ह ही लिङ्ग कहलाता है। दृश्य अण्ड रूप ब्रह्म ही अदृश्य पुरुष ब्रह्म का चिह्न है और वही संसार का उपादान भी है, अतः वह लिङ्गपद वाच्य है। लिंग और योनि पुरुष स्त्री के गुह्यांगपरक होने से ही इन्हें अश्लील समझना ठीक नहीं है, गेहूँ आदि में भी जिस भाग में अंकुर निकलता है उसे योनि माना जाता है, दाने निकलने से पहले जो छत्र होता है, वह लिङ्ग है, अतः शिवशक्ति ही लिङ्ग-योनि शब्द से विवथित है।

जैसे दृक् तत्व व्यापक है, वैसे ही दृश्य प्रकृति तत्व भी। तभी तो कभी लोक प्रसिद्ध योनि-लिङ्ग के बिना भी मानसी संकल्पजा सृष्टि होती थी। कहीं दर्शन से, कहीं सार्श से, कहीं फलादि से भी संतान उत्पन्न हो जाती थी। कहीं भी कैसी भी सृष्टि क्यों न हो, परंतु वहाँ सृष्टि के उत्पादनानुकूल शिव-शक्ति का सम्बन्ध अवश्य मानना पड़ता है, वृक्ष, लता, दूर्वा, तृणादि सभी तत्वों की उत्पत्ति में तदापयुक्त शिव शक्ति का सम्बन्ध अनिवार्य है। योग सिद्ध महर्षियों का प्रकृति पर अधिकार होता था, अतः वे संकल्प, स्पर्श, अवलोकन, आदि से ही सृष्टि करने की क्षमता रखते थे।

जैसे अग्नि तादाक्यापन्न लौह-पिण्ड में दाहकत्व, प्रकाशकत्व हो सकता है, वैसे ही पुरुष-प्रतिबिम्बो पेत ही अचेतन प्रकृति चेतित होकर विश्व का निर्माण करती है। मूर्ति पूजा का भी भाव यही होता है कि दृश्य से अदृश्य की पूजा हो। शालग्राम में विष्णु की भावना होती है, केवल काष्ठ, पाषाण, धातु की पूजा नहीं होती, किंतु मंत्र और विधानों की महिमा से आहूत, सन्निहित व्यापक भावना भावित दैवतत्व ही मूर्ति में आराध्य होता है। व्यष्टि के द्वारा ही प्राणियों के मन में समष्टि भाव का आरोहरण होता है। अतएव समस्त व्यष्टि लिंगों एवं अन्यत्र भी व्यापक शिव-तत्व की समष्टि मूर्ति महादेव-लिङ्ग है। जैसे व्यष्टि नेत्रों का अधिष्ठाता समष्टि देव सूर्य है वैसे ही व्यष्टि प्रजनन शक्तियों में व्याप्त शिवतत्व का समष्टि

स्वरूप शिव लिङ्ग है। जैसे व्यष्टि नेत्र की उपासना न होकर समष्टि नेत्र सूर्य की ही आराधना होती है और प्रतिमा भी उन्हीं की बनती है, वैसे ही समष्टि शिव मूर्ति की ही उपासना और प्रतिमा होती है। जैसे जाग्रत, स्वप्न की उत्पत्ति और लय सौसुप्त तम से ही होते हैं, वैसे ही तम से सबका उद्भव और उसी में सबका लय होता है। तम को वश में रखकर उसके अधिष्ठाता शिव ही सर्व कारण हैं, कार्यों को कारण का पता आद्यन्त नहीं लगता।

यह कहा जा चुका है कि समस्त योनियों का समष्टि रूप प्रकृति है, वही शिव-लिङ्ग का पीठ या जलहरी है, योनि में प्रतिष्ठित लिङ्ग आनन्द प्रधान, आनन्दमय होता है। जैसे समस्त रूपों का आश्रय चक्षु, समस्त गन्धों का आश्रय एकायतन घ्राण है, वैसे ही समस्त आनन्दों का एकायतन लिङ्ग-योनि रूप उपस्थ है। अतएव प्रकृति विशिष्ट दृक रूप परमात्मा आनन्द मय कहलाता है सुषुप्ति में भी उसी के अंश भूत व्यष्टि आनंदमय का उपलम्भ होता है। प्रिय, मोद, प्रमोद, आनन्द-ये आनन्दमय के अवयव हैं, शुद्ध ब्रह्म इन सबका आधार है। जब अनन्त ब्रह्माण्डोत्पादिनी प्रकृति समष्टि योनि है, तब अनन्त ब्रह्माण्डनायक परमात्मा ही समष्टि लिंग है। और अनन्त ब्रह्माण्ड प्रपंच्य ही उनसे उत्पन्न सृष्टि है। इसलिये परम प्रकाशमय, अखण्ड, अनन्त शिव-तत्व ही वास्तविक लिङ्ग है और वह परम प्रकृति रूप योनि-जलहरि में प्रतिष्ठित है। उसी की प्रतिकृति, पाषाणमयी धातुमयी, जलहरी और लिंग रूप में बनायी जाती है।

जैसे प्रियतमा के परिरम्भण में कामुक को आनन्दो द्रेक से वाह्य, आभ्यान्तर विश्व विस्मृत होता है, वैसे ही जीव को परमात्मा के सम्मिलन में प्रपंच्च का विस्मरण होता है। श्रुतियों एवं पुराणों में आध्यात्मिक, आधिदैविक तत्वों का ही लौकिक भाषा में वर्णन किया जाता है, जिससे कभी-कभी अज्ञों को अश्लीलता झलकने लगती है। लिंग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु ऊपर प्रणवात्मक शंकर हैं। लिङ्ग महेश्वर अर्घा महादेवी हैं—**"मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णु स्त्रिभुवनेश्वरः। रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः॥ लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्ग साक्षात्महेश्वरः। तयो सम्पूजना न्नित्यं देवी देवश्च पूजितौ॥"**

(लिङ्ग पुराण)

चैतन्य रूप लिङ्ग सत्ता और प्रकृति से ही ब्रह्माण्ड की रचना हुई और उन्हीं के द्वारा वह प्रलय को प्राप्त होगा। शुद्ध मोक्ष के लिये भी सकल जनों को भी उसी की आराधना करनी होगी।

ज्योतिर्लिङ्ग का स्वरूप इस तरह समझना चाहिये—**"नासदासीन्नो सदा सीत्तदानीं नासीद्रज्जोनो व्योमा परोयत्।"** *(ऋग० 10।129।1)*

'न सन्न चासच्छिव एव केवलः' अर्थात् पहले कुछ भी नहीं था, केवल शिव ही था।

"सर्वे निमेषाजजिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभन॥" *(अथर्व वेद)*

उसी से विद्युत पुरुष और फिर उससे निमेषादि काल-विभाग उत्पन्न हुए। वही विद्युत पुरुष ज्योतिर्लिङ्ग हुआ। उसका पार आदि, अन्त, मध्य कहीं से भी किसी को नहीं मिला वही–

"तदण्डमभवद्धैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्" *(मनु0)* है। अर्थात् सूर्य के समान परम तेजोमय अण्ड उत्पन्न हुआ। **"तल्लिंगमासं ज्ञितं साक्षात् तेजो माहेश्वरं परम्। तदेव मूलप्रकृतिभार्या च गगनात्मिका॥"** *(शिव पुराण)*

शिव पुराण में लिङ्ग शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है–

"लिङ्गमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः।
शिव शक्त्योश्च चिन्हस्य मेलनं लिङ्ग मुच्यते॥" *(शि0पु0विश्वे0सं0)*

"अर्थात् शिव शक्ति के चिन्ह का सम्मेलन ही लिङ्ग है। लिङ्ग में विश्व प्रसूति कर्त्ता की अर्चा करनी चाहिये। यह परमार्थ शिव तत्त्व का गमक, बोधक होने से भी लिङ्ग कहलाता है। प्रणव भी भगवान का ज्ञापक होने से लिङ्ग कहा गया है, प्रणव में अकार शिवलिङ्ग है, उकार जलहरी है, मकार शिव शक्ति का सम्मिलित रूप समझ लिया जाता है। पञ्चाक्षर उसका स्थूल रूप है– **"तदेवलिङ्ग प्रथमं प्रणवं सर्व कामिकम्।**

सूक्ष्म प्रणव रूपं हि सूक्ष्म रूपं तु निष्कलम्।
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पञ्चाक्षर मुच्यते॥" *(शि0पु0 विश्वे0सं0)*

माघ कृष्ण चतुर्दशी महाशिवरात्रि के दिन कोटि सूर्य के समान परम तेजोमय शिव लिङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ है। शिव पुराण में लिखा है कि एकमात्र शिव ही निर्गुण-निराकार होने से निष्कल हैं। शेष सभी सगुण विग्रह होने से सकल कहे जाते हैं। निष्कल होने से ही शिव का निराकार (आकाशविशेष शून्य) लिङ्ग ही पूज्य होता है, सकल होने से ही अन्य देवताओं का साकार विग्रह पूज्य होता है। शिव सकल, निष्कल दोनों ही हैं अतः इनका निराकार लिङ्ग और साकार स्वरूप दोनों हीं पूज्य होते हैं, परंतु साकार मूर्ति के पूजन से लिङ्गमूर्ति का पूजन विशेष मान्यता रखता है। दूसरे देवता साक्षात् निष्कल ब्रह्म रूप नहीं हैं। अतएव निराकार लिङ्ग रूप में उनकी आराधना नहीं होती।

शिव पुराण में निष्कल स्तम्भ रूप में ब्रह्मा-विष्णु का विवाद मिटाने के लिये शिव का प्रादुर्भाव वर्णित है। श्री शिवलिङ्ग ही से समस्त विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और अंत में सबका उन्हीं में लय होता है। सबके आश्रय होने से और सबके लय

का अधिष्ठान होने से भगवान शिव ही लिङ्ग कहलाते हैं। अतः सब सृष्टि का आधार ही शिव-लिङ्ग है। इसी कारण सर्वत्र लिङ्ग पूजा पाई जाय यह ठीक ही है। अव्यक्त तत्व लिङ्ग है। माया द्वारा एक ही परब्रह्म परमात्मा से ब्रह्माण्ड रूप लिङ्ग का प्रादुर्भाव होता है। चौबीस प्रकृति-विकृति, पच्चीसवाँ पुरुष, छब्बीसवाँ ईश्वर यह सब कुछ लिङ्ग ही है। उसी से ब्रह्म, विष्णु, रुद्र का आविर्भाव होता है। प्रकृति के सत्, रज, तम इन तीनों गुणों से त्रिकोण योनि बनती है। प्रकृति में स्थित निर्विकार बोध रूप शिव तत्व ही लिङ्ग है। इसी को विश्व तैजस प्राज्ञ विराट हिरण्यगर्भ-वैश्वानर, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ऋक, साम यजु, परा पश्यन्ती मध्यमा आदि विभूतियाँ हैं जो त्रिकोण पीठ में तुरीय, प्रणव, परा, वाक् स्वरूप लिङ्ग रूप में सन्निहित हैं।

अ, उ, म इस प्रणवात्मक त्रिकोण में अर्धमात्रा स्वरूप लिङ्ग है। परमेश्वर समष्टि-व्यष्टि लिङ्ग रूप से प्रत्येक योनि में प्रतिष्ठित होकर पंच्च कोशात्मक देहों को उत्पन्न करता है—

"अधि तिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः।
देहं पञ्चविधं येन तमीशानं पुरातनम्॥" *(लिंग पु० 2/18/39)*

स्कन्द पुराण के अनुसार लिंग पूजन के बिना महान अमंगल होता है और उसके पूजन से मुक्ति, भुक्ति, सब कुछ मिलती है—

"बिना लिङ्गार्चनंयस्यकालोगच्छति नित्यशः।
महा हानि र्भवेत तस्य दुर्गतस्य दुरात्मनः॥
एकतः सर्व दानानि वृतानि विविधानि चातीर्थानि नियमा यज्ञालिङ्गाराधन मेकतः॥
भुक्ति मुक्ति प्रदं लिङ्गं विविधासन्निवारणम्॥

शिव-शक्ति के सहवास में अवकाश न मिलने से शुक्राचार्य ने उन्हें शाप दिया कि तुम योनिस्थ लिङ्ग के रूप में पूजित होगे। एक बार शंकर दिगम्बर वेष से स्वलिङ्ग अपने हस्त में लेकर दारुक बन में गये। उन्हें देखकर ऋषि पत्नियाँ मोहित हो गयीं, यह देखकर ऋषियों ने शंकर को शाप दिया कि तुम्हारे लिङ्ग का पतन हो जाय। ऐसा ही हुआ, किंतु लिङ्ग के पृथ्वी पर गिरते ही वह प्रज्वलित होकर अपने तेज से लोकों को भस्म करने लगा। अन्त में शिवा ने उसे योनि में स्थापित किया, और सब ऋषियों और देवताओं ने उसकी पूजा की। यहाँ लिङ्ग-योनि दिव्य प्रकृति और परम पुरुष ही हैं। शिव-शक्ति रूप लिङ्ग-योनि को प्राकृत स्त्री-पुरुष के समान चर्मखण्ड मूत्रेन्द्रिय मान लेना बड़ा अपराध होगा। वहीं यह भी कथा है कि मुनियों के शाप से गिरा हुआ शिव-लिङ्ग अग्नि के समान जाज्वल्य मान होकर भूमि, स्वर्ग एवं पाताल में व्याप्त हो गया। फिर सभी लोग बड़े दुःखी हुए, ब्रह्माजी ने कहा कि

"गिरिजा की प्रार्थना करो, वही योनिरूप से परम ज्योतिर्मय लिङ्ग को धारण कर सकती हैं, फिर सभी देवताओं, ऋषियों जब आराधना की तब भगवान और गिरिजा दोनों प्रसन्न हो गये। और गिरिजा में शिव की प्रतिष्ठा हुई। क्या साधारण लिङ्ग गिरकर अग्निमय होकर सर्वलोक में घूमना बन सकता है? और विष्णु, राम, कृष्ण तथा सभी देव, मुनि क्या केवल साधारण ालिङ्ग-योनि की पूजा कर सकते थे? यही बात थी तो कृष्ण की उपमन्यु के यहाँ जाकर दीक्षा पूर्वक घोर तपस्या करने की क्या आवश्यकता थी?

शिव वल्लभा पार्वती बाणरूपा कही गयी है और योनि-रूपा का अर्थ ही वाणरूपा है। 'बाण' शब्द पाँच संख्या का बोधक होता है, पंच्चसर, अभिप्राय से काम में, पंच्चमुख के अभिप्राय से शिव में, पंच्चतत्वात्मिक दृष्टि से पार्वती में 'बाण' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे विद्युत्पुञ्ज पंचतत्व में व्याप्त हुए भी जल और पर्वत श्रेणी में अधिकता से रहता है, वैसे ही पार्वती बाण रूपा हुई अर्थात् पर्वत श्रेणी रूपा हुईं, और उन्हीं में वह तेजोमय लिङ्ग समा गया। विद्युत पुंज यदि अपनी योनि पृथ्वी या जल में पड़े तो स्थिर होता है, अन्यथा वृक्ष, मनुष्य सबको भस्म करता है, यही बात शिव ने कही है—

"पार्वती च बिना नान्या लिङ्ग धारयितुं क्षमा।
तयाधृतं च मल्लिङ्गद्रुतं शान्ति गमिष्यति॥"

"अर्थात् पार्वती के बिना कोई इसे धारण नहीं कर सकता, उनके धारण से वह शीघ्र ही शान्त हो जायेगा।"

"सतश्च योनि मसतश्च०"। *(यजु०)* **"यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकः॥"** *(श्वेता०)* **"यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः"** *(श्वेता)* **"तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः"** *(यजु०)* इत्यादि मंत्रों में योनि का अर्थ मूत्रेन्द्रिय ही है, यह कहना अज्ञता ही है। श्री विष्णु आदि देवाधिदेवों का भी पूज्य यह योनि प्रतिष्ठित लिङ्ग प्राकृत वस्तु कथमपि नहीं हो सकता। अव्यक्त का लिङ्ग (व्यक्त ब्रह्माण्ड) भृगु (प्रकृति) के आकर्षण-विकर्षण विशेष के तारतम्य से द्यावापृथ्वी रूप में दो टूक हो गया। **"वायुरापश्च द्रुमा इत्येते भृगवः"** *(गोपथ, पूर्व० 2/8)* **शम्भोः पापातभुवि लिङ्ग मिदं प्रसिद्धमशापेन तेन च भृगोर्विपने गतस्या"** श्री शंकर जी ने भी विश्वेश्वर लिङ्ग की प्रतिष्ठापना और पूजा की है—

"ब्रह्मणा विष्णुनावापि रुद्रेणान्येन केनवा।
लिङ्ग प्रतिष्ठा मुत्सृज्य क्रियते स्वपदस्थितिः॥
किमन्यदिह वक्तव्यं प्रतिष्ठां प्रति कारणम्।
प्रतिष्ठितं शिवेनापि लिङ्ग वैश्वेश्वरं यतः॥"

"लोकं लिङ्गात्मकं ज्ञात्वालिङ्गे योऽर्चयते हि माम्।
नमे तस्मात प्रियतरः प्रियो वा विद्यते क्वचित॥"

शंकरजी कहते हैं—जो संसार के मूल कारण महाचैतन्य को और लोक को लिङ्गात्मक जानकर लिङ्ग पूजा करता है, मुझे उससे प्रिय अन्य कोई नहीं।"



❋ रुद्राक्ष की महत्ता, धारण विधि और माहात्म्य ❋

(रुद्राक्ष जावालोपनिषद से)

"रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रत योज्ज्वलम्।
प्रति योगि विनिर्मुक्तं शिवमात्रपदं भजे॥"

"रुद्राक्ष-उपनिषद् से जानने योग्य, महारुद्र रूप से उज्ज्वल, प्रतियोगी रहित, शिव पदवाच्य तत्व की मैं शरण लेता हूँ।"

भुसुण्ड नाम के ऋषि ने कालाग्नि रुद्र से पूछा कि रुद्राक्ष की उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा इसके धारण करने से क्या फल मिलता है, इसे आप लोकहित के लिये कृपा कर कहिए। कालाग्नि रुद्र भगवान ने कहा कि "त्रिपुरासुर नामक दैत्य का नाश करने के लिये देवताओं के हजारों वर्ष तक मैंने अपनी आँखें खुली रखीं, उस समय मेरी आँखों से जल की बूँदें पृथ्वी पर गिर पड़ीं। वे आँसू की बूँदें भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये स्थावरतत्व को प्राप्त कर महारुद्राक्ष नामक वृक्ष हो गये। **"रुद्रस्य अक्षि रुद्राक्षः; अक्ष्युपलिक्षितं् अश्रु तज्ज्न्यः वृक्षः"**

रुद्राक्ष चार वर्ण का होता है-श्वेत, रक्तपीत और कृष्ण। इसी प्रकार वर्णभेद से रुद्राक्ष धारण करने की विधि है। ब्राह्मण को श्वेतवर्ण का, क्षत्रीय को रक्तवर्ण का, वैश्य को पीत वर्ण का और शूद्र को कृष्ण वर्ण का रुद्राक्ष धारण करने की विधि है।

"सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवा ज्ञया धार्याः सदैव रुद्राक्षः"

(शि0पु0विश्वे0सं0 25 147)

"सभी आश्रमों एवं वर्णो तथा स्त्री एवं शूद्रों को सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिए, यह शिवजी की आज्ञा है।"

रुद्राक्ष धारण करने से भक्तों के रात-दिन के पाप नष्ट होते हैं, उनका दर्शन करने से लाखों गुना पुण्य मिलता है। जो मनुष्य रुद्राक्ष धारण कर रुद्राक्ष की माला से इष्टदेव का जप करता है उसे अनन्त गुने पुण्य की प्राप्ति होती है।

शिखा में एक रुद्राक्ष, सिर पर तीन, गले में छत्तीस, दोनों बाहुओं में सोल-सोलह, कलाई में बारह और कन्धे पर पचास दाने धारण करे और एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला का यज्ञोपवीत बनावे। दो, पाँच या सात लड़ों की माला कंठ प्रदेश में धारण करे। मुकुट में कुण्डल में, कर्णफूल में तथा हार में भी रुद्राक्ष धारण करे। बाजूबन्द में, कड़े में, विशेष करधनी में सोते-जागते, खाते-पीते सर्वदा मनुष्य को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। तीन सौ रुद्राक्ष धारण करना अधम, पाँच सौ मध्यम और एक हजार रुद्राक्ष धारण करना उत्तम है—बुद्धिमान पुरुष निम्नलिखित मंत्र से मस्तक में—

"ॐ ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणः पतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥"

इस मंत्र से कंठ में—**"ॐ तत्पुरुषाय विद्लहे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥"**

इस मंत्र से गले, हृदय तथा हाथों में—**"ॐ अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः ।**

सर्वेभ्यः सर्व सर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥"

शास्त्रों में रुद्राक्ष के एक मुख से चौदह मुख तक का वर्णन प्रशस्त है। रुद्राक्ष दो जाति के होते हैं—रुद्राक्ष तथा भद्राक्ष।

"रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षः स्यान्महाफलम्" *(देवी भाग0 11/7/6)* रुद्राक्ष के मध्य में भद्राक्ष का धारण करना भी महान फलदायक होता है। रुद्राक्ष में स्वयं छिद्र होता है वही उत्तम है **"स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादि होत्तमम् यन्तु पैरुष यत्नेन कृतं तन्मध्यं भवेत॥"** *(रुद्राक्ष जाबालो0 12-13)* पुरुष प्रयत्न से किया गया छिद्र वाला रुद्राक्ष मध्यम कोटि का माना गया है। भुसुण्ड ऋषी के पूछने पर

(1) महाकालाग्निरुद्र भगवान ने बताया कि एक मुख वाला रुद्राक्ष पर ब्रह्म स्वरूप हैं, **एकवक्त्रं तुरुद्राक्ष परतत्व स्वरूपकम्** साक्षात परतत्व प्रकाशक भी है, जितेन्द्रिय पुरुष इसको धारण कर परब्रह्म में लीन हो जाता है और ब्रह्म-हत्या का नाश करने वाला है **"ब्रह्महत्या व्यपोहति"** *(दे0भाग0 11/4)* इसको धारण काने का मंत्र **'ॐ ह्री नमः'** है।

(2) दो मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात् अर्धनारीश्वर है, इसको धारण करने से शिव-पार्वती प्रसन्न हो जाते हैं। **'ॐ नमः'** इसके धारण करने का मंत्र है। साक्षात् अर्धनारीश्वर—**'द्विवक्त्रं तुमुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम्॥'**

(3) "त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रयस्वरूपकम्"

तीन मुख वाला त्रिअग्निस्वरूप (गार्हयत्य, आह्वनीय और दक्षिणाग्नि) है। इसको धारण करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, अग्निदेव सदा प्रसन्न रहते हैं, इसे

धारण करने का मंत्र '**ॐ क्लीं नमः**' है।

(4) "चतुर्मखंड रुद्राक्षं चतुर्वक्त्र स्वरूपकम्"

चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्माजी का स्वरूप है, इसके धारण से संतति की प्राप्ति होती है। '**ॐ ह्री नमः**' यह इसके धारण करने का मंत्र है। इसके धारण करने वाले पर ब्रह्मा सदैव प्रसन्न रहते हैं।

(5) "पञ्चवक्त्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्मस्वरूपकम्"

पंचमुखी रुद्राक्ष पंच देवों (विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी) का स्वरूप है अथवा पञ्चमुख भगवान शिव जो स्वयं ब्रह्मरूप हैं नर हत्या से भी मुक्त कर देते हैं, इसके धारण का मंत्र '**ॐ ह्रींनमः**' है।

(6) "षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधि दैवतम्"

छः मुख वाला रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वामी का स्वरूप है, इसके धारण करने से महान ऐश्वर्य और उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है '**ॐ ह्रीं नमः**' इस मंत्र से इसे धारण करनाचाहिए।

(7) "सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः"

सप्तमुखी रुद्राक्ष अनंग नाम वाला है, सप्त माला देवी का स्वरूप भी माना जाता है, इसके धारण करने से अटूट लक्ष्मी की प्राप्ति तथा स्वर्ण चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है, इसके धारण का मंत्र '**ॐ हुं नमः**' है।

(8) "अष्टवक्त्रो महादेवः साक्षी देवो विनायकः"

अष्टमुखी रुद्राक्ष साक्षात् साक्षी विनायक है, और अष्ट मातृत्व का स्वरूप है तथा आठ वसु देवताओं को तथा गंगाजी को प्रिय है इसके धारण से सत्यवादी अष्ट वसु प्रसन्न होते हैं तथा पंच्च पातकों का विनाश होता है '**ॐ हुंनमः**' मंत्र है।

(9) "नववक्त्रं तुरुद्राक्षं नवशक्त्याधि दैवतम्। तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नव शक्तयः॥"

नव मुखिरुद्राक्ष नवदुर्गा का प्रतीक है इसके धारण करने से नवदुर्गाएँ प्रसन्न होती हैं, इसको '**ॐ ह्रीं हुं नमः**' इस मंत्र से बायें भुजदण्ड पर धारण करना चाहिए।

(10) "दश वक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद् देवो जनार्दनः"

दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात भगवान जनार्दन हैं, कोई यम का स्वरूप बताते हैं। '**ॐ ह्रीं नमः**' इस मंत्र से धारण करने पर साधक की पूर्णायु होती है और वह शान्ति प्राप्त करता है।

(11) 'एको दशमुखं त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम्'

ग्यारहमुख वाला रुद्राक्ष एकादस रुद्र का स्वरूप है इसे धारण करने वाले को वह तद्रूप करने वाला और सौभाग्य प्राप्त करने वाला है। '**ॐ ह्री हुं नमः**' इस मंत्र से धारण करे, धारक साक्षात रुद्र रूप होकर सर्वत्र-विजयी होता है।

(12) "रुद्राक्षं द्वादश मुखं महाविष्णु स्वरूपकम्। द्वादशादित्य रूपं च विभर्त्येवहितत्परम्॥"

बारह मुख वाला रुद्राक्ष महाविष्णु का स्वरूप है, वह बारह आदित्य के समान स्वरूप प्रदान करने वाला है '**ॐक्रौंक्षौंरौं नमः**' इस मंत्र से इसे कान में धारण करें।

(13) "त्रयोदश मुखं त्वक्षं कामदं सिद्धिदं शुभम्। तस्य धारण मात्रेण कामदेवः प्रसीदति॥"

त्रयोदश मुखी रुद्राक्ष धारण करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है, इच्छित फल सिद्धि प्रदान करने वाला है '**ॐ ह्रीं नमः**' इस मन्त्र से धारण करना चाहिए।

(14) "चतुर्दशमुखं त्वक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम्। सर्व व्याधिहरं चैव सर्वदा रोग्य माप्नुयात्॥"

चतुर्मुखी रुद्राक्ष रुद्र की अक्षि से उत्पन्न हुआ वह भगवान शिव का नेत्र स्वरूप है, सर्वत्र व्याधि को हरने वाला तथा सदा आरोग्य प्रदान करने वाला है। '**ॐ नमः**' इस मंत्र से धारण करना चाहिये।

❋ रुद्राक्ष धारण करने में वर्जित पदार्थ ❋

रुद्राक्ष धारण करने वाले को निम्नलिखित पदार्थों का वर्जन = त्याग करना चाहिए-

"माघं मासं च लसुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः॥" *(रुद्राक्ष जावाल0 17)*

रुद्राक्ष धारण करने पर मद्य, माँस, लहसुन, प्याज, सहजन, लिसोडा और विडवराह = ग्राम्य शूकर इन पदार्थों का परित्याग करना चाहिए। और शुभ मुहूर्त में ही धारण करे—

"ग्रहणे विषुवे चैवमयने सक्रमेऽपि वा।
दर्शेषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च।
रुद्राक्ष धारणात सद्यः सर्व पावै र्विमुच्यते॥"

इसके ग्रहण के समय मेष, संक्रान्ति, उत्तरायण, अन्य संक्रान्ति, अमावस्या, पूर्णिमा तथा पूर्ण दिनों में रुद्राक्ष धारण करने से तत्काल मनुष्य सर्व पापों से छूट जाता है। रुद्राक्ष का मूल, ब्रह्मा, विष्णु मध्य भाग और उसका मुख रुद्र हैं और उसके विन्दु सब देवता कहे गये हैं। भगवान कालाग्नि ने कहा कि "रुद्र के नयनों से उत्पन्न होने के कारण ही इनकी 'रुद्राक्ष' संज्ञा हुई है। भगवान सदाशिव संहार काल में संहार करके अपने संहार नेत्र को बन्द कर लेते हैं, उस नेत्रों से जो अश्रु टपक जाते हैं उनसे रुद्राक्ष के उत्पन्न होने के कारण उनका नाम 'रुद्राक्ष' प्रसिद्ध हुआ है। यह रुद्राक्ष राक्षसों का नाश करने वाला, तथा मृत्यु से तारने वाला है। इससे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

(श्री रुद्रभगवान की जय)

❋ महाशिवरात्रि व्रत ❋

"संतों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बानी।
जानूँ उसका भला भेद क्या मैं अज्ञानी॥" *(तुकाराम)*

महाशिवरात्रि व्रत के रहस्य को जानने के लिये यह आवश्यक है कि उसका पदच्छेद करके उसके अंगीभूत प्रत्येक शब्द पर विचार किया जाय। देखा जाय कि 'शिव' किसे कहते हैं, रात्रि क्या चीज है, और व्रत का क्या अर्थ है? साथ ही इसका साधन क्या है? और इसे करने से किस फल की प्राप्ति होती है? आदि।

'शिव' - वस्तुत: इन्हें जान लेनाही शिव का साक्षात्कार कर लेना है जो बहुत दूर की बात है, फिर भी साधारण ज्ञान के लिये इतना जान लेना आवश्यक है–

"शेते तिष्ठति सर्वं जगत् यस्मिन् सः शिवः शम्भुः विकार रहितः.....।"

"अर्थात् जिसमें सारा जगत शयन करता है, जो विकार रहित है वह 'शिव' है। अथवा जो अमंगल का ह्रास करते हैं वे ही सुखमय, मंगलरूप भगवान शिव हैं जो सारे जगत को अपने अन्दर लीन कर लेते हैं वे ही करुणा सागर भगवान शिव हैं। यही भगवान शिव वर्णनातीत होते हुए भी अनुभवगम्य है, यही आशुतोष भक्तों को अपनी गोद में रखते हैं। यही त्रिविध तापों को शमन करने वाले हैं, इन्हीं से समस्त विद्याएँ निकली हैं, ये ही वेद तथा प्रणव के उदगम हैं, इनकी महिमा का वर्णन करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है।

रात्रि—जो सुखादि प्रदान करती है वह 'रात्रि' है, ऋग्वेद रात्रि सूत्र के यूप मंत्रों में रात्रि की बड़ी प्रशंसा की गई है–

"उपमा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय॥"

(ऋग्वेद सं० रा० सू० 10।127।7)

"हे रात्रे! अतिक्लिष्ट जो तम है वह हमारे पास न आवे-आदि।" रात्रि सदा आनन्ददायिनी है। अत: सबकी आश्रयदात्री होने के कारण उसकी स्तुति की गई है। वह रात्रि जो आनंद देने वाली है। **"शिवस्यप्रिया रात्रियस्मिन् व्रते अङ्गत्वेन विहित तदव्रतं शिव रात्र्याख्यम"** जिसका शिव के नाम के साथ विशेष सम्बन्ध हो। ऐसी रात्रिः—ईशान संहिता में लिखा है–

"माघकृष्ण चतुर्दश्यामादि देवो महानिशि।
शिव लिङ्गतयोद्भूतः कोटि सूर्य समप्रभः॥"
तत्काल व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रि व्रते तिथिः॥"

अर्थात् माघमास की कृष्ण चतुर्दशी बहुधा फाल्गुन मास में ही पड़ती है, उसी चतुर्दशी महानिशा में आदि देव महादेव कोटि सूर्य के समान दीप्ति सम्पन्न हो शिवलिंग के रूप में आविर्भूत हुए थे, अतएव शिवरात्रि व्रत में उसी महानिशा

व्यापिनी चतुर्दशी का ग्रहण करना चाहिये। ईशान संहिता के मत से शिवजी की प्रथम लिङ्गमूर्ति उक्त तिथि की महानिशा में पृथिवी से पहले पहल आविर्भूत हुई थी, इसी के उपलक्ष्य में इस व्रत की उत्पत्ति बताई जाती है, श्लोक का 'महानिशा' शब्द भी एक विशिष्ट अर्थ का ज्ञापक है, महर्षि देवल कहते हैं—"**महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः॥**" चतुर्दशी तिथि युक्त चार पहर रात्रि के मध्यवर्ती दो पहरों में पहिले की अंतिम और दूसरे की आदि-इन दो घटिकाओं की (घड़ी) ही 'महानिशा' संज्ञा है।

व्रत—व्रत शब्द के निर्वचन से हम समझ सकते हैं कि जीवन में जो वरणीय है—बार-बार अनुष्ठान के द्वारा मन, वचन, कर्म से जो प्राप्त करने योग्य है वही 'व्रत' है अमरकोष में 'व्रत' का अर्थ नियम है। पुराणों में व्रत धर्म का वाचक है, थोड़े में यों समझिये कि जिस कर्म द्वारा भगवान का सानिध्य होता है वही 'व्रत' है। अतः यह असाधारण धर्म का वाचक है।

'क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
देव पूजा ग्निहृवनं संतोषः स्तेय वर्जनम्॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधास्थितः॥ *(भविष्य पुराण)*

अब यह देखना है कि 'उपवास' क्या है? जीवात्मा का शिव के समीप वास ही 'उपवास' कहा जाता है—

"उपसमीपे यो वासः जीवात्म परमात्मनो।
उपवासः स विज्ञेयोन तु कायस्य शोषणम्॥" *(वराहोपनिषद्)* अथवा
"उपा वृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स पिज्ञेयः सर्वभोग विवर्जितः॥" *(भविष्य पुराण)*

देवी पुराण में कहा गया है "भगवान शिव का ध्यान, उनका जप, स्नान, भगवान की कथा श्रवणादि, इन गुणों के साथ वास अर्थात् इन क्रियाओं को करते हुए काल-यापन करना ही उपवास कर्त्ता का लक्षण है, व्रती के अन्दर ये लक्षण अवश्य होने चाहिये, व्रती के लिये सब प्रकार के विषय भोगों का वर्जन आवश्यक है, इस प्रकार 'व्रत' और 'उपवास' प्रायः एक ही चीज़ के दो नाम हैं। "**आहार निवृत्ति रूपवासः इति उपवासः॥**" निराहार रहने को उपवास कहते हैं।"

जागरण—मुमुक्षु जीवात्मा के लिये 'जागरण' आवश्यक है—

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥" *(गीता० 2 169)*

"सर्व प्राणियों की अर्थात् विषयासक्त संसारी जनों की जो निशा है, उसमें संयमी जगे रहे हैं। आत्मदर्शन विमुख प्राणिगण जिस जगद्वस्था में जागते हैं, मनीषी आत्म दर्शन निरत योगी के लिये वह निशा है अतः सिद्ध है कि विलयासक्त जिसमें

निंद्रित है उसमें संयमी प्रबुद्ध है अतः शिवरात्रि में जागरण करना आवश्यक है स्कंदपुराण डंके की चोट कहता है–

"शिवं तु पूजयित्वा योजागर्ति च चतुर्दशीम्॥
मातुः पयोधररसं न पिवेत स कदाचन॥"

"जो शिव चतुर्दशी में शिव की पूजा करके जागता रहता है, उसको फिर कभी अपनी माता का दूध नहीं पीना पड़ता। अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

"सागरो यदि शुष्येत क्षीयेत हिमवानपि
मेरुमन्दर शैलाश्च श्री शैलो विन्ध्य एवच॥
चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्॥" *(स्कन्द पुराण)।*

"अर्थात् चाहे सागर सूख जाय, हिमालय भी क्षय को प्राप्त हो जाय, मन्दर, विन्ध्यादि पर्वत भी विचलित हो जायँ, पर शिव-व्रत कभी विचलित = निष्फल नहीं हो सकता।" इसका फल अवश्य मिलता है। शिव पूजा का अर्थ पुष्प चन्दन विल्वपत्र अर्पित कर शिवनाम का जप ध्यान करना एवं चित्त-वृत्ति का निरोध कर जीवात्मा का परमात्मा 'शिव' के साथ योग करना है।

"शिव-रात्रिव्रतं नाम सर्व पाप प्रणासनम्।
आचाण्डाल मनुष्याणां भुक्ति-मुक्ति प्रदायकम्॥"

महाशिवरात्रि व्रत के अधिकारी आचाण्डाल समस्त प्राणी हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते। इस व्रत कथा में कहा गया है कि एक बार कैलाश शिखर पर स्थित पार्वती ने शंकर से पूछा–

"कर्मणाकेन भगवन् व्रतेन तपसापिवा।
धर्मार्थकाम मोक्षणां हेतुस्त्वं परितुष्यति॥"

"अर्थात् हे भगवन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चर्तुवर्ग के तुम्हीं हेतु हो। साधना से संतुष्ट हो मनुष्य को तुम्हीं इसे प्रदान करते हो। अतएव यह जानने की इच्छा होती है कि किस कर्म, किस व्रत या किस प्रकार की तपस्या से तुम प्रसन्न होते हो?" इसके उत्तर में भगवान शंकर कहते हैं–

"फाल्गुने कृष्णपक्षस्य यातिथिः स्याच्चतुर्दशी।
तस्यां यातामसी रात्रिः सोच्यते शिव रात्रिका॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्॥
न स्नाने न वस्त्रेण धूपेन न चार्चया॥
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥"

"फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि के आश्रय कर जिस अन्धकार मयी रजनी का उदय होता है उसी को 'शिवरात्रि' कहते हैं, उस दिन जो उपवास करता है, वह निश्चय ही मुझे संतुष्ट करता है। उस दिन उपवास करने से मैं जैसा प्रसन्न

होता हूँ वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्प के अर्पण से भी नहीं होता।"

इस व्रत का उपवास ही प्रधान अंग है तथापि रात्रि के चार प्रहरों में चार बार पृथका-पृथक् पूजा का विधान भी है—

"दग्धे प्रथमे स्नानं दधा चैव द्वितीयके।
तृतीये तुतथाऽऽज्येन चतुर्थे मधुना तथा॥"

"प्रथम प्रहर में दुग्ध द्वारा शिव की ईशान-मूर्ति को, द्वितीय प्रहर में दधि द्वारा अघोर मूर्ति को, तृतीय में घृत द्वारा वामदेव मूर्ति को एवं चतुर्थ में मधु द्वारा सद्योजात-मूर्ति को स्नान कराकर उनका पूजन करना चाहिए।" प्रभात में विसर्जन के बाद व्रत कथा सुनकर अमावस्या को यह कहते हुए पारण करना चाहिए—

"संसार क्लेश दग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टि प्रदोभव॥"

हे ईश्वर मैं नित्य संसार की यातना से दग्ध हो रहा हूँ इस व्रत से तुम मुझ पर प्रसन्न होओ और संतुष्ट होकर मुझे ज्ञान दृष्टि प्रदान करो।"

इस व्रत से एक कथा और जुड़ी हुई है भगवान ने बताया कि एक व्याध वन में शिकार को गया, सारे दिन भूखा-प्यासा रहा, रात हो गई। एक विल्ब वृक्ष के ऊपर चढ़ गया, उसके अर्थात् वृक्ष के नीचे शिवलिंग था। रात्रि में एक वेल उससे स्पर्श करता हुआ शिवलिंग पर आ पड़ा। भूखा रहने से उपवास तो अनायास हो चुका था, बेल और लिंग पर स्वतः चढ़ गया। उसी को उसका व्रत मानकर उसका उद्धार हो गया। उसका आवागमन सदैव के लिये मिट गया। भगवान का प्यारा हो गया।



❋ श्री शिव-पूजन ❋

भगवान शिव की पूजा के समय शुद्ध आसन पर बैठकर पहले आचमन, पवित्री धारण, शरीर शुद्धि और आसन शुद्धि कर लेनी चाहिए, तत्पश्चात् पूजन सामिग्री को यथास्थान रखकर रक्षादीप प्रज्ज्वलित कर लेना तदनन्तर स्वस्ति पाठ करे। पूजा का संकल्प (सकाम) दाहिने हाथ में कुशत्रय, पुष्प, अक्षत, जल तथा द्रव्य रखकर इस प्रकार संकल्प करें—

"ॐ विष्णु र्विष्णुर्विष्णुः, अद्य...मम सर्वारिष्ट-निरसन पूर्णकर सर्वपापक्षयार्थ मनसोस्थित फल प्राप्तिपूर्वक श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थंश्री साम्बसदाशिव प्रीत्यर्थ भगवतः श्रीसाम्बसदाशिवस्य पूजनमहं करिष्ये। तटङ्गत्वेन कार्यस्य निर्विघ्नतया सिद्ध्यर्थं आदौ गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये।

निष्काम-"ॐ विष्णु र्विष्णु र्विष्णु:; अद्य....श्री साम्बसदाशिव प्रीत्यर्थ श्री भगवत्साम्बसदाशिव पूजन प्रहंकरिष्ये।

गणेश स्मरण

"गजाननं भूतगणादि सेवितं कपित्थजम्बूफल चारू भक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वर पाद पङ्कजम् ॥"
"विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुति यज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥"

गौरी स्मरण

"नमो देव्यै महादेव्यै शिवाये सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥"
"त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्त वीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः ॥"

उपलब्ध विविध उपचारों से गणपति-गौरी पूजनोपरान्त भगवान शंकर के विशिष्ट अनुग्रह की प्राप्ति के लिये उनके परिकर-परिच्छद एवं पार्षदों का भी पूजन किया जाता है, संक्षेप में पूजा, प्रार्थना, मंत्र उनके इस प्रकार हैं-

नन्दीश्वर पूजन

"आयं गौः पृश्निर क्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्श्वः ॥"
पूजन करके प्रार्थना-
"प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥"

वीरभद्र पूजन

"भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाभद्रं पश्येमाक्षमिर्य जत्राः।
स्थिरै रङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभि र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥"
इस मंत्र से पूजा करके फिर प्रार्थना-
"भद्रो नो अग्नि राहुतो भद्रारातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उतप्रशस्तयः ॥"

कार्तिकेय पूजन

"यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यनत्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षाहरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥"
इस मंत्र से पूजन करके फिर प्रार्थना-
"यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखां इव।
तत्र इन्द्रोवृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥"

कुबेर पूजन

"कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथादान्त्यनु पूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति॥"

पूजा करके प्रार्थना—

"वयꣳसोम व्रते तव मनस्त नूषु विभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि॥"

कीर्तिमुखपूजनः—"असवे स्वाहा, वसवे स्वाहा, विभुवे स्वाहा, विवस्वते स्वाहा, गणश्रिये स्वाहा, गणपतये स्वाहाऽभुवे स्वाहाऽधि पतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतयते स्वाहा॥" प्रार्थना-

"ओजश्व मेसहश्च मे आत्मा चमेतनूश्चमे शर्म च मेवर्म च मे अंगानि चमेऽस्थीनि नि चमे परूꣳषि चमे शरीराणि च भ आयुश्च मेजरा चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥"

सर्पपूजन

जलहरी में सर्प का आकार हो तो सर्प का पूजन कर पश्चात् शिव पूजन करें—

पार्षदों की पूजा के बाद हाथों में बिल्व पत्र और अक्षत लेकर भगवान शिव का ध्यान करें—

शिव ध्यान

"ध्यायेन्नित्यं महेशंरजतगिरिनिमं चारूचन्द्रावतसंरत्ला
कल्पो ज्वलागंपरशुमृग वराभीति हस्तं प्रसन्नं॥"
पद्मासीनं समन्तात स्तुतमम रगणै र्व्याघ्रकृत्तिं
वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्धं निखिलभयहरं पंच्चवक्यं त्रिनेत्रम्॥"
नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नपः। बाहुभ्यामुत ते नमः॥
श्री साम्ब शिवाय नमः। ध्यानर्थे विल्वपत्रं समर्पयामि॥"

ध्यान करके शिव पर विल्प पत्र चढ़ा दें।

आवाहन—"आगच्छ भगवन् देवस्थाने चात्र स्थिरो भव।
यावत् पूजां करिष्येऽहं तावत्त्वं संनिधौ भव॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

श्री साम्ब शिवाय नमः। आवाहनार्थे पुष्पं समर्पयामि॥" पुष्प चढ़ावें।

आसन—"अनेक रत्न संयुक्तं नानामणि गणान्वितम्।
इदं हेममयं दिव्यमासनं प्रतिगृहयताम्॥"
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्त्राभिचाक शीहि॥"

श्री साम्बशिवाय नमः। आसनार्थे विल्वपत्रं समर्पयामि॥"

आसन के लिये विल्प पत्र चढ़ावें।

पाद्य—"गङ्गोदकं निर्मलं च सर्व सौगन्ध्य संयुक्तम्।
पादप्रक्षालनार्थाय दन्तं मे प्रतिगृहयताम्॥"
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विमर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरू माऽसी: पुरुषं जगत॥"
श्री साम्ब शिवाय नमः। पादयो पाद्यं समर्पयामि॥"

जल चढ़ावें।

अर्घ्य—"गन्ध पुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया।
गृहाण भगवान् शम्भो प्रसन्त्रो वरदो भव॥"
शिवेन वचसा त्वा गिरिसाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्व मिज्जगदयक्ष्मऽसुमना असत्॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि॥"

(चन्दन, पुष्प, अक्षत युक्त, अर्घ्य समर्पण करें)

आचमन—"कपूरिण सुगन्धेन वासि तंस्वादु शीतलम्।
तोयमाचनीयार्थं गृहाण परमेश्वर"
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाज्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधरात्री: परासुव॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। आचमनीयं जलं समर्पयामि॥"

(कर्पूर से सुवासित शीतल जल चढ़ावें।)

स्नान—"मन्दाकिन्यास्तु यद् वारि सर्व पापहरं शुभम्।
तदिवं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृहयताम्॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमंगलः।
ये चैनऽरुद्रा अमितो दिक्षु श्रिता सहस्त्रशोऽवैषाऽहेडईमहे।"

**श्री साम्ब सदा शिव नमः। स्नानीयं जलं समर्पयामि॥
स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि॥"**

(स्नानीयव आचमनीय जल चढ़ावे)

दुग्ध स्नान—"कामधेनु समुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्।
पावनं यज्ञ हेतुश्च पयः स्नानाय गृहयताम्॥
पयः पृथिवीव्यां पय ओब्धीषुपयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु महयम्॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। पयः स्नानं समर्पयामि, पयः स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि, शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं

समर्पयामि ॥" (दूध से स्नान कराये, पुनः शुद्ध जल से स्नान कराये और आचमन के लिये जल चढ़ावें।)

दधि स्नान—"पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशि प्रभम्।
दध्यानीतं मयादेव स्नानार्थ प्रतिगृहयताम्।
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णो रश्वस्य वाजिनः।
सुरभिनोमुखा करत्प्रण आयूꣳषि तारिषत् ॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। दधि स्नानं समर्पयामि, दधि स्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि, शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ॥" (दही से स्नान करा कर शुद्ध जल से स्नान कराये तथा आचमन के लिये जल समर्पित करें।)

घृत स्नान—"नवनीत समुत्पन्नं सर्व संतोष कारकं।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थ प्रतिगृहयताम् ॥
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्बस्य धाम।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहा कृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। घृत स्नानं समर्पयामि, घृत स्नानान्ते शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि, शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ॥ (घृत से स्नान करा करके शुद्ध जल से स्नान करायें और पुनः आचमन के लिये जल चढ़ावें।)

मधु स्नान—"पुष्परेणु समुत्पन्नं सुस्वादु मधुरं मधु।
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिग्रह्यताम् ॥
मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधी ॥
मधुनक्तमुतोष सोम धुपत्यार्थिवँ; रजः। मधु द्यौरस्तुनः पिता ॥
मधु मान्नो वनस्पति र्मधमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भक्न्तुनः ॥"

श्री साम्ब सदाशिव नमः। मधु स्नान समर्पयामि, मधुस्नानान्ते शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि, शुद्धोदक स्नानान्ते, आचमनीयं जलं समर्पयामि। (मधु से स्नान कराकर शुद्ध जल से स्नान करावे तथा आचमन के लिये जल समर्पित करे)

शर्करा स्नान—"इक्षुसार समुद्भूता शर्करां पुष्टिदां शुभाम्।
मलायहारिकां दिव्यां स्नानार्थं प्रतिगृहयताम् ॥"

अपाꣳरसमुद्वयसꣳसूर्ये सन्तꣳसमाहितम्। अपाद् रसस्य वो रसस्तं वो गृहणाम्युत्तम मुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टां गृहणाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। शर्करा स्नानं समर्पयामि, शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि, शुद्धोदक स्नानो आचमनीयं जलं समर्पयामि ॥
(शर्करा से स्नानकर शुद्ध जल से स्नान कराये तथा आचमन के लिये जल चढ़ावें।)

पञ्चामृत स्नान—"पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करान्वितम्।
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थ प्रति गृहयताम्॥
पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रो तसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥

श्री साम्ब शिवाय नमः। पञ्चामृत स्नानं समर्पयामि। पञ्चामृत स्नानान्ते शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि, शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि॥" (पञ्चामृत से स्नान कराकर शुद्ध जल से स्नान कराये तथा आचमन के लिये जल चढ़ावे)।

गन्धोदक स्नान — (केसर को चन्दन से घिस कर पीला द्रव्य बना ले और इस गन्धोदक से स्नान करावे)

मलयाचल सम्भूत चन्दनेन विमिश्रतम्
इदं गन्धोदक स्नानं कुङ्कुमाक्तं नु गृह्यताम्
अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। गन्धोदक स्नानं समर्पयामि, गन्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि॥

(गन्धोदक से स्नान कराकर आचमन के लिये जल चढ़ावें)

शुद्धोदक स्नान—शुद्धं यत् सलिलं दिव्यं गंगाजल समं स्मृतम्।
समर्पितं मया भक्त्या शुद्ध स्नानाय गृहयताम्॥
शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः।
श्वेतः श्वेताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा माम।
अवलिप्ता रौद्रा नमो रूपाः पार्जन्याः॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि॥ (शुद्ध जल से स्नान करावे, स्नान के बाद आचमन के लिये जल चढ़ावें।)

अभिषेक = शुद्ध जल गंगाजल अथवा दुग्धादि से निम्न मंत्रों का पाठ करते हुए शिवलिंग का अभिषेक कर—

"नमस्ते रुदमन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यायुतते नमः॥
याते रुद्र शिवातनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमयागिरिशन्ताभिचाकशीहि॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विमर्ष्यस्तवे॥
शिवां गिरित्र तां कुरूमा हिꣳसीः पुरुषं जगत॥
शिवेन वचसात्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्व मिज्जगद यक्ष्मꣳसुमना असत॥

अध्यवोच दधि वक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वांश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव॥
असौ यस्ताभ्रो अरुण उत बभ्रुः सुमंगल।
ये चैनꣳरुद्रा अभितो दिक्षुश्रिता सहस्त्रशोऽवैषाꣳहेडईमहे॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपाअदृश्रन्नु दृश्रन्नुदहार्यः सदृष्टो मृडयाति नः॥
नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्याक्षाय मीढुषे।
अथोये अस्य सत्वानोऽहंतेभ्योऽकरं नमः॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो रात्योर्जर्ज्याम्।
याश्चते हस्त इषवः पराताभगवो वप॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशष्यो वाणवाँरहत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्थ निषङ्गधि॥
याते हेतिर्मीढुष्टम हस्तेवभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमय क्ष्मया परिभुज॥
परिते धन्वनो हेतिर स्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो यइषुधिस्तवारे असमन्त्रि धेहि तम्॥
अवतत्य धनुष्ट्वꣳसहस्त्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमनाभव॥
नमस्त आयुधाया नातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वनो॥
मानो महान्तयुत मानो अर्भकंमान उक्षन्त भुतमानउक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मानः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।
मा नरत्तो के तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः।
मानो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥"

अभिषेक के अनन्तर शुद्धोदक स्नान कराये। तत्पश्चात् "ॐ द्यौ शान्तिः इत्यादि शान्तिक" मन्त्रों का पाठ करते हुए शान्याभिषेक करना चाहिए। तदनन्तर भगवान को आचमन कराकर उत्तरांग पूजन करे।

वस्त्र

"शीतवातोष्ण संत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालंकारणं वस्त्रं धृत्वा शान्तिं प्रयच्छमे॥
असौ योऽवसर्पतिनीलग्रीवो बिलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रान्नदृश्रन्नुदहार्यः सदृष्टोमृऽयातिनः॥"

श्री शाम्ब शिवाय नमः। वस्त्रं समर्पयामि, वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि॥ वस्त्र चढ़ावें आचमन के लिये जल चढ़ावें।

उपवस्त्र—

"उपवस्त्रं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने। भक्त्या समर्पितं देव प्रसीद परमेश्वर॥" श्री साम्ब शिवाय नमः। उपवस्त्रं समर्पयामि, उपवस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। उपवस्त्र चढ़ावें। आचमन के लिये जल चढ़ावें।

यज्ञोपवीत—

"नवभिस्तन्तु भिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयं। उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥ नमस्तु नीलग्रीवाय सहस्त्राक्षाय मीढुषे। अथो येअस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः॥" **श्री साम्ब शिवाय नमः। यज्ञोपवीतं समर्पयामि, यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।** (यज्ञोपवीत के बाद जल चढ़ावें)

चन्दन—

"श्रीखंड चन्दनं दिव्यं गन्धाद्यं सुमनोहारम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृहयताम॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। गन्धनुलेपनं समर्पयामि।** (चन्दन उपलेषित करें)

सुगन्धि द्रव्य—

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः‸ सुगन्धि द्रव्यं समर्पयामि॥** (सुगन्धित द्रव्य चढ़ावें)

अक्षत—

"अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कु माक्ताः सुशोभित। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। अक्षताम् समर्पयामि॥** (कुङ्कुम मुक्त अक्षत चढ़ावे)

पुष्पमाला—

"माल्यादीनि सुगन्धीन मालत्यादीनि भक्तितः! मया हृतानि पुष्पाणि ग्रहाण परमेश्वर॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। पुष्प मालां समर्पयामि॥** (पुष्प एवं पुष्प-माला चढ़ावें)

विल्वपत्र—

"त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधा युतम्। त्रिजन्मपापसहारं विल्वपत्रं शिवार्पणम्॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। विल्वपत्राणि समर्पयामि॥** (विल्वपत्र समर्पित करें)

दूर्वा—

"दूर्वाङ्कुरान् सुहरितान मृतान मंगल प्रदान। आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण

परमेश्वर॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि।** (दूर्वाङ्कुर चढ़ावें)

शमी—

"अमंगलानां च शमनीं शमनीं दुष्टकृतस्य च। दुःस्वप्न नाशिनीं धन्यामर्पयेऽहं शमीशुंभाम्॥ **श्री शम्ब शिवाय नमः। शमी पत्राणि समर्पयामि॥** (शमी पत्र चढ़ावें)

आभूषण—

"बज्रमाणिक्यवैदूर्मयुक्ता विद्रुम मण्डितम्। पुष्पराग समायुक्तं भूषणं प्रतिगृहयताम्॥" **श्री साम्ब शिवाय नः। रत्नाभूषणं समर्पयामि॥** (रत्नाभूषण समर्पित करें)

परिमल द्रव्य—

"दिव्यगन्ध समायुक्तं नाना परिमलान्वितम्। गन्ध द्रव्यमिदं भक्त्या दत्तं स्वीकुरू शोभनम्॥" **श्री साम्ब शिवाय नमः। नानापरिमल द्रव्यानां समर्पयामि।** (परिमल द्रव्य चढ़ावें)

धूप—

"वनस्पति रसोद्भूतो गन्धाढयो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्व देवानां धूपोऽयं प्रतिगृहयताम्॥ **श्री साम्ब शिवाय नम्। धूप माघ्रापयामि।** (धूप आघ्रापित करें)

दीप—

"साज्यं च वर्ति संयुक्तं वह्निना योजितं मया। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। दीपं दर्शयामि॥** (दीप दिखाये और हाथ धोले)

नैवेद्य—

'शर्कराखण्ड खाद्यानि दधिक्षीर घृतानि च। आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रति गृहयताम्॥" **श्री साम्ब शिवाय नमः। नैवेद्यं निवेदयामि।** नैवेद्यान्ते ध्यानम् ध्यानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। (नैवेद्य निवेदित करें, तदनन्तर भगवान का ध्यान करके आचमन के लिये जल चढ़ावें)

आचमनीय—

"आचमनीयं उत्तरापोऽशनं मुख प्रक्षालनार्थं हस्त प्रक्षालनार्थं च जलं समर्पयामि। (जल चढ़ावें)

ऋतु फल—

"इदं फलं मया देव स्थापितं पुर तस्तव। तेन ये सफला वाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। ऋतुफलं निवेदयामि। मध्ये आचमनीयं जलं समर्पयामि।** (ऋतु फल चढ़ायें, आचमनीय जल चढ़ायें)

करोद्धर्तन—

"सिंच्यति परि षिच्चन्तु सिज्जन्ति पुनन्ति च। सुरायै बभ्रूवै मदे किन्त्वो वदति किन्तः॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। करो द्वर्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि।** (चन्दन का अनुलेपन करें)

ताम्बूल—

"पूगीफलं महदिव्यं नागवल्ली दलैर्युतम्। एलाल वङ्गसंयुक्तं ताम्बूलं प्रति गृहयताम्॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। मुख वासार्थे ताम्बूलं समर्पयामि।** (इलायची, लोंग, सुपारी के साथ पान समर्पित करें)

दक्षिणा—

"हिरण्यगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्त पुण्य फलदमतः शान्तिं प्रयच्छमे। यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्वं याश्च दक्षिणा। त्वदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। कृताया पूजायाः सादगुण्यार्थे द्रव्य दक्षिणां समर्पियामि।** (द्रव्य दक्षिणा समर्पित करें)

आरती—

"कदली गर्भ सम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितं। आरार्ति कुर्वे पश्य मां वरदो भव॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। आरर्तिक्यं समर्पयामि॥** (कर्पूर से आरती करे, आरती के बाद जल गिरायें, फूल चढ़ायें, हाथ धो लें)

प्रदक्षिणा—

"यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे॥ **श्री साम्ब शिवाय नमः। प्रदक्षिणां समर्पयामि॥** (प्रदक्षिणा करें)

मन्त्र पुष्पांजलि—

श्रद्धया सिवतया भक्त्या हार्द प्रेमणा समर्पितः। **श्री साम्ब शिवायः नमः। मन्त्र पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि॥** (मंत्र पुष्पांजलि समर्पित करें, साष्टांग प्रणाम, पूजन कर्म शिवार्पण करें)

"नमः सर्व हितार्थाय जगदाधार हेतवे।
साष्टांगो ऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मयाकृतः॥
पापोऽहं पाप कर्माहं पापात्मा पाप सम्भवः।
त्राहि मां पार्वती नाथ सर्वपाप हरो भव॥"

श्री साम्ब शिवाय नमः। प्रार्थना पूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि।
अनया पूजया श्री साम्ब शिवः प्रीयतां नमम। श्री शिवं अर्पणं अस्तु॥)



❋ क्षमा-प्रार्थना ❋

"आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व महेश्वर॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेवशरणं मम।
तस्मात्कारुण्य भावेन रक्ष स्वपार्वतीनाथ॥
गतं पापं गतं दुःखं गतं दारिद्र यमेवच।
आगता सुख सम्पत्तिः पुण्याञ्च तव दर्शनात्॥
मन्त्र हीनं क्रिया हीनं भक्ति हीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मयादेव परिपूर्ण तदस्तु मे॥
यदक्षरपद भ्रष्टं मात्राहीनं चयद् भवेत्।
ततसर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद नन्दि कन्धरः॥"



❋ पार्थिव-पूजा ❋

'ॐ हराय नमः' मंत्र से मिट्टी लेकर "ॐमहेश्वराय नमः" मन्त्र से अँगूठे के पोर भर का लिंग बनावें। (शमी या पिपल के पेड़ की जड़ की मिट्टी विमौट (बल्मीक) अच्छी मानी जाती है या पवित्र जगह से ऊपर से चार अंगुल मिट्टी हटाकर भीतर की मिट्टी अथवा गंगादि पवित्र स्थानों की मिट्टी का संग्रह करे) तीन भाग में बाँटें, ऊपरी को लिङ्ग, मध्य को गौरी पीठ और नीचे के अंश को वेदी कहते हैं। दाहिने या बाएँ एक ही हाथ से लिंग बनावें, असमर्थ दोनों लगा सकता है। लिङ्ग बन जाय तो उसके सिर पर नन्हीं सी मिट्टी की गोली बनाकर रखी जाती हैं। यह बज्र है। पूजा के समय सामिग्री में बिल्व पत्र जरूरी है। माथे पर भस्म व मिट्टी का त्रिपुण्ड और गले में रुद्राक्ष की माला जरूर होनी चाहिए। आसन शुद्धि जल शुद्धि गणेशादि देवताओं की पूजा करके इस प्रकार भगवान शंकर का ध्यान करे-

"ॐ ध्याये त्रित्यं महेशं रजत गिरि निभं चारुचन्द्रावतं सं रत्ना कल्पोज्ज्वलांङ्ग परशुभृगवराभीति हस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतमय रगणैर्व्याघ्रकृतिं वसानं विश्वाद्यं विश्व बीजं निखिल भयहरं पञ्चावक्त्रं त्रिनेत्रम्॥"

यह ध्यान पढ़कर मानसोपचार से पूजन करे, फिर वही ध्यान पाठ करके लिङ्ग के मस्तक पर फूल रखे तब-

"ॐपिनाकधृक, इहागच्छ, इहागच्छ, इहतिष्ठ, इहतिष्ठ, इहसन्निधेहि, इहसन्निधेहि, इहसन्निरुद्धयस्व, इहसन्निरूशास्त्र अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजा

गृहाण। इसी प्रकार आवाहनादि करें। पीछे 'ॐशूलपाणे, इह सुप्रतिष्ठितो भव' मंत्र से लिङ्ग प्रतिष्ठा करे, फिर 'ॐपशुपतये नमः' मंत्र से तीन बार शिव के मस्तक पर जल चढ़ावें। फिर मस्तक परका बज्र फेंककर चावल चढ़ावें। फिर पाद्यादि दिशोपचार 'ॐ' एतत् पाद्यम् ॐ नमः शिवाय नमः। शिव के अर्घ्य में केला और बेलपत्र देना होता है। और स्नान के पहले मधुपर्क। फिर गंध, अछत, फूल के द्वारा भगवान शंकर की आठों मूर्तियों की आठों दिशाओं में पूजा करें। (1) पूर्व दिशा में (पृथ्वी रूप में) '**ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः**'। (2) ईशान में (जल रूप में) '**ॐ भवाय जलमूर्तये नमः।**' (3) उत्तर दिशा में (अग्नि रूप में) '**ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः**'। (4) वायव्य कोण में (वायु रूप में) '**ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः**'। (5) पश्चिम दिशा में (आकाश रूप में) '**ॐ भीमाय आकाश मूर्तये नमः**'। (6) नैऋत्यकोण में (यजमान रूप में) '**ॐ पशुपतये यजमान मूर्तये नमः**'। (7) दक्षिण दिशा में (चन्द्र रूप में) '**ॐ महादेवाय सोम मूर्तये नमः।**' (8) अग्निकोण में (सूर्य रूप में) '**ॐ ईशानाय सूर्य मूर्तये नमः॥**' इस तरह अष्टमूर्ति पूजा के अनन्तर यथाशक्ति जप करे, फिर जप और पूजा का भी विसर्जन—

"गुहयातिगुहय गोप्ता त्वं ग्रहाणा स्म कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादा न्महेश्वरा॥ फिर दाहिने हाथ का अंगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा बम्-बम् शब्द करते हुए दाहिना गाल बजावें। फिर प्रदक्षिणा इस मंत्र से करें—**"यानिकानि चपापानि जन्मान्तर कृतानि च। तानि सर्वानि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे॥"** उसके बाद इस मंत्र से नमस्कार करें—**"नमः सर्व हितार्थाय जगदाधार हेतवे। साष्टाङ्गो ऽयं प्राणामस्ते प्रयलेन मयाकृत॥"** फिर भगवान से क्षमा याचना माँगें—**"मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर। यत्पूजितं मया देव परिपूर्ण तदातु मे॥"** क्षमा याचनांसमर्पयामि। अंत में चरणोदक और प्रसाद ग्रहण कर पूजा की साङ्गता करे—

अर्पण—

"ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः॥"

क्षमा प्रार्थना—

"आवाहनंन जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां नैवहि जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥"

विसर्जन—

"गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर।
मम पूजां गृहीत्वे मां पुनरागमनाय च॥" '**ॐ साम्ब सदाशिवाय नमः।**'

समर्पण—

"अनेन पार्थिवलिङ्ग पूजनकर्मणा श्रीयज्ञस्वरूप: शिव: प्रीतयाम, नमम (सप्तमसोपान समाप्त पूर्ण हुआ)

ऐसा कहकर पूजन कर्म समर्पण करें। (नित्य कर्म पूजा प्रकाश)



भगवान शंकर नख-शिख वर्णन

चौ०—"पद नख दिनकर[1]-निकर-प्रकाशा। उदय होत उर-तिमिर विनासा॥
पद पंकज प्रभु तनु-तड़ाग के। चरम-सरम[2]-पद-बीतराग के॥
मृदुमंजुल मुद-मंगल मूला। सतत विकास विश्व अनुकूला॥
सुरभि पराग मधुर मकरंदन। वितरत[3] निज-रत भगत-मलिंदन॥
पद-सामीप्य-जोग जहि पावै। अगुन अननुभव अभव[4] नभावै॥
जोगी[5] जुगत मुगत अभिमानी। जनम जनम जतननि जेहि जानी॥
सिधि प्रभु-पद-प्रसाद बिनु सोऊ। लही, रहे लहि, लहहि न कोऊ[6]॥

दोहा—कर कोटक[7] कोपीन कटि, केहरि क्रदन-कुरंग[8]।
बाघम्बरं कंबर[9] कबहु, निपट दिगम्बर अंग॥

चौ०—सृखलसुंद[10] सुन्दर[11] सखसुहावा। अचरअपर[12] उर-प्रभुहिं न भावा॥
उदर उदधि बलि[13]-बलित[14] अथाहा। जीव-जन्तु जहँ कोटि कटाहा[15]॥
बक्खमाल तक्खक[16] बिसाल की। अक्ख, दक्ख-दुहिता कपालकी[17]॥
महापदम अरु पदम बासुकी[18]। बिलसत त्रिगुन[19] जनेउ जासुकी॥
कर अरविन्द मृदुल मुदकारी। परिध[20] प्रलंब बाहुभयकारी॥
असमय प्रलय भयातुर भारी। दयाद्रवित सुर-असुर निहारी॥
पान कीन्ह विष विषम अशेषा। किंतु कंठश्री भई विशेषा॥
मुख-मुसकान मनोहर ताईं। सीत प्रकाश सुवास सुहाई॥
समुझि स्वयंभु[21] अप्राकृत शोभा। चतुर विरंचहिं भा चित छोभा॥
विरचेउ रुचिर प्रचुर अनुहारा। चारू चन्द्रिका, मंजुल मारा॥
चंद, गुलाब सुगन्धन पूरे। तदपि रहेउ अभिलाष अधूरे॥
तबते विधि रिसाइ करि डारे। अनित अनंग सरुज[22] कटियारे॥

दोहा—मुद्रा मंगलमय उभय, कुंडलि[23] करत कलोल।
करननि कुलिककुलीन[24] के, कुंडल झलकत लोल॥

चौ०—तीन नयन दल-नलिन विसाला। हिमकर[25] हंस[26] हुतासन[27] भाला॥
विश्व विकास विलास विनाशा। करत कटाच्छ भृकुटि अनयासा[28]॥

तिलक त्रिपुंड भस्म भल भ्राजत। भाल विसाल बाल विधु राजत॥
सीस सुवद्ध कपर्द सुहावा। तिहि पर जन्हु सुता इहिं भावा॥
प्रगटी ब्रह्म कमंडलु माहीं। निदरि[29] निडर विधि डारे सिताहीं॥
तब हरि-पदनि परी अकुलाई। तहँ हुन रहन ठौर कहुँ पाई॥
पुनि है विकल धवल जल धारा। नभ तें गिरी टूटि जिमि तारा[30]॥
पाहि-पाहि अति आरत बानी। सुनि सुर धुनिहिं संभु मनमानी॥
देखि अनाथ तिरकृत त्यागी। प्रनतारति हरता जियजागी[31]॥
सादर रसपदि[32] जटासन दीन्हा। जग-अघ नासन सासन[33] कीन्हा॥
को अस आशुतोष जन रंजन। भय-भंजन मलीन मन भंजन॥
जटामुकुट अति अद्‌भुत रूपा। फन-अनंत अहि छत्र अनूपा॥
वृषभ[34] जान श्मशान बिहारी। चिता-भस्म-भूषित भवहारी॥
प्रमथ पिशाच भूत सहचारी। व्याल कपाल छाल मृगधारी[35]॥
दोहा— उक्ततंत्र उपकरन कर[36], कारन जग कल्यान।
किंतु ईश असयनतें[37], अखिल अनीस[38] अजान॥
चौ०— कुंद-इन्दु-निंदक दुति भंगा। फटिक पुंज छवि कोटि पतंगा॥
अजगव[39] डमरू कमंडलु सूला। कारन[40], भुवन भय हरन समूला॥
विधि विरची सुषमा जिहि अंगनि। लखि, सोइ उमा संभु अरधंगिन॥
सिव सम्मिलित सेवा कछु कैसे। कुमुदिनि कांत कौमुदी जैसे॥
त्रिजगत जीव चराचर झारी[41]। स्वलय करत प्रभु प्रलय मँझारी।
पुनि जब हो जग कौतुम इच्छा। होत तबहि तिहि प्रकृति-प्रतिच्छा[42]॥
तिहिं छन यह अनादि जगदम्बा। विश्व विधान होत अवलम्बा॥
काया कारन सुच्छम स्थूला[43]। देहिन[44] देहि करम अनुकूला॥
तदपि परम करुनामय माता। प्रतिदिन जीवन उन्नतिदाता॥
सोरठा— वरु वादि बिनुवारि, बरसै बार हजार, पै।
नहिं तोषत त्रिपुरारि, बिनु तुषार गिरिजा कृपा॥

(स०अर्जुनदास केडिया)

(1) सूर्य समुदाय (2) अंतिम शान्ति के स्थान (3) देते हैं (4) मोक्ष (5) युक्तयोगी (6) न किसी ने पाई है न पार है और न पायेगा (7) सर्प कुलपति (8) मृगनाशक (9) कंबल (10) मेखला (11) सर्पकुलपति (12) जड़ (13) त्रिबली (14) व्याप्त (15) ब्रह्माण्ड (16) तक्षक (17) आपके वक्ष स्थल में विशाल तक्षक, रुद्राक्ष, सती के कपालों की मालाएँ (18) ये तीनों भी सर्पकुलपति हैं (19) तीन डोरे की (20) अर्गला (21) अपने आप उत्पन्न हुई (22) तब विधाता ने क्षोभ से चाँदनी को अनित्य काम के शरीर रहित, चंन्द्रमा को छायी पीड़ित और गुलाब

को कटक युक्त कर दिया। (23) गोल मुद्रा मय दो सर्प (24) सर्प कुलपति (25) चन्द्र (26) सूर्य (27) अग्नि (28) बिना ही श्रम के (29) निरादर करके (30) तारे की तरह टूटती गिरी (31) प्रणत पालकता उत्पन्न हुई (32) तुरंत ही (33) आज्ञा (34) वाहन (35) सर्प मुण्ड व्याघ्र चर्म और मृग धारण करने वाले (36) सामिग्री (37) अभिप्रायों (38) जीव (39) धनुष (40) हाथों में (41) समग्र (42) प्रतीक्षा (43) कारण सूक्ष्मासूक्ष्म तीन प्रकार के शरीर (44) जीवों को (45) बिना।



❋ श्री शिव पञ्चाक्षर स्तोत्रम् ❋

(1)"नागेन्द्र हाराय त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै न काराय नम् शिवाय॥

"जिनके कंठ में सांपों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अंगराग है, दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हैं (अर्थात् जो नग्न है) उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है।"

(2)"मंदाकिनी सलिल चंदन चर्चिताय नंदीश्वर प्रमथ नाथ महेश्वराय।
मंदार पुष्प बहु पुष्प पूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय॥"

"गंगाजल और चन्दन से जिनकी अर्चा हुई है, मंदार पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमों से जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दी के अधिपति प्रमथ गणों के स्वामी महेश्वर 'मकार' स्वरूप शिव को नमस्कार है।

(3)"शिवाय गौरी वदनाञ्जवृन्द सूर्याय दक्षाध्वर नाशकाय।
श्रीनीलकंठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥"

"जो कल्याण स्वरूप है पार्वती के मुख कमल को प्रसन्न करने के लिये जो सूर्यस्वरूपवत है जो दक्ष के यज्ञ का नाश करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा में बैल का चिन्ह है, उन शोभा शाली नीलकंठ 'शि' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है ।

(4)"वसिष्ठ कुम्भोद्भव गौतमार्य मुनीन्द्र देवार्चित शेखराय।
चन्द्रार्क वैश्वानर लोचनायतस्मै 'व' कराय नमः शिवाय॥"

"वशिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों ने तथा इन्द्र आदि देवताओं ने जिनको मस्तक की पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं उन 'व' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है।

(5)"यक्ष स्वरूपाय जटाधराय पिनाक हस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय॥"

"जिन्होंने यक्ष रूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं जिनके हाथों में पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं उन दिगम्बर देव 'य' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है।"

पञ्चाक्षर मिदं पुण्यं यः पठेच्छिव सन्निधौ।
शिवलोक मवाप्नोति शिवेन सहमोदते॥"

"जो शिव के समीप इस पवित्र पञ्चाक्षर का पाठ करता है वह शिवलोक को प्राप्त करता है, वहाँ शिव के साथ आनंदित होता है।"

❃ शिव षडाक्षर स्तोत्रम् ❃

"ॐकारं विन्दु संयुक्तंनित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥1॥
नमन्ति ऋषयो देवा नमंत्य प्सरसां गणाः।
नरा नमन्ति देवेशं 'न' काराय नमो नमः॥2॥
महादेवं महात्मनं महाध्यान परायणं।
महापाप हरं देवं 'म' काराय नमो नमः॥3॥
शिवं शान्तं जगत्राथं लोकानुग्रह कारकं।
शिवमेक पदं नित्यं 'शि' काराय नमो नमः॥4॥
वाहनं वृषभोयस्य वासुकि कंठ भूषणम्।
वामे शक्तिधरं देवं 'व' काराय नमो नमः॥5॥
यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः।
यो गुरुः सर्व देवानां 'य' काराय नमो नमः॥6॥
षडक्षर मिदं स्तोत्रम् यः पठेच्छि सन्निधौ।
शिव लोकः वाननेति शिवेन सह मोदते॥"

स्तवः—"ताण्डव से त्रिभुवन भर को हे कांम्पित करने वाले, हे कालरूप! हे भैरव! मदमत्सर हरने वाले।

कैलाश गुफा के वासी! हे चन्द्र चूड़ प्रलयंकर! हे अन्तक! हे अविनाशी! सन्यासी उग्र भयंकर।

दोहा— हे आदिसत्य करुणामय, हे मदन मान मद भंजन।
तेरे पवित्र चरणों में कवि करता है अभिनन्दन।
नागेन्द्र हार मृत्युञ्जय! हे आशुतोष अखिलेश्वर!
गरलाभिराम गंगाधर! हे सुखद सर्व संपत्कर!
शिति कंठ रुद्र भूताधिप! निर्दोष निरीह दिगम्बर!
धृतपाणि पिनाक सनातन, त्रिबिलोचन विश्वधुरन्धर॥
दोहा— निर्लोभि निरंकुष निर्गुण, हे देव अपावन-पावन।
तेरे पवित्र चरणों में कवि करता है अभिवादन॥

प्रज्ज्वलित चिताओं पर के हे निर्भय युक्त बिहारी।
सुरश्रेष्ठ, वेद अभिवंदित हे पूर्ण रूप त्रिपुरारी॥
हे भुक्ति मुक्ति फलदायक! सम्पूज्यमान गत कलिमल।
हे धर्म सेतु परिपालक! ज्योतिर्मय, चन्द्र कलोज्ज्वल॥
दोहा— हे कालातीत सदाशि, तेजस्वी वीर तपोधन।
तेरे पवित्र चरणों में कवि करता है अभिवादन॥

'प्रभात'

❑ ❖ ❑

❋ श्री शिव शंकराष्टम् ❋

(आचार्य श्री रामकिशोर जी मिश्र)

"रुद्राय लोक सुखदायक जटाधि पाय भाले त्रिपुण्ड लसिताय महेश्वराय।
गंगाधराय गिरिशाय दिगम्बराय तस्मै नमो भगवते शिव-शंकराय॥1॥

भूतेश्वराय गिरिजापतये हराय श्रीशम्भवे बलवते महते मृडाय।
लङ्केशरावण निशाचर बन्दिताय तस्मै नमो भगवते शिव शंकराय॥2॥

तुङ्गेश्वराय गिरिभूजन पूजिताय कल्पेश्वराय हिम निर्झरिणी धराय।
पञ्च प्रयाग पतये च सतीश्वराय तस्मै नमो भगवते शिव शंकराय॥3॥

ईशाय पर्वतधवाय गणेश्वराय शर्वाय मन्मथ हराय वृषध्वजाय।
मृत्युजयाय जागती परिपालकाय तस्मै नमो भगवते शिव शंकराय॥4॥

गुप्तेश्वराय मृगचर्म विभूषिताय रूपेश्वराय वसुमूर्ति समाहिताय।
योगेश्वराय त्रिधुभूषित मस्तकाय तस्मै नमो भगवते शिव-शंकराय॥5॥

विद्वत्समाज मुखवर्णित वैभवाय गङ्गापवित्र सलिले कृतमज्जनाय।
सिद्धि प्रदाय भजतां समशर्मदाय तस्मै नमो भगवते शिव शंकराय॥6॥

पुण्यात्मकाय निधिदाय वरप्रदायभक्त प्रभाबल धनादि विवर्धकाय।
ऐश्वर्य्य भोग रहिताय महासुराय तस्मै नमो भगवते शिव शंकराय॥7॥

हे भूतनाथ नगनाथ भुजंगनाथ कैलाशनाथ शिव पाहि हिमालयेश।
भक्तोऽस्ति यस्य कवि रामकिशोर मिश्रः तस्मै नमो भगवते शिव शंकराय॥8॥

❑ ❖ ❑

❃ शिव लीला लावण्य ❃

(करुण प्रार्थना)

(1) ईश्वर! कैसे करूँ तुम्हारा मैं वर वर्णन।
वर्णनीय तुम नहीं और मैं साधारण जन॥
फिर भी ऐसा जान, तुम्हीं मुझ में रहते हो।
करते-हरते तुम्हीं तुम्हीं सुनते कहते हो॥
लिखता हूँ दो शब्द मैं क्योंकि भाव तुम भर रहे।
मैं तो कुछ कर्त्ता नहीं, तुम्हीं सभी कुछ कर रहे॥1॥

(2) लेकर के अवतार और बन प्रतिदिन जन्मा।
रहते हो तुम विभो किस तरह सदा अजन्मा॥
मुझे तुम्हारा रूप नहीं दिखलाई देता।
तो भी दर्शन नित्य तुम्हारा मैं कर लेता॥
रोम-रोम में रम रहे, तो भी तुम्हें न जानता।
नहीं प्रभो! पहचानता, अद्भुत तुम्हें बखानता॥2॥

(3) ईश्वर कुछ भी नहीं, सभी कुछ यह माया है।
जड़ तत्वों से बनी स्वयं सब की काया है॥
ऐसा कहते आज मूढ़तम जो मानव हैं।
मलिन बुद्धि है मोहग्रस्त हैं वे दानव हैं॥
सर्वाऽधिप सर्वत्र ही रहते हो तुम सर्वदा।
फैल रही संसार में सुखद तुम्हारी सम्पदा॥3॥

(4) माया क्या है ईश तुम्हारी वो दासी है।
विश्वनाथ तुम और तुम्हारी वह काशी है॥
कारण हो तुम और वह कार्य रूप बन मोहती।
सूक्ष्म रूप तुम और वह स्थूल रूप बन सोहती॥4॥

(5) हो तुम गन्ध अमन्द और वह पृथिवी उज्ज्वल।
हो तुम रस भंडार और वह है निर्मल जल॥
हो तुम रूप अनूप और वह ज्योति मनोरम।
हो तुम सुन्दर स्पर्श और वह स्पर्शन अनुपम
तुम सुखदायक शब्द हो स्वच्छनील आकाश वह।
हाथ जोड़ रहती खड़ी सदा तुम्हारे पास वह॥5॥

(6) माया कहते उसे ब्रह्म तुम कहलाते हो।
वह हो जाती प्रकृति पुरुष पद तुम पाते हो॥

शंकर हो तुम और दिव्य वह शक्ति तुम्हारी।
सीता है वह और राम तुम हो असुरारी॥
राधा है वह कृष्ण तुम जीवन तुम वह देह है।
तुम उसके आधार हो, विश्व रूप वह गेह है॥6॥

(7) रहते हैं सब जीव तुम्हारे होकर वश के।
महा मधुरतम सिंधु तुम्हीं हो अद्भुत रस के॥
लेकर जग लावण्य हो रहे तुम कुरूप हो।
धरते रूप अनेक, विश्व में तुम अनूप हो॥
हरे त्रिलोकीनाथ! तुम निज भक्तों के दास हो।
रहकर उससे दूर भी तुम प्रेमी के पास हो॥7॥

(8) तुम्हें चाहता नहीं क्यों कि तुम घट-घटवासी।
किंतु तुम्हारी एक कृपा का मैं अभिलाषी॥
देदो उसको प्रभो! उसी का मैं इच्छुक हूँ।
और नहीं भगवान, तुम्हारा मैं भिक्षुक हूँ॥
दान दया का दो अभी, कृपापात्र मुझको करो।
भव्य भाव मुझमें भरो पापताप मेरे हरो॥" ('प्रिय')

क्योंकि—

सवैया— "आगे रहे गणिका गजधीश सुतौ अब कोऊ दिखात नहीं है।
पाप परायन ताप भरे, परताप समान, न आन कहीं है॥
हे सुखदायक! प्रेम निधे! जग यों तो भले और बुरे सब ही हैं।
दीन दयाल! औ दीन प्रभो! तुमसे तुमहीं, हम से हम ही हैं॥"

इसलिये—

कवित्त—"छुद्र सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र,
वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निगल जाने को ये नौका के चारौं ओर,
सिंधु की तरंगें सौ-सौ जिह्वाएँ पसारे हैं।
हारे सभी भाँति हम, अब तो तुम्हारे बिना,
झूँठे ज्ञात होते और सबके सहारे हैं।
और क्या कहैं? अहो! डुबा दो या लगा दो पार,
चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं॥"

स्तुति—

छन्द— "हे जगत नाटक-सूत्रधार! अपार तव महिमा अहैं।
छनमांहि करत भरत हरत, यह विश्व सब मुनि-गन कहै॥

हे दोष-दारिद-दम्भ हर! तब दास 'दामोदर' यही।
अब करिय नाथ बिलम्बजनि, अवलम्ब मोहि दूसर नहीं॥"

पश्चात्ताप—

सवैया—"अवलोकन को अरबिन्द सो आनन क्यों अँखियाँ न अनेक भईं?
करिबे को कथामृत पान सदा, किन सुन्दर श्रोत भये न कईं?
शुचि कीरति शम्भु वखानिबेको, मति मंजुल भूरि भली न ठई?
गुण गाइवे को गिरिजापति के, कस कोटिन जीह दई न दई?"

प्रार्थना—हे ईश! दयालु हो, बस इतनी दया करना,
मैं शरण पड़ा तेरी, भक्ति भाव हृदय भरना॥
ये मन बड़ा चंचल है, ये इधर-उधर जाता।
जग झूँठे झमेलों में, फँसकर थिर नहीं पाता॥
ये निज पुरषारथ से, बश में नहिं आ परना॥1॥
मैं शरण पड़ा तेरी, भक्ति भाव हृदय भरना॥
अज्ञान है माया वश, तत्वतः ज्ञान नहिं होय।
जड़ मिथ्या प्रलोभन में, विनाशी में ही रपटत भोय॥
विषयन की कामना से, प्रभु भाव न उर भरना॥2॥
मैं शरण पड़ा तेरी, भक्ति भाव हृदय रखना॥
ये जन्म लेइ मरिजाइ, जग वार-वार तन पाय।
लक्ष्य भूला मानव तन भव जाल रहयो भरमाय॥
मन बुद्धि चरनन ध्यावै, 'प्रिय' नहीं जन्म मरना॥3॥
मैं शरण पड़ा तेरी भक्ति भाव हृदय भरना॥

❋ रुद्राष्टक ❋

(1) "अलख अनादि अज अविगत गुनातीत,
निर्मम निरहङ्कार परम आनद कन्द॥
अगम निगम हूँ अगम जाको गुन ग्राम,
वरनति वानी, शेष सहस्त्र मुखार-बिन्द॥
'सूरज' अनन्य शुचि सुखद शरण्य वन्द्य,
पद-युग-कञ्ज-मञ्जु मानस-मुनीश वृन्द।
भगत चकोर चित पूरन अमन्द चन्द,
शंकर-महेश्वर चन्द्रशेखर चिदानन्द॥1॥

(2) "भ्राजित विभूति पूति शुक्ल-शर्वरोशतन,
राजति गिरीश-सुता वाम अंग ललकी।

ललित ललाट विधु विलसित दर्शनीय,
कमनीय कान्ति जटाजूट गंग जल की॥
'सूरज' त्रिलोचन विमोचन त्रिविध ताप,
बदन सदन शोभा अम्बुज अमल की॥
हलकति माला उर उरग उमेश जू के,
झलकति रेख कम्बु-कण्ठ हलाहल की" ॥2॥

(3) निर्गुण निराकार निरूपम अनीह अज,
पावन परम पुञ्ज पूरन प्रकाश के।
सूरज पुरातन परेवा बन्दनीय विभु,
मर्दन मदन के कृन्दन भव पा सके॥
शिति-कण्ठ शूली वृष वाहन वरिष्ट हृष्ट,
साधन सुलभ जन आस अभिलाश के।
घट-घटवासी सुखराशि करुणायतन,
अघ-ओघ नाशी हैं निवासी कैलाश के ॥3॥

(4) "सकल विभूति देति मलिन मशान-भूति,
पत्रग विषम विष सुधा सुख मूल है।
'सूरज' भयावनि अपावनि कपालभाल,
भव-भीति दावनि पुनीत गंग तूल है॥
नाम वामदेव दिशि दाहिन रहत दीन,
भाव अनुकूल पै स्वभाव प्रतिकूल है।
मंगल करत वेष नगन अमंगल सों,
हरत त्रिशूल कर धरत त्रिशूल है॥4॥

(5) "सर्व आशु वरदानि वर विरह बखानैं कौन,
'सूरज' निकाम होत नाम गुहु रोयेते।
ध्यान ही धरत कल्यान को निधान देत,
बन्दत अनन्द ज्यों परम पद पायेते॥
कर जुग जोरे जग-सम्पदा जुरत आइ,
मृत्यु हू पै विजय होति मंत्र जप लायेते।
बेल तीन पात तीन लोक रिद्धि सिद्धि देत,
चारि फल देत चरि चाउर चढ़ायेते" ॥5॥

(6) 'शिव-शिव' कहत दहत दुःख दारिदत्यों,
भव-भव रटत कहत भव-मोह जाल।

हर-हर करत हरत तन त्रय ताप,
शम्भु-शम्भु गावत विथा विशाल॥
महादेव भजत भगत कलिमल कोष,
रुद्रहिं उच्चारत प्रचारत कराल काल।
जपत महेश भगत कलिमल कोष,
रुद्रहिं उच्चारत प्रचारत कराल काल।
जपत महेश होत 'सूरज' अशेष सुख,
शंकर पुकारत सुधारत सुअंक भाल" ॥6॥

(7) "वेद के स्वरूप परिपूरन परमब्रह्म,
सुयश अनूप तन कान्ति निशि-कान्त की।
आशुतोष अतुल विरारन दुरितदोष,
शान्ति सुख पुञ्ज प्रभा भव शोक श्रान्त की॥
विशद वरदानी न वरदानी विरद जाति,
दूजे देव दानिन की कथा उपरान्त की।
'सूरज' अनाथ-नाथ दीनानाथ विश्वनाथ,
अशरन-शरन हरन भीर भ्रान्त की" ॥7॥

(8) "आरति हरन भक्त संकट शमन शिव,
सेवत सकल सुख सन्तत जुरत आय।
जोग करि जो गति न पावत जोगीश मुनि,
बसत पुरारि पुर आवति तुरत धाय॥
तीन पुर तीन काल ताप अरि त्रिपुरारि,
दीन-दुःख मेंटि धाम धनसों भरत जाय।
लीजिये उबारि भवसागर सों मो हूँ प्रभु,
पाहि कहि पाहि कह 'सूरज' परत पाय" ॥ 8॥

सोरठा—"रुद्राष्टक मन लाय, जो नर नित प्रति गाइहैं।
संकट-शोक नशाय, मन-वांछित फल पाइहै॥"



❃ मन्त्र एवं माहात्म्य ❃

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकल तत्वात्मकाय, सर्वमन्त्र स्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्र स्वरूपाय, सर्व तत्वविदूराय ब्रह्म रुद्रावतारिणे नील कण्ठाय पार्वती मनोहर प्रियाय सोमसूर्याग्नि लोचनाय भस्मो द्धूलित, विग्रहाय महामणि मुकुटधारणाय माणिक्य भूषणाय सृष्टि स्थिति प्रलयकाल रौद्रावताराय

दक्षाध्वर ध्वंशकाय, महाकाल भेदनाय मूला धारैकनिलियाय तत्वतीयाय गंगाधराय सर्व देवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्तसराय, त्रिवर्ग साघनायानेक कोटि ब्रह्माण्ड नायक यानन्तवासुकि तत्क्षक कर्कोटक शंख कुलिक पद्मम महापदमेत्यष्टनागकुल भूषणाय प्रणवस्वपाय चिदाकाशायाकाश दिक्स्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमलिने सकलाय, कलंकरहिताय, सकललौकैक कत्रे सकल लोकैक संहर्त्रे सकललोकैकगुरुवे सकल लोकैयर्त्रे, सकललौकेकसाक्षिणे, सकलनिगम गुहयाय सकलवेदान्त पारगाय सकललोकैकवर प्रदाय सकललोकैकशंकराय शशंकशेखराय शाश्वत निजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मोहाय निर्मदाय निश्चिंताय निरंहकाराय निराकुलाय निष्कलंकाय निर्गुणाय निष्कामाय निरूपप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरालङ्काय, निष्प्रपंचाय, निःसंगाय, निर्द्वद्वाय निराधाराय नीरोगाय निष्कोधाय निर्गमाय निष्पापाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निःसंशाय निरंजनाय निरूपमविभवाय नित्यशुद्ध-बुद्ध-परिपूर्ण सच्चिदानन्दाद्वयाय, परमशांत स्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय-जय रुद्र महारौद्र भद्रावतार महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव, कपाल मालाधर खटवांगखड़ग चर्मपाशांकुश डमरूकर त्रिशूलचापवाण गदाशक्ति भिन्दपालतोमर मुशल मुगदरपाश परघिभ्रशुण्डी शतघ्नी चक्रायायुध भीषण करसहस्त्रमुख द्रष्ट्रांकराल वदन विकटाट्टहास विस्फरित ब्रह्माण्डमण्डल ागेन्द्र कुण्डल नागेन्द्र हार नागेन्द्र वलय नागेन्द्र चर्म धर मृत्युन्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर वृषवाहन विश्वतोमुख सर्वतो रक्षरक्षमांज्वल ज्वल महामृत्युभयमृत्युभयं नाशय नाशय चोरभय मुखादयोत्सादय विषसर्प भयं शमयशमय चौरान्मारयमारय ममशत्रुनुचारयोच्चाटय त्रिशूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खंगेन छिन्धि छिन्धि खटवांगेन विपोथयविपोथय मुशुलेन निष्प्रेषय निष्प्रेषय वाणैः सताढ़य संताढ़य रक्षांसि भीषय भीषयाशेष भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्ड वेतालमारीच ब्रह्मराक्षस गणान संत्राशय संत्राशय मामभयं कुरू कुरू वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय नरक भयान्मामुद्धरोद्धर संजीवयसंजीवय क्षुत्तृऽभ्यां मामाययाप्याययदुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिव कवचेन मामाच्छादयाच्छादय मृत्युन्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते॥" (इस कवच का प्रयोग अमोघ है)

❋ महामृत्युञ्जय मन्त्र ❋

"ॐ हौं जूँ सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः भू ॐ। सः जूँ हौं ॐ॥" *(यह सम्पुट युक्त मन्त्र है)*

(बिना सम्पुट के) "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्। उववारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्" इतना ही है इसमें 32 अक्षर हैं ॐ लगाने से 33 शब्द आते हैं 33 देवता और उनकी शक्ति इसमें निहित है। मंत्र में 8 वसु ग्यारह रुद्र हैं 12 आदित्य एक प्रजापति और एक वषट है। इस मंत्र को त्रिपुरारी कहा गया है। यह मृत्यु पर विजय पाने वाला मंत्र है, इस मंत्र के जाप से सारे कष्ट मिटते हैं। इस मंत्र में (1) = त्र त्रिशक्ति, त्रिनेत्र (2) य = यम, यज्ञ (3) म = मंगल (4) ब = बालर्क तेज (5) कं = काली का बीजमंत्र (6) य = यम (7) जा = जालन्धरेश (8) म = महाशक्ति (9) ह = हाकिनो (10) सु = सुगंध (11) गं = गणपति (12) म = महेश (13) पु = पुंडरीकाक्ष (14) ष्टि = वषट कोण (15) व = वाकिनी (16) र्ध = धर्म (दस गुण) (17) उ = उमा (प्रकृति) (18) र्वा = शिव का बाँई शक्ति अर्थात् बगुलामुखी (19) रु = रूप रुद्र आँसू (20) क = कल्याणि (21) व = वरुण (22) बं = बंदी देवी (23) ध = धंदादेवी (24) मृ = मृत्युंजय (25) त्यो = नित्येश (26) र = रमेश (27) मु = मुमुक्ष (28) क्षी = क्षेमकरी (29) य = यम (30) मा = मांग और मंत्रेश (31) मृ = मृत्युंजय (32) तात = चरण बन्दन ।



❃ शिव सहस्त्र नामावली ❃

(द्वारा आचार्य पं० शिवदत्त मिश्र शास्त्री वाराणसी)

(1) ॐ स्थिराय नमः (2) ॐ स्थाणवे नमः (3) ॐ प्रभवे नमः (4) ॐ भीमाय नमः (5) ॐ प्रवराय नमः (6) ॐ वरदाय नमः (7) ॐवराय नमः (8) ॐसर्वात्मने नमः (9) ॐ सर्वविख्याताय नमः (10) ॐसर्व स्मै नमः (11) ॐसर्वकराय नमः (12) ॐभवनाय नमः (13) ॐजटिने नमः (14) ॐचर्मिणे नमः (15) ॐशिखण्डिने नमः (16) ॐसर्वाङ्गाय नमः (17) ॐसर्वभावनाय नमः (18) ॐहराय नमः (19) ॐहरिणाक्षाय नमः (20) ॐसर्वभूतहराय नमः (21) ॐसर्वःनमः (22) ॐप्रवृत्तये नमः (23) ॐनिवृत्तये नमः (24) ॐनियताय नमः (25) ॐशास्वताय नमः (26) ॐध्रुवाय नमः (27) ॐश्मशान वासिने नमः (28) ॐभगवते नमः, (29) ॐ खेचराय नमः (30) ॐ गोचराय नमः (31) ॐ अर्दनाय नमः (32) ॐ अभिवादनाय नमः (33) ॐ महाकर्मणे नमः (34) ॐ तपस्विने नमः (35) ॐ भूतभावनाय नमः (36) ॐ उन्मतवेष प्रच्छन्नाय नमः (37) ॐ सर्वलोक प्रजापतये नमः (38) ॐ महारुपाय नमः (39) ॐ महाकायनमः (40) ॐ वृषरूपाय नमः (41) ॐमहायशसे नमः (42) ॐमहात्मने नमः (43) ॐ सर्वभूतात्मने नमः (44) ॐविश्वरूपाय नमः (45)

ॐ महाहनवे: (46) ॐ लोकपालाय नम: (47) ॐ अन्तर्हिततात्मने नम: (48) ॐ प्रसादायनम: (49) ॐ महते नम: (50) ॐ ह्यगर्दभये नम: (51) ॐ पवित्रायनम: (52) ॐ नियमाय नम: (53) ॐ नियमाश्रिताय नम: (54) ॐ सर्वकर्मणे नम:, (55) ॐ स्वयंभूताय नम: (56) ॐ आदये नम:, (57) ॐ निधये नम:, (58) ॐ आदिकराये नम:, (59) ॐ सहस्त्राक्षाय नम:, (60) ॐ विशालाक्षाय नम:, (61) ॐ सोमाये नम:, (62) ॐ नक्षत्र साधकाय नम:, (63) ॐ चन्द्राय नम:, (64) ॐसूर्याय नम:, (65) ॐशनयेनम: (66) ॐकेतवे नम:, (67) ॐ गृहाय नम:, (68) ॐ गृहपतये नम:, (69) ॐवराय नम:, (70) ॐ अत्रये नम:, (71) ॐ अत्र्यानम स्कर्त्रे नम:, (72) ॐ मृगवाणार्पणाय नम:, (73) ॐ अनघाय नम:, (74) ॐ महातपसे नम:, (75) ॐ घोर तपसे नम:, (76) ॐ अदीनाय नम:, (77) ॐ दीनसाधकाय नम:, (78) ॐ संवत्सराय नम:, (79) ॐ मंत्राय नम:, (80) ॐ प्रमाणाय नम:, (81) ॐ परमंतपाय नम:, (82) ॐ योगिने नम:, (83) ॐ योज्याय नम:, (84) ॐ महाबीजाय नम:, (85) ॐ महारेतसे नम:, (86) ॐ महाबलाय नम:, (87) ॐ सुवर्ण रेतसे नम:, (88) ॐ सर्वज्ञाय नम:, (89) ॐ सुबीजाय नम:, (90) ॐ बीज वाहनाय नम:, (91) ॐ दशवाहवे नम:, (92) ॐ आनिभिषाय नम:, (93) ॐ नीलकंठाय नम:, (94) ॐ उमापतये नम:, (95) ॐ विश्वरूपाय नम:, (96) ॐ स्वयं श्रेष्ठाय नम:, (97) ॐ बलवीराय नम:, (98) ॐ अबलाय नम:, (99) ॐ गणाय नम:, (100) ॐ गणकर्त्तो नम:, (101) ॐ गणपतये नम:, (102) ॐ दिग्वाससे नम:, (103) ॐ कामाय नम:, (104) ॐ मंत्रविदे नम:, (105) ॐ परमाय नम:, (106) ॐ मंत्राय नम:, (107) ॐ सर्व भावकराय नम:, (108) ॐ हराय नम:, (109) ॐ कमण्डल धराय नम:, (110) ॐ धन्विने नम:, (111) ॐ वाणहस्ताय नम:, (112) ॐ कपालवते नम:, (113) ॐ अशनिने नम:, (114) ॐ शतघ्निने नम:, (115) ॐ खगिने नम:, (116) ॐ पहशिने नम:, (117) ॐ आयुधिने नम:, (118) ॐ महते नम:, (119) ॐ स्त्रवहस्ताय नम:, (120) ॐ सुरूपाय नम:, (121) ॐ तेजसे नम:, (122) ॐ तेजस्कर निधये नम:, (123) ॐ उष्णीषिणे नम:, (124) ॐ सुवक्त्राय नम:, (125) ॐ उदग्राय नम:, (126) ॐ विनताय नम:, (127) ॐ दीर्घाय नम:, (128) ॐ हरिकेशाय नम:, (129) ॐ सुतीर्थाय नम:, (130) ॐ कृष्णाय नम:, (131) ॐ श्रगालरूपाय नम:, (132) ॐ सिद्धार्थाय नम:, (133) ॐ मुण्डाय नम:, (134) ॐ सर्वशुभयकराय नम:, (135) ॐ अजाय नम:, (136) ॐ बहुरूपाय नम:, (137) ॐ कपर्दिने नम:, (138) ॐ गंध धारिणे नम:, (139) ॐ उर्ध्वरितसे नम:, (140) ॐ ऊर्ध्वलिंगाय नम:, (141) ॐ ऊध्व शायिने नम:, (142) ॐ

नमः स्थलाय नमः, (143) ॐ त्रिजटाय नमः, (144) ॐ चीरवासये नमः, (145) ॐरुद्राय नमः, (146) ॐ सेनापतये नमः, (147) ॐ विभव नमः, (148) ॐअहश्चराय नमः, (149) ॐ नक्तवराय नमः, (150) ॐ तिरममन्वये नमः, (151) ॐ सुवर्चसाय नमः, (152) ॐ गजध्वे नमः, (153) ॐ दैत्यध्ने नमः, (154) ॐ कालाय नमः, (155) ॐ लोकधात्रे नमः, (156) ॐ गुणाकराय नमः, (157) ॐ सिंहशार्दूलरूपाय नमः, (158) ॐ आर्द्र चर्माम्बरावृताय नमः, (159) ॐ कालयोगिने नमः, (160) ॐ महादानाय नमः, (161) ॐ सर्वकामाय नमः, (162) ॐ चतुष्पथाय नमः, (163) ॐ निशाचराय नमः, (164) ॐ प्रेतचारिणे नमः, (165) ॐ भूतचारिणे नमः, (166) ॐ महेश्वराय नमः, (167) ॐ गतये नमः, (168) ॐ बहुभूताय नमः, (169) ॐ स्वर्भानवे नमः, (170) ॐ अमिताय नमः, (171) ॐ नृत्यप्रियाये नमः, (172) ॐ नित्यनर्ताय नमः, (173) ॐ नर्तकाय नमः, (174) ॐ सर्वलालसाय नमः, (175) ॐ घोरायनमः, (176) ॐ बहुधराय नमः, (177) ॐ महातपसे नमः, (178) ॐ पाशाय नमः, (179) ॐ नित्याय नमः, (180) ॐ गिरिरुहाय नमः, (181) ॐ नभसे नमः, (182) ॐ सहस्त्र हस्ताय नमः, (183) ॐ विजयाय नमः, (184) ॐ अर्थाय नमः, (185) ॐ व्यवसायाय नमः, (186) ॐ अतीन्द्रियाय नमः, (187) ॐ अघर्षणाय नमः, (188) ॐ घर्षणात्मने नमः, (189) ॐ यज्ञघ्ने नमः, (190) ॐ कामनाशकाय नमः, (191) ॐ सुसहाय नमः, (192) ॐ दक्षयागापहारिणे नमः, (193) ॐ मध्यमाय नमः, (194) ॐ तेजोपहारिणे नमः, (195) ॐ बलघ्ने नमः, (196) ॐ मुदिताय नमः, (197) ॐ अजिताय नमः, (198) ॐ अवराय नमः, (199) ॐ गंभीराय नमः, (200) ॐ गभीराय नमः, (201) ॐ गंभीर बलवाहनाय नमः, (202) ॐ न्यग्रोध रूपाय नमः, (203) ॐ न्यग्रो धाय नमः, (204) ॐ वृक्षकर्ण स्थितयो नमः, (205) ॐ दिव्यायुधे नमः, (206) ॐ महाकाय नमः, (207) ॐ सुतीक्षण दर्शनाय नमः, (208) ॐ महाननायक नमः, (209) ॐ विष्वकसेनाय नमः, (210) ॐ हरये नमः, (211) ॐ यज्ञाय नमः, (212) ॐ सयुजापीड वाहनाय नमः, (213) ॐ तीक्ष्णतापायनमः, (214) ॐ हर्यश्वाय नमः, (215) ॐ सहाय नमः, (216) ॐ कर्मकालविदे नमः, (217) ॐ विष्णु प्रसादिताय नमः, (218) ॐ ईशः नमः, (219) ॐ समुद्राय नमः, (220) ॐ बड़वायुमुखाय नमः, (221) ॐ हुतासने सहाय नमः, (222) ॐ प्रशान्तात्मन नमः, (223) ॐ हुताशनाय नमः, (224) ॐ उग्रतेजसे नमः, (225) ॐ महातेजसे नमः, (226) ॐ जन्याय नमः, (227) ॐ विजय कालविदे नमः, (228) ॐ ज्योतिषा मयनाय नमः, (229) ॐ सिद्धये नमः, (230) ॐ सर्वविग्रहाय नमः, (231) ॐ शिखिने नमः, (232) ॐ मुण्डिने नमः, (233) ॐ

परतप: नम:, (234) ॐ ज्वालिने नम:, (235) ॐ मूर्तिजाय नम:, (236) ॐ मूर्धायनम:, (237) ॐ बलिने नम:, (238) ॐ वेणविने नम:, (239) ॐ पणविने नम:, (240) ॐ तालिने नम:, (241) ॐ खलिटने नम:, (242) ॐ काल कंटकटाय नम:, (243) ॐ नक्षत्रविग्रहमतये नम:, (244) ॐ गुणवृद्धये नम:, (245) ॐ लयाय नम:, (246) ॐ अगमाय नम:, (247) ॐ प्रजापतये नम:, (248) ॐ विश्वत्राहवे नम:, (249) ॐ विभागाय नम:, (250) ॐ सर्वगाय नम:, (251) ॐ अबुस्त्राय नम:, (252) ॐ विमोचनाय नम:, (253) ॐ सुसरणाय नम:, (254) ॐ हिरण्य कवचोद्भवाय नम:, (255)ॐ मेढ्रज्जाय नम:, (256) ॐ बलधारिणे नम:, (257) ॐ महीचारिणे नम:, (258) ॐ सुताय नम:, (259) ॐ सर्वतूर्यनिनादने नम:, (260) ॐ सर्वतोद्यवरिग्रहाय नम:, (261)ॐ व्यालरूपाय नम:, (262) ॐ गुहावासिने नम:, (263) ॐ गुहाय नम:, (264) ॐ मालिने नम:, (265) ॐ तरंगविदे नम:, (266) ॐ त्रिदशाननाय नम:, (267) ॐ कर्मसर्वबंध विमोचनाय नम:, (268) ॐ त्रिकाल धृगे नम:, (269) ॐ असुरेन्द्राणां वधनाय नम:, (270) ॐ युधिशत्रुविनाशाय नम:, (271) ॐ साख्यप्रसादाय नम:, (272) ॐ दुर्वाससेनम:, (273) ॐ सर्वसाधुनिवेविताय नम:, (274) ॐ प्रस्कन्दनाय नम:, (275) ॐ विभागज्ञाय नम:, (276) ॐ अतुल्याय नम:, (277) ॐ यज्ञभागविदे नम:, (278) ॐ सर्वचारिणे नम:, (279) ॐ सर्ववासाय नम:, (280) ॐ वीतरागो नम:, (281) ॐ वासवाय नम:, (282) ॐ अपराय नम:, (283) ॐ हैमाय नम:, (284) ॐ हेमकराय नम:, (285) ॐ अयज्ञसर्वकाल प्रसादाय नम:, (286) ॐ धरोत्तमाय नम:, (287) ॐ लोहिता क्षाय नम:, (288) ॐ महाक्षाय नम:, (289) ॐ विजयाक्षाय नम:, (290)ॐ विशारदाय नम:, (291) ॐ सर्वकामदाय नम:, (292) ॐ सर्वकाल प्रसादाय नम:, (293) ॐ सुबलाय नम:, (294) ॐ बलरूपधृगे नम:, (295) ॐ संग्रहाय नम:, (296) ॐ विग्रहाय नम:, (297) ॐ कर्त्रे नम:, (298) ॐ सर्पचीरनिवासाय नम:, (299) ॐ मुख्यायनम:, (300) ॐ अमुख्याय नम:, (301) ॐ देहाय नम:, (302) ॐ सर्वकामवराय नम:, (303) ॐ काहलये नम:, (304) ॐ सर्वदाय नम:, (305) ॐ सर्वतो मुखाय नम:, (306) ॐ आकाश निर्विरूपाय नम:, (307) ॐ निपातिने नम:, (308) ॐ अवशाय नम:, (309) ॐ रौद्ररूपाय नम:, (310) ॐ खगाय नम:, (311) ॐ अशवे नम:, (312) ॐ आदित्याय नम:, (313) ॐ बहुरश्मये नम:, (314) ॐ सुवर्चासिने नम:, (315) ॐ वसुवेगाय नम:, (316) ॐ महावेगाय नम:, (317) ॐ मनोकाय नम:, (318) ॐ निशाचराय नम:, (319) ॐ सर्ववासिने नम:, (320) ॐ श्रेयावासिने नम:, (321), ॐ उददेशकराय नम:, (322) ॐ

अकाराय नमः, (323) ॐ गुनये नमः, (324) ॐ आत्मनिरालोकाय नमः, (325) ॐ सभग्नाय नमः, (326) ॐ सहस्त्रदाय नमः, (327) ॐ पक्षिणे नमः, (328) ॐ पक्षरूपाय ानमः, (329) ॐ अतिदीप्ताय नमः, (330) ॐ विशाम्पतये नमः, (331) ॐ उन्मादाय नमः, (332) ॐ मदनाय नमः, (333) ॐ कामाय नमः, (334) ॐ अश्वत्थामाय नमः, (335) ॐ अर्थकराय नमः, (336) ॐ यशसे नमः, (337) ॐ वामदेवाय नमः, (338) ॐ प्राचेनमः, (339) ॐ दक्षिणाय नमः, (340) ॐ वामनाय नमः, (341) ॐ वामाय नमः, (342) ॐ सिद्धयोगिने नमः, (343) ॐ महर्षये नमः, (344) ॐ सिद्धार्थाय नमः, (345) ॐ सिद्धसाधकाय नमः, (346) ॐ भिक्षवे नमः, (347) ॐ भिक्षुस्माय नमः, (348) ॐ अमृतदेव नमः, (349) ॐ विपणाय नमः, (350) ॐ अव्ययाय नमः, (351) ॐ महासनाये नमः, (352) ॐ विशाखाय नमः, (353) ॐषष्टिभागाय नमः, (254) ॐ गवामातये नमः, (355) ॐ वज्रहस्ताय नमः, (356) ॐ मेधवे नमः, (357) ॐ विष्काम्भिने नमः, (358)ॐ चमूस्तम्भनाय नमः, (359) ॐ वृत्तावृत्त कराय नमः, (360) ॐ तालाय नमः, (361) ॐ मधुकलोचनाय नामः, (362) ॐ ॐ वाचस्पत्याय नमः, (363) ॐ वाचसनाय नमः, (364) ॐ आश्रमपूजिताय नमः, (365) ॐ ब्रह्मचारिणे नमः, (366) ॐ लोकचारिणे नमः, (367) ॐ सर्वचारिणे नमः, (368) ॐ विचारविदे नमः, (369) ॐ ईशानाय नमः, (370) ॐ ईश्वराय नमः, (371) ॐ कालाय नमः, (372) ॐ निशाचारिणे नमः, (373) ॐ पिनाक धृणे नमः, (374) ॐ निमित्तस्थाय नमः, (375) ॐ निर्मिताय नमः, (376) ॐ नन्दयेनमः, (377) ॐ नन्दिकराय नमः, (378) ॐ हरये नमः, (379) ॐ नंदीश्वराय नमः, (380) ॐ नंदिने नमः, (381) ॐ नंदनाय नमः, (382) ॐ नन्दिवर्धाय नमः, (383) ॐ भगहारिणे नमः, (384) ॐ निहन्त्रे नमः, (385) ॐ कालाय नमः, (386) ॐ ब्रह्मणे नमः, (387) ॐ पितामहाय नमः, (388) ॐ चतुर्मुखाय नमः, (389) ॐ महालिंगाय नमः, (390) ॐ चारूलिंगाय नमः, (391) ॐ लिंगाध्यक्षाय नमः, (392) ॐ सुराध्यक्षाय नमः, (393) ॐ भोगाध्यक्षाय नमः, (394) ॐ युगावहाय नमः, (395) ॐ बीजाध्यक्षाय नमः, (396) ॐ बीजकर्त्रेय नमः, (397) ॐ अध्यात्मानुगताय नमः, (398) ॐ बलाय नमः, (399) ॐ इतिहासाय नमः, (400) ॐ संकल्पाय नमः, (401) ॐ गौतमाय नमः, (402) ॐ निशाकराय नमः, (403) ॐ दम्भाय नमः, (404) ॐ अदम्भाय नमः, (405) ॐ वेदम्भाय नमः, (406) ॐ कलये नमः, (407) ॐ वश्याय नमः, (408) ॐ वशाकराय नमः, (409) ॐ लोककर्त्रे नमः, (410) ॐ पशुपतये नमः, (411) ॐ महाकर्त्रे नमः, (412) ॐ अनौषधाय नमः, (413) ॐ अक्षराय नमः, (414) ॐ

परब्रह्मणे नमः, (415) ॐ बलवते नमः, (416) ॐ शक्राय नमः, (417) ॐ नीतये नमः, (418) ॐ अनीत्ये नमः, (419) ॐ अशुद्धात्मने नमः, (420) ॐ मान्याय नमः, (421) ॐ शुद्धाय नमः, (422) ॐ गतागताय नमः, (423) ॐ बहुप्रसादाय नमः, (424) ॐ सुस्वानाय नमः, (425) ॐ दर्पणाय नमः, (426) ॐ अभिन्नजिते नमः, (427) ॐ वेदकाराय नमः, (428) ॐ मंत्रकाराय नमः, (429) ॐ विदुषे नमः, (430) ॐ समरमर्दनाय नमः, (431) ॐ महामेघनिवासिने नमः, (432) ॐ महाघोराय नमः, (433) ॐ वशिने नमः, (434) ॐ कराय नमः, (435) ॐ अग्निज्वालाय नमः, (436) ॐ महाज्वालाय नमः, (437) ॐ अतिधूम्राय नमः, (438) ॐ हुताय नमः, (439) ॐ हविषे नमः, (440) ॐ वृषणाय नमः, (441) ॐ शंकराय नमः, (442) ॐ स्वास्तिदाय नमः, (443) ॐ नीलाय नमज्, (444) ॐ धूमकेतनाय नमः, (445) ॐ अंगलुब्धाय नमः, (446) ॐ शोभनाय नमः, (447) ॐ निश्वग्रहाय नमः, (448) ॐ स्वास्तिदाय नमः, (449) ॐ स्वस्तिभावाय नमः, (450) ॐ भागिने नमः, (451) ॐ भागकैराय नमः, (452) ॐ लघवे नमः,, (453) ॐ उत्संगाय नमः, (454) ॐ महाङ्गाय नमः, (455) ॐ महागर्भपरायणाय नमः, (456) ॐ कृष्णवर्णाय नमः, (457) ॐ सुवर्णाय नमः, (458) ॐ सर्वदेहिनामीन्द्रियाय नमः, (459) ॐ महापादाय नमः, (460) ॐ महाहस्ताय नमः, (461) ॐ महाकायाय नमः, (462) ॐ महायशसे नमः, (463) ॐ महामूर्ध्वे नमः, (464) ॐ महामात्राय नमः, (465) ॐ महानेत्राय नमः, (466) ॐ निशालयाय नमः, (467) ॐ महान्तकाय नमः,(468) ॐ महाकर्णाय नमः, (469) ॐ महाष्ठाय नमः, (470) ॐ महाहनवे नमः, (471) ॐ महानाशाय नमः, (472) ॐ महाकम्बवे नमः, (473) ॐ महाग्रीवाय नमः, (474) ॐ श्मशान भजे नमः, (475) ॐ महावक्षो नमः, (476) ॐ महोरचाय नमः, (477) ॐ अन्तरात्मने नमः, (478) ॐ मृगालयाय नमः, (479) ॐ लम्बनाय नमः, (480) ॐ लम्बितोष्ठाय नमः, (481) ॐ महामाया नमः, (482) ॐ पयोनिधिये नमः, (483) ॐ महादताय नः, (484) ॐ महाद्रष्टाय नमः, (485) ॐ महाजिभ्याय नमः, (486) ॐ महामुखाय नमः, (487) ॐ महानखाय नमः, (488) ॐ महारोम्णे नमः,(489) ॐ महाकेशाय नमः, (490) ॐ महाजटाय नमः, (491) ॐ प्रसन्नाय नमः, (492) ॐ प्रसादाय नमः, (493) ॐ प्रत्ययाय नमः, (494) ॐ गिरिसाधनाय नमः, (495) ॐ स्नेश्नाय नमः, (496) ॐ अस्नेहनाय नमः, (497) ॐ अजिताय नमः, (498) ॐ महामुनये नमः, (499) ॐ वृशाकराय नमः,(500) ॐ वृक्ष केतवे नमः, (501) ॐ अनलाय नमः, (502) ॐ वायुवाहनाय नमः, (503) ॐ गण्डनिले नमः, (504) ॐ मेरुधाम्ने नमः, (505)

ॐ दधिपटये नमः, (506) ॐ अथर्वशीर्वाय नमः, (507) ॐ सामास्याय नमः, (508) ॐ ऋक्सहस्त्र मितेक्षणाय नमः, (509) ॐ गुह्याय नमः, (510) ॐ यजुः पादभुवाय नमः, (511) ॐ प्रकाशाय नमः, (512) ॐ जंगमाय नमः, (513) ॐ अमोघर्षाय नमः, (514) ॐ अभिगम्याय नमः, (515) ॐ सुदर्शनाय नमः, (516) ॐ उपकाराय नमः, (517) ॐ प्रियाय नमः, (518) ॐ प्रमादाय नमः, (519) ॐ सर्वाय नमः, (520) ॐ कनकाय नमः, (521) ॐ कांचनच्छवये नमः, (522) ॐ नामये नमः, (523) ॐ नंदिकराय नमः, (524) ॐ भावाय नमः, (525) ॐ पुष्करस्थापतये नमः, (526) ॐ स्थिराय नमः, (527) ॐ द्वादशाय नमः, (528) ॐ त्रासनाय नमः, (529) ॐ आद्याय नमः, (530) ॐ यज्ञाय नमः, (531) ॐ यज्ञसिमाहिताय नमः, (532) ॐ नक्तोय नमः, (533) ॐ कलये नमः, (534) ॐ कालाय नभः, (535) ॐ मकराय नमः, (536) ॐ कालपूजिताय नमः, (537) ॐ सगणाय नः, (538) ॐ गणकाराय नमः, (539) ॐ भूतवाहन सारथये नमः, (540) ॐ भस्मशयाय नमः, (541) ॐ भस्मगोत्रेय नमः, (542) ॐ भस्मभूताय नमः, (543) ॐ तरवे नमः, (544) ॐ गणाय नमः, (545) ॐ लोकपालाय नमः, (546) ॐ अलोकाय नमः, (547) ॐ महात्मने नमः, (548) ॐ सर्वपूजिताय नमः, (549) ॐ शुक्लाय नमः, (550) ॐ त्रिशुक्लाय नमः, (551) ॐ सम्पन्नाय नमः, (552) ॐ शुचये नमः, (553) ॐ भूत निषेवताय नमः, (554) ॐ आश्रमरस्थाय नमः, (555) ॐ क्रियावस्स्थाय नमः, (556) ॐ विश्वकर्म पतये नमः, (557) ॐ बराय नमः, (558) ॐ विशालशाखाय नमः, (559) ॐ तमोष्ठाय नमः, (560) अम्बुजाय नमः, (561) ॐ सुनिश्चलाय नमः, (562) ॐ कपिलाय नमः, (563) ॐ कपिशाय नमः, (464) ॐ शुक्लाय नमः, (565) ॐ आयुष्ये नमः, (566) ॐ पराय नमः, (567) ॐ अपराय नमः, (568) ॐ गंधर्वाय नमः, (569) ॐ आदितये नमः, (570) ॐ ताक्ष्र्याय नमः, (571) ॐ सुविज्ञेयाय नमः, (572) ॐ सुशारदाय नमः, (573) ॐ परशधायुधाय नमः, (574) ॐ देवाय नमः, (575) ॐ अनुकारिणे नमः, (576) ॐ सुवान्धवाय नमः, (577) ॐ तुम्बवीणाय नमः, (578) ॐ महाक्रोधाय नमः, (579) ॐ उर्ध्वरितसे नमः, (580) ॐ जलेशाय नमः, (581) ॐ उग्राय नमः, (582) ॐ वशकराय नमः, (583) ॐ वशनादाय नमः, (584) ॐ अदिताय नमः, (585) ॐ वंशाय नमः, (586) ॐ सर्वांगरूपाय नमः, (587) ॐ मायाविने नमः, (588) ॐ सुहृदाय नमः, (589) ॐ अनिलाय नमः, (590) ॐ अनलाय नमः, (591) ॐ बन्धनाय नमः, (592) ॐ बंधकर्ये नमः, (593) ॐ शर्वाय नमः, (594) ॐ सुबंधनविमोचनाय नमः, (595) ॐ सयज्ञारये नमः, (596) ॐ सकामारेय नमः,

(597) ॐ महादष्ट्राय नमः, (598) ॐ बहुधामिदिताय नमः, (599) ॐ शंकराय नमः, (600) ॐ शिवाय नमः, (601) ॐ अघामाय नमः, (602) ॐ महायुधाय नमः, (603) ॐ अमरेशाय नमः, (604) ॐ महादेवाय नमः, (605) ॐ विश्वदेवाय नमः, (606) ॐ सुरारिघ्ने नमः, (607) ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः, (608) ॐ अनिलाभाय नमः, (609) ॐ चेकिताय नमः, (610) ॐ हविषे नमः, (611) ॐ अजैकपादें नमः, (612) ॐ कपालिने नमः, (613) ॐ त्रिशंकवे नमः, (614) ॐ अजिताय नमः, (615) ॐ सदाशिवाय नमः, (616) ॐ धन्वन्तरे नमः, (617) ॐ अधूमकेतवे नमः, (618)ॐ धाये नमः, (619) ॐ स्कन्दाय नमः, (620) ॐ वैश्रवणाय नमः, (621) ॐ शक्राय नमः, (622) ॐ विष्णवे नमः, (623) ॐ मित्राय नमः, (624) ॐ त्वष्टे नमः, (625) ॐ ध्रुवाय नमः, (626) ॐ धराय नमः, (627) ॐ प्रभावाय नमः, (628) ॐ सर्वगवे नमः, (629) ॐ अर्याम्णेनमः, (630) ॐ सवित्रे नमः, (631) ॐ स्वये नमः, (632) ॐ उसंगणे नमः, (633) ॐ विधाये नमः, (634) ॐ मान्धात्रे नमः, (635) ॐ भूतभावनाय नमः, (636) ॐ विभवे नमः, (637) ॐ वर्ण विभावने नमः, (638) ॐ सर्वकामगुण वहाय नमः, (639) ॐ पद्मनाभाय नमः, (640) ॐ महागर्भाय नमः, (641) ॐ चन्द्रवक्त्राय नमः, (642) ॐ अनिलाय नमः, (643) ॐ आनलाय नमः, (644) ॐ बलवते नमः, (645) ॐ उपशान्ताय नमः, (646) ॐ पुराणाय नमः, (647) ॐ पुण्यचंचवे नमः, (648) ॐ रत्यै नमः, (649) ॐ कुरुकर्त्रे नमः, (650) ॐ कुरुवासिने नमः, (651) ॐ पुरुहुताय नमः, (652) ॐ गुणौषधाय नमः, (653) ॐ सर्वशयाय नमः, (654) ॐ दर्भचारिणे नमः, (655) ॐ सर्वप्राणिपतये नमः, (656) ॐ देवदेवाय नमः, (657) ॐ सुखासक्ताय नमः, (658) ॐ सर्व रत्नविदे नमः, (659) ॐ सदसते नमः, (660) ॐ कैलाश गिरिवासने नमः, (661) ॐ हिमवद् गिरि संश्रयाय नमः, (662) ॐ कूलहरिणे नमः, (663) ॐ कुलकर्न्त्रे नमः, (664) ॐ बहुविद्याय नमः, (665) ॐ बहुप्रदाय नमः, (666) ॐ वणिजाय नमः, (667) ॐ बधकिने नमः, (668) ॐ वृक्षाय नमः, (669) ॐ बकुलाय नमः, (670) ॐ चन्दनाय नमः, (671) ॐ छन्दाये नमः, (672) ॐ सारग्रीवाय नमः, (673) ॐ महाजत्रेवम् नमः, (674) ॐ अलोलाय नमः, (675) ॐ महौषधाय नमः, (676) ॐ सिद्धार्थकारिणे नमः, (677) ॐ छन्दोव्याकरणोत्तर सिद्धार्थाय नमः, (678) ॐ सिंहनादाय नमः, (679) ॐ सिंहराष्ट्राय नमः, (680) ॐ सिंहगाय नमः, (681) ॐ सिंहवाहनाय नमः, (682) ॐ प्रभावात्मने नमः, (683) ॐ जगत्काल स्थानाय नमः, (684) ॐ लोकहिताय नमः, (685) ॐ तरवे नमः, (686) ॐ सागराय नमः, (687) ॐ नवचक्रांगाय नमः, (688) ॐ भूषणपतये नमः, (689)

ॐ केतुमालिने नमः, (690) ॐ सभाय नाय नमः, (691) ॐ भूतालयाय नमः, (692) ॐ अहोरात्राय नमः, (693) ॐ अनिदिताय नमः, (694) ॐ सर्वभूतवाहिये नमः, (695) ॐ सर्वभूत निलयाय नमः, (696) ॐ विभवे नमः, (697) ॐ भावाय नमः, (698) ॐ अमोघाय नमः, (699) ॐ संयताय नमः, (700) ॐ अश्वााय नमः, (701) ॐ भोजनाय नमः, (702) ॐ प्राणधारणाय नमः, (703) ॐ धृतिमते नमः, (704) ॐ मतिमते नमः, (705) ॐ दक्षाय नमः, (706) ॐ सकृताय नमः, (707) ॐ युगाधिपाय नमः, (708) ॐ गोपालाय नमः, (709) ॐ गोपतये नमः, (710) ॐ ग्रामाय नमः, (711) ॐ गोचर्म वसनाय नमः, (712) ॐ हरये नमः, (713) ॐ हिरण्यबाहवे नमः,, (714) ॐ प्रवेशिनां गुहापालय नमः, (715) ॐ प्रकृष्टारये नमः, (716) ॐ महाहर्षाय नमः, (717) ॐ जितकामाय नमः, (718) ॐ जितेन्द्रियाय नमः, (719) ॐ गांधाराय नमः, (720) ॐ सुवासाय नमः, (721) ॐ तपःसक्तोय नमः, (722) ॐ रतये नमः, (723) ॐ नरायनमः, (724) ॐ महागीताय नमः, (725) ॐ महान्तत्यायन नमः, (726) ॐ महाकेतवे नमः, (727) ॐ महाधातवे नमः, (728) ॐ अप्सरोगण सेविताय नमः, (729) ॐ नैकसानुचराय नमः, (730) ॐ चलाय नमः, (731) ॐ आवेदनीयाय नमः, (732) ॐ आदेशाय नमः, (733) ॐ सर्वगन्धसुखा वहाय नमः, (734) ॐ तोरणाय नमः, (735) ॐ तारणाय नमः, (736) ॐ वाताय नमः, (737) ॐ परिधिने नमः, (738) ॐ पतिरवेचराय नमः, (739) ॐ संयोगवर्धनाय नमः, (740) ॐ गुणाधिक बृद्धाय नमः, (741) ॐ अधिवृद्धाय नमः, (742) ॐ नित्यात्म सहाय नमः, (743) ॐ देवासुर पतये नमः, (744) ॐ पत्ये नमः, (745) ॐ युक्ताय नमः, (746) ॐ युक्तवाहवे नमः, (747) ॐ दिविसुपर्व देवाय नमः, (748) ॐ आषाढ़ाय नमः, (749) ॐ सुवाढ़ाय नमः, (750) ॐ ध्रुवाय नमः, (751) ॐ हरिणाय नमः, (752) ॐ हराय नमः, (753) ॐ आवर्तमानवपुषे नमः, (754) ॐ वसुश्रेष्ठाय नमः, (755) ॐ महापथाय नमः, (756) ॐ विमष शिरोहारिणे नमः, (757) ॐ सर्वलक्षण लक्षिताय नमः, (758) ॐ अक्षरथयोगिने नमः, (759) ॐ सर्वयोगिने नमः, (760) ॐ महाबलाय नमः, (761) ॐ सभातिनाय नमः, (762) ॐ असमाम्नायाय नमः, (763) ॐ तीर्थदेवाय नमः, (764) ॐ महारथाय नमः, (765) ॐ निर्जीवाय नमः, (766) ॐ जीवनाय नमः, (767) ॐ मंत्राय नमः, (768) ॐ शुभाक्षाय नमः, (769) ॐ बहुकर्कशाय नमः, (770) ॐ रत्नप्रभूताय नमः, (771) ॐ रत्नांगाय नमः, (772) ॐ महार्णव निपानविदे नमः, (773) ॐ मूलाय नमः, (774) ॐ त्रिशूलाय नमः, (775) ॐ अमृताय नमः, (776) ॐ व्यक्ताअव्यक्ताय नमः, (777) ॐ तपोनिधये नमः, (778) ॐ आरोहणाय नमः,

(779) ॐ अधिरोधाय नमः, (780) ॐ शीलधारिणे नमः, (781) ॐ महायशसे नमः, (782) ॐ सेनाकल्पाय नमः, (783) ॐ महाकल्पाय नमः, (784) ॐ योगाय नमः, (785) ॐ युगकराय नमः, (786) ॐ हरये नमः, (787) ॐ युगरूपाय नमः, (788) ॐ महारूपाय नमः, (789) ॐ महागहनाय नमः, (790) ॐ बधाय नमः, (791) ॐ न्याय निर्विपणाय नमः, (792) ॐ पादाय नमः, (793) ॐ पंडिताय नमः, (794) ॐ अचलोपमाय नमः, (795) ॐ बहुभाषाय नमः, (796) ॐ महामालाय नमः, (797) ॐ शशिहर सुलोचनाय नमः, (798) ॐ विस्तार लवणकूपाय नमः, (799) ॐ त्रियुगाय नमः, (800) ॐ सफलोदयाय नमः, (801) ॐ त्रिनेत्राय नमः, (802) ॐ विषाणांगाय नमः, (803) ॐ मणिविद्धाय नमः, (804) ॐ जटाधराय नमः, (805) ॐ विन्दवेनमः, (806) ॐ विसर्गाय नमः, (807) ॐ सुमुखाय नमः, (808) ॐ शराय नमः, (809) ॐ सर्वायुधाय नमः, (810) ॐ सहाय नमः, (811) ॐ निवेदनाय नमः, (812) ॐ सुखाजाताय नमः, (813) ॐ सुगंधाराय नमः, (814) ॐ गंधपालि भगवते नमः, (815) ॐ महाधनुषे नमः, (816) ॐ सर्वकार्मोत्थानाय नमः, (817) ॐ मशानबहुलवाहवे नमः, (818) ॐ सकलाय नमः, (819) ॐ सर्वलोचनाय नमः, (820) ॐ तलस्तालाय नमः, (821) ॐ करस्थालिने नमः, (822) ॐऊर्ध्व सहानाय नमः, (823) ॐ महते नमः, (824) ॐ छत्राय नमः, (825) ॐ सुछत्राय नमः, (826) ॐ विख्यातलोकाय नमः, (827) ॐ सर्वाश्रय क्रमाय नमः, (828) ॐ मुण्डाय नमः, (829) ॐ विरूपाय नमः, (830) ॐ विकृताय नमः, (831) ॐ दण्डिने नमः, (832) ॐ कुण्डिनेनमः, (833) ॐ विकुर्वाणाय नमः, (834) ॐ हयक्षाय नमः, (835) ॐ ककुभाय नमः, (836) ॐ वज्रिणे नमः, (837) ॐ शत जिह्वाय नमः, (838) ॐ सहस्त्रपदे नमः, (839) ॐ सहस्त्रमूर्ध्ने नमः, (840) ॐ देवेन्द्राय नमः, (841) ॐ गुरुवे नमः, (842) ॐ सर्वदेव मयाय नमः, (843) ॐ सहस्त्र वाहवे नमः, (844) ॐ सर्वांगाय नमः, (845) ॐ शरणाय नमः, (846) ॐ सर्वलोककृते नमः, (847) ॐ पवित्राय नमः, (848) ॐ कनिष्ठाय नमः, (849) ॐ त्रिककुन्मन्त्राय नमः, (850) ॐ कृष्णपिंगलाय नमः, (851) ॐ ब्रह्माण्ड विनिर्मात्रे नमः, (852) ॐ शतघ्नी पाश शक्तिमते नमः, (853) ॐ पद्मगर्भाय नमः, (854) ॐ महागर्भाय नमः, (855) ॐ ब्रह्मगर्भाय नमः, (856) ॐ जलजोद्भवाय नमः, (857) ॐ गमस्तये नमः, (858) ॐ ब्रह्मकृते नमः, (859) ॐ ब्रह्मणे नमः, (860) ॐ ब्रह्मविदे नमः, (861) ॐ ब्राह्मणाय नमः, (862) ॐ गतये नमः, (863) ॐ अनन्तरूपाय नमः, (864) ॐ नैकात्मने नमः, (865) ॐ स्वयम्भुव तिग्मतेजसे नमः, (866) ॐ उर्ध्वागात्मने नमः, (867) ॐ

पशुपतये नमः, (868) ॐघातरहसे नमः, (869) ॐ मनोजवाय नमः, (870) ॐ चन्दनिने नमः, (871) ॐ पद्मतााालाग्राय नमः, (872) ॐ सुरभ्युत्तारणाय नमः, (873) ॐ नराय नमः, (874) ॐ कर्णिकार महास्त्रग्विणे नमः, (875) ॐ नीलमालये नमः, (876) ॐ पिनाकघृषे नमः, (877) ॐ उमापतये नमः, (878) ॐ उमाकान्ताय नमः, (879) ॐ जाह्नवी धृते नमः, (880) ॐ उमाधवाय नमः, (881) ॐ वरवराहाय नमः, (882) ॐ वरदाय नमः, (883) ॐ वरेण्याय नमः, (884) ॐ सुमहास्वनाय नमः, (885) ॐ दमनाय नमः, (886) ॐ महाप्रसादाय नमः, (887) ॐ शत्रुघ्ने नमः, (888) ॐ ष्ठोत पिंगलाय नमः, (889) ॐ पीतात्मने नमः, (890) ॐ परमात्मने नमः, (891) ॐ प्रयतात्मने नमः, (892) ॐ प्रधान धृषे नमः, (893) सर्वपार्श्वमुखाय नमः, (894) ॐ त्र्यक्षाय नमः, (895) ॐ सर्वसाधारण वराय नमः, (896) ॐ चराऽचरात्मने नमः, (897) ॐ सूक्ष्मात्मने नमः, (898) ॐ साध्यर्षय नमः, (899) ॐ अमृतगोवृषे श्वराय नमः, (900) ॐ आदित्यवसवे नमः, (901) ॐ विवस्वत्य वित्र मृताय नमः, (902) ॐ व्यासाय नमः, (903) ॐ सर्वसुषक्षेप विस्तराय नमः, (904) ॐ पर्ययनराय नमः, (905) ॐ क्रतवे नमः, (906) ॐ संवत्सराय नमः, (907) ॐ मासाय नमः, (908) ॐ पक्षाय नमः, (909) ॐ संख्या समासनाय नमः, (910) ॐ कलाये नमः, (911) ॐ काष्ठयै नमः, (912) ॐ लाभ्यो नमः, (913) ॐ मात्रभ्यो नमः, (914) ॐ मुहूर्तर्वाहक्षपाभ्यो नमः, (915) ॐ क्षणेभ्यो नमः, (916) ॐ सते नमः, (917) विश्वक्षेत्राय नमः, (918) ॐ प्रजावीजाय नमः, (919) ॐ लिंगाय नमः, (920) ॐ आद्यनिर्गमाय नमः, (921) ॐ असते नमः, (922) ॐ व्यक्ताय नमः, (923) ॐ पित्रे नमः, (924) ॐ अव्यक्ताय नमः, (925) ॐ मात्रे नमः, (926) ॐ पितामहाय नमः, (927) ॐ स्वर्गद्वाराय नमः, (928) ॐ प्रजाद्वाराय नमः, (929) ॐ मोक्ष द्वाराय नमः, (830) ॐ देवाय नमः, (931) ॐ त्रिविष्टपाय नमः, (832) ॐ निर्वाणाय नमः, (933) ॐ ह्लादनाय नमः, (934) ॐ ब्रह्मलोकाय नमः, (935) ॐ परागतये नमः, (936) ॐ देवासुर विनिर्मात्रे नमः, (937) ॐ देवासुर परायणाय नमः, (938) ॐ देवासुर गुरुवे नमः, (939) ॐ देवासुर नमस्कृताय नमः, (940) ॐ देवासुर महामात्राय नमः, (941) ॐ देवर्षये नमः, (942) ॐ देवासुर गणाश्रमाय नमः, (943) ॐ देवासुर गणाध्यक्षाय नमः, (944) ॐ देवासुर गणाग्रणे नमः, (945) ॐ देवाति देवाय नमः, (946) ॐ देवासुर वर प्रदाय नमः, (947) ॐ देवासुरेश्वराय नमः, (948) ॐ विश्वाय नमः, (949) ॐ देवासुर महेश्वराय नमः, (950) ॐ सर्वदेवमयाय नमः, (951) ॐ अचिन्त्याय नमः, (952) ॐ देवासुर वरप्रदाय नमः, (953) ॐ देवतात्मने नमः, (954) ॐ आत्मसंभवाय नमः, (955) ॐ

उद्भिद नमः, (956) ॐ त्रिविक्रमाय नमः, (957) ॐ वैद्याय नमः, (958) ॐ विरजाय नमः, (959) ॐ नीरजाय नमः, (960) ॐ वभ्रवे नमः, (961) ॐ अमराय नमः, (962) ॐ ईड्याय नमः, (963) ॐ हस्तीस्वराय नमः, (964) ॐ व्याघ्राय नमः, (965) ॐ देवसिंहाय नमः, (966) ॐ नरर्षभाय नमः, (967) ॐ विवुधाय नमः, (968) ॐ अग्रवराय नमः, (969) ॐ सूक्ष्माय नमः, (970) ॐ सर्वदेवाय नमः, (971) ॐ तपोमपाय नमः, (972) ॐ सुयुक्ताय नमः, (973) ॐ शोभनाय नमः, (974) ॐ वज्रिणे नमः, (975) ॐ प्रासानाम्प्र भवाय नमः, (976) ॐ अव्ययाय नमः, (977) ॐ गुहाय नमः, (978) ॐ कान्ताय नमः, (979) ॐ निजसर्गाय नमः, (980) ॐ पार्वत्राय नमः, (981) ॐ सर्व पावनाय नमः, (982) ॐ श्रृगिणे नमः, (983) ॐ श्रंगप्रियाय नमः, (984) ॐ राजराजाय नमः, (985) ॐ निरामयाय नमः, (986) ॐ अभिरामाय नमः, (987) ॐ सुरगणाय नमः, (988) ॐ विरामाय नमः, (989) ॐ सर्वसाधनाय नमः, (990) ॐ ललाटाक्षाय नमः, (991) ॐ विश्वदेवाय नमः, (992) ॐ हरिणाय नमः, (993) ॐ ब्रह्मवर्यसाय नमः, (994) ॐ स्थावर पतये नमः, (995) ॐ नियमोन्द्रिय वर्धनाय नः, (996) ॐ सिद्धार्थाय नमः, (997) ॐ सिद्धभूतार्थनाय नमः, (998) ॐ अचिन्त्याय नमः, (999) ॐ सत्यव्रताय नमः, (1000) ॐ शुचये नमः, (1001) ॐ व्रताधिपाय नमः, (1002) ॐ पराय नमः, (1003) ॐ ब्रह्मणे नमः (1004) ॐ भकानांपरमगतये नमः, (1005) ॐ विमुत्ताय नमः, (1006) ॐ मुक्ततेजसे नमः, (1007) ॐ श्रीवर्धनाय नमः, (1008) ॐ जगते नमः।

भूमि पर स्थित 108 शैव क्षेत्र इस प्रकार हैं—

(1) कैवल्य शैल पर भगवान शिव 'श्रीकण्ठ' (2) हिमालय पर्वत पर 'केदार' (3) काशी में 'विश्वनाथ' (4) श्री शैल पर 'मल्लिकार्जन' (5) प्रयाग में 'नीलकण्ठेश' (6) गया में 'रुद्र' (7) कालज्जर में 'नीलकण्ठेश्वर' (8) द्राक्षाराम में 'भीमेश्वर' (9) मायूरम (मायावरम) में 'अम्बिकेश्वर' (10) ब्रह्मावर्त में 'देवलिङ्ग' (11) प्रभाष में 'शशिभूषण' (12) श्वेत हस्तिपुर में 'वृषध्वज' (13) गोकर्ण में 'गोकर्णेश्वर' (14) सोमनाथ में 'सोमेश्वर' (15) श्रीरूप में 'त्यागराज' (16) वेद में 'वेदपुरीश्वर' (17) भीमाराम में 'भीमेश्वर' (18) मंथन में 'कालिकेश्वर' (19) मथुरा में 'चोक्कनाथ' (चक्लेश्वर) (20) मानस में 'माघवेश्वर' (21) श्रीवाच्छ में 'चम्पकेश्वर' (22) गजारण्य में 'वैद्यनाथ' (23) तीर्थांचल में 'तीर्थकेश्वर' (24) कुम्भकोंण में 'कुम्भेश' (25) लेपाक्षी में 'पापनाशन' (26) कण्वपुरी में 'कण्वेश' (27) मध्या में

'मध्यार्जुनेश्वर' (28) हरिहरपुर में 'शंकर-नारायणेश्वर' (29) विरिचिपुरी में 'मार्गेश' (30) पञ्चनद में 'गिरीश्वर' (31) पप्पापुरी में 'विरूपाक्ष' (32) सोमगिरी पर 'मल्लिकार्जुन' (33) त्रियकूट में 'अगस्त्येश्वर' (34) सुब्रह्मण्य में 'अहिपेश्वर' (35) महाबलपर्वत पर 'महाबलेश्वर' (36) दक्षिणावर्त में साक्षात सूर्य के द्वारा पूजित 'अर्केश्वर' (37) वेदारण्य में 'वेदारण्येश्वर' (38) सोमपुरी में 'सोमेश्वर' (39) उज्जैन में 'समलिङ्गेश्वर' (40) कश्मीर में 'विजयेश्वर' (41) महानन्दिपुर में 'महानन्दिपुरेश्वर' (42) कोटितार्थ में 'कोटीश्वर' (43) वृद्धक्षेत्र में वृद्धाचलेश्वर (44) कुकुदपर्वत पर 'गंगाधरेश्वर' (45) चामराजनगर में 'चामराजेश्वर' (46) नन्दि पर्वत पर 'नन्दीश्वर' (47) बधिराचल पर 'वृद्धाचलेश्वर' (48) गरपुर में 'नञ्जुण्डेश्वर' (49) शतश्रंग पर्वत पर 'अधिपेश्वर' (50) घनानन्द पर्वत पर 'सोमेश्वर' (51) नल्लूर में 'विमलेश्वर' (52) नीड़ानाथपुर में 'नीडानाथेश्वर' (53) एकान्त में 'रामलिङ्गेश्वर' (54) श्रीनाग में 'कुण्डलीश्वर' (55) श्रीकन्या में 'त्रिभङ्गीश्वर' (56) उत्सङ्ग में 'राघवेश्वर' (57) मत्स्य-तीर्थ में 'तीर्थेश्वर' (58) चित्रकूट पर्वत पर 'ताण्डेश्वर' (59) प्रसन्नपुरी में 'मार्ग सहायेश्वर' (60) गण्डकी में 'शिवनाम' (61) श्रीपति में 'श्रीपतीश्वर' (62) धर्मपुरी में 'धर्मलिङ्ग' (63) कान्यकुब्ज में 'कलाधर' (64) वाणिग्राम में 'विरिञ्चेश्वर' (65) नेपाल में 'नकुलेश्वर' (66) जगन्नाथपुरी में 'मारकण्डेश्वर' (67) नर्वदा तट पर 'स्वयंभू' (68) धर्म स्थल में 'मञ्जुनाथ' (69) त्रिरूपक में 'व्यासेश्वर' (70) स्वर्णावती में 'कलिङ्गेश्वर' (71) निर्मल में 'पन्नगेश्वर' (72) पुण्डरीक में 'जैमिनीश्वर' (73) अयोध्या में मधुरेश्वर (74) सिद्धवटी में 'सिद्धेश्वर' (75) श्री कूर्माचल पर 'त्रिपुरान्तक' (76) मणिकुण्डलतीर्थ में 'मणिमुक्ता नंदीश्वर' (77) वराटवी में 'कृतिवासेश्वर' (78) त्रिवेणी तट पर 'संगमेश्वर' (79) रतनिता तीर्थ में 'मल्लेश्वर' (80) इन्द्रकील पर्वत पर 'अर्जुनेश्वर' (81) शेषाचल पर 'कपिलेश्वर' (82) पुष्पगिरि पर 'पुष्पगिरीश्वर' (83) चित्रकूट में 'भुवनेश्वर' (84) उज्जैन में 'कालिकेश्वर' (महाकाल) (85) ज्वालामुखी में 'शूलटङ्क' (86) मङ्गली में 'संगमेश्वर' (87) तज्जापुरी (तंजोर) में 'बृहदीश्वर' (88) पुष्कर में 'रामेश्वर' (89) लंका में 'मत्स्येश्वर' (90) गंधमादन पर 'कूर्मेश्वर' (91) विन्ध्यापर्वत पर 'बराहेश्वर' (92) अहोबिल में 'नृसिंह' रूप से प्रकट हैं। (93) कुरुक्षेत्र में 'बापनेश्वर' (94) कपिलातीर्थ में 'परशुरामेश्वर' (95) सेतुबन्ध में 'रामेश्वर' (96) साकेत में 'बलरामेश्वर' (97) वारणावत में 'बौद्धेश्वर' (98) तत्वक्षेत्र में 'कल्कीश्वर', (99) महेन्द्राचल पर 'कृष्णेश्वर', (100) कैलाश पर्वत पर 'परमशिव' (101) सूर्यबिम्ब में 'सदाशिव' (102) बैकुण्ठ में 'नरायणेश' (103) पाताल में

'हाटकेश्वर' (104) ब्रह्मलोक में 'ब्रह्मेश्वर' (105) इन्द्रप्रस्थ में 'लोकनाथ' (106) अमरकण्टक में 'अमरनाथ' (107) लवपुरी में 'पशुपतिनाथ' और (108) रुद्रप्रयाग में 'एकादश रुद्रेश्वर'-रूप में व्यक्त हैं। (ललितागम ज्ञानपाद शिवलिङ्ग-प्रादुर्भाव-पटल)

कवित्त—"नन्दी की सवारी नाग अंग अंगी कर धारी,
नित संत सुखकारी नीलकंठ त्रिपुरारी हैं।
गले मुण्ड मालाभारी सिर सोहे जटाधारी,
बाम अंग में बिहारी गिरि राज सुता वारी हैं।
दानी देख भारी शेष शारदा पुकारी,
काशीपति मद नारी कर शूल चक्र धारी है।
कला उजि यारी लख देव सो निहारी,
यश गावैं वेद चारी सो हमारी रखबारी है।



आरती (1)

जयति जयति जग निवास, शंकर सुखकारी।
अजर अमर अज अरूप सत चित आनन्द रूप॥
व्यापक ब्रह्म स्वरूप भव! भवभय हारी।
जयति जयति जग निवास, शंकर सुखकारी॥ जयति ...
शोभित बिधुभाल, सुरसरिमय जटाजाल,
तीन नयन अति विशाल मदन दहन कारी॥ जयति ...
भक्त हेतु धरत शूल करत कठिन शूल फूल,
हिय की सब जरत हूल अचल शांति कारी॥ जयति ...
अमल अरुण चरण कमल, सफल करत काम,
सकल भक्ति मुक्ति देंत विमल माया भ्रम टारी॥ जयति ...
कार्तिकेय युत गणेश हिमतनया सह महेश राजत,
कैलाश देश, अकल कलाधारी॥ जयति ...
भूषण तन भूति व्याल मुण्डमाल कर कपाल
सिंह चर्म हस्ति खाल डमरू करधारी॥ जयति ...
अशरण जन नित्य शरण आशुतोष आर्ति हरण,
सब विधि कल्याण करन जय-जय त्रिपुरारी॥ जयति ...



आरती-(2)

हर-हर-हर महादेव! (टेक)
सत्य, सनातन सुंदर शिव! सब के स्वामी।
अविकारी, अविनाशी, अज अन्तर्यामी ॥1॥ हर-हर...
आदि, अनन्त, अनामय, अकल, कलाधारी।
अमल, अरूप, अगोचर, अविचल, अघहारी ॥2॥ हर-हर ...
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, तुम त्रिमूर्तिधारी।
कर्ता, भर्ता, धर्ता, तुम ही संहारी ॥3॥ हर-हर ...
रक्षक, भक्षक, प्रेरक, प्रिय औढ़र दानी।
साक्षी, परम अकर्ता, कर्ता अभिमानी ॥4॥ हर-हर ...
मणिमय भवन निवासी, अति भोगी रागी।
सदा मशान बिहारी, योंगी बैरागी ॥5॥ हर-हर ...
छाल-कपाल, गरल-गल, मुण्डमाल व्याली।
चिता भस्म तन, त्रिनयन, अयन महाकाली ॥6॥ हर-हर ...
प्रेत-पिशाच सुसेवित, पीत जटाधारी।
विवसन, विकट रूपधर रुद्र प्रलयकारी ॥7॥ हर-हर ...
शुभ्र, सौम्य, सुरसरिधर, शशिधर सुखकारी।
अति कमनीय, शान्तिकर, शिव-मुनि-मनहारी ॥8॥ हर-हर ...
निर्गुण-सगुण, निरंजन, जगमय, नित्य प्रभो।
काल रूप, केवल, हर! कालातीत विभो ॥9॥ हर-हर ...
सत्-चित्-आनन्द, रसमय, करुणामय धाता।
प्रेम-सुधा-निधि, प्रियतम, अखिल विश्वत्राता ॥10॥ हर-हर ...
हम अति दीन, दयामन! चरण शरण दीजै।
सब विधि, निर्मल मति कर अपना करि लीजै ॥11॥ हर-हर ...

आरती-(3)

ॐ जय शिव ओंकारा, भज शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्धांगी धारा॥ ॐ हर-हर महादेव...
एकानन चतुरानन पञ्चानन राजे।
हंसानन गरुड़ासन वृषवाहन साजे ॥1॥ ॐ हर-हर महादेव...
दो भुज चारू चतुर्भुज, दस भुज अति सोहे।
तीनों रूप निरखते, त्रिभुवन जन मोहे ॥2॥ ॐ हर-हर महादेव...

श्वेताम्बर, पीताम्बर, बाघाम्बर अंगे।
सनकादिक प्रभुतादिक, भूतादिक संगे॥3॥ ॐ हर-हर महादेव...
अक्षमाला, वनमाला, मुण्डमाला धारी।
त्रिपुरारीश मुरारी, करमाला धारी॥4॥ ॐ हर-हर महादेव...
कर मध्ये तु कमण्डलु, चक्र त्रिशूल धारी।
सुखकारी दुःखहारी, जगपालन कारी॥5॥ ॐ हर-हर महादेव...
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, जानत अविवेका।
प्रणवाक्षर में शोभित ये तीनों एका॥6॥ ॐ हर-हर महादेव...
लक्ष्मी व सावित्री पार्वती संगा।
पार्वती अर्द्धांगी, शिवलहरी गंगा॥7॥ ॐ हर-हर महादेव...
पर्वत सोहें पर्वती और शंकर कैलाशा।
भाँग धतूर का भोजन और भस्मी में वासा॥8॥ ॐ हर-हर महादेव...
शिव जटा में गंग बहत है गल मुण्डल माला।
शेष नाग लिपटावत ओढ़न मृगछाला॥9॥ ॐ हर-हर महादेव...
काशी विराजे विश्वनाथ, नन्दी ब्रह्मचारी।
नित उठ दर्शन पावत, महिमा अति भारी॥10॥ ॐ हर-हर महादेव...
त्रिगुण स्वामी जी की आरती जो कोई नर गावै।
कहै शिवानंद स्वामी वाच्छित फल पावै।11॥ ॐ जय शिव ओंकारा.....



आरती-(4)

जय हे औढ़रदानी।
जैसे तुम उदार परमेश्वर, तैसी शिवा भवानी॥जय०॥
तुम घट-घट वासी अविनाशी व्यापक अंतर जामी।
शुद्ध सच्चिदानन्द अनामय अमल अकाम अनामी॥
अविदित गति अनवद्य अगोचर अगुन अनीह अमानी॥जय०॥1॥
अगम प्रमानि तुमहिं निगमागम नेति-नेति कहि हारे।
सोई तुम भक्तन हित कारन रूप अनेकन धारे॥
किये अनुग्रह भाजन प्रभुने सकल चराचर स्वामी॥जय०॥2॥
परखि प्रीति परब्रत-तनया को आधे अंग बिठायो।
आधो पुरुष अरध नारी को अद्भुत रूप बनायो।
दंपति की यह एक रूपता तुमते जग ने जानी॥जय०॥3॥

आक, धतूर, पात, श्रीफल पै तुम रीझत त्रिपुरारी।
चाउरि चारि चढ़ाय पदारथ चारि लहत नर-नारी॥
आशुतोष! तुम बिन त्रिभुवन में को अति कृपा निधानी॥जय० ॥4॥
जाके पद-रज के प्रसाद ते सुर-सुरपति सुखभोगी।
सोइ सर्वश्व अरपि औरन को फिरै अकिंचन जोगी॥
परहित जाचत कर कपाल लै, डारत भीख भवानी॥जय० ॥5॥
तुम बिन प्रेत पिशाचन हूँ कों को मानत निज प्यारे।
बैर बिहाइ मोर अहि, मूषक निवसत सदन तिहरे॥
वृषभ, सिंह संग-संग रह पीवत एक घाट पै पानी॥जय० ॥6॥
विष-विषधर दोषाकर दूषन भूषन कौन बनावै।
कौन आप हालाहल पीकैं, औरहीं सुधा पियावै।
तुम बिन काके कंठ कृपा की लखियत नील निशानी॥जय० ॥7॥
काशी बीच मुक्ति-मुक्तामनि कौन लुटावत डोलै।
को पशुपति बिनु बंध पशुन को पाश कृपाकर खोलै॥
श्रवन सुनाइ कौन तारक मनु तारत अगनित प्रानी॥जय० ॥8॥
जेहि मारत जग तेहि अहिगन कों प्यार करत तुम स्वामी।
लीजै शरन महेश! कृपा करि, चरन नमामि नमामि॥
तुम बिनु को अपनावत मो सम कुटिल अघम अभिमानी॥जय० ॥9॥



कवित्त—जग को जलाने वाला, काम जलता है जहाँ,
ज्वाला फूट जाती है, त्रिलोचन के भाल में।
बिष बनता है जहाँ अमृत विचारो उसे,
पास-पास पानी और पावक कपाल में॥
विश्व को विषमता का विष पान होता जहाँ,
मित्रता भरी जहाँ मयूर मूष व्याल में।
'भैरव' फँसे हैं भव जाल में विचारो सभी,
देखो भव जाल भी फँसा है भव जाल में॥





❋ शिव चालीसा ❋

दोहा—"जय गणेश गिरिजा सुवन, मंगल मूल सुजान।
कहत अयोध्यादास तुम, देउ अभय वरदान॥"

चौ०—"जय गिरिजापति दीनदयाला। सदा करत सन्तन प्रतिपाला॥
भाल चन्द्रमा सोहत नीके। कानन कुण्डल नाग फनी के॥
अंग गौरि सिर गंग बहाए। मुण्डमाल तन छार लगाये॥
वस्त्र खाल बाघम्बर सोहै। छवि को देखि नागमुनि मोहे॥
मैना मातु की राज दुलारी। बाम अंग शोभित छवि न्यारी॥
कर त्रिशूल बाघम्बर धारी। करत सदा शत्रुन क्षय कारी॥
नन्दी गणेश सोहैं तहं कैसे। सागर मध्य कमल हैं जैसे॥
कार्तिक श्याम और गणराऊ। या छवि को कहि जात न काहू॥
देवन जबहि जाय पुकारा। तब ही दुःख प्रभु आप निवारा॥
कियो उपद्रव तारक भारी। देवन सब मिलि तुमहिं जुहारी॥
तुरन्त षटानन आप पठायो। लव निमेष महँ मारि गिरायो॥
आप जलन्धर असुर संहारा। सुयश तुम्हारा विदित संसारा॥
त्रिपुरासुर सन युद्ध मचाई। सबहि कृपाकर लीन बचाई॥
कीन्हो तप भागीरथ भारी। पुरब प्रतिज्ञा तासु पुरारी॥
दानिन महँ तुम सम कोउ नाहीं। सेवक अस्तुति करत सदाहीं॥
देवन महिमा तुम्हारी गाई। अकथ नादि भेद नहिं पाई॥
प्रगटि उदधि मंथन में ज्वाला। जरत सुरासुर भये विहाला॥
कीन्ह दया तहँ करी सहाई। नीलकण्ठ तब नाम कहाई॥
पूजन रामचन्द्र जब कीन्हा। जीति के लंक विभीषन दीन्हा॥
सहस कमल में हो रहे धारी। कीन्ह परीक्षा तबहि पुरारी॥
एक कमल प्रभु राखेउ गोई। कमल नयन पूजन चहँ सोई॥
कठिन भक्ति देखी प्रभु शंकर। भये प्रसन्न दिये इच्छित वर॥
जय-जय-जय अनन्त अविनाशी। करत कृपा सबके घटवासी॥
दुष्ट सकल नित मोहि सतावै। भ्रमत रहे मोहि चैन न आवै॥
त्राहि त्राहि मैं नाथ पुकारौ। यहि अवसर मोहि आनि उवारौ॥
लै त्रिशूल शत्रुन को मारौ। संकट से मोहि आन उबारौ॥
मात-पिता-भ्राता सब कोई। संकट में पूछत नहिं मोई॥
स्वामी एक है आस तुम्हारी। आय हरहु अब संकट भारी॥
धन निर्धन को देत सदाहीं। जो कोई यांचै सो फल पाहीं॥

स्तुति केहि विधि करौ तुम्हारी। क्षमहु नाथ अब चूक हमारी॥
शंकर हो शंकट के नाशक। विघ्न विनासन मंगल दायक॥
जोगी जति मुनि ध्यान लगावैं। नारद शारद शीश नवावैं॥
नमो-नमो जय नमो शिवाय। सुर ब्रह्मादिक पार न पाय॥
जो यह पाठ करे मन लाई। तापर होत हैं शम्भु सहाई॥
ऋनियां जो कोई अधिकारी। पाठ करे सो पावन हारी॥
पुत्र होन की इच्छा जोई। निश्चय शिव प्रसाद ते होई॥
पंडित त्रयोदशी को लावैं। ध्यान पूर्वक होम करावै॥
त्रयोदशी व्रत करै हमेशा। तन नहिं ताके रहैं कलेशा॥
धूप दीप नैवेद्य चढ़ावै। शंकर सम्मुख पाठ सुनावै॥
जन्म-जन्म के पाप नसावै। अंत वास शिवपुर में पावै॥
दोहा—नित नेम करि प्रातः ही, पाठ करैं चालीस।
प्रभु मेरी मन कामना, पूर्ण करो जगदीश॥

❁ रुद्राष्टक ❁

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाश माकाश वासं भजेऽहं॥
निराकार मोंकार मूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीत मीशं गिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसार पारं न तोऽहं॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारुगंगा। लसद्भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा॥
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्ना ननं नील कंठं दयालं॥
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटि प्रकाशं॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानी पतिं भाव गम्यं॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहा पहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
न यावद् उमानाथ पादार विन्दं। भजंतीह लोके परे वा न राणं॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्व भूताधि वासं॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदासर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दुःखौध तातप्यामानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥
रुद्राष्टकामिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोष्ये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥"

"शंकर सहाय तो भयंकर कहा करैं"

कवित्त 1— पावक प्रचंड पर पानी का प्रवाह सदा,
मित्रता क्यों अमृत हलाहल में आई है।
योग की विभूति जहाँ क्यों वहाँ चिता की है भूति,
भीख माँग खाता यह दाता की बड़ाई है॥
एक नारी ऊपर है, भू पर है दूसरी भी,
काम रिपु ने क्यों कामिनी गले लगाई है।
क्षमता बड़ी है देखो ममता महेश्वर की,
विश्व की विषमता में समता समाई है॥

2. कर में त्रिशूल है, त्रिशूल हरते हैं किन्तु,
नाम त्रिपुरारी, पर त्रिपुर बनाते हैं।
एक नेत्र अन्तर्मुख बन्द है खुले दो नेत्र,
जाग्रति समाधी दोनों साथ में चलाते हैं॥
लोचन त्रिलोचन का बन्द खुलता है जब,
काम के समक्ष लोग अन्धे बन जाते हैं।
'भैरव' विचारो सारे जग को जलाता काम,
धन्य वामदेव कामदेव को जलाते हैं।

3. मुदित महेश ने सुना है, राम-नाम सत्य,
साथ चलें शव के अभीष्ट सुख पाये हैं।
'भैरव' न राम कहते हैं घर घूमे लोग,
आशा में बँधे ने साथ द्वार तक आये हैं॥
शव ही तो सत्य राम-नाम का प्रचारक था,
सोच कर शीघ्र चिता के समीप धाये हैं।
राम-नाम प्रेमी शव मेरे सम्प्रदाय का है,
शव-भस्म शंकर शरीर में लगाये हैं॥

4. वर का विचार क्या है, जिसका शरीर आधा,
घर का विचार क्या चिता की भूमि प्यारी है।
अम्बर विचार क्या दिगम्बर बने हैं सदा,
'भैरव' भण्डार भाँग भोजन भिखारी है॥
वाहन विचार बैल, बूढ़ा बाँधा द्वार पर,
भूषन भुजंग अंग मुण्ड माल धारी हैं।
कामरिपु कामिनी से ब्याह करने हैं चले,
सीस पर सौत धन धन्य त्रिपुरारी हैं॥

5. सारे ब्रह्माण्ड में है जिसकी विभूति भरी,
उसको विचारों क्यों चिता की भूति प्यारी है।
अम्बर समान व्याप्त अम्बर सभी के किन्तु,
आप हैं दिगम्बर, सदैव साथ नारी है।।
माला मोतियों की पहनाते सेवकों को सदा,
'भैरव' महेश किन्तु मुण्डमाल धारी है।
विश्वरूप शिव का स्वरूप परिपूर्ण किन्तु,
आधी देह नारी, आधी देह त्रिपुरारी है।।

6. मूषक के शीश पर व्याल हैं विराजमान,
व्याल के कपाल पर मूषे की सवारी है।
मोर के गले में लिपटे भुजंग देखो,
सर्प शीश नाँचता मयूर मोद भारी है।।
शैलजा के सिंह पर शीश धरे सो रहा है,
बूढ़ा बैल शम्भु का विचित्र बात सारी है।
विश्व की विषमता में समता दिखाने वाला,
'भैरव' निराला मतवाला त्रिपुरारी है।।

सवैया 7— माँगत भीख महेश फिरैं, घर में नहिं एकउ अन्न अधेला।
जो मुख एक तो पूरि परै, मुख ही मुख को घर माँहि झमेला।।
शीश चढ़े सहसानन भैरव, गोद गजानन बैल तवेला।
चतुरानन बाप, पंचानन आप, षडानन , पुत्र दशानन चेला।।

छप्पय 8— गोदी में गिरि सुता, सीस गंगा बलिहारी।
सब अनर्थ की खान, साथ में दो दो नारी।।
काल कूट कलकण्ठ, शेष सिर पर फुफकारे।
दो-दो विष के बीच, सुधाकर को शिव धारे।।
'भैरव' हैं कामारि शिव, सदा कामिनी साथ में।
सकल अमंगल वेष शिव, सब मंगल हैं हाथ में।।

(जै शिव शंकर)



❀ प्रियदास की शिवा-शिव चरणों में करुण पुकार ❀

पद— तर्ज बार-बार तोय कहा समझाऊँ पायल की झनकार।
"रहै न मन ही मन बन्यो, बनै प्रभू को यन्त्र।
प्रभुयंत्री फूँ कें सदा, निज मन माने मन्त्रा॥ (टेक)
जग मन लिप्सा नैंक न रह जाय। सकल कामना अन्तः बहजाय॥
ममता, तृष्णा पूरी ढह जाय। नाम हि जीह बसन्त॥1॥ प्रभु यंत्री....
शिव-यश गाते जीवन बीतै। घुसे चोर डर उनकूँ जीतै॥
शिवहि विराजैं हृदय मम-पुलकैं तन के तन्त्र॥2॥ प्रभु यंत्री....
प्रभु को मैं बन जाउँ सन्त्री। कर्म करावैं मम शिव यन्त्री॥
बिन उनके न धरहुँ पग, हैं प्रभु करुणा कन्त्र॥4॥ प्रभु यंत्री....
माँगत हूँ शिव से कर जोरि, विनय यही वर दीजिये पाँचो।
निशिवासर नाम रटूँ तैरो, जब प्राण जायँ तो पकरूँ न माँचो॥
लेखनी नित गुण-गान लिखै, अंत समय शिव नाम उँवाचो।
धन-धान कु टम आसक्त न 'प्रिय' यही विनय हरते मैं याँचो॥

❑ ❖ ❑

समाप्त

'शिव चरणों में समर्पित'

'प्रिय' बाबूलाल अग्रवाल
84, कृष्ण विहार कालौनी, मथुरा

❋ भजन ❋

लेके गौराजी को साथ

लेके गौराजी को साथ, भोले भाले भोले नाथ
काशी नगरी से आया है, शिव शंकर।
नन्दी पर सवार होके, डमरू बजाते
चले आ रहे हैं भोले, हरी गुण गाते।
पहिरे नरमुण्डों की माल, ऊपर से ओढ़े मृगछाल
काशी नगरी से०....

हाथ में त्रिशूल लिये, भस्मी रमाये
झोली गले में डाले, गोकुल में आये।
पहुँचे नन्द जी के द्वार, शिवजी बोले बारम्बार।
काशी नगरी से०....

कहाँ है यशोदा तेरा, कृष्ण कन्हैया
दरश करादो रानी, लेऊँ मैं बलैयाँ।
सुनकर नारायण अवतार, आया हूँ मैं तेरे द्वार।
काशी नगरी से०....

देखकर यशोदा बोली, जाओ-जाओ-जाओ
द्वार पर हमारे नहीं, डमरू बजाओ।
डर जावेगा मेरा लाल, देखेगा सर्पों की माल।
काशी नगरी से०....

हँस के वो जोगी बोला, सुनो महारानी
दरश करा दो मैया, होगी मेहरबानी।
दर्श करा दो एक बार, देखूँ कैसा है सुकुमार।
काशी नगरी से०....

सोया है कन्हैया मेरा, मैं न जगाऊँ
तेरी बातों में बाबा, हरगिज न आऊँ।

मेरा नन्हा-सा गोपाल, तू कोई जादू देगा डाल।

काशी नगरी से०....

इतनी सुनके भोला, हँसा खिल खला के
बोले यशोदा से, डमरू बजाके।
देखो जाकर अपना लाल, आने को है वो बेहाल।

काशी नगरी से०....

इतने में आये मोहन, मुरली बजाते
ब्रह्मा इन्द्रादि जिनका, पार न पाते।
यही गोकुल में ग्वाल, घर-घर नाच रहा गोपाल।

काशी नगरी से०....



मेरी प्यारी सी गौरा

मेरी प्यारी सी गोरा बनेगी दुलहनिया, ब्याहने आयेंगे भोले बाबा, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। सोलह श्रृंगार मेरी गौरा करेगी, टीका चढ़ेगा और हल्दी लगेगी, गोरा के होठों पै झूमेगी नथनिया सजके आयेंगे भोले बाबा, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। मेरी.... गोरा के हाथों में मेंहदी लगेगी, माँग भरेगी और बिंदिया लगेगी, गोरा के हाथों में बँधेगा कंगना और खोलेंगे भोले बाबा, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। मेरी.... घूम-घुमारों गोरा पहनेगी लहंगा, हीरा-पन्ना के गोरा पहनेगी गहना, गोरा के पैरों में बजेगी पायलिया, और ओढ़ेगी लाल चुँदरिया, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। मेरी.... जब गोरा की पड़ेगी भमरिया, तीनों लोकों में छायेगी खुशियाँ, बजेंगे ढोल-नगाड़े और फूलन की होगी वर्षा, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। मेरी.... फूलों की डोली में बैठेगी गोरा, धरती पे मेरी गोरा पाँव न धरेंगी, भोले के संग चली जायेंगी, जाके कैलाश

पर बस जायेगी, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। मेरी....
भोले के संग गोरा सुख से रहेगी, माता-पिता की कभी याद न करेगी, गोरा के मन में बसे हैं महादेवा, उनको पूजे हैं सारा जमाना, ब्रह्मा-विष्णु बजायेंगे बाजा। मेरी....



ओम नमः शिवाय

ओम नमः शिवाय बोलो ओम नमः शिवाय।
शिव-शिव भोले का महामन्त्र है मुक्ति का उपाय॥ बोलो....
जब-जब डोले जीवन नैया, शिव की महिमा गाओ
सारे जग के हैं वो खिवैया, शिव की शरण में आओ।
संकट आये कष्ट रुलाये, जब-जब जी घबराये॥ बोलो....
सबसे प्यारे सबसे न्यारे, बाबा भोले भाले हैं
भाँग धतूरे की मस्ती में, रहते मस्त निराले हैं।
बम-बम भोले कहते जाओ, जो भी आये जाये॥ बोलो....
आधा चन्दा माथे सोहे, गले में सर्पों की माला
तेज धारी के तेज से पाये, सूरज सा उजियारा।
डम-२ डमरू बोले शिव का, सातों सुर दोहराये॥ बोलो....
विपदा आई राम पै भारी, शिव शक्ति का जाप किया।
बजरंगी की शक्ति बनके, शिव ने राम का साथ दिया।
रामेश्वर की पूजा करते, राम यही फरमाये॥ बोलो....







प्रकाशक

केशव पुस्तकालय

715, सतघड़ा, मथुरा (उ.प्र.)

फोन : 0565-2401130 मो. 9837048889